द्वितीय संस्करण

रसीली ब्रज यात्रा

**दधिविक्रयार्थं यान्त्यस्ताः कृष्ण-कृष्णेति चाब्रुवन् ।
कृष्णे हि प्रेमसंसक्ता भ्रमंत्यः कुंजमंडले ॥**

प्रेम के पागलों का एक समुदाय ही ब्रज है। गोपी दधि मटकी लेकर कुञ्जों में जा रही है, वनों में कौन दधि खरीदेगा? यह प्रेम की मस्ती, प्रेम की लगन, जो बड़े-बड़े योगी ज्ञानी नहीं जान सकते। गोपी, गोपाल को टेर रही है। दही का नाम भूल गयी, "दही लो-दही लो" की जगह कह रही है "कृष्ण लो-कृष्ण लो"। यह भी भूल गई कि यह कौन सा गाँव है, यह बरसाना है !!! कि संकेत !!! कि नन्द गाँव है !!! कुछ पता नहीं। सिर्फ मटकी शीश पर है। उसको क्या आनंद मिल रहा है, हम इसे समझ ही नहीं सकते, वहाँ तो प्रेम है। "**अनन्यः सर्वत्र श्री कृष्णैकदृष्टि**" इस भाव से यात्रा करना ही **रसीली ब्रज यात्रा** है।

**"अनन्त अपार ब्रज रस सागर
एक पुस्तक के रूप में"**

ब्रज बालिका मुरलिका शर्मा
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान,
बरसाना, मथुरा

रसीली ब्रज यात्रा

लेखिका

ब्रज बालिका मुरलिका शर्मा

प्रकाशक
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान
गहवर वन, बरसाना, मथुरा
उत्तर प्रदेश २८१ ४०५
भारतवर्ष

पुस्तक के विषय में

ब्रज रस के अतल-तल में नित्य स्थित, रस स्थल श्री बरसाने के परम विरक्त सन्त अनन्त श्री युत् श्रीश्री रमेश बाबा जी महाराज के मुख से मुखरित शब्द ही यहाँ पुस्तक के रूप में हैं।

ऐसे उदार व्यक्तित्व के संरक्षण में गत् २५ वर्षों से चल रही "श्रीराधा रानी ब्रज यात्रा" की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में 'राधा अष्टमी' के पावन पर्व पर विमोचित, ब्रज रस जिज्ञासुओं के लिए उदार विचारों से संयुक्त यह ब्रज दिग्दर्शिका "रसीली ब्रज यात्रा" अनुपम है।

आशीर्वादात्मक सम्मति

श्रीधाम बरसाना की परम पुनीत रमणीक स्थली गहवर वन में जन्मी, ब्रज बालिका मुरलिका द्वारा लिपिबद्ध यह ग्रन्थ "रसीली ब्रजयात्रा" अभूतपूर्व है किन्तु अनन्त को शब्दों में कैसे व्यक्त किया जा सकता है? महाकवि नन्ददास जी का भी यही कथन है –

"नन्ददास चातक की चोंच पुट सब घन कैसे समात"

स्वयं महाकवि नन्ददास जी अनन्त सौन्दर्य व अनन्त भगवद् रस का वर्णन नहीं कर पाए, हार मानकर बोले कि एक पपीहे की चोंच में सारा घन कैसे आ सकता है। इसी तरह यह ग्रन्थ ब्रज के वैभव का दिग्दर्शक अवश्य है, तथापि धाम के सम्पूर्ण माहात्म्य का इसमें समावेश सम्भव नहीं है।

है काहू के ढोटा श्याम सलोनो गात ॥
आई हौं देख खिरक मुख ठाडो न कछु कहन की बात ।
कमल फिरावत नयन नचावत मो तन मुरि मुस्कात ॥
नख शिख रूप अनूप रूप छवि कवि पै वरनी न जात ।
'नन्ददास' चातक की चोंच पुट सब घन कैसे समात ॥

कृतज्ञता प्रकाशन

यद्यपि सर्वथा निरपेक्ष भक्तों को प्रशंसा से उतनी ही विरक्ति होती है, जितनी कि यश लोलुपों को अपयश से।

प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः ।
ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥

(भा. ०४/१५/२५)

किन्तु शिष्टाचार की दृष्टि से कृतज्ञता प्रकाशन आवश्यक है।

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु सम्पदः ।
प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥

(भा. ०४/२१/४४)

प्रथम कृतज्ञता तो मेरी, मेरे पितृव्य (ताऊ जी) कथा प्रवक्ता – डॉ. रामजी लाल शास्त्री जी के प्रति है जिन्होंने मुझे भौतिक शिक्षा जिसे काकभुशुण्डि जी ने खरी का दूध कहा है –

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी ॥

(रा.च.मा. उ..का. ११० /७)

खरी के दुग्धपान से बचाकर श्री राधामान विहारी लाल की चरण-शरण में पहुँचाया, जिससे मुझे आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति हुई। उस प्रयास में मातृवत् पोषण करने वाली मेरी दोनों पितृश्वसा लक्ष्मी देवी व किशोरी देवी का भी योगदान अविस्मरणीय है, चिरऋणी हूँ मैं इनकी। स्वयं को ब्रजबालिका लिखती हूँ क्योंकि मैं एक अनाथ, असहाय बालिका मात्र हूँ। श्रीजी की ही कृपा से ब्रज में जन्म होने से ब्रजबालिका बनी हूँ।

भगवल्लीलाओं का साक्षी विस्तृत ब्रज भू-भाग जिसके अनुसंधान में कृष्णावतार से आज तक कितने ही प्रयास हुये हों परन्तु स्पष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं हो सका। ऐसे दुरुह कार्य में एक असहाय अबला अल्पज्ञान बालिका की क्या सामर्थ्य जो सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र परिधि को अपनी लेखनी का विषय बना सके? परन्तु गुरुदेव की व श्रीजी की असीम अनुकम्पा जिसको मिल जाय फिर उसके लिए असम्भव क्या? भगवत्कृपा व प्रेरणा के फलस्वरूप ऐसा संयोग बना कि श्री मानमन्दिर के निरपेक्ष संत जिन्होंने ब्रज एवं बृहद् ब्रज के गाँव-गाँव में जाकर अथक प्रयास किया और ब्रज क्षेत्र की वास्तविकता को जाना। रसीली ब्रज यात्रा पूर्व खण्ड व ब्रहद् ब्रज यात्रा परिचायक रसीली ब्रज यात्रा के उत्तर खण्ड में अपूर्व सहयोग प्रदान कर ब्रजवासियों व ब्रजप्रेमी जनों का सर्वाधिक हित किया है, यदि उन सुनामधन्य संतों की चर्चा यहाँ नहीं की जाय तो सम्भवतया यह खोजपूर्ण ब्रजसाहित्य अपूर्ण सा ही रहेगा। ग्रन्थ की पूर्णता हेतु उन सुनामधन्य संतों की चर्चा परमावश्यक है।

अंतर्वस्तु

चित्र तालिका

प्राक्कथन

ब्रजभूमि भारतीय जनमानस के आकर्षण का केन्द्र रही है क्योंकि भारत की संस्कृति का यह मूल आधार है। भगवान् श्रीकृष्णावतरण क्षेत्र व लीलास्थली होने से करोड़ों भक्तों की आस्था भी यहाँ से जुड़ी है तभी तो भारत वर्ष के ही नहीं अपितु सारे संसार से श्रद्धालु यहाँ आते हैं, दर्शन करते हैं व इस पवित्र भूमि की परिक्रमा करते हैं।

परिक्रमा तो जगत-पिता ब्रह्मा ने भी गौवत्स एवं ग्वाल-बाल हरण के पाप से निवृत्ति के लिए की थी और वे निष्पाप हुए।

ब्रजरज का सेवन आज के बड़े से बड़े पापात्माओं को भी निर्मल बनाने वाला है। ऐसी महिमा किसी अन्य पुण्य कार्यों में नहीं है, तभी तो बड़े-बड़े संत-महन्त, राजा-महाराजा अपना कुल, वैभव, धनधान्य छोड़कर यहाँ की रज का आश्रय लेते हैं परन्तु कालक्रम से लुप्तप्रायः होता हुआ ब्रज का स्वरूप यथा समय महात्माओं को उद्वेलित करता रहा है।

चैतन्य महाप्रभु, वज्रनाभजी, नारायण भट्ट जी आदि ने ब्रज को प्रकट किया, बचाया परन्तु कलिकाल जैसे सब कुछ निगल ही जायेगा। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, आधुनिक सुख-सुविधाएँ तथा हमारी महत्वाकांक्षाओं ने स्वरूप को और भी विकृत कर दिया फिर भी सनातन नाम वाली यहाँ की संस्कृति अपने नाम से भ्रष्ट कैसे हो सकती है।

भगवान् महापुरुषों के रूप में अवतरित होकर जीवों के कल्याणार्थ उसे सदा जीवित रखते हैं। ऐसे ही परम पुरुष विरक्त संत श्रद्धेय श्री रमेश बाबाजी जो प्रयाग की पावन भूमि में अवतरित हो बाल्यकाल से ही ब्रजाराधन का स्वप्न देखते हुए वैराग्य ग्रहण कर श्रीधाम बरसाना के ब्रह्माचल पर्वत पर मानिनी श्रीराधा के तत्कालीन खण्डहर भवन 'श्री मानमन्दिर' में रहे।

उस समय यह स्थल चोर-डाकुओं का अड्डा था परन्तु महापुरुष अपनी पावन सन्निधि से जनमानस को तो पवित्र करते ही हैं साथ ही क्षेत्र के भौम स्वरूप को भी सजाते-संवारते हैं, वही किया श्री रमेश बाबा जी ने। लुप्त प्रायःहोते हुए ब्रज के स्वरूप को उन्होंने पिछले ६० वर्षों के अथक प्रयास से बचाया।

श्री रमेश बाबा जी के विविध प्रयासों का उल्लेख "**रसीली ब्रज यात्रा**" (जो ब्रज बालिका मुरलिका जी की अद्भुत रचना है) में ब्रज भक्तों के स्वान्तः सुखार्थ आवश्यक समझकर मैं उद्धृत कर रहा हूँ।

ब्रज के वनों का संरक्षण

वन, उपवन, प्रतिवन, अधिवनों से आवृत यह ब्रजभूमि बड़ी रमणीय थी। भगवान् ने अपनी लीलाएँ किन्हीं भवनों में नहीं की बल्कि ये वन ही उनकी लीलाओं के केन्द्र थे।

धीरे-धीरे सारे वन नष्ट हो गये, मात्र कुछ वन ही बचे थे, उन्हें भी भूमाफियाओं की कुदृष्टि लगी हुयी थी।

ऐसे वनों में श्री किशोरी जी के निज करकमलों से लगाया हुआ गहवर वन भी समाप्ति के कगार पर था परन्तु "श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान" के वीतरागी संत श्री रमेश बाबा जी ने ४० वर्ष के संघर्ष के बाद बचाया।

निरन्तर स्थानीय लोगों के भारी विरोध के बाद भी निष्ठा के साथ प्रयत्नशील बाबा ने मेरे पिता श्रीप्रकाश जी जो तत्कालीन ग्राम प्रधान थे और बाबा के भक्त थे, जिनके द्वारा प्रस्ताव कराकर आरक्षित वन कराया और आज वह सरकारी विभाग (वन विभाग) के आधिपत्य में होने पर भी मान मन्दिर द्वारा पोषित है और बड़ी रमणीयता को प्राप्त हो रहा है।

इसका संरक्षण कोई सहज में नहीं हुआ निरन्तर ४६ वर्षों तक लोगों का विरोध सहना पड़ा और अन्त में श्रीजी ने ही इसकी रक्षा कराई, ऐसे ही अनेक वन रक्षित हुए जैसे पाण्डव गंगा (बठैन), नौबारी-चौबारी (डभारा), दर्शन वन, कलावटा (काम्य वन), आदि अनेक स्थलों में सघन वृक्षारोपण किया गया।

ब्रज में वृक्षारोपण

आज सारे ब्रज में लाखों वृक्ष 'श्री मान मन्दिर' द्वारा लगाए जा रहे हैं।

ब्रज के सरोवरों का संरक्षण

राधा-कृष्ण की लीलाओं के साक्षी अनेक सरोवर भी रहे जिनमें वे स्नान करते। ब्रज में कितने कुण्ड थे यह तो कल्पनातीत है, अकेले नंदग्राम में ही ५६ कुण्ड थे, काम्य वन में ८४ कुण्ड थे। शनैः-शनैः कुण्ड भी लोगों की वासनाओं के शिकार होते गये।

'श्री मानमन्दिर' द्वारा ब्रज के अनेक कुण्डों का जीर्णोद्धार किया गया। ग्राम डभारा में तो कुण्ड के स्थल को खोजकर उसकी जमीन किसान से क्रय की गई फिर वहाँ 'रत्न कुण्ड' का पुनर्निर्माण हुआ।

निम्न कुण्डों एवं सरोवरों का जीर्णोद्धार 'श्री मान मन्दिर' द्वारा हुआ।

1. रत्न कुण्ड (डभारा)
2. ग्राम धमारी का कुण्ड
3. विह्वल कुण्ड (संकेत)
4. गोमती गंगा (कोसी कलां)
5. कृष्ण कुण्ड (नन्द गाँव)
6. ललिता कुण्ड (कमई)
7. बिछुवा कुण्ड (बिछोर)
8. लोहरवारी कुण्ड
9. गया कुण्ड (काम्यवन)
10. नयन सरोवर (सेऊ)
11. लाल कुण्ड (दुदावली)
12. बिछुआ कुण्ड (जतीपुरा)
13. गोपाल कुण्ड (डीग)
14. मेंहदला कुण्ड (हताना)
15. रूद्र कुण्ड (जतीपुरा)

ब्रज के दिव्य पर्वतों की रक्षा

ब्रज में यों तो त्रिदेव, पर्वतों के रूप में विराजमान हैं। गोवर्द्धन में गिरिराज जी स्वयं विष्णु भगवान् बने हैं, नन्द गाँव में शंकर जी नन्दीश्वर पर्वत तथा बरसाना में ब्रह्मा जी ब्रह्माचल पर्वत, इसके अतिरिक्त अष्टकूट, आदिबद्री, कनकाचल, सखी गिरि, रंकु पर्वत आदि अनेक पर्वतों के रूप में देवगण अवतरित हैं।

इन पर्वतों पर खनन माफियाओं की ऐसी कुदृष्टि हुई कि अत्याधुनिक मशीनों तथा विस्फोटकों से इन्हें नष्ट किया जाने लगा। 'श्री मान मन्दिर' द्वारा इन सबका विरोध हुआ परन्तु धनाढ्य व मदान्ध माफियाओं ने ब्रज लीला के साक्षी व केन्द्र इन पर्वतों के धार्मिक व ऐतिहासिक महत्व को न समझकर सरकारी तन्त्र के साथ मिलकर धन के बल पर नष्ट करने का प्रयत्न पूरी शक्ति के साथ किया। ईश्वरी शक्ति से आज तक कौन जीत पाया है। सखीगिरि पर्वत पर ब्रज रक्षक संत श्री रमेश बाबा महाराज ने अनशन प्रारम्भ कर ब्रज के दिव्य पर्वतों की रक्षा का संकल्प लिया।

यद्यपि पचास वर्ष पूर्व भी उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री संपूर्णानंद से मिलकर ब्रज के खनन को बन्द कराया था परन्तु वर्तमान संघर्ष ने सारे ब्रज को ही नहीं अपितु राज्य सरकारों तक को झकझोर दिया था। अंत में ५२३२ हेक्टेयर भू-भाग को आरक्षित वन क्षेत्र घोषित कराकर ब्रज रक्षा का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया।

इसमें कई भक्तों ने अपनी जान जोखिम में डाल कर बड़ी-बड़ी विपत्तियों का सामना किया क्योंकि ब्रज लीला स्थलियाँ उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय थीं। उनका संरक्षण किसी आराधना से कम नहीं था।

गौमाता की रक्षा

ब्रजाराध्य श्रीकृष्ण को गायों से जितना प्रेम था उतना किसी से नहीं। यही कारण था कि उन्होंने गिरिराज पूजा कराई। गौपालन व गौचारण नंगे पैर किया। गोपाल के ब्रज में आज गायों की दुर्दशा से कोई अनभिज्ञ नहीं है।

जिसे भारतवासी माँ कहते हैं वही माँ आज घरों से बाहर दर-दर की ठोकर खाती भटकती है या मांसाहारियों द्वारा दर्दनाक मृत्यु को प्राप्त होकर अस्तित्व को खो रही है।

संत हृदय नवनीतवत् होता है। इस कारण 'श्री मानमन्दिर' के महाराजश्री ने गौरक्षा का विशेष अभियान २००७ में प्रारम्भ कर एक गौशाला की स्थापना "माता जी गौवंश संस्थान" के रूप में की, जिसमें ब्रज की अनाथ गायें तो पलती ही हैं, इसके अतिरिक्त बाहर से भी गायें यहाँ आती रहती हैं।

एकमात्र यह ऐसी गौशाला है जहाँ गायें आती हैं तो मना नहीं किया जाता। ५-६ वर्षों में ही आज उत्तर प्रदेश की सबसे बड़ी गौशाला यहाँ बन गई, जिसमें लगभग २२,००० गौवंश मातृवत पल रहा है।

गाय के गोबर, मूत्र के विविध उत्पादों के द्वारा ब्रज वासियों को धन सम्पन्न बनाना, निरोग बनाना, अन्यान्य लाभ दिलाना यह भी संकल्प उक्त संस्था का है, जिस पर कार्य

प्रारम्भ हो रहे हैं। ब्रजवासी, ब्रजभूमि, भगवान् सभी का एक स्वरूप है, तीनों की सेवा लक्षित है।

यमुना महारानी की रक्षा का प्रयत्न

यमुना जी के बिना ब्रज की महारानी (श्रीराधा) ने भी धराधाम पर आना स्वीकार नहीं किया था। ऐसी पतित पावनी यमुना महारानी आज ब्रज में हैं ही नहीं। यह बात ब्रज में अज्ञात थी, इस पर भी 'श्री मानमन्दिर' द्वारा शोध कार्य किया गया।

प्रयाग से दिल्ली तक पद यात्रा कर जन चेतना जागृत की गई। हथिनी कुण्ड (हरियाणा) में यमुनाजी को रोक लिया गया है। १४० कि.मी. तक एक बूँद भी यमुना जल यमुना तल पर नहीं रहता।

ब्रज में दिल्ली का मल-मूत्र ही आता है।

कभी यमुना के निर्मल जल से सारा ब्रज पोषित था लेकिन आज वह जल विषरूप हो गया है।

'श्री मानमन्दिर' से यमुना जी को लाने का बड़ा भारी प्रयत्न हुआ। लाखों ब्रजवासियों, भक्तों, श्रद्धालुओं द्वारा दिल्ली तक पदयात्रा हुई परन्तु सरकारी आश्वासनों ने संकल्प पूर्णरूपेण पूर्ण होने नहीं दिया परन्तु बाबाश्री का संकल्प भविष्य में अवश्य पूर्ण हो जायेगा ऐसा विश्वास है क्योंकि आज तक उनका कोई संकल्प अधूरा नहीं रहा। भगवल्लीलाओं की प्रमुख केन्द्र यमुना महारानी हैं।

हरिनाम प्रचार प्रसार

ब्रजवासी वही है जो सतत् श्रीकृष्ण स्मरण चिन्तन करता है। ब्रज गोपियों के प्रत्येक कार्य में श्रीकृष्ण ही लक्ष्य होते थे।

ऐसे ब्रज में आज आधुनिक परिवेश ने पुरातन स्वरूप को बिल्कुल मिटा दिया। इसे देखकर दयाद्रवित पूज्य श्रीरमेश बाबा जी ने गाँव-गाँव भगवन्नाम की अलख जगाने का बीड़ा उठाया।

ब्रज एवं देश के लगभग ३२,००० गाँवों में भगवन्नाम प्रभात फेरियाँ प्रारम्भ कराई। इससे घर-घर चेतना फैली और कृष्ण कीर्तन होने लगा।

श्रीराधारानी ब्रज यात्रा

ब्रज सेवा के कार्यों में बाबाश्री की 'श्रीराधा रानी ब्रजयात्रा' भी अपने में अलौकिक है। बाबा को यह अच्छा नहीं लगता था कि धनाभाव में कोई भावुक भक्त ब्रज यात्रा से वंचित रहे, इसके लिए उन्होंने सन् १९८८से पूर्ण रूपेण निःशुल्क वार्षिकी ब्रज यात्रा प्रारम्भ की जिसमें इस समय लगभग २०,००० ब्रज यात्री सम्मिलित होकर अपने भाग्य को सराहते हैं।

यात्रियों के भोजन, आवास एवं उपचार आदि की समस्त सेवाएं 'श्री मानमन्दिर' द्वारा ही कराई जाती हैं। सतत् हरिनाम संकीर्तन से यात्रा का प्रत्येक क्षण, रस और प्रेम की अनुभूति कराता रहता है। ब्रज के दुरूह स्थलों की महिमा का उल्लेख बाबा महाराज द्वारा प्रतिदिन नृत्य-आराधना के पश्चात् किया जाता है।

यही यात्रा है जिसने जाने कितनों को राधा माधव का अनन्य उपासक बनाकर सांसारिक मोह माया से सदा-सदा के लिए दूर कर दिया।

"रसीली ब्रज यात्रा" की लेखिका बाल विदुषी मुरलिका जी भी इसी यात्रा से संस्कारवती होकर पूज्य श्री बाबा महाराज की अनुकम्पा से देश की विदुषी भागवत प्रवक्त्री बनीं।

ब्रज यात्रा में सुश्री मुरलिका जी का अद्भुत योगदान चला आ रहा है। भागवत कथाओं से प्राप्त दैवी द्रव्य का बिना स्पर्श किये ही निःस्पृह भाव से सर्व समर्पण ब्रज सेवा में हो जाता है।

यही नहीं जिस परिवार में वे पली-पोसी हैं, वह भी बड़ा अलौकिक है जहाँ रोजाना हजारों वैष्णव-संत-भक्त प्रसाद पाते हैं।

इस तरह 'श्री मानमन्दिर' द्वारा ब्रज की जो सेवा हो रही है, उससे भगवद् भक्ति, ब्रज भक्ति, वैष्णव भक्ति की प्रेरणा सभी को मिल सके इस आशय से अपनी विचाराभिव्यक्ति की है।

राधा कान्त शास्त्री
श्री मान मंदिर सेवा संस्थान
गहवर वन, बरसाना, जिला मथुरा
उत्तर प्रदेश २८१४०५, भारतवर्ष

अध्याय – १

प्रस्तावना

वन्दौ चरण कमल हरि राई ।

श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-प्रेष्ठ, आध्यात्मोद्बोधक गुरुजनों के प्रेमोद्यान में उनके स्नेहजल से सिञ्चित सुमन भला कभी उनके ऋण का परिशोध कर सकता है? नितान्त नहीं। नत मस्तक होकर नमन अवश्य कर सकता है। बस यही उसका पौरुष है (यही उसका बल है)। सर्वदा-प्रवहमान-कृपा रूपी पवन यदा-कदा उसका स्पर्श कर लेता है तो बोलने में भी वह सक्षम हो जाता है।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे अन्धे को सब कछु दरसाई ॥
बहिरो सुने मूक पुनि बोले रंक चले सिर छत्र धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुणामय बार बार वन्दौ तेहि पाई ॥

कृपा शक्ति के आगे जड़ भी जड़ नहीं रह जाता।

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमांप्रसुप्तां
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥

(भा.४/९/६)

पूज्य गुरुदेव की कृपा ने कितनों को पुष्ट किया, देखो – सन १९८८ से चल रही 'श्रीराधा रानी ब्रज यात्रा', ब्रज-देश जिज्ञासुओं के लिए वर स्वरूप बन गई। ब्रज की गरिमा-महिमा से अनभिज्ञ जिज्ञासुओं का अभीष्ट बन गई। स्थान-स्थान पर गुरुदेव द्वारा माहात्म्य बोध तो हो ही जाता है पुनरपि रसिक व प्रेमिल हृदय यात्रा सम्बन्धी पुस्तक के लिए बराबर आग्रह करने लगा। प्रत्येक बार "अग्रिम यात्रा में उपलब्ध हो जायेगी" कहकर यात्रियों को रिक्त-हस्त लौटा दिया जाता। ग्रन्थ प्रकाशन का कर्म क्षेत्र विशाल एवं दुरूह था किन्तु गुरु कृपा शक्ति ने दुर्गम को भी सुगम कर दिया एवं भावनाशील भावुक भक्तों के भगवत परक भावों का भरण करते हुए यह यात्रा सम्बन्धी लीला-स्थल बोधक ग्रन्थ प्रदान कर समयोचित उपकार किया। गुरु कृपा शक्ति ने ही लेखन का यह दुर्गम कार्य किया है अतः कथन में संकोच नहीं कि "रसीली ब्रज यात्रा" ग्रन्थ स्व-स्व मत व स्व-स्व साम्प्रदायिक संकीर्ण बुद्धि के आग्रह से सर्वथा शून्य है। अस्मिता-युक्त मान्यता-मुक्त होने से सर्वविध सत्य के प्रकाशन का ही इसमें प्रयास है चूँकि सर्वसाधारण इससे अवगत हो कि अस्मिता व पूर्वाग्राही प्रज्ञा ने आज लीला स्थल माहात्म्य

को भ्रामक बना दिया, युगल की अलौकिक लीलाएँ मात्र कल्पना बन कर रह गईं जन-मन में। सम्प्रदायों के एक ही इतिवृत्तों में ध्रुवीय अन्तराल आ गया। मूल लीलाओं को विवादात्मक बनाने का प्रयास किया गया। यथा –राधा कृष्ण विवाह प्रामाणिक नहीं है, राधा जन्म बरसाने में नहीं हुआ है, जाव वट स्वकीया स्थल नहीं है इत्यादि। तत्-तत् समस्त भ्रामक विवादों के निरसन निमित्त ग्रन्थ में प्रामाणिक बातों का ही उल्लेख है। **"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता"** अनन्त की अनन्तानन्त लीलाओं के वर्णन को अनन्त शब्द कहाँ से लायें? लीलाओं को शब्द परिधि में बाँधना भी सम्भव नहीं, अतः ग्रन्थ के शब्द व अक्षर ससीम सम्भव हैं किन्तु वर्णित लीला निःसीम युगल तत्व में अवस्थित करा देने वाली निश्चित है।

'श्रीराधा रानी ब्रज यात्रा' के जनक (ब्रज विभूति श्री श्री रमेश बाबा जी महाराज) पूज्य गुरुदेव द्वारा ब्रज की लुप्त निगूढ़ लीला स्थलियों का प्राकट्य हुआ, जिनके विषय में और तो और ब्रजवासी भी अनभिज्ञ थे, ऐसे उन निर्जन-लीला-स्थानों के अन्वेषण का कठिन प्रयास पूज्य श्री सद् गुरुदेव के द्वारा ही हुआ। जैसे रासोली (जिसका वर्णन जीव गोस्वामी जी ने भागवत १०/२९/३ की टीका में किया है), बदरौला टीला (सूर सागर में कथा वर्णित है), सौगन्धिनी शिला, विन्ध्याचल गिरि, गन्धमादन गिरि ... अधिक कहना आवश्यक नहीं क्योंकि इन सभी लीला-स्थलियों की प्रामाणिक कथा "रसीली ब्रज यात्रा" में दी जा रही है।

ब्रजयात्रा के इतिहास पर घिरे हुए अनेकानेक मतभेद, साम्प्रदायिक संकीर्णता के धूम को हटाकर निर्धूम यथार्थ का साक्षात्कार कराने की दृष्टि से सर्वविध प्रभावों, प्रमाणों की कसौटी पर कसकर यह परिशुद्ध ग्रन्थ जिज्ञासु अध्येतागणों को पहुँचाने का प्रयास किया गया है, जिससे वे स्थान-सम्बन्धी समस्त लीलाओं में निर्बाध प्रवेशाधिकार प्राप्त कर लें।

यद्यपि ग्रन्थ भगवत् परक होने से सर्वरूपेण आस्वाद्य है, भगवत्प्रेमरस से सराबोर होने से इसका नाम "रसीली ब्रज यात्रा" होना नैसर्गिक ही है, तथापि एक कलम हिलाने का, कागज काला करने का काम एक मानव का ही है अतः पुस्तक में विच्युतियों का होना हमारी ज्ञान शून्य प्रज्ञा का दोष है।

एतदर्थ पाठक वैष्णवों से विनय है –

"हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो"

(सू.वि.प)

अथवा

"कृपा सिन्धु अपराध अपरिमित, छमौ सूर ते सब बिगरी"

(सू.वि.प)

वस्तु पूज्य बाबा की तो समर्पण की विडम्बना क्यों? तथापि एकाकांक्षा है –

"नाथ सको तो मोहि उबारयो"

(सू.वि.प)

कृपा शक्ति

आप के हाथ में यह पुस्तक है और आप इसे पढ़ रहे है तथा यात्रा भी कर रहे हैं तो यह सत्य है कि आपके पुण्यों का उदय हुआ है। गुरुजनों की महत् कृपानुसार ही ऐसा सम्भव होता है, इसमें संदेह न करें। जीव के संचित, प्रारब्ध एवं वर्तमान के पाप कर्मों के पहाड़ उसे इस मार्ग पर जाने में आत्यंतिक बाधा पहुँचाते हैं।

यात्रा नियम

जिज्ञासु भक्त कैसे यात्रा करें ? प्रतिपादित नियमों का संयम से पालन करें।

(१) भगवान् भक्तों की सरलता एवं भोलेपन पर रीझते हैं। सांसारिक चतुराई को घर पर छोड़ कर आयें एवं इस भाव से यात्रा करें कि प्रभु हम पर रीझ जाएँ।

(२) प्रत्येक यात्री में कृष्ण होने का भाव रखें।

(३) सुख सुविधाओं को छोड़ कर यात्रा करें। कार या बस से यात्रा करना यात्रा नहीं है वरन् एक रजोगुणी देशाटन है। पैदल तथा हो सके तो नंगे पाँव यात्रा करें। ब्रज भूमि का कंकड़, पत्थर और काँटा भी आपके पाँव में चुभे तो उस लक्ष कोटि आनन्द की प्राप्ति कहीं सम्भव नहीं है। यह वो ही ब्रज भूमि है जहाँ राधा-माधव एवं सखा नंगे पाँव खेला करते थे और गोचारण के लिये जाते थे।

(४) यह धाम चिन्मय है एवं हमारे प्राकृत चक्षुओं से इसका नित्य स्वरुप नहीं दिखाई पड़ता। आस-पास फैली गंदगी से विचलित न होवें तथा धाम में साफ-सफाई रखें तथा स्वयं गन्दगी का कारण न बनें।

(५) कटु शब्द न बोलें। क्रोध न करें। यात्रियों से धक्का-मुक्की न करें।

(६) लीला स्थली पर जाने से पूर्व इस ग्रन्थ के लीला सम्बंधित अध्याय को पढ़ें तथा लीला चिंतन करें।

(७) यात्रा में २४ घंटे भगवन्नाम कीर्तन होता है। यात्रा करने आये हैं तो व्यर्थ की बात न करें और निरन्तर नाम में रूचि, आस्था एवं भाव रखें।

(८) अध्याय 'धामोपासना' के अनुसार यात्रा में तीन बार स्नान का नियम है। पवित्र कुण्डों में यथा शक्ति स्नान करें। यदि समयाभाव के कारण ऐसा न हो सके तो ब्रज की रज में लोटं लगायें। यह आचार्यों की आज्ञा है। उत्तम यह है कि उस ब्रज रज में लोटे जहाँ भक्तों ने नृत्य किया हो।

(९) स्त्रियों का मासिक धर्म यात्रा में व्यवधान नहीं है। ब्रज की रज में लोटें और भगवन्नाम में निरन्तर मग्न रहें। भगवन्नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मलेच्छ,

श्वपच, चाण्डाल और नीच से भी नीच प्राणी को सुलभ है तथा इसमें कोई रोक-टोक नहीं है।

(१०) इस ग्रन्थ में ब्रज की लीला स्थलियों, मन्दिरों, कुण्डों, पर्वतों एवं ऋषि स्थलों के प्रार्थना, आचमन एवं दर्शन मन्त्रों का उल्लेख है। ये सब जाग्रत मन्त्र हैं और इनका चमत्कार प्रत्यक्ष गोचर है।

महीभानुसुतायैव कीर्तिदायै नमो नमः ।
सर्वदा गोकुले वृद्धिं प्रयच्छ मम कांक्षितां ॥

(ब्र.भ.वि)

पूज्य बाबा महाराज बरसाने में यह मन्त्र बुलवाते हैं और उसका चमत्कार यह है कि आज माताजी गौशाला में २२,००० गौ हैं। इसलिये श्रद्धा पूर्वक भावनाओं से संयुक्त हो इन मन्त्रों का आह्वान ग्रन्थानुसार तत्-तत् लीला स्थलों पर पहुँच कर करें।

(११) उपरोक्त बाह्य नियमों के पालन का औचित्य तभी है जब अंतर्नियमों का पालन भी हो रहा हो। जैसे जीव तीन बार स्नान तो कर रहा है परन्तु नेत्रों से विषयों को भी ग्रहण कर रहा है। इस मिथ्या आचरण से बचें। हम प्रभु को धोखा नहीं दे सकते।

(१२) ब्रज यात्रा एक महायज्ञ है जिसमें भगवन्नाम की बहुलता है। इस नाम से जन्म-जन्मांतरों के पाप कटते हैं। उस अनन्त को प्राप्त करने के लिये एक जीव क्या साधन कर सकता है? जीव भगवन्नाम ले सके यह सिर्फ महापुरुषों की महती कृपा से ही प्राप्त होता है। अतः इस यात्रा का सम्पूर्ण आनन्द लें और सुधि पाठकगण दत्तचित्त होकर इस ग्रन्थ को पढ़ें व अधिकाधिक लीला लाभ प्राप्त करें।

भगवत् प्रीति

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥

(गीता.१८-६८)

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥

(गीता.१८-६९)

भगवान् प्रसन्न होते हैं जब जीव इस पथ पर चलता है परन्तु भगवान् उस जीव से अति प्रसन्न होतें हैं जब वो अन्य जीवों को भी अग्रसारित करता है।

ब्रज प्रेमी व ब्रज यात्रियों की चिरकाल की माँग ग्रन्थ रूप में परिपूर्ण हुई अतः अपरिसीम आनन्दानुभव हुआ।

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मंद मति की गति विथकित हो जाती है।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

(रा.बा.का.दोहा.३क)

पुनरपि

जो सुख होत गोपालहि गाये ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाये ।

(सू. वि. प.)

अथवा

रस सागर गोविन्द नाम है रसना जो तू गाये ।
तो जड़ जीव जनम की तेरी बिगड़ी हू बन जाये ॥
जनम-जनम की जाये मलिनता उज्ज्वलता आ जाये ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित - ब्र. भा. मा.से संग्रहीत)

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह लेख, मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पायेगा, अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में। सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य विभूति का प्रकर्ष आर्ष जीवन चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

(सू.वि. प.)

मलिन अन्तस् में सिद्ध संतों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया अतएव सार्वभौम महत्-वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे। ईश्वरीययोजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल (शुक्ल भगवान् जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को संतान सुख अप्राप्य रहा, संतान प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र कामना ने व्यथित किया। पुत्र प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया। शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

"यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।"

वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्प काल में अध्ययन समापन भी हो गया।

"**अल्पकाल विद्या बहु पायी**"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीतमार्तण्डों को। प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "**तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि**" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का। अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया, सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास स्थल पूज्यपाद का भी वनवास स्थान रहा। "**स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे**" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आंतक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार पाद-पदमों को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना।

मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया। मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है। बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए। श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरंतर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलंकृत युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न "श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान बरसाना, बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित गहवर वाटिका "**बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार**" और उस गहवरवन में भी महासदाशया मानिनी का मन-भावन मान-स्थान श्री मानमंदिर ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा। मानगढ़, ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है। उस समय तो यह बीहड़ स्थान दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मंदिर प्रांगण में न आने देता। मंदिर का आंतरिक मूल स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय?

भय को भगाकर भावना की – "**तस्कराणां पतये नमः**" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पंक के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी। ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे, इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोहदृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरुप जो ठहरे। फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया।

जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं। श्रीमन् चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज ३२ हजार गाँवों में, प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है। ब्रज के कृष्ण लीला सम्बंधित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के साथ-साथ सहस्त्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया। अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें, सन् २००९ में "राधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर, इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा। समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनामसंकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-गान हुआ, नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया। दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से

साम्राज्य सत्ता भी नत हो गयी। गौ वंश के रक्षार्थ गत ६ वर्ष पूर्व माता जी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज २२,००० गायों का मातृवत पालन हो रहा है। संग्रह-परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की भगवन्नाम ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है।

यही करुणा करना करुणामयी मम अंत होय बरसाने में ।
पावन गह्वरवन कुञ्ज निकट रज में रज होय मिलूँ ब्रज में ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित – ब्र.भा.मा. से संग्रहीत)

परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य संपादित किये, इन ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने, गत षष्टि (६०) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं। ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं। असंख्यों आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं, इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय। वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है। आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही संभव है। आपकी अनुपम कृतियाँ – **श्री रसिया रासेश्वरी**, **स्वर वंशी के शब्द नूपुर के**, **ब्रजभावमालिका**, **भक्तद्वय चरित्र** इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है। साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन। दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन अध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केंद्र बन गयी। सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं। ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है।

रस-सिद्ध-संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पायी। श्रीजी की यह गह्वर वाटिका जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस

अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग स्वस्तिवाचन कर रहा है। आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

प्रार्थना है अवतरित प्रीति-प्रतिमा विभूति से कि निज पादाम्बुजों का अनुगमन करने की शक्ति हम सबको प्रदान करें।

आपकी प्रेम प्रदायिका, परम पुनीता पद-रज-कणिका को पुनः-पुनः प्रणाम है।

कृपा इच्छुक भिक्षुक
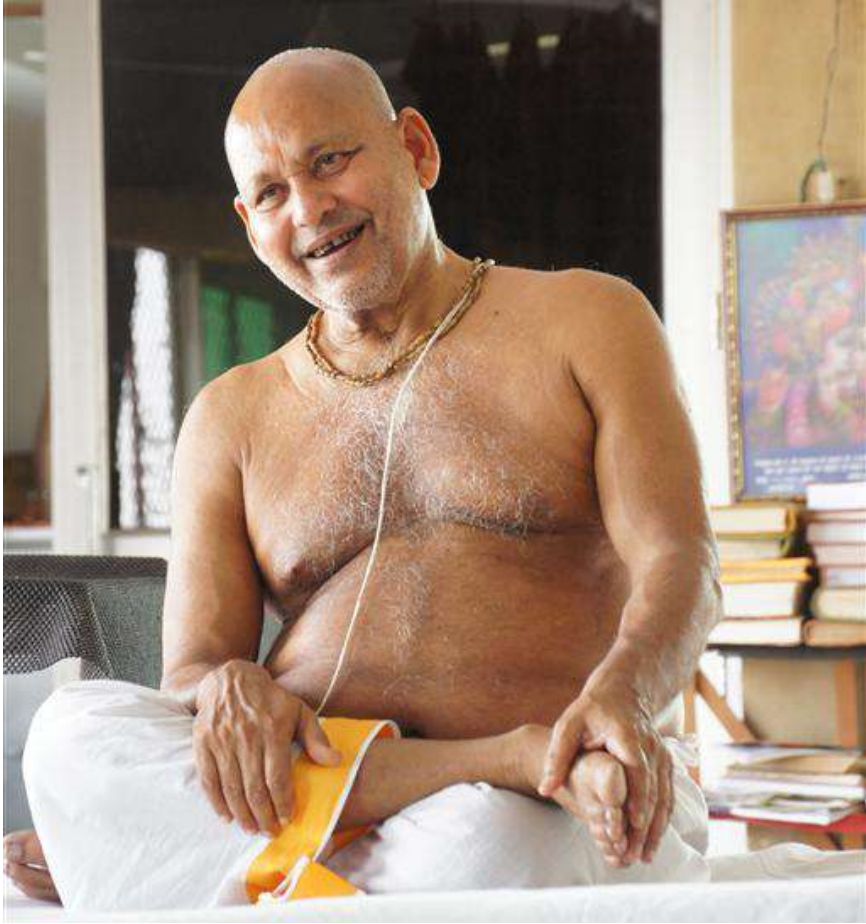
श्री रमेश बाबा महाराज

ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक, उद्धारक, उच्च कोटि के गायक, संगीत, नृत्य, संस्कृत के गूढ़ ज्ञाता एवं श्रीजी के परम कृपापात्र श्री रमेश बाबा जी विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों के भक्ति रहस्यों का सरल भाषा में विवेचन, महापुरुषों के पदों एवं भक्तों के चरित्रों का गायन त्रैकालिक सत्संग द्वारा प्रतिदिन गत ६० वर्षों से जनमानस को सुलभतापूर्वक उपलब्ध कराते आ रहे हैं। बाबाश्री की अन्तरंग स्थिति का अनुमान उनके द्वारा पदों की रचनाओं में तथा गायन से उद्बोधित होता है। बाबाश्री के गाये पदों को सुनने मात्र से ही अनेक जीवों में आमूल परिवर्तन होते देखा गया जो जीवनपर्यन्त साधनाओं द्वारा भी संभव नहीं – महापुरुषों के सत्संग का प्रभाव ही ऐसा है।

.... ब्रजगोपी वल्लभ नन्दनन्दन तुच्छ छाछ पर नाच रहे हैं क्योंकि गोपियों का ऐसा प्रेम भाव ही है, इसीलिये तो परमानन्द दास जी ने **'गोपियों को प्रेम की ध्वजा'** कहा।

"गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्" – अब कोई इसमें तर्क करे कि ऐसे ही छाछ दे देतीं; क्यों नचाया, क्यों लालच दिया? इस 'क्यों' का उत्तर नहीं है, ये लीला वैचित्री है, प्रेम में ये ही सब होता है। प्रेम सुप्तानन्द नहीं है, ब्रह्मानन्द को सुप्तानन्द बताया; प्रेम जाग्रत आनन्द है। प्रेम हँसता है, बोलता है, लीला करता है। ....

.... नारद जी गये एक बार ब्रज में – तो एक कुञ्ज में देखा कि एक गोपी बैठी ध्यान लगा रही है, तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि गोपी क्यों ध्यान लगा रही है? ध्यान आदि का फल तो प्रभु हैं, वह मिल गये तो बड़ा आश्चर्य है कि इसको ध्यान आदि लगाने, आँख बन्द करने की क्या जरूरत है?

थोड़ी देर में उठी तो नारद जी ने पूछ लिया कि "देवी ! आप ध्यान क्यों लगाती हैं? आपको तो साक्षात् कृष्ण प्राप्ति है।"

गोपी बोली – "नारद जी ! हमने सुना था कि निर्विकल्प समाधि होती है उसमें कुछ भी स्फुरणा नहीं होती है तो सोच रही हूँ कि निर्विकल्प समाधि लग जाए।"

नारद जी बोले – "क्यों?"

गोपी बोली – "कृष्ण को भुलाने के लिये, इसको हृदय से निकालने के लिये, यह हृदय से हटता नहीं है।"

(कौन समझ सकता है गोपियों का यह प्रच्छन्न प्रेम।) योगी कृष्ण को स्मरण करने के लिए प्रयत्न करते हैं और ये गोपी कृष्ण को भुलाने का प्रयत्न कर रही है। ये क्या है? प्रेम की लीला है।

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन्मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः ।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं वत पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति ॥

(श्रीविदग्ध माधव, द्वितीय अंक -६३)

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद् याम कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥

(भा. १०/२९/३४)

रास में कहते हैं श्री कृष्ण – "तुम जाओ घर।"

गोपियाँ बोलीं – "कैसे जाएँ? सारी इन्द्रियाँ चित्त के आधीन काम करती हैं, चित्त तो तुम्हारे पास है। हाथ आदि तुमने जकड़ लिए हमारे, जो हम घर का काम करती थीं, हमारे पाँव उठ ही नहीं रहे हैं, हम जाएँ कैसे?"

ये प्रेम की स्थिति है, प्रेम ने जड़ता उत्पन्न कर दिया; जाना चाहती हैं किन्तु नहीं जा सकती हैं। श्री कृष्ण कह रहे हैं –'जाओ' लेकिन नहीं जा सकतीं क्योंकि प्रेम ने जकड़ दिया है। प्रेम बलवान है तब ही तो कृष्ण को नचाता है। प्रेम बलवान है जो ब्रह्म को बाँध देता है। श्री कृष्ण कह रहे हैं – जाओ, बोलीं – हम जाना भी चाहती हैं, तुम्हारी बात मानना भी चाहती हैं लेकिन हमारे पाँव नहीं चलते हैं।

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥

(भा. ११/०२/५५)

प्रणय (प्रेम) की रस्सी से भगवान् के हाथ – पाँव दोनों बँध जाते हैं, इतना बलवान है प्रेम और वह श्रीकृष्ण की स्वरूपाशक्ति श्रीराधिकारानी का ही स्वरूप है, तभी तो श्रीजी के आधीन रहते हैं श्री कृष्ण। प्रेम इतना बलवान है कि गोपीजनों को तो छोड़ दो, दुर्वासा जी से भगवान् ने कहा कि दुर्वासा जी ! लोग कहते हैं कि भगवान् स्वतन्त्र है (ईश्वर किसी के आधीन नहीं है); ऐसा नहीं है।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

(भा. ०९/०४/६३)

मुझसे ज्यादा तो पराधीन कोई नहीं होगा, मैं पराधीन हूँ भक्तों के, स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरा हृदय भी भक्तों ने काबू में कर लिया है। फिर गोपीजनों के प्रेम की तो बात ही क्या है? (गोपियाँ प्रेम की सीमा हैं) इसीलिए **गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्** गोपियाँ छोटी-छोटी चीजों (छाछ आदि) का लालच देकर श्री कृष्ण को नचाती हैं; छाछ कोई मूल्यवान वस्तु है !

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित् ।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥

(भा. १०/११/०७)

गोपियाँ कृष्ण को नचाने के लिए चकई-चकवा आदि छोटे-छोटे खिलौनों का लालच देती हैं –

नन्द के तोय खिलौना लै दूँगी, मेरे अँगना में मुरली बजाय ।

ये 'स्तोभितो' शब्द का अर्थ है, (गोपी श्रीकृष्ण को) लालच दे रही है। श्री कृष्ण नाचते हैं, वंशी बजाते हैं; खिलौना जब लेने आते हैं तो (गोपी) हाथ ऊपर कर लेती है कि अभी खिलौना नहीं दूँगी और नाच।

मैं दूँगी तोय माखन-मिश्री लाला, मेरे संग-संग ठुमके लगाय ॥
मैं दधि बेचन जाऊँ वृन्दावन, मोहि मिलियो कदम्ब की छाँय ।
चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छवि, मैं तेरी बलि जाऊँ ॥

स्तोभितो – लालच दे रही है। पूर्णकाम, आप्तकाम, सत्यकाम, आत्माराम में ये '**प्रेमा शक्ति**' क्षुधा उत्पन्न कर देती है भक्तों की प्रेम भावनाओं का आस्वादन करने के लिए। ...[1]

---

[1] श्री रमेश बाबा जी महाराज ने उपरोक्त संदर्भित सत्संग दि. २७-सितम्बर-२००७ को सांयकालीन सभा में वल्लभ सम्प्रदाय में अष्टछाप के महाकवि श्री परमानन्द दास जी द्वारा रचित पद "नन्द के तोय खिलौना लै दूँगी" की व्याख्या स्वरुप प्रदान किया। मात्र पढ़ कर सत्संग का रस प्राप्त होना संभव नहीं हैं अतएव इस रस को प्राप्त करने के लिये उपरोक्त व्याख्या स्वयं बाबाश्री की वाणी में यहाँ http://www.maanmandir.org/wp-content/uploads/rsn-27-09-2007.mp3 सुनें।

बाबाश्री महाराज का विगत कई वर्षों का सत्संग आप http://satsang.maanmandir.org पर सुन सकते हैं। सत्संग द्वारा अपने जीवन के बचे हुए वर्षों का सदुपयोग भगवद् प्राप्ति में कर सकते हैं। सत्संग का आत्मसात् होना बिना भगवद् कृपा के संभव नहीं हैं। अनन्त जन्मों के संचित पाप सत्संग सुनने में बाधा पहुँचाते हैं परन्तु महापुरुषों की वाणी का एक शब्द ही अनन्त पापों को काटने में समर्थ है, बस जरुरत है श्रद्धा एवं निष्ठा की।

क्या जाने बाबाश्री द्वारा कही हुई कोई पंक्ति आपके जीवन की धारा ही बदल दे। अन्यथा जीवन पर्यन्त मात्र घंटी हिलाने एवं मिथ्या साधन या साधन के अहंकार में (मैंने इतना जप किया या इतना पाठ किया) प्राणी की विचारधारा में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं होता और मनुष्य में काम, क्रोध एवं लोभ का प्रकोप निरंतर बना रहता है।

बाबाश्री के शब्दों में – "कोई पंडित बनता है, कोई ज्ञानी बनता है, किसी ने जीवन में बहुत बड़ा नाम कमा लिया है परन्तु जा कहाँ रहा है – अनन्त अन्धकार की ओर।" प्राणी सन्मार्ग पर प्रदत्त होकर भी यह अभिमान कर बैठता है कि हम साधु हैं अथवा विरक्त हैं या अज्ञानवश सेवा को क्रिया समझ कर एक कोल्हू के बैल की तरह जीवन पर्यन्त लगा ही रहता है।

महापुरुष यह ज्ञान कराते हैं कि सेवा कोई क्रिया नहीं वरन् भाव है तथा भक्त को भावसिद्धि के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। तिलक धारण कर, कंठी पहनने से, कर्णमन्त्र प्राप्त करने से, वेश बदलने पर भी यदि भाव में परिवर्तन नहीं हुआ तथा काम, क्रोध, लोभादि अनर्थों का नाश नहीं हुआ तो हम मात्र 'वेश के साधु' हुए और इस कलियुग में यह सर्वत्र दर्शित है।

हिमालय की कंदराओं में व जंगलों में उन महापुरुषों को खोजने की जरूरत नहीं है, बस जरुरत है तो सिर्फ इस ज्ञान को प्राप्त करने की – जो बाबाश्री द्वारा सत्संग के माध्यम से सुलभता पूर्वक उपलब्ध है। जरा सी कोशिश करके तो देखिये, और जब आप कुछ समय बाद अपने अतीत में झाँकेंगे तब यह अहसास होगा – "अरे ! मेरा जीवन किस अन्धकार की ओर जा रहा था।"

समय-समय पर भगवान् अपने परिकरों को, निरपेक्ष संतो के रूप में इस धरा पर प्राणियों में भक्ति संचार के लिये भेजते हैं – "बाबाश्री के सत्संग का रस - लूट सको तो लूट लो !" बहुत ही सहज एवं सरल मार्ग है परन्तु बिना कृपा के सम्भव नहीं है। उन निरपेक्ष संतो के पास जाओ जो इस कृपा को मुफ्त में लुटाते हैं।
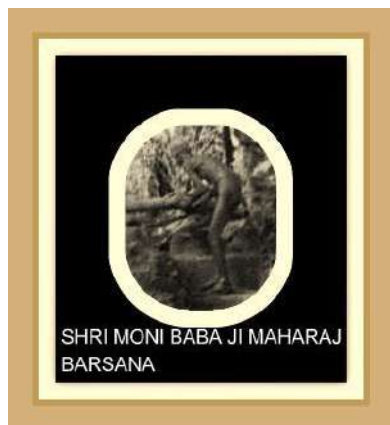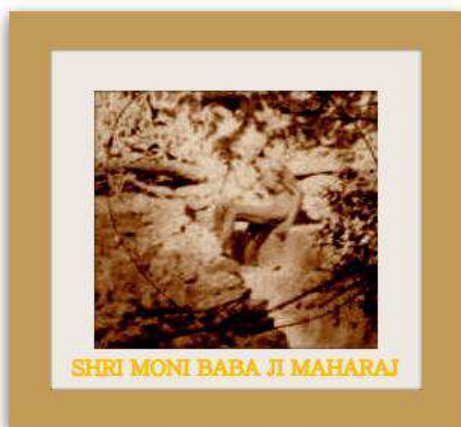
श्री मौनी बाबा महाराज

श्री मौनी बाबा महाराज जी के शरीर से प्रत्यक्ष अग्नि प्रकट हुई। लताओं-पताओं के गिरे हुए पत्तों को घोल कर पी जाते थे और जीवन पर्यन्त गहवर वन में अनन्य भजन किया। अति विलक्षण उच्च कोटि के असंग्रही महात्मा श्री मौनी जी महाराज इस गह्वर वन के एक दुर्लभ पुष्प थे।

श्री प्रिया शरण बाबा महाराज

विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, युग्म युगल रसतत्व का विस्तृत, अगोचर, असमोर्ध्व रसमय निगूढ़ात्मक ग्रन्थ श्री महावाणी का विवेचन करने वालें एवं प्राकट्यकर्ता अनन्त श्री सम्पन्न "श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से श्री रमेश बाबा महाराज ने शिष्यत्व ग्रहण किया। आपकी वाङ्गमय प्रतिभा इतनी असाधारण थी कि जब आप गहनतम रसयुत विषयों पर बोलने लगते तो बड़े-बड़े एकांत साधनरत विद्वज्जन अपनी कुटिया को त्यागकर कर्णों को श्रवणानन्द देने को बाध्य हो जाते।
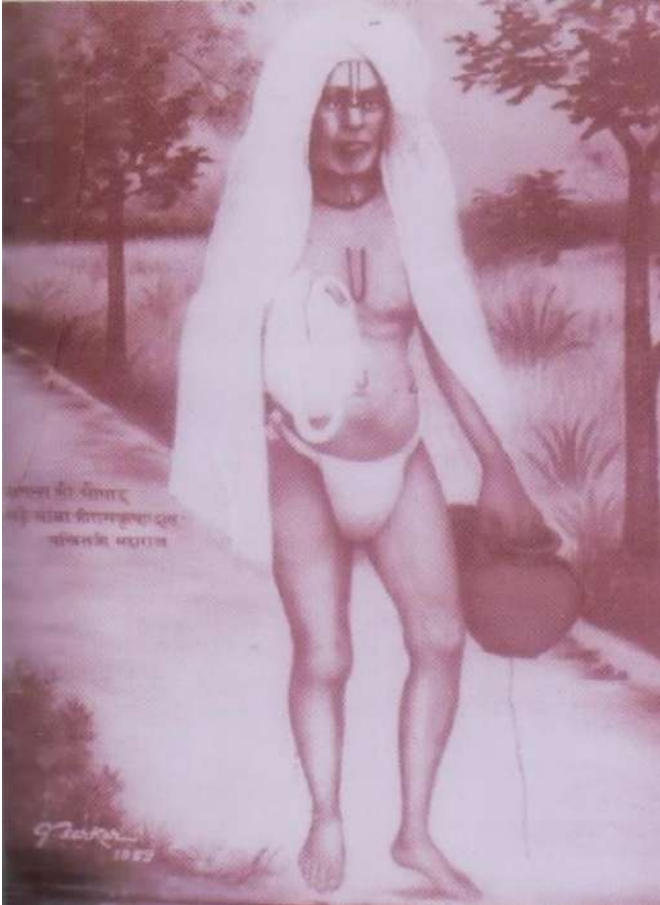
पण्डित श्री रामकृष्ण बाबा महाराज

गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के महान सूर्य पं. बाबा श्री राम कृष्ण दास जी महाराज के प्रधान साधकों में, श्री रमेश बाबा महाराज के पूज्य गुरु श्री प्रिया शरण जी महाराज थे। सन् १९२९ में गांधी जी और लौह पुरुष बल्लभ भाई पटेल, महापुरुष पं. बाबा के पास आये थे, उस समय पूज्य श्री प्रिया शरण जी महाराज भी उनके समीप ही आसीन थे। गांधी जी का प्रश्न था, (पं.बाबा से) “१८५७ के पूर्व से प्रारम्भ भारत स्वतंत्रता का आंदोलन चल रहा है अभी तक अनवरत प्रयास के बाद भी सफलता क्यों नहीं दिखाई देती?" पं. बाबा का उत्तर – "बिना नाम संकीर्तन के सिद्धि सम्भव नहीं है।" महद् मुख से निःसृत कथन आत्मस्थ हो गया गांधी जी को। ब्रज से प्रत्यागमन करते ही “रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम” कीर्तनारम्भ किया और १९४७ में स्वतंत्रता आन्दोलन की सफलता सर्वसमक्ष हो गयी।

श्री राधा रानी ब्रज यात्रा रसीली तथा पूर्ण रूपेण निःशुल्क हैं

श्री राधा रानी ब्रज यात्रा में बाबाश्री द्वारा प्रदत्त सतत् सत्संग

श्रीमाताजी गौशाला – जहाँ किसी प्रकार की गौ को लाने में रोक टोक नहीं हैं
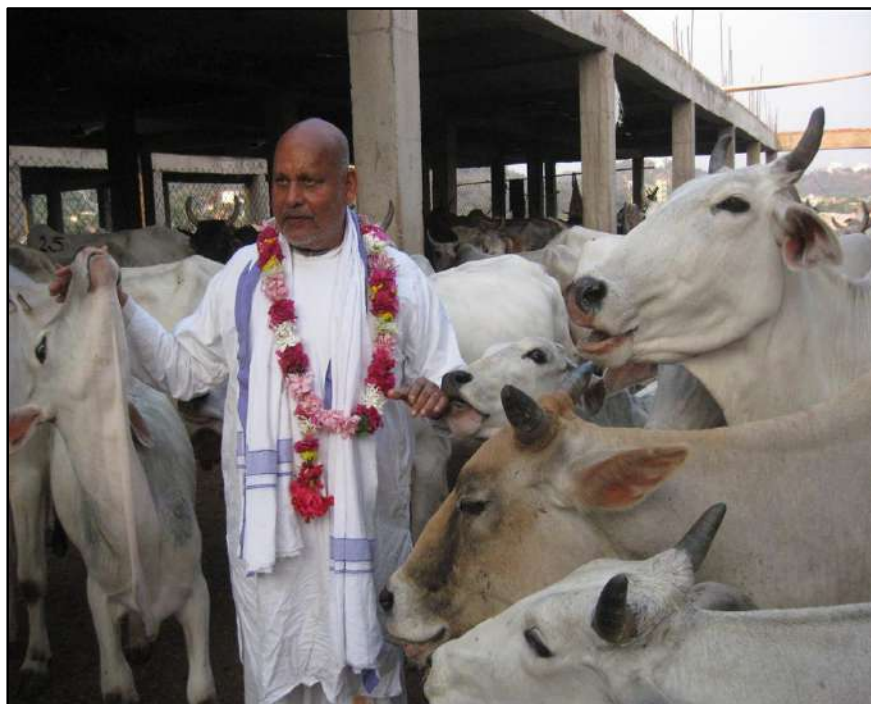
वत्सला को वात्सल्य देते बाबा महाराज

अध्याय – २

धामोपासना

ह्मरज का अपभ्रंश ही ब्रज रज है अतएव "रज में रज होय मिलूँ ब्रज में" इस आकांक्षा की पूर्ति हेतु अनेकानेक धाम के विज्ञवर्यों ने यहाँ आजन्म निष्ठा सहित वास किया।

ब्रज की रज में धूर बनूं मैं ऐसी कृपा करो महाराज ॥
धूर बनूं हरि चरनन पागूं उड़ उड़ के अंगन में लागूं
बार बार ये ही मैं माँगूं मोपै विहरैं श्याम राधिका सब दुख जावैं भाज ॥
कोमल चरन राधिका प्यारी उर धरि सेवैं छैल बिहारी
ऐसौ रस चरनन में भारी वाकूँ पाऊँ बनूं धन्य वृन्दावन रस सरताज ॥
रज में खेलैं रंग मचावैं रज में हिल मिल रास रचावैं
रज में फूलन सेज बिछावैं रज में करैं विलास जुगल मिलि जानैं रसिक समाज ॥
ब्रज की धूर श्याम को प्यारी खाई बालकृष्ण मुख डारी
धमकावैं जसुदा महतारी माखन दूध दही तज रोवै रज खावन के काज ॥

(रसिया रासेश्वरी)

भगवान् का नाम, रूप, लीला, गुण, जन, धाम, धामी सब एक ही हैं। भगवान् का अवतार होता है तो सभी का अवतार होता है। धाम का भी, उनके जनों का भी जैसे – 'गर्गसंहिता', गोलोक खण्ड के अनुसार ब्रह्मा, शिवादि ने गोलोक जाकर अवतार की प्रार्थना की।

करुणार्द्र श्री कृष्ण ने उसी क्षण स्वीकृति भी प्रदान कर दी किन्तु गमनोद्यत श्रीकृष्ण को देखकर अनल्प दया वर्षिणी श्रीराधा अवाञ्छित वियोग की आशंका से मूर्च्छित हो गईं क्योंकि यह विछोह उनके लिए सर्वथा असह्य था।

श्रीजी को व्याकुल देखकर श्रीकृष्ण बोले – "अदभ्रसुदये ! तुम भी साथ ही प्रस्थान करो।" तब श्रीजी ने कहा –

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ॥

(ग.सं.गो.खं.३/३२)

"जहाँ श्री वृन्दावन नहीं है, जहाँ तपन-तनया यमुना नहीं है, जहाँ श्री गिरिराज गोवर्धन नहीं है, वहाँ मेरा मन किसी भी प्रकार स्वस्थ प्रसन्न नहीं रहेगा।" ब्रज इनका निज-निकेतन है, जो इन्हें निज प्राण तुल्य प्रिय है। अतः श्याम-स्वामिनी ने स्पष्ट मना कर दिया, तब श्रीजी के प्रसन्नतार्थ ८४ कोस की सम्पूर्ण वसुधा श्री गिरिराज जी, श्रीयमुनाजी को प्रभु ने धरा पर भेजा।

वेदनागक्रोशभूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिःस्वयम् ।
गोवर्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ॥

(ग.सं.गो.खं.३/३३)

इस प्रकार धरा पर धामी के पूर्व धाम का अवतरण हुआ, धाम के साथ-साथ नन्द-यशोदा, वृषभानु-कीर्ति, सखा-समुदाय, समस्त परिकर का अवतार हुआ है। यह चर्चा 'गर्गसंहिता' में दो बार हुई है, प्रथम तो गोलोक खण्ड अध्याय-३ में, पुनः वृन्दावन खण्ड अध्याय-२ में।

धामी से धाम श्रेष्ठ

जिस प्रकार प्रेमिल एवं भावुक समाज नामी से नाम को श्रेष्ठ कहता है।

"कहउँ नामु बड़ राम तें निज विचार अनुसार"

(रा.चरि.बा.का-२३)

अथवा – प्रभु के जनों को प्रभु से श्रेष्ठ मानते हैं, स्वयं भगवद्वाक्य है – **'मद्भक्त पूजाभ्यधिका'** (भा.११/१९/२१) उसी प्रकार सच्चे भावुक धाम को धामी से श्रेष्ठ मानते हैं।

"विपिनराज सीमा के बाहर हरिहू को न निहार"

(श्रीभट्ट जी)

वृन्दारण्यं त्यजेति प्रवदति यदि कोऽप्यस्य जिह्वां छिनद्मि ।
श्रीमद्वृन्दावनान्मां यदि नयति बलात् कोऽपि तं हन्म्यवश्यम् ॥
कामं वेश्यामुपेयां न खलु परिणयायान्यतो यामि कामं ।
चौर्यं कुर्यां धनार्थं न तु चलति पदं हन्त वृन्दावनान्मे ॥

(शतक२/१५)

यदि कोई वृन्दावन त्याग की चर्चा भी करेगा तो उसकी जिह्वा काट लूँगा। बलात् वृन्दावन के बाहर ले जाएगा तो उसे समाप्त कर डालूँगा। भोगेच्छा होने पर भले ही वेश्या का संग कर लूँगा किन्तु विवाह के लिए अन्यत्र नहीं जाऊँगा । धन के लिए चोरी भी कर लूँगा किन्तु वृन्दावन से बाहर एक पग भी नहीं जाऊँगा।

स्वयं श्री भगवान् का कथन है –

"पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकं"

(बृ.गौ.तं)

धाम साक्षात् भगवद् रूप है। भागवतकार का भी यही कथन है –

"हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप"

(भा.१०/५/१८)

यह ब्रजमंडल ३ विशेष कारणों से रमा का आक्रीड स्थल बना।

१. हरेर्निवास – भगवान् का नित्य निवास होने से।
२. आत्म – भगवान् का शरीर होने से।
३. गुण – उन्हीं के समान गुणवान होने से।

और भक्ति देवी ने तो यहाँ तक कह दिया –

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्॥

(भा.मा.१/५०)

"कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात होते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त हुई, मैं जब वृन्दावन पहुँची तब से पुनः परम सुन्दरी-सुरुपवती-नवयुवती हो गई हूँ।"

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च॥

(भा.मा.१/६१)

इसी बात को नारद जी कहते हैं कि यह वृन्दावन धाम धन्य है, जिसके संयोग से भक्ति नवीन तरुणावस्था को प्राप्त हो नृत्य कर रही है।

धाम महिमा

महावाणी में धाम महिमा –

यही है यही है भूलि भरमो न कोउ भूलि भरमे ते भव भटक मरिहौ।
लाड़िली लाल के नित्य सुखसार बिन कौन विधि वार ते पार परिहौ॥
एक अनन्य की टेक उर में धरौ, परिहरौ भर्म ज्यौ फूल फरिहौ।
'श्रीहरिप्रिया' के परमपद पास ही, आसु अनिवास ही वास करिहौ॥

(महावाणी-२९५)

छीत स्वामी जी ने भी इसी ब्रज भूमि की याचना की है –

अहो विधना तोपैं अँचरा पसारि माँगौं, जनमु-जनमु दीजै याही ब्रज बसिबौ।
अहीर की जाति, समीप नंद घर घरी घरी स्याम हेरि हेरि हँसिवौ ॥
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिनि में, झक झोरनि अंग-अंग को परसिवौ ।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल, सरद रैनि रस-रास कौ बिलसिवौ ॥

गोविन्द स्वामी की ब्रज निष्ठा –

कहा करों वैकुण्ठहि जाय ।
जहां नहीं वंशीवट यमुना गिरिगोवर्धन नन्द की गाय ॥
जहां नहीं यह कुंज लता द्रुम मंद सुगन्ध बहत नहिं वाय ।
कोकिल हंस मोर नहिं कूजत, ताको बसिबो काहि सुहाय ॥
जहाँ नहीं वंशी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाय ।
प्रेम पुलक रोमांच न उपजत, मन वच क्रम आवत नहीं धाय ॥
जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन, बाबा नन्द यशोमति माय ।
'गोविन्द' प्रभु तजि नन्द सुवन को, ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय ॥

"जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि"

(भा. १०/३१/१)

तभी तो इंदिरा भी शश्वदाश्रय लिए बैठी हैं।

ब्रह्मा जी से प्रसन्न होकर तो प्रभु ने अपना निगूढ़ रहस्य स्पष्ट कर दिया –

श्री भगवानुवाच –
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥

(भा. २/९/३१)

यावानहं – जितना मैं हूँ, "मैं" से तात्पर्य मेरा धाम एवं मेरा परिकर। यथाभाव – नित्य सत्ता भगवान् का रूप, गुण और लीलाएँ ये सब भी स्वयं भगवान् हैं। **माता कुन्ती ने कहा – "भगवल्लीला गाने से अतिशीघ्र भगवद् प्राप्ति हो जाती है"** और इस लीला की निष्पत्ति धाम एवं परिकर के बिना अशक्य ही है। अतएव कारुण्य-कल्लोलिनी-रासोत्सवोल्लासिनी श्रीराधा की अमित कृपा-दया से ही धाम का धरा पर अवतरण हुआ। जिस समय वाराह प्रभु के दन्ताग्र पर पृथ्वी स्थिर थी, पृथ्वी ने प्रश्न किया – "प्रभो ! सम्पूर्ण संसार प्रलय जल से भरा हुआ है। अतः आप मुझे कहाँ स्थापित करेंगे? " प्रभु ने कहा – "जहाँ वृक्ष दिखाई देंगे, वहीं तुम्हारी स्थापना होगी," किन्तु "प्रभो ! मेरे बिना वृक्ष कहाँ होंगे? मैं ही तो उनका एकमात्र आश्रय स्थान हूँ।

क्या कोई और भी धरणी है? " पृथ्वी ने पूछा, तब तक कुछ वृक्षावली दिखाई पड़ी, "यह कौन सा स्थान है प्रभो !" सविस्मित पृथ्वी ने पूछा –

माथुरं मंडलं दिव्यं दृश्यतेऽग्रे नितंबिनि ।
गोलोकभूमिसंयुक्तं प्रलयेऽपि न संहृतम् ॥

(ग.सं.१/५३)

श्री भगवान् बोले – **"यह मेरा ब्रज मण्डल है। जो गोलोक से संयुक्त है। प्रलय में भी इसका संहार नहीं होता है।"**

फणि पर रवि तर नहिं विराट महँ नहिं सन्ध्या नहिं प्रात ।
माया काल रहित नित नूतन कबहुँ नाहिं नसात ॥

(व्यासजी)

यह धाम मायातीत, कालातीत है, इसके आश्रय से मनुष्य भी कालातीत हो जाता है। सदा सुलभ होने से वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ है –

"अहो मधुपुरी रम्या वैकुण्ठाच्चगरीयसी"

(वा.पु.)

इस धाम के लिए भगवान् अपना नित्य धाम वैकुण्ठ भी त्याग देते हैं –

हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय ।
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥

(भा.मा.३/७३)

वैकुण्ठ अप्राप्य है किन्तु यह अवतरित धाम, ये पुरियाँ अप्राप्य नहीं हैं, ये सदा-सर्वदा सुलभ हैं। जिस प्रकार भगवान् जन-कल्याणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं –

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं ।
कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥

(रा.बा.का.१२२)

उसी प्रकार धाम पापात्माओं पर भी दया करता है –

ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृष्याश्च ये ।
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(रा.सु.नि.२६४)

ऐसे परमोदार धाम के अचिन्त्य माहात्म्य को समझ पाना भगवद्कृपैकगम्य है। **ब्रज में जो भी जीव हैं, उनका क्रोध, द्वेष जब सह लिया जाता है तो शीघ्र धाम वास मिल जाता है**। यह धाम ही नित्य धाम की प्राप्ति कराता है। यहाँ के निवास मात्र से अप्राप्य नित्य धाम सहज प्राप्त हो जाता है।

भगवद्वाक्य –

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं बासा ॥

(रा.उ.कां.४)

जीवों पर धाम महाराज की कृपासे नित्य धाम एवं नित्य लीला प्राप्ति सहज है –

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते ।
हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥

(छा.उप.१/६/६)

सुवर्णमय वह पुरुष जिसके केश इत्यादि सब कुछ चिन्मय हैं। नख-शिख पर्यन्त दिव्यत्व से आपूरित है। जिस प्रकार सूर्यलोक का धामी सूर्य दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार यहाँ धाम में भी धामी का चिन्मय स्वरूप दिव्य दृष्टिगोचर होता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म
यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥

(तैत्ती. उप. २/१/२)

परमे व्योमन् अर्थात् धाम, धाम में धाम के अधिदेव का रूप सगुण साकार होता है, धाम में जीव ब्रह्म के साथ दिव्य सौगन्ध्य, सौशब्द्य, सौस्पर्श्य आदि का उपभोग करता है। ऐसे धाम की महिमा दुष्प्रवेश है –

यद्राधा-पद-किंकरीकृतहृदां सम्यग्भवेद्गोचरं ध्येयं
नैव कदापि यद्धृदि विना तस्याः कृपा-स्पर्शतः ।
यत्प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि
तद्वृन्दावन दुष्प्रवेश्यमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥

(रा.सु.नि.२६५)

धामवास कदापि निष्फल नहीं जाता है। कल्पों के अन्तराल के उपरान्त भी इसके फल की प्राप्ति होती है, जैसे काकभुशुण्डि जी को हुई। दुर्भिक्ष के कारण एक बार ये उज्जैन चले गए। वहाँ शैवोपासना करने लगे। साथ ही विष्णुद्रोह भी करने लगे। गुरु ने समझाया भी, विपरीतमति होने के कारण गुरु में ही अभावोत्पन्न हो गया। अनन्यता की ओट में संकीर्णता का पोषण एवं गुरुद्रोह करने लगे। एक समय गुरु को प्रणाम न किया। गुरु के परमोदार हृदय ने ध्यान भी न दिया किन्तु शशांकशेखर शम्भु इस अपराध पूर्ण संकीर्णता को सह न पाए और शाप दे दिया, "जा ! तामसी योनि में चला जा, एक हजार बार और जन्म-मरण को प्राप्त कर"। शाप से कोमल हृदय गुरु को संताप हुआ एवं उन्होंने रुद्राष्टक द्वारा शिव स्तुति की, साथ ही प्रार्थना की – "हे शम्भो ! यह बेचारा जीव है, आप इस पर कृपा करें, जिससे आपका शाप इसके लिए वर बन जाए।" गुरु की साधुता पर प्रसन्न हो

कर शम्भु ने कहा – "यह सहस्र बार जन्म-मृत्यु तो निश्चित पायेगा किन्तु उसके दुःसह कष्ट से उन्मुक्त हो जाएगा। इसके अतिरिक्त किसी भी जन्म में इसकी ज्ञान हानि नहीं होगी।"

काकभुशुण्डि से शिव वचन – "हे शूद्र ! कई कारणों से तुझे इस विशेष कृपा की प्राप्ति हुई है –

रघुपति पुरीं जन्म तब भयऊ ।
पुनि तैं मम सेवाँ मन दयऊ ॥

(रा.उ.का.१०९)

प्रथम तो तेरा जन्म धाम में, श्री राघवेन्द्र सरकार की पुरी में हुआ, द्वितीय तूने अपना मन मुझमें संजोया, धाम की कृपा एवं मेरी कृपा से तेरे हृदय में राम भक्ति का उदय होगा।" शाप के सहस्र वर्ष होने ही वाले थे। चरम शरीर में लोमश जी के शाप से कौआ बन गये किन्तु शाप का कोई प्रतिकार नहीं किया तब सप्रसन्न ऋषि ने राम मन्त्र देकर अनेकों दुर्लभ वर दिये। राम भक्ति का वर, इच्छा मृत्यु का वर, ज्ञान-वैराग्य के निधान होने का वर, जहाँ भी रहोगे, एक योजन पर्यन्त माया दूर देश में रहेगी, बिना श्रम के भगवच्चरित्र का सम्यक ज्ञान, तो इन सभी दुर्लभ वरों का मुख्य कारण धाम वास था। काकभुशुण्डि जी कहते हैं – "अब भी जब-जब अवधपुरी (अवतरित) धाम में प्रभु लीला करते हैं, मैं पहुँच कर दर्शनानन्द प्राप्त करता हूँ।"

जब जब अवधपुरीं रघुबीरा । धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ॥
तब तब जाइ राम पुर रहऊँ । सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ ॥

(रा.उ.कां.११४)

यह तो रामोपासना की चर्चा थी, कृष्णोपासना में भी हम देखते हैं। 'गर्गसंहिता' गिरिराज खण्ड में विजय ब्राह्मण की चर्चा हुई। एक राक्षस जो कि पूर्व जन्म में धनाढ्य वैश्य था। कई कल्पों तक कष्ट भोगने के पश्चात **गिरिराज जी की एक शिला स्पर्श से उसे भगवद्धाम की प्राप्ति हो गई**। (यह कथा आगे श्रीगिरिराज जी में सविस्तृत दी है) कथनाशय है कि धाम वास अमोघ है, यह कभी व्यर्थ नहीं जाता है। धाम वास का फल अवश्य मिलता है, यह अनेकों कल्पों के पश्चात् भी अपना प्रभाव दिखाता है। श्रीठाकुर जी का अवतार कृपापरवश होता है –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(भा.१०/३३/३७)

यहाँ 'तादृशी क्रीडा' से तात्पर्य है, प्रभु ऐसी लीला करते हैं, जिससे जीव तत्परता को प्राप्त हो जाए। यह रास लीला उनकी अनुग्रह लीला है। प्रभु भक्तों के लिए नाचते हैं, चोरी करते हैं, दधि दान लेते हैं, छेड़छाड़ करते हैं, भक्तों की चाकरी करते हैं। उत्तरा के घृणित गर्भ में प्रवेश करते हैं, माधव दास जैसे भक्तों की संग्रहणी में मल-मूत्र भी धोते हैं, भीलनी के जूठे बेरों को खाते हैं, ग्वालों की जूठन भी खाते हैं –

"ग्वालन कर ते कौर छुड़ावत
हा-हा करके मांग लेत हैं कहत मोहि अति भावत"

(सूरदासजी)

ये सब अनुग्रह लीलाएँ हैं। धामावतार उनकी कृपा लीला का पूरक है।

धाम का अवतार प्रभु की इच्छा पूर्ति हेतु होता है –

"चारि खानि जग जीव अपारा ।
अवध तजें तनु नहिं संसारा ॥"

(रा.बा.का.३५)

और प्रभु की इच्छा है कि जीव बिना श्रम के, बिना विलम्ब के मेरे समीप आ जाय।

ध्रुव स्तुति के अंतर्गत प्रभु को अनुग्रह कातर कहा गया –

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म
माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥

(भा.४/९/१७)

यहाँ प्रभु को वाश्रा कहा गया, वाश्रा (अलब्याई गाय) अपने सद्योत्पन्न वत्स की गर्भ से आई गन्दगियों को भी रूचि पूर्वक चाटती है और उसे शुभ्र बना देती है, उसे उन गन्दगियों को चाटने में भी आनन्दानुभूति होती है।

इसी प्रकार धाम जीव के अक्षम्य अपराधों को चाट जाता है। इस धाम ने जगत-जननी श्री सीता जी के निन्दक नर-नारियों के अक्षम्य पाप समूहों को नष्ट कर उन्हें शोक रहित करके गोद में रखा –

प्रनवउँ पुर नर-नारि बहोरी ।
ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥
सिय निंदक अघ ओघ नसाए ।
लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥

(रा.बा.कां.१६)

ब्रह्मा जी के भी ग्वाल-बाल एवं वत्स-हरण के पाप को धाम की परिक्रमा ने ही नष्ट किया था। **त्रिःपरिक्रम्य** – ब्रह्मा जी ने ब्रज की तीन परिक्रमायें कीं। (भा.१०/१४/४१)

"ब्रज परिक्रमा करहु देह को पाप नसावहु"

(सूरदास जी)

धामी से अधिक अनुग्रह, वात्सल्य पूर्ण है यह धाम। तभी तो प्रभु श्री राम ने कहा –

जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना।
बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ।
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

(रा.उ.का.४)

पुनः पुनः "वैकुण्ठाच्चपरात्परं" इसे कहा किन्तु इसकी यह अद्भुत महिमा अतर्क्य बुद्धि से ही गम्य है, असत् तर्क धाम महिमा ज्ञान का अवरोधक है –

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम्॥

(भा.२/६/४०)

तभी तो कहा – **"यह प्रसंग जानइ कोउ-कोऊ"।** सात्विक श्रद्धावान ही निस्तर्क विश्वास करता है। प्रत्येक कल्प में नित्य धाम का धरा पर जब अवतरण होता है तो वह पुरी रूप हो जाता है।

जैसे साकेत अवधपुरी हो गया –

राम धामदा पुरी सुहावनि।
लोक समस्त बिदित अति पावनि॥

(रा.बा.का.३५)

गोलोक मधुपुरी हो गया –

"अहो मधुपुरी धन्या बैकुण्ठाच्च गरीयसी"

(वा. पु.)

पुरी की कृपासे, पुरी के आश्रय से जीव भगवद् प्रियता प्राप्त कर लेता है।

श्री राम वाक्य –

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी।
मम धामदा पुरी सुख रासी॥

(रा.उ.का.४)

ये पुरियाँ नित्य धामदा हैं। धाम का अवतार केवल पापियों पर अनुग्रह करने के लिए होता है। यहाँ की पुनीत नदियों का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जल-पान ही पापों का मूलोच्छेद कर देता है –

दरस परस मज्जन अरु पाना।
हरइ पाप कह बेद पुराना॥

भगवती सरस्वती भी इस महिमा का स्वल्प सा वर्णन नहीं कर सकती हैं, फिर अन्य देव-नरों की तो चर्चा ही क्या?

नदी पुनीत अमित महिमा अति ।
कहि न सकइ सारदा बिमल मति ॥

(रा.बा.कां.३५)

कदा वा खेलन्तौ व्रजनगरवीथीषु हृदयं ।
हरन्तौ श्रीराधाव्रजपतिकुमारौ सुकृतिनः ॥
अकस्मात्कौमारे प्रकटनवकैशोरविभवौ ।
प्रपश्यन् पूर्णः स्यां रहसि परिहासादिनिरतौ ॥

(रा.सु.नि.६५)

परम पातकियों को भी प्रेमामृत-सार-सिन्धु प्रदान करने वाले इस धाम की बड़ी ही दुर्गम महिमा है। इन पुरियों के प्रभाव से पृथ्वी की कीर्ति कौमुदी चतुर्दिक में प्रसरित हो रही है।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥

(भा.१०/२१/१०)

पुरियों में लीला का विकास होता है। इसमें दुष्ट पापी लोग भी प्रवेश करते हैं और उनका कल्याण होता है। पुरी के श्रद्धा सहित सेवन से निश्चित नित्य धाम की प्राप्ति होती है।

सब विधि पुरी मनोहर जानी ।सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ॥

(रा.बा.कां.३५)

पृथ्वी पर धाम का पुरी रूप में अवतार एक निश्चित स्थान पर होता है। जिस समय श्री भरत जी राम राज्याभिषेक के लिए अनेकानेक तीर्थ व समुद्रों का जल लेकर चित्रकूट पहुँचे तो प्रभु ने अभिषेक स्वीकार नहीं किया।

प्रश्न हुआ कि अब तीर्थ जल को कहाँ रखा जाय? तब वहाँ अत्रि मुनि ने कहा –

अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप ।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप ॥

(रा.अयो.कां.३०९)

"इस गिरि के समीप एक सुन्दर कूप है, उसमें यह अमृततुल्य तीर्थ जल को स्थापित कर दो।" वही कूप 'भरतकूप' नाम से प्रसिद्ध हुआ –

तात अनादि सिद्ध थल एहू । लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥

(रा.अयो.का.३१०)

यह अनादि सिद्ध स्थान है, काल प्रभाव से यह लुप्त हो गया था, अतः इसे कोई नहीं जानता था अर्थात् ये पुरियाँ अथवा लीला भूमियाँ लुप्त भी हो जाती हैं, पृथ्वी पर होने से तब उन्हें सिद्ध महज्जन प्रकट करते हैं। इसी प्रकार ब्रज भूमि जो कि कई बार लुप्त हुई, जिसे समय समय पर महापुरुषों ने, आचार्यों ने प्रकट किया, जो अनादि सिद्ध स्थल हैं, उसे दूसरे किसी भी स्थान पर नहीं रखा जा सकता है। जैसे भरत जी ने वह तीर्थ जल अन्यत्र स्थापित न करके भरत कूप में ही स्थापित किया।

रज माहात्म्य

श्रीआद्य शंकराचार्य

शंकरावतार आद्य शंकराचार्य जी ने जिस समय भारत भूमि में भक्ति की पुनीत मंदाकिनी प्रवाहित की, जिससे जन-जन का मानस पंकज आप्लावित हो गया। आपके कृष्ण भक्ति प्रचार प्रसार के विषय में भक्तमाल जी के प्रणयन कर्ता श्री नाभा जी महाराज कहते हैं – **"कलियुग धर्म पालक प्रगट आचारज शंकर सुभट"** एवं भक्तमाल जी के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीप्रिया दास जी का कथन है – **"विमुख समूह लैके किये सनमुख स्याम अति अभिराम लीला जग विसतारी है।"**

अपने सुदिव्य प्रभाव से भगवद् विमुखों को हरि भक्त (वैष्णव) बना दिया। नास्तिक वाद का खंडन करके कृष्ण लीला का विस्तार किया। आपके द्वारा रचित "**भज गोविन्दं भज गोविन्दं**" (चर्पट पंजरिका) मोहमुद्गर में तो आद्य शंकराचार्य जी ने ब्रजराज श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रतिपादन करते हुए कृष्ण भक्ति की शिक्षा पर विशेष प्रकाश डाला एवं "प्रबोध सुधाकर" नामक ग्रन्थ में तो आपने स्पष्ट रूप से परतत्व के रूप में साक्षात् श्रीकृष्ण की ही महिमा का निरूपण किया है –

यद्यपि साकारोऽप्यं तथैकदेशी विभाति यदुनाथः ।
सर्वगतः सर्वात्मा तथाप्ययं सच्चिदानन्दः ॥

(प्रबोध सुधाकर)

भारत अटन करते हुए जब आप शिष्यों सहित ब्रज भूमि के निकट आये तो एक विलक्षण नियमोल्लङ्घन आपने किया। यात्रा काल में जहाँ भी आचार्य पाद विराजते, आसीन होने के पूर्व सेवक शिष्यों द्वारा उतना भूमि भाग खोदा जाता, लीपा जाता, जल से सिंचित किया जाता, रज शुद्धि की दृष्टि से किन्तु जब ब्रज देश की ओर बढ़े तो आद्याचार्य ने भूमि-खनन निषेध कर दिया। शिष्य समाज विस्मयान्वित था, गुरुदेव को क्या हो गया है? चलो भूमि खनन नहीं तो भूमि मार्जन तो कर दें। परिमार्जित भूमि पर आसीन हो गये। ब्रज के और निकट पहुँचे तो भूमि मार्जन भी निषेध कर दिया, जल सिंचित भूमि पर बैठ जाते।

ब्रज की पावन अवनि में जब प्रवेश हुआ तो रसमय ब्रह्म के नवीन फेन से फेनिल हो उठा हृत्पटल, "अब जल सिंचन की भी आवश्यकता नहीं है" कहकर चारों ओर ब्रज रज में लोटपोट होने लगे।

शिष्य वृन्द – "गुरुदेव ! आप यह क्या कर रहे हैं? " शिष्यों के पूछने पर कृष्ण भाव-भावित यति की वाणी मुखरित हो उठी एवं उत्तर रूप में बहुत सुन्दर गोविन्दाष्टक गाया –

"गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम्"

(गोविन्दाष्टकम्)

"अरे, ब्रह्मचरणकंज की किंजल्क कणिका से अभिषिक्त यह शुचितम ब्रज रज सुरेन्द्राद्यभिलषित है।" (देवता भी जिसे चाहते हैं)।

श्रीमद् वल्लभाचार्य

चौरासी वैष्णव वार्ता जी में पुष्टि सिद्धान्ताचार्य "श्रीमद् वल्लभ महाप्रभुजी" ने भी यही मत सुस्पष्ट प्रकट किया।

एक समय आचार्यपाद ब्रज में पधारे, साथ में भगवदीय प्रभुदास जलोटा थे। श्री गोवर्धन में आकर गोपाल लाल को स्थल भोग लगाया एवं प्रभुदास जी को आज्ञा की – "यह प्रसाद आप पा लो।" प्रभुदास जी बोले – "जै जै ! मैंने स्नान नहीं किया है।" सुनकर आचार्य पाद सस्मित मुख बोले –

वृक्षे वृक्षे वेणुधारी पत्रे पत्रे चतुर्भुजः ।
यत्र वृन्दावन तत्र लक्ष्यालक्ष्यकथा कुतः ॥
जलादपि रजः पुण्यं रजसोऽपि जलं वरम् ।
यत्र वृन्दावनं तत्र स्नात्वास्नात्वाकथा कुतः ॥

(चौरासी वैष्णव वार्ता)

ब्रज स्वरूप लोचन गोचर कराया – "प्रभुदास ! देखो यहाँ वृक्ष-वृक्ष पर वेणु धारी विराजमान हैं एवं प्रत्येक पत्र पर चतुर्भुज (ऐश्वर्यमय दर्शन) वृन्दावन में ग्राह्य-त्याज्य ही निषिद्ध है, जल से रज श्रेष्ट है और रज से जल। अतः यहाँ स्नान-अस्नान विचारणीय नहीं है, लो यह प्रभु प्रसाद ग्रहण करो।" आचार्यपाद ने बिना स्नान किये ही प्रभुदास जलोटा को प्रसाद पाने की आज्ञा दी –

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥

(भा.१०/८/२२)

इस रज में परब्रह्म मैया द्वारा स्नान कराने पर भी लुटलुटी लगाता है फिर अन्य कोई कर्मकाण्ड विचार की कहाँ आवश्यकता?

विदुर जी की ब्रज यात्रा

पुरेष्वितिमथुरादिनगरेषु परमेश्वरक्रीडास्थानत्वात् गोकुलनिकट वृन्दावनाद्युपवनानिअद्रिर्गोवर्द्धनादिः कुंजा मिलतागृहाःसर्वाण्येतानि भगवत्संबंधात्पुण्यजनकान्यपि भक्तिजनकानिअपंकतोयेष्विति कृष्णजलक्रीड़ादियोग्येषुसरितांसरस्सुकालीयादिहृदेषुपर्यटने निमित्तमनंतमूर्तेरासादिक्रीडनचिन्हैःसम्यगलंकृतेषुजलस्थलप्रधानेष्वे -काकीचरतिस्मेत्यर्थः ॥

(भा.३/१/१८.सुबोधिनी)

आनन्दकन्द परमानन्द ब्रजेन्द्रनन्दन की नित्य लीला भूमि के मथुरादि नगर, वृन्दावनादि पुण्योपवन, गोवर्धनादि पर्वत, गह्वरादि कुञ्ज (जोकि श्रीजी-ठाकुरजी की मिलन स्थली है) श्रीकृष्ण के यमुनादि जल क्रीड़ास्थल के सेवन से पुण्योपलब्धि के साथ भगवद्भक्ति की भी प्राप्ति होती है। अन्य तीर्थ पुण्य प्रदान करने वाले हैं किन्तु ब्रजधाम ठाकुर जी से नित्य सम्बद्ध होने के कारण पुण्य जनक तो है ही, भक्तिजनक भी है। इन सभी ब्रज तीर्थों में विदुरजी ने भ्रमण किया। अनन्तर, अपंकतोय जहाँ सुन्दर जल है –

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःप्रख्यपयःसरस्वता ।
वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे ॥

(भा.१०/१५/३)

जिस प्रकार महात्माओं का मन निर्मल होता है, उसी प्रकार सब सरोवरों का जल निर्मल है, जिसे देखकर प्रभु प्रसन्न हो रहे हैं।

कालिय हृदादि ये सब ठाकुर जी की जल क्रीड़ा के योग्य स्थान हैं। ठाकुर जी की रासादि क्रीड़ाओं से अलंकृत चरण चिन्ह पहाड़ी पर हैं।

"श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः"

(भा.१०/४७/५०)

ब्रज का कण-कण श्री कृष्ण चरणों से चिन्हित है, इन सभी स्थलों पर कुरुश्रेष्ठ विदुर जी ने रमण किया।

तीर्थों के दो प्रकार बताये –

१. जल प्रधान
२. स्थल प्रधान।

जल प्रधान – यमुना जी ...आदि। स्थल प्रधान – वृन्दावन, बरसाना ... आदि।

सर्वत्र विदुरजी ने अन्तर्बाह्य नियम ग्रहण कर उनका निर्वहन कर एकाकी अटन किया।

यात्रा के अन्तर्बाह्य नियम

कृष्णप्राप्त्यभावाद्विरहेणतत्प्राप्तय एव व्रतानि कृतवान् अत्रैवंक्रमः अन्वेषणार्थप्रथमंपर्यटनं ततों तर्वर्हिर्नियमाःततोऽपिव्रतानि तत्रमध्येएकांतेध्यानाद्यर्थमुपवेशनादिरुपास्थितिर्यस्येति....वात्रिकालस्नानभूश यनाभ्यंगवर्जनादयस्त्रयोगुणादोषत्रयनिवारकाःनन्ववेकंरणेवन्धुभिः कथंन वद्धस्तत्राह अलक्षितःस्वैरितितत्रहेतुरवधूतवेषः कृत्रिमवेषधारीव्रतानि चत्वारिएकादश्याद्युपवासः सर्वभूतदया-यथालाभसंतोषः सर्वेंद्रियोपशमश्चेति एतानिभगवत्तोषहेतुभूतानि

(भा.३/१/१९.सुबो.)

यात्रा कैसे करें?

अनन्य होकर यात्रा करें।

अनन्य से तात्पर्य – "**अनन्यः सर्वत्र श्री कृष्णैकदृष्टि**"

दोष दृष्टि से तटस्थ हो सर्वत्र कृष्णैकदृष्टि रखें। अन्तःकरण को निर्मल करने वाले व्रतों का आधार लें।

श्री ठाकुर जी के लिए विरह भाव को हृदय में स्थापित करके अन्वेषण के निमित्त कृष्णदर्शन की लालसा से पर्यटन करें। कृष्ण प्राप्ति ही एकमात्र लक्ष्य करके कभी गोकुल गमन करें, कभी वृन्दावन तो कभी बरसाना आदि तीर्थों में। कभी एकान्त स्थान में ध्यान करें, ध्यान से तात्पर्य – भगवद् सेवा, स्मरण, कीर्तन, जप, पाठ आदि का आचरण। एक बार मेद्य (पवित्र) भोजन करें। त्रैकालिक स्नान करें, भूशयन करें।

अभ्यंग – शरीर का श्रृंगार, तेल लगाना, मालिशादि करना ये सब वर्जित है। यहाँ तीन गुण, तीन दोषों के निवारक हैं।

१. त्रैकालिक स्नान से अपावित्र्य की निवृत्ति।
२. मेद्याहार से प्रमाद की निवृत्ति ।
३. श्रृंगार न करने से देहाध्यास की निवृत्ति।
४. तीर्थाटन के उपयुक्त अवधूत वेष धारण करें।

प्रभु को जिनसे संतोष प्राप्त हो, ऐसे ४ व्रतों का पालन करें –

१. एकादशी उपवास तथा अन्य जो वैष्णव व्रत हैं।
२. सर्वभूतदया – प्राणीमात्र पर दया।

३. यथालाभ संतोष।
४. सर्वेन्द्रिय संयम।

ये समस्त व्रत भगवद् तोष के हेतुभूत हैं। अतः इन व्रतों का आचरण किया जाय।

यात्रा में सत्संग, उपासना (नामसंकीर्तन) परमावश्यक हैं। सभी नियम, सभी कर्म प्रभु के निमित्त ही सत्कर्म या सद्धर्म बनते हैं।

नारद उवाच –

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरुपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥

(भा.१/५/२२)

"तपश्चर्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान एवं दान इन सभी कर्मों का एक मात्र प्रयोजन उत्तम श्लोक प्रभु का यशोगान है।"

श्री ब्रह्मोवाच –

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्भ्रियते न यत्र॥

(भा.३/९/१३)

"प्रभु को अर्पित किया गया प्रत्येक कर्म अविनाशी हो जाता है, जो कि कभी नष्ट नहीं होता है और यही अविच्युत धर्म है। यज्ञ, दान, उत्कट तप, व्रतादि सभी साधनों का सबसे बड़ा फल प्रभु की प्रसन्नता है क्योंकि प्रभु के प्रसन्न होने पर कुछ भी तो असाध्य नहीं रह जाता। प्रभु को अर्पित किये बिना क्षेम प्राप्ति नहीं होती है।"

शुक उवाच –

सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात्।
महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः॥

(भा.२/६/१७)

"तप दानादि भी कल्याणकारक सिद्ध नहीं होंगे, यदि वे भगवदर्पित नहीं है तो।"

कृष्ण उवाच –

यत्करोषि तदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९/२७)

अतएव जो भी कुछ किया जाय – यज्ञ, दान, तपादि विशाल कर्म, भोजन करना, चलना-फिरना जैसे लघु एवं सामान्य कर्म भी भगवदर्पित हों। इसी प्रकार से यात्रा, संकीर्तन, अर्चनादि सभी आत्यंतिक क्षेम बन करके जीव को निर्भयता की प्राप्ति कराते हैं।

समर्पण भी प्रभु की समक्षता में होता है। वह भोगार्पण हो अथवा कर्मार्पण, यात्रा में भी अधिदैव की समक्ष अनुभूति हो, सासंगोपासना हो, तो यात्रा रसमयी बनती है।

प्रभु की सासंग-उपासना हो, सदैव उनका सानिध्य रहे, इसका क्या उपाय है? प्रत्यक्षानुभूति तो सबको नहीं हो रही है किन्तु यह संभव है क्योंकि नाम का अधिदैव नामी होता है और वही यज्ञाधिकारी बनाता है।

"नाम के श्रवण मात्र से अधिदैव की समक्षता प्राप्त हो जाती है।" नामी की समस्त शक्ति नाम में निहित है अतः नाम की प्राप्ति को अधिदैव की प्राप्ति समझें। अतएव समस्त मतों की सफलता "नाम संकीर्तन" में मानी है –

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥

(भा.८/२३/१६)

मन्त्रतस्तन्त्र .... और भी प्रकाश-स्तम्भ जाज्वल्यमान उदाहरण है – 'श्री मानमन्दिर' से "श्रीराधारानी ब्रज यात्रा"। गुरु मुख से जैसा श्रवण किया, आज से ७० वर्ष पूर्व ब्रज यात्राओं की बहुलता थी, रसमयता थी, वह आज नहीं रही। पद यात्राएँ हट करके कार यात्रा रह गयीं। इसका कारण शारीरिक दुर्बलता ही नहीं है अपितु भावनाओं की क्षीणता भी है। प्राचीन यात्राओं में पहले प्रत्येक वैष्णव **"श्री कृष्णः शरणं मम"** का जप या कीर्तन करता था, वह अब नहीं रहा। इष्ट का सानिध्य न होने से, सासंगाराधना न होने से रसमयता भी नहीं रही।

पूज्य श्री बाबा महाराज बताते हैं, आज से ७० वर्ष पूर्व स्वामी श्री हरिनाम दास जी महाराज (रमणरेती वाले) की यात्रा में कुछ कठोर नियम थे। अखण्ड हरिनाम संकीर्तन चलता था, अतः सभी साधु व यात्रियों को दो दो घंटे कीर्तन का नियम था। आज अधिकांश यात्राओं में इस नियम की अवहेलना से क्षीणता आ गई। अल्पवयस्क "श्रीराधारानी यात्रा" मात्र २४ वर्ष पुरानी है किन्तु रसालता के साथ-साथ सर्वप्रवृद्ध हो गई है चूंकि यहाँ यात्रियों को नाम से जोड़े रखा जाता है। श्री मन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने भी भगवन्नाम सान्निध्य को ही इष्ट सान्निध्य बताया –

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता
नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

(शिक्षाष्टक-२)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

इस महामन्त्र के अधिदैव भी श्री युगल सरकार हैं –

सर्वचेतोहरः कृष्णस्तस्य चित्तं हरत्यसौ ।
वैदग्धीसारविस्तारैरतो राधा हरा मता ॥

(श्री जीव गोस्वामी कृत महामन्त्र व्याख्या)

अपने लोकोत्तर सौन्दर्य से, सबके चित्त का हरण करने वाली, श्री हरि के भी चित्त को जो अपने चातुर्य से हर लेती हैं, वे हरा हैं। 'हरा' नाम होने के और भी अनेक कारण हैं, कतिपय यहाँ उद्धृत हैं – श्रीकृष्ण के द्वारा हरण होने से, श्रीकृष्ण को हरि-हरि पुकारने से, श्रीजी द्वारा मुरलिका का हरण होने से, भ्रत्यों का कष्ट हरण करने से एवं श्रीकृष्ण के धैर्य का हरण करने से भी इन्हें 'हरा' कहते हैं। 'हरा' का सम्बोधन ही हरे है। राधा नाम के श्रवण मात्र से जिनके अन्तस् का अनुरागार्णव अनन्त, अपरिसीम ऊर्मियों से उद्वेलित हो जाता, संतुलन खो बैठता, वे श्री चैतन्यदेव इसी कारण राधे को 'हरे' कहकर मन को संतुलित करते।

पद्मपुराणानुसार

शिवजी ने स्वयं नारद जी को कहा है – "देवर्षे ! परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्ण ने ही मुझे 'श्री युगल मन्त्र' का उपदेश किया है। एक समय कमलापति श्री नारायण भगवान् ने प्रसन्न होकर मुझे वर माँगने को कहा, तब मैंने अपना वाञ्छित वर माँग लिया, मुझे भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त हों, उन्होंने मुझे वृन्दावन जाने की आज्ञा की। वहाँ पहुँचने पर चतुर-सहचरी समुदाय से समावृत युगल-रसराज का दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ। जिनके नील-पीत वदनाम्बुजों की मिश्रित द्युति एक दिव्य हरिताभ ज्योति का सृजन कर रही थी। प्रसन्न मन श्रीहरि ने एक गोपन रहस्य खोला।" बोले – "हे रूद्र ! यदि तुम मुझे वश में करना चाहते हो तो मेरी प्राणेश्वरी का आश्रय लो एवं युगल मन्त्रोच्चारण करते हुए सदा मेरे इस धाम में वास करो" तब तक दया-धाम प्रभु मेरे दाहिने कर्ण में युगल मन्त्र का उपदेश देकर अन्तर्हित हो गए।

राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे ।
राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम राधे राधे ॥

(पद्मपुराण)

(रूद्र को कृष्ण प्रदत्त युगल मन्त्र) बिना युगलोपासना के सिद्धि सम्भव ही नहीं है। आदि सृष्टि से मूल अंशी श्री कृष्ण की उपासना चली आ रही है। यहाँ तक कि द्वादशाक्षर से ही मनु-शतरूपा को राम की प्राप्ति हुई –

द्वादस अच्छर मन्त्र पुनि जपहिं सहित अनुराग ।
वासुदेव पद पंकरूह दंपति मन अति लाग ॥

(रा.बा.कां.१४३)

यद्यपि बहुत खेंचा-खेंची हुई है इस विषय पर किन्तु यह सुलझी हुई निर्विवाद बात है कि द्वादशाक्षर मन्त्र –

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ॐ	**न**	**मो**	**भ**	**ग**	**व**	**ते**	**वा**	**सु**	**दे**	**वा**	**य**

द्वादश माने अपने आप में जिसमें १२ अक्षर हैं, वसुदेव नंदन वासुदेव ही इस मन्त्र के इष्ट हैं।

लीला दृष्टि से वे वसुदेव पुत्र हैं, शंकर जी का तो कथन है –

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥

(भा.४/३/२३)

विशुद्ध सत्त्व को वासुदेव कहते हैं, सत्-रज से आगे विशुद्ध सत्त्व चिन्मय है। मायावादी सत्त्व गुण को विशुद्ध मानते हैं, किन्तु वास्तव में जो सत्त्व से भी परे हैं, मायातीत हैं वह विशुद्ध सत्त्व है। सत्, रज, तम इन तीन गुणों में माया है किन्तु माया का जहाँ प्रवेश नहीं है, वह विशुद्ध सत्त्व है –

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः ।
न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥

(भा.२/९/१०)

विशुद्ध सत्त्व ही वासुदेव है, जो कि उस मायातीत, कालातीत धाम में रहता है। **चिदानन्दमय देह तुम्हारी**। द्वादशाक्षर श्री कृष्ण परक मन्त्र से मनु को श्री सीता राम जी की प्राप्ति हुई। प्रभु के वर से मनु-शतरूपा ही राजा दशरथ एवं कौशल्या बनें तब श्री राघवेन्द्र प्रभु पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए।

श्री नारद जी ने ध्रुव जी को कृष्णोपासना करने को कहा –

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ॥

(भा.४/८/४२)

"ध्रुव ! तू गंगा किनारे भजन मत कर, ब्रज में चला जा इससे उपासना शीघ्र सिद्ध होगी और तेरा कल्याण होगा।" यहाँ बिठूर में गंगा भले ही है किन्तु धाम नहीं है, जहाँ धामावतार होता है, वहीं धामी की प्राप्ति अति शीघ्र होती है। धाम इन चर्म-चक्षुओं से तो प्राकृत ही प्रतीत होता है, किन्तु यह प्राकृत नहीं है। इसके अंदर एक ऐसी गुह्य शक्ति है जो बहुत शीघ्र सिद्धि देती है। धाम में धामी जितना समीप है उतना अन्यत्र नहीं तभी तो ब्रज में प्रति वर्ष करोड़ों लोग आते हैं, क्योंकि यहाँ नारद जी कह रहे हैं। **"सांनिध्यं नित्यदा हरेः"** यह बात कृष्णावतार के बहुत पूर्व की है।

द्वापर तो क्या त्रेता युग भी उस समय नहीं था, अतः कृष्णोपासना आद्योपासना है। नारद जी कहते हैं – धाम में नित्य सानिध्य है 'श्रीहरि' का। धाम में प्रभु की नित्यता बताने के बाद, नारद जी ने कृष्ण लीला की भी नित्यता बताई –

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ।
ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥

(भा.४/८/६२)

नारदजी कह रहे हैं – "यह वही मधुवन है, जहाँ प्रभु ने लीलाएँ कीं, जो लीलाएँ उनकी सम्पन्न हो चुकी हैं, उनका ध्यान करना, यह स्थान कृष्ण चिन्हों से अंकित है। यहाँ सब लीलाएँ हो चुकी हैं।"

स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया ।
करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयङ्गमम् ॥

(भा.४/८/५७)

पूर्व श्लोक में जो लीला हो चुकी हैं, उनके लिए कहा। अब यहाँ इस श्लोक में भावी लीला का ध्यान करने को कहा। नारद जी बोले – "ध्रुव ! मधुवन पहुँच कर तुम आगे होने वाली कृष्ण लीला का ध्यान करना, इससे मन प्रभु में जल्दी लग जाएगा।" नित्य धाम में ये समस्त लीलाएँ नित्य होती रहती हैं, वैकुण्ठ से श्रेष्ठ लीला अवतरित धाम में होती हैं। ध्रुव जी ने भी कृष्ण परक द्वादशाक्षर मन्त्र द्वारा अल्पकाल में प्रभु प्राप्ति कर ली।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥

(भा.१/३/२८)

इच्छामय नरबेष सँवारें ।
होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें ॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता ।
करिहउँ चरित भगत सुखदाता ॥

(रा.बा.कां.१५२)

सबके मूलभूत अंशी तो श्रीकृष्ण ही हैं। उन अच्युत की आराधना से सभी देव उसी प्रकार आराधित हो जाते हैं जैसे मूल सींचने से सम्पूर्ण वृक्ष सिंचित हो जाता है –

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

(भा.४/३१/१४)

'यथा तरोर्मूल' अंशी की पूजा से समस्त अंश तृप्त व पूजित हो जाते हैं अतः कृष्णोपासना परमावश्यक है।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥

(गीता.३/३३)

जब तक नीच प्रकृति नहीं बदलेगी, वहाँ निग्रह निष्फल ही रहेगा। सासंग भजन से प्रकृति परिवर्तन होता है।

आसुरी, राक्षसी एवं मोहिनी इन तीनों निकृष्ट प्रकृति से उन्मुक्त हो मनुष्य दैवी प्रकृतिवान हो जाता है –

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

(गीता.९/१३)

सासंगता बनाये रखने के लिए ही 'श्री राधा रानी ब्रज यात्रा' में ऐसे 'ध्वनि विस्तारक यन्त्र' (sound system) लगाए जाते हैं, जिससे सुदूर तक कीर्तन ध्वनि पहुँचे एवं प्रत्येक यात्री सासंगोपासना करते हुए अपनी यात्रा सफल बनाये। सासंगता से सरसता आती है।

यात्रा निःशुल्क क्यों?

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥

(गीता.२/४९)

निष्काम कर्म से सकाम कर्म निश्चित ही अत्यंत नीच है। फलाकांक्षी कृपण मनुष्यों का मुख दर्शन भी महापाप है। कामना त्याग वाला जीव ही स्थितप्रज्ञ है। कामना मन को चंचल करती है। कामना त्याग से कर्म शक्ति संपन्न हो जाता है। आज से ७० वर्ष पूर्व यात्राओं में पहले ३०-३० हजार यात्रीगण पैदल चलते थे, जिससे कूप जल विहीन हो जाते थे लेकिन कामना का प्रवेश होने से, पारस्परिक विघटन व राजस बढ़ने से वह बात अब नहीं रही। श्रीकृपालु जी महाराज के यहाँ भी किसी समय अखण्ड हरि नाम चलता था, उस कीर्तन प्रेम ने ही विवश किया पूज्य गुरुदेव को बरसाना में रुकने का। अनेकों को ब्रजवास मिला इस कीर्तन प्रेम से। 'श्री राधा रानी ब्रज यात्रा' पूर्णतया निःशुल्क है, सतत् भगवन्नाम की सासंगता होने से यह लोकोत्तर स्तर तक पहुँच गयी।

ब्रह्मज्ञानी मोक्षार्थियों का कार्य फलाकांक्षा त्याग कर भगवन्नाम से आरम्भ होता है –

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

(गीता.१७/२३)

ॐ, तत्, सत् भगवन्नाम के द्वारा ही यज्ञ, तपादि समस्त कर्मों का शुभारम्भ होना चाहिए। सांसारिकों का कार्य बिना भगवन्नाम के आरम्भ होता है, ब्रह्मचारियों का नहीं। प्रश्न है कि ॐ, तत्, सत् ये तीन ही नाम क्यों कहे, अन्य केशव, गोविन्द आदि नामों का निर्देश क्यों नहीं किया?

श्री ब्रह्मोवाच –

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥

(भा.३/९/१५)

नहीं-नहीं, समस्त नामों का निर्देशन किया। जब नाम नामी भेद रहित हैं तो नाम-नाम में कैसा भेद? **अवतार सम्बन्धी** – नन्दनन्दन, देवकीनंदन ... आदि। **गुण सम्बन्धी –** दीन बंधु, भक्तवत्सल ...आदि। **लीला सम्बन्धी –** माखन चोर, गिरिधारी....आदि। प्राणोत्सर्ग के समय, जो इनमें से किसी भी नाम का उच्चारण करता है, वह अनेकानेक जन्म में संचित अघराशि छोड़कर अविलम्ब अपावृत सत्य को प्राप्त कर लेता है।

धाम निष्ठ कौन?

साम्प्रदायिक-संकीर्णता विहीन पुरुष ही सच्चा धाम निष्ठ है।

महत् जनों के शापानुग्रह से धाम प्राप्ति –

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥

(भा.१०/१६/३६)

जो चरण रज कमला को दुष्प्राप्य है, वह कालिय नाग को कैसे प्राप्त हो गई?

इसका मूल कारण है धाम की कृपा। गरुड़ से घायल होकर कालिय, भाई शेष जी के कथनानुसार दीर्घ काल तक श्री वृन्दावन धाम यमुना जी में रहे, उस धाम वास के परिणाम स्वरूप ही दुर्लभ वस्तु श्रीकृष्ण चरण रज की प्राप्ति हो गई। गरुड़ के क्रोधानुग्रह से धाम और धाम के अनुग्रह से धामी की प्राप्ति हुई। अतएव राजा बलि ने कहा कि **सबसे श्लाघ्यतम वस्तु दण्ड ही है**।

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥

(भा.०८/२२/०४)

धामवास से धामापराध का नाश

करि मन वृन्दावन सों हेत ।
निसि दिन छिन छाया जिनि छाँड़हि रसिकन कौ रख खेत ॥
जहँ श्रीराधा मोहन विहरत करि कुंजनि संकेत ।
पुलिन रास रस रंजित देखत मन मथ होत अचेत ॥
वृन्दावन तजि जे सुख चाहत तेई राच्छस प्रेत ।
'व्यास' दास के उर में बैठयौ मोहन कहि-कहि देत ॥

प्रायः लोग ऐसा कह दिया करते हैं कि धाम में मत जाओ, धाम में अधिक देर मत रहो, नहीं तो धामापराध करोगे।

श्री भगवानुवाच – पार्थ सृष्टि में ऐसा कोई कर्म है ही नहीं जिसमें दोष न हो, सेवा करोगे तो उसमें भी ३२ प्रकार के सेवापराध हैं तो क्या सेवापराध के भय से सेवा करना ही बंद कर दोगे?

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥

(गीता.१८/४८)

नाम लेते हो तो नाम में भी १० प्रकार का नामापराध है तो क्या नाम लेना ही बंद कर दोगे? भक्तापराध के भय से क्या भक्त सेवा करना ही छोड़ दोगे? यदि ऐसा है तो वस्त्र गन्दे होने के भय से वस्त्र पहनना भी छोड़ दो। भगवदाज्ञा तो यह है कि सदोष कर्म का भी त्याग अनुचित है।

प्रयास करो कि धामापराध न हो किन्तु इसके बहाने धाम वास कदापि न छोड़ो। यदि धाम में रहते हुए कोई पाप हो भी जाएगा तो धाम ही सब अपराधों का उन्मूलन कर देगा। ब्रह्मा जी का गौवत्स एवं ग्वालबालों की चोरी का अपराध धाम ने नष्ट किया, जो इन्द्र के अपराध से भी बड़ा था क्योंकि इन्द्र द्वारा प्रलयकालीन मेघों द्वारा वर्षा कराने पर सब ब्रजवासियों, गौ एवं गौवत्सों के गिरिराज जी के नीचे एक स्थान पर आने से कृष्ण मिलन प्राप्त हुआ किन्तु ब्रह्मा जी ने ग्वाल-बालों एवं गौवत्सों का हरण कर वियोग करा दिया इसलिए **ब्रह्माजी का अपराध ज्यादा बड़ा था जो धाम परिक्रमा से सहज ही नष्ट हो गया**। सिय निंदकों का अपराध धाम ने नष्ट किया। धाम का अवतार ही हम जैसे महापातकियों के उद्धारार्थ हुआ है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि ब्रज में अधिक समय नहीं रहना चाहिए तो वे सब आचार्य विरुद्ध बातें कहते हैं –

वृन्दावन तजि जे सुख चाहत तेई राच्छस प्रेत ।
'व्यास' के उर में बैठयो मोहन कहि-कहि देत ॥

(व्यास वाणी)

महाप्रभु श्री चैतन्य देव ने रूप-सनातन आदि षड्-गोस्वामी गणों को स्वयं ब्रज में भेजा एवं वहाँ के स्थलों का उद्धार किया, कराया। सभी आचार्य, गोस्वामी गण आकर यहाँ रहे।

संसार स्वाद सुख बांत ज्यौं दुहुँ 'रूप-सनातन' त्यागि दियौ ॥
गौड़देश बंगाल हुते सब ही अधिकारी ।
हय गय भवन भण्डार विभौ भू-भुज उनहारी ।
यह सुख अनित्य बिचारि बास वृन्दावन कीन्हौ ।
यथा लाभ सन्तोष कुञ्ज करवा मन दीन्हौ ।
ब्रजभूमि रहस्य राधाकृष्ण भक्त तोष उद्धार कियौ ।

(भक्तमाल छप्पय-८९)

"वृन्दावन ब्रजभूमि जानत न कोऊ प्राय दई दरसाय जैसी शुक मुख गाई है"

(भक्तमाल कवित्त-३५८)

ब्रज के मणि-मुक्तामय कण-कण का श्री शुकदेव जी ने गूढ़ गान किया, तत् समस्त रूप-सनातन आदि आचार्यों ने प्रकट किया, स्वयं महाप्रभु जी ने श्री राधा कुण्ड को प्रकट किया, ब्रज में ऐसे कई स्थल हैं जैसे भांडीर कूप (मत्स्य कूप) — यहाँ स्नान से प्रभु के १४ अवतारों की लीला का फल मिलता है। ऊँचे गाँव में ब्रजवासियों को त्रिवेणी कूप में ३ धाराएँ दिखाई श्री नारायण भट्ट जी ने। धाम कालातीत है, यह बात निर्विवाद है। भगवद् इच्छा से धाम का आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है। इन अचिन्त्य भावों को असत्तर्क से नहीं समझा जा सकता है।

ब्रज का प्रत्येक गाँव, प्रत्येक वीथी श्रीकृष्ण लीला से अंकित है। यहाँ घर-घर में श्रीकृष्ण की बाल लीला हुई है। सूरदास जी ने कहा –

प्रथम करी हरि माखन चोरी ।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन आपु भजे ब्रज खोरी ॥
मन में यहै बिचार करत हरि ब्रज घर-घर सब जाऊँ ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन सबकैं माखन खाऊँ ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानै गोपिनि मिलि सुख भोग ।
'सूरदास' प्रभु कहत प्रेम सौं ये मेरे ब्रज लोग ॥

यह पद बोध कराता है, श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की है कि ब्रज का कोई भी गाँव, कोई भी घर, मेरी लीला से वंचित नहीं रहेगा। "ब्रज प्रेमानन्द सागर" में व अन्य रसवेदी जनों ने ब्रज के सभी अचर-सचर प्राणियों को पूज्य व लीला का सहायक बताकर अद्भुत लीला अंकित की है।

स्वामी श्री हरिदास जी –

मन लगाय प्रीति कीजै कर करवा सों ब्रज वीथिन दीजै सोहनी ।
गो गो सुतन सों मृगी मृग सुतन सों और तन नेक न जोहिनी ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी सों चित ज्यों सिर पर दोहिनी ।

अथवा –

"नव निकुंज सुख पुंज महल में सुबस बसो यह गाँवरो"

(केलिमाल-४४)

न जाने किस गाँव की किस वीथी में युगल रसराज मिल जायें –

कदा वा खेलन्तौ व्रजनगरविथीषु हृदयं
हरन्तौ श्रीराधाव्रजपतिकुमारौ सुकृतिनः ।
अकस्मात्कौमारे प्रकटनवकिशोर-विभवौ
प्रपश्यन्पूर्णः स्यां रहसि परिहासादि निरतौ ॥

(रा.सु.नि.६५)

ब्रज का कण-कण लीला विहारी की लीला से चिन्हित है अतः कोई यह न सोचे कि पुस्तक का कलेवर बढ़ाया गया है। अनन्त की एक बूँद भी तो अनन्त होती है –

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

(ईशा.उ)

पूर्ण से पूर्ण निष्कासित करो तो पूर्ण ही शेष रहता है। ब्रज भावना भी यही कहती है –

सद्योगीन्द्रसुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्तयः
सर्वेप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने संगता ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्यदृश्याश्च ये
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(रा.सु.नि.२६४)

रसकुल्याकार का कथन है –

यद्वा व्युत्क्रमेण मनोभावस्थापनबलकरणापत्तः । आद्येषु स्वत एव भावोत्पत्तेराराध्यता द्वितीयेषु लौकिकभावदेहादिदर्शनाद्भावनाबलेन स्वाराध्यता तृतीयेषु बहिः प्रयान्तमपि भावं बहुसिद्धान्तबलेन स्थापनात् परमस्वाराध्यतेति ।

तीन प्रकार का श्रद्धा बल बताया –

१. मनोबल
२. भावना बल
३. स्थापना बल

श्री ठाकुर जी व उनके लीला परिकर के लिए मन में अनायास जो आराध्य-भाव है वह **'मनोबल'** है।

ब्रजसेवियों का ब्रज भाव एवं कठिन शारीरिकचर्या को देखकर उनके प्रति आराध्य-भाव हो जाना **'भावना बल'** है।

जहाँ मन एवं भाव की गति नहीं है वहाँ स्थापना बल स्थापित करना होगा। जो अत्यन्त क्रूर एवं पापी हैं, देखने-बोलने योग्य भी नहीं हैं, उनमें सिद्धांत के बल पर परमस्वाराध्य बुद्धि करें, यही **'स्थापना बल'** है। लीला परिकर-वर्ग केवल आराध्य हैं, ब्रजसेवी उनसे बढ़कर स्वाराध्य हैं। अतिशय क्रूर एवं पापीजन तो आराध्य, स्वाराध्य से भी श्रेष्ठ परम स्वाराध्य हैं। स्थापना बल ही ब्रजभाव है, यही धामापराध से बचा सकता है।

श्री व्यास जी का स्थापना बल –

नीच चाण्डाल तक की वन्दना कर रहे हैं –

वृन्दावन के श्वपच की जूठन खाइए मांग ।
व्यास मिठाई विप्र की तामे लागो आग ॥

श्री अभयराम जी का स्थापना-बल –

धन धन वृन्दावन के बामन ।
'अभयराम' ये ह्व बड़भागी बामन है कि रावन ॥

अथवा

"धन-धन वृन्दावन के गदहा प्यारे"

अथवा

धन-धन नन्दगाँव के श्वान
भोर साँझ सुन इष्ट आरती नित्य निकासत भौं-भौं तान ॥

दर्शन, सम्भाषण के अयोग्य ब्रज के अत्यन्त क्रूर, पापी जीव योगीन्द्र-मुनीन्द्रों से भी धन्य हैं, रस मूर्ति हैं –

वृन्दारण्ये वरं स्यां कृमिरपि परतो नो चिदानन्ददेहो
रङ्कोऽपि स्यामतुल्यः परमिह न परत्राद्भुतानन्तभूतिः ।
शुन्योऽपि स्यामिह श्रीहरिभजन लवेनातितुच्छार्थमात्रे
लुब्धो नान्यत्र गोपीजनरमणपदाम्भोजदीक्षासुखेऽपि ॥

(शतक.२/१)

श्री वृन्दावन धाम में कृमि ही बन जाऊँ तो अत्युत्तम है परन्तु अन्यत्र दिव्य देह भी नहीं चाहता हूँ। यहाँ अतुल्य दारिद्रमय जीवन भी अच्छा है किन्तु अन्यत्र दिव्य विभूतियों की भी इच्छा नहीं है। **"वृन्दावन में मंजुल मरिबो"** यहाँ भजन शून्य होकर घोर वैषयिक जीवन भी उत्तम है ।

किन्तु गोपीजनवल्लभ की चरण शरण छोड़कर अन्यत्र गमन करना नहीं चाहता –

श्री राधे रानी मोहि अपनी कर लीजै।
और कछु मोहि भावत नाहिं, श्री वृन्दावन रज दीजै।
खग मृग पशु पंछी या वन के, चरण शरण रख लीजै।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, महल टहलनी दीजै।

हे राधाया रतिगृहशुकाः! हे मृगा! हे मयूराः!
भूयोभूयः प्रणतिभिरहं प्रार्थये वोऽनुकम्पाम् ॥

(रा.सु.नि.२६२)

श्रीजी के रति-गृह ब्रज के निवासी मृग, मयूर, शुक, पिक को बारम्बार नमन कर इनकी अनुग्रह वर्षा चाहते हैं। इस लघु-पुस्तिका में अनन्त का बिन्दु भी नहीं आ पाया है तथापि मुख्य लीला स्थलियों की निकटवर्ती ग्रामटिकाओं का भी उल्लेख करने का प्रयास किया गया है, जो अति संक्षिप्त है, एतदर्थ नीर-क्षीर विवेकी अध्येतागण क्षमा करें।

अध्याय – ३

बरसाना

बरसाना के अनेक नाम हैं, जैसे रस की वर्षा होने के कारण **'बरसाना'**, श्रेष्ठ पर्वत चोटी होने के कारण **'वरसानु'** वृषभानु की राजधानी होने के कारण **'वृषभानुपुर'** और बड़ी शिखर होने के कारण **'वृहत्सानु'।**

यद्यपि वृन्दावन में ही बरसाना है किन्तु श्रीजी के स्थाई निवास के कारण यहीं से सम्पूर्ण वृन्दावन रसमय बनता है। केवल प्रणाम करने से जो चिंतित वस्तुओं का दान करने वाली, ब्रज देवियों की शिरस्थ चूड़ामणि, वृषभानु वंश की कुलमणि, निखिल रसामृत मूर्ति श्रीकृष्ण की विरहशामिनी शांतिमणि, निकुञ्ज भवन की शोभामणि हैं; वे श्रीजी हम सभी के हृदय की अमूल्यमणि जिस बरसाने में विराजती हैं, उस वृषभानपुर की दिशा को प्रणाम है –

"तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि"

(रा.सु.नि.१)

यद्यपि पञ्चयोजन अर्थात् २० कोस (६० कि.मी) वृन्दावन सभी रसमय है किन्तु उस सम्पूर्ण वृन्दावन में व्यास जी को श्रीकृष्ण नहीं मिले किन्तु बरसाना रूपी वृन्दावन में मिल गये –

लागी रट राधा-राधा नाम ।
ढूंढ़ि फिरी वृन्दावन सबरो नन्द डिठोना श्याम ॥
कै मोहन कै खोर साँकरी कै मोहन नंदगाँव ।
'व्यास दास' की जीवन राधे धनि बरसानो गांव ॥

(व्यास जी)

चिंतामणिः प्रणमतां ब्रजनागरीणां चूड़ामणिः कुलमणिर्वृषभानुनाम्नः ।
सा श्यामकामवरशान्तिमणिर्निकुञ्जभूषामणिर्हृदयसम्पुटसन्मणिर्नः ॥

(रा.सु.नि.२६)

यहाँ के वास की आस शिव जी और शेष जी भी करते हैं –

बरसाने के वास को आस करें शिव शेष ।
ह्याँ की महिमा को कहे जहाँ कृष्ण धरे सखि वेष ॥

सम्पूर्ण ब्रज वृन्दावन का रत्न, वृषभानु भवन बरसाना में ही रहता है, जिसके प्रलोभन में 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' चोर बनकर बरसाने आता है –

ब्रज में रतन राधिका गोरी ।
हर लीनी वृषभानु भवन ते नंदसुवन की चोरी ॥

(कृष्ण दास जी)

बरसाने में श्रीकृष्ण छद्म से सखी वेष धारण कर चोरी करने आते हैं। 'बरसाने' का यह गौरव क्यों है?

सुभग गोरी के गोरे पांय ।
धनि वृषभानु धन्य बरसानो धनि राधा की माय ।
जहाँ प्रगटी नटनागरि खेलत पति सों रति पछताय ॥
जाके परस सरस वृन्दावन बरसत रसनि अघाय ।
ताके शरण रहत काको डर कहत 'व्यास' समुझाय ॥

(व्यास जी)

हित हरिवंश जी ने बरसाने चलने की आज्ञा की है –

"चलो वृषभानु गोप के द्वार"

अथवा

देखि सखि राधा प्रिय केलि ॥
ये दोउ खोर खिरक गिरि गहवर ।
विहरत कुँवरि कंठ भुज मेलि ॥

खोर (साँकरी), गिरि (ब्रह्माचल), खिरक (वृषभानु खेरा), वन (गहवर वन) – ये चारों केवल बरसाने में ही हैं। गहवर वन और खोर साँकरी की लीला 'स्वामी हरिदासजी' ने भी गायी है –

"हमारो दान मारयो इन"

अथवा

प्यारी जू आगैं चलि आगैं चलि आगैं चलि ।
गहवर वन भीतर जहाँ बोले कोइल री ॥
अति ही विचित्र फूल पत्रन की सेज्या रची ।
रुचिर सँवारी तहाँ तूब सोइल री ॥
छिन-छिन पल-पल तेरीऐ कहानी तुव मग जोइल री ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्याम कहत छबीलौ काम रस भोइल री ॥

मोर कुटी की मोर लीला भी 'स्वामी जी' ने गायी है। महावाणी जी में भी –

"गहवर निकुञ्ज कुञ्ज के आगे अद्भुत ठौर"

यही कारण है कि ब्रह्मा जी को रस प्राप्ति के लिए बरसाने में ही पर्वत बनने का आदेश प्रभु ने दिया था।

अथ वृषभानुपुरोत्पत्ति माहात्म्य वर्णनं वाराहे पाद्मे च:-

पुराकृतयुगस्यान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितो हरिः ।
ममोपरि सदा त्वंहि रासक्रीडां करिष्यसि ॥
सर्वाभिर्ब्रजगोपीभिः प्रावृट्काले कृतार्थकृत ।

अर्थात् – सतयुग के अन्त में ही ब्रह्मा जी ने श्रीकृष्ण के निकट प्रार्थना किया कि आप गोपियों के साथ मेरे ऊपर विहार करें।

प्रभु ने कहा – "आप बरसाना जाकर पर्वत बन जाओ, वहीं तुम्हें लीला दर्शन होगा।" इसी से ब्रह्मा जी बरसाने में पर्वत बने। एक कथा आती है, बरसाने के पर्वतों के बारे में कि जब त्रिदेव सती अनुसुइया की परीक्षा लेने गये थे तो वहाँ सती ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव को श्राप दिया कि तुमने बड़ा अमर्यादित व्यवहार किया है, इसीलिए जाओ, पर्वत बन जाओ तो तीनों देवता पर्वत बन गये और उनका नाम त्रिक् हुआ।

श्री भगवानुवाच –

ततो ब्रह्मन् ब्रजं गत्वा वृषभानुपुरङ्गतः ।
पर्वतो भवसि त्वं हि मम क्रीड़ां च पश्यसि ।
यस्माद् ब्रह्मा पर्वतोऽभूद् वृषभानुपुरे स्थितः ।

(ब्र.भ.वि)

सूर्यवंशी महाराज दिलीप हुए, ये बड़े ही गौ भक्त थे। राधा रानी सूर्यवंशी थीं और राम जी भी सूर्य वंशी थे। इनकी परम्परा इस प्रकार है। महाराज दिलीप तक तो एक ही वंश आता है। दिलीप ने गौ भक्ति की क्योंकि उनको कामधेनु गाय का श्राप था। ये जब एक बार स्वर्ग में गये तो जल्दी-जल्दी में कामधेनु गाय को प्रणाम करना भूल गए थे, कामधेनु ने श्राप दे दिया कि तुम पुत्र की इच्छा से जा रहे हो, तुम्हें पुत्र नहीं होगा। ये श्राप उस समय दिलीप सुन नहीं सके थे क्योंकि आकाश में इन्द्र का ऐरावत हाथी क्रीड़ा कर रहा था। दीर्घकाल तक भी प्रयत्न करने पर उनको जब पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई तब ये गुरु वशिष्ठ के पास गए। उन्होंने ध्यान करके बताया कि राजन्! तुम्हें तो श्राप है, तुम्हें पुत्र कभी हो ही नहीं सकता क्योंकि यह कामधेनु का अमोघ श्राप है। वशिष्ठ जी ने कहा – "तुम गौ सेवा करो, कामधेनु की पुत्री नन्दिनी हमारे पास है, वह भी कामधेनु है, एकमात्र वही इस श्राप को नष्ट कर सकती है", तब दिलीप ने अद्भुत गौ सेवा की।

इनकी परीक्षा भी हुई, परीक्षा में सिंह ने आक्रमण किया और दिलीप ने अपना शरीर सिंह को दे दिया। सिंह बोला – "मैं पार्वती से नियुक्त सिंह हूँ, तुम इस साधारण गाय के लिए अपना शरीर क्यों नष्ट करते हो? जीवित रहोगे तो अनेक तरह की तपस्या आदि कर सकोगे।"

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥
स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥

(रघु.२/५)

दिलीप ने कहा – "यह शरीर जीवित रखने से कोई लाभ नहीं, अगर हम गाय को नहीं बचा सकते, इससे तो मर जाना अच्छा है। मनुष्य को उतनी ही देर जीना चाहिए, जब तक मशाल की तरह उस में प्रकाश हो। अगर प्रकाश न रहे तो जीने से कोई लाभ नहीं, उससे अच्छा है मर जाना।" सिंह ने कहा – "तैयार हो जाओ मरने के लिए, दिलीप तैयार हो गए।" सिंह आकाश में ऊपर उछला, ये सिर नीचे करके बैठ गए, हिले नहीं कि सिंह हमारे ऊपर प्रहार करेगा। तब तक क्या देखते हैं कि एक फूलों की माला आकाश से उनके ऊपर आकर पड़ गयी। उन्होंने सामने देखा तो गाय मुस्कुरा रही थी, बोली – "मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम इसमें उत्तीर्ण हो गये हो। जाओ मेरी माँ का श्राप मिट गया। अब तुम्हारे एक बड़ा प्रतापी पुत्र होगा, जिसका नाम रघु होगा।" उस गौ सेवा को देख करके राजा दिलीप के लड़कों में से जो धर्म नाम के सबसे छोटे लड़के थे, उन्होंने कहा कि हमें राज्य नहीं चाहिए। हमें कुछ नहीं चाहिए। हम तो केवल गाय की सेवा करेंगे। उसी वंश में आगे चलकर अभयकर्ण हुए। शत्रुघ्न जी जब ब्रज में आये तो अभय कर्ण को साथ लाये क्योंकि ये भी बड़े गौ भक्त थे। शत्रुघ्न जी जानते थे कि यह भूमि गाय के लायक है।

वाल्मीकि रामायण में एक प्रसंग आता है कि जब सीता जी वनवास के समय यमुना जी को पार कर रही थीं, यमुना जी को पार करते समय सीता जी ने यमुना जी की वन्दना की। उन्होंने देख लिया कि यह यमुना ब्रज से आ रही हैं। वहाँ श्लोक है –

कालिन्दीमध्यमायाता सीता त्वेनामवन्दत ।
स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेन्मे पतिर्व्रतम् ॥
यक्ष्ये त्वां गोसहस्रेण सुराघटशतेन च ।
स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥

(वा.रा.अयो.का.५५।१९, २०)

सीता जी ने कहा – "हे माँ! मैं तेरी हजारों गायों से सेवा करूँगी।" सीता जी भी ब्रज भक्त थीं।

जब अभय कर्ण जी यहाँ आये तो बड़े प्रसन्न हुए और गौ सेवा करने लग गए। इसीलिए रघुवंश का यह एक अलग वंश आता है, इन्हीं के वंश में रशंग जी हुए, जिन्होंने बरसाना बसाया

है और इन्हीं के वंश में राधा रानी का प्राकट्य हुआ। यह बरसाने का इतिहास है। रशंग जी के वंश में ही राजा वृषभानु और राधा रानी हुई हैं। ये सूर्यवंशी थीं और श्रीकृष्ण चंद्रवंशी थे।

महारानी कीर्ति जी धन्य हैं, जिनके यहाँ राधा रानी जन्मी। महारानी कीर्ति मानवी कन्या नहीं हैं, इनका अवतार हुआ है। किसी समय में अपने पूर्व जन्म से पहले ये तीन पितृश्वरों की दिव्य कन्यायें थीं। ये कथा शिवपुराण (पार्वती खण्ड, अध्याय-२) में आती है। जब ये श्वेतदीप गयीं तो वहाँ सनकादि आये। इन्होंने उठकर सम्मान नहीं किया तो उन्होंने श्राप दे दिया कि तुम मानवी बन जाओ। भगवान् ने कहा कि ये वरदान है, श्राप नहीं है। तुम्हें नित्य शक्ति को जन्म देने का अवसर मिलेगा। उन तीनों कन्याओं में से एक सीता जी की माँ बनी – '**सुनैना**', एक पार्वती जी की माँ बनी – '**मैना**' और एक राधिका जी की माँ बनी – '**कलावती**'। ये कलावती के रूप में प्रकट हुईं, जो महाराज सुचन्द्र की स्त्री बनीं। दोनों ने बड़ा तप किया। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी प्रकट हुए और उनसे वरदान माँगने को कहा। इस तरह महाराज सुचन्द्र जी को मोक्ष का वर प्राप्त हुआ। कलावती जी बोलीं कि – ब्रह्मा, मैं तुमको श्राप दे दूँगी। तुमने मेरे रहते इनको मोक्ष क्यों दिया? ब्रह्मा जी घबरा गए क्योंकि ये महासती थीं। वो बोले कि ठीक है, ये कुछ दिन तक यहाँ ऊपर रहेंगे और फिर तुमको गोलोकेश्वरी की माँ बनने का सौभाग्य मिलेगा, उसके बाद तुम्हारे साथ ही धाम में जायेंगे। वो ही महाराज सुचन्द्र और वही कलावती फिर से यहाँ प्रगट हुए। कलावती, कीर्ति हुईं और इनकी कूँख से श्रीराधारानी भादों शुक्ल अष्टमी को प्रकट भईं।

यहाँ श्री नन्दनन्दन श्री राधिका से मोहित होकर नित्य रहते हैं –

परं नित्यं राधापदकमलमूले ब्रजपुरे ।
तदित्थं वीथीषु भ्रमति स महालम्पट मणिः ॥

(रा.सु.नि.२३२)

सोई तौ बचन मोसौं मानि तैं मेरौ लाल मोह्यौ री साँवरौ ।
नव निकुंज सुख पुंज महल में सुबस बसौ यह गाँवरौ ॥
नव-नव लाड़ लड़ाइ लाड़िली नहिं नहिं इह ब्रज जाँवरौ ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी पै वारौंगी मालती भाँवरौ ॥

(केलिमाल–४४)

बरसाना गाँव ब्रह्माचल पर्वत के नीचे है। ब्रह्माचल पर्वत जो ब्रह्माजी का अंग ही है। उनके मुख रूप चार शिखरों पर चार गढ़ हैं (१) मानगढ़ (२) दानगढ़ (३) विलासगढ़ (४) भानुगढ़। जिन पर क्रमश: वृषभानु भवन (भानुगढ़), दानलीला (दानगढ़), झूलन लीला व विलास लीला (विलासगढ़) एवं मान लीला (मानगढ़) हुई है। सिंहपौर पर ब्रह्मा जी का विग्रह भी है जिसे भक्तगण प्रणाम कर पर्वत पर चारों गढ़ों के दर्शन करते हैं।

ततो राधा कृष्ण दर्शन प्रार्थना मन्त्र :-

नमः प्रियायै राधायै ब्रह्मणो वरदायिने ।
सर्वेष्टफलरम्याय राधाकृष्णायमूर्तये ॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थात् – राधा रानी प्रिया जी को नमस्कार है और ब्रह्मा को वर देने वाले श्रीकृष्ण को नमस्कार है। यहाँ पर श्रीराधा कृष्ण के दर्शन से सब इष्ट फल प्राप्त हो जाते हैं।

ब्रह्मा जी, श्रीजी के चरणों की रज पाने के लिए यहाँ पर्वत बने। भागवत में आता है –

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥

(भा.१०/१४/३४)

ब्रह्मा जी चाहते थे कि ब्रज के किसी भी निवासी की चरण रज मिल जाए। उसकी रज, जिसका जीवन ही भगवान् हैं। श्रुतियाँ आज तक जिन चरणों की रज को ढूँढ़ रहीं हैं, वही रज ब्रह्मा जी को श्रीकृष्ण की कृपा से मिली।

ततो वृषभानुपुर दर्शन प्रार्थना मन्त्र :-

महीभानुसुतायैव कीर्तिदायै नमो नमः ।
सर्वदा गोकुले वृद्धिं प्रयच्छ मम कांक्षितां ॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थात् – वृषभानु व कीर्ति जी को नमस्कार है। सदा गोकुल (ब्रज) में मेरी आकांक्षा पूर्ण करें।

यह गाँव चारों ओर वन-कुञ्जों से घिरा है, प्रेमवन, मानेंगितवन, मयूरवन, गहवरवन, आदि। इसीलिये श्रीलाड़ली जी से सखियाँ प्रार्थना करती हैं कि नन्दलाल ब्रज में बरसाना छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं, आप इन पर प्रेम वर्षा करें।

भानुगढ़

भानुगढ़ पर महाराज वृषभानु जी का महल बना, जहाँ श्रीराधा का प्राकट्य, बाल, पौगण्ड एवं कैशोर आदि लीलाएँ होती हैं।

यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानुगेहे ।
स्यात्किंकरी भवितुमेव ममाभिलाषः ॥

(रा.सु.नि.४०)

तथा तत्रैव –

सा काचिद् वृषभानुवेश्मनि सखीमालासु बालावली ।
मौलिः खेलति विश्वमोहनमहासारूप्यमाचिन्वती ॥

(रा.सु.नि.२२५)

तथा

नन्दिग्रामे वृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया ॥

(भा.मा.स्क.पु.१/३८)

वृषभानुपुरशतक से –

जयत्यशेषाद्भुतमाधुरी सा, पुरी वृषाट्टस्कर राजकस्य ।
यन्नाम श्रृण्वन्ननुनंदसूनु र्वृजत्यवस्थां जड़िमाभिधानाम् ॥

(वृ.पु.श)

अर्थात् – सम्पूर्ण माधुरी वाली, वृषभानु पुरी विजय को प्राप्त हो रही है, जिसके नाम को सुनकर ही 'श्रीकृष्ण' प्रेम मूर्च्छा को प्राप्त हो जाते हैं।

वृषभानु भवन

यत्रास्ति श्री मद्वृषभानु मन्दिरं प्रभासहस्रामल चंद्र सुंदरम् ।
यज्ज्योत्स्नया राजितनंदमंदिरे चिक्रीडबाल्ये ननु नंदनंदनः ॥

(वृ.पु.श)

अर्थात् – "जहाँ श्री वृषभानु मन्दिर है, जिसकी प्रभा सहस्रों निर्मल चन्द्रमाओं से भी निर्मल है एवं जिसकी प्रभा से ही नन्दभवन भी शोभित होता है, जहाँ बाल कृष्ण खेलते हैं। भाव यह है कि बालकृष्ण को श्रीराधा विरह न व्यापे। इसीलिए भानुभवन की गौर किरणें नन्दग्राम जाकर नन्दभवन पर छा जाती हैं। इस प्रकार उन्हें सतत् श्रीराधा मिलन होता रहता है।"

यद्यपि वर्तमान मन्दिर पाँचवा मन्दिर है। इसके पूर्व के चार मन्दिर पास में ही सटे हुए हैं। सबका इतिहास छोटी सी पुस्तक में नहीं दिया जा सकता है। स्थल वही है, मन्दिर में परिवर्तन होता रहता है।

यहाँ सबसे पहले राधा रानी ने कहा था, श्याम सुन्दर से –

ततो राधा प्रियं कृष्णं वाक्यमूचे कृतार्थकृत् ।
मम पितृपुरे त्वं हि मया सह प्रतिष्ठतु ॥

(ब्र.भ.वि)

इस श्लोक से बरसाने की महिमा का पता चलता है। श्रीजी श्याम सुन्दर से कहती हैं कि हमारे पिता के गाँव का नाम 'वृषभानुपुर' (बरसाना) है, जहाँ रस वर्षा होती रहती है। आज भी यहाँ रस बरसता रहता है, ऐसी छटा ब्रज में कहीं नहीं है।

श्रीजी बोलीं – "हमारे पिता के इस गाँव में तुम मेरे साथ यहाँ रहा करो। इससे ब्रह्मा भी कृतार्थ हो जायेंगे और मेरी भी प्रीति बढ़ेगी।" इसलिए यहाँ पर श्रीजी के मन्दिर में ठाकुर जी भी रहते हैं। भले ही चूनर ओढ़ा देते हैं, सखी वेष में रहते हैं ताकि कोई जान ना पावे। महात्मा लोग कहते हैं कि ऐसा संसार में कहीं नहीं है, जहाँ कृष्ण सखी वेष में रहते हैं। ऐसा केवल बरसाने में है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम पुरुष सखी बने।

अति सरस्यौ बरसानो जू । राजत रमणीक रवानों जू ॥
जहाँ मनिमय मन्दिर सोहै जू ।उपमा को रवि-शशि को है जू ॥
नित होत कुलाहल भारी जू ।मन मुदित सकल नर-नारी जू ॥
वृषभानु गोप जहाँ राजै जू ।

श्री लाड़िली जी का प्राकट्य

वर्तमान काल में विराजमान श्री लाड़िली जी का विग्रह १६२६ सम्वत् में आषाढ़ शुक्ल नारायण भट्टजी के द्वारा प्रस्थापित है। उस समय भट्ट जी के द्वारा अनेकों विग्रहों का प्राकट्य हुआ। सम्पूर्ण ब्रज भक्त पूज्य श्रीनारायण भट्ट गोस्वामी जी के साहित्य द्वारा ब्रज स्वरूप को सन्मुख लाने के लिए उनके इस प्रणयन श्रम के लिए सदा-सर्वदा ऋणबद्ध ही रहेंगे।

श्री श्री नारायण भट्ट जी की उद्भट प्रतिभा

ब्रजाद्याचार्य श्रीश्रीनारायण भट्ट गोस्वामी जी ही वे महापुरुष हैं, जिन्होंने ब्रज धरणी के लुप्त-गुप्त स्वरूप को जन साधारण के नेत्रोन्मुख किया। दक्षिण देश में मदुरापत्तन स्थान में भृगुवंशी, श्रीवत्सगोत्रीय, ऋग्वेदी, भैरव नामक महान विद्वान तैलंग विप्र का प्रवास था। ये मध्व मतावलम्बी वैष्णव बड़े कृष्ण भक्त थे। इनके पुत्र थे श्रीरंगनाथ। भक्त रंगनाथ जी का चरित्र भविष्योत्तर पुराण में भी उल्लिखित है। रंगनाथ जी से भट्ट भास्कर नामक पुत्र हुआ।

भट्ट भास्कर से दो पुत्र रत्न हुए –

१. गोपाल २. नारायण। ये ही हैं वे नारायण भट्ट गोस्वामी जो जनमानस के ब्रज मार्ग दर्शक हैं। ये सामान्य विभूति नहीं हैं, स्वयं कृष्ण पार्षद नारदावतार हैं। श्रीराधा रानी की प्रिय सखी श्रीरंगदेवी देवी जी का आवेश हैं। असामान्य थे तभी तो "श्रीब्रजभक्तिविलास" जैसे

असामान्य ग्रन्थ की रचना कर डाली, इसका अध्ययन पर्याप्त है आपके व्यक्तित्व ज्ञान के लिए।

सम्वत् १५८८ वैशाख शुक्ल पक्ष नरसिंह जयन्ती दिवाभाग को पावन किया आपके जन्म ने। द्वादश वर्ष की आयु में पितृव्य शंकर भट्ट जी से पाण्डित्य शिक्षा पूरी की। सम्वत् १६०२ में ब्रजागमन एवं गुरु ब्रह्मचारी जी के निकट रहकर उनसे सम्प्रदाय रहस्य की शिक्षा प्राप्त की। ब्रज तीर्थों का उद्धार कर सम्वत् १६०९ में 'श्रीब्रजभक्तिविलास' जैसे अनुपम ग्रन्थ की रचना की। सम्वत् १६१२ में 'ब्रजोत्सव चन्द्रिका' ग्रन्थ के जनक बने। सम्वत् १६२६ में आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को किशोरी श्रीराधा का प्राकट्य आप श्री के द्वारा हुआ। सम्वत् लगभग १७०० वामन जयन्ती के अवसर पर आपने धाम प्रवेश किया।

श्रीनाभा जी के शब्दों में –

ब्रजभूमि उपासक भट्ट सो रचि पचि हरि एकै कियौ ॥
गोप्य स्थल मथुरा मण्डल जिते वाराह बखाने ।
ते किये नारायण प्रगट प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने ॥
भक्तिसुधा कौ सिन्धु सदा सतसंग समाजन ।
परम रसज्ञ अनन्य कृष्णलीला कौ भाजन ॥
ज्ञान स्मारत पच्छ कौं नाहिन कोउ खण्डन बियौ ।
ब्रजभूमि उपासक भट्ट सो रचि पचि हरि एकै कियौ ॥

अर्थात् – ब्रह्मा की सृष्टि से बाहर बड़े श्रम से बनाया बनवारी ने इस व्यक्तित्व को। वाराह पुराण में वाराह प्रभु व भू देवी के सम्वाद में उल्लिखित तत् समस्त लीला स्थलियों का प्राकट्य किया श्री नारायण भट्ट जी ने।

प्राकट्य विधि

लीला भूमि में आराधना पूर्वक निवास करने पर स्वयं लीला बिहारी ही आकर तत्तीर्थों (विग्रह, सर, वन) का साक्षात्कार कराते, तब भट्ट जी उस स्थल पर निर्मल बालकों द्वारा तल्लीला का अभिनय कराते। एक समय माघ मास के अवसर पर कुछ यात्री गण त्रिवेणी स्नान को जा रहे थे उन्हें देखकर नारायण भट्ट जी ने तुरन्त ही कहा –

भट्ट जी – "आप लोग ब्रज त्रिवेणी को त्याग कर अन्यत्र क्यों जा रहे हैं?"

"ब्रज में भला त्रिवेणी कहाँ !!" यात्रियों ने चकित हो पूछा।

भट्ट जी – "श्री ऊँचे गाँव में"।

श्री भट्ट जी सभी यात्रियों को ऊँचे गाँव में लाये एवं भूमि खनन कर त्रिवेणी की तीनों धाराओं का दर्शन कराया।

त्रिवेणी – "भट्ट जी ! श्रीहरि ने आहूत कर राधा-श्याम कुण्ड में जब से मुझे वास दिया, उसके पश्चात् मैं ब्रज छोड़कर पुनः गई ही नहीं। तब से मेरा प्रवास ब्रज ही बन गया है।"

एक बार तो ऐसी ब्रज महिमा गाई भट्ट जी ने कि स्वयं प्रयागराज को भी नत कर दिया।

एक बार गोदावरी में स्नान करते समय युगल ने अपना दर्शन कराया एवं निर्देश दिया।

युगल सरकार – "भट्ट जी ! अति शीघ्र ब्रज प्रस्थान कर अब आप हमारी लीला स्थलियों को प्रकाशित करो (लाड़िलेय नामक विग्रह देते हुए) यह लो मेरा बाल स्वरूप, यह तुम्हें ब्रज लीला रहस्यों का बोध करायेगा।"

युगलाज्ञा से आपने तुरन्त ही ब्रज की ओर प्रस्थान कर दिया। श्री गोवर्द्धन पहुँचते-पहुँचते ढाई वर्ष हो गए। उस समय सनातन गोस्वामी के श्री मदनमोहन यहीं थे। सनातन जी एवं कृष्णदास जी ब्रह्मचारी सेवायत थे। राजभोग के दर्शन करके अभी शयन ही किया था कि भट्ट जी पहुँच गए मन्दिर में, आपके पहुँचते ही स्वतः द्वार खुल गया। श्रीप्रभु ने मस्तक पर वरद हस्त रखते हुए उन्हें युगल मन्त्र का उपदेश किया एवं श्रीराधिका रानी ने प्रेम लक्षणा भक्ति प्रदान की। वार्ता के इसी बीच श्रीसनातन जी व श्रीकृष्ण दास जी ब्रह्मचारी की निद्रा टूटी तो देखा – भक्त-भगवान् का प्रत्यक्ष मिलन हो रहा है। प्रभु ने आदेश दिया श्रीकृष्ण दास जी को कि आप नारायण भट्ट जी को सम्प्रदाय-सिद्धांतोपदेश दें तब श्रीकृष्ण दास जी द्वारा आपको सम्प्रदाय-सिद्धांतोपदेश प्राप्त हुआ। लीला स्थलों के प्रकटीकरण में ब्रजवासियों का भी सहयोग मिलने लगा। दिल्लीश्वर बादशाह अकबर ने आपके भजन-सेवा से प्रभावित होकर अपने कोषाध्यक्ष (टोडरमल) को सेवार्थ भेजा।

टोडरमल – "महाभाग ! कोई सेवा बताएँ।"

नारायण भट्ट जी – "यदि विशेष इच्छा है सेवा की तो ब्रज के जिन-जिन तीर्थों का प्राकट्य हो चुका है उन्हें स्वरुपानुरूप सुसज्जित, सुरक्षित करें।" आदेशानुसार टोडरमल ने तीर्थ स्थलों में सुन्दर निर्माण कार्य कराया।

श्री बरसाना गाँव में "श्रीराधारानी" एवं ऊंचा गाँव में "श्रीदाऊ जी" आपके प्रकटित विग्रहों में अति प्रसिद्ध एवं प्रपूज्य हैं। इन दो सेव्य विग्रहों की सेवा पूजा आप स्वयं ही करते थे।

अनन्तर पिता के आग्रह पर आपने विवाह कर श्री दामोदर नामक पुत्र को जन्म दिया। तत्कालीन वैष्णव समाज ने आपको ब्रजाचार्य पद पर अभिषिक्त किया। ब्रज में स्थान-स्थान पर रासादि लीलानुकरण भी आपने बहुत कराया। बारह वर्ष तक श्रीराधा कुण्ड पर वास किया, पश्चात् शेष जीवन ऊँचे गाँव में व्यतीत किया।

भट्ट जी द्वारा प्रकटित प्रधान तीर्थ –

गोवर्द्धन में मानसी गंगा ......(ब्रज भक्ति विलास में देखें पृष्ठ - २)

भट्ट जी की कृति –

१. ब्रजभक्ति विलास
२. ब्रज दीपिका
३. ब्रजोत्सव चन्द्रिका
४. ब्रज महोदधि
५. ब्रजोत्सव ह्लादिनी
६. बृहद् ब्रज गुणोत्सव [1]
७. ब्रज प्रकाश

ये सात ग्रन्थ राधा कुण्ड में मदनमोहन प्रभु व गुरु श्रीकृष्ण दास जी ब्रह्मचारी के सानिध्य में ही लिखे। ऊँचे गाँव में रहते समय ५२ ग्रंथों का निर्माण किया।

संकेत वट में स्वयं श्रीराधा रमण लाल ने भागवत पर टीका करने की आज्ञा दी तब –

'रसिकाह्लादिनी' टीका का निर्माण हुआ। भट्ट जी द्वारा रचित 'प्रेमांकुर नाटक' ग्रन्थ में दान, मान, मगरोकनी, नोक-झोंक, भाण्ड फोड़नी, निकुंज रचना, निकुंज भेद एवं चिकसोली बरसाना में तेरस के दिन जो मटकी फोड़ लीला (बूढ़ी लीला) होती है वह भी इसी ग्रन्थ के आधार पर है। सम्प्रति 'प्रेमांकुर नाटक' एवं 'बृहद् ब्रज गुणोत्सव' ये दोनों दिव्य ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। भट्ट जी द्वारा प्रकटित प्रधान विग्रह बरसाने में श्री लाड़ली जी, ऊँचे ग्राम में श्री दाऊ जी, खायरा में श्री गोपीनाथ जी, संकेत में संकेत देवी व राधा रमण जी, शेषशायी में पौढा नाथ, दाऊ जी में बलदेव जी, पैंठा में चतुर्भुज जी, मथुरा में महा-विद्या, दीर्घ विष्णु, महाविष्णु एवं वाराह भगवान्, आदिबद्री जी, कामेश्वरमहादेवादिक। आपके नित्य संगी श्री लाड़िलेय प्रभु वर्तमान में अलवर रियासत के अन्तर्गत नीमराना नामक स्थान पर विराजमान हैं जिनकी सेवा भट्ट जी के घराने की शिष्य परम्परा द्वारा जारी है।

भट्ट जी की गुरु परम्परा

श्रीमन् चैतन्य देव के पार्षद श्री गदाधर पंडित, उनके शिष्य श्रीकृष्ण दास ब्रह्मचारी जी एवं ब्रह्मचारी जी के ही शिष्य हैं श्री नारायण भट्ट गोस्वामी।

[1] खेद है, अथक् प्रयास के बाद भी २६,००० श्लोक रत्नों वाली यह रत्न-मञ्जूषा 'बृहद् ब्रज गुणोत्सव' उपलब्ध न हो सकी। ब्रज की समस्त ग्रामटिकाओं का इतिहास संजोये निश्चित ही यह ग्रन्थ असमोर्ध्व है। वैष्णव जगत पर परमोपकार करने के निमित्त यदि कोई महाभाग एक बार भी ग्रन्थ-दर्शन करा दे तो संस्था द्वारा उचित पुरस्कार देने की घोषणा है। साथ ही उस परमोदार व्यक्ति का नाम रत्न-जटित लेख में प्रकाशित हो अमर हो जाएगा। भगवद्प्रियता की प्राप्ति में तो संदेह ही कैसा?

भक्तमाल टीकाकार प्रियादास जी कहते हैं –

गोसांई सनातन जू मदनमोहन रूप माथे पधराय कही सेवा नीकी कीजिये,
जानौ कृष्णदास ब्रह्मचारी अधिकारी भये भट्ट श्री नारायण जू शिष्य किये रीझिये ।

युगल सरकार की उपासना ही आपके सम्प्रदाय में प्रधान है। ब्रज के लुप्त-गुप्त लीला स्थलों के प्रकाशन रूपी उपकार का समस्त वैष्णव समूह सदैव आभारी रहेगा। विशेष जानने के लिए नारायण भट्ट चरितामृत देखें।

रंगीली गली

श्रीराधा कृष्ण विवाह लीला कई स्थानों पर गाई गयी है। (पद्म पुराण उत्तरखण्ड में) दन्तवक्त्र का वध करके श्रीकृष्ण ब्रज में आते हैं और सभी ब्रजवासियों से मिलते हैं। श्रीमद्भागवत में भी द्वारिका से ब्रज में आने का उल्लेख मिलता है।

यथा –

"यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया"

(भा.१/११/९)

इसी आधार पर श्री जीवगोस्वामी जी ने गोपाल चम्पू (उत्तर) में 'राधाकृष्ण विवाह' गाया है। हरिविलासलीला तन्त्र, आदि पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी विवाह लीला का गान है। विवाह के बाद होरी खेलने श्रीकृष्ण बरसाने आते हैं, उसके बाद नन्दलाल का स्वांग दल बरसाने आता है, जिस स्वांग में ब्रह्मा, रूद्र, सनकादि, शुकदेव जी, नारद प्रभृति भाग लेते हैं। जिनमें कामदेव 'कामिनी' बनते हैं और ललिता जी वृषभानु जी से उनका ब्याह रचाती हैं। रानी कीर्ति को भी नेग न्यौछावर की प्राप्ति होती है।

इस स्वांग की बारात का थोड़ा सा वर्णन देखिये

साँचे स्वाँगनि साजि सबै समूह सुहायौ ।
चारि बदन कौ स्वाँग चतुर चतुरानन ल्यायौ ॥
घूमत आयौ इन्द्र स्वाँग उन्मत्त जनायौ ।
देखि नंद के लाल गाल धरि जंत्र बजायौ ॥
सनकादिक चारयौनि सज्यौ सन्यास सुहायौ ।
तथा व्यास कौ पूत धूत शुकदेव बनायौ ॥
महादेव पटतार देत यह पट जु मचायौ ।
हरी कौ है बावरौ सु नारद नाचत आयौ ॥
ब्रज बीथिनु के बीचि कीच में लोट लुटायौ ।
माया ने पूतना है लै नारद दुलरायौ ॥
काम कामिनी बन्यौ सबनि कौ चित्त चुरायौ ।

गठिजोरा वृषभानु जान सों जाइ करायौ ॥
ललिता जोरी गांठि भान कें ब्याह रचायौ ।
पीत पिछोरी तांनि रंगीलौ मंडप छायौ ॥
नवल आँम के मौर कौ मौरी मौर बनायो ।
नग न्यौछावर कीनें कीरति कलश धरायौ ॥
मन की भाँवरि दीनी चित कौ चौक पुरायौ ।
होरी की अठवारी करि दूलह दुलरायौ ॥
नीकी बनी बरात बरातिनि रंग बढ़ायौ ।
होरी की गारिन कौ शाषा चारि पढ़ायौ ॥

(श्रं.र.सा.११७)

'रसिक नरहरिया जी' का यह पद प्रति वर्ष श्रीजी के मन्दिर में पांडे लीला के दिन गाया जाता है। ब्रह्मा, शिवादि की भी लीला में सहभागिता सर्वत्र भगवद इच्छा से होती है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जैसे राधा-कृष्ण जन्म पर शिवादि का दर्शनार्थ आगमन, इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए –

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः।
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः॥

(भा.१०/३५/१५)

इनमें इन्द्र, शिव, ब्रह्मा के साथ **'पुरोगाः'** के अर्थ में इनके टोल भी आये हैं। इन्द्र के साथ अन्य अप्सरा, गन्धर्व आदि, श्री शिव के साथ दुर्गा, गणेश, स्कन्द आदि, ब्रह्मा के साथ सरस्वती व अन्य। सनकादिक भी कृष्ण कृपा से ब्रज लीला दर्शनार्थ आते हैं, देवगण भी वेष बदल कर आते हैं।

देवा गोपालरूपिणः (भा.१०/१८/११) तथा (भा.१०/३३/०४, १९, २४) भी दृष्टव्य है।

इसी प्रकार राम विवाह में भी बाल काण्ड में ३१८वें दोहा में भी रमा, पार्वती आदि **'कपट नारि बर बेष बनाई'** एवं ३१९ वें दोहा **'ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ'** ३१७ में भी **'लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सम सारद कहैं'**।

इसी रस वर्षा से लुब्ध देवगण यहाँ आते हैं, तभी तो नाम **बरसाना** है। इसके बाद दूसरे दिन नवमी को लट्ठमार होरी होती है। जिसमें बरसाने की गोपियाँ, नन्दगाँव के ग्वालों पर लट्ठ से प्रहार करती हैं और वे रोकते हैं। रसिकों ने श्रीकृष्ण की गौरवपूर्ण हार का वर्णन करके बड़े शान के साथ उनके भागने का भी वर्णन किया है।

'माधव दास जी' की प्रसिद्ध धमार –

हो-हो बोलत डोलत मोहन खेलत होरी ।
बंस लिये गोपी हाथ भरे रंग भाजन फोरी ।
मार परी मुरी आय टिके ब्रजराज की पौरी ॥

यहाँ लट्ठमार में बाँस या लट्ठ की परम्परा क्यों रखी गयी है? इसके कई कारण हैं। जैसे – नायक की अधिक चपलता को रोकने के लिए लकुट ही काम आती है और गोपीजनों के लट्ठ प्रहार को ग्वाल ढालों के द्वारा बचाते हैं, रसमय हास-परिहास करते हुए।

श्री विट्ठल दास जी की प्रसिद्ध धमार –

ब्रज में होरी रंग बढ्यौ हो ।
तब नन्दनन्दन फगुआ देन मिस प्यारी सन्मुख आय ॥
मृगमद केसर और अरगजा भीजे उर लपटाय ।
तब सकुची गोपी सब कनक लकुट लै हाथ ॥
पकरन धाईं छबीले लाल को खसत झीने पटभात ।
भागे सकल सखा संग के तब मोहन लीने घेर ॥
अछन उठा गयी ले पिय को फिर चितवत मुख फेर ।

यही कारण 'गोवर्धनेश जी' की प्रसिद्ध धमार में भी देखिये –

हों खेलूँगी होरी में आँखिन भरयो न गुलाल ।
इत हलधर नन्दनन्दन दोउ ग्वालन में कियो शोर ।
रतन जटित पिचकारी भरि लीनों केशर नीर ॥
ताक-ताक युवती गण ऊपर छिरक कियो हियो सिर ।
तब प्यारी सखियन लै धाई बसन लीने हाथ ॥
सुरंग गुलाल उड़ाय दूहूँ दिशि धाय गहे ब्रजनाथ ।

इस प्रसंग में नायक की हार ही रस वृद्धि का कारण होती है। यह भी लट्ठ का एक मुख्य कारण है। श्रीकृष्ण, श्रीजी के लिये हार बनाकर ले जाते हैं। हार के बदले वे पराजय का हार देकर इनका रस गौरव बढ़ाती हैं।

श्री श्याम दास जी की प्रसिद्ध धमार देखिये –

खेलो होरी फाग सबे मिलि झूमक गावो ॥
संग सखा खेलन चले वृषभान गोप की पौरी ।
श्रवन सुनत सब गोपिका गईहें कुंवरी पें दौरी ॥
मोहन राधा कारनें गुहि लीनों नोसर हार ।
हार हेत दरसन भयो सब ग्वालन कियो जुहार ॥
राधा ललिता सों कह्यो नेक हार हाथ तें लेहु ।

चंद्रभगा सों यों कह्यो नेंक इनहीं बेठन देहु ॥
बहोत भांति बीरा दिये कीनो बहोत सन्मान ।
राधा मुख निरखत हरि मानो मधुप करत मधुपान ॥
मोहन कर पिचकाई लीये बंस लीये ब्रजनारी
जीती राधा गोपिका सब ग्वालन मानीहार ॥

यही होरी दशमी को नन्दगाँव में भी होती है, जिसे हम नन्दगाँव की ही रंगीली में दिखायेंगे।

छोटा सा प्रसंग बताते हैं। जब ग्वाल-बाल नन्दगाँव से पीली पोखर आते हैं और आपस में कहते हैं –

"बरसाने चलो खेले होरी बरसाने"

चलो बरसाने, क्यों? क्योंकि वहाँ लाला, राधा रानी के साथ बसते हैं।

जब बरसाने पहुँच जाते हैं तो राधा रानी से बोलते हैं कि हे राधे ! हमें दर्शन दो।

"दरसन दे निकस अटा में ते ---"

राधा रानी से प्रार्थना किया, श्रीजी महल के बाहर आकर खड़ी हो गयीं। नीचे नन्दलाल खड़े हैं। अब राधा रानी कैसे खड़ी हैं महल में और कैसे दर्शन दे रही हैं, वह छवि देखो। श्याम सुन्दर की पिचकारी का रंग जब ऊपर महल तक नहीं पहुँचा तो प्रेम की मार कर रहे हैं, ऊपर प्रीति भेज रहे हैं।

बरसाना में रंगीली होरी ५००० वर्ष से भी अधिक पुरानी है और इसका प्रमाण 'गर्ग संहिता' में है। ब्रज में नौ उपनन्द थे, जो सभी गुणों से युक्त व धनवान-शीलवान थे। इनके घर में देवों के वरदान से गोप कन्यायें उत्पन्न हुईं। वे सभी राधा रानी की सखियाँ अनुचरी थीं। एक समय बसंत ऋतु आयी, सभी ने होरी का उत्सव प्रारम्भ करना चाहा परन्तु होरी उत्सव प्रारम्भ कैसे हो, श्रीजी तो 'मान लीला' में हैं। सब सखियाँ श्रीजी के पास जाती हैं और कहती हैं कि हे राधा रानी ! हे चन्द्रबदने ! हे मधुमान करने वाली मानिनी ! हमारी बात सुनो, यह होरी का उत्सव है ! इस उत्सव को मनाने के लिये तुम्हारे कुल में ब्रज के भूषण नीलमणि नन्दलाल आये हुए हैं। श्याम सुन्दर की ऐसी शोभा है –

"श्रीयौवनोन्मद विघूर्णित .... स्वपदारुणेन"

(ग.सं.मा.खं.१२/८)

"हे राधे ! यौवन की शोभा से ब्रजराज के नेत्र मद से झूम रहे हैं। घुंघराली, काली-काली लटूरियाँ उनके गोल-गोल कपोलों पर लटक रहीं हैं और उनकी लटूरियों की, उनके केशों की जो छटा है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। पीला जामा बड़ा घेरदार है और पाँवों में नूपुर छम-छम बज रहे हैं। बरसाने की ओर से चले आ रहे हैं। यशोदाजी के द्वारा धारण कराया गया मुकुट सूर्य की तरह प्रकाशमान हो रहा है। कुण्डल ऐसे चमक रहे हैं जैसे बिजली

चमक रही हो। उनके गले में बनमाला ऐसी लगती है जैसे बादल बिजली के साथ आ गए हों। उनका सारा शरीर लाल रंग से रंगा हुआ है और उनके हाथ में पिचकारी है। हे राधे ! वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इस होरी को नन्ददास जी ने इस तरह से गाया है। राधा रानी से सखियाँ कहती हैं कि हे राधे ! आज के दिन आप मान क्यों करती हैं? मान छोड़कर चलिये होरी के मैदान में –

"अरी चल नवल किशोरी गोरी भोरी होरी खेलन जांहि"

(श्रृं.र.सा)

कैसी सुन्दर चाँदनी रात है ! ऐसे में आपको कैसे घर में बैठना अच्छा लगता है? हे राधे ! वहाँ हर गाँव के गोपी-ग्वालों के टोल जुड़ रहे हैं।

उधर श्याम सुन्दर आये और उन्होंने देखा कि कोटि-कोटि गोपियाँ हैं किन्तु उनकी आँखें जिसे ढूँढ़ रही थीं, वो राधा रानी वहाँ नहीं हैं। श्याम सुन्दर ने चारों ओर देखा पर श्रीजी नहीं थीं, नेत्र नीचे करके उदास हो गये। करोड़ों गोपियाँ हैं पर **राधा रानी** नहीं हैं।

श्याम सुन्दर ने विशाखा जी को आँखों से पूछा कि 'श्रीजी' कहाँ हैं?

विशाखा ने कहा – "श्रीजी नहीं आईं", संकेत कर दिया कि अभी जाओ, तो विशाखा जी जाकर श्रीजी से बोलीं..."अब आप देर मत करो। बरसाने में श्याम सुन्दर बन-ठन के आये हैं, अब तुम चलो।" श्रीजी मुस्करा गयीं तो विशाखा जी समझ गयीं कि लाड़ली जी मान गयी हैं। विशाखा जी ने बाँह पकड़ कर उठा लिया कि अब चलो और श्रीजी का श्रृंगार किया। श्रीजी जब चलीं तो ऐसे चल रही हैं कि कमर में लचक आ रही है।

उनका रूप ऐसे लगता है जैसे कि चमकती हुई ज्योति ! जैसे हवा में दीपक की ज्योति छनछनाती है ! चलते समय एक लट श्रीजी के गालों पे लटक आयी है और वो लट लटक कर गालों में जो नासिका का मोती है, उस मोती में उलझ गयी।

नन्ददास जी कहते हैं कि जैसे कोई मछली फाँसने वाला पानी में काँटा डालता है तो काँटे के नीचे आटे की गोली लगा देता है और मछली उसमें फँस जाती है। वैसे ही श्रीजी की एक घुँघराली लट जो लटकी, वह तो काँटा थी, लट मोती में उलझ गयी तो मोती आटे का चारा थी और मछली फँस गयी ! मछली क्या था? श्याम सुन्दर का मन !

चारों ओर सखियाँ और बीच में श्रीजी जा रही हैं तो ऐसा लगता है कि चारों ओर कुमुदनियाँ खिल रहीं हैं, एक चाँद जा रहा है, ये गौर चाँद राधा रानी हैं। ये चाँद आज पैदल जा रहा है। वहाँ पर अब खेल शुरू हुआ, पहले तो गुलाल से खेल हुआ। गुलाल के खेल के बीच में से श्याम सुन्दर ने श्रीजी को धोखे से पिचकारी मार दी तो श्रीजी ने मान कर लिया कि गुलाल से खेल हो रहा था, तुम जब हारने लगे तो बेइमानी क्यों की?

हुआ ये कि श्रीजी ने मान कर लिया और खेल रुक गया। यह तो बड़ा गड़बड़ हो गया, सारा रस ही चला गया। ललिता जी के पास मुकद्दमा गया कि इसका फैसला क्या होगा? तो

ललिता जी ने कहा कि आप जो चाहो वह दण्ड इनको दे दो। इन्होंने बेइमानी तो की ही है। बोलीं कि क्या दण्ड दिया जाये? अब क्या दण्ड हुआ ये भी सुनिए।

गुलाल का खेल तो बहुत हुआ। गुलाल के खेल में जब श्याम सुन्दर हारने लग गये तो उन्होंने सबकी दृष्टि बचाकर बेइमानी की और श्रीजी को पिचकारी मार दी। श्रीजी बहुत चतुर हैं, वे जानती हैं कि अगर ये हारेंगे तो कोई न कोई बेइमानी जरुर करेंगे तो जैसे ही उन्होंने पिचकारी मारी, श्रीजी ने बड़ी चतुरता से मुड़कर उस धार को बाँये हाथ से रोक दिया। मारी तो थी श्याम सुन्दर ने कि सारा ऊपर से नीचे तक तर-बतर कर देंगे पर श्रीजी भी बड़ी खिलाड़ हैं। सारी धारा को अपने हाथ से रोक दिया पर फिर भी कुछ छींटे उनके गौर कपोलों पर आकर लग गये तो वह इतना अच्छा लग रहा था कि आप लोगों को हम क्या उपमा दें? जैसे अमरुद पर लाल-लाल छीटें जब पड़ जाते हैं तो बहुत अच्छे लगते हैं। वह इतनी अच्छी लगीं कि श्याम सुन्दर का होरी का खेल रुक गया और श्रीजी के पास आकर वो उन छींटों को देखने लग गये।

ऐसी शोभा हुई उनकी कि खेल ही रुक गया। श्याम सुन्दर समझ गये कि श्रीजी जरुर मान में हैं। बोले कि चलो फिर से खेलें। जब श्याम सुन्दर विनती करते हैं तो श्रीजी बोलीं कि – जाओ, तुम बेइमान हो। सब सखियाँ इकठ्ठी हो गयीं और मुकद्दमा पुनः ललिता जी के पास गया। ललिता जी ने कहा कि – इन्हें हम यह दण्ड देती हैं कि इनकी आँखों में काजल लगा दिया जाय। होरी में यह बहुत बड़ा दण्ड है। होरी का काजल ऐसे नहीं होता। होरी का काजल गाढ़ा पोता जाता है। बोलीं – "मंजूर है दोनों को? " यह बदला रस भरा है।

श्रीजी ने दोनों हाथों की उंगलियों में काजल लिया। एक उंगली से नहीं, दोनों उंगली से काजल लिया। एक हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया कि कोई गड़बड़ न करें और दूसरे हाथ से काजल ले, उनके नेत्रों को देख रही हैं। वो भी देख रहे हैं कि जल्दी से काजल लगाएँ। जैसे ही वह काजल का हाथ ले कर जाती हैं तो वह गाल हटा देते हैं। झगड़ा बढ़ा, खींचातानी में श्रीजी ने अपनी बाँयी भुजा से उनको ऐसे कस लिया कि उनकी गर्दन हिल नहीं पायी और काजल लगा दिया।

यह लीला उसी दिन बरसाने में हुई। उसी के अंत में लिखते हैं कि श्रीकृष्ण को श्रीराधा रानी के हाथों से जब काजल लग गया तो अपना पटका राधा रानी को भेंट करके अपने घर चले गये। जो हार जाता है, वह पटका भेंट करता है। यह 'गर्ग संहिता' की होरी की लीला सुनायी।

जब बरसाने वाली नन्दगाँव में जाती हैं होरी खेलने तब गोपियाँ कहती हैं –

दरसन दै मोर मुकट वारे दरसन दै ।
चंदा-सूरज तेरो ध्यान धरत हैं, ध्यान धरे नौ लख तारे ।
गल बैजन्ती माला सोहै, कानन में कुंडल वारे ।

रंगीली होरी के बारे में लिखा है कि जब श्रीकृष्ण बरसाने में होरी खेलने आते हैं, वह पूरे मद में होते हैं।

क्या यह यौवन का मद है?

बोले – "नहीं-नहीं, अपनी जवानी का मद नहीं है, कुछ और बात है।" यौवन है श्रीराधा रानी पर और गर्व हो रहा है श्रीकृष्ण को?

"लाड़लो गोरी के गुण गरबीलो"

यह विचित्र रस है ! श्रीकृष्ण अपने मद भरे नेत्र घुमा रहे हैं। उनके गालों पर लटूरियाँ छा रही हैं। उनकी ऐसी शोभा है, जैसे कोई नयी चूनरी लेकर फरफराती चली आ रही है। ये अदा है ! इस अदा से वो अपने जामा को हिलाते हुए चले आ रहे हैं। चरणों से नूपुरों की छम-छम आवाज आ रही है। इस तरह से श्रीकृष्ण मुकुट पहने, बरसाने में होरी खेलने आये हैं –

कान्हा धरे रे मुकुट खेलैं होरी ।
उतते आये कुंवर कन्हैया इतते राधा गोरी ॥
फेंट गुलाल हाथ पिचकारी, मारत भर-भर झोरी ।
'रसिक गोविन्द' अभिराम श्यामघन जुग जीवौ यह जोरी ॥

एक और बहुत सुन्दर पद है, जिसमें श्रीकृष्ण की बारात नंदगाँव से बरसाने में होरी खेलने जा रही है। नन्दगाँव से जब श्याम सुन्दर बारात में चले हैं तो श्रीकृष्ण के साथ सब देवगण भी होरी का स्वांग बना कर चल पड़े। उसमें ब्रह्मा जी आये हैं, महादेव जी आये हैं, शुकदेव जी आये हैं, सनकादिक भी आये हैं।

ये होरी उत्सव परम्परा आज तक बरसाने में चलती आ रही है। जो बरसाने में पाण्ड़े लीला से प्रारम्भ होती है। अष्टमी के दिन नन्दगाँव से पाण्ड़े जी होरी का निमंत्रण लेकर आते हैं –

नन्दगाँव कौ पाँड़े ब्रज बरसाने आयौ ।
भरि होरी के बीच सजन समध्याने धायौ ॥
पाँड़े जू के पायनि कों हँसि शीश नवायौ ।
अति उदार वृषभानु राय सन्मान करायौ ॥
पाँय धुवाय अन्हवाई प्रथम भोजन करवायौ ।
भानु भवन भई भीर फाग कौ खेल मचायौ ॥
समध्याने की गारी सुनत श्रवण सुख पायौ ।
धाई आई और सखी जिनि सोंधो नायौ ॥
शीशी सर ते ढोरी फुलेल अंग झलकायौ ।
हनुमान की प्रतिमा मानौ तेल चढायौ ॥
काजर सों मुख माढ़यौ वन्दन बिन्दु बनायौ ।

कारे कर सहि चुवत मनौं चपरा चपकायौ ॥
गज गामिनि गौछनि में तकि तुकमा लपटायौ ।
देह धरें मानों फागुन ब्रज में खेलन आयौ ॥
माथे तें मोहनी मठा कौ माट ढ़ुरायौ ।
मानों काचे दूध श्याम गिरवरहि न्हवायौ ॥
लियौ लुगाइनि घेरि नरें नाना के आयौ ।
तब श्री राधा राधा कहि अपनौ बोल सुनायौ ॥
चंचल चन्द्र मुखीनि चहुँ धां तें जू दबायौ ।
अहो भानु की कुँवरी शरण हौं तेरी आयौ ॥
कोमल बानी सुनत गरौ राधा भरि आयौ ।
बाबा जू कौ दगल लली जू लै पहिरायौ ॥
कीरति पाँय लागि लागि तातौ पय प्यायौ ।
मन वांछित निधि दीनी तन तें ताप नसायौ ॥

(श्रृं.र.सा)

उस दिन बरसाने की गोपियों ने पाण्ड़े जी को घेर लिया और न जाने कितने रंग के मटके उन पर डाले। पाण्ड़े जी बेचारे चिल्लाने लग गये और श्रीराधा रानी की टेर लगाई .... "श्री राधे ऽ ऽ ऽ ऽ हे राधे ! बचाओ .... इन बरसाने की गोपियों से।" श्रीजी को बहुत करुणा आयी और जाकर पाँड़े जी को गोपियों से छुड़ाया। उनको अपने घर ले आयीं और बाबा का दगला (गर्म झंगा) पहनने को दिया। कीर्ति माता ने उनको गर्म दूध पिलाया और पांड़े जी राधा रानी की जय-जयकार करते नन्दगाँव चले जाते हैं और अगले दिन 'नवमी' को ठाकुर जी की होरी की बारात बरसाने आती है। स्वांग में सब देवता आए। जैसे रामायण में लिखा है सीता-राम के विवाह में पार्वती जी सामान्य नारी का रूप धारण करके आयीं और राम जी को विवाह की रीति सिखाई कि इस रस्म को ऐसे करो और उस रस्म को वैसे करो। सरस्वती जी सीता जी का पक्ष लेकर उनको विवाह के रस्मों के दाँव पेच सिखाती हैं ताकि वो हार न जाएँ।

'होरी की बारात' में सब देवता भाग लेने के लिए आ गए हैं –

साँचे स्वाँगनि साजि सबै समूह सुहायौ ॥
चारि बदन कौ स्वाँग चतुर चतुरानन ल्यायौ ।
घूमत आयौ इन्द्र स्वाँग उन्मत्त जनायौ ॥
देखि नन्द के लाल गाल धरि जंत्र बजायौ ।
सनकादिक चारयौनि सज्यौ सन्यास सुहायौ ॥
तथा व्यास देव कौ पूत धूत शुकदेव बनायौ ।
महादेव पटतार देत यह पट जु मचायौ ॥

(श्रृं.र.सा)

सबसे आगे ब्रह्मा जी, चार मुख को मटकाते चले आ रहे हैं। ब्रजवासी कह रहे हैं, यह कौन है चार मुख वाला? इसके चारों ही मुँह मटक रहे हैं। ब्रजवासी बड़े हँस रहे है कि इसे कहाँ से पकड़ लाये है। चार मुख की कोई सुन्दरता नहीं होती है। अब बात भी सही है कि चार मुख वाले से कोई बेचारी कैसे प्रेम करे? मुसीबत हो जायेगी, कौन से मुख से वह बोलेगी, पूर्व वाले से या उत्तर वाले से। ब्रह्मा जी के पीछे इन्द्र चले आ रहे हैं। इन्द्र ने पागल का रूप बनाया है और गाल को यंत्र बनाकर आवाज कर रहे हैं। यह देख सब ब्रजवासी हँस रहे हैं, यह ठाकुर जी की बारात है। १६ साल के शुकदेव जी बड़े सुन्दर हैं और आगे बारात में नंगे चल रहे हैं। महादेव जी बारात में डमरू बजाते चल रहे हैं। नारद जी पागलों की तरह, ब्रज की रज में लोटते हुए चले आ रहे हैं।

ठाकुर जी की बारात में माया ने भी आकर के पूतना का रूप बना लिया। उस पूतना ने तो सुन्दर रूप बनाया था लेकिन इस माया रूपी पूतना ने बड़ा विशाल रूप बना कर नारद जी को गोद में ले लिया और नारद जी को प्यार कर रही है। अरे ! कृष्ण जब छोटे थे ६ दिन के तो पूतना ने छोटा और सुन्दर रूप बनाया था और जब नारद इतने लम्बे हैं, तब यहाँ पूतना ने उतना ही बड़ा विशाल रूप बनाकर नारद जी को स्तन पान कराने लगी, इसप्रकार ये है ठाकुर जी की होरी की बारात।

एक और होरी की लीला है, जिसमें बसंत पंचमी के दिन श्रीकृष्ण जोगी बनकर बरसाने में सबको दर्शन देने आते हैं।

"बाघम्बर ओढ़े सांवरो"

श्रीकृष्ण बाघम्बर ओढ़कर अकेले आये हैं और अंगों में बड़ी सुन्दर नीले रंग की भभूति लगी हुई है। बरसाने में आकर उन्होंने शंख बजाया, सब सखियाँ शंख की आवाज सुन कर राधा रानी को आगे लेकर चलीं कि किशोरी जी कोई आया है, शंख बज रहा है। लोग कहते हैं कि बड़ा ऊँचा महात्मा है, चलो देखें।

सब किशोरी जी के साथ वहाँ पर आई। जोगीराज ने जब देखा कि श्रीजी सखियों के साथ आ रही हैं तब उन्होंने सोचा कि चलो, आसन जमा लें क्योंकि बिना ढोंग के काम नहीं चलता। श्याम सुन्दर ने देखा, श्रीजी आ रही हैं, अच्छे-अच्छे यजमान आ रहे हैं, अतः पहले आसन जमाया, फिर नेत्र बंद कर लिये।

श्रीजी – "बड़ा सुन्दर जोगी है, पास में कमण्डल भी है।"

१ सखी – "देखो तो नीचे मृगछाला और ऊपर बाघम्बर।"

२ सखी – "इसकी भृकुटी बड़ी कटीली है।"

३ सखी –"चलो चलो पूछें तो कहाँ से आया है, कौन है? "

(सब निकट पहुँचती हैं और एक साथ)

"बाबा प्रणाम !! बाबा दण्डवत् !! "

१ सखी – "महाराज ! आप कहाँ से पधारे हैं? "

२ सखी – और "अब आप कहाँ जाओगे? "

(जोगीराज मौन रहे, कुछ नहीं बोले)

(सब सखियाँ आपस में) एक सखी "महात्मा तो बड़ा ऊँचा लगता है।"

३ सखी – "देखो तो, समाधि में कैसा डूबा हुआ है।"

(एक बार पुनः प्रयास)

"जोगीराज जी ! महाराज जी ! कहाँ से आये हो? "

(धीरे-धीरे नेत्र खोलते हुए) "दक्षिण दिशा से आये हैं हम।"

"ओह ! तो यह गिरिराज जी की ओर से आया है, यहाँ से गिरिराज दक्षिण दिशा में है।"

(किशोरी जी हँसते हुए थोड़ा व्यंग करती हैं) "जोगीराज जी ! बाबा जी बने तो वन में रहते, और यदि वन में नहीं रहना था तो बाबा जी क्यों बने? तपस्वियों का वेष क्यों लजा रहे हो? शंख बजाते हुए, बरसाने की वीथियों में घूम रहे हो, घर घर घूमना तपस्वियों का काम नहीं है।"

"आखिर तो हमारी राधा ६४ कलाओं की ज्ञाता है।" सब गोपियों ने एक साथ हँसते हुए कहा।

राधा बोलीं – "जोगी तो भभूति, राखादि लगाते हैं और आप ये सुन्दर सुगन्धित चन्दन लगाये घूम रहे हैं, जोगी का श्रृंगार से क्या सम्बन्ध? "

(श्रीजी सखियों से) श्रीजी – "अरी ! इसके कोमलाङ्ग देखकर तो मेरा मन कहता है कि कहीं भगवती पार्वती ही तो जोगी रूप धारण करके नहीं आ गयीं? दूसरी बात यह भी है कि जोगियों की मुद्रा तो बड़ी शान्त होती है परन्तु यह तो तनिक हमारी पायल की ध्वनि सुन ले तो झट हमारी ओर देखता है। बड़ा चंचल है और बड़ा चतुर है, हमें देख कर इसने अपने नेत्र बन्द कर लिये।"

सब सखियाँ – "हाँ हाँ राधे ! तुम ठीक कहती हो, यह जोगी नहीं भोगी है।" श्रीजी ने सब पोल खोल दी।

जोगीराज सोच रहे हैं कि अब यहाँ रुकना ठीक नहीं, जितनी देर रुकेंगे अपमान होगा। क्रोध भी नहीं कर सकते, फिर कहेंगी कि साधु होकर क्रोध करता है, साधु लोग तो दया करते हैं, जोगीराज ने कहा कि तुम लोग हँसती हो, कोई बात नहीं। हम तो दया करते हैं, लो प्रसाद ले लो। भभूती का प्रसाद दिया उनको और वहाँ से चल पड़े, पर जितनी भी सहचरियाँ थीं, श्रीकृष्ण ने उनका चित्त छीन लिया और अब, सब दर्शन की इच्छा से घूमने लगीं।

इसी लीला को 'गर्ग संहिता' के माधुर्य खण्ड, अध्याय ११ में इस तरह से लिखा है कि श्रीकृष्ण जोगी बनके आते हैं, सहचरी सखियाँ पूछती हैं "तुम कौन हो? "

श्रीकृष्ण बोले, "मैं सिद्ध जोगी हूँ। मेरा नाम सिद्ध जोगी है।"

सखियाँ पूछती हैं, "कहाँ रहते हो आप? "

श्रीकृष्ण बोले, "मान सरोवर-हिमालय में।"

सखियाँ पूछती हैं, "महाराज, आपके लिए कोई भोजन आदि लायें।"

श्रीकृष्ण बोले, "नहीं, हम तो कुछ नहीं खाते। बिना खाए-पिये ही रहते हैं।"

सखियाँ पूछती हैं, "अगर इतनी तपस्या करते हो, तो कोई ऋद्धि सिद्धि मिली है? "

श्रीकृष्ण बोले, "हमको दिव्य दृष्टि मिली है।"

एक सखी बोली, "उससे क्या होता है? "

श्रीकृष्ण बोले, "हम तीनों काल की जानते हैं।" यह सुनते ही सब सखियाँ इकट्ठी हो गयीं।

दूसरी सखी बोली, "महाराज आप कोई मन्त्र-जन्त्र भी जानते हो? "

श्रीकृष्ण बोले, "उच्चाटन, मोहनी, मारण, मन वशीकरण, सब जानते हैं।"

तीसरी बोली, "अच्छा महाराज, हमारे मन में क्या है, आप सिद्ध हो तो बताओ? "

उन्होंने आँख बंद कर लीं और बोले कि "कान में कहने योग्य बात है। सब जगह नहीं कह सकते, तुम आओ हम तुम्हारे कान में कह देंगे, गुप्त बात है।"

झट सखियाँ बोलीं कि यह तो सचमुच जोगी है क्योंकि हम लोग कृष्ण प्रेम में फँसी हैं, यह बात सबके सामने, ये नहीं कह सकते। बोलीं "चलो मान लिया, तुम सिद्ध हो। लेकिन एक बात बताओ, तुम किसी को बुला सकते हो? "

बोले – "हाँ, जिसको कहो उसी को बुला दें, मनुष्य, देवी, देवता जो कहो उसे बुला दें।"

सखियाँ बोलीं – "अच्छा, हमारे मन में जो है, वह आप जानते हो, अगर आप, उसको बुला दो तो हम आपको जोगी जानें।"

जोगीराज बोले – "काम तो कठिन है, पर आप आँख बंद करो तो हम उसे बुला देंगे।" सब सखियों ने आँखें मूँद लीं। जोगीराज बोले, "जब हम ताली बजाएँ तब तुम आँखें खोल लेना।" सबने कहा "ठीक है"। उन्होंने जब ताली बजाई, तो सब सखियों ने आँखें खोलीं। देखा, श्रीकृष्ण खड़े हैं!

मयूर कुटी

ततो मयूर कुटी दर्शन प्रार्थना मन्त्र :-

किरीटिने नमस्तुभ्यं मयूरप्रियबल्लभ ।
सुरम्यायै महाकुट्यै शिखण्डिपदवेश्मने ॥

(आ. वा.)

अर्थात् – "मयूरों के प्यारे अति रमणीक मयूर कुटी एवं मोर मुकुटधारी आपको भी नमस्कार है।" दानगढ़ की चोटी से आगे ही मयूर कुटी है।

यहाँ पर कई तरह की लीलाएँ हुई हैं। एक तो यह है कि मोर कुटी में दोनों श्रीराधा-कृष्ण ने मयूर बनकर नृत्य किया था और दूसरी लीला – यहाँ मानिनी को रिझाने हेतु श्रीकृष्ण ने मयूर का रूप धारण किया। अद्भुत मयूर से आकर्षित होकर, श्रीराधा कहने लगीं, "अरे मयूर! ऐसा ही नृत्य तो हमारे प्यारे किया करते हैं।" यह सुनकर अपने मयूर रूप को छोड़कर श्रीकृष्ण बोले, "मैं ही तो आपका प्यारा हूँ।" बस दोनों हँस गये एवं मिलन हो गया फिर दोनों ने ही मयूर नृत्य किया।

एक लीला यह भी है कि गहवरवन के मोर वहाँ आते हैं तो किसी को श्रीजी कहती हैं कि यह मेरा मोर है और किसी को ठाकुर जी कहते हैं कि वह मेरा मोर है। दोनों में होड़ लगती है कि किसका मोर अच्छा नाचेगा? श्रीजी अपने मोर को नचाती हैं और ठाकुर जी अपने मोर को नचाते हैं। इसी तरह से मोर कुटी पर कई मयूर लीलायें हुई हैं।

ततो मयूरकुटी स्थले रास मंडल प्रार्थना मन्त्र :-

नमः सखी समेताय राधाकृष्णायते नमः ।
विमलोत्सवदेवाय ब्रजमंगलहेतवे ॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थात् – "समस्त सखी गणों के सहित युगल राधा-कृष्ण को नमस्कार है।"

यहाँ मयूर सम्बन्धित अन्य लीलायें भी हुई हैं, जो मन को आनन्द प्रदान करने वाली हैं –

"जहाँ मोर काछ बाँधे नृत्य करत"

(केलिमाल१४)

"होड़ परी मोरनि अरू स्यामहिं"

(केलिमाल ८२)

"नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहिं रिझावत"

(केलिमाल९६)

श्री गहवर वन

मयूर कुटी और मान मन्दिर के बीच का भाग गहवर वन है, जो युगल सरकार का नित्य विहार स्थल है ।

ततो गहवर वन प्रार्थना मन्त्र :-

गहवराख्याय रम्याय कृष्णलीलाविधायिने ।
गोपीरमणसौख्याय वनाय च नमो नमः ॥

(वृहन्नारदीये)

"सुरम्य गहवर वन", श्रीकृष्ण का लीला स्थान, गोपियों के सहित रमण करने वाले श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिये ही जो विराजमान है, आपको प्रणाम है।

ततो श्री गहवर वन प्रणाम मन्त्र :-

यत्र गहवरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलि विलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥

(वृषभानुपुरशतक)

अर्थात् – "जिस बरसाने में गहवर वन है, जिसे श्रीराधा ने स्वयं अपने नित्य केलि-विलासों से बनाया है।" इसीलिए यह स्थल नित्य विहार का माना गया है।

'नित्य विहार' का तात्पर्य – "जहाँ एक क्षण के लिए भी वियोग नहीं है।" स्वकीया एवं परकीया दोनों से यह भिन्न उपासना पद्धति है। स्वकीया में पितृगृह गमन से वियोग का अनुभव होता है और परकीया में तो संयोग का अवसर भी कम ही मिलता है और वह भी अनेक बाधाओं के बाद। वहाँ बाधाओं को प्रेम की कसौटी या प्रेम की तीव्रता का मापदण्ड माना जाता है। स्वकीया वाले श्रीराधा के मायिक व कल्पित पति के नाम से ही अरुचि रखते हैं। वे परकीयत्व का किंचित् मात्र संस्कार भी अपनी अनन्यता में स्वीकार नहीं करते, इसीलिए श्री गहवर वन में रसिकों ने वियोग शून्य नित्य मिलन की उपासना स्वानुभव से लिखी है। जिनमें युगल इतने सुकुमार हैं कि एक क्षण का भी वियोग असह्य है किन्तु वियोग के बिना संयोग पुष्ट नहीं होता है। यह भी एक सत्य है। इसलिए यहाँ अति सूक्ष्म विरह भी गाया गया है। वह विरह, मिलन की अवस्था में भी निरन्तर पिपासा बढ़ाता रहता है।

यही प्रेम वैचित्री है।

योगे वियुक्तवन्मानि ललितैकाश्रयं स्वयम् ।
करुणाशक्तिसम्पूर्णं गौरं नीलं च गह्वरे ॥

(वृ.पु.श)

वियोज्यते वियुक्तं वा न कदापि वियोक्ष्यते ।
क्षणार्द्धसत्कोटियुगं युगलं तत्र गहवरे ॥

(वृ.पु.श)

अर्थात् – "जिस गहवर वन में, कोटि-कोटि युग भी, आधे क्षण के समान, नित्य संयोग में, प्रेम पिपासा में व्यतीत हो जाते हैं। जैसे – श्रीमद् राधासुधानिधि, जो श्रीराधा की अनेक लीलाओं का सागर है, जिसमें उनकी विविध छवियाँ स्वकीया-परकीया की प्रस्तुत की गयी हैं। यद्यपि साम्प्रदायिक आग्रह से सम्पूर्ण ग्रन्थ "श्रीराधा सुधा निधि" को अपनी पद्धति में सीमित करने का प्रयास किया गया है किन्तु संतजन सभी पद्धतियों का सम्मान करके अपने आस्वादन में लग जाते हैं। खण्डन का बात-बतंगड़, शुद्ध नीरस कलुषित लोग ही किया करते हैं।

वहाँ पर भी गहवर वन की मिलन पद्धति की छवि का वर्णन आता है **(रा.सु.नि.-२५३)** अर्थात् – वियोग तो दूर रहा, वियोगाभास से ही कोटि-कोटि प्रलयाग्नि की ज्वाला, युगल को बाहर व भीतर अनुभव होने लग जाती है। ऐसा गाढ़ प्रेम है। जहाँ अति सूक्ष्म विरह की कल्पना भी इतनी तीव्रतम पिपासा जगाती रहती है। इसीलिए अंक में स्थित, मिलित अवस्था में विरहानुभूति होने लग जाती है **(रा.सु.नि.-१४६, १२६)**। इसलिए वृन्दारण्य से तात्पर्य, पंच योजनात्मक वृंदावन से है, जिसमें श्री गहवर वन भी आता है, इस विषय को वृंदावन में संक्षेप में कहा जायेगा। दोनों पक्ष के टीकाकारों ने **(रा.सु.नि.-७८)** ईशता, ईशानि, शचि आदि की व्याख्या में लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्राणी आदि को ग्रहण किया है, कहीं इन सबको 'श्रीजी' का अंश, और कहीं इनसे स्वतंत्र स्वामिनी के रूप में अर्थ किया है। इस प्रकार श्री राधिका से ये सब सम्बद्धा होती हैं। चाहे अंश रूप से या आधीन रूप से, अंश-अंशिनी में कोई भेद नहीं है। जब हम इनको राधिकांश रूप में मान्यता देते हैं तो फिर राधा लीला में उनके विभिन्न स्वरूपों से ही द्वेष क्यों है? जबकि श्रीमद्भागवत में डंके की चोट पर कहा गया है। **सर्वाः शरत् काव्यकथारसाश्रयाः (भा.१०/३३/२६)** अर्थात् "युगल सरकार ने सभी रसों का आस्वादन किया। वहाँ स्वकीया (अपनी विवाहिता) या परकीया (दूसरे की विवाहिता) या नित्यदाम्पत्य (नित्यवधू) रस हो।"

बरसाने के वन-उपवन के सरोवरों में निशंक भाव से 'श्रीजी' क्रीड़ा करती हैं। वन के भीतर श्रीराधा सरोवर, उनकी 'बाल व श्रृंगार लीला' का एक स्थल है –

ततो श्री राधासरस्नानाचमन मन्त्र :-

देवकृतार्थरुपायै श्री राधासरसे नमः ।
त्रैलोक्यपदमोक्षाय रम्यतीर्थाय ते नमः ॥

(ब्र.भ.वि)

जिस सरोवर पर यात्रा संकल्प लेती है, उसका नाम 'राधा सरोवर' या 'राधासर' है। यहाँ श्रीराधा रानी अपनी सखियों के साथ जल क्रीड़ा करती थीं, जिससे इसका नाम 'राधा सरोवर' हो गया। इस सरोवर के प्रार्थना मन्त्र का भाव है कि "बड़े-बड़े देवता भी राधा सरोवर आने पर कृतार्थ हो जाते हैं। यह त्रिलोकी को भी मुक्त करने की शक्ति रखता है। ऐसे रमणीय तीर्थ को हम नमस्कार करते हैं।"

ततो श्री रास मण्डल प्रार्थना मन्त्र :-

विलासरासक्रीडाय कृष्णाय रमणाय च ।
दशवर्ष स्वरूपाय नमो भानुपुरे हरे ॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थात् – "रास विलास क्रीड़ा के लिये दस वर्षीय, वृषभानु पुर में विराजमान 'श्रीकृष्ण' को प्रणाम है।"

बाल व श्रृंगार लीलाएँ –

श्रीराधा अति मिठ बोलनी, पुर उपबन बन खेलन डोलनि ।
कबहूँ सखिन संग लै भीर खेलन जांइ सरोवर तीर ॥
अति सुन्दर जु मृत्तिका लाइ सुहथ खिलौना रचती बनाइ ।
सदन बनावैं न्यारे न्यारे, तिन में धरैं खिलौना प्यारे ॥
ग्रह के सब कारज करैं खेल मगन कौतिक विस्तरैं ।
सब कौं सब जु बांइनौं देंहिं सब पै तें सब सादर लेंहि ॥
टोलनि टोलनि मंगल गावैं कुंवरिहिं नाना खेल खिलावैं ।
कबहूं झूलहिं गहि- गहि तरवर कबहूँ केलि करैं जल सरवर ॥
कबहूं लै जु मीन गति तरैं जल में महा कुलाहल करैं ।
कबहूं जल मुख पर लै सीचैं कबहूं पाछें रहि दृग मीचैं ॥
कबहूँ तोरि जु कमल बगेलैं तकि तकि तन मारैं यौं खेलैं ।
बुडकी लैं जल हीं जलधावैं भरैं चुहुंटियां अंक लगावैं ॥
पुनि जल पैठैं उछरैं ऐसें मीन करत कौतूहल जैसें ।
तन अंगोछि पहिरैं जु निचोल मिलैं जु अपने अपने टोल ॥

(ब्र.प्रे.सा.नवम लहरी)

अथवा –

कबहूं राधा चम्पक बरनी ।
गहवर झूलैं कौतिक करनी ॥

(ब्र.प्रे.सा.दशम लहरी, चौ० ७२)

श्री गहवर वन की लीलाओं का गान सभी रसिकों ने किया है। जैसे –

"प्यारी जु आगैं चलि आगे चलि गहवर वन भीतर"

(केलिमाल ४६)

देखि सखी राधा पिय केलि ।
ये दोउ खोरि खिरक गिरि गहवर
विहरत कुंवर कंठ भुज मेलि ॥

(हित चतुरासी ४९)

भूलि परी गहवर वन में जहाँ सखी न कोउ साथ ।
सोहिलो सुख गहर गहवर भरयौ भाव अनन्त ।

(महावाणी सहेली, उत्साह सुख ४१/६४ तथा सोहिलो ३९में)

सदा वृंदावन सबकी आदि ।
गिरि गहवर वीथी रत रन में कालिन्दी सलिलादि ॥

(व्या.वाणी.वृं.म.पद सं.४२)

एक दिन राधिका रानी गहवरवन में खेल रहीं थीं और श्रीकृष्ण उनको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते नन्दगाँव से चले।

जब यहाँ पहुँचते हैं तो ललिता जी कहती हैं "हे नन्द लाल ! तुम यहाँ कैसे आये? "

श्याम सुन्दर कहते हैं – "ललिता जी ! हम श्रीराधा रानी के दर्शन के लिये आये हैं।" ललिता जी कहती हैं –"अभी तुमको दर्शन तो नहीं मिलेंगे क्योंकि किशोरी जी अभी महल से चली नहीं हैं।" जबकि वो चल चुकी थीं। ये हैं लाड़ली जी की सखियाँ, ये टेढ़े ठाकुर से टेढ़ेपन से ही बात किया करती हैं।

रसिकों ने ऐसा लिखा है –

हम हैं राधे जू के बल अभिमानी
टेड़े रहें मोहन रसिया सौं बोलत अटपट बाणी ।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

ललिता जी बोलीं कि किशोरी जी तो अभी नहीं आ रही हैं, तब श्याम सुन्दर कहते हैं – "तुम लोगों ने हमारा नाम चोर रखा है, चोर से चोरी नहीं चलती और ललिता जी तुम समझ रही हो कि हम तुम्हारी चोरी समझ नहीं रहे।"

ललिता जी पूछती हैं – "हमारी चोरी क्या है? "

श्रीकृष्ण बोले –

"देख सखी, राधा जू ! आवत ! "

श्रीकृष्ण बोले –"अरे, लाड़ली जी तो आ रही हैं ! "

ललिता जी बोलीं – "कैसे पता? "

कृष्ण बोले – "किशोरी जी जब आती हैं तब उनके शरीर की महक चारों ओर फैल जाती है। यह सुगन्ध बता देती है कि वह आ रही हैं। तुम नहीं छिपा सकती हो 'राधिका रानी' को। अरे ! चाँद को कोई क्या हाथ से ढक सकता है? हम तुम्हारी चोरी जानते हैं।" वहाँ कहा गया है कि श्रीजी खेलती आ रही हैं अपनी सखियों के साथ। ये गहवरवन की वही कुंजें हैं, वही लताएँ हैं, वही स्वरूप है। गहवरवन में राधा रानी जब कुंजों से होती हुई आ रही हैं तो उनके आँचल को हवा छूती हुई श्रीजी के अंग की सुगन्ध को लेकर के श्रीकृष्ण जहाँ हैं, वहाँ पहुँचती है। श्रीजी के अंग की सुगन्ध पाकर श्रीकृष्ण धन्य हो जाते हैं। किशोरी जी के अंग की सुगन्ध पाकर ही श्रीकृष्ण धन्य हो जाते हैं? "धन्य ही नहीं, धन्य-धन्य हो जाते हैं। धन्य-धन्य ही नहीं, अति धन्य हो जाते हैं श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण अति से भी अधिक धन्य, यानि कृतार्थ धन्य हो जाते हैं।" (रा.सु.नि.१) तात्पर्य कि "सब कुछ मिल गया, पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी। जो पूर्ण ब्रह्म है, वह बरसाने में जाकर ही पूर्ण होता है।"

यह गह्वरवन बहुत ही महत्वपूर्ण वन है क्योंकि ऐसा सौभाग्य किसी अन्य ब्रज के वन को नहीं मिला, जो गहवरवन को मिला, इस वन को राधा रानी ने अपने हाथों से सजाया है और इसमें दोनों 'राधा-कृष्ण' नित्य लीला करते हैं।

श्री गहवर वन में ही "श्रीवल्लभाचार्य जी" की बैठक एवं शंख शिला स्थल है। यहाँ ग्वालबालों ने गोपालजी से शंख देखने की इच्छा प्रकट की, गोपाल जी ने शंख दिखाया और बजाकर इस शिला पर रख दिया, जिससे यह शिला ही शंखाकार हो गयी एवं माखन खाकर यहाँ हाथ पौंछे थे, जिससे यह शिला चिकनी हो गयी।

'आचार्यचरण श्रीमद् वल्लभाचार्य जी' की १०८ बैठक जी में से एक बैठक गहवर वन में है, जहाँ आपने १०८ भागवत पाठ किये।

जिस समय आप गहवर वन में पधारे तो बड़ा विचित्र दृश्य देखा। एक अजगर, जिसे लाखों चीटियाँ खा रही है, शिष्यों द्वारा पूछने पर कि यह कौन है? किस कारण से इस दुर्गति को प्राप्त है। आचार्य चरण ने बताया कि जो धर्मानुयायी संत महन्त दैवी द्रव्य का दुरूपयोग करते हैं, अपनी वासनाओं की पूर्ति में उसे लगाते हैं, उनकी यही दुर्गति होती है। **"हरहि शिष्य धन शोक न हरही, ते गुरु घोर नरक में परही"।** यह अजगर भी एक महन्त थे, जिन्होंने भगवत्सेवा के धन को अपनी वासनाओं में व्यय किया, उसीसे इनकी यह स्थिति हुई है और चींटियाँ जो इनको खा रही हैं ये इनके शिष्य थे। सभी को इस विषय में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। परद्रव्य हरण, परद्रव्य पर दृष्टि, ये सब जघन्य पाप हैं। २५२ वैष्णव वार्ता में एक बड़ा सुन्दर प्रसंग मिलता है –

श्री गुसाँई विट्ठलनाथ जी के परम कृपापात्र शिष्य थे, श्याम दास जी। एक बार एक लालदास नामक ब्राह्मण, गुसाँई जी के पास आये बोले – "महाराज ! मैं क्या करूँ? मेरा चित्त स्थिर नहीं रहता है।"

गुसाँईं जी – "तुम एक वर्ष श्याम दास की सेवा व सत्संग करो।"

बस, लालदास जी ने श्यामदास जी की सेवा सत्संग आरम्भ कर दिया। एक दिन श्यामदास जी बोले – "मुझे परदेस जाना है।"

लालदास जी बोले – "मैं भी चलूँगा, आपकी सेवा करूँगा।"

यात्रा आरम्भ की, मार्ग में एक गाँव पड़ा, वहाँ एक वैष्णव के घर ५०० लोगों का विशाल भण्डारा था। आप दोनों भी वहाँ जब पहुँचे और पत्तल में प्रसाद पाने बैठे तो श्यामदास जी को वहाँ पत्तल में सैकड़ों कीड़े ही कीड़े दिखाई दिये, मानो उन्हें प्रभु की प्रेरणा हुई – "श्यामदास, तुम यह स्वीकार मत करना। यह द्रव्य कन्या विक्रय का है। अतः मैंने भी इसे अंगीकार नहीं किया है।" बस, श्यामदास जी तो वहाँ से उठकर चलते बने दूसरे ग्राम की ओर, परन्तु लाल दास नहीं उठे और विचार किया, अरे! "श्याम दास अच्छा वैष्णव नहीं है, इतने लोग कह रहे हैं भोजन के लिए तो क्या जाता है भोजन करने में" इतने वैष्णवों की बात नहीं मानेगा तो अपराध लगेगा, लालदास ने वहीं बैठ कर भोजन किया, पर उस दिन से श्यामदास जी ने लाल दास से बात करना छोड़ दिया, लालदास सेवा तो करता रहा एक वर्ष तक पर श्याम दास जी ने बात नहीं की। एक वर्ष पश्चात् लालदास जी ने गुसाईं जी से विनती की – "जै जै! ये श्यामदास ने ५०० वैष्णवों की बात न मानी, महाप्रसाद नहीं लिया, अब आप ही बताओ, उचित क्या था? लेना या न लेना।" गुसाईं जी बोले – "लालदास! तुमने हमारी आज्ञा का भी उल्लंघन किया और श्यामदास वैष्णव की आज्ञा का भी, अरे! हमने तुमसे कहा था, एक वर्ष तक तुम श्याम दास का सत्संग करो, इनकी सेवा करो। तुमने दोनों की आज्ञा टाल दी, तुमने उन ५०० वैष्णवों के कहने से जो प्रसाद ग्रहण किया, वह दूषित द्रव्य, कन्या विक्रयी का था, अतः वह ठाकुर जी के भोग योग्य नहीं था। अब तो तुम्हें एक वर्ष के स्थान पर दो वर्ष पर्यन्त श्यामदास जी की सेवा करनी होगी, तभी ठाकुर जी प्रसन्न होंगे।" दूषित द्रव्य स्वीकार करने का यह परिणाम है। अतः सर्वदा सावधान रहें, परद्रव्य व दूषित द्रव्य से, यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। सर्वत्र इस विषय का स्पष्टीकरण हुआ है, न केवल वार्ता जी, भक्तमाल से भी देखिए –

मानसकार गोस्वामी श्री तुलसीदास जी –

आपके जीवन में भी एक बड़ी रहस्यमयी घटना मिलती है। एक समय आप कामदगिरि की परिक्रमा करके, लक्ष्मण पहाड़ी पर जा रहे थे, तभी अचानक आपको एक श्वेत वर्ण सर्प दिखाई पड़ा **"संत दरस ते पातक टरई"** आपकी अपनी बात चरितार्थ हुई, आपकी दृष्टि पड़ते ही उसके सब मलिन कर्म नष्ट हो गये और अत्यन्त दीन हो उसने आपसे प्रार्थना की – "हे महामुने! आप अपने पवित्र कर से मेरा स्पर्श कर, मुझे पावन बनाएँ।" ज्यों ही कर स्पर्श प्राप्त हुआ कि वहाँ सर्प के स्थान पर एक महात्मा दिखाई पड़े।

गुसाँईं जी ने पूछा – "महाराज आपका नाम? "

(हाथ जोड़े हुए) महात्मा – "योगश्रीमुनी, मुझे कहते थे।"

गुसाँई जी – "तो, आप सर्प योनि में कैसे? "

महात्मा – "संत-भगवान् की सेवा के लिए आई सम्पत्ति का मैंने दुरूपयोग किया, बस, उसी के फलस्वरूप निकृष्ट योनिको प्राप्त हो गया।" द्रव्य का समुचित उपयोग न करना ही नरक प्रवेश है –

"परधन नव झाले हाथ रे"

(नरसी जी)

भागवत के अनुसार तो, ऐसे द्रव्य से असंतुष्ट हृदयी जनों की स्थिति को कुत्ता के समान कहा है। देखें –

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥
सन्तुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा ।
औपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद् गृहपालायते जनः ॥

(भा .७/१५/१७,१८)

और यदि संतोष आ गया हृदय में तो स्वतः तेज, यश, श्री का विकास होगा –

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकामयोः।
यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः॥
यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते।
तत् प्रशाम्यत्यसन्तोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः॥

(भा .८/१९/२५,२६)

असंतोष से तेज रूपी संपत्ति का ह्रास होता है। इसी तरह भक्तमाल चतुर्थ खण्ड में भक्त श्री माधवदास जी का वृतान्त भी इसी विषय पर प्रकाश डालता है। अतः बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। यह एक अत्यधिक विचारणीय बिन्दु है। इस लिए कुछ विस्तारीकरण हुआ।

स्वयं श्री भगवान् कहते हैं –

प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ।
अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक् तयोः ॥

(भा. ११/१७/४१)

ब्रजभक्तिविलास मतानुसार

बरसाने में ब्रह्मा एवं विष्णु दो पर्वत हैं। विष्णु पर्वत विलास गढ़ है, शेष ब्रह्मा पर्वत है। दोनों के मध्य साँकरी गली है, जहाँ दधि दान लीला सम्पन्न होती है –

खोर सांकरी में आज छिप के बिहारी लाल
तरु पै बिराजे दान हेतु चित्त दीनो है ।
ग्वाल बाल संग के हू इत उत घाटिन में
छिपे हरिचंद छल जिये अति कीनो है ।
ताहि समय गोपिन विलोकी कूदी धाय
सब ऊधम मचायो दूध दहि घृत छीनो है ।
दहि जो गिरायो सो तो फेर हू जमाय लैहैं
मन कहा पैहें दान हेतु जोन लीनो है ।

अथवा –

घेर लई आय नंदराय के कुमर कान्ह
मारत मधुर मुस्काई नेह काँकरी ।
मुरि मुख आंचर दै रसिक रसीली राधे
ठाढ़ी छवि धाम हेरे चितवन बांकुरी ।
रोके राह ठाढ़ो मनमोहन मुकुंद प्यारो
झमकि झरोखन ते देखे सखी झांकुरी ।
नैनन की कोर चितचोर बरजात जात
साँकरी गली में प्यारी हाँ करी न नाकरी ।

साँकरी (संकीर्ण) एवं खोर (गली) । सभी आचार्यों ने यहाँ की लीला गाई है –

ये दोउ खोरि खिरक गिरि गहवर
विहरत कुँवर कंठ भुज मेलि ।

(हित चतुरासी.४९)

अष्टछाप में परमानंद जी ने भी साँकरी खोर की लीला गाई है –

"आवत ही माई साँकरी खोरि"

(परमानन्द सागर २७३)

दान दै री नवल किशोरी ।
मांगत लाल लाडिलौ नागर
प्रगट भई दिन-दिन चोरी ॥

(हित चतुरासी ५१)

महावाणी सोहिलो से –

"सोहिली रंग भरी रसीली सुखद साँकरी खोरि"

(महावाणी सोहिलो)

हमारौ दान मारयौ इनि ।
रातिन बेचि बेचि जात ॥
घेरौ सखा जान ज्यौं न पावैं छियौ जिनि ॥
देखौ हरि के उज उठाइवे की रात बिराति
बहू बेटी काहू की निकसति है पुनि ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी की प्रकृति न फिरी छिया छाँड़ौ किनि ॥

(केलिमाल.६२)

साँकरी गली एक ऐसी गली है, जिससे एक-एक गोपी ही निकल सकती है और उस समय उनसे श्याम सुन्दर दान लेते हैं। साँकरी खोर पर सामूहिक दान होता है। श्याम सुन्दर के साथ ग्वाल बाल भी आते हैं।

कभी तो वे दही लूटते हैं, कभी वे दही माँगते हैं और कभी वे दही के लिए प्रार्थना करते हैं।

ततो श्री साँकरी खोर प्रार्थना मन्त्र :-

दधिभाजनशीर्षास्ताः गोपिकाः कृष्णरुन्धिताः ।
तासां गमागमौ स्थानौ ताभ्यां नित्यं नमश्चरेत् ॥

(ब्र.भ.वि)

इस मन्त्र का भाव है कि "गोपियाँ अपने शीश पर दही का मटका लेकर चली आ रही हैं और श्रीकृष्ण ने उनको रोक रखा है। उस स्थान को नित्य प्रणाम करना चाहिए, जहाँ से गोपियाँ आ-जा रही हैं।"

यहाँ जो राधा रानी का पहाड़ है, वह गोरा है। सामने वाला पहाड़ श्याम सुन्दर का है और वह शिलाएँ कुछ काली हैं। काले के बैठने से पहाड़ काला हो गया और गोरी के बैठने से गोरा हो गया। पहले राधा रानी की छतरी है, फिर श्याम सुन्दर की छतरी है और नीचे मनसुखा की छतरी है। यह 'दान लीला' स्थली है। यहाँ नन्दगाँव से श्रीकृष्ण और उनके सखा दधि दान माँगने आये तो सखियों ने पकड़कर उनकी चोटी बाँध दी। श्याम सुन्दर की चोटी ऊपर बाँध देती हैं और मनसुखा की चोटी नीचे बाँध देती हैं।

मनसुखा चिल्लाता है कि ओ कन्हैया ! ऽ ऽ ऽ ऽ, इन बरसाने की सखियों ने हमारी चोटी बाँध दी है। जल्दी से आकर के छुड़ा भई, तो श्याम सुन्दर बोलते हैं कि अरे ससुर ! मैं कहाँ से छुड़ाऊँ। मेरी भी चोटी बँधी पड़ी है। सखियाँ दोनों के साथ-साथ सब की चोटी बाँध देती हैं और फिर कहती हैं कि चोटी ऐसे नहीं खुलेगी। राधा रानी की शरण में जाओ तब तुम्हारी चोटी खुलेगी। सब श्रीजी की शरण में जाते हैं और प्रार्थना करते हैं तब श्रीजी की आज्ञा से सब की चोटी खुलती हैं। श्रीजी कहती हैं कि इनकी चोटी खोल दो, श्याम सुन्दर को इतना कष्ट क्यों दे रही हो? गोपियाँ बोलीं कि ये चोटी बन्धने के ही लायक हैं।

यह लीला यहाँ राधाष्टमी के तीन दिन बाद एकादशी को होती है और मटकी फोड़ लीला त्रयोदशी को। उस दिन यहाँ श्याम सुन्दर मटकी फोड़ते हैं और नन्दगाँव के सब ग्वाल बाल आते हैं। श्रीजी और सखियाँ मटकी लेकर चलती हैं तो श्याम सुन्दर कहते हैं कि तुम दही लेकर कहाँ जा रही हो? सखियाँ कहती हैं कि यह दही क्या तुम्हारे बाप का है? ऐसे पूछ रहे हो जैसे तुम्हारे नन्द बाबा का है, दही तो हमारा है। वहाँ से श्याम सुन्दर बातें करते हुए चिकसौली की ओर आते हैं और यहाँ छतरी के पास उनकी दही की मटकी फोड़ देते हैं। जहाँ मटकी गिरी है, वह जगह आज भी चिकनी है और सबके लिये दर्शनीय है।

यहाँ बीच में (साँकरी खोर में) ठाकुर जी की हथेली व लाठी के चिन्ह भी हैं। ये सब ५,००० वर्ष पुराने चिन्ह हैं। यह साँकरी गली दान के लिये पूरे ब्रज में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। वैसे तो श्याम सुन्दर हर जगह दान लेते थे पर दान की ३-४ स्थलियाँ प्रसिद्ध हैं। बरसाने में साँकरी खोर, गोवर्धन में दान घाटी व वृन्दावन में बंशी वट, इन सबमें सबसे प्रसिद्ध साँकरी खोर है क्योंकि एक तो यहाँ पर चिन्ह मिलते हैं और दूसरा यहाँ आज भी मटकी लीला चल रही है। राधाष्टमी के ५ दिन बाद 'भादों शुक्ल त्रयोदशी' को नन्दगाँव के गोसाँई बरसाने में आते हैं, यहाँ आकर बैठते हैं, उस दिन पद गान होता है।

"बरसानो असल ससुराल हमारो न्यारो नातो" मतलब बरसाना तो हमारी असली ससुराल है! आज तक नन्दगाँव और बरसाने का सम्बन्ध चला आ रहा है जो रंगीली के दिन दिखाई पड़ता है। ससुराल में होरी खेलने नन्दलाल आते हैं और गोपियाँ लट्ठ मारती हैं। वो लट्ठ की मार को ढाल से रोकते हैं और बरसाने की गाली खाते हैं। यहाँ मन्दिर में हर साल नन्दगाँव के गोसाँई आते हैं और बरसाने की नारियाँ सब को गाली देती हैं। इस पर सब नन्दगैंया "वाह वाह वाह " कहते हैं।

इसका मतलब कि और गाली दो। ऐसी यहाँ की प्रेम लीला है। बरसाने की लाठी बड़ी खुशी से खाते हैं, उछल-उछल के 'और ... और' ऐसा कहते हैं। बरसाने की गाली और बरसाने की पिटाई से नन्दगाँव वाले बड़े प्रसन्न होते हैं। ऐसा सम्बन्ध है बरसाना और नन्दगाँव का।

साँकरी खोर की दान लीला

इसे मनोयोग से पढ़ने व सुनने से लीला दिखाई देगी। साँकरी खोर में गोपियाँ जा रही हैं। दही की मटकी है सिर पर, वहाँ श्रीकृष्ण मिले। कृष्ण के मिलने के बाद वह कृष्ण रूप से मोहित हो जाती हैं और लौटकर कहती हैं कि वो नील कमल-सा, नील चाँद-सा मुख वाला कहाँ गया? अपनी सखी से कहती हैं कि मैं साँकरी खोर गयी थी –

सखी हों जो गयी दही बेचन ब्रज में, उलटी आप बिकाई ।
बिन ग्रथ मोल लई नंदनंदन, सरबस लिख दै आई री ॥
श्यामल वरण कमल दल लोचन, पीताम्बर कटि फेंट री ।
जबते आवत साँकरी खोरी भई है अचानक भेंट री ॥
कौन की है कौन कुलबधू मधुर हंस बोले री ।
सकुच रही मोहि उतर न आवत बलकर घूंघट खोले री ॥
सास ननद उपचार पचि हारी काहू मरम न पायो री ।
कर गहि बैद ठडो रहे मोहि चिंता रोग बतायो री ॥
जा दिन ते मैं सुरत सम्भारी गृह अंगना विष लागै री ।
चितवत चलत सोवत और जागत, यह ध्यान मेरे आगे री ॥
नीलमणि मुक्ताहल देहूँ जो मोहि श्याम मिलाये री ।
कहै 'माधो' चिंता क्यों बिसरै बिन चिंतामणि पाये री ॥

तो एक पूछती है कि तू बिक गई? तुझे किसने खरीदा? कितने दाम में खरीदा? बोली, "मुझे नन्द नन्दन ने खरीद लिया। मुफ्त में खरीद लिया। मेरी रजिस्ट्री भी हो गई। मैं सब लिखकर दे आयी कि मेरा तन, मन, धन सब तेरा है। मैं सदा के लिए तेरी हो गई हूँ। मैं वहाँ गई तो साँवला सा, नीला सा कोई खड़ा था। नील कमल की तरह उसके नेत्र थे, पीताम्बर कटि में बँधा हुआ था। मैं जब आ रही थी तो अचानक मेरे सामने आ गया। मैं घूँघट में शरमा रही थी और उसने आकर मेरा घूँघट खोल दिया, मुझसे बोला कि तू किसकी वधू है? किस गाँव की बेटी है? वो मेरा अता पता पूछने लग गया।"

यह वही ब्रज है,

यहाँ चलते-चलते अचानक कृष्ण सामने आ जाते हैं,

इसीलिए तो लोग ब्रज में आते हैं।

यह वही ब्रज है,

लोग भगवान् को ढूँढते हैं और भगवान् यहाँ स्वयं ढूँढ रहे हैं और

गोपियों का अता-पता पूछ रहे हैं।

यह वही ब्रज है,

गोपी बोल नहीं रही है लज्जा के कारण और

श्याम उसका घूँघट खोल रहे हैं।

गोपी आगे कहती है कि जिस दिन से मैंने उसे देखा है, मुझे सारा संसार जहर सा लगता है। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? बस एक ही बात है, दिन-रात मेरे सामने आती रहती है। सोती हूँ तो, जागती हूँ तो, उसकी ही छवि रहती है मेरे सामने।

कौन सी बात? किसकी छवि?

गोपाल की !

घर में मेरी सास, ननद कहती हैं कि हमारी बहू को क्या हो गया है?

वैद्य बुलाया गया कि मुझे क्या रोग है? वैद्य ने नब्ज देखी और देखकर कहा, "सब ठीक है। कोई रोग नहीं है। केवल एक ही रोग है – चिंता !" कोई जो मुझे श्याम का रूप दिखा दे तो मैं उसको नील मणि दूँगी। जो मुझे श्याम से मिला दे, मुझे मेरे प्यारे से मिला दे, उसे मैं सब कुछ दे दूँगी।

एक साँकरी खोर की बहुत मीठी लीला है।

एक दिन राधा रानी अपने वृषभानु भवन में बैठी थीं। श्री ललिता जी व श्री विशाखा जी गईं और बोलीं, "हे लाड़ली ! तुम जिनका चिन्तन करती हो, वह नन्द'नन्दन नित्य, यहाँ वृषभानुपुर में आते हैं। वे बड़े ही सुन्दर हैं ! "

श्रीराधा रानी बोलीं – "तुम्हें कैसे पता कि मैं किसका चिंतन करती हूँ? " प्रेम तो छिपाया जाता है।

ललिता जी व विशाखा जी बोलीं, "हमें मालूम है तुम किसका चिन्तन करती हो।" श्रीजी बोलीं – "बताओ किसका चिन्तन करती हूँ? "

देखो ! कहकर उन्होंने बड़ा सुन्दर चित्र बनाया श्रीकृष्ण का। चित्र देखकर श्री लाड़ली जी प्रसन्न हो गयीं और फिर बोलीं कि तुम हमारी सखी हो। हम तुमसे क्या कहें?

चित्र को लेकर वो अपने भवन में लेट जाती हैं और उस चित्र को देखते-देखते उनको नींद आ जाती है। स्वप्न में उनको यमुना का सुन्दर किनारा दिखाई पड़ा। वहाँ भांडीरवन के समीप श्रीकृष्ण आये और नृत्य करने लग गये। बड़ा सुन्दर नृत्य कर रहे थे कि अचानक श्री लाड़ली जी की नींद टूट गई और वो व्याकुल हो गयीं। उसी समय श्री ललिता जी आती हैं और कहती हैं कि अपनी खिड़की खोलकर देखो। साँकरी गली में श्रीकृष्ण जा रहे हैं। श्रीकृष्ण, नित्य बरसाने में आते हैं।

एक बरसाने वाली कहती है कि ये कौन आता है नील वर्ण का अद्भुत युवक, नव किशोर अवस्था वाला, वंशी बजाता हुआ निकल जाता है –

आवत प्रात बजावत भैरवी मोर पखा पट पीत संवारो ।
मैं सुन आली री छुहरी बरसाने गैलन मांहि निहारो ॥
नाचत गायन तानन में बिकाय गई री सखि जु उधारो ।
काको है ढोटा कहा घर है और कौन सो नाम है बाँसुरी वारो ॥

श्रीकृष्ण आ रहे हैं। कभी-कभी वंशी बजाते-बजाते नाचने लग जाते हैं। इसीलिए उन्हें श्रीमद्भागवत् में नटवर कहा गया है। नटवर उसको कहते हैं जो सदा नाचता ही रहता है। सखी ये कैसी विवशता है कि मैं उस रूप में खो गई और मिला कुछ नहीं। कौन है? कहाँ रहता है? बड़ा प्यारा है! किसका पुत्र है? इस बांसुरी वाले का कोई नाम है क्या?

वृषभानु भवन की खिड़की से श्रीजी झाँकती हैं तो साँकरी गली में श्रीकृष्ण अपनी छतरी के नीचे खड़े दिखते हैं। उन्हें देखते ही उनको प्रेम मूर्छा आ जाती है। कुछ देर बाद जब सावधान होती हैं तो ललिता जी से कहती हैं कि तूने क्या दिखा दिया? अब मैं अपने प्राणों को कैसे धारण करूँ?

ललिता जी श्रीकृष्ण के पास जाती हैं और उनसे श्रीजी के पास चलने का आग्रह करती हैं।

ये राधिकायाम् मयि केशवे मनागभेदं न पश्यन्ति हि दुग्धशौक्ल्यवत् ।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति तद्धयहैतुकस्फुर्जितभक्ति लक्षणाः ॥

(ग.सं.वृ ख.१५/३२)

वहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे ललिते! भांडीरवन में, जो श्रीजी के प्रति प्रेम पैदा हुआ था, वह अद्भुत प्रेम था। मुझमें और श्रीजी में कोई भेद नहीं है, जैसे दूध और दूध की सफेदी में कोई भेद नहीं होता है। जो दोनों को एक समझते हैं, वे ही रसिक हैं। थोड़ी सी भी भिन्नता आने पर वो नारकीय हो जाते हैं।

यही बात शंकर जी ने 'सम्मोहन तन्त्र' में कही –

गौर तेजो बिना यस्तु श्यामं तेजः समर्चयेत् ।
जपेद् व ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ॥

"हे पार्वती! बिना राधारानी के जो श्याम की अर्चना करता है, वह तो पातकी है।"

श्रीकृष्ण बोले – "हम चलेंगे।" उनकी बात सुनकर ललिता जी आती हैं और चन्द्राननना सखी से पूछती हैं कि कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे श्रीकृष्ण शीघ्र ही वश में हो जाएँ।

'गर्ग संहिता' वृन्दावन खंड अध्याय १३

चन्द्राननना बोलती हैं कि हमने गर्ग ऋषि से तुलसी पूजा की महिमा सुनी थी। राधा रानी यहाँ पर तुलसी की आराधना करती हैं और गर्ग जी को बुलाकर आश्विन शुक्ल पूर्णिमा से

कार्तिक पूर्णिमा तक व्रत का अनुष्ठान करती हैं। तुलसी जी प्रगट होती हैं, श्रीराधा रानी को अपनी भुजाओं में लपेट लेती हैं और कहती हैं कि,

हे राधे ! बहुत शीघ्र, श्रीकृष्ण से तुम्हारा मिलन होगा।

उसी समय श्रीकृष्ण एक विचित्र गोपी बनकर के आते हैं। अद्भुत गोपी ! ऐसी सुन्दरता जिसका वर्णन नहीं हो सकता। गर्ग ऋषि ने उनकी सुन्दरता का वर्णन किया है कि उंगलियों में अंगूठियाँ, कौंधनी, नथ एवं बड़ी सुन्दर बेनी सजाकर बरसाने में आते हैं और वृषभानु भवन में पहुँचते हैं। चार दीवार हैं उस भवन में और वहाँ पर बहुत पहरा है, उन पहरों में नारी रूप में पहुँच जाते हैं।

तो वहाँ क्या देखते हैं कि बड़ा सुन्दर भवन है और सखियाँ अद्भुत वीणा, मृदंग श्रीराधा रानी को सुना रही हैं, उनको रिझा रही हैं। दिव्य पुष्प हैं, लताएँ हैं, पक्षी हैं, जो श्रीराधा नाम का उच्चारण कर रहे हैं। राधा रानी उस समय टहल रहीं थीं। श्रीराधा रानी ने देखा कि एक बहुत सुन्दर गोपी आयी है। उस गोपी को देखकर वे मोहित हो जाती हैं और उसको अपने पास बैठा लेती हैं। राधा रानी गोपी का आलिङ्गन करती हैं और कहती हैं कि अरे ! तुम ब्रज में कब आई? हमने ऐसी सुन्दरी आज तक ब्रज में नहीं देखी, तुम जहाँ रहती हो, वह गाँव धन्य है, तुम हमारे पास नित्य आया करो। तुम्हारी आकृति तो श्रीकृष्ण से मिलती-जुलती है।

श्रीजी पहचान नहीं पा रही हैं, बड़ी विचित्र लीला है। श्रीजी बोलीं – "न जाने क्यों, मेरा मोह तुम में बढ़ रहा है? तुम मेरे पास बैठ जाओ।"

वह जब राधा रानी के पास बैठी तो बोली कि मेरा उत्तर की ओर निवास है (उत्तर में नन्दगाँव है) और हे राधे ! मेरा नाम है 'गोप देवी'। हे राधे ! मैंने तुम्हारे रूप की बड़ी प्रशंसा सुनी है कि तुम बड़ी सुन्दर हो। इसीलिए मैं तुम्हें देखने आ गयी। तुम्हारा ये वृषभानु भवन बड़ा सुन्दर है जो लवंग लता-वल्लरियों की सुवास से युक्त है। इसके बाद दोनों ने कन्दुक क्रीड़ा प्रारम्भ की, खेलते-खेलते संध्या हो चली।

संध्या होने पर गोपदेवी कहती है कि अब मैं जाऊँगी और प्रातः काल पुनःआऊँगी। जैसे ही जाने का नाम लिया तो श्रीराधा रानी के नेत्र सजल हो उठे, बोलीं – "अरी सुन्दरी ! तू क्यों जा रही है? पर गोपदेवी यह कह कर चली जाती है कि कल प्रातः काल आऊँगी। रात भर श्रीजी प्रतीक्षा करती रहीं।

उधर नन्दनन्दन भी रात भर व्याकुल रहे। प्रातः काल फिर वे गोपदेवी का रूप बना कर आते हैं तो श्रीराधा रानी ! बहुत प्रेम से मिलती हैं।

राधा रानी बोलीं कि हे गोपदेवी ! तू आज उदास लग रही है। क्या कष्ट है? गोपदेवी बोली कि हाँ राधा रानी हमें बहुत कष्ट है और उस कष्ट को दूर करने वाला दुनिया में कोई नहीं है। राधा रानी बोलीं कि नहीं गोप देवी, तुम बताओ, इस ब्रह्माण्ड में भी अगर कोई तुमको कष्ट दे

रहा होगा तो मैं अपनी शक्ति से उसको दण्ड दूँगी। गोपदेवी ने कहा कि राधे ! तुम मुझे सताने वाले को दण्ड नहीं दे सकती। राधा रानी बोलीं –"क्यों नहीं?" गोपदेवी – "मुझे मालूम है, तुम उसे दण्ड नहीं दे सकती हो।" श्रीजी बोलीं, "बताओ तो सही वह कौन है?" गोपदेवी – "अच्छा तो सुनो –

मैं एक दिन साँकरी गली से आ रही थी। एक नन्द का लड़का है। उसकी पहचान बताती हूँ। उसके एक हाथ में वंशी और दूसरे में लकुटी रहती है। सहसा उसने मेरी कलाई को पकड़ लिया और मुझसे बोला कि मैं यहाँ का राजा हूँ, कर लेने वाला हूँ। जो भी यहाँ से निकलता है मुझे दान देता है। तुम मुझे दही का दान दो। मैंने कहा कि लम्पट, हट जा मेरे सामने से। मैं दान नहीं देती, ऐसा कहने पर उस लम्पट ने मेरी मटकी उतार ली और मेरे देखते-देखते उस मटकी को फोड़ दिया, सारा दही पी गया, मेरी चूनरी उतार ली और फिर हँसता-हँसता चला गया।"

यहाँ पर गोपदेवी ने कृष्ण की बड़ी निंदा की है कि वो जाति का ग्वाला है, काला कलूटा है, न रंग है, न रूप है, न धनवान है, न वीर है। हे राधे ! तुम मुझसे छिपाती क्यों हो? तुमने ऐसे पुरुष से प्रेम किया है ! ये ठीक नहीं किया। यदि तुम कल्याण चाहती हो तो उस धूर्त को, उस निर्मोही को अपने मन से निकाल दो।

इतना सुनने के बाद श्रीराधा रानी बोलीं, "अरी गोप देवी, तेरा नाम गोपदेवी किसने रखा? तू जानती नहीं, ब्रह्मा, शिव भी श्रीकृष्ण की आराधना करते हैं।"

यहाँ पर श्रीकृष्ण की भगवत्ता का राधा रानी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है !

राधा रानी बोलीं कि जितने भी अवतार हैं – दत्तात्रेय जी, शुकदेव जी, कपिल भगवान्, आसुरि आदि ये सब भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करते हैं और तू उनको काला-कलूटा ग्वाला कहती है ! उनके समान पवित्र कौन हो सकता है? गौरज की गंगा में जो नित्य नहाते हैं। उनसे पवित्र क्या कोई हो सकता है? क्या गौ से अधिक पवित्र करने वाली कोई वस्तु है संसार में?

राधा रानी बहुत बड़ी गौ भक्त हैं। यहाँ तक कि जब श्रीकृष्ण ने वृषभासुर को मारा था तो राधा रानी और सब गोपियों ने कहा था कि श्रीकृष्ण ! हम तुम्हारा स्पर्श नहीं करेंगी। तुमको गौ हत्या लग गई है, हम तुम्हें छू नहीं सकती। ऐसी गौ भक्त हैं राधा रानी।

आगे राधा रानी कहती हैं गोपदेवी से कि तू उनकी बुराई कर रही है? वह नित्य गायों का नाम जपते हैं। दिन रात गायों का दर्शन करते हैं। मेरी समझ में जितनी भी जातियाँ होगीं, उनमें से सबसे बड़ी गोप जाति है। क्यों? क्योंकि ये गाय की सेवा करते हैं। इसलिए गोप वंश से श्रेष्ठ कोई नहीं हो सकता। गोपदेवी तू श्याम को काला-कलूटा बताती है, तो बता उस श्याम से भी कहीं अधिक सुन्दर कोई वस्तु है? स्वयं भगवान् नीलकंठ शिव भी उनके पीछे दिन-रात दौड़ते रहते हैं। राधा रानी बोलीं कि वे जटाजूट धारी, हलाहल विष को भी पीने

वाले शक्तिधारी, सर्पों का आभूषण पहनने वाले, उस काले-कलूटे के लिए ब्रज में दौड़ते रहते हैं। तू उसे काला कलूटा कहती है? सारा ब्रह्माण्ड जिस लक्ष्मी जी के लिये तरसता है, वे लक्ष्मी जी उनके चरणों में जाने के लिये तपस्या करती हैं। तू उन्हें निर्धन कहती है? निर्धन ग्वाला कहती है? जिनके चरणों को लक्ष्मी तरस रही हैं, तू कहती है कि उनमें न बल है और न तेज है। बता? बकासुर, अरिष्टासुर, अघासुर, पूतना, आदि का वध एवं कालिय नाग को नाथने वाला क्या निर्बल है? कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का एक मात्र सृष्टा और उनको तू बलहीन कहती है? सब जिनकी आराधना करते हैं, तू उन्हें निर्दय कहती है? वह अपने भक्तों के पीछे-पीछे घूमा करते हैं और कहते हैं कि भक्तों की चरण रज हमको मिल जाये और तू उनको निर्दय कहती है?

जब ऐसी बातें सुनी तो गोपदेवी बोली, "राधे ! तुम्हारा अनुभव अलग है और हमारा अनुभव अलग है। ठीक है कालिया नाग को नाथा होगा इन्होंने लेकिन ये कौन सी सुशीलता थी कि मैं अकेली जा रही थी और मुझ अकेली की उन्होंने कलाई पकड़ ली। ये भी क्या कोई गुण हो सकता है? "

गोपदेवी की बात सुनकर' राधा रानी बोलीं कि तू इतनी सुन्दर होकर के भी उनके प्रेम को नहीं समझ सकी? बड़ी अभागिन है। तेरा सौभाग्य था, पर अभागिन तूने उसको अनुचित समझ लिया, तुझसे ज्यादा अभागिन संसार में कोई नहीं होगी।

गोपदेवी बोली – "तो मैं क्या करती? अपना सौभाग्य समझ के क्या अपना शील भंग करवाती? " श्रीराधा रानी बोलीं – "अरी ! सभी शीलों का सार, सभी धर्मों का सार तो श्रीकृष्ण ही हैं। तू उसे शील भंग समझती है? "

बात बढ़ गई तो गोपदेवी बोली कि अगर तुम्हारे बुलाने से श्रीकृष्ण यहाँ आ जाते हैं तो मैं मान लूँगी कि तुम्हारा प्रेम सच्चा है और वो निर्दय नहीं है और यदि नहीं आये तो? राधा रानी बोलीं कि देख मैं बुलाती हूँ और यदि नहीं आये तो मेरा सारा धन, भवन, शरीर तेरा।

शर्त लग गई प्रेम की। इसके बाद श्रीजी बैठ जाती हैं, आसन लगाकर और मन में श्रीकृष्ण का आह्वान करने लग जाती हैं। बड़े प्रेम से बुलाती हैं। श्रीकृष्ण का एक-एक नाम लेकर बुलाती हैं –

श्यामेति सुंदरवरेति मनोहरेति
कंदर्पकोटिललितेति सुनागरेति ।
सोत्कंठमह्नि गृणती मुहुराकुलाक्षी
सा राधिका मयि कदा नु भवेत्प्रसन्ना ॥

(रा.सु.नि.३७)

"इस श्लोक का मतलब पूज्य श्री बाबा महाराज ने मुझे एक बार पंडित हरिश्चंद्र जी के शब्दों में समझाया था।"

पहले तो राधा रानी ने 'श्याम' कहा और उसके बाद तुरन्त बोलीं 'सुन्दर' ताकि कहीं कोई ऐसा नहीं समझ ले कि श्याम तो काला होता है, तो तुरन्त उसको सम्भाल लिया, फिर सोचा सुन्दर भी बहुत से होते हैं लेकिन सौत को सौत की सुन्दरता बुरी लगती है। अगर चित्त नहीं लुटा, अगर मन नहीं लुटा फिर सुन्दरता किस काम की तब उन्होंने तुरन्त कहा कि मन को हरण कर लेते हैं, मन तो गोद का एक बच्चा भी हर लेता है। बोलीं, "मन हरण करने का ढंग दूसरा है, बड़ा चतुर है।" फिर सोचने लगी सुन्दर हो, पर चतुर नहीं हुआ तो किस काम का? प्रेम में चतुरता तो चाहिये, नहीं तो भाव ही नहीं समझ पायेंगे। श्रीजी बोलीं, "भाव समझने वाला है ! "

इस तरह से श्रीकृष्ण का आह्वान कर रही थीं। गोपदेवी जो बैठी हुई थी, उसका शरीर कुछ काँपने लगा। जैसे ही प्रेम का आकर्षण बढ़ा तो श्रीकृष्ण समझ गये कि अब ये हमारा रूप छूटने वाला है। प्रेम में अद्भुत शक्ति होती है। श्रीकृष्ण के शरीर में रोमांच होने लग गया और बोले कि अब मैं सम्भाल नहीं सकता अपने आपको।

उन्होंने देखा कि राधा रानी के नेत्रों में आँसू थे और वे मुख से श्रीकृष्ण का नाम ले रही थीं तुरन्त श्रीकृष्ण अपना रूप बदलकर "श्री राधे राधे" कहते आये। राधा रानी ने देखा कि श्रीकृष्ण खड़े हैं। श्याम सुन्दर ने कहा कि हे लाड़ली जी ! आपने हमें बुलाया, इसलिये मैं आ गया, आप आज्ञा दीजिये, श्रीजी चारों ओर देखने लगीं।

श्रीकृष्ण बोले, "आप किसको देख रही हैं। मैं तो सामने खड़ा हूँ।" बोलीं "मैं तुम्हें नहीं उस गोपदेवी को देख रही हूँ। कहाँ गयी? " श्रीकृष्ण बोले, "कौन थी? कोई जा तो रही थी, जब मैं आ रहा था।" राधा रानी ने सारी बात बताई तो बोले कि आप बहुत भोली हैं। अपने महल में ऐसी नागिनों को मत आने दिया करो।

यह लीला (चोटी बन्धन लीला), इस गली में प्रति वर्ष भाद्र शुक्ल एकादशी को होती है तथा दधिदान लीला त्रयोदशी में होती है।

विहार कुण्ड

विहार कुण्ड या माहेश्वरी सरोवर एक ही हैं।

ततो माहेश्वरीसरोवर स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

स्वर्णाभजलरम्याय पार्वती सरसे नमः ।
रुद्रहेलासमुद्भूत तीर्थराज वरप्रदे ॥
क्रोशार्द्ध परिमाणेन प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥

(ब्र.भ.वि)

स्वर्णिम जल युक्त, रूद्र हेला से उत्पन्न, वरदायक, मनमोहक हे पार्वती सर ! तीर्थराज, आपको प्रणाम है। अर्द्ध कोस प्रमाण से इस वन की प्रदक्षिणा करनी चाहिए।

माहेश्वरीसरोवर को 'पार्वती जी का सरोवर' कहा गया है। सभी महाशक्तियाँ उमा, रमा, सरस्वती आदि बरसाने आती हैं। इसी लिए राधा कृपा कटाक्ष में –

अनन्त कोटि विष्णुलोक नम्र पद्म जार्चिते ।
हिमाद्रिजा पुलोमजा विरंचिजा वरप्रदे ।

अर्थात् – लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्राणी, सरस्वती आदि भी श्रीराधिका रानी की आराधना करती हैं। इन सबकी इष्ट हैं "श्रीराधा रानी।"

दोहनी कुण्ड

दोहनी कुण्ड प्रार्थना मन्त्र :-

रक्तनीलसिताधूम्रापीतागोदोहनप्रद ।
वृषभानुकृतस्तीर्थं नमस्तुभ्यं प्रसीद में ॥

(ब्र.भ.वि)

दोहनी कुण्ड, महाराज वृषभानु की लाखों गायों के रहने का स्थान है, यहाँ गोदोहन सम्पन्न होता था; अर्थात् वृषभानु बाबा ने लाल, श्वेत, कजरारी व पीली गायों को दुहकर, इस स्थल को तीर्थ बना दिया। हे दोहनी कुण्ड ! आपको नमस्कार है। आप मुझ पर प्रसन्न हो कृपा करें।

मानगढ़

बैठक जी से पश्चिम ऊपर चोटी पर मानगढ़ है। मानगढ़ में रूठी हुई राधा रानी को श्याम सुन्दर ने मनाया था। जिससे इस स्थली का नाम 'मानगढ़' पड़ा। 'मान' माने रूठना। श्रीकृष्ण ने मनाने के बहुत से उपाय किये। कभी उनके चरणों में मस्तक रखते हैं, कभी उनको पंखा करते हैं, कभी दर्पण दिखाते हैं और कभी विनती करते हैं, पर जब राधा रानी नहीं मानती हैं, तब श्याम सुन्दर सखियों का सहारा लेते हैं। ये मान किसी लड़ाई या क्रोध से नहीं होता है, ये मान एक प्रेम की लीला है।

राधा रानी श्याम सुन्दर के सुख हेतु मान करती हैं । मान मन्दिर में 'श्रीमानबिहारीलाल जी' के दर्शन हैं।

ततो मान मन्दिर दर्शन प्रार्थना मन्त्र :-

देवगन्धर्वरम्याय राधामानविधायिने ।
मानमन्दिरसंज्ञाय नमस्ते रत्नभूमये ॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थात् – "देव-गन्धर्वों से रमणीक, इस दिव्य रत्नमय धरा पर मानिनी ने मान किया, अतः यह स्थान "श्रीमानमंदिर" नाम से प्रख्यात हुआ, इसे प्रणाम है।

नित्य विहार में "संभ्रममान" रसिकों ने माना है, जो दीर्घ मान नहीं होता है –

मानगढ़ चढत सखी कत आजु ।
'व्यास' बचन सुनि कुँवरि निवाज्यो
श्याम लयौ सिर ताजु ॥

(व्या.वा.पद.१६४)

श्री प्रिया जी, श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर मान करती हैं क्योंकि वही मान का कारण है किन्तु कृपामयी का मान क्षणिक था।

"पिय के हिय तैं तू न टरति री"

यदि कुछ अधिक समय तक मान रहता है तो 'मानगढ़' में मान कई प्रकार से टूटता है।

(१) श्रीकृष्ण स्वयं विनय एवं सेवा से मना लेते हैं –

सब निसि ढ्रोवा करति किसोरहि भोर मानगढ़ टूटयौ ॥
'व्यास' स्वामिनी मिली बांह दै पुनि लचि लालन लूटयौ ॥

(व्या.वा.पद.१५६)

पुन: केलिमाल –

"भूलैं भूलैं हूँ मान न करि री प्यारी"

(केलिमाल.१०)

इसी प्रकार पद संख्या २२, २५, ३९, ५७, ५९, ७६, ७८, ७९, ८० आदि पद भी हैं।

(२) छद्म से वीणा वादिनी आदि के रूप में प्रिया जी को प्रसन्न करके छद्म खोलना –

रसिकगुपाल वृंदावन महियाँ खेलत फाग सुहाई ।
सुरंग चूनरी ओढि वरो तिय कौ भेष बनाई ।
गये जहाँ बैठी श्री श्यामा मुरली मधुर बजाई ।
रीझी रीझि बचन कहि मीठे निपट निकट बैठाई ॥
पूछतौ बहुत कृपा करि स्यामा कहौ कहाँ ते आई ।
नंदगाँव सुख ठाँव तहाँ के कहियत कुँवर कन्हाई ॥
सुनत ही नाम पीठि हँसि दीनी चीन्ही हरि लंगराई ।
पकरी बाँह लई उर अन्तर चाचरि 'मैंन' मचाई ॥

(श्रृ.र.सा.श्री मैन प्रभु जी महाराज)

'विदग्ध माधव' में निकुञ्ज विद्या का छद्म एवं 'सैमरी' में श्यामली सखी का छद्म तथा 'किन्नरी' का छद्म, जिसमें रत्नमाला पुरस्कार के स्थान पर 'मान रत्न' माँगकर भंग कराना।

(३) छद्म से सखी रूप बनाकर समझाते हैं –

अजहूँ माई टेव न मिटति मान की ।
जानति पिय की पीर न मानति सोंह बाबा वृषभानु की ।

(व्या.वा.पद.१४२)

(४) अन्य सखियों की सहायता से –

आवत जात हौं हार परी री ।
ज्यों ज्यों प्यारो विनती कर पठवत त्यों त्यों तू गढ़ मान चढ़ी री ।
तिहारे बीच परे सोई बाबरी हौं चौगान की गेंद भई रीं ।
'गोविन्द' प्रभु को वेग मिल भामिनी सुभग यामिनी जात बही री ।

(गोविन्द स्वामी)

गोविन्द जी का पद है। इसमें ऐसा लिखा है कि राधा रानी का मान शिखर के नीचे से शुरू हुआ और जैसे-जैसे श्याम सुन्दर ने मनाया वैसे-वैसे श्रीजी ऊपर चढ़ती आयीं। जब श्रीजी ऊपर चढ़ आयीं तो श्याम सुन्दर ने सखियों का सहारा लिया। उन्होंने विशाखा जी व ललिता जी से कहा कि जाओ राधा रानी को मनाओ, हमारी तो सामर्थ्य नहीं है। हम तो थक गये, श्री ललिता जी व अन्य सखियाँ जब यहाँ आती हैं और श्रीजी से कहती हैं कि आप

अपना मान तोड़ दो तो श्रीजी मना कर देती हैं। सखी ठाकुर जी के पास नीचे जाती हैं तो ठाकुर जी फिर ऊपर भेज देते हैं फिर नीचे जाती हैं तो फिर ऊपर भेज देते हैं तो आखिर में सखी बोली कि हे राधे ! इस गिरि पर मैं कई बार चढ़ी और कई बार उतरी। मैं तो थक गई। आपका मान तो टूटता ही नहीं। मैं और कहाँ तक दौड़ूँ? इधर से आप भगा देती हो और उधर से वो बार-बार प्रार्थना करते हैं कि जाओ-जाओ। सखी कहती है कि हे राधे ! मैं चौगान की गेंद की तरह से भटक रही हूँ। (क्रिकेट में तो एक आदमी गेंद को मारता है, पर चौगान में हर कोई गेंद को मारता है) वैसे ही आप दोनों मुझे मार रहे हैं। हे राधे ! जल्दी से श्याम सुन्दर से मिलो। ये रात बीती जा रही है। श्रीजी कहती हैं –

दौरी-दौरी आवत मोहि को मनावत हों कहा दामन मोल लई री ।
अँचरा पसार के मोहि कूँ खिजावत हों कहा तेरे बाबा की चेरी भई री ।
जा री जा सखी भवन अपने सौ बातन की एक कही री ।
'नंददास' प्रभु वे ही क्यों न आवत उनके पाँयन कहा मेंहदी दई री ॥

(नन्ददास जी)

इसी प्रकार –

"तू रिस छाँड़ि री राधे राधे"

(केलिमाल.१७)

तथा १३, १४, १६, १८, ४३, ४५, ६९ आदि एवं श्री चतुरासी जी में १६, ३७, ३८, ३६, ४०, ४५, ७४, ७५, ८३ आदि पद भी हैं।

विलासगढ़

साँकरी खोर के ऊपर ‘विलासगढ़’ है।

ततो विलासगढ़ स्थले प्रार्थना मन्त्र :-

विलासरुपिणे तुभ्यं नमः कृष्णाय ते नमः ।
सखीवर्गसुखाप्ताय क्रीड़ाविमलदर्शिने ॥

(ब्र.भ.वि)

सखी समुदाय को सुख देने के लिये, विमल क्रीड़ा करने वाले, क्रीड़ा विलास रूपी श्रीकृष्ण को नमस्कार है।

विलास नाम से ही पता चलता है कि यहाँ पर विलास लीला हुई है। यहाँ श्रीजी को सखियों ने राजा बनाकर छत्र धराया। ललिता जी मन्त्री और विशाखा जी चंवर ग्रहणी बनीं। राजा की कचहरी में किसी चोर को लाया गया। जिसे श्रीजी ने कृपा कर छोड़ दिया। कोई भेंट

लाता है, कोई दूत बनता है, कोई गायक, कोई छड़ीदार, कोई चारण आदि बन, श्री राधिका महाराज की आराधना में लीन हैं।

ब्रजप्रेमानन्द सागर १८ वीं लहरी, ६८ से ७३ तक विलास व झूलन लीला का वर्णन है। यहाँ श्रीराधा रानी का सखियों के साथ झूला खेलने का स्थान भी है। पर्वत पर ही दो खम्भे हैं, जिनमें झूला डाला जाता है और झूलन लीला होती है –

कबहूँ गढ़ विलास सुख राचैं ।
गिरि की सिखर हिंडोरौ रचैं ॥

(ब्र.प्रे.सा. १० लहरी.चौ.७३)

दानगढ़

बरसाने में दान लीला दो जगह होती है साँकरी खोर और विलास गढ़ से विपरीत दिशा में दानगढ़ है 'रतिदान स्थल'। रतिदान व छद्म दान लीला की स्थली हैं। रति मानें प्रेम दान। श्री ठाकुर जी, राधा रानी से प्रेम दान यानि रति दान माँगते हैं। कैसे माँगते है? उनके चरणों में प्रार्थना करके।

ततो दान मन्दिर स्थले प्रार्थना मन्त्र :-

दानवेषधरायैव दध्युपास्याभिलाषिणे ।
राधानिर्भत्सितायैव कृष्णाय सततं नमः ॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थ – श्रीराधा रानी द्वारा प्रताड़ित, दधि, दुग्ध के इच्छुक दानविहारी को प्रणाम।

एक पद है कि राधा रानी के चरणों को स्पर्श करके, वो दान माँगते हैं। ठाकुर जी कह रहे हैं कि हे राधे ! आप तो बड़ी दानी हैं, महादानी हैं। बरसाने में जो भी आया, वो खाली हाथ नहीं गया। राधा रानी को इस पद में महादानी कहा गया है। महादानी बहुत बड़ा दानी होता है। उससे बड़ा और कोई दाता नहीं होता। जिस पर श्रीराधा रानी प्रसन्न हो जाती हैं, उसको रास-रस और विलास-रस दे देती हैं। जिसे ठाकुर जी भी नहीं दे सकते। ठाकुर जी तो स्वयं श्रीराधा रानी से रास रस और विलास रस माँगते हैं। ठाकुर जी कहते हैं कि हे महादानी राधा ! आप हमारे ऊपर कृपा कर दो –

महादानी वृषभानु किशोरी तुव कृपावलोकन दान दै री ।
तृषित लोचनि चकोर मेरे तुम बदन इंदु किरनि पान दै री ॥
सब विधि सुघर सुजान सुन्दरी सुनि लै विनती कान दै री ।
'गोविन्द' प्रभु पिय चरन परसि कह्यो जाचक को तुव मान दै री ॥

हे राधे ! हमारे नेत्र प्यासे हैं इसलिये पहला दान क्या है? आप अपना ये घूँघट हटा दें ताकि हमको दर्शन हो सके। आप तो बड़ी चतुर हैं। हमारी विनती को आप ही समझती हैं। ये बात कहकर ठाकुर जी नीचे चरणों में गिर गये और बोले – "हमारा मान रख लो आप। सबके सामने हम आपके चरणों में हैं। अब आप ! अपना मान तोड़ दो और हम को रस दान दो।" यह दान गढ़ की लीला है।

दान लीला में गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि तुम दान लेते हो? छेड़ते हो? पराई वस्तु को ग्रहण करना पाप है। तुमने इतने पाप किये हैं, इसीलिए तुम काले हो गये हो। इस पाप से तुम कैसे छूटोगे नन्द लाल?

"लाला याहि ते कारे भये"

"अरे कन्हैया ! इस पाप के बोझ से तुम कैसे छूटोगे? हमने तुम को कभी न भजन करते देखा, न तीर्थ स्नान करते, तुम्हारा ये चोरी छिनारी का पाप कैसे जायेगा?" श्याम सुन्दर बोले "अरे ! मेरे जैसा धर्मात्मा कोई होगा ही नहीं। मैं जैसा धर्म, भजन, तीर्थ स्नान करता हूँ, वैसा संसार में कोई नहीं कर सकता। हे गोपियो ! गौ रज गंगा से बड़ा कोई तीर्थ है क्या?" स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में कि सभी देवता गाय के अंग में हैं, सभी तीर्थ गाय के खुर में हैं और लक्ष्मी गोबर में हैं। गौ रज से जो तिलक कर लेता है, उसका सब तीर्थों का स्नान हो जाता है। श्याम सुन्दर बोले, "मैं निरन्तर गौ माता के नाम जपता हूँ। ओ काली, धौरी ! हमसे पवित्र कौन होगा?"

श्रीजी बोलीं, "पर यह सारा ब्रज तो हमारे बाबा वृषभानु जी का है। तुमको बरसाने में हमने बसाया है और अब तुमको बसाने का हम दण्ड भोग रही हैं। तुम तो लुटेरे हो।

कोई चोर को अगर बसाएगा तो वह उसी के घर में चोरी करेगा। हमारे बाबा ने तुम्हें बसाया और तुम हमारे ही घर में चोरी करने लग गये।

पहले ब्रज की पगड़ी वृषभानु वंश में थी लेकिन महीभान जी ने अपनी इच्छा से और प्रेम से पगड़ी तुम्हारे बाबा को दे दी, नहीं तो ये सारा ब्रज वृषभानु जी का था। हमारे बाबा ने तुम्हारे बाबा को पगड़ी दी और ये हम उसी का फल भोग रहीं हैं। ब्रज की रक्षा हमने की और तुम आराम से यहाँ मौज कर रहे हो?" सच बात तो माननी पड़ेगी। श्याम सुन्दर बोले, "हाँ, यह सारा ब्रज जो है, तुम्हारे बाबा का है लेकिन एक बात सुनो, हे राधे ! सब देश तो वृषभानु जी की लाड़ली बेटी का है यानि कि तुम्हारा है। तुम उनकी इतनी लाड़ली हो कि जब हमारे साथ सम्बन्ध हुआ तब हमें सब दहेज में दे दिया।"

दानगढ़ के पास जयपुर मन्दिर है। आगे श्रीजी और जयपुर मन्दिर के मध्य में श्रीजी के वर्तमान विग्रह का प्राकट्य स्थल है और भानुगढ़ पर श्रीजी का मन्दिर है, जहाँ ब्रह्मा जी द्वारपाल बन, लीला आस्वादन किया करते हैं। वहीं श्रीजी के वर्तमान विग्रह के छोटे-छोटे

चरण चिन्ह हैं। श्रीजी की कामधेनु गाय के थन भी हैं। वहीं सिंह पौर पर ब्रह्मा जी का विग्रह भी है।

पीरीपोखर

बरसाने में पीरी पोखर, जिसे प्रिया कुण्ड भी कहते हैं। पीलू वृक्षों की अधिकता के कारण भी इस स्थल को 'पीरी पोखर' कहते हैं। 'भक्ति रत्नाकर' के अनुसार श्रीजी यहाँ पीलू तोड़ती थीं –

एई पिलु खोर एथा पीलू फल छले ।
सखी सह राई कानू क्रीड़ा कुतुहले ॥

(भ.र)

इसे प्रिया कुण्ड भी कहते हैं। नन्दनन्दन से विवाह के पीले हाथ धोने से 'पीली पोखर' नाम पड़ा अथवा स्वामिनी जी के स्नान-उबटना के कारण यह जल सुनहली कान्ति से रंजित हो गया, इस कारण से इसे 'पीरी की' भी कहते हैं।

जब नन्दगाँव के ग्वालबाल होरी खेलने आते हैं तो इसी पोखर पर अपना पड़ाव देकर यहीं पर पाग कसकर ढ़ाल लेकर चलते हैं, जहाँ आगे उनका स्वागत होता है जिसे 'मुंहमिड़ी' कहते हैं, यह प्रति वर्ष होता है।

श्रीजी के विवाह की लीला कई पुराणों में वर्णित है। बहुत लोग पूछते हैं कि राधा कृष्ण का विवाह हुआ था कि नहीं। भागवत में संकेत है। उसमें केवल श्रीराधा रानी के लिये ही वधू शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे तीन बार महारास में राधा रानी के लिये 'वधू' शब्द प्रयोग हुआ है। **'रासपंचाध्यायी'** में ३०वें अध्याय में २६, ३२, ३९ श्लोकों में राधा रानी के लिये वधू शब्द आता है –

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः।
वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन्॥

(भा १०/३०/२६)

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम्।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः॥

(भा. १०/३०/३२)

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत॥

(भा. १०/३०/३९)

अन्य ग्रन्थों में भी विवाह लीला गाई गई है जिसका प्रस्तुत पुस्तक में अध्याय ५ में सप्रमाण वर्णन किया गया है।

वैसे पीली पोखर को लोग 'प्रिया कुण्ड' भी कहते हैं क्योंकि यहाँ पर श्रीजी आती हैं और सखियों के साथ जलकेलि करती हैं।

पीली पोखर का सबसे बड़ा वार्षिक उत्सव वह है, जब नन्दगाँव के लोग रंगीली के दिन होरी खेलने आते हैं, तो वह पहले वहाँ कुण्ड पर ही आकर रुकते हैं।

यहाँ पीरीपोखर पर लाली **राधिका की बाल लीला** श्री नारदजी देखने आये थे। आकर के वीणा सुनाकर श्रीजी व सखियों को आनन्दित किया। सबकी परिक्रमा कर उन्होंने भिक्षा माँगी। उदार बालिका श्री राधिका ने हाथों में जो कुछ मेवे थे, सब दे दिये। इस उदारता से प्रेम मग्न नारद जी, बालिका श्री राधिका के आगे चरणरज प्राप्ति के भाव से रोते हुए, पृथ्वी पर लोटने लगे। बालिका श्रीजी डरकर पीछे देखती हुई, सभी बालिकाओं के साथ गाँव भाग गयीं जैसे हिरणियों का टोल भाग जाता है। कीर्ति माँ के पूछने पर राधा बोलीं कि एक भिक्षा माँगते, रोते, नाचते, बीन वाले को मैंने सब मेवा और गूजा दे दिये। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, एक टक देखने से हम डर गयीं। कीर्ति जी बोलीं — "बेटी ! वे वीणा वाले बड़े कृपालु सन्त हैं, तेरे जन्म पर वे ही तेरे लिये गण्डा बना गये थे तब से अब तक तू नहीं डरी क्योंकि वे तेरे मस्तक पर हाथ भी फिरा गये थे।" यह कहकर माँ कीर्ति, राधा को गोद में लेकर लड्डू खिलाने लग गयी।

(ब्र.प्रे.सा.लहरी १८ चौ.४९-६३)।

वृषभानु सरोवर

वृषभानु कुण्ड, यहाँ महाराज वृषभानु जी नित्य स्नानोपरान्त, ब्रजेश्वर महादेव की उपासना के लिए जाते थे, इसे भानोखर भी कहते हैं।

ततो वृषभानु कुण्ड स्थले प्रार्थना मन्त्र :-

निर्धूतकिल्विषायैव गोपराजकृताय ते ।
वृषभानुमहाराजकृताय सरसे नमः ।

(ब्र.भ.वि)

भानु सरोवर, जो वृषभानु जी का सरोवर है। उसको प्रणाम करने से और उसमें स्नान करने से कायिक, वाचिक और मानसिक किल्बिष (पाप) नष्ट हो जाते हैं। यह सरोवर वृषभानु महाराज जी के द्वारा निर्मित है। ऐसे सरोवर को हम प्रणाम करते हैं।

श्री ब्रज प्रेमानंद सागर –

कबहुं भान सरोवर तट में झूलैं फूलैं सखी संघट में ।
श्रीराधा अति मिठ बोलनी पुर उपवन बन खेलन डोलनि ।
कबहुं सखिन संग लै भीर खेलन जाँई सरोवर तीर ।

यहाँ की स्नान लीला, 'स्वामी हरिदास' जी ने गाई है। श्री नन्दलाल, ललिता जी से जान बूझकर श्रीराधा का परिचय पूछते हैं। श्री ललिता जी उत्तर में नन्दलाल के गाँव को 'बावरों का गाँव' बताती हैं।

इस पर नन्दलाल सरोवर में चुबकी लेकर चौंका देते हैं –

कहौ यह काकी बेटी कहा धों कुंवरि कौ नाँउ ।
तुम सब रहौ री हों ही ऊतर दैहों
चल किनि जाहु ढोटा बाइ बावरौ है गाँउ ॥
सब सखि मिलि छिरका खेलन जु लागी
तौलौं तुम रहौ री जौलौं हौं न्हाँउ ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी
लै बुड़की गरें लागि चौंकि परी कहाँ हौं जाँउ ॥

(केलिमाल ८३)

श्रीजी वृषभानु सरोवर में स्नान करने जा रही हैं और उधर से नन्द लाल आते हैं। अपने पिता के सरोवर में तो श्रीजी ही नहा सकती हैं। नन्दलाल ये समझ तो गये कि ये वृषभानु जी की बेटी हैं, पर सखियों से पूछते हैं कि अरे ! ये किनकी बेटी हैं? इनका नाम क्या है? ये बड़ी ठाट बाट से चली आ रहीं हैं। यह सुनकर ललिता जी आगे बढ़ीं और सखियों से बोलीं कि तुम इनका उत्तर मत देना। मैं ही उत्तर दूँगी। इनका इलाज तो ललिता जी ही जानती हैं। ललिता जी श्याम सुन्दर से बोलीं कि नन्दगाँव में तो बावड़े ही रहते हैं (पागल ही रहते हैं)। अरे लौट जाओ अपने गाँव। अब श्याम सुन्दर चुप हो गये। ये तो बड़ा टेढ़ा बोली। अब क्या बोलते बेचारे, एक ही प्रश्न में बड़ा गड़बड़ जवाब मिल गया। अब दूसरा प्रश्न करने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ी। सब सखियाँ फिर खेलने लग गयीं।

अब देखिये श्रीराधा रानी की कृपा व प्रेम। उनको लगा कि श्याम सुन्दर के साथ इन लोगों ने बड़ा अन्याय किया है। वो तो शिष्टाचार में पूछ रहे थे कि किनकी बेटी हैं और ये जबाब देती हैं कि अरे लौट जाओ, उस पागल गाँव में, तो यह ठीक नहीं है। जब सब खेलने लग गयीं तो श्रीजी बोलीं कि तुम लोग खेलो, मैं उधर नहाती हूँ।

श्रीजी अलग चली गयीं, जिससे कि श्याम सुन्दर को भी मिलने का अवसर मिल जाय, जो इतनी दूर से आये हैं। ये सखियाँ तो टेढ़ी हैं। टेढ़े ठाकुर को टेढ़ा जबाब दे दिया। लेकिन श्रीजी तो दयालु हैं, बड़ी प्रेममयी हैं। श्रीजी ने जैसे ही जलक्रीड़ा के लिये पानी में डुबकी ली,

तभी श्याम सुन्दर पानी के भीतर से आकर उनके गले मिल गये, श्रीजी चौंक गयी। यह बहुत सुन्दर लीला है।

इसके सरोवर के समीप में 'कीर्ति सरोवर' है।

कीर्ति सरोवर

ततो कीर्तिदा सरोवर स्थले प्रार्थना मन्त्र :-

कीर्तिश्च यत्र गोपीभिः सह स्नानं समाचरेत् ।
सौभाग्यसुतधान्यादिसुखमाप्नोति मानवः ॥
यतो कीर्तिसरःख्यातं सकलेष्टप्रदायकं ।

(ब्र.भ.वि)

कीर्ति देवी, जहाँ गोपियों के साथ नित्य स्नान करती थीं, वह 'कीर्तिदा सरोवर' है। सौभाग्य, सुत, धनादि सुख और समस्त मनोरथ को देने वाला है।

ततो कीर्तिसर स्नानाचमनप्रार्थना मन्त्र :-

नमः कीर्ति महाभागे सर्वेषां गोब्रजौकषां ।
सर्वसौभाग्यदे तीर्थे सुकीर्तिसरसे नमः ॥

(ब्र.भ.वि)

हे महाभागा कीर्ति ! वृषभानु गोप एवं सब ब्रजवासियों को समस्त सौभाग्य प्रदान करने वाले ! हे कीर्ति सरोवर ! आपको नमस्कार है।

इसके आगे **'ब्रजेश्वर महादेव',** जो ब्रजवासियों के मंगलार्थ महारुद्र रूप हैं।

ब्रजेश्वर बाबा को प्रणाम कीजिये, जिनका कोई अंत नहीं है, कहते हैं कि एक बार कुछ ब्रजवासियों ने इस शिवलिंग को यहाँ से हटाकर किसी अन्यत्र स्थान पर ले जाना चाहा, तो जैसे-जैसे लोग खुदाई करते गये, वैसे-वैसे ये और गहराई में जाते गये। लोग इनकी गहराई की थाह नहीं पा सके और अंत में लोगों ने महादेव से क्षमा प्रार्थना कर इन्हें यहीं विराजमान रहने दिया।

ततो ब्रजेश्वराख्यमहारूद्रप्रार्थना मन्त्र :-

ब्रजेश्वराय ते तुभ्यं महारुद्राय ते नमः ।
ब्रजौकसां शिवार्थाय नमस्ते शिव रुपिणे ॥

(ब्र.भ.वि.गौरी तन्त्र)

मन्त्र का अर्थ है कि जिन महादेव का नाम ब्रजेश्वर है और जो ब्रजवासियों के कल्याण के लिये, यहाँ सदा विराजते हैं और जिनका नाम शिव है, ऐसे शिव रूपी ब्रजेश्वर को हम प्रणाम

करते हैं ! ये बड़े प्राचीन हैं, वृषभानु जी के समय से हैं ! महाराज वृषभानु जी, वृषभानु सरोवर में नहाकर, नित्य इनकी पूजा किया करते थे।

राबड़ वन

शेष महेश गणेश दिनेश सुरेशहुँ जाहि निरंतर ध्यावै ।
जाहि अनादि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं ॥
नारद से शुक व्यास रटें पचिहारि तऊ पार न पावै ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावै ॥

यहाँ श्रीकृष्ण ने छाछ-राबड़ी खायी थी। इस लिये इस स्थान का नाम 'राबड़ वन' पड़ा एवं उससे आगे 'पाडरवन' है।

पाडरवन

"साँझी लीला में पुष्प चयन स्थल"

यहाँ पाडर के पुष्प बहुत होते थे। जब सखियाँ और श्रीजी यहाँ फूलों के लिए आती थीं तो ठाकुर जी सखी का वेष बनाकर इनसे मिलते थे। यह पाडरवन साँझी लीला स्थल है। साँझी लीला ब्रज में बड़ी नामी है। आज भी ब्रज की कन्यायें पितृपक्ष में साँझी बनाती हैं और साँझी देवी की पूजा करती हैं। उस समय श्रीजी भी साँझी बनाती थीं। ठाकुर जी वेष बदल करके, साँझी पुजवाने पंडितानी बनकर आते थे और साँझी पुजवाते थे।

"फुलवा बीने राधा प्यारी भोरी रंग रंगीली बाल"

(रसिया रासेश्वरी)

पाडरखंडी (पाडर वन) की लीला –

एक दिन श्याम सुन्दर पाडरखंडी में आकर गीत गा रहे थे। इतने में, श्याम सुन्दर के गीत को सुनकर, बहुत से मोर आ गये। जब मोर बोले, तो बादल भी आ गये कि मोर बोल रहे हैं, हम क्यों रुकें? यह ब्रज की विचित्र लीला है और उसी समय थोड़ी-थोड़ी धीमी-धीमी बूँदें भी गिरने लगीं। ठाकुर जी का पीताम्बर भीग गया, गीला पीताम्बर ठाकुर जी के शरीर से चिपक रहा है। यही नहीं सखियाँ बोलीं – "अरे ! कन्हैया भीग गये, पीताम्बर भी भीग गया, लेकिन ये बैरन मुरली नहीं भीग रही है, ये बराबर बज रही है।

देखो तो पानी में मस्त होकर कैसे जोर से गा रही है !” सारा गोपी समुदाय इस लीला को देखकर आनन्दमग्न हो रहा है।

कबहूँ पाडर खंडी जहाँ ।
रचैं हिंडोरौ इहि विधि तहाँ ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी१० चौ.७१)

श्री हित हरिवंश महाप्रभु कृत साँझी उत्सव (पद ६)

कुंवरि लड़ैती खेलहीं सब सखियनि लिए संग हो ।
पाडर सखी लखी सखियनी में करि पाडर की माला ।
पाडर के पायनि तर लोटति पंचवान की वाला ।

इसी पाडर वन के भीतर एक रास मण्डल भी है।

प्रेम सरोवर

सबसे पृथक प्रेमपथ पावन –

प्रेम सरोवर प्रेम की भरी रहत दिन रैन ।
जहँ जहँ प्यारी पग धरत श्याम धरत दोउ नैन ॥

स्थल नाम ही लीला विशेष की विज्ञप्ति करा रहा है। प्रीति वरिष्ठा श्रीजी व प्रेम पिपासु नन्द तनय का यही वह प्रथम मिलन-स्थल है जहाँ से प्रेम निर्यास का शुभारम्भ हुआ। स्वसुखवासनागन्धशून्य दिव्य त्याग की पृष्ठभूमि पर निर्मित यह युगल का पवित्र प्रेम-पथ है। रसवेत्ता श्री ध्रुवदास जी ने वैदग्ध्य पूर्ण वर्णन किया है, यहाँ की सरस लीला का। उनके कथनानुसार यहाँ युगल का पहला मिलन हुआ है। एक दिन नन्दनन्दन ने सुना कि वृषभानु वंश मणि अनिन्दित सुन्दरी श्रीराधा यहाँ सखी-सहचरियों सहित नित्य खेलने आती हैं। इधर कान्तिमती कीर्तिकुमारी ने भी सुन रखा था कि नन्दगाँव में कोई नन्दलाल हैं, जिनका सौन्दर्य विधि-इन्द्र-काम का भी मद-मर्दन करने वाला है। भानुपुर से श्रीजी सखियों सहित आँख-मिचौनी खेलते हुए प्रेमवन में आ गईं। संयोग से नन्दपुर से नन्दकुलचन्द्र का आगमन भी वहाँ हुआ। कल्प-पादप की सघन श्रेणी ने पहले से ही स्वयं झुक-झुककर कुञ्ज, निकुञ्ज, निभृत निकुञ्ज का निर्माण कर दिया था। नन्दसूनु श्रीजी की दर्शनेच्छा से एक सघन निकुंज में जाकर छिपकर बैठ गये। उधर आँख मिचौनी क्रीड़ा आरम्भ हो गयी। आँख मिचौनी क्रीड़ा का नियम ही कुछ ऐसा है कि एक चोर बनता है, दूसरा उसके नेत्र बन्द कर देता है, शेष सब दौड़-भाग कर यत्र-तत्र छिप जाते हैं। ताली बजने पर चोर की आँख खुलती है। चक्षु मोचन होने पर वह सबको ढूँढ़ता है। जो पकड़ा जाता है, फिर वही चोर बन जाता है। तमाल-तरु के तर ललित त्रिभंगी गति से खड़े श्यामेश के विशाल कमल दल सदृश खंजन लोचन चोर

बने हुए बार बार षोडशी किशोरी को ढूँढ़ रहे थे। ढूँढ़ते हुए एक जगह दृष्टि केन्द्रित हो गयी। दामिनी लली के दृगाञ्चलों से नव जलद लला के लोचनाञ्चल जा मिले।

पंकेरूहनयना को देखते ही वेणु-विहारी अचेत होकर गिर पड़े धरा पर। नख से शिख पर्यन्त श्रृंगार अस्त-व्यस्त हो गया –

वेणुः करान्निपतितः स्खलितं शिखण्डं भ्रष्टं च पीतवसनं व्रजराजसूनोः ।
यस्याः कटाक्षशरपातविमूर्च्छितस्य तां राधिकां परिचरामि कदा रसेन ॥

(रा.सु.नि.३८)

वेणु गिर पड़ी कर से, केकी पिच्छ भी सरक गया, पीत परिधान भी खुल गया। प्रियतम की यह अवस्था प्रिया जू के अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर प्रायः हो जाती है। यदा-कदा तो मूर्च्छावस्था इतने दीर्घकाल के लिए आ जाती है कि ग्वाल-बाल आकर सचेत करते हैं – "कन्हैया .....कन्हैया ! देख गैया बहुत दूर चली गई हैं, सूर्य भी अस्ताचल कू जा रहे हैं। हम भी विथकित है गये हैं तोकू जगाते जगाते, अब जल्दी उठ ...मैया बाट जोह रही होगी, तेरी यह कैसी विचित्र अवस्था है गई है, कभी भूमि पर लोट-पोट होय, नेत्रन ते अविरल अश्रुधारा बह रही है, ...उठ.....उठ।" उसी समय उधर सहचरियों ने ताली बजा दी। उदार चूड़ामणि श्रीजी इन्दीवरदल श्याम को उसी अवस्था में छोड़ कर चली गयीं एवं सहचरियों से समावृत हो वृषभानु पुर आ गईं किन्तु वृषभानु पुर में औदास्य की घनी रेखा श्रीजी के मुखाम्बुज को घेरने लगीं।

"राधा ! कोई वस्तु खो गई है क्या? " सखियों ने पूछा।

श्रीजी – "न, न।"

सखीगण – "आखिर हुआ क्या? "

श्रीजी – "कुछ नहीं" (धवल स्नेह को तिरोहित कर लिया अन्तस्तल में)

दो दिन बाद पुनः प्राणोपम ललिता जू ने पूछा – "राधा ! बता तो सही हृदयगत भावोर्मि को"

श्रीजी – "प्रिय ललिते ! उस दिन जब प्रेम वन में आँख मिचौनी खेल रही थी तो छिपने के लिए मैं कुसुमित कुञ्ज में गई, वहाँ एक नीली निधि मैंने देखी। अनन्त, अपरिसीम, सौन्दर्य-सुधानिधि कोटि-कोटि मन्मथ भी उसके नव नील-नीरदवर्ण लावण्य पर निर्मन्छित कर दिए जाएँ तो न्यून हैं। वाके अरुण कर-सरोरूह में मुरली विधृता ही, मोकू देखिके वाके कर ते वह भी गिर गई। श्यामल कलेवर ते पिंगल-दुकूल भी खिसक गयो। वह अत्यन्ताकर्षक मूर्ति मेरे चित्त में अंकित है गई है।

वा नीलमयंक की मूर्च्छा भी दूर न भई कि तब तक तैने ताली बजा दई और हम सब बरसाने चली आईं। पतौ नहीं वह कब सम्भाल पायो होगो अपने आप कूं।"

"कोई पहिचान है वाकी" – ललिता जी ने पूछा। श्रीजी – "हाँ, मस्तक पर मयूर किरीट, कर्ण में कुण्डल, कर में मुरली और वर्ण मेघ सदृश श्याम हो।" ललिता – "तू चिन्ता मत कर, मैं जान गई वह कौन है? "

राधा – "कौन है वह मनमोहन? "

ललिता – "भोरी राधा, वह नन्दलाला है। देख, मैं अभी वाकू बुलाय के लाऊँ।" ललिता जी सीधे नन्द-प्रासाद में गईं। मैया यशोदा ने सुन्दर सम्मान दियो ।

मैया – "अरी ललिता, आज कैसे आई? "

ललिता – "मैया ! तेरे मनोरथ कू पूर्ण करवे।"

मैया – "मेरो मनोरथ? "

ललिता – "हाँ मैया, मैं सब जानूं, अब तू बस अपने लाला कूं भेज दे मेरे साथ।"

मैया – "ले जा, कन्हैया ओ कन्हैया ....."

कृष्ण – "हाँ मैया"

मैया – "ललिता आई हैं तोकू बुलावे, इनके साथ चलो जा।"

श्रीकृष्ण तो गमनोत्सुक बैठे ही थे। ललिता जी श्रीकृष्ण को लेकर ललिता कुण्ड आईं और बोलीं – "देखो कृष्ण आज तुम्हारे भी मनोरथ की सिद्धि, राधा की भी मनोरथ सिद्धि और हमारे कार्य की भी सिद्धि होगी। याद है, उस दिन जब प्रेम वन में तुम अचेत हो गिर पड़े थे भूमि पर? "

कृष्ण – "हाँ ललिता जू, याद है और जब मेरी मूर्च्छा टूटी तो वहाँ कोई नहीं था। मैं भी उस दिन से बहुत विकल हूँ श्रीजी से मिलने के लिए।"

ललिता – "किन्तु ऐसे तुम बरसाने नहीं जा सकते हो क्योंकि बरसाने में सबका प्रवेश नहीं है। उसके लिए तुम्हें सखीवेष धारण करना होगा।"

बरसाने के वास की आस करें शिव शेष ।
यहाँ की महिमा को कहे जहाँ श्याम धरे सखी वेष ॥

तब ललिता जी ने ललिता कुण्ड पर श्रीकृष्ण का सखी वेष बनाया, लंहगा पहनाकर चूनर ओढ़ाई। इसलिए भी इस स्थल का नाम ललिता कुण्ड है। गोपी वेष में श्रीकृष्ण को ललिता जी अपने साथ बरसाने में लाईं। बाहर पौरी में ९ भानु व उनकी पत्नियाँ बैठी हुईं थीं। ललिता जी ने कहा – "कृष्ण ! अब घूँघट कर लो।" श्रीकृष्ण ने घूँघट कर लिया। ललिता जी के साथ नई नवेली नार को देखकर सबने पूछा – "अरी ललिता, यह कृशोदरी कौन है? "

ललिता जी – "यह उपनन्द की कन्या है। साँकरी खोर में मोकूं मिल गई तो मैंने कही कि संध्या है गई है, रात होवे वारी है, आज तू यहाँ बरसाने में रुक जा।" सुन कर सब गोपवधू प्रसन्न हो गईं।

भानु पत्नी – "हाँ-हाँ अच्छो करो, लै आई, जा भीतर लै जा। अच्छी खातिरदारी करियौ।"

भीतर वृषभानु भवन में जब श्रीजी के गात्र-गन्ध-लुब्ध हरि भ्रमर को ललिता जी लाईं और वहाँ 'विभृमांगभंगिमनिधिमधुरा (श्रृंगार रस का विशेष भाव) शशिवदनी श्रीजी उन्हें लोचन-गोचर हुईं तो युगल रसराज पारस्परिक प्रेम-सुखदान की अदम्य लालसा से सुदृढ़ परिरब्ध हो गए –

न आदि न अंत विहार करें दोउ लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।
नयी नयी भाँति नयी नयी कांति नयी अबला नव नेह बिहारी।
रहे मुख चाह दिए चित आह परे रस प्रीत जो ग्रथि महारी।
रहे इक पास करें मृदु हास सुनो ध्रुव प्रेम अकथ कथारी।

ततो प्रेमसरोवर प्रार्थना मन्त्र :-

प्रेमप्लुताय रम्याय परमोक्षस्वरूपिणे।
कदम्बकुसुमाकीर्ण प्रेमाह्वयनमोऽस्तु ते॥

प्रेमपूर्ण परममोक्ष रूपी कदम्ब कुसुमों (फूलों) से व्याप्त रमणीक प्रेम वन को नमस्कार है।

ततो प्रेमसरोवर स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

ललिताप्रेमसंभूते प्रेमाख्यसरसे नमः।
प्रेमप्रदाय तीर्थाय कौटिल्यपदनाशक॥

ललिता प्रेम से उत्पन्न, प्रेम दाता, कुटिल गतियों के नाशक, प्रेम सरोवर को नमस्कार है।

यहीं गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की बैठक है।

अंकस्थितेऽपि दयिते किमपि प्रलापं, हा मोहनेति मधुरं विदधत्यकस्मात्॥
श्यामानुरागमदविह्वलमोहानांगी श्यामामणिर्जयति कापि निकुञ्जसीम्नि॥

(रा.सु.नि.०४६)

'माधुरी दास जी' के अनुसार श्रीकृष्ण के अंक में स्थित श्रीजी को प्रेम वैचित्री में विरह भ्रम हुआ। उस अश्रुजल से यह सरोवर बना। उन्हें अचेत देखकर श्रीकृष्ण भी अचेत हुए। दोनों को अचेत देखकर सहचरियाँ भी अचेत हो गयीं तब वृन्दाजी की प्रेरणा से सभी सारिका, शुक राधा-राधा रटने लगे। तब सभी पुनः सचेत हो गए और नौका विहार भी किया। बरसाना से नन्द गाँव के रास्ते में एक मील की दूरी पर प्रेम सरोवर विराजमान हैं। कुण्ड का आकार नौका की भाँति है, जो चारों ओर से हरे-भरे कदम्ब वृक्षों से सुसज्जित है।

श्री संकेत

साँझी के लिए कुसुम चयन करने गोपियों सहित श्रीजी एक बार प्रेम सर आयीं –

"पहुँची प्रेम सरोवर तीर कुसुम बहत पै भवँरनि भीर"

(ब्र.प्रे.सा.लहरी चौ. ९)

उधर नन्द भवन से मैया यशोदा भी संकेत देवी के पूजनार्थ संकेत आयीं, वहीं प्रेम सरोवर पर केलि चतुरा श्रीराधारानी ने सखियों सहित यशोदा मैया को देखा। मैया की भी सहज दृष्टि जब परम कृशोदरी किशोरी पर पड़ी तो मन सहज ही परिचय पूछने को उतावला हो गया। परस्पर परिचय दान हुआ, अनन्तर मैया ने कहा – "राधा ! आज तो संकेत देवी ने पूजन के पूर्व ही पूजन को पूर्ण लाभ प्रदान कर दियौ।" राधा – "वो कहा मैया? "

यशोदा – "मोकू तेरे दर्शन है गये।" मैया ने संकेत देवी के पूजन का सम्पूर्ण फल श्रीराधा रानी का दर्शन माना और मन ही मन संकेत देवी को प्रणाम कियौ, यह कहते हुए कि संकेत देवी ही सच्ची देवी है, जाने बिना पूजन के मेरी अभिलाषा कू पूर्ण कर दियौ। अपने अंक में लेकर मैया सर्वाभिमता लड़ैती राधा कू प्यार करते चूमवे लगी। मैया को वात्सल्य अविराम उमड़वे लग गयो, शिव विचारन के विशाल सागर में डूब गयी और बोलीं – "राधा ! मैं तेरे जन्म अवसर पर आई ही, वाके बाद भाग्य ते आज मिलनो भयो है। ललिता ! कीर्ति जीजी कू कहियो कि नन्द गाँव वारे तुम्हारे समक्ष तो नहीं हैं पर यशोदा कू जो वचन दियौ वाकू याद अवश्य रखें, वा वचन पालन कौ अवसर भी अब अति शीघ्र आ रह्यौ है और भूल मत जइयो, कीर्ति जी को पाँय लागन (चरण स्पर्श) अवश्य कहियो।"

नाम हिता तो माइ कौ सुनि अति लड़ि वृषभान ।
कहियो पा लागन जु मम दै के बहु सनमान ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी१२ चौ. ४२)

आज अष्टसखी सेविता किशोरी कू भानु मन्दिर पहुँचते-पहुँचते बहुत अबेर (विलम्ब) है गयी। मैया कीर्ति ने श्रीजी से पूछी – "लाली ! आज कहाँ सुदूर निकल गई जो इतनी अबेर पै आई है।" राधा – "मैया ! आज सखीन संग साँझी बीनवे प्रेम सरोवर गई ही, तहाँ मैया यशोदा संकेत देवी पुजवे आई ही, वह मिल गई।" (बहुत प्रसन्न होकर) कीर्ति – "यशोदाजी ने कहा कही।" राधा - "यह ललिता बतावैगी।"

सखी –

हम बन गई फूलनि तोरन हेत ।
महरि जु आईं पूजिबै देवी वट संकेत ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी१२चौ६९)

"मैया यशोदा जी हम सबसों मिलके बहुत प्रसन्न भई। राधा सों नन्द गाँव चलवे की कही और हाँ तोकू चरण स्पर्श कही है, साथ में यों भी कही है कि कीर्ति जीजी सों कहियो वे अपनों दियो भयो वचन याद रखें।"

आई चतुरा नारि इक हम सों गई बतराय ।
भेद भाव उन महरिको सबही दियो जताइ ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी१२चौ ७१)

वचन किये जे परस्पर हम तुम खिले सु चित्त ।
रानी ते सुधि कीजियो हौं सुधि करत जु नित्त ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी१२चौ ७८)

वचन या प्रकार सों है – एक बार कीर्ति जू और यशोदा जू दोनों गर्भवती हीं। श्री यमुना जी पै दोनों को मिलन भयो। परस्पर प्रगाढ प्रेम तो हो ही, दोनों ने एक दूसरे कू वचन दियौ कि यदि हम दोनों के लाला व लाली होंगे तो उनकी हम सगाई करेंगी। यशोदा – "कीर्ति जी! यदि आपके पुत्री भयी और हमारे पुत्र तो हम अपने पुत्र को विवाह आपकी कन्या सों ही करेंगी।" कीर्ति – "यशोदा जी! यदि हमारे पुत्री भई और आपके पुत्र तो अवश्यमेव हम ऐसो ही करेंगी।" या वचन कू याद करके श्री कीर्ति जी तो आनंद विह्वल है गयीं। लाली राधा कू सप्रेम भोजन करायो, बढ़िया स्वादिष्ट पदार्थ जिमाये। ब्रज प्रेमानंद सागर के अनुसार भी संकेत वट में ही श्री कृष्ण को श्री राधा रानी के प्रथम दर्शन हुए। एक दिन वत्सपाल से गोपाल बनने की हठ कर बैठे नन्दसूनू। उसके पीछे भी मूल कारण श्रीराधा दर्शन था। (ब्र.प्रे.सा. १० लहरी. चौपाई १४२) पहले तो नन्द मन्दिर से मेवा मिठाई चुरा कर सखाओं को घूस रूप में उसका भोग लगाया फिर बोले – "यह मिष्ठान मैंने सेंत-मेंत नहीं खवाया है, अब तुम सबकू बाबा ते गोचारण की कहनी पड़ेगी।" सखा बोले – "कन्हैया! तू चिंता मत कर, आज तो हम सब बच्छ पाल से गोपाल बन कर ही रहेंगे।" संयोग से कार्तिक सुदी अष्टमी गुरूवार की तिथि थी, इतनी शुभ कि गर्ग जी ने पत्रा खोलते ही कह दियो, "आज को मुहूर्त परम मंगलकारी है गौचारण के लिए।" अब तो आज्ञा पाते ही नन्दनन्दन सहस्रों सखाओं सहित प्रथम गोपाष्टमी को ही गायों को लेकर बरसाने की ओर चल दिये। संकेत पहुँचकर गोपाल लाल पुष्प चुनती हुई उज्जवल विलासिनी राधा के नीलाञ्चल पर तन-मन-नयन वार बैठे –

विरमें ग्वाल जु वट संकेत तरवर सरवर जहाँ छबि देत ।
बीनति कुँवरि सखिनु संग फूल चमकैं तिन तन सुरंग दुकूल ॥

(ब्र.प्रे.सा. लहरी २२ चौ.३५)

गौर तेज मधुरौ महा अंग अंग परम अनूप ।
ताहि देखि विथकित भयौ ढोटा गोकुल भूप ॥

(ब्र.प्रे.सा. लहरी.२२ दोहा-४०)

सखाओं की दृष्टि से स्वयं को बचाते हुए प्रेम वन के सर पर आ गये। इस कथानक का कुछ अंश श्री ध्रुवदास जी की "बयालिस लीला" से मिलता-जुलता है। प्रेम वन, प्रेम सर एवं संकेत वट ये परस्पर अत्यन्त निकटवर्ती स्थान हैं।

(ब्र.प्रे.सा.२१/३५, ३६/२, ३९/४)

मृदुहासिनी का गौर तेज गोकुलेश के नेत्रों में मानो विद्युल्लहरी प्रसरित कर गया, नटवत् चक्कर काटने लगे –

भूख लगी कै प्यास तुहि भैया मुख ते बोलि ।

(ब्र.प्रे.सा.लहरी २२चौ ४२)

सुबाहु – "कन्हैया ! आज बिना ताल-पखावज के तू कैसे नाच रह्यौ है। कहीं तोकू भूख तो नाय लग रही? "

बिनु ही ताल पखावज नचै तोते कोऊ स्वांग न बचैं ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी१२चौ ४७)

सखा २– "गौचारण के प्रथम दिन ही यह कैसौ कौतुक कर रह्यौ है? "

सखा ३– "नन्दगाँव में तो तेरी चोरी के कोलाहल और यहाँ वन में चोरी-बरजोरी यह कैसो स्वांग है।"

सखा ४– "लाला कन्हैया, बता तो सही तोकूं भयो कहा है? "

कृष्ण – "न, न मैं नांय बताऊँगो, यह कहवे योग्य बात नांय है, तू मैया-बाबा कू बता देगो।"

सखा – "मत बतावै, हमें सब पतौ है।

रूप स्वादी ! तू जाकूं चाहै वह तो बरसाने चली गई, अब तेरे हाथ कछु नांय लगेगो।"

रूप सवादी लोचन महा ऐसे हाथ लगैगो कहा ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी२२चौ ५२)

कृष्ण – "भैया सुबाहू ! वे जहाँ गयीं हैं, वहीं मोकू तू लै चल मेरो हृदय धैर्य धारण करिबे में असमर्थ है।"

सुबाहु – "कन्हैया तू ऐसो रूप लट्टू है गयौ है, बे सिर पैर की बात मत करै।"

प्रथम ही रूप बौंहनी भई । निरखि वन वैभव यह नई ।

(ब्र.प्रे.सा.लहरी२२चौ ५६)

कृष्ण – "आज गौचारण के प्रथम दिन ही शुभ सगुन भयो, मानो सम्पूर्ण वन की सुन्दरता को अपूर्व वैभव या रूप में (श्रीजी के रूप में) दर्शित भयो। यासों पतो लगै है कि हमारों गौचारण अनेक मंगलनि कौ हेतु होयगो।

भैया ! अब वा रूप सम्पत्ति की धनी, मन्द-हास्य-युत स्वर्ण कमल-मुख वारी के नाम-गाम, ठौर-ठिकाने को पतौ लगा, वाके रूप शर ते मेरो हियो आहत है गयो है।"

रे भंगरैला ! नन्द के मो सिख सुनतु न कौंन ।
बोलत निपट कराहि कैं कहा ह्वाँ वरषे बाँन ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी२२दोहा.४२)

सखा – "अरे भंगड़ नन्द के ! कहाँ लगौ वह बाण जो तू कराह रह्यौ है।"

कृष्ण – "भैया ! तू इतनौ कठोर मत बोल, कोई ऐसे देवता कौ नाम बता जाकूं पूजवे ते भानु घर में मेरो ब्याह है जाय।"

(सब सखा सुनकर हँस गये और बोले)

पाँवन सर में न्हाइ कै बन्दनि करि गिरिराज ।
मोहन ह्वै हैं बेगि हीं तो मन वांछित काज ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी.२२चौ.६९)

सखा – "कन्हैया एक ही उपाय है, पावन सरोवर में स्नान कर और गिरिराज बाबा की पूजा कर, बस सब मनोरथ पूर्ण है जायेंगे और देख जाके दृग शर से तू बिंध गयौ है वह वृषभानु नन्दिनी राधा है। बरसानो जिनकी रजधानी है। अच्छो भयौ तू वाके सामने नहीं पड़ौ नहीं तो तेरी प्रतिष्ठा नष्ट है जाती कि देखो वृषभानु दुलारी के दृग शर से नन्द दुलारो छलनी है गयौ।"

मनसुख – "तू चिंता मत कर कन्हैया, तेरी मैया वाते तेरो ब्याह करावे के लिए गिरिराज पूजा, संकेत देवी और नारायण की आराधना करै है।"

मन के मरमी सखा ने कहै कृष्ण सों बैंन ।
तद्दपि फेरि सके न मन रूप उरझि गए नैन ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी२२दोहा७९)

भाँन कुँवरि हू प्रथम ही देखे नन्द कुमार ।
उदै भयो अनुराग उर पूरवली जु चिन्हार ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी२२दोहा८०)

बाँनी कहा लग वरनिये गाढ़ प्रेम हिय लाग ।
वृन्दावन हित रूप कह्यौ प्रथम उभै अनुराग ॥

(ब्र.प्रे.सा.लहरी२२दोहा८१)

या प्रकार सों चाचा वृन्दावन दास जी ने संकेत में युगल के सनातन प्रेम की प्रथम उदय लीला गाई। मैया यशोदा ने भी जन्मोपरान्त श्रीजी के प्रथम दर्शन संकेत में किये और यशोदा नन्दन ने भी किशोरी जी के प्रथम दर्शन यहीं किये।

संकेत देवी

ततो संकेतसंस्थानं गोपिकाकृष्णसंगमम् ॥
यत्र संस्थापयेद्देवीं संकेतप्रियकारिणीम् ।
मथुरामंडले संस्था देवकीनिर्मितेश्वरीम् ॥

(मार्कण्डेय पुराण)

संकेत नामक स्थान गोपिका एवं श्रीकृष्ण का मिलन स्थल है। यहाँ पर संकेत के माध्यम से प्रियकार्य करने वाली देवी स्थापित हैं। मथुरामण्डल में स्थित इस स्थान में यशोदा जी द्वारा यह देवी विग्रह निर्मित है। इस श्लोक में देवकी नाम यशोदा जी के लिये प्रयोग हुआ हैं।

श्रीमतसनातनगोस्वामिकृतबृहत्तोषणी में श्रीमद्भागवत १०/२१/१० टीकानुसार – **द्वे नाम्नी नन्दभार्य्याया यशोदा देवकीत्यपि । अतः सख्यमभूत्तस्या देवक्या शौरिजायया ॥** यशोदा जी के दो नाम है देवकी एवं यशोदा।

ततो संकेतेश्वरी प्रार्थना मन्त्र :-

दम्पत्योः प्रीतिदे नित्यं चिरजात वियोगिनि ।
नमस्ते वरदे देवि संकेत फ़लदायिनि ॥

(मार्कण्डेय पुराण)

इति मन्त्रं चतुर्भिः पठन् चतुर्नमस्कारं कुर्यात् ।
चिरं स्त्रीपुंसयोर्वैरो यत्र मुक्तो भविष्यति ॥
इत्येकादशमाख्याताः देवता तीर्थ संज्ञकाः ।
स्वकुण्डे देवकी स्थाप्याः कृष्णक्रीड़ार्थहेतवे ॥

(मार्कण्डेय पुराण)

हे दम्पत्ति (राधा-माधव) के प्रति प्रेम प्रदान करने वाली, हे चिरजात वियोगिनी (विशेष योग देने वाली), संकेत रूपी फल प्रदायिनी हे देवी ! आपको नमस्कार है। इस मन्त्र का चार बार पाठ करके ४ बार नमन करें। दीर्घकाल का स्त्री पुरुष का द्वेष यहाँ नष्ट हो जाता है। वह देवी एकादश तीर्थ देवता के रूप में वर्णित की गयी है, जो अपने कुण्ड में श्रीकृष्ण को क्रीडासुख देने वाली और यशोदा जी के द्वारा स्थापित है।

सूर्य कुण्ड

ब्रज में सूर्य कुण्ड कई जगह हैं, पर सब सूर्य कुण्डों में अंतर है। सूर्य कुण्ड इसीलिए यहाँ है कि सूर्य राधा रानी के वंश के आदिपुरुष हैं। एक कथा यह भी आती है कि सूर्य राधा रानी

के दर्शन करने आये थे और एक कारण ये भी बताते हैं कि सूर्य गौ भक्त पर बहुत प्रसन्न रहते हैं।

श्री गहवर वन के कतिपय सुमन

श्री किशोरी जू के कर सरोज से निर्मित, पोषित, पल्लवित, सुसज्जित वाटिका श्री गहवर वन के कतिपय सुमन जो श्रीकृष्ण रूपी भ्रमर से स्पृष्ट्, चुम्बित् व आस्वादित हैं।

सुमन श्री किशोरी अली जी

लाड़ली जी द्वारा अधिकाधिक उनका स्नेह प्राप्त कर, इस पुष्प ने आजीवन इस धरा को नहीं छोड़ा । संयोग से आपकी अर्धाङ्गिनी का नाम भी किशोरी था, किशोरी के धामगमनोपरान्त विरहावस्था में व्याकुल हो, हा किशोरी ! प्राण प्रिय किशोरी ! पुकारे जाने पर साक्षात् श्री किशोरी जी की कृपा व दर्शन प्राप्त किये।

सुमन श्री गुलाब सखी

आपको तो श्री प्रिया जी ने नाम भी पहले ही प्रदान कर दिया। आप श्रीजी की वाटिका के गुलाब सुमन हैं। यवन जाति में जन्म लेकर, आपने अपनी आराध्या श्रीजी की एकाभक्ति सुवास सर्वत्र प्रसारित की। आपकी पुत्री का नाम भी राधा था, जो नन्द गाँव की वधू बनी। एक बार ग्रीष्म के दिनों में पुत्री से मिलने के लिए चले, तो मार्ग के मध्य तृषा से व्याकुल हो उठे, मध्य जंगल में पानी कहाँ से प्राप्त हो? तब स्वयं श्रीजी (गुलाब सखी की पुत्री राधा का रूप-वेष धारण कर) अपने इस पुष्प को जल लेकर सिञ्चित करने आईं।

"बाबा ! लो जल पी लो"

"पुत्री राधा, राधा तू यहाँ कैसे आई? तुझे कैसे पता कि मैं यहाँ जल के बिना व्याकुल हूँ।"

जो वाटिका श्रीजी के कर सम्पुटों से ही बनी, पली, बढ़ी क्या श्रीजी अपनी उस वाटिका के एक भी पुष्प को बिना जल के वृक्ष से गिरने को विवश करतीं? नहीं कभी नहीं। वो तो दयार्द्रा हैं, अतः ऐसा सम्भव नहीं था। पुत्री राधा के घर पहुँचने पर पता चला कि वह पुत्री राधा नहीं, प्रत्युत आराध्या राधा थीं। श्रीजी की सीढ़ियों को, अपने नूर (दाढ़ी) से मार्जित करना, प्रतिदिन सारंगी की मधुर ध्वनि श्रीजी को सुनाना, बस यही आपका दैनिक कार्य था। शरीरान्त उपरान्त भी आपको ब्रजवासियों ने अपनी दैनिक सेवा में संलग्न देखा अर्थात् नित्य लीला में आपको अपनी सेवा के लिए श्रीजी ने स्वीकार कर लिया।

पं श्री हरिश्चन्द्र जी महाराज

आप सब इस गहवर वाटिका के विकसित पुष्प थे। आपकी भक्ति की सुगन्ध आज भी अमर है, जो जन-समुदाय के लिए परम कल्याणकारी है।

पं. हरिश्चन्द्र जी महाराज गहवर वन निवासी पुष्टिमार्गीय महापुरुष थे। आपका उत्कट वैराग्यमय ऐकान्तिक जीवन श्रीजी में अनन्य निष्ठा से युक्त था। आप सारी रात विप्रलम्भ (वियोग) की भावना में जागते रहते थे। कभी रात को सोये नहीं। "**डासत ही गई बीत निसा कबहूँ न नाथ नींद भर सोयो**"। तुलसीदास जी की विनय पत्रिका की ये पंक्ति ही आपका जीवन थी। जो एक बार भी नींद भर नहीं सोया वही यथार्थ प्रेमी है यह स्थिति पं.हरिश्चन्द्र महाराज जी के जीवन में दृष्टिगोचर हुई। आप सारी रात जागते थे और खिड़की पर बैठकर गहवर वन की कुंजों को देखा करते थे। एक बार आपके पास बहुत बड़े विद्वान आए, काशी से। पं.हरिश्चन्द्र जी ने कहा कि कुछ कृष्ण कथा सुनाइये। वह लगे बोलने कि उद्धव जी से ऐसा हुआ, गोपियों ने यह कहा, वो कहा, काफी देर बोलते रहे परन्तु पण्डित जी कुछ नहीं बोले। काशी से आए हुए महाराज बोले – "पण्डित जी ! आप तो कुछ बोले ही नहीं, कि हमने कैसा सुनाया यह वृत्तान्त।"

पण्डितजी बोले कि हमारी समझ में तो एक ही बात आती है कि गोपियाँ भी कुछ बोली नहीं थी वे जो कुछ बोली वह बोलना नहीं वस्तुतः प्रेमालाप था।

भ्रमर गीत में आता है कि गोपियाँ क्या कह रही हैं उन्हें स्वयं कुछ पता नहीं। गौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्यों का भी यही कथन है – भाव, प्रेम, मान, प्रणय, राग-अनुराग, महाभाव, मोहनाख्य, मादनाख्य भाव और चित्रजल्प, संजल्प, दिव्योन्माद आदि प्रेम की अवस्थाओं में स्वतः निकले हैं। वहाँ श्रीकृष्ण के प्रति असूया (दोष दृष्टि) है श्रीकृष्ण के प्रति ईर्ष्या है, उपहास है, व्यंग भी है। कहती हैं –

गोप्युवाच –

**मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक्॥**

(भा.१०/४७/१२)

भँवरे ! तू उस धूर्त का भाई है।

कृष्ण को कितव कहती है। यह उनकी सहज बोलन है, जानबूझकर कुछ नहीं कहा गया।

हमारे पाँव को मत छू, निर्लज्ज ! हमारी सौत कुब्जा आदि के वक्षस्थल पर जो माला है और वह माला वक्षस्थल से जब टकराती है तो स्तनों पर लगा कुमकुम उस पर लग जाता है, तू उस माला पर बैठता है तो तेरी मूछों में वो कुमकुम लग जाता है और उसी कुमकुम को लगाकर चरण छूने तू आया है।

चला जा, भाग जा !!

तेरा स्वामी भी निर्लज्ज है जो यदुवंशियों की सभा में जाता है और उन मानिनियों के वक्ष स्थल पर जो कुमकुम है उससे सनी माला को धारण करता है। यह परिहास की बात है कि जैसे तेरा स्वामी निर्लज्ज है वैसे ही तू भी है। चला जा। कृष्ण के प्रति असूया, दोषदृष्टि, व्यंग आदि क्या नहीं है उनका?

गोपियाँ दिव्योन्माद की अवस्था में बोल रही थीं। उद्धव जी ने जो देखा उसका प्रभाव था, जो सुना उसका प्रभाव नहीं था। प्रेम में रंगी थीं मत्त थीं वे। जैसे कोई वारुणी पी ले तो होश नहीं रहता ...

प्रेमियों की स्थिति –

न जाने कौन सी धुन में तेरा दीवाना आता है ।
उड़ाता खाक सर पे झूमता मस्ताना आता है ॥
सुराही कहकहा उठी प्याला मुस्कुराता है ।
हजारों उँगलियाँ उठती तेरा दीवाना जाता है ॥

प्रेमियों की मस्ती अलग होती है –

मेरी जंजीरे पा से आवाज आती है ।
हटो दीवाना आता है हटो दीवाना आता है ॥

तो पं.हरिश्चन्द्र जी ने कहा कि गोपियों ने जो कहा वो उद्धव जी ने देखा वो डूबन वो प्रेम की मस्ती ... उनको सुध-बुध नहीं है कि किस तरह से पड़ी हैं कुछ पता नहीं है, न देह का न वस्त्रों का। प्रेम की मस्ती में ऐसा ही होता है।

इस गहवर वन में आज भी इन सब महापुरुषों की भक्ति की महक साक्षात् दर्शनीय है।

श्री मौनी जी महाराज

श्री मौनी जी महाराज के शरीर से प्रत्यक्ष अग्नि प्रकट हुई। लताओं पताओं के गिरे हुए पत्तों को घोल कर पी जाते थे और जीवन पर्यन्त यहाँ गहवर वन में अनन्य भजन किया। अति विलक्षण उच्च कोटि के असंग्रही महात्मा श्री मौनी जी महाराज इस गह्वर वन के एक दुर्लभ पुष्प थे।

श्री प्रिया शरण जी महाराज

प्रेम सरोवर की धरा को पावन किया पूज्य गुरुदेव श्री रमेश बाबा जी महाराज के परम गुरु, श्रीजी के अनन्य भक्त श्री श्री प्रिया शरण जी महाराज ने। जिन्होंने अपनी सौ वर्ष से अधिक आयु का अधिकांश भाग, यहीं श्रीजी के भजन-ध्यान में सम्पूर्ण किया।

बरसानो हमारी रजधानी रे ।
महाराज वृषभानु नृपति जहां कीरतिदा शुभ रानी रे ।
गोपी गोपओप सौं राजत बोलत मधुरी वानी रे ।
रसिक मुकुट मणि कुंवरि राधिका वेद पुरान बखानी रे ।
खोर साँकरी मोहन ढूंक्यौ दान केलिरत ठानी रे ।
गहवर गिरि वन वीथिन विहरत गढ़ विलास सुख दानी रे ।
दूध दही माखन रस घर-घर रसना रहति लुभानी रे ।
पान करन कौ अमृत सर पर भानोखरि को पानी रे ।
सदा सर्वदा पर्वत ऊपर सोभित श्री ठकुरानी रे ।
अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरैं कमला निरखि लजानी रे ।
दिये लेत नहीं चारि पदारथ जाचत जन अभिमानी रे ।
'नागरिदास' वास दृढ़ कीनौं भागमती जगजानी रे ॥
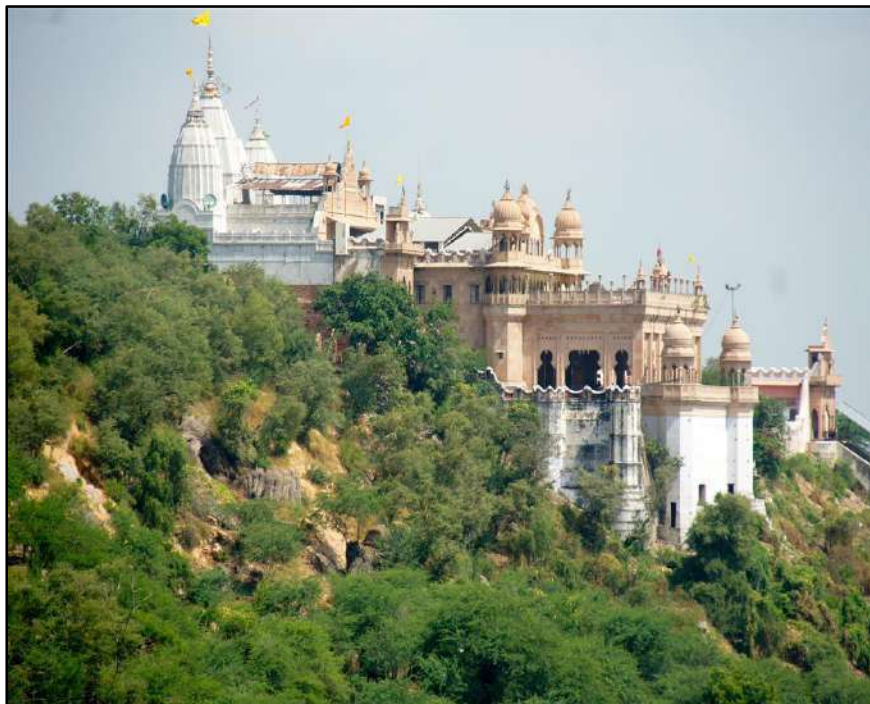
भानु गढ़ – श्रीजी मंदिर

बरसाना – लट्ठमार होली एवं रंगीली होरी

भानु गढ़ – श्री ब्रह्मा जी, श्रीजी चरण चिन्ह एवं श्री कामधेनु स्तन

भानु गढ़ – श्री नागरी दास समाधि स्थल एवं श्रीजी प्राकट्य स्थल

जयपुर मंदिर एवं दान गढ़

मोर कुटी एवं साँकरी खोर

बरसाना – रंगीली होरी समाज
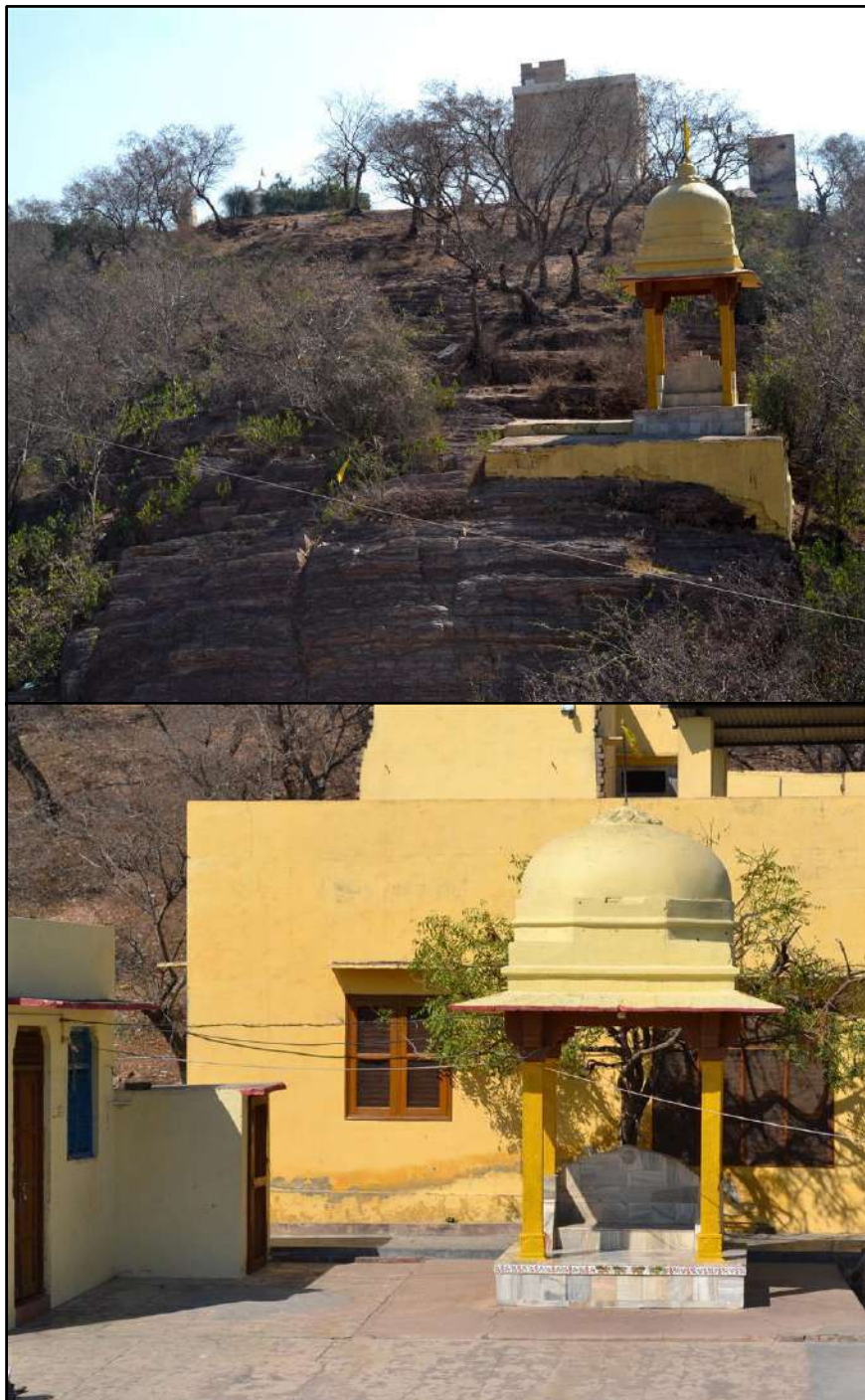
श्री कृष्ण जी की छतरी एवं श्री राधा रानी जी की छतरी

श्री ठाकुर जी के हथेली एवं लठिया के हूदा का चिन्ह एवं विलास गढ़

श्री मानगढ़

श्री मानगढ़ – मानेंगित वन

श्री गहवर वन एवं श्री राधा सरोवर

गहवर वन – श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक एवं शंख शिला

एक अजगर, जिसे लाखों चीटियाँ खा रही है, शिष्यों द्वारा पूछने पर कि यह कौन है? किस कारण से इस दुर्गति को प्राप्त है। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने बताया कि जो धर्मानुयायी संत महन्त दैवी द्रव्य का दुरूपयोग करते हैं, अपनी वासनाओं की पूर्ति में उसे लगाते हैं, उनकी यही दुर्गति होती है। यह अजगर भी एक महन्त थे, जिन्होंने भगवत्सेवा के धन को अपनी वासनाओं में व्यय किया, उसीसे इनकी यह स्थिति हुई है और चींटियाँ जो इनको खा रहीं हैं ये इनके शिष्य थे।

बरसाना – श्री वृषभानु कुण्ड एवं श्री कीर्ति कुण्ड

बरसाना – श्री ब्रजेश्वर महादेव एवं पीरी पोखर (प्रिया कुण्ड)

बरसाना – प्रेम सरोवर एवं श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक

संकेत – श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी भजन कुटी, श्री संकेत बिहारी एवं श्री संकेतेश्वरी देवी

संकेत - श्री राधा-रमण मंदिर एवं गहवर वन स्थित - पं. हरिश्चन्द्र जी महाराज की कुटिया

अत्यंत दुःख की बात है कि संकेत के श्री राधा-रमण जी की अष्ट धातु की मूर्ति चोरी हो गई है।

संकेत – विह्वल कुण्ड एवं कृष्ण कुण्ड

अध्याय – ४

विवाह लीला

श्रृंगार रस पक्ष की सबसे प्रधान लीला है – प्रिया प्रियतम की विवाह लीला। लोक में तो बहुत से लोग राधा-कृष्ण विवाह से सर्वथा अनभिज्ञ हैं और इसीलिए ऊटपटांग प्रश्न भी कर देते हैं – “क्या राधा-कृष्ण का विवाह हुआ था?” बहुत से मिथ्या भ्रम में हैं कि विवाह हुआ ही नहीं है।

तत्समस्त मिथ्या भ्रमावरण के निवारण हेतु इस पुस्तक में विविध पुष्ट प्रमाण अन्तरंग क्रीड़ारसासक्त रसिकाचार्यों की वाणी के द्वारा रसमयी-विवाह लीला को उद्धृत किया गया है, जोकि वक्ता, श्रोता, अध्येता के मन को दिव्य रस-सिंधु में उन्मज्जित-निमज्जित कर देती है।

यूं तो राधा-माधव की प्रत्येक लीला रस का पुंजीभूत स्वरूप है, तथापि अनेकों रसाचार्यों ने रसमयी इस विवाह-लीला के नायक दूलह श्रीकृष्ण एवं दुल्हन श्री राधिका को ही अपना आराध्य स्वीकार किया है जैसे – श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक ‘श्री श्री हित हरिवंश जी महाप्रभु’, आपने तो नित्य-नवनवायमान श्रृंगार रस पक्ष के लिए अपने सम्प्रदाय में लाड़ली-लाल की आराधना नित्य-दूलह-दुलहिन के रूप में ही प्रतिष्ठित की है –

'खेलत रास दुलहिनि-दूलह'

(हित चतुरासी ६२)

ही आपके आराध्य हैं।

नन्द और वृषभानु घर सजन सगारत रीति।
श्री हरिवंश जू मन खंची इहिं नाते दृढ़ प्रीति॥

अनन्तानन्त लीला गतिविधियों में श्री हित महाप्रभु को तो वैवाहिक-रस-पद्धति ही रुचिकर है। एक बार नहीं, एक स्थान पर नहीं, अनेकों बार एवं विविध स्थानों पर राधा-माधव की विवाह-लीला रसवेदीजनों ने गाई है।

युगल की विवाह लीला प्रधान रूप से पाँच स्थानों पर हुई है।

१ बरसाना, २ नन्दगाँव, ३ संकेत, ४ भाण्डीर वन, ५ वृन्दावन।

बरसाने में विवाह

आदिपुराणानुसार, श्री भृंगाधिप उवाच –

किमहं वर्णये भाग्यं राधायाः परमाद्भुतम ।
ब्रह्मादयोपि बिदुः परमानन्दमंदिरम् ।
ततो विवाहमक्रोद् वृषभानुर्गुणोदयः ।
वैशाखेसितपक्षे तु तृतीया चाक्षयाह्वया ॥
रोहिणीस्वर्क्षसंयुक्ता जयालग्नशुभावहा ।
पारिवर्हादिकं दत्त्वा वस्त्रमन्नसमृद्धिमत् ॥

(आ.पु.१२/१०,११,१२)

श्रीजी के अतुल्य सौभाग्य की महिमा क्या कहें ? उनके उस परमानन्द मन्दिर स्वरूप भाग्य के विषय में स्वयं ब्रह्मादि देवता भी ज्ञान-शून्य हैं। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की अक्षय तृतीया के दिन, रोहिणी नक्षत्र में शुचितम मुहूर्त और शुभ लग्न में ब्रजेश्वर श्री वृषभानु ने उत्तमोत्तम अन्न-वस्त्रादि देकर अपनी दुहिता का पाणिग्रहण कराया।

"दिन दूलह नन्दनन्दन दुलहिन राधिका"

(चाचा वृन्दावन दास जी)

नन्दग्राम व बरसाने की विवाह लीला का चाचा वृन्दावन दास जी ने राधा प्रधानग्रन्थ 'लाड़ सागर व ब्रजप्रेमानंद' में अत्यन्त सरस व विस्तार पूर्वक गान किया है।

पुस्तक कलेवर के विशाल होने का भय भी है, अतः पाँचों विवाह स्थल की अति संक्षिप्त चर्चा उद्धृत की जा रही है। नन्दगाँव से बरसाने में बारातियों से समावृत सांवरे दूल्हे के आगमन पर बरसाने की गोपियों का पूरा टोल का टोल निकल पड़ा, अपनी प्राणोपम राधा का दूलह देखने के लिए।

नन्ददास जी की वाणी में

"अरि चल दूलह देखन"

(यह पद नंदगांव में देखें)

श्रीकृष्णदासजी की वाणी में

भाँवरि भवन भानु कैं सजनी होत है आज देखौ कीजै ।
जोरी गौर श्याम है सजनी निरखि-निरखि नैननि सुख लीजै ।

भानु सदन के अलिन्द में यह विवाह वेदज्ञ ब्राह्मणों के मंत्रघोष, ब्रजललनाओं द्वारा वैवाहिक-कर्णप्रिय-गारियों की मधुर ध्वनि, बराती ग्वाल-बालों के हास-परिहास के साथ बड़ा ही प्यारा लग रहा है –

रस रसकनि हित विस्तरन प्रगटे सांवल गौर ।
या रसबिनु दूजौ कहाँ हो रसिकनि को ठौर ॥

(चाचा वृन्दावन दास जी)

नन्दगाँव में विवाह

"बरसाने नन्दगाँव को नातो सजन अनादि"

(चाचा वृन्दावन दास जी)

नन्दगाँव भी ५ विवाह स्थलों में से एक है। यह कोई कल्पित बात नहीं वरन् प्रामाणिक होने से अकाट्य है।

अष्टछाप के महाकवि परम भगवदीय श्री परमानंद जी के शब्दों में –

माँगै सवासनि बार रुकाई ।
झगरत अरत करत कौतूहल चिरजीवौ मेरौ वीर कन्हाई ॥
चिरजीवौ वृषभानु नन्दनी रूप सील गुण सागर भाई ।
निरखि-२ मुख जीजै सजनी यही नेग बड़ सम्पत्त पाई ॥
दीनी धौर धूमरी पियर अरु ताकौ तीयर पहिराई ।
फिर सबहिन को महरि जसोमति मेवा मोदक गोद भराई ॥
आरति करि लिये रतन चौक में बैठारे सुन्दर सुखदाई ।
'परमानंद' आनंद नन्द कै भाग बड़े घर नौ निधि आई ॥

श्री सूरदास जी के शब्दों में –

ललित लाल कौ सेहरौ जगमगि रह्यौ है री माई ।
हरषि-२ गोपी गावहीं यह सुख देखौ आई ॥
अलकैं झलकैं वदन पर मरवट खौर बनाई ।
सोभा सींव उलंघिकैं उमगी है सुन्दरताई ॥
कुमकुम बेंदी भाल पर शशि सम उदित सुहाई ।
बागौ बीरा अति बन्यौ छवि सौं चतुराई छाई ॥

दूलह नन्दकिशोर के तड़ित् को तिरस्कृत करने वाले स्मितविभूषित मुखाम्बुज का सौन्दर्याद्भुत बताने वाला यह पद बहुत ही अद्भुत व असमोर्ध्व है।

संकेत वट में विवाह

बरसाना नन्दगाँव के ठीक मध्य में संकेत वन है। यहाँ ब्रह्मा जी ने विधिवत युगल का विवाह कराया है। आज भी संकेत में ब्रह्माजी द्वारा रची विवाह-वेदी दर्शनीय है। इस विवाह में भी ग्वाल-बाल बाराती बनकर आये हैं। ब्रह्मा जी द्वारा वेद-मंत्रोच्चारण के समय गठबंधन व भाँवरि देते हुए विवाह हुआ है। इसी आधार पर यहाँ के ब्रजवासीजन आज भी गायन करते हैं –

दुलहन प्यारी राधारानी जाको दूलह नंदकुमार ॥
नंदगाँव हरि गाय चराई
जहाँ श्री राधा खेलन आई
गोद भरी भई श्याम सगाई
संकेतवट में भयो ब्याहुलो नन्दगाँव सुसरार ॥

श्री भट्ट देवाचार्य जी की वाणी में –

रंग रंगीले गात के संग बराती ग्वाल।
दूलह रूप अनूप है नित बिहरत नंदलाल ॥

लषे आली नित बिहरत नंदलाल।
रंग रंगीले अंग-अंग कोमल, संग बराती ग्वाल ॥
दूलह श्रीब्रजराज लाडिलौ दुलहिन राधा बाल।
जै श्री भट्ट बल्लबी जुगल के गावत गीत रसाल ॥

अथवा –

संझा गोरज उड़नि में छबि पावत गोपाल।
श्रीभट्ट मानौं ब्याहि कैं घर आये नंदलाल ॥

गोपाल लाल दूलह ग्वाल बराती।
गौवन आगे सखी जूथ में राधा दुलहिन लाल गवाती ॥
दुन्दुभि दूध दुहन की बाजी राजी (सब) गोप सजाती।
आरति पलक नेह-जल मोती श्री भट्ट रूप पिवाती ॥

भाण्डीरवन में विवाह

यहाँ के विवाह का प्रसंग (गर्गसंहिता गोलोक खण्ड अध्याय १६) व (ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय १५) दोनों में प्राप्त होता है। दोनों ग्रंथों का यह प्रकरण समान ही है।

एक समय श्री नन्द बाबा अपने लाड़ले लाल को अंक में लिए हुए भाण्डीर उपवन में गौ-चारण के लिए गये। लीलाबिहारी की इच्छा से अकस्मात् वहाँ सनसन....सन..सन करते हुए बड़े वेग से वायु चली। उस झंझावात ने नन्द जी को झकझोर दिया। बाबा को भयोत्पन्न हो गया। तरुओं से पत्र टूट-टूटकर गिरने लगे। चारों ओर धूलभरा अंधकार छा गया। थोड़ी देर में आकाश को वारि-पूरित मेघमालाओं ने ढक दिया। सम्पूर्ण वनप्रान्तर में घोर नीलिमा का साम्राज्य हो गया। नन्दलाल भी भय के अभिनय में रुदन करते हुए बाबा के कंठ से जोर से लिपट गये।

इनकी भयलीला भी मनोहारिणी एवं आस्वादनीय होती है –

एवं धाष्टर्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था
प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥

(भा.१०/८/३१)

माता कुन्ती भी इनके भय की शोभा को निहारती है –

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् ।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥

(भा.१/८/३१)

इस रसमयी आस्वाद्य भयलीला का गोपाङ्गनाओं ने भी अनुकरण किया –

बद्ध्वान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ।
भीतासुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥

(भा.१०/३०/२३)

बाबा विचार ही कर रहे थे कि कैसे कृष्ण को शीघ्र घर पहुँचाऊँ, तब तक कोटिशः सूर्य-समूह सदृश दिव्य-द्युति वाली खंजन-गर्व-गंजनकारिणी नीलाम्बरी राधा प्रकट हो गयीं। श्रीजी के दुर्धर्ष तेज को देखकर नन्द जी ने नत हो उन्हें नमन किया एवं कर जोड़कर कहा – "हे राधे ! गर्ग जी से मुझे आप दोनों के विषय में सम्यक् ज्ञान हो गया है।

पूर्ण पुरुषोत्तम ये श्रीकृष्ण ही तुम्हारे प्राणवल्लभ हैं एवं तुम इनकी प्राणवल्लभा हो। लीला सिद्धि की दृष्टि से ये भयभीत हो गये हैं, अब तुम किसी भी प्रकार से इन्हें भवन तक पहुँचाओ।" साथ ही नन्द जी ने युगल के चरणारविन्दों में सुदृढ़ भक्ति व संतों में प्रेम प्राप्त होने का वर माँगा। वर देकर श्रीजी ने नन्द जी के अंक से नन्दलाल को अपनी गोद में ले लिया। नन्द जी के वहाँ से गमनोपरान्त श्रीजी भाण्डीर-उपवन में आईं। वहाँ दिव्य भू देवी का आविर्भाव हुआ। वृन्दावन, यमुना, गिरि-गोवर्धन दिव्य सज्जा से सज्जित हो गए। तत्काल श्रीकृष्ण भी किशोर रूप ग्रहण करके राधाभिमुख खड़े हो गए। उस समय दोनों का दिव्य-वपु आभूषणों को विभूषित कर रहा था। लाल जी ने श्रीजी का करतल अपने करतल में लेकर विवाह-मण्डप में प्रवेश किया। प्रभु के इच्छानुसार सत्यलोक से ब्रह्मा जी आये। स्तवन किया एवं बोले – "आप दोनों नित्य-दम्पत्ति होकर भी प्रेम-रस निर्यास एवं भक्तानुग्रहार्थ ही यह लीला कर रहे हैं। अब आपकी आज्ञानुसार मैं लोकव्यवहार के सिद्ध्यर्थ लोकरीति से वैवाहिक-विधि सम्पन्न कराऊँगा।"

अनन्तर ब्रह्माजी ने श्रीराधा-माधव को अग्नि के सम्मुख बिठाकर वैदिक विधानपूर्वक पाणिग्रहण सम्पन्न कराया। तदनन्तर अग्नि की ७ भाँवरि करायी –

स वाहयामास हरिं च राधिकां प्रदक्षिणं सप्तहिरण्यरेतसः।
ततश्च तौ तं प्रणमय्य वेदवित्तौ पाठयामास च सप्तमन्त्रकम् ॥

(ग.सं.गो.खं.१६/३१)

युगल सरकार को प्रणाम करके उनसे ७ वैदिक मन्त्र पढ़वाये –

कौतुकं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणाम्।
पुनः प्रदक्षिणां राधां कारयित्वा हुताशनम् ॥

(ब्र.वै.पु.-कृ ज ख-१५/१२५-१२६)

७ अग्निप्रदक्षिणा (भाँवरि) के बाद ब्रह्मा जी ने श्रीकृष्ण के वक्ष पर श्रीजी का कर रखवाया एवं श्रीकृष्ण का कर श्रीजी के पृष्ठदेश में स्थापित करके उनसे उच्च स्वर से मंत्रोच्चारण कराया। अनन्तर श्रीजी के कराम्बुजों से पारिजात पुष्पों की केसर से सनी आजानुलम्बित माला श्रीकृष्ण के कंठ में धारण कराई। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के द्वारा श्रीजी को माला धारण करवाकर ब्रह्माजी ने युगल सरकार से अग्निदेव को प्रणाम कराया। इसके पश्चात् जिस प्रकार एक पिता अपनी कन्या को सुयोग्य वर के हाथ में सौंपता है, उसी प्रकार ब्रह्माजी ने पितृ-कर्तव्य का पालन करते हुए कन्यादान किया।

श्रीजी का कर श्रीकृष्ण के हाथ में सौंप दिया। देवगण अविराम पुष्पवृष्टि करने लगे। देवांगनाएँ नृत्य एवं गन्धर्व, विद्याधर मांगलिक-गान करने लगे। बार-बार राधावर श्रीकृष्ण चन्द्र की जयध्वनि होने लगी। मृदंग, वीणा, वेणु, नगाड़े, दुन्दुभि आदि अनेकानेक वाद्य बजने लगे। दक्षिणा के रूप में ब्रह्मा जी ने श्रीजी-ठाकुरजी से युगल चरणकमलों में भक्ति की याचना की। इस प्रकार भाण्डीरवन में श्रीराधा-कृष्ण का विवाह सम्पन्न हुआ।

वृन्दावन में विवाह

वृन्दावन में वंशीवट पर विवाह हुआ है। मानसर पर होरी क्रीड़ा के उपरान्त सखियाँ श्रीजी व ठाकुर जी को लेकर वंशीवट पर आती हैं एवं वहाँ नीलाम्बर-पीताम्बर का गठबंधन करके विवाह रचाती हैं –

नीलाम्बर पीताम्बर सों गँठि जोरि कें।
दुलहु दुलहिनि निरखि तरुनि तृण तोरि कें।
मौर बनायौ सीस आम के मौर कौ।
ब्याह रच्यौ बंशीवट मंगल ठौर कौ।
गीत पुनीत सुनीत सु कोकिल गावहीं।
ठौरनि ठौरनि भौंर सुभेरि बजावहीं।
श्री ब्रजनारि धमारनि गारिनि गावहीं।
ठौरनि ठौरनि कौकिल फाग मनावहीं।
हौं बलिहारी जाऊँ बिहारिनि नाम के।
नित्य विहार कौ हार कंठ घनश्याम के।

(श्रृं.र.सा.पृष्ठ सं.१३०)

श्री जीव गोस्वामी पाद ने भी स्वरचित "गोपाल चम्पू" में विवाह लीला का गान किया है –

यदपि च कनकविलासा राधा कृष्णश्च जिष्णुनीलाभः।
तदपि च वैदूर्याभं तद्युगमैक्षि व्यतिद्युतिभिः॥
एवं तयोः सा परभागलक्ष्मी विष्कम्भितान् सर्वजनानकार्षीत्।
वैवाहिकं कार्यमनन्तरार्हं यथा न ते कर्तुमथाऽक्षमन्त॥
गुरोरथाज्ञामनुगम्य दम्पती मान्यानुबद्धाञ्चलतामिथः स्थिती।
प्रदक्षिणीकर्तुममू हुताशनं समुत्थितौ सर्वतनूरुहैः सह॥
प्रदक्षिणाकर्तुममू हुताशनं प्रदक्षिणं चक्रतुरत्र दम्पती।
ततस्तदावेशवशेन निर्ममुः सर्वस्य नेत्राण्यपि तं प्रदक्षिणम्॥

(गोपालचम्पू (उत्तर) पूर्ण ३५/६३-६६)

श्रीजी की कान्ति स्वर्णिम है एवं श्यामसुन्दर की कान्ति नीलमणि के समान है। दर्पण के समान दोनों का वर्ण होने से परस्पर प्रतिबिम्बित होने पर वैदूर्यमणि के समान दप्-दप् करते हैं। विवाह अवसर पर इस अपरिसीम सौन्दर्य ने सबको स्तम्भित कर दिया, जिससे आगे का वैवाहिक कार्यक्रम रुक ही गया।

गुरुजनों की आज्ञा से वर-वधू वस्त्रांचल के गठबंधन से ग्रथित होकर अग्नि के परितः भाँवरि लेने लगे। दोनों का गात्र रोमांचित हो गया। उस समय उपस्थित भाग्यशालीजनों को युगल दर्शन में आत्म-विस्मरण हो गया। सबके नेत्र युगल छवि के साथ साथ परिक्रमा का परिभ्रमण करने लगे।

'श्रीहरि विलास लीलामृत तन्त्र' नामक ग्रन्थ में भी युगल सरकार के विवाह का विस्तृत विवेचन हुआ है –

अथतत्र शुभेकाले विप्रानाहूय सत्तमान् ।
वृषभानुर्महाभागः पप्रच्छोद्वाहवासरम् ॥

(हरि विलास लीलामृत तन्त्र)

भाग्याधीश भानुबाबा ने ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न विप्रों को शुभ समय में आहूत कर उनसे विवाह योग का शुभ दिन पूछा। सभी रसिकाचार्यों ने अपने अपने रस के अनुकूल अपनी वाणियों में विविध प्रकार से विवाह वर्णन किया है।

संकेत – विवाह वेदी एवं झूला

अध्याय – ५

अष्टसखियाँ

अष्टसखियें के नाम है। (१) रंगदेवी जी (२) सुदेवी जी (३) ललिता जी (४) विशाखा जी (५) चम्पकलता जी (६) चित्रलेखा जी (७) तुंगदेवी जी (८) इन्दुलेखा जी

श्री रङ्गादि सुदेविका च ललिता बैशाखिका चम्पिका ।
चित्रातुङ्गसखीन्दुलेखिकपरा चाष्टौ प्रधान प्रियाः ॥

(श्री निम्बार्काचार्य)

ललिता जी

उन्नत अटावलम्बिनी किशोरी सहचरी श्री ललिता जू श्री राधा-माधव की विविध लीलाओं में परम सहयोगिनी हैं। ऊँचा गाँव में अपनी माता शारदा व पिता महाभानु से, श्रीराधा जन्म से दो दिन पूर्व अवतरित हुईं। यहीं सखीगिरि पर्वत है, जिस पर सूर्य, चन्द्र, खीर कटोरा, दही कटोरा, पुष्करणी, रास मण्डल आदि कृष्ण कालीन चिन्ह हैं। पर्वत के निकट ही तत्कालीन सखीकूप है, जिसका पानी सखियों ने श्रीकृष्ण को पिलाया था। इसी के निकट, जहाँ श्रीकृष्ण फिसलते थे, खिसलनी शिला है जो आज भी सबके चित्ताकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। यहाँ ललिता सखी विवाह स्थली है जहाँ श्रीकृष्ण के साथ श्री ललिता जी का विवाह हुआ था। श्रील नारायण भट्ट जी का कथन है कि यहाँ सभी सखियों के साथ श्रीकृष्ण का विवाह सम्पन्न हुआ था। विवाहोपरान्त मेंहदी चर्चित चरणों से जब वे चलीं तो उनके पद विन्यास से सारी शिला मेंहदी से रंग गयी। आज भी भगवान् की उस लीला का आभास कराने वाली वह शिला मेंहदी से रंगी हुई है। आगे ललिता अटा (अटोर पर्वत) है जहाँ ललिता जी श्री कृष्ण के साथ खेलती थीं। ललिता अटा के नीचे ही देह कुण्ड है। यहाँ राधा-माधव ने देह दान किया था। यहाँ दान की प्रथा है। यहाँ अवश्य कुछ न कुछ दान करना चाहिए और दान भी ऐसा हो जो अविनाशी हो। नाम दान सर्वश्रेष्ठ दान है, यहाँ अपने अवगुणों का त्याग करना चाहिए। निषिद्ध अभक्ष्य वस्तु बीड़ी, तम्बाकू, शराब आदि का

व्यसन छोड़ना चाहिए। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मात्सर्य अपने इन सूक्ष्म विकारों को छोड़ना चाहिए।

ऊँचा गाँव

गोप नाम महाभानुः सारदी नामा गोपिनी।
उच्चग्रामं प्रवास्तव्यौ दम्पती पर्वतोपरि॥
तयोः कन्या भविष्यति ललिता नाम विश्रुता।
मनोहरा च गौरांगा कृष्णचिन्हेन लाञ्छिता॥
तस्य ग्रामस्य पश्चिमभागतः सखीगिरि नाम पर्वतोऽस्ति।
तस्योपरि चैका पुष्करिणी स्थिता॥

आदिपुराणे

भाद्रस्य शुक्लषष्ठी तु विशाखा ऋक्षसंयुता।
परविद्धा सदा कार्य्या पूर्वबिद्धा न कर्हिचित्।
सूर्योदयात्समारभ्यैकादश घटिकाः गताः॥

तत्समये ललिताजन्मोत्सवं समकुर्व्वत।श्रीललिताया अभिषेकंपद्धत्योक्तेन विधिना कार्य्यम्।श्रीललिताया अभिषेकस्य श्रीराधाभिषेकाद्भेदः, भिन्नत्वेन प्रकारेण पृथक् मन्त्रैस्तु कुर्य्यात्।तत्रैव पर्वतस्याधः पश्चिमतः खिशिलिनी सिला स्थिता।तत्र गोपालैः सह श्रीकृष्णः समभ्यागतः।

नारद पञ्चरात्रे

भाद्रस्य शुल्कपक्षस्य द्वादशी श्रवणान्विता।
व्यतीता घटिका षट् च सुर्य्योदयप्रवर्त्तिता॥
तत्क्षणे ललिता तत्र आगता सखीभिः समम्।
अष्टाभिः सखिभिः सार्द्धं सुमनादिभिः संयुता॥

ब्रह्मवैवर्त्ते राधाखण्डे

सुमना सुषुपा कांची दीपिका च प्रदीपिका।
नागरी प्रवला गौणी ललिताया उपासखी॥
भाषायां लोका अन्यनामानि वदन्ति इत्यपवादः॥

लैंगे

**तत्र क्रीडा कृतास्ताभिः शिलायां स्खलनं कृतम् ।
ततश्च ललितापाणिं गृहीत्वा गोकुलेश्वरः ॥
पुष्पैश्च मण्डनं कृत्वा सर्वदेवे समागते ।
विधिवन्मन्त्रयुक्तेन ललितां च विवाहयेत् ॥**

ततश्चवासपर्वतस्य पश्चिमभागे सर्वे कृष्णादयः गोपालाः समभ्यागता, अष्टाभिरूपसखीभिः सार्द्धं ललिता त्वागता। तत्र सर्वे सर्व्वाश्च क्रीडाश्रमेण श्रमिताः संजाताः।तत्समये तस्मिन् स्थाने जलक्रीडां कृतबन्तः, स्नपनं कुर्वाणाः तस्मादेहकुंडाभिधानकुण्डं भवति।तत्रैव सुवर्णदानं कुर्व्वाणः श्रीकृष्णः गोपालैः सार्द्धंस्वगृहमब्रजत्, उपसखीभिः सार्द्धं उच्चग्रामे श्रीमहाभानोर्वाशोकनामगोपस्य गृहे ललिता गता।तत्र सारद्यग्रे सखीभिः विवाहवार्त्ता कथिता।ततः महाभान्वशोकनाम गोपः नन्दमाहूय सर्वां विवाहसामग्रीं निवेद्य सिंहासनोपरि श्रीकृष्णं तद्दक्षिणभागे कन्यां ललितां निवेश्य सर्वरत्नादिभिरतोषयत्।श्रीललितायाः निवेशनं तु श्रीकृष्णस्य दक्षिणे भागे।

वायुपुराणे

**ललिता ललितावाणी राधायाऽत्यन्तवल्लभा ।
मुख्या सखी समाख्याता सर्वदा सार्द्धगामिनी ॥**

इत्यादौ श्रीललितास्थानवर्णनम् ।

महाभानु नाम के गोप जिनको कुछ लोग अशोक भी कहते हैं और उनकी पत्नी शारदी; ये ऊँचा गाँव में पर्वत के ऊपर रहते थे।

उनकी कन्या ललिता नाम से प्रसिद्ध होंगी, जो बड़ी ही मनोहरा, गौरांगी और कृष्ण चिन्ह से युक्त होंगी।

उस ग्राम के पश्चिम भाग में सखी गिरि नाम का पर्वत है, उसके ऊपर एक पुष्करणी पोखर है।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष षष्ठी तिथि विशाखा नक्षत्र से युक्त परविद्धा ग्रहण करनी चाहिए पूर्वविद्धा नहीं।

सूर्योदय से लेकर ११ घटी व्यतीत हो गयी, उस समय ललिता जी का जन्मोत्सव हुआ।

ललिता जी के अभिषेक की पद्धति ग्रन्थ में कही गई विधि से करनी चाहिए। श्री ललिता जी के अभिषेक का श्रीराधा जी के अभिषेक से भेद है। इसलिए भिन्न प्रकार से पृथक मंत्रो से करना चाहिए।

वहीं पर्वत के नीचे पृष्ठ भाग में खिसलनी शिला है, वहाँ ग्वालबालों के साथ श्रीकृष्ण आये।

भाद्रपद शुक्लपक्ष द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्र में सूर्योदय काल से ६ घटी बीत जाने पर ललिता जी अपनी सुमना आदि ८ सखियों के साथ वहाँ आईं।

ललिता जी की ८ सखियों के नाम सुमना, सुषुपा, कांची, दीपिका, प्रदीपिका, नागरी, प्रवला, गौणी। लोकभाषा में इनके अन्य नाम भी कहे जाते हैं।

वहाँ खिसलनी शिला पर ललिता जी ने उन सखियों संग क्रीड़ा की। उसके बाद नन्दनन्दन ने ललिता जी का पाणिग्रहण किया। पुष्पों से श्रृंगार करके सभी देवता उपस्थित हो गए। विधिवत मंत्रोच्चारण पूर्वक ललिता जी से विवाह किया।

तदुपरान्त पर्वत के पश्चिम भाग में सभी कृष्ण आदि ग्वाल-बाल आ गए। अपनी अष्ट सखियों के साथ ललिता जी भी आ गईं। वहाँ सभी क्रीड़ा के श्रम से श्रान्त हो गए, उसी समय उस स्थान पर जल क्रीड़ा की, स्नान किया जिससे देह कुण्ड की उत्पत्ति हुई। वहीं स्वर्ण दान करते हुए श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ अपने घर आ गए। ललिता जी अपनी उप-सखियों के साथ ऊँचा गाँव में अपने घर आ गयीं। वहाँ शारदी मैया के आगे सखियों ने विवाह की बात कह दी। तब महाभानु अथवा अशोक नाम के गोप ने नन्द बाबा को बुलाकर विवाह की सामग्री भेंट की और सिंहासन पर श्रीकृष्ण को एवं उनके दक्षिण भाग में ललिता जी को बैठाकर अनेक रत्न भेंट किये। श्री ललिता जी की वाणी श्रीजी को अत्यन्त प्रिय है। ये सदा श्रीजी के साथ में रहती हैं एवं उनकी मुख्य सखी कही जाती हैं।

विशाखा जी

श्री अंजन वन (आँजनौंख)

अथ कनिष्ठासखीविशाखानिवासस्थानं वर्णये

आदिवाराहे

अंजपुरे समाख्याते सुभानुर्गोपः संस्थितः।
देवदानीति विख्याता गोपिनी निमिषसुता॥
तयोः सुता समुत्पन्ना विशाखा नाम विश्रुता।
गुण-रूपवती कृष्णसर्वलक्षणलक्षिता॥

भविष्योत्तरे

भाद्रे मासि सिते पक्षे नवमी संयुताष्टमी ।
पूर्वाषाढयुता ग्राह्या पूर्वविद्धा तु कारयेत् ।
परविद्धा सदा त्याज्या विशाखाजन्मसंज्ञका ॥
कदाचित्समये कृष्णः गोचारणमिषेण च ।
राधाप्रीतिकरीं कृष्णां गोधूमोपमसंस्थिताम् ।
पाणिं गृहीत्वा हस्तेन गर्जपुरमुपागतः ॥

बृहद्गौतमीये

ललिता तत्र आयाता अष्टाभिः सखिभिः सह ।
ललितां च विशाखां च दृष्ट्वा प्रेम परं ययौ ॥

तत्रैव ललिता स्वकीयं मन्दिरं विश्वकर्माणमाज्ञाय कारयित्वा तत्र चमरं कृत्वा स्थिता ।तत्क्षणे प्रेम परं गतो हरिः प्रेमनिवर्त्तितः सन् ।

भविष्ये

गोधूलिसमये प्राप्ते विशाखाकरमग्रहीत्।
हरिस्तु सखिभिः सार्द्धं जलक्रीडां चकार ह।
प्रेमकुण्डं समाख्यातं तस्मात्प्रेमनिबर्त्तनात्।
ददौ कृष्णस्तु मन्दिरं ललितायै मनोहरम् ॥

विशाखायाः स्थानं श्रीकृष्णस्य दक्षिणभागतः।

"विशाखा स्वगृहं गता अष्टाभिः सखिभिः सह"।

मात्स्ये

मंगला सुमुखी पद्मा सुपद्मा सुमनोहरा।
सुपत्रा बहुपत्रा च पद्मलेखेति ताः स्मृताः॥

इति विशाखाया उपसख्यः, भाषायां अन्यनामानि वदन्ति। इत्यादौ विशाखायाः स्थानवर्णनम् ॥

कनिष्ठा (द्वितीया) सखी विशाखा जी का निवास स्थान वर्णन किया जा रहा है।

आदि वाराह पुराणानुसार

(१) अन्जपुर नामक ग्राम में (वर्तमान नाम आंजनोख) सुभानु नाम के गोप अपनी भार्या निमिष-नन्दिनी देवदानी के साथ रहते थे। उन दम्पति के कृष्ण के सभी लक्षणों से युक्त गुणवती, रूपवती विशाखा नाम की कन्या उत्पन्न हुई।

भविष्योत्तर पुराणानुसार

(२) भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी से युक्त नवमी अर्थात् पूर्व विद्धा एवं पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र ग्रहण करना चाहिए। विशाखा जी के जन्मोत्सव में परविद्धा तिथि त्याज्य है। किसी समय श्रीकृष्ण गोधूलि की बेला में विशाखा जी के कर-कमल को अपने कर-कमल में ग्रहण कर गर्जपुर अर्थात् गाजीपुर में आये।

बृहद्गौतमीये तन्त्रानुसार

(३) ललिता जी वहाँ अपनी आठ सखियों के साथ आईं। ललिता और विशाखा को देखकर के प्रेम विवश श्रीकृष्ण वहाँ गए, वहीं पर ललिता जी ने विश्वकर्मा को आज्ञा देकर के अपने मन्दिर का निर्माण कराया और वहाँ चँवर धारण करके स्थित हुईं।

(४) उसी क्षण प्रेम विवश श्रीकृष्ण ने प्रेम का निर्वहन करते हुए गोधूलि बेला में विशाखा जी का पाणिग्रहण किया और सखियों के साथ जल क्रीड़ा की। प्रेममयी लीला करने से उस स्थल का नाम प्रेम कुण्ड (प्रेमसरोवर) पड़ा। श्रीकृष्ण ने वह मनोहर मन्दिर श्री ललिता जी के लिए प्रदान किया। विशाखा जी का स्थान श्रीकृष्ण के दक्षिण भाग में है। श्रीविशाखा जी ने अपनी सखियों के साथ अपने घर को प्रस्थान किया।

मत्स्य पुराणानुसार

(५) विशाखा जी की आठ सखियाँ – मंगला, सुमुखी, पद्मा, सुपद्मा, सुमनोहरा, सुपत्रा, बहुपत्रा, पद्मलेखा, ये विशाखा जी की उप-सखियाँ हैं, उनके लोक भाषा में अन्य नाम भी बोले जाते हैं।

महासखी श्री विशाखा जू का यह ग्राम है। भिन्न-भिन्न गाँव में गोपियों के भिन्न-भिन्न यूथ रहते थे क्योंकि कृष्णावतार के समय पूर्वावतारों से वर प्राप्त समस्त गोपियाँ महारास के

लिए ब्रज में आईं। उनमें वेद की ऋचाएँ भी आईं। इन श्रुति रूपा गोपियों ने श्वेतद्वीप में जाकर अद्भुत तप किया और प्रभु के प्रसन्न होने पर उनके इस रस रूप विग्रह के दर्शन प्राप्त करने का वर प्राप्त किया, तब प्रभु ने आदेश दिया कि तुम सब वृन्दावन में जन्म लो, ब्रजवासी बनो तब ये रस सुलभ होगा।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥

(भा.१०/९/२१)

रस स्वरूप श्रीकृष्ण तो ब्रजवासियों के लिए सुलभ हैं, तपस्वी, ज्ञानी, कर्मकाण्डी को नहीं। ब्रज-रज, रास-रस प्राप्ति के लिए उन श्रुति स्वरूपा गोपियों ने विस्तृत वृन्दावन में जन्म लिया। जन-मानस की ऐसी मान्यता है कि रास यमुना के किनारे और वृन्दावन में वंशीवट में ही हुआ है, जब कि ऐसा नहीं है। ब्रज के वन-वन में, घर-घर में, भवन, आँगन में रास होता था, इसका प्रमाण केवल शास्त्र ही नहीं अपितु ब्रज के पुरातन परम्परा के लोक गीतों का भाव भी यही है। यथा –

नन्द के तोय खिलौना लै दूंगी मेरे अँगना में वंशी बजाय
भला रे मेरे अँगना में रास रचाय ।

इस प्रकार घर-घर में रास होता था।

एक बार अन्जनवन की गोपियों को प्रतीक्षा करते हुए मध्य रात्रि हो चली, श्याम सुन्दर बहुत विलम्ब से रास के लिए आये। श्याम सुन्दर को देखते ही एक ने उनके कर को अपने कर-तल में रखा, दूसरी ने वक्ष पर झूलती वन माला को सज्जित किया।

तीसरी तो पूछ ही बैठी।

"आज आगमन में इतना विलम्ब कैसे हो गया?"

श्याम सुन्दर बोले ! "आज भांडीर वन में हमारे गुरु श्री दुर्वासा जी पधारे थे, उनका अर्चन पूजन करने में विलम्ब हो गया।" गोप सुन्दरियों ने कहा –"आपके गुरुवर? हम भी आपके गुरुदेव का दर्शन करना चाहती हैं और उन्हें भोजन कराना चाहती हैं", । श्री कृष्ण बोले – "हमारे गुरु जी तो दूर्वाहारी हैं, मात्र दूब का रस पीते हैं किन्तु तुम दूषित काम से परे निश्चल, निर्दोष प्रेम युक्त हो, सारा जग तुम्हारी अमल प्रीति की महिमा को जानता है, हो सकता है तुम्हारा भोजन गुरुदेव ग्रहण कर लें।" गोपियों ने कहा – "श्याम सुन्दर, किन्तु हम जाएँ कैसे? श्रावण मास की यह यमुना किनारे तोड़ कर बह रही है।" श्रीकृष्ण बोले – "तुम यमुना से कह देना, यदि कृष्ण बालब्रह्मचारी हैं तो हमें मार्ग दे दो, तुम्हें मार्ग मिल जाएगा" ऐसा ही हुआ, मध्य रात्रि को उन ग्राम्याओं ने जब यह कहा – "यमुने ! यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी हों तो हमें मार्ग दो।" झट यमुना जी ने मार्ग दे दिया और वे सब उस पार चली गयीं। दुर्वासा जी के निकट पहुँच कर गोपियों ने प्रार्थना की "महाराज ! हम आपका दर्शन

करने एवं भोग लगाने आई हैं।" दुर्वासा जी ने कहा – "हम तो कृतकृत्य, परम हंस, सदा संतुष्ट रहने वाले हैं। भोजन की कोई आवश्यकता तो है नहीं, तुम्हारी अधिक ही इच्छा है तो अपने हाथ से स्वयं मेरे मुख में डाल दो।" गोपियाँ एक-एक कौर ऋषि के मुख में डालने लगीं। ऋषि ने ऐसा विशाल मुख किया कि डला भर-भरकर गोपियाँ खिलाने लगीं और थोड़ी देर में सब खाद्य सामग्री समाप्त हो गयी। अंत में गोपियों ने कहा – "महाराज ! अब हम जायें कैसे? " दुर्वासा –"जैसे आईं थीं वैसे ही चली जाओ।" गोपियाँ – उस समय तो "यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी हैं तो मार्ग दे दो" ऐसा कहने पर हमें यमुना ने मार्ग दे दिया था। दुर्वासा – "ठीक है, इस बार कहना यदि दुर्वासा पौनाहारी हैं, उन्होंने कभी कुछ न खाया हो तो यमुना मार्ग दे दे।" गोपियों ने विचार किया, यह कैसी विडम्बना? सहस्रों थाल चट कर गए और अपने को पौनाहारी कहते हैं। चलो भाई, जैसे शिष्य (कृष्ण) हैं, वैसे ही गुरु। यमुना किनारे पहुँच कर उन सब ग्राम्याओं ने कहा – "हे यमुने ! यदि दुर्वासा जी ने कभी भी अन्न जल ग्रहण न किया हो तो हमें मार्ग दे दो।" झट यमुना जी ने मार्ग दे दिया। वे पार हो गईं। श्रीकृष्ण के निकट आकर बोलीं – "हमें तो तुम और तुम्हारे गुरु दोनों ही मिथ्यावादी लगते हैं। तुमने स्वयं को बालब्रह्मचारी कहा और दिन-रात तो हमारे साथ नाचते-गाते हो, ब्रह्मचारी पुरुष तो स्त्री दर्शन तक नहीं करता है और तुम्हारे गुरु स्वयं को पौनाहारी कहते हैं, हमारे द्वारा ले जाए गए सहस्रों थाल भोजन तो खा गए तो क्या यह मिथ्यावाद नहीं है? " श्रीकृष्ण बोले – "हे गोपियो ! वस्तुतः मनुष्य में जब अहं नहीं होता है तो उसके द्वारा किये गए कर्म अकर्म बन जाते हैं, उसके लिए निषिद्ध कर्म भी बन्धक सिद्ध नहीं होता है।" गीता का बीज तो यहीं से आरम्भ हो गया था। कुरुक्षेत्र, महाभारत काल में तो उसका विस्तार हुआ है।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥

(गीता.४/१९)

श्री अंजन वन में कजरोटी शिला है, एक बार श्रीजी अंजन लगाना भूल गयी तो विशाखा जी ने कजरोटी शिला प्रकट की, जिस पर उँगली घिसकर श्रीजी ने अपने नयनों में अंजन रंजित किया, (लगाया) आज भी यह शिला दर्शनीय है, इस पर उँगली घिसकर काजल लगाया जा सकता है।

ततो अन्जनपुरवन प्रार्थना मन्त्रः-

देवगंधर्वलोकानां रम्यवैहाररूपिणे ।
वैचित्रमूर्त्तये तुभ्यमंजनपुःवनाह्वय ॥

(कूर्म्म पुराण)

हे देवता, गन्धर्व, मनुष्य के रमणीय विहार अवनि ! विचित्र मूर्ति स्वरूप, हे अञ्जन वन ! आपको नमस्कार है।

ततो किशोरीकुंडस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

किशोरीस्नानरम्याय पीतरक्तजलाप्लुतः ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं कृष्णक्रीडाविधायिने ॥

(कूर्म्म पुराण)

किशोरी जी के स्नान से रमणीक, पीले, लाल जल से परिपूर्ण किशोरी कुण्ड ! श्रीकृष्ण क्रीड़ा विधान करने वाले तीर्थराज आपको नमस्कार है।

ततो कृष्णान्वित किशोरीदर्शन प्रार्थना मन्त्र :-

यशोदानन्दकृष्णाय प्रियायै सततं नमः ।
किशोररूपिणै तुभ्यं वल्लभायै नमोऽस्तु ते ॥

(कूर्म्म पुराण)

हे यशोदा जी को आनन्द प्रदान करने वाले, किशोर स्वरूप श्री प्रिया प्रीतम जी, आप दोनों को बार-बार प्रणाम है।

इन्दुलेखा जी

अथेन्दुलेखानिवासस्थानवर्णनम्

गौतमीये

रंकपुरे समाख्याते दक्षिणस्यां दिशि स्थिते ।
रणधीरोऽवसत्तत्र गोपराजो महावरः ।
सुमुखी नाम सा पत्नी तस्य गोपी बभूव ह ।
तयोश्च कन्यका जाता इन्दुलेखा मनोरमा ।
भाद्रस्य शुक्लपक्षस्य एकादशी शुभा तिथिः ।
दशमीवेधसंयुक्ता मुहूर्त्ताभिजितायुता ।
पूर्वविद्धा सदा कार्य्या परविद्धा न कर्हिचित् ।
सूर्य्योदयात्समारभ्य घटिकाः षोडशाः गताः ।
तत्क्षणे इन्दुलेखायाः जन्मोत्सवमकुर्वत ॥

विष्णुरहस्ये

अस्याः सख्यः समाख्याताः काञ्चनेन समन्विताः ।
सुलेखा पद्मवदना विचित्रा कामकुन्तला ।

सुगन्धा नागकेशी च कटिसैंध्री सुलतिका ।
लेखायास्ता उपासख्य अष्टौ च कथिताः शुभाः ।

इन्दुलेखायाः स्थानं श्रीकृष्णस्य वामभागे श्रीराधायाः निकटोपवेशनम् इत्यादाविन्दुलेखायाः स्थानवर्णनम्-

गौतमीय तंत्र

दक्षिण दिशा में स्थित रंकपुर (रांकोली) गाँव में रणधीर नाम के श्रेष्ठ गोप रहते थे। इनकी पत्नी का नाम सुमुखी था। इन दम्पत्ति के इन्दुलेखा नाम की मनोहरा कन्या उत्पन्न हुई।

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की दशमी विद्धा एकादशी तिथि थी। यहाँ सर्वदा पूर्वविद्धा ही ग्रहण करनी चाहिए परविद्धा नहीं। सूर्योदय काल से सोलह घटी (६घंटे २४मिनट) व्यतीत हो जाने पर अभिजित मुहूर्त में इन्दुलेखा जी का जन्म हुआ।

विष्णु रहस्य

इनकी स्वर्णाभरणों से आभूषित सखियों के नाम कहे गये हैं – सुलेखा, पद्मवदना, विचित्रा, कामकुन्तला, सुगन्धा, नागकेशी, कटिसैन्ध्री, सुलतिका। इन्दुलेखा जी की ये सभी शुभ लक्षणों से युक्त आठ उपसखियाँ कही गयी हैं। इन्दुलेखा जी का स्थान श्रीकृष्ण के वाम भाग में है। ये श्रीजी के निकट विराजती हैं।

चम्पकलता जी

अथ चम्पकलतास्थानवर्णनम्

सारदायाम्

कर्हपुरेऽतिविख्यातस्तत्र गोपोऽवसत्तदा ।
मनुभूपसमाख्यातो करहपूर्विभूषितः ।
सुकंठी नामा सा गोपी भार्य्या तस्याभवत्तदा ।
तयोः कन्या समुद्भूता कृष्णलक्षणसंयुता ।
चम्पकलता आख्याता तृतीयासखितां गता ॥

बृहन्नारदीये

भाद्रे मासि सिते पक्षे सप्तमी चाष्टमीयुता ।
अनुराधायुता चापि शुभयोगसमन्विता ॥

ब्राह्मे

सूर्य्योदयात्समारभ्य गताः नाड्यश्चतुर्दश ।
तत्क्षणे तु सखीजन्मचम्पका जायते ध्रुवम् ।
तत्रागतो नन्दसूनुर्गृहीत्वा पाणिना करम् ।
रासक्रीडाकृतो देवः परविद्धा च सप्तमी ।
पूर्वबिद्धा सदा त्याज्या परविद्धा सुखप्रदा ॥

गौतमीये

चम्पकलता सखीभिरष्टाभिः स्वगृहं गता ।
चम्पकलतायाः स्थानं श्रीकृष्णस्य दक्षिणे भागे ।
सुकेशी पद्मनयना सुनेत्रा कामदीपिका ।
प्रदीपिका सुकर्णी च रागसंयुक्तवेणिका ।
नवनीतप्रिया चाष्टौ चम्पकायाः उपसख्यः ॥
भाषायां अन्यनामानि वदन्ति ।
इत्यादौ चम्पकलतायाः स्थानं वर्णनम् ॥

कर्हपुर (वर्तमान में करहला) नामक ग्राम में मनुभूप नाम के अति विख्यात गोप रहते थे। उनकी भार्या का नाम सुकंठी था। इनके यहाँ सभी शुभ लक्षणों से युक्त तृतीया सखी श्री चम्पकलता जी प्रकट भईं।

बृहन्नारदीय पुराणानुसार

भाद्रमास के शुक्लपक्ष में अनुराधा नक्षत्र शुभ योग में अष्टमी से युक्त सप्तमी तिथि में सूर्योदय काल से १४ घटी व्यतीत हो जाने पर उनका जन्मोत्सव हुआ। वहाँ पर नन्दनन्दन आये, अपने करकमल में उनका करकंज ग्रहण करके रास-क्रीड़ा की। यहाँ पर पूर्वविद्धा परित्याग करके सर्वदा परविद्धा सप्तमी ग्रहण करनी चाहिए।

गौतमीये

चम्पकलता अपनी ८ सखियों को साथ लेकर अपने घर गईं। चम्पकलता का स्थान श्रीकृष्ण के दक्षिण भाग में है। इनकी ८ सखियों के नाम हैं –

सुकेशी, पद्मनयना, सुनेत्रा, कामदीपिका, प्रदीपिका, सुकर्णी, रागसंयुक्तवेणिका, नवनीतप्रिया।

ततो चम्पकलता प्रार्थना मन्त्र :-

त्रैलोक्य मोहनायैव नमस्ते करहाभिध।
गन्धर्वसुखवासाय विश्वावसुवरप्रद॥

(भविष्योत्तर पुराण)

गन्धर्वों के सुख निवास स्थल विश्वावसु के वरदाता त्रिलोकी के मोहक 'करहवन' को नमस्कार है।

ततो ललिता सरोवर स्नानाचमन मन्त्र :-

ललितास्नपनोद्भूत तीर्थराज नमोऽस्तु ते।
ललितासरसे तुभ्यं सौभाग्यवरदायिने॥

(भविष्योतरे पुराण)

ललिता जी के स्नान से उत्पन्न सौभाग्य वर देने वाले तीर्थ राज आप को नमस्कार है।

ततो रास मण्डल मन्त्र :-

ललितामहदुत्साह गोपिकानृत्यरूपिणे।
कृष्णक्रीडाभिरम्याय मंडलाय नमोऽस्तुते॥

(भविष्योतरे पुराण)

ललिता जी के महान उत्सव रूप गोपिकाओं के नृत्य रूप कृष्ण क्रीड़ा से रमणीय मंडल को नमस्कार है।

ततो कदम्ब खंड मन्त्र :-

कृष्णगोपालरूपाय गोपीगोभिरलंकृत:।
कदम्बखंड गोष्ठाय सौख्यधाम्ने नमोऽस्तुते॥

(भविष्योतरे पुराण)

गोपाल कृष्ण रूप गोप गोपियों से भूषित कदमखण्डी गोष्ठी सुखधाम रूप आपको नमस्कार है।

ततो हिंडोल प्रार्थना मन्त्र :-

राधा कृष्णमहोत्साह ललितोत्सवहेतवे ।
ब्रह्मणा निर्मितायैव हिंडोलाय नमोऽस्तु ते ॥

(भविष्योतरे पुराण)

राधा कृष्ण के महान उत्साह रूप ललिता जी के उत्सव के लिए ब्रह्मा जी से निर्मित हिन्डोल ! आपको नमस्कार है।

ततो विवाह स्थल प्रार्थना मन्त्र :-

भद्रदेवीसखीरम्य विवाहोत्सवमांगल्यैः ।
ललिताग्रन्थिदत्ताय नमो वैवाहरुपिणे ॥

यहाँ भद्र सखी ने ललिता और कृष्ण के विवाह में गाँठ जोड़ी थी। सबसे जो प्रमुख बात है वह यह है कि यहाँ श्री उद्धव देवाचार्य जी, जो श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के शिष्य थे, जिनका रास प्राकट्य में योगदान रहा है, वह रास यहीं करहला से ही प्रारम्भ हुआ था। रास प्राकट्य करके आप वंशीवट वृन्दावन रहे। अपने इष्ट कृपा पर गर्व से भरे रहने के कारण इनका नाम घमण्डी भी था किन्तु वह घमण्ड मिथ्या अहंकार का नहीं था, युगल रस का था। रासानुकरण के विषय में यह पद प्रसिद्ध है।

श्री ध्रुवदास जी

घमण्डी रस में घुमड़ि रहयो वृंदावन निजधाम ।
बंशीवट तट वास कियो गायो श्यामा श्याम ॥

(बयालीस लीला भक्त नामावली)

रास बिहारी लाल दृगन ते दूर भयो जब ।
तिमिर ग्रसित भौ भाव नहीं जाने कोऊ तब ॥

श्री स्वामी हरिदास खास ललिता वपु तिनकौ ।
प्रकट करन भई रास महल ते आज्ञा जिनकौ ॥
नाम घमंड सनकादि सम्प्रदा रसमय जिनकी ।
अधिकारी रस मई समुझि निरमल बुधि तिनकी ॥

श्री मधुपुरी समीप घाट विश्रांत नाम तहँ ।
श्री आचारज विष्णु स्वामि मत्त पोषक है जहँ ॥
कही चलौ तिन पास आस मेरी वे पूजवे ।
सेवा रीत अलौकिक प्रगटी है तिन ब्रज में ॥

तिन ढिंग स्वामी गए कुशल पूछी बैठारे ।
कहो प्रिये सखि कवन हेतु यहाँ चरण पधारे ॥
तब स्वामी हरिदास कह्यो प्रभु अन्तरजामी ।
तुमते कछु नहि छिपौ कहा पूछत जगस्वामी ॥

ऐसो करो उपाय रास रस प्रगटै जन में ।
जो कछु इच्छा रही कहो तुम आगे मन में ॥
कोई पर्व निमित रहे तहं वामन राजा ।
श्री गोस्वामी कहयो लेहु कछु इन सों काजा ॥
प्राणायाम चढ़ाय रोकि दसहू इन्द्रि तब ।
कछु दिन पीछे कह्यौ सुनौ मेरे तुम जन अब ॥

नभ ते उतरत मुकुट सबै विश्वास दृढावन ।
सप्तताल विस्तरित जग मगत अति नगवरगन ॥
सबको दरसन भयौ मुकुट जब भूपर आयो ।
धूप-दीप नैवेद्य सबन लै ताहि चढायौ ॥

सबरे भूपन प्रष्न कियौ ताहि छिन प्रभु सौं ।
किहि कारण आगमन भयो सो कहो किन हमसों ॥
रास क्रीड़ा करौ कही यह बात जतावन ।
नहिं यामें कछु दोस यही है हमरी कामन ॥

ताम्र पत्र में मुहर करौ सबरे तुमहूं किन ।
कै कछुशंका होय करौ मेटूं याहि छिन ॥
अपनी-अपनी मुहर सबी कर गये देस कूँ ।
मानत रैहैं सदा मोक्षदाता है हमकूं ॥

सबही देखत गुप्त मुकट मौ ता ही अरसा ।
जै-जै नभ धुनि भई सुरन करी पुष्पन बरसा ॥
तब स्वामी हरिदास कही अब देर करत कित ।
छिन पल हमकों कोटि-कल्प सम बीतत है इत ॥

माथुर भक्ति परायण तिनकौं निकट बुलाये ।
परम मतो हम देउ अष्ट बालक मन भाये ॥

ताहि छिन ते गये धाये बालक लै आये ।
को कहैं तिनकी महिमा जो श्री प्रभु ने बुलाये ॥

श्री स्वामी हरिदास कियौं सिंगार प्रिया कौ ।
श्री आचारज देव कियो मोहन रसिया कौ ॥
पुनि वृंदावन आय रास मण्डल निरमान्यौ ।
वेद पुराण शास्त्र तंत्रन जा रीत बरवान्यौ ॥
ता मधि जुगल किसोर थापि पुनि सखि पधराई ।
आपुन कियो समाज कृष्ण लीला तब गाई ॥
महारास तब कियो लाल भये अंतरध्याना ।
वन-वन ढूंढत फिरै सखी कर-कर गुन गाना ॥

मुखिया सखि जु संग ताहि पिय छोड़ गये जब ।
जो जो जहँ की तहां रही पाई नांही तब ॥
रसिक जनन के हृदय भयो अति ही दुःख दावन ।
प्रथम ग्रास में भयो मक्षिका को यह पातन ॥
माथुर अपने पुत्रन को मांगन जब आये ।
तब उनसों यह कह्यौ नहीं हमकूं कहूं पाये ॥

अति झगरौ तिन कियो तबै यह करी वारता ।
तुम्हरे पुत्रन को जू भई है तदाकारता ॥
हमको निश्चैं होय करो सोई कृत्य गुसांई ।
तब उनके सब पुत्र लाल ढिंग दिये दिखाई ॥

अपने- अपने घरन माथुरन किये पलायन ।
घमंड देव सो कह्यौ सुनों गुरु भक्ति परायन ॥
तुम ब्रज के बासीन मांहि कीजैं शिष शाषा ।
तिन सौं यह मारग जु चलाओ सुनी मम भाषा ॥

ऐसें आज्ञा दई गये अपने-अपने थल ।
पुन घमंडस्वामी गयेग्राम करहला माहि ।
उदयकरण अरु खेमकरण द्वै भ्राता द्विजवर ।
तिनहीं सों यह रास प्रथा चली सुनौ रसिकवर ॥

(रास सर्वस्व, द्वितीय निधि, स्वामी राधाकृष्ण)

नारायण भट्ट जी की रासानुकरण प्रियता

ठौर ठौर रास के विलास लै प्रकट किये ।
जियें यों रसिक जन कोटि सुख पाए हैं ॥

भक्तमाल के टीकाकार प्रिया दास जी के अनुसार नारायण भट्ट जी केवल रास प्रेमी ही नहीं थे अपितु रास के विलास को अनेक स्थानों पर प्रकट भी कराया करते थे, इसलिए रसवेदी जनों के लिए कोटिशः आनन्द के भाजन बन गए थे।

सम्वत् १६५०-९८ में विद्यमान भक्त शिरोमणि ध्रुव दास जी ने भी श्री नारायण भट्ट जी की रासानुकरण प्रियता का निम्नलिखित दोहे में समर्थन किया है। उन्होंने लिखा है –

भट्ट नारायण अति सरस ब्रज मण्डल सों हेतु ।
ठौर ठौर रचना करी प्रकट कियौ संकेत ॥

अथ नारायणाचार्यः श्रीकृष्णाज्ञाप्रणोदितः।
ब्राह्मणं सुन्दरं बालं कृष्णवेषंविधाय च ॥
राधावेषं तथा चैकं गोपीवेषांस्तथापरान् ।
रासलीलां स सर्वत्र कारयामास दीक्षितः ॥
कुत्रचित् गोपवेषेन गोवत्सान्चारयन् हरिः ।
तथा लीलां च कृतवान् कालीयदमनादिजाम् ॥
सांझिका रचनं क्वापि राधागोपिभिरेव च ।
अन्या बहुविधा लीलाया याः कृष्णश्चकारह ॥
सर्व लीलानुकरणं कारयामास नारदः।
यन्नापुर्देवताःसर्वे मुनयो वा धृतवृताः ॥
तत्प्रापुर्मनुजाः सर्वे लीलादर्शनजं सुखम् ।
यस्मिन् दिने यद्दक्षे वा कृष्णो लीलां चकारह ॥
तस्मिन् दिने स्थले तस्मिन् भट्टो भास्कर संभवः ।
कारयामास तां लीलां वालैः कृष्णदिवेषिभिः ॥
ततः प्रभृति सर्वत्र वनेषूपवनेषुच ।
ब्रजे तीर्थेषु कुञ्जेषु रासलीला वभूवह ॥

इसके बाद आचार्य नारायण जी ने जो श्रीकृष्ण आज्ञा से प्रेरित थे, सुन्दर ब्राह्मण बालक को कृष्ण वेष में तथा राधावेष में और अन्य बालकों को गोपीवेष में सजाकर सर्वत्र रासलीला कराई। कहीं कहीं गोपवेष में गो-वत्सों को चराते हुए कृष्ण लीला कराई, तो कहीं कालिय दमनादि एवं साँझी लीलाओं की भी रचना कराई, अन्य बहुत प्रकार की जो लीलाएँ

कृष्ण ने की थीं, उन सभी लीलाओं का अनुकरण करवाया क्योंकि वे नारद थे। जिन लीलाओं को व्रतधारी मुनि और देवता नहीं प्राप्त कर सके उन लीलाओं के दर्शन का सुख सभी मनुष्यों ने प्राप्त किया। जिस दिन जैसी लीला कृष्ण ने की थी, उस दिन उसी स्थल पर भट्ट जी ने उसी लीला को कृष्ण लीला में दक्ष बालकों के द्वारा दर्शाया, तभी से सर्वत्र वनों में और उपवनों में, तीर्थों में और कुंजो में रासलीला प्रारम्भ हुई। वल्लभ कुल की यात्राओं में भी कृष्ण लीला स्थलियों पर रास लीला या दान लीला आदि का आयोजन होता है।

करह वन प्रति वनों में आता है। इस प्रकार करहला रास का प्राकट्य स्थल माना जाता है। करहला नाम का एक यह भी कारण है कि चन्द्रावली की नानी का नाम भी 'कराला' था और यह गाँव उनका जन्म स्थल था। ब्रज में श्री नाथ जी की कई स्थानों पर बैठकें हैं, जहाँ वे श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के साथ पधारे थे : यहाँ भी श्री नाथ जी और महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक है। साथ में गोसाँई जी एवं गोकुलनाथ जी की भी बैठक है। यहाँ कंकण कुण्ड है। इसी से इसे कंकण पुर भी कहते हैं। यहाँ कृष्ण को महारास का कंकण बांधा गया था। विवाह का कंकण भी बाँधा गया था। आकाश से उतरा मुकुट जिससे घमण्ड देव जी ने रास प्रचलित किया था, वह भी यहीं बैठक से आगे हवेली (मड़ोई) में हैं, जो वर्ष में एक दिन दिखाया जाता है। श्री बज्रनाभ जी की समाधि भी यहीं है, जो पूर्वकाल में जीर्ण शीर्ण अवस्था में थी, जिसका 'श्री मान विहारी लाल जी' की कृपा से जीर्णोद्धार हुआ।

चित्रलेखा जी

अथ चित्रलेखास्थानवर्णनम् ।

विष्णुयामले

चिकित्सपुरमाख्यातं ब्रजोदारोऽवसत्तदा ।
तस्य भार्यात्रयं जातं इन्दी काञ्ची त्ववन्तिका ।
जज्ञेऽवन्तिकायाः कन्या चित्रलेखा मनोहरा ।
भाद्रे मासि सिते पक्षे दशमी नवमीयुता ।
उत्तराषाढसंयुक्ता पूर्वविद्धा तु कारयेत् ।
सखी चतुर्थी संभूता गर्गाचार्येण भाषिता ।
सूर्य्योदयात्समारभ्य घटिकाः पंचषाः गताः ।
तत्समये चित्रलेखाजन्मोत्सवोऽभवत्तथा ।
कदानु समये प्राप्ते सांकरीखोरिमागतः ।
चित्रलेखां संजगृहे चुम्बनालिङ्गनादिभिः ।

पाद्मे

देवगन्धर्व्वगानं च संजातं हि विवाहतः ।
चित्रलेखा ऽसखीभिश्च त्वष्टाभिः स्वगृहं गता ॥

गौतमीये

रंगवल्ली सुवल्ली च पद्मवल्ली मरीचिका ।
शिवनीली सती साध्वी ब्रह्मवल्ली इति स्मृताः ॥

इति चित्रलेखाया उपसख्यः, भाषायामन्यनामानि । चित्रलेखायाः श्रीकृष्णस्य दक्षिणे भागे स्थानम् । इत्यादौ चित्रलेखायाः स्थान वर्णनम् ।

चिकित्सपुर (वर्तमान में चिकसौली) में ब्रजोदार नाम के गोप रहते थे। इनकी तीन पत्नियाँ थीं। इन्दी, काँची, अवन्तिका। इनके यहाँ अवन्तिका के उदर से चित्रलेखा नाम की मनोहरा कन्या उत्पन्न हुई। भाद्रपद मास शुक्लपक्ष उत्तराषाढ़ा नक्षत्र नवमी से युक्त दशमी तिथि थी, यहाँ पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिए। इसमें गर्गाचार्य जी के द्वारा भाषित

चतुर्थी सखी चित्रलेखा प्रकट भईं। सूर्योदयकाल से ५-६ घटी व्यतीत हो जाने पर इनका जन्मोत्सव हुआ।

किसी समय ये साँकरी खोर में आईं, वहाँ इन के विवाह के समय देव-गन्धर्वों ने गान किया। अनन्तर चित्रलेखा अपनी आठ सखियों के साथ घर को आईं।

गौतमीये तन्त्रानुसार इनकी ८ सखियों के नाम

रंगवल्ली, सुवल्ली, पदवल्ली, मरीचिका, शिवनीली, सती, साध्वी, ब्रह्मवल्ली। ये चित्रलेखा जी की उप सखियाँ हैं, लोकभाषा में इनके अन्य नाम भी हैं। चित्रलेखा जी का स्थान श्री कृष्ण जी के दक्षिण में है।

यहाँ की विचित्र लीला नागरी दास जी ने लिखी है। किसी समय नंदलाल ने हरे चनों की चोरी की थी। खेत वाली ने गाली दिया, किन्तु प्रेमवश स्वयं गहवर वन में चना छीलकर खिलाने लग गयी। लीला नित्य है अतः महात्माओं का अनुभव सत्य होता है। श्रीनाथ जी ने भी चतुर्भुज दास जी के साथ माखन चोरी की थी।

चिकसौली के चना चुराये ।
गारी दै दौरी रखवारिन ग्वारिन सहित गुपाल भजाये ॥
हरे बूट दाबे बगलनि में स्वास भरे वन गह्वर आये ।
कहत आतुरे बोल लोल दृग हंसत हंसत सब बर न चढ़ाये ॥
हरे चावल, कोउ होरा करि वन की लीला लाल लुभाये ।
'नागरिया' बैठी छकि हारी छील-छील नन्दलालहिं ख्वाये ॥

तुंगदेवी जी

अथासां तुंगदेव्यादीनां निवासस्थानवर्णनम्

सम्मोहनतन्त्रे

कमई च पुरी नाम पूर्वभागे पुरस्य च ।
अंगदो नाम गोपश्च तत्रावासं करोति यः ।
ब्रह्मकर्णी प्रिया तस्य दधिमन्थन तत्परा ।
तयोश्च कन्यका जाता तुंगदेवी महाप्रभा ।
भाद्रमासे सिते पक्षे पञ्चमी षष्ठिसंयुता ।
स्वातिनक्षत्रसंयुक्ताभौमवारेण संयुता ।
परविद्धा सदा कार्य्या पूर्वविद्धां न कारयेत् ।

सूर्य्योदयात्समारभ्य घटिकाः यान्ति द्वादश ।
यत्क्षणे तुंगदेव्यास्तु जन्मोत्सवमकुर्वत ॥

ब्रह्माण्डे

अस्याः सख्यः समाख्याताः ब्रह्मणा निर्म्मिताः स्वयम् ।
वीरदेवी भद्रदेवी मनोदेवी मनोत्सवा ।
कामदेवी नृदेवी च स्नेहदेवी मनोरमा ।
इत्यष्टौ कथिता सख्यः कामदेवेन पूरिताः ।
तुंगदेव्याः स्थानं श्रीराधायाः निकटे ।
श्रीकृष्णस्य वामभागे निवेशनम् इति तुंगदेव्याः स्थानवर्णनम् ॥

सम्मोहनतंत्रानुसार

वृषभानु पुर के पूर्व भाग में कमई नामक ग्राम है, जहाँ अंगद नाम के गोप व उनकी ब्रह्मकर्णी नाम की भार्या निवास करते थे। इन दम्पत्ति के यहाँ तुंगदेवी नाम की शुभलक्षणा कन्या उत्पन्न हुई। भाद्रपद मास शुक्लपक्ष षष्ठी से युक्त पंचमी तिथि स्वाती नक्षत्र एवं मंगलवार था। यहाँ सर्वदा परविद्धा ग्रहण करनी चाहिए पूर्वविद्धा नहीं।

सूर्योदय काल से द्वादश घटी व्यतीत हो जाने पर तुंगदेवी जी का जन्मोत्सव हुआ।

ब्रह्माण्ड पुराणानुसार

ब्रह्मा द्वारा सृष्ट इनकी आठ सखियाँ कही गई हैं –

वीरदेवी, भद्रदेवी, मनोदेवी, मनोत्सवा, कामदेवी, नृदेवी, स्नेहदेवी एवं मनोरमा, ये आठ सखियाँ कही गई है।

तुंगदेवी जी का स्थान श्रीजी के निकट श्रीकृष्ण के वाम भाग में है।

रंगदेवी जी

अथ रंगदेव्याः स्थानवर्णनम्

विष्णुपुराणे

डभारो नाम ग्रामश्च दक्षिणयां दिशि स्थितः।
वीरभानोः स्थितिस्तत्र सर्वगोपे सुधी वरः।
सूर्य्यावती भवत्तस्य भार्य्या च गुणवत्यपि।
गुणवत्याः जनि कन्या रंगदेवीति विश्रुता।
भाद्रे मासि सिते पक्षे त्रयोदश्यां रवेर्युता।
पूर्वविद्धा सदा ग्राह्या धनिष्ठार्क्षसंयुता।
भृगुवारेण संयुक्ता रंगदेव्याश्च जन्मनि।
सूर्य्योदयात् समारभ्य घटिका एकविंशतिः।
तत्क्षणे रंगदेव्यास्तु जन्मोत्सवमकुर्व्वत॥

देवीपुराणे

अस्याः त्वष्टौ उपासख्यः श्रीदेवी कमलासना।
वलिदेवी महादेवी रंजना कलिरंजना।
कामदेवी कलाकांता सर्वसौन्दर्य्यगर्व्विताः।
रंगदेव्याः स्थानं श्रीकृष्णस्य वामभागे।
श्रीराधायाः निकटे निवेशनस्थानम्।
इत्यादौ रंगदेव्याः सप्तम्याः सख्याः स्थानवर्णनम्॥

विष्णु पुराणानुसार

दक्षिण दिशा में डभारा नाम का गाँव है। यहाँ वीरभानु नाम के गोप रहते थे, ये बड़े बुद्धिमान थे, इनकी पत्नी का नाम सूर्यवती था। ये बड़ी गुणवती थीं। इनसे रंगदेवी नाम की सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई।

भाद्रपद मास की शुक्लपक्ष की त्रयोदशी शुभ तिथि थी। यहाँ पूर्व विद्धा ग्रहण करनी चाहिए। धनिष्ठा नक्षत्र में शुक्रवार को इनका जन्म हुआ। सूर्योदय काल से २१ घटी व्यतीत हो जाने पर श्री रंग देवी जी का जन्मोत्सव हुआ।

देवी पुराणानुसार

इनकी ८ उपसखियों के नाम – श्रीदेवी, कमलासना, वलिदेवी, महादेवी, रंजनाये कलिरंजना, कामदेवी, कलाकान्ता ये सभी सौन्दर्य गुण से युक्त थीं । रंग देवी का स्थान श्रीकृष्ण के वाम भाग में है। ये श्रीजी के निकट विराजती हैं।

डभारा नाम का कारण यह है कि श्री कृष्ण ने श्री राधा का अश्रुपूर्ण नेत्रों से (डबडबाई आँखों से) दर्शन किया।

डभरारो ग्राम एई कृष्णेर ए खाने ।
भरिल नयने अश्रु राधिका दर्शने ॥

(भक्ति रत्नाकर)

यहाँ नौबारी चौबारी है, 'ब्रजप्रेमानन्द सागर' के अनुसार श्रीजी यहाँ गुड़िया-गुड्डा खेलती थीं। "कबहूँ नौबारी चौबारी", यहीं पास में ही 'सूर्यकुण्ड' है, जो स्वामिनी जी द्वारा प्रकटित है क्योंकि सूर्य का आधिदैविक स्वरूप भानु लाड़ली जी का ही है। विट्ठल नाथ जी ने 'त्रिभंगी' नामक ग्रंथ में लिखा है कि नौबारी चौबारी देवियाँ थी, कुछ खण्डित मूर्तियाँ भी वहाँ पड़ी हैं। पास में 'श्याम शिला' है, जहाँ बैठने के विशाल प्रस्तर खण्ड हैं जहाँ कृष्ण बलराम गौचारण करते समय बैठते एवं श्री कृष्ण को यहीं से गुड़ियों से खेलती श्री राधा दिखाई पड़ती थीं। पास में 'रत्न कुण्ड' है जिसकी कथा नंदगाँव के मोती कुण्ड से जुड़ी हुई है।

रत्नभूमिमये तीर्थे रत्नकुण्डसमाह्वय ।
कृष्णस्नपनसम्भूत रत्नोद्भव नमोऽस्तु ते ॥

(ब्र.भ.वि.)

रत्नमयी भूमि वाले तीर्थ, हे रत्न कुण्ड नाम वाले, जो कृष्ण के स्नान से उत्पन्न, रत्नों से सम्भूत है, तुम्हें नमस्कार है।

'रत्नोद्भव' का अर्थ है – रत्नों की उत्पत्ति का स्थान अथवा जिससे रत्न उत्पन्न हुए।

मुक्ता कुण्ड से जब मोती आये, तो वृषभानु जी और कीर्ति जी चिन्तित हुए कि हमने जो सगाई में मोती भेजे थे, उनसे अधिक सुन्दर नंदराय जी ने भेजे हैं, उनकी इस चिन्ता को देखकर श्रीजी ने यहाँ उन मोतियों से रत्न उत्पन्न किये और इनसे उत्पन्न रत्नों से श्रीजी का विवाह सम्पन्न हुआ। इसलिए इसका नाम रत्न कुण्ड हुआ। रत्न कुण्ड व मुक्ता कुण्ड की लीला से श्री राधा कृष्ण की विवाह लीला स्पष्ट हो जाती है। यह परम्परा आज तक नन्द गाँव व बरसाने में चल रही है।

सुदेवी जी

अथ सुदेवीनिवासस्थानवर्णनम्

पाद्मे

स्वर्णपुरे समाख्याते पश्चिमायां दिशि स्थिते ।
गौरभानुर्महागोपस्तस्य भार्य्या कलावती ।
"स्वर्णाचलमिति नाम्ना पर्वतः संस्थितः स्वयम् ।
तस्योपरि ग्रामो बसत् संस्थानं रासमण्डले" ।
तयोः कन्या समुत्पन्ना सुदेवी नाम विश्रुता ।
भाद्रे मासि सिते पक्षे चतुर्थी पञ्चमोयुता ।
परविद्धा सदा कार्य्या पूर्वविद्धा न कर्हिचित् ॥
चित्रानक्षत्रसंयुक्ता शोभनेन समन्विता ।
सोमवारसमायुक्ता सुदेवीजन्मवादिनी ॥
भास्करोदयमारभ्य व्यतीते तु घटीद्वये ।
तत्क्षणे सुष्टुदेव्यास्तु जन्मोत्सवमकुर्वत ।

नारदपञ्चरात्रे

अस्याः सुष्टुदेव्या उपासख्यस्त्वष्टौ प्रकीर्त्तिताः।
रतिक्रीडा बिशाला च अन्तिका कामलालिता।
निवराजी महालीला कोमलांगीतिविश्रुताः।

अस्याः सुदेव्याः स्थानं श्रीकृष्णस्य।
वाम भागे श्रीप्रियायाः श्यामायाः निकटे स्थानम्।
एताश्च पट्टराज्ञ्यश्च अष्टौ सख्यश्च ताः स्मृताः।

इति सुदेवीनिवासस्थानवर्णनम्। अथ पट्टराज्ञीनां वर्णनं समाप्तम्।

पद्मपुराण के अनुसार

पश्चिम दिशा में स्वर्ण पुर (सुनहरा) नाम का ग्राम है। वहाँ गौरभानु नाम के श्रेष्ठ गोप अपनी भार्या कलावती के साथ रहते हैं। वहाँ स्वर्णाचल नाम का पर्वत है। उस पर्वत के ऊपर ही गाँव बसा हुआ था, उसके ऊपर दिव्य रास-मण्डल भी है।

उन गौरभानु के यहाँ कलावती जी के गर्भ से सुदेवी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। भाद्रपद मास शुक्ल पक्ष की पंचमी युक्त चतुर्थी तिथि थी। यहाँ परविद्धा ग्रहण करनी चाहिए, पूर्वविद्धा नहीं। चित्रा नक्षत्र से युक्त सोमवार को सुदेवी जी का जन्म हुआ। सूर्योदय काल से दो घटी व्यतीत हो जाने पर सुदेवी जी का जन्मोत्सव हुआ।

नारदपंचरात्र के अनुसार

इनकी आठ उपसखियों के नाम –

रतिक्रीड़ा, विशाला, अंतिका, कामलालिता, निवराजी, महालीला, कोमलांगी।

इन सुदेवी जी का स्थान श्रीकृष्ण के वाम भाग में है, ये श्री प्रिया जी के निकट विराजती हैं।

कवित्त –

ऊँचे गाँव ललिता सखी बिसाखा जू आजनोक में
चित्रा जू चिकसौली में सब कारज सम्हारे हैं ।
चम्पकलता करहला में प्रगट भई रंगदेवी
डभारा में संग सुख सारे में ॥
सुनहरा सुदेवी इन्दुलेखा जू राकोली में
तुंगविद्या जू कमई धाम धारे हैं ।
कहत कवि 'देव' श्री राधा जू की अष्ट सखीं
तिनके गाँव धाम नाम उचारे हैं ॥

चिकसोली – विहार (माहेश्वरी) कुण्ड एवं दोहिनी कुण्ड

ऊँचा गाँव – खिसलनी शिला, श्री ललिता सखी मंदिर एवं श्री दाऊ जी मंदिर

ऊँचा गाँव – दूध कटोरा, दही कटोरा सखी गिरि, एवं समाधि स्थल श्री नारायण भट्ट जी

ऊँचा गाँव – सखी कूप एवं त्रिवेणी कूप

ऊँचा गाँव – देह कुण्ड एवं करहला – श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु जी एवं विट्ठलनाथ जी की बैठक

करहला – मुकुट लीला एवं श्री रासमण्डल
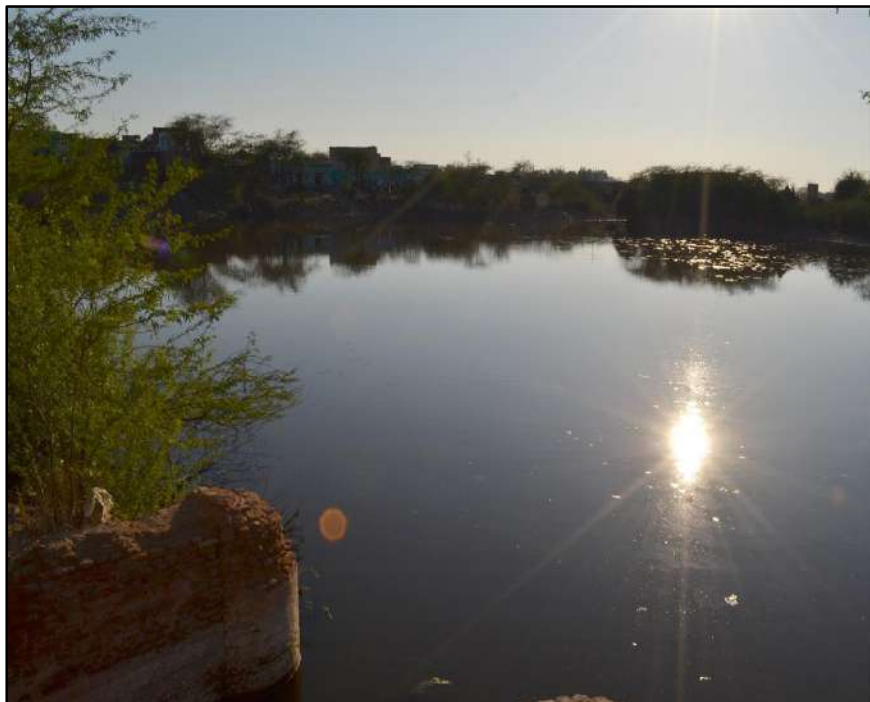
करहला – कंकण (ललिता) कुण्ड एवं बज्रनाभ जी की समाधि

सुनहरा – श्री सुदेवी सखी जी का मंदिर एवं आन्जनोख – अंजन शिला

आन्जनोख – श्री किशोरी कुण्ड एवं डभारा – नौबारी चौबारी, सूर्य कुण्ड

डभारा – श्याम शिला एवं रत्न कुण्ड

'श्याम शिला' वह स्थल है जहाँ कृष्ण बलराम गौचारण करते समय बैठते एवं श्री कृष्ण को यहीं से गुड़ियों से खेलती श्री राधा दिखाई पड़ती थीं।

अध्याय – ६

चन्द्रावली

रीठौरा का संस्कृत नाम रिन्ठपुर है। रिन्ठपुर का अपभ्रंश है रीठौरा। ये **चन्द्रावली सखी** का गाँव है। श्री नारायण भट्ट जी ने अपने ग्रन्थ **ब्रज भक्ति विलास** में इस वन का नाम **चन्द्रावली वन** बताया है और रिन्ठपुर इसमें एक गाँव है। इस वन को प्रणाम करने का मन्त्र शौनकीय तंत्र में है।

अनेक लीलाओं में चन्द्रावली जी के अनेक रूप मिलते हैं। धमार होरी लीला में चन्द्रावली सखी के लिए बहुत पद मिलते हैं।

विष्णुरहस्ये

रिण्ठपुरे समाख्याते गोपवृन्दैः समावृते ।
वायव्यकोणेपश्चिमोत्तरयोः कोणे स्थिते ॥
सुर्य्यभानुर्महागोपस्तस्मिन्सुन्यवसत्तदा ।
सुमन्था नाम भार्य्या च तस्य गोप्यभवत्तदा ॥
ज्ञातिगुर्जरिसम्भूता सूर्य्यभानु-विवाहिता ।
तस्यास्तु कन्या सम्भूता चन्द्रावली इति श्रुता ।
विख्याता नवमी राज्ञी श्रीकृष्णस्यासनार्द्धभाक् ॥
तस्मिन्कदानुसमये श्रीकृष्णः समुपागतः ।
भाद्रस्य शुक्लपक्षे च द्वितीया तृतीयायुता ।
उत्तराफाल्गुनीऋक्षसंयुता शिवयोगिनी ।
रात्रिर्गताश्चतुनाड्यस्तत्क्षणे जन्मभाविनी ॥
पाणिना कृष्णमावन्ध्य जलक्रीडां चकार ह ।
अष्टाभिः सखिभिः सार्द्धं गोपालालिंगनं कुरु ॥
श्रीकृष्णस्तद्वचः श्रुत्वा जगृहे तु स्वपाणिना ।
त्वयाहं तोषितो देवि! यत्र त्वं सर्वदा स्थिता ।

ब्रह्माण्डे

अष्टाभिः सखिभिः सार्द्धं रम्या पुष्करिणी स्थिता ।
पट्टराणी पृथक्-त्वेन यत्राहं पुनरागतः ॥

विष्णुरहस्यानुसार

पश्चिमोत्तर के मध्य वायव्य कोण में, अनेक गोप वृन्दों से समावृत रिंठपुर (रीठौरा) नामक ग्राम में सूर्यभानु नाम के गोप निवास करते हैं। इनकी भार्या का नाम सुमंथा है जो कि गुर्जर जाति की हैं। इन दम्पत्ति की कन्या का नाम चंद्रावली है, जो श्रीकृष्ण की नवमी सखी हैं। भाद्रपद मास, शुक्लपक्ष तृतीया से युक्त द्वितीया तिथि, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र शिवयोग में चार घड़ी रात्रि व्यतीत हो जाने पर इनका जन्म हुआ। किसी समय श्रीकृष्ण यहाँ आये तब इन्होंने कर कमल से श्रीकृष्ण को ग्रहणकर जलक्रीड़ा की एवं अपनी आठ सखियों के सहित सापत्न्य भाव से रहित होकर श्रीकृष्ण का आलिंगन किया। उनके वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने अपने कर कमल से उनके कर कमल को ग्रहण कर कहा – "हे देवी ! आपसे मैं प्रसन्न हूँ। यहाँ तुम सर्वदा स्थित रहो।"

इनकी आठ सखियों के नाम हैं –

रागलेखा, कलकेली, पालिका, मनोरमा, महोत्साहा, उल्लासिका, पद्मावती, विशालिका।

ततो चंद्रावलिवन प्रार्थना मन्त्र :-

कृष्णसौख्य महोत्साह गुणरूपकलानिधे ।
चंद्रावलिनिवासाय नमस्ते कृष्णवल्लभ ॥

(शौनकीये)

"हे श्रीकृष्णप्रिय चन्द्रावली वन ! आप श्रीकृष्ण को सौख्य और उत्साह प्रदान करने वाले हैं। अनेक गुण-रूप-कला निधि हैं एवं चन्द्रावली के निवास स्थान हैं, आपको प्रणाम है।"

ततो चंद्रावलिसरः स्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र :-

पीतरक्तसितस्यामजलक्रीडामनोरमे ।
विमलोत्सवरूपाय चंद्राभसरसे नमः ॥

"हे विशुद्ध उत्सव स्वरूप चन्द्रावली सरोवर ! आप जल क्रीड़ा के लिए उपयुक्त पीत, रक्त, श्वेत वर्ण के निर्मल जल से युक्त हैं। हे मनोरम सरोवर ! आपको प्रणाम है।"

रिठोरा – राधा विनोद बिहारी मंदिर एवं चन्द्रावली सखी मंदिर

अध्याय – ७

ब्रजांगनाओं के विभिन्न यूथ

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यकाः ।
देवकन्याश्च विप्रेन्द्र! न मानुष्यः कथञ्चन ॥

(प.पु)

गोपियों के शरीर प्राकृत नहीं थे और उनको मानुषी समझना ही अपराध है।

तमेव परमात्मानं जारबुद्धयापि सङ्गताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥

(भा.१०/२९/११)

यद्यपि गोपियों का श्रीकृष्ण में जार भाव भी था किन्तु वस्तुशक्ति भाव की अपेक्षा नहीं रखती। गोपियों ने जिनसे प्रेम की चेष्टाएँ कीं, वे स्वयं भगवान् ही तो थे। इसलिए उन्होंने पाप-पुण्य रूप कर्म के परिणाम स्वरूप बने गुणमय शरीर का त्याग करके महारास के योग्य दिव्य चिन्मय देह प्राप्त कर लिया।

वेदनागक्रोशभूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम् ।
गोवर्द्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ॥

(ग.सं.गो.खं.३/३३)

श्रुतरूपा ऋषिरूपा मैथिलाः कोशलास्तथा ।
अयोध्यापुरवासिन्यो यत्र सीतापुलिंदकाः ॥

(ग.सं.गो.खं.४/१६)

श्रीकृष्ण के साथ ही ८४ कोस ब्रज भूमि एवं गोलोक परिकर और गोपियों के विभिन्न यूथ भी ब्रज भूमि में युगल रस की प्राप्ति के लिए आए, जिनमें श्रुतियाँ, रामावतार के परिकर – जनक पुर की स्त्रियाँ, कौशल जनपद की स्त्रियाँ, अयोध्यावासिनी नारियाँ, यज्ञ सीताएँ, पंचवटी की भीलनियाँ, दण्डक वन के ऋषि-मुनि, जालंधर नगर की स्त्रियाँ, वैकुण्ठ की रमा सहचरियाँ, श्वेतद्वीप की सखियाँ, ऊर्ध्व वैकुण्ठ की देवियाँ, लोकालोक पर्वतवासिनी देवियाँ, सामुद्री लक्ष्मी की सखियाँ, यज्ञावतार से मोहित देवाङ्गनाएँ, धन्वन्तरि अवतार से मोहित औषधियाँ, मत्स्यावतार से मोहित सामुद्री कन्याएँ, पृथु मोहिता बर्हिष्मती पुरी की स्त्रियाँ, नर-नारायण वर से अप्सरागण, वामनावतार मोहिता सुतल लोक की स्त्रियाँ, शेष मोहिता नाग कन्याएँ आदि।

श्रीधाम वृन्दावन में श्याम सुन्दर ने अपने मधुर रसाश्रयी भक्तों पर विशेष अनुग्रह करने के लिए सर्व लीला शिरोमणि दिव्य महारास क्रीड़ा सम्पन्न की, जिसमें गोपियों के अनेक यूथ उपस्थित हुए –

रमावैकुण्ठवासिन्यः श्वेतद्वीपसखीजनाः ।
ऊर्ध्वं वैकुण्ठवासिन्यस्तथाऽजितपदाश्रिताः ॥
श्रीलोकाचलवासिन्यः श्रीसख्योपि समुद्रजाः ।
ता गोप्योपि भविष्यन्ति लक्ष्मीपतिवराद् व्रजे ॥
काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः ।
भूमिगोप्यो भविष्यन्ति पुण्यैर्नानाविधैः कृतैः ॥

(ग.सं.गो.खं.५/१, २, ३)

उन यूथों में वैकुंठाधिष्ठातृ देवी श्री लक्ष्मी जी की सहचरियाँ, श्वेतद्वीप की सखियाँ, भगवान् अजित (श्रीविष्णु) के चरणाश्रित होकर ऊर्ध्व वैकुण्ठ में निवास करने वाली देवियाँ एवं श्री लोकाचल पर्वतवासिनी तथा समुद्र से प्रकटित श्री लक्ष्मी जी की सखियाँ, ये सभी भगवान् के वर से ब्रज में गोपी रूप में प्रकट हुईं। पूर्वकृत अनेक सुकृतों के प्रभाव से कोई दिव्य, कोई अदिव्य और कोई त्रिगुण वृत्ति वाली देवियाँ ब्रज में गोपी हुईं –

नीतिविन्मार्गदःशुक्लः पतंगो दिव्यवाहनः ।
गोपेष्टश्च व्रजे राजञ्जाता षड्वृषभानवः ॥
तेषां गृहेषु संजाता लक्ष्मीपतिवरात्प्रजाः ।

(ग.सं.मा.खं.११/२)

चिन्तयन्त्यः सदा श्रीमद्गोविन्दचरणाम्बुजम् ।
श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं ताभिर्माघव्रतं कृतम् ॥
माघस्य शुक्लपंचम्यां वसन्तादौ हरिः स्वयम् ।
तासां प्रेमपरीक्षार्थं कृष्णो वै तद्गृहान्गतः ॥

(ग.सं.मा.खं.११ /५, ६)

ये सभी देवियाँ बरसाना के समीपवर्ती ग्रामों में नीतिवित्, मार्गद, शुक्ल, पतङ्ग, दिव्यवाहन तथा गोपेष्ट आदि ६ वृषभानुओं के घरों में प्रकट हुईं। इन ब्रजाङ्गनाओं ने श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए माघ मास का व्रत किया। माघ शुक्ल पंचमी को श्याम सुन्दर ने योगी का छद्म वेश धारण कर इनके प्रेम की परीक्षा ली। यह लीला विस्तार से इसी ग्रन्थ के अध्याय – ३ बरसाना में दृष्टव्य है।

काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः ।
भूमिगोप्यो भविष्यन्ति पुण्यैर्नानाविधैः कृतैः ॥

(ग.सं.गो.खं.५/३)

वीतिहोत्रोऽग्निभुक्सांबः श्रीकरो गोपतिः श्रुतः ।
ब्रजेशः पावनः शांत उपनन्दा ब्रजेभवाः ॥
तेषां गृहेषु संजाताः कन्यका देववाक्यतः ।
काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः ॥

(ग.सं.मा.खं.१२/२, ४)

अन्य दिव्य, अदिव्य, त्रिगुणवृत्ति वाली देवियाँ पूर्व के अनेक सुकृतों के फलस्वरूप वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्ब, श्रीकर, गोपति, श्रुत, ब्रजेश, पावन तथा शान्त आदि ९ उपनंदों के गृहों में उत्पन्न हुई। सबसे उत्तम बात तो यह है कि ये सब परम कृशोदरी, परिमल प्रसारिणी, अमृत निर्झरिणी कीर्तिसुता श्रीजी की प्राणोपम प्रिय सखियाँ हैं और इन सबने प्रिया-प्रियतम के साथ फाग-महोत्सव क्रीड़ा की है। रंगीली के रंग-बिरंगे अबीर से सनी हुई दिशाएँ जब सुरभित हो रही थीं तो ब्रज में रंगीले लाल बिहारी एक दिन आये, इन सभी क्रीड़ोत्सुका सखियों ने श्रीजी से होलिकोत्सव की शोभा बढ़ाने के लिए प्रार्थना की –

"हे राधे ! जिनके भाल व गोल कपोलों पर आकर्षक विचित्र पत्र रचना है। सम्पूर्ण श्री अंग केशर निर्मित अबीर से लिप्त हैं, कर में कनक पिचकारी है और नेत्र भानुभवन के द्वार पर टिके हुए आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

हरि चकोर हित श्रीमुख चन्द्रे ! आपका कृपा करने का तो नित्य सिद्ध सहज स्वभाव है। अब शीघ्र ही यावक पत्रावलि युत श्रीपद से थोड़ा सदन से बाहर चलने का श्रम करके मधुगन्धलुब्ध हरि भ्रमर पर कृपा वर्षण करो।"

विद्युत् को भी लज्जित करने वाली यह अनिन्द्य सुन्दरी, जिसकी बिम्बा फल सी अधर शोणता है, पिकमाला सी स्वर सुस्वरता, मधुमाला सी मधुरता, कमलमाल सी वपु कोमलता, चन्द्रमाल सी वपु शीतलता, कुसुममाल सी वपु सुगन्धिता है। कराम्बुज में चन्दन, अगर, कस्तूरी, हल्दी, केसर के रंग-बिरंगे-सुगन्धित-शीतल जल को माटों में भर-भरकर बहुसंख्यक ब्रजकामिनियों से समावृत होकर पिय पर दृग शर छोड़ते हुए बाहर आईं और बाहर आते-आते तो होली का रंगीला युद्ध छिड़ गया। रंग-बिरंगे ही वस्त्र हैं, रंग-बिरंगा ही अबीर है। एक बार में कोटि-कोटि मूठों से उड़ाया गया अबीर गगन को भी रंगीन कर रहा है। रंगीली गोपियों ने रंगीले लाल को चारों ओर से घेर लिया और हाथ से हाथ पकड़ कर जब खड़ी हो गयीं तो कैदी श्रीकृष्ण इन मजबूत जंजीरों के भीतर से जा ही नहीं पाए, फिर तो कैदी का भव्य स्वागत किया गया।

पहले मन भर कर नीलमुख कमल एवं विशाल ललाट पर गुलाबी-लाल-पीला गुलाल लगाया, फिर ऊपर से सावन-भादों की धारा की तरह सैकड़ों रंग भरे मांट उड़ेल दिए, फिर स्वयं श्रीजी ने पंकेरूनयन (कमलनयन) श्रीकृष्ण को होली का स्थूल काजल लगाया। इतने पर भी नंदकुल चन्द्र को सौन्दर्य छोड़ता नहीं क्योंकि स्वयं सौन्दर्यागार जो हैं। अनन्तर कृष्ण ने गोपांगनाओं को फगुआ के रूप में अपना नूतन पीत-पट दिया।

मैथिली गोपकन्याएं

सीतास्वयंवरं गत्वा धनुर्भंगं चकार सः ।
उवाह जानकीं सीतां रामो राजीवलोचनः ॥

तं दृष्टवा मैथिलाः सर्वाः पुरन्ध्र्यो मुमुहुर्विधे ।
रहस्यूचुर्महात्मानं भर्ता नो भव हे प्रभो ॥

तामाह राघवेन्द्रस्तु मा शोकं कुरुत स्त्रियः ।
द्वापरान्ते करिष्यामि भवतीनां मनोरथम् ॥

(ग.सं.गो.खं.४/३६, ३७, ३८)

त्रेता में श्रीराम जी ने मिथिला में जाकर धनुर्भंग करके श्रीजानकी जी का पाणिग्रहण किया, तब श्री रघुनाथ जी के दिव्य सौन्दर्य को देखकर विमुग्ध हुई मिथिला पुर वासिनियों ने भर्तृभाव से श्रीराम को प्राप्त करने की मनःकामना प्रकट की, तब प्रभु ने उन्हें गोपी होने का वर दिया।

जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं ।
निरखहिं राम रूप अनुरागीं ॥
बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी ।
बिकट बेष मुख पंच पुरारी ॥
अपर देउ अस कोउ न आही ।
यह छबि सखी पटतरिअ जाही ॥

(रा.बा.का.२२०)

श्रीरामस्य वराज्जाता नवनन्दगृहेषु याः ।
कमनीयं नन्दसूनुं दृष्ट्वा ता मोहमास्थिताः ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि चक्रुः कात्यायनीव्रतम् ।
उपचारैः षोडशभिः कृत्वा देवीं महीमयीम् ॥

(ग.सं.मा.खं.३/२, ३)

श्री राम चन्द्र जी के वर से वे ही मैथिली देवियाँ ९ नन्दों के घरों में प्रकट हुईं और मार्गशीर्ष मास में यामुन तट पर (चीर घाट पर) श्रीकृष्ण को भर्तृभाव से प्राप्त करने के लिए उन्होने कात्यायनी व्रत किया, जिसमें प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में यमुना में स्नान करके षोड्शोपचार से बालुका से निर्मित कात्यायनी माँ की प्रतिमा का वे अर्चन करती थीं एवं प्रार्थना करती थीं कि कृष्ण हमारे पति बनें –

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥

(भा.१०/२२/४)

एक दिन वे ब्रजांगनाएँ स्नान काल में विवस्त्रा होकर आकण्ठ जल में अवस्थित होकर परस्पर में जल क्रीड़ा करने लगीं। उसी क्षण श्यामसुन्दर उनका वस्त्रापहरण करके कदम्ब पर आरूढ़ हो गए। इधर तट पर वस्त्रों को न देखकर वे देवियाँ विस्मित हो गईं, तभी उनकी दृष्टि नन्दनन्दन पर पड़ी और वे वस्त्र याचना करने लगीं।

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे ॥

(भा.१०/२२/१५)

"हे श्यामसुन्दर ! हम तुम्हारी दासियाँ हैं, तुम जो कहोगे हम वही करेंगी, तुम तो धर्मज्ञ हो, हमें सताओ नहीं हमारे वसन हमें लौटा दो, नहीं मानोगे तो नन्द बाबा से कह देंगी।"

श्यामसुन्दर ने कहा – "यदि तुम मेरी दासियाँ हो तो जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो। जल से बाहर आकर अपने-२ वस्त्र ग्रहण करो।" शीतकर्शिता उन देवियों ने अपने-अपने वस्त्र ग्रहण किये। श्याम सुन्दर ने उनके प्रेमाभिप्राय को समझकर शीघ्र ही उनका मनोरथ पूर्ण करने का आश्वासन दिया।

कौशल प्रांत की देवियाँ

मार्गे च कौसला नार्यो रामं दृष्ट्वाऽतिसुन्दरम् ।
मनसा वव्रिरे तं वै पतिं कन्दर्पमोहनम् ॥
मनसाऽपि वरं रामो ददौ ताभ्यो ह्यशेषवित् ।
मनोरथं करिष्यामि व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥

(ग.सं.गो.खं.४/४१, ४२)

श्री जानकी जी के साथ रथ पर आरूढ़ होकर श्री रघुनाथ जी जब मिथिला से कौशल पुर की ओर प्रस्थित हुए, तब कौशल जनपद की स्त्रियों ने श्री रघुनाथ जी के मन्दस्मित मुख-मण्डल की आभा को देखकर, उनके कन्दर्प कोटि कमनीय दिव्य वपु को देखकर मन ही मन उन्हें पति रूप में वरण कर लिया, तब सर्वज्ञ श्रीराम जी ने उनके मनोगत भावों को जानकर उनको द्वापर में गोपी स्वरूप में प्रकट होने का एवं उनके समस्त मनोरथों को पूर्ण करने का वर दिया।

कौशलानां गोपिकानां वर्णनं श्रृणु मैथिल ।
सर्वपापहरं पुण्यं श्रीकृष्णचरितामृतम् ॥
नवोपनन्दगेहेषु जाता रामवराद्व्रजे ।
परिणीता गोपजनै रत्नभूषणभूषिताः ॥
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशा नवयौवनसंयुताः ।
पद्मिन्यो हंसगमनाः पद्मपत्रविलोचनाः ॥
खे वायौ चाग्निजलयोर्मह्यां ज्योतिर्दिशासु च ।
द्रुमेषु जनवृन्देषु तासां कृष्णो हि लक्ष्यते ॥

(ग.सं.मा.खं.४/१, २, ३, ७)

ये पद्मिनी जाति की नारियाँ थीं। ये सभी सल्लक्षणों से सम्पन्न थीं। कालान्तर में श्रीराम जी से प्राप्तवरा कौशलपुर वासिनी देवियाँ ९ नन्दों के घरों में प्रकट हुईं। अन्य गोपों के साथ उनका परिणय भी हो गया था परन्तु उनका चित्त सर्वथा नन्दनन्दन में अनुरक्त रहता था, अतः उन्होंने परकीया भाव से सुदृढ़ प्रणय सम्बन्ध श्यामसुन्दर के साथ स्थापित किया। ब्रज की वीथियों में विचरण करते हुए माधव मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए सदा सर्वदा इनके साथ परिहास करते थे। ये प्रणयिनी ब्रजाङ्गनाएँ जब दधि विक्रय के लिए जाती थीं, तब 'दही लो-दही लो' यह भूलकर 'कृष्ण लो-कृष्ण लो' कहने लग जाती थीं, ये सर्वदा अष्ट सात्विक भावों से युक्त रहती थीं। उनको सर्वत्र आकाश, वायु, जल, अग्नि, वृक्ष, वन-उपवन वाटिका में श्यामसुन्दर की साँवरी सलोनी आभा ही भासित होती थी –

जित देखौं तित स्याम मयी है ।
स्याम कुञ्ज वन यमुना स्यामा ॥

प्रेम प्रगाढ़ अवस्था में इनको जड़-चेतन का भी भान नहीं रहता था। प्रेमोन्माद में इन्होंने सामान्य लोक व्यवहार चिन्ता, लज्जा आदि को तिलाञ्जलि दे दी एवं श्रीकृष्ण में इन्होंने अविचल भाव से प्रेम किया एवं रास क्रीड़ा में श्रीकृष्ण के कंधो पर अपनी भुजा रखकर प्रेम से विगलित चित्त हो श्रीकृष्ण को पूर्णतया अपने वश में कर लिया –

काचिद् रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥

(भा.१०/३३/११)

इनकी आराधना का स्वयं शेष जी भी अपने सहस्रानानों से वर्णन करने में असमर्थ हैं।

अयोध्यावासिनी देवियाँ

आगतं सीतया सार्द्धं सैनिकैः सहितं रघुम् ।
आयोध्यापुरवासिन्यः श्रुत्वा द्रष्टुं समाययुः ॥
वीक्ष्य तं मोहमापन्ना मूर्छिताः प्रेमविह्वलाः ।

तेपुस्तपस्ताः सरयूतीरे रामधृतव्रताः ॥
आकाशवागभूत्तासां द्वापरान्ते मनोरथः ।
भविष्यति न सन्देहः कालिंदीतीरजे वने ॥

(ग.सं.गो.खं.४/४३, ४४, ४५)

आगे जब श्रीराम जी अवध में प्रविष्ट हुए तब दर्शन की उत्कण्ठा से अयोध्या वासिनी स्त्रियाँ दौड़ पड़ीं और श्रीराम जी के असमोर्ध्व दिव्य सौन्दर्य का वीक्षण करके प्रेम विह्वल होकर मूर्च्छित सी हो गईं। उन्होंने श्रीराम जी में अनुरक्तचित्ता होकर श्री सरयू जी के पावन तट पर तीव्र आराधन किया। तप के फलस्वरूप आकाशवाणी हुई कि द्वापर के अंत में यामुन तट पर स्थित श्रीधाम वृन्दावन में तुम्हारी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी।

मा खेदं कुरु राजेन्द्र पुत्र्यो देयास्त्वया खलु ।
श्रीकृष्णाय भविष्याय परं दायादिकैः सह ॥
तेनैव कर्मणा त्वं वै देवर्षिपितृणामृणात् ।
विमुक्तो नृपशार्दूल परं मोक्षमवाप्स्यसि ॥

(ग.सं.मा.खं.५/१४, १५)

श्री नारद जी अयोध्या वासिनी गोपियों का वर्णन करते हैं। सिंधु देश में चम्पका नाम से प्रसिद्ध नगरी थी, जहाँ बड़े ही धर्मात्मा विष्णु भक्त राजा विमल राज करते थे। इनके ६००० रानियाँ थीं परन्तु दीर्घकाल तक कोई सन्तति लाभ नहीं हुआ, महाराज संतानहीनता के दुःख से चिन्तित थे। एक दिन याज्ञवल्क्य जी का आगमन हुआ, राजा ने अपनी आन्तरखिन्नता का कारण उनके चरणों में निवेदन किया। महर्षि ने कहा – "राजन्! पुत्र लाभ तो तुम्हारे भाग्य में नहीं है परन्तु तुम्हें करोड़ों की संख्या में पुत्रियाँ अवश्य प्राप्त होंगी।" राजा ने कहा – "महर्षे! पुत्र लाभ के बिना मैं पूर्वजों के ऋण से मुक्त कैसे होऊँगा।"

याज्ञवल्क्य जी ने कहा – "राजन्! तुम्हारे राज्य काल से ११५ वर्ष व्यतीत हो जाने पर मथुरा में चतुर्भुज धारी, श्री वत्स चिन्ह से युक्त साक्षात् श्रीहरि प्रकट होंगे। तुम उनको अपनी कन्याएँ समर्पित कर देना। समस्त ऋणों से मुक्त हो जाओगे –

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥

(भा.११/५/४१)

श्रीकृष्ण को जिसने सर्वस्व समर्पित कर दिया, सहज में उसके समस्त ऋणों का विमोचन हो जाता है।" यों कह कर राजा से पूजित होकर महर्षि याज्ञवल्क्य प्रस्थान कर गए। कालान्तर में अयोध्यापुर वासिनी देवियाँ श्रीराम के वर से उनकी रानियों के गर्भ से पुत्री रूप में प्रकट हुईं। जब वे राज कन्याएँ विवाह योग्य हुईं, तब राजा ने अपने दूत को आदेश दिया कि याज्ञवल्क्य जी के द्वारा प्रोक्त लक्षणों से युक्त बालक को वसुदेव के घर मथुरा में देखकर आओ। दूत ने मथुरा में आकर देखा सभी नगरवासी कंस से भयभीत हैं,

कोई वसुदेव जी की संतान के विषय में यदि बात भी करता है तो कंस उसको कठोर दण्ड देता है।

किसी बुद्धिमान सज्जन ने दूत को एकान्त में लाकर वस्तु स्थिति से अवगत कराया कि वसुदेव जी के पुत्रों को तो कंस ने मार दिया। अन्तिम एक कन्या हुई, वह भी आकाश में उड़ गई। दूत ने आकर सम्पूर्ण स्थिति महाराज विमल से विनिवेदित की और कहा "महाराज! मथुरा से प्रत्यावर्तन काल में आपके द्वारा उक्त समस्त लक्षणों से युक्त एक साँवरे बालक को मैंने कालिन्दी के तट पर देखा, उसके श्री वत्स का चिन्ह था परन्तु वह द्विभुज था। आपने वसुदेव कुमार को चतुर्भुज बताया था।" दूत के वाक्यों को सुनकर राजा विमल संशय में पड़ गए, उसी क्षण दिग्विजय के ब्याज से महाभागवत भीष्म जी का आगमन सिन्धु देश में हुआ। महाराज विमल ने समस्त उपहार सामग्री भीष्म जी को निवेदित की एवं अपना संशय उनके समक्ष रखा। परम भागवत भीष्म जी ने कहा – "राजन्! मैंने व्यास जी के मुख से सुना है कि वसुदेव नन्दन ही नन्दनन्दन के रूप में वृन्दावन में क्रीड़ा कर रहे हैं।

रात्रि की बेला में वसुदेव जी प्रभु को, आदिष्ट होकर, गोकुल में छोड़ गए थे। भीष्म जी के वाक्यों को श्रवण कर राजा का संशय छेदन हुआ। पुनः श्रीकृष्ण के समीप दूत को भेजा, दूत ने आकर प्रभु का स्तवन किया एवं श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए राजकुमारियों के तीव्र तप एवं राजकुमारियों के पाणिग्रहण करने की राजा की प्रार्थना को निवेदित किया। उसी क्षण श्रीकृष्ण दूत के सहित चम्पका पुरी में जा पहुँचे। राजा यज्ञ कार्य में संलग्न थे। राजा ने अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण चरणों में समर्पित कर दिया। प्रभु ने राजा विमल को उनकी ६, ००० पत्नियों सहित अपना वैकुण्ठ धाम प्रदान किया एवं राजकुमारियों को लेकर ब्रज मण्डल में आये। वहाँ रमणीय काम वन, जो अनेक मन्दिरों से सुशोभित था, वे कृष्ण प्रियाएँ वहाँ रहने लगीं। जितनी संख्या में वे देवियाँ थी, उतने रूप बनाकर श्यामसुन्दर ने उनके साथ रास क्रीड़ाएँ कीं।

रासे विमलपुत्रीणामानन्दजलबिन्दुभिः ।
च्युतैर्विमलकुण्डोऽभूत्तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥
दृष्ट्वा पीत्वा च तं स्नात्वा पूजयित्वा नृपेश्वर ।
छित्त्वा मेरुसमं पापं गोलोकं याति मानवः ॥

(ग.सं.मा.खं-७/२९, ३०)

उस रासमण्डल में उन विमल कुमारियों के नेत्रों से आनन्द जनित अश्रु बिंदु गिरे, जिससे वहाँ 'विमल' कुण्ड नामक तीर्थ प्रकट हुआ। उस कुण्ड में स्नान करने से गोलोक धाम की प्राप्ति होती है।

दण्डकारण्य के ऋषि

गोपालोपासकाः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः ।
ध्यायन्तः सततं मां वै रासार्थं ध्यानतत्पराः ॥
अन्याकृतिं ते तं वीक्ष्य परं विस्मितमानसाः ।
ध्यानादुत्थाय ददृशुः कोटिकन्दर्पसन्निभम् ॥
ऊचुस्ते यस्तु गोपालो वंशीवेत्रे विना प्रभुः ।
इत्थं विचार्य मनसा नेमुश्चक्रुः स्तुतिं पराम् ॥

(ग.सं.गो.खं-४/४७, ४९, ५०)

पित्राज्ञा से वनवास काल में श्रीराम जी, श्रीजानकी जी व लक्ष्मण जी के साथ दण्डकारण्य में विचरण कर रहे थे तब दण्डकारण्य वासी मुनिजन, जिनकी प्रभु के गोपाल स्वरूप में निष्ठा थी, रास लीला के निमित्त वे प्रभु के ध्यान में अवस्थित थे। श्रीराम रूप में अपने गोपाल जी को आया हुआ देखकर समस्त मुनिजन आश्चर्य से कह उठे – "अरे ! देखो, आज हमारे गोपाल जी वंशी एवं बेंत के बिना ही पधारे हैं।"

इस प्रकार मन ही मन प्रणाम करके प्रभु का स्तवन किया। प्रभु ने मनोभीष्ट वर माँगने को कहा, तब सभी ने एक स्वर से कहा – "प्रभु ! जैसे जानकी जी भर्तृभाव से आपके प्रेम को प्राप्त हुईं, ऐसे हम भी चाहते हैं।"

यथा हि लक्ष्मणो भ्राता तथा प्रार्थ्यो वरो यदि ।
अद्यैव सफलो भाव्यो भवद्भिर्मत्प्रसंगतः ॥
सीतोपमेयवाक्येन दुर्घटो दुर्लभो वरः ।
एकपत्नीव्रतोऽहं वै मर्यादापुरुषोत्तमः ॥
तस्मात्तु मद्वरेणापि द्वापरान्ते भविष्यथ ।
मनोरथं करिष्यामि भवतां वाञ्छितं परम् ॥

(ग.सं.गो.खं-४/५२, ५३, ५४)

तब श्रीराम जी ने कहा – "यदि लक्ष्मणवत् भ्रातृप्रेम चाहो तो अभी प्राप्त हो सकता है परन्तु जानकी जी की भाँति भर्तृ प्रेम तो दुर्लभ है, क्योंकि इस समय मैं एकपत्नी व्रतधारी और मर्यादापुरुषोत्तम हूँ, अतएव इस मनोरथ के निमित्त, आप सब द्वापर में गोपी देह को प्राप्त करोगे। वहाँ आपकी समस्त वाञ्छाएँ मेरे द्वारा पूर्ण होंगी।"

तदनन्तर बंग देश में मंगल नामक एक शास्त्रज्ञ गोप थे, जो ९ लाख गायों के स्वामी थे। दैवयोग से एक समय इनका सम्पूर्ण धन नष्ट हो गया, गायें भी चोरी चली गईं। उसी समय राम जी के वरदान से दण्डकारण्य के ऋषियों ने उसकी ५ सहस्र भार्याओं से कन्याओं के रूप में जन्म ग्रहण किया। बहुसंख्यक कन्याओं को देखकर मंगल गोप दुःख में आधि-व्याधि

से ग्रस्त हो गए। कन्याओं के विवाह की चिंता उन्हें सदा सताती रहती, एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि किसी धन-बल सम्पन्न राजा को ही मैं अपनी कन्याएँ दूँगा। उसी समय मथुरा मण्डल से आये एक गोप के मुख से उसने ब्रजेश्वर नन्द जी के अद्भुत वैभव के विषय में सुना एवं अपनी कमलांगी कन्याओं को ब्रज भेज दिया। वे नन्द ग्राम में नन्द जी के गोष्ठ में गोमय उठाने का सेवा कार्य करने लगीं। एक दिन नन्दवंशमणि श्रीकृष्ण को देखकर उन्हें अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया और कृष्ण प्राप्ति के निमित्त प्रतिदिन श्रीयमुना जी की सेवा समाराधना करने लगीं। यमुना जी को प्रसन्न करके उनसे श्रीकृष्ण को भर्तृ रूप में पाने का वर प्राप्त कर लिया। श्रीयमुना जी की कृपा से उन सभी ने वृन्दावन में कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि को रास मण्डल में पहुँच कर वहाँ श्रीहरि के साथ रास विहार प्राप्त किया।

यज्ञ सीताएं

श्री रघुनाथ जी वनवास की अवधि को पूर्ण कर रावणादि निशाचरों का संहार करके, श्री जानकी जी के साथ पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर श्री अवध धाम में पधारे। वहाँ विधिवत मन्त्रविन्मुनिमण्डली ने प्रभु का राज्याभिषेक किया है। प्रभु ने राम राज्य की स्थापना की। एक दिन प्रजावत्सल श्रीराम जी गूढ़ रूप से अपनी प्रजाजनों की मनःस्थिति के परिज्ञान के लिए विचरण कर रहे थे। विचरण काल में उन्होंने देखा कि कोई रजक अपनी भार्या की भर्त्सना करते हुए कह रहा है –

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।
स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥
इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥

(भा.९/११/९, १०)

इस लोकापवाद से भीत प्रजावत्सल श्री रघुनाथ जी ने अपनी अन्तर्वत्नी पत्नी श्री जानकी जी का परित्याग कर दिया। निर्वासन काल में श्री जानकी जी महर्षि वाल्मीकि जी के आश्रम में रहीं। इसी अवधि में श्री रघुनाथ जी ने एक आदर्श राजा की भूमिका निर्वहन करते हुए वैदिक धर्म के परिरक्षण के लिए यज्ञ कार्य का शुभारम्भ किया परन्तु अश्वमेध यज्ञ में यजमान का सपत्नीक होना अनिवार्य है –

यदायदाऽकरोद्यज्ञंरामोराजीवलोचनः ।
तदातदास्वर्णमयींसीतांकृत्वाविधानतः ॥

(गर्गसंहिता गोलोक खण्ड ४/६१)

अतः मुनिवर वाशिष्ठ जी की शास्त्रोक्ति के अनुसार स्वर्णमयी सीता का निर्माण कराकर यज्ञ कार्य आरम्भ किया।

यज्ञ मन्दिर में अनेकों श्री जानकी जी की सुवर्णमयी प्रतिमाएँ हो गईं। एक दिन वे सभी प्रतिमाएँ चैतन्य होकर भर्तृभाव से श्रीराम जी की सेवा में समुपस्थित हुईं।

तब श्री रघुनाथ जी ने श्री जानकी जी के प्रति अपने अनन्य अनुराग का परिचय देते हुए कहा – "देवियो ! 'एकपत्नीव्रतधरोऽहं' एक पत्नीव्रत है मेरा, अतः मैं आपका पाणिग्रहण नहीं कर सकता।

कथंचास्मान्नगृह्णासिभजन्तीर्मैथिलीः सतीः ।
अर्धाङ्गीर्यज्ञकालेषुसततंकार्यसाधिनीः ॥
धर्मिष्ठस्त्वंश्रुतिधरोधर्मवद्भाषसेकथम् ।
करंगृहीत्वात्यजसिततः पापमवाप्स्यसि ॥

(गर्गसंहिता गोलोक खण्ड ४/६४, ६५)

तब वे प्रेमपरायणा देवियाँ बोलीं – "प्रभु हम भी तो मैथिली स्वरूपिणी हैं। यज्ञ कार्य के संचालन के निमित्त आपने हमको अर्धाङ्गिनी के रूप में अंगीकार किया, आप धर्मिष्ठ हैं, वेदज्ञ हैं फिर आप अधर्म पूर्ण बात कैसे कह रहे हैं? यदि आप हमारा पाणिग्रहण करके अब परित्याग करते हैं तो आपको पाप का भागी होना पड़ेगा।"

श्रीराम उवाच –

समिचीनंवचः सत्योयुष्माभिर्गदितंचमे ।
एकपत्निव्रतोऽहंहिराजर्षिः सीतयैकया ॥
तस्माद्यूयंद्वापरान्तेपुण्येवृन्दावनेवने ।
भविष्यथकरिष्यामियुष्माकंतुमनोरथम् ॥

(गर्गसंहिता गोलोक खण्ड ४/६६, ६७)

तब श्रीराम जी ने कहा – "देवियो ! आपने सत्य कहा परन्तु अभी तो मैं एक पत्नीव्रत हूँ अतः आप द्वापरान्त में वृन्दावन में जाकर गोपी स्वरूप को प्राप्त करोगी और तब आपके मनोरथ पूर्ण होंगे।" श्री रघुनाथ जी के वाक्यानुसार वे यज्ञ सीताएं ब्रज में गोपी देह को प्राप्त हुईं।

पंचवटी की भीलनियाँ

तद्दर्शनस्मररुजः पुलिन्द्यः प्रेमविह्वलाः ।
श्रीमत्पादरजो धृत्वा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः ॥
ब्रह्मचारीवपुर्भूत्वा रामस्तत्र समागतः ।
उवाच प्राणसंत्यागं मा कुरुत स्त्रियो वृथा ॥
वृन्दावने द्वापरान्ते भविता वो मनोरथः ।
इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी तु तत्रैवान्तरधीयत ॥

(ग.सं.गो.खं-४/५६, ५७, ५८)

दण्डकारण्य वासी मुनियों की वाञ्छा को पूर्ण करके, प्रभु आगे पंचवटी की ओर प्रस्थित हुए एवं वहीं पर्णशाला बनाकर निवास करने लगे। उसी समय भीलों की स्त्रियाँ, श्री रघुनाथ जी की अनुपम रूप माधुरी का अवलोकन कर प्रेम विह्वल हो गईं। प्रभु से मिलन की उत्कट वाञ्छा उनके चित्त में प्रादुर्भूत हुई। यहाँ तक कि श्रीराम जी की चरणधूलि को अपने मस्तक पर धारण कर प्राण त्याग के लिए उद्यत हो गईं तब श्रीराम जी ब्रह्मचारी वपु धारण कर प्रकट हुए एवं उन पुलिन्द्य स्त्रियों को अपनी पीयूष वर्षिणी वाणी से आश्वस्त किया कि हे देवियो! तुम व्यर्थ में प्राण त्याग का उद्यम मत करो, द्वापरान्त में तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। ऐसा कहकर वह वटुक ब्रह्मचारी अन्तर्हित हो गया।

कालान्तर में वे ही भीलनियाँ विन्ध्याचल के वनाञ्चल में निवास करने वाले भीलों के यहाँ उत्पन्न हुईं। विन्ध्याचलवासी भील उद्भट् योद्धा थे। वे केवल राज द्रव्य को लूटते थे, गरीबों को कदापि नहीं। उनसे कुपित होकर विन्ध्याचल देश के बलवान राजा ने दो अक्षौहिणी सेना के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। चारों तरफ से उन्हें घेर लिया, भीषण संग्राम हुआ। भीलों ने भयभीत होकर कंस के समीप सहायता के लिए पत्र भेजा, कंस ने सहायतार्थ प्रलम्बासुर को भेजा, जिसका विकराल शरीर दो योजन ऊँचा था। सर्पों की माला धारण किये हुए था, उसने भयंकर सिंहनाद करते हुए वृक्ष और पर्वत उखाड़ते हुए विन्ध्यनरेश की सेना पर आक्रमण कर दिया। उस प्रलयंकारी मेघ के समान गर्जना करते हुए दुर्दान्त दैत्य से भयभीत विन्ध्य नरेश संग्राम छोड़कर सेना सहित पलायन कर गए तब प्रलम्बासुर उन भीलों को लेकर मथुरा को आ गया, वे सभी भील कंस के अनुचर हो गए। काम्यवन के पर्वतीय भागों में उनका निवास हुआ। उन्हीं के घरों में श्रीराम जी के उत्कृष्ट वर के फलस्वरूप पुलिन्द स्त्रियाँ दिव्य कन्याओं के रूप में प्रकट हुईं, जो मूर्तिमति लक्ष्मी जी की भाँति प्रशंसित थीं। गोचारण काल में श्रीकृष्ण की कन्दर्पकोटिकमनीय कान्ति का अवलोकन कर प्रेम विह्वल हो गईं एवं उन्हीं के ध्यान में दिन-रात डूबी रहती थीं। उनकी अनुराग पूर्ण अवस्था को देखकर अन्य ब्रजांगनाएँ उनके सौभाग्य की सराहना करते हुए कहती हैं –

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरुषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥

(भा.१०/२१/१७)

ताश्चापि रासे संप्राप्ताः श्रीकृष्णं परमेश्वरम् ।
परिपूर्णतमं साक्षाद्गोलोकाधिपतिं प्रभुम् ॥
श्रीकृष्णचरणांभोजरजो देवैः सुदुर्लभम् ।
अहो भाग्यं पुलिंदीनां तासां प्राप्तं विशेषतः ॥

(ग.सं.मा.खं-१०/१३, १४)

श्याम सुन्दर ने शरद पूर्णिमा की रास रजनी में उनके समस्त मनोरथ पूर्ण किये और वे कृष्णानुरागिनी देवियाँ सदा सर्वदा के लिए श्यामसुन्दर को प्राप्त हो गईं। श्री नारद जी भी इन पुलिन्द कन्याओं के सौभाग्य की सराहना करते हैं – "इन पुलिन्द कन्याओं का अहोभाग्य देखो कि देव रमणियों के द्वारा भी वाञ्छनीय श्रीकृष्ण चरण रज की प्राप्ति उनको विशेष रूप से हुई।"

जालन्धरी देवियाँ

जालन्धर नगर की स्त्रियों ने भी 'बिनु भूषण सुशोभित शुभांग' पर अपने तन-मन-नयन का निर्मन्छन करके उन्हें पति रूप में पाना चाहा तब व्योमवाणी ने उपदेश किया कि तुम सब कमलापति की आराधना करो। अतिशीघ्र वृन्दावन विहारी की प्राण प्रिया गोपी बन जाओगी।

सप्तनदी के कूल पर दो योजन विस्तृत रंगपत्तन नामक नगर था, जिसका अधीश्वर महान बलवान रंगोजि नामक गोप था। वह प्रति वर्ष हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र को वार्षिक कर के रूप में १०० अरब स्वर्ण मुद्राएँ देता था। एक समय लोभांध गोप ने हस्तिनापुर नरेश को वार्षिक कर न दिया, इतना ही नहीं उनसे मिलने तक न आये। धृतराष्ट्र ने उसे बन्दी बना लिया, कई वर्ष तक कैद रहा किन्तु उस लोभी गोप ने धन न दिया। एक रात वह अवसर पाकर कारागार से भाग कर अपने नगर में आ गया। धृतराष्ट्र द्वारा भेजी गई ३ अक्षोहिणी सेना से घमासान समर संग्राम हुआ। वह अकेला कब तक लड़ता? स्वीयजनों के मर जाने पर अंत में विथकित हो उसने उग्रसेन कुमार मथुरेश कंस की शरण ग्रहण की। करोड़ों शक्तियों व दैत्यों को साथ लेकर कंस उसकी रक्षार्थ आया। विशाल कुवलयापीड़ गज पर आरूढ़ होकर कंस ने कितनों को रौंद दिया, कितनों को कुचल दिया, कितनों को उछाल-उछाल कर नभ यात्रा करा दी। उसके उद्भट दैत्य योद्धाओं ने बहुत से सवारों को, सवारियों को धरा-शयन कर दिया। शेष सेना व्याकुल हो पलायन कर गई। दैत्यराज कंस विजयगान के साथ रंगोजि गोप को साथ लेकर मथुरा आया। कौरव पराजित होकर शोक-

ग्रस्त हुए किन्तु समय की प्रतिकूलता को देखकर क्या करते, अतः शान्त रहे। ब्रज सीमा पर बर्हिषद नामक मनोहर पुर कंस ने रंगोजि नामक गोप को दे दिया और वह वहीं रहने लगा।

प्रभु के वरदान से जालन्धर के अन्तःपुर की स्त्रियों ने इसी गोप की पत्नियों से जन्म ग्रहण किया और गोपों के साथ इनका विवाह कर दिया गया किन्तु कान्त भाव इनका श्रीकृष्ण में ही था। अतः वृन्दावन की रमणीय पुण्यपूर्ण पृथ्वी पर इन प्रीतिवरिष्ठाओं को रतिसार-सरस-केलि की दुर्लभ प्राप्ति हुई।

(ग.सं.गो.ख.अध्याय ५ एवं मा.ख.अध्याय १४)

देवाङ्गनाएँ

प्रजापति रूचि के यहाँ अवतीर्ण यज्ञ प्रभु को देखकर बड़ी-बड़ी देवाङ्गनाएँ आकृष्ट हुईं, तदनन्तर देवल जी की आज्ञानुसार हिमालय में कठोर भक्तिमय तप करके प्रभु कृपा से ब्रज गोपी बनीं।

देवाङ्गना स्वरूप ब्रजवामाओं का तो चरित्र ही विचित्र है। मालव देश के नीति सम्पन्न धर्मज्ञ गोप थे दिवस्पति नन्द। एक समय तीर्थों में अटन करते हुए सहज ही मथुरा जी में १ सहस्र राज्ञियों सहित आये।

ब्रजपति महाराज नन्द जी से मिलने गोकुल पधारे और ब्रज के अतुल्य सौन्दर्य वैभव से प्रभावित होकर नन्द जी के कहने पर २ योजन भूमि में सकुटुम्ब सगोधन निवास करने लगे। देवल मुनि के आदेशानुसार समस्त देवाङ्गनाएँ इन्ही के यहाँ पुत्री बनीं एवं वहाँ कोटि-कोटि कन्दर्प दर्प मोचक दामोदर को भर्तृ रूप में पाने हेतु उन्होंने परमोत्तम माघ मास का व्रत किया। ऊषा के आगमन के पूर्व ही वे सब यमुना स्नान कर लेतीं एवं आनन्दाभिभूत होकर आनन्दकन्द यशोदानन्दन का यश गायन करतीं। एक दिन अनुराग सिन्धु का प्रेमरस उच्छलित हुआ और वे लकुटीधर गिरधर गोपाल सस्मित मुख आ ही गए और बोले – “क्या चाहती हो, माँगो!”

“आप सदैव हमारे नेत्र गोलक में रहें, बस! यही आकांक्षा है”, गोपियों ने कहा।

इस प्रकार देवाङ्गना स्वरूप गोपियों को नंदसूनु की प्राप्ति हुई।

(ग.सं.गो.ख.अध्याय ५ एवं मा.ख.अध्याय १३)

औषधियाँ

पीयूष प्रकटकर्ता प्रभु धन्वन्तरि के सौन्दर्याद्भुत पर मोहित होकर सम्पूर्ण औषधियाँ भारत वर्ष में अपना जन्म निरर्थक मानने लगीं, फिर स्त्रीरूप से सबने एक चतुर्युगी तप

किया। तप प्रभाव से प्रभु के दर्शन पाकर सभी ने उनको पति रूप में पाने की इच्छा व्यक्त की। इनकी वाञ्छा सम्पन्न करते हुए प्रभु ने कहा – "द्वापरान्त में तुम सब ब्रज में लतारानी बनोगी एवं शीघ्र मनोरथ सिद्ध करोगी।"

(ग.सं.गो.ख.अध्याय ५)

पृथु अवतार की नारियाँ

प्रभु के अंशावतार सौन्दर्यार्णव के सार सर्वस्व महाराज पृथु के रूप पर मोहित होने वाली बर्हिष्मती की बहुत सी नारियों ने अपने अभीष्ट की पूर्ति हेतु अत्रि मुनि से निर्दिष्ट होकर गो रूप धरणी का दोहन किया, जिसमें दोहन पात्र उनका स्वयं का मन था एवं दुग्ध उनका मनोरथ था। वे सब भी ब्रजदेवाङ्गनाएँ बनीं।

(ग.सं.गो.ख.अध्याय ५ एवं मा.ख.अध्याय १४)

स्वर्ग की अप्सराएँ

अनेकानेक स्वर्ग की श्रेष्ठ, सौन्दर्य बिखेरने वाली अप्सराएँ, जब नारायण भगवान् को मोहित करने हेतु गन्धमादन पर गईं तो प्रभु के उस क्षणिक दर्शन से सर्वस्व विस्मृत कर बैठीं और अपना स्वामी बनाने की तीव्र इच्छा से बेचैन हो गईं, तब प्रभु ने वर दिया कि तुम सब ब्रज गोपी बनकर ही यह सौभाग्य पा सकोगी।

(ग.सं.गो.ख.अध्याय ५)

सुतल लोक की कन्याएँ

श्री वामन भगवान के रूप पर मोहित सुतल वासिनी दैत्य नारियों को भी ब्रज में जन्म प्राप्त हुआ, जिन्हें महान तपस्वी दुर्वासा मुनि ने कृष्ण पञ्चांग दिया, जिससे यमुनार्चन कर उन्होंने श्रीकृष्ण को वर रूप में पाकर एवं वृन्दावन की अवनि पर हरीतिमा के साम्राज्य में जब चारों ओर सघन कल्पादपश्रेणी पर राशि-राशि सुमन प्रस्फुटित हो गए। वनप्रान्तर में यमुना तट संनिकट निकुञ्ज प्रांगण में कदम तरु पर पड़े रेशमी पत्रों से निर्मित झूले पर आसीन होकर ललित त्रिभंगी लाल व उज्ज्वल विलासिनी श्रीराधा ने इन ब्रजांगनाओं के साथ झूलन लीला की। बार-बार नील कल्लोलिनी कालिन्दी कूल से उफन कर लीला विहारी का पाद प्रक्षालन कर रही थीं। इस प्रकार सुतल वासिनी दैत्य नारियों ने गोपी रूप से झूलनोत्सव प्राप्त किया।

(ग.सं.गो.ख.अध्याय ५ एवं मा.ख.अध्याय १५)

नागकन्याएँ

नाग कन्याओं ने शेषावतार प्रभु पर मोहित होकर उन्हें वर रूप में पाना चाहा। शेष जी के वर स्वरूप ये ब्रज में दाऊ जी के यूथ की गोपियाँ बनीं। गर्गाचार्य जी से बलभद्र पञ्चांग प्राप्त करके उसे सिद्ध किया, जिसके प्रभाव से उन्होंने चैत्र व वैशाख वसन्त ऋतु के ये दो मास दाऊ जी के सहित रवितनया के कूल पर रसमय केलि-रास करते हुए व्यतीत किये।

(ग.सं.गो.ख.अध्याय ५ एवं मा.ख.अध्याय १५, बलभद्र ख.अध्याय ९)

श्रुति रूपा गोपियाँ

एक समय श्रुतियों ने श्वेत द्वीप में जाकर वहाँ परब्रह्म की स्तुति की। प्रभु ने प्रसन्न होकर उनसे वरदान माँगने के लिए कहा – इस पर श्रुतियों ने मन वाणी से अगम्य प्रभु के आनन्द रूप का दर्शन पाने की इच्छा की, तब प्रभु ने उन्हें अपने मायातीत गोलोक का दर्शन कराया। जहाँ पावन वृन्दावन, शुचितम यमुना, कोटि-कोटि गोपिकाओं के मध्य किशोर-किशोरी हैं। अपने दिव्यातिदिव्य लोक का दर्शन कराके प्रभु ने कहा – "हे श्रुतियो ! क्या और भी कोई वाञ्छा है? " श्रुतियों ने कहा – "भगवन् ! आपकी नित्य सेवा संलग्ना सद्भाग्या इन गोपियों की भाँति हम भी आपका नित्य संग पाना चाहती हैं। आपके कोटिशः कन्दर्प दर्प दमन कर्ता इस रूप को देखकर हमारे अंदर कामिनी भावोत्पन्न हो गया है। हमारे मनोरथ को पूर्ण करते हुए शीघ्र इसका शमन करें।" कृपासुवर्षण प्रभु ने दुर्घट मनोरथ पूर्ण करते हुए कहा – "सारस्वत कल्प व्यतीत होने पर तुम सभी श्रुतियाँ ब्रज में गोपी बनोगी।

उस समय मथुरा मण्डल के अन्तर्गत श्रीवृन्दावन में मेरे रास-रस की तुम्हें प्राप्ति होगी। जार भाव से तुम्हारी मुझमें सर्वोत्कृष्ट सुदृढ़ प्रीति होगी।" इसी वर के अनुरूप समस्त श्रुतियाँ ब्रज में गोपी बनीं।

इन्हीं श्रुति स्वरूपा गोपियों ने श्रीकृष्ण को वर रूप में प्राप्त करने के लिए वृन्दावनेश्वरी वृंदा देवी की आराधना की एवं ठाकुर जी ने गुरुवर दुर्वासा जी को पौनाहारी (पवनाहारी) एवं स्वयं को बालब्रह्मचारी सिद्ध करते हुए यमुना जी से मार्ग दिलवाया।

(ग.सं.मा.ख.अध्याय १)

अध्याय – ८

हाथिया ग्राम

हाथिया का पौराणिक नाम कदलीवन है। जिस समय उद्धव जी श्री कृष्ण का सन्देश लेकर ब्रज में आये तो गोपाङ्गनाएं श्री हरि का भलीभांति कुशल समाचार लेने के लिए उद्धव जी को लेकर कदलीवन में आयीं, जहाँ वियोगिनी श्री राधा बैठी हुई थीं।

गुप्तं हि प्रष्टु कुशलं सतांपते नीत्वोद्धवं ताः कदलीवनं गताः ॥

(ग .सं.मथु.खं.१५/१६)

श्रीजी की वियोगाग्नि से सम्पूर्ण कदलीवन झुलस गया था। वहाँ उद्धव जी ने श्रीजी की स्तुति की, साथ ही श्री हरि द्वारा प्रेषित पत्र दिया, यह कहकर कि आप शोक छोड़ दें, श्री हरि का निश्चित ब्रजागमन होगा।

ब्रह्मवैवर्तानुसार

द्वारिका में नन्द-यशोदा को श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी कि आप लोग ब्रज लौट जाओ, वहाँ मेरी प्राणेश्वरी श्रीराधा आपको भक्त्यात्मक ज्ञानोपदेश करेंगी। आप उनमें मानवी बुद्धि कदापि न रखना। कृष्णाज्ञा से नन्द-यशोदा ब्रज में यहीं इस कदली वन में आये, जहाँ श्रीजी ने उन्हें परमोत्तम अलौकिकी भक्ति का उपदेश किया, साथ ही नारायण, अनन्त, मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, कंसारे, हरे, वैकुण्ठ, वामन आदि भगवन्नामों की व्युत्पत्ति एवं महिमा का श्रवण कराया, अंत में यशोदा जी की जिज्ञासा पर उन्होंने अपने मधुरातिमधुर श्रीराधा नाम का रहस्योद्घाटन भी किया।

(ब्र.वै.पु, कृ.ज.ख.अ.११०)

ब्रज भक्ति विलासानुसार

ततो कदली वन प्रणाम मन्त्र :-

शक्राय देवदेवाय वृत्रघ्ने शर्मदायिने ।
कदलीवन संज्ञाय नमस्ते करिदायिने ॥

(ब्र.भ.वि.)

हे कदली वन ! आप देवों के देव, वृत्रासुर को मारने वाले, इन्द्र की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले एवं हस्ती (हाथी) देने वाले हैं, आपको नमस्कार है।

देवशीर्ष

गोवर्धन से ३ कि.मी.पश्चिम में सकरवा, सकरवा से ३ कि.मी. दोसेरस (देवशीर्ष) है।

आर एइ लीलास्थली अतितेजोमय ।
देखो 'देवशीर्ष' स्थान कुण्ड सुशोभय ॥
सखासह देखिआ कृष्णेर गोचारण ।
एथा महाहर्षे स्तुति कैला देवगण ॥

(भ.र)

इस 'देवशीर्ष स्थान कुण्ड' की शोभा को देखो, यहाँ सखाओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के गौचारण को देखकर देव गणों ने परमानन्द से स्तुति की थी।

मुनिशीर्ष

देवशीर्ष से ४ कि.मी. मुनिशीर्ष (मुड़सेरस) है।

देखो मुनिशीर्षस्थान-कुण्ड सुमाधुरी ।
एथा कृष्णे पाइला मुनिगण तप करि ॥

(भ.र)

इस मधुर मुनिशीर्ष स्थान कुण्ड को देखो, यहाँ मुनियों ने तप करके श्रीकृष्ण को पाया था।

अध्याय – ९

खायरा

दिर वन एक महत्वपूर्ण लीला स्थली है। 'बृहन्नारदीय पुराण' में नारायण को ही खदिर वन का अधिदेवता माना गया है।

विष्णु रहस्य में ८४ कोस ब्रजमण्डल का भगवत् विग्रह रूप से वर्णन है, वहाँ खदिर वन को भगवान् का कंधा बताया गया है –

"खादिरं भद्रिकं चैव स्कन्धौ द्वौ परिकीर्तितौ"

अथ खदिर वन प्रदक्षिणा मन्त्र :-

भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु गत्वा खद्रवनं शुभम् ।
प्रार्थनां कुरुते यस्तु शुचिर्भूत्वा समाश्रितः ॥

(आदि वाराह पुराण)

अब खदिरवन का प्रार्थना मन्त्र कहते हैं। आदि वाराह में भाद्र शुक्ल चतुर्थी खदिर वन जाकर शुद्ध भाव से प्रार्थना करें। मन्त्र यथा –

ततो खदिर वन प्रार्थना मन्त्र :-

नमः खद्रवनायैव नानारम्यविभूतये ।
देवगंधर्व्वलोकानां वरदाय नमोऽस्तुते ॥
इति मन्त्रं सम्मुचार्य्य नवभिः प्रणतिं चरेत् ।
सर्वं कामानवाप्नोति मुक्तिमाप्नोति मानवः ॥

ये सातवाँ वन पृथ्वी पर खदिर नाम से विख्यात है। जो मनुष्य यहाँ आता है वह मेरे धाम आ जाता है।

हे नाना प्रकार मनोहर विभूति स्वरूप। हे देवता, गन्धर्व, मनुष्यों को वर देने वाले खदिर वन आपको नमस्कार है।

इस मंत्र के पाठ पूर्वक ९ बार प्रणाम करने से मनुष्य समस्त कामना प्राप्त करके मुक्ति का भागी होता है। वहाँ माधव कुण्ड भी है –

अब माधवकुंड का प्रार्थना मन्त्र कहते हैं –

ततो माधवकुंडस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

तीर्थराज नमस्तुभ्यं माधवस्नपनोद्भव ।
त्रिवर्गफलदायैव नमस्ते मोक्षदायिने ॥
इति द्वादशभिर्मंत्रं मज्जनाचमनैर्नमन् ।
परमैशं पदं लब्ध्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
सपादक्रोशसंख्येन प्रदक्षिणमथाचरेत् ।
इति खद्रवनस्यापि कुर्य्यात् सांगप्रदक्षिणां ॥
इति खदिरवन प्रदक्षिणा ॥
सप्तमन्तु वनं भूमौ खदिरं लोक विश्रुतम् ।
तत्र गत्वा नरो भद्रे ममलोकं सगच्छति ॥

हे तीर्थराज माधव कुण्ड ! आपको नमस्कार है । आप माधव स्नपन से उत्पन्न त्रिवर्ग फल और मोक्ष देने वाले हैं ।

इस मंत्र के १२ बार पाठ पूर्वक मज्जन, स्नान, नमस्कार करें तो मनुष्य परम ऐश्वर्य के लाभ पूर्वक विष्णु सायुज्य का भागी होता है। सवा कोस प्रमाण से प्रदक्षिणा करें।

आदिवाराह पुराण में यहाँ के प्रमुख कुण्ड का नाम माधव कुण्ड बताया है। उसका कारण माधव के स्नपन अर्थात् नहलाने से जो कुण्ड उत्पन हुआ। स्नपन, यह क्रिया ण्यन्त की है। संस्कृत में प्रेरणार्थक धातुओं में ण्यन्त क्रिया लगती है। अर्थात् किसी ने स्नान कराया, किसने कराया इसका उत्तर यही है कि ब्रज गोपीजनों ने कृष्ण के साथ इस सरोवर में जल क्रीडा करते समय उनको स्नान कराया। इसलिए कई ग्रंथों में इसका नाम सगंम कुण्ड भी मिलता है। अर्थात् इस कुण्ड में ब्रजगोपियों और श्रीकृष्ण का सगंम हुआ था। यह श्रीकृष्ण के गोचारण का भी स्थान है क्योंकि यहाँ खदिर के वृक्ष बहुत थे, खदिर कत्थे को कहते हैं। खदिर वन को खायरा कहने की कथा इस प्रकार है कि जब श्रीकृष्ण इस विशाल कुण्ड के पास अपने बछड़ों को पानी पिला रहे थे, तो बकासुर आया, यद्यपि 'गर्गसंहिता' में यह वध लीला यमुना तट पर लिखी है किन्तु श्रीमद्भागवत के अनुसार यह लीला इसी जलाशय के पास हुई है। वत्सपाल बनने के बाद श्रीकृष्ण ने तीनों असुरों का वध किया। वत्सासुर, बकासुर और अघासुर। कोई-कोई खदिर वन को खिरक वन भी कहते हैं। उनके मत में नन्द बाबा के बड़े भाई उपनंद जी की यहाँ खिरक थी। यह परम्परा आज भी चल रही है। नन्द गाँव में गोपाष्टमी के दिन जब गौचारण करके श्री कृष्ण लौटते हैं तो उस दिन यह गाया जाता है। "खायरे कौ आवे कुर्ता टोपी लावै" यह प्रति वर्ष गोस्वामी लोग गाते हैं। इसका भाव यही है कि खायरे से चाव आती थी।

कृष्ण के गोचारण पर उपनंद जी ने प्रसन्न होकर अनेक उपहार भेजे। श्री कृष्ण गाय चराते समय खायरे होकर भी आते थे, प्रमाण में देखिए 'ब्रज प्रेमानंद सागर' में २६ वीं लहरी आठवीं चौपाई –

"धमसींगा जु खिदिर वन आवौ इहि विधि गाइनु आजु चरावौ"

खदिर वन व आसपास के नौ उपनन्दों के क्षेत्रों में भगवान् श्री राम के वरदान से कौशल प्रान्त की स्त्रियाँ यहाँ गोपी बनीं।

कौशलानां गोपिकानां वर्णनं श्रणु मैथिल ।
सर्वपापहरं पुण्यं श्रीकृष्ण चरितामृतम् ॥
नवोपनन्दगेहेषु जाता रामवराद्व्रजे ।
परिणीता गोपजनै रत्नभूषणभूषिताः ॥

(ग.सं.मा.ख.४/१,२)

ये गोपियाँ भगवान् राम के वरदान से ब्रज में आयी थीं। इनके मोहित होने का प्रसंग वर्णित है।

मार्गे च कौसला नार्यो रामं दृष्ट्वाऽतिसुन्दरम् ।
मनसा वव्रिरे तं वै पतिं कन्दर्पमोहनम् ॥
मनसाऽपि वरं रामो ददौ ताभ्यो ह्यशेषवित् ।
मनोरथं करिष्यामि ब्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥

(ग.सं.मा.ख.४/४१,४२)

इन गोपियों का प्रसंग ऊपर आदि वाराह वर्णित माधव कुण्ड के प्रसंग में बता आये हैं, जिसमें उन सबने माधव कुण्ड में स्नान किया एवं जल केलि लीला की।

खदिर वन श्रृंगार लीला की भी भूमि है, महारास की भी स्थली है। 'गर्ग संहिता' में श्री वृन्दावन खण्ड २१ अध्याय में श्रीकृष्ण सभी गोपियों को छोड़कर श्रीराधारानी को साथ लेकर संकेत होते खदिर वन आये थे –

श्री कृष्णकुंतले नीले वक्रत्वं राधिकाऽकरोत् ।
चित्रपत्रावलीः कृष्णपूर्णेन्दुमुखमण्डले ॥
एवं कृष्णो भद्रवनं खदिराणां वनं महत् ।
बिल्वानाञ्च वनं पश्यन्कोकिलाख्यं वनं गतः ॥

(ग.सं.वृ.खं.२१/१९)

इस स्थल को खायरे वाले मधुवन कहते हैं और बकथरा को ब्रजवासी लोग वरकोटा। गाँव के पूर्व में यह कुण्ड ही बक वध स्थल है। गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भक्ति रत्नाकर' में बकथरा को ही बक वध स्थल माना गया है –

बकथरा ग्राम ए जावट सन्निधाने ।
बकासुरे कृष्ण बधिलेन एई खाने ॥

(भ.र.)

वत्सासुर वध लीला यमुना तट पर हुई है। (भागवत १०/११/४१) "**कदाचिद यमुनातीरे ....**"। इसके बाद बकासुर वध लीला जलाशय के पास अर्थात् किसी सरोवर के पास हुई है। भागवत १०/११/४६ **'गत्वा जलाशयाभ्याशम्'**। इसी प्रकार अघासुर वध लीला भी वृन्दावन के बीच हुई है, जो वृन्दावन पंचयोजनात्मक है –

पंचयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकं ।
कालिन्दीयम् सुषुम्णाख्यापरमामृतवाहिनी ॥

(बृ.गो.तं)

इस प्रमाण से जो उपरोक्त असुरों का वध और ब्रह्ममोहलीला, जिन्हें श्रीमद्भागवत में वृन्दावन में गाया गया है, वह सब क्षेत्र पंचयोजन के ही अंतर्गत आता है। जैसे परखम में ब्रह्मा जी ने कृष्ण की परीक्षा का विचार किया, वत्सवन में बछड़ा चुराए, बालहारा से बालक चुराए, सेई में कृष्ण रुपी बालकों को देखकर क्या ये वही हैं, विचार किया और फिर चौमुंहा में कृष्ण की स्तुति की। यह सब वृन्दावन है। पसोली (सर्पस्थली) में अघासुर ने सबको मुँह का ग्रास बनाया। यह गाँव परखम से ५ किलोमीटर उत्तर में है। कृष्ण के द्वारा इसका वध होने पर बाजना में देवताओं ने वाद्य यन्त्र बजाये। (१०/१२/३४) और जैंत में जयकारे लगाये, जिसे ब्रह्माजी ने ब्रह्मलोक में सुना। (१०/१२/३५) और यह सब वृन्दावन में हुआ (१०/१२/३६)। यह बकासुर जब श्रीकृष्ण को निगल गया तो ब्रजवासी चिल्लाने लगे –

"खायो रे-खायो रे।" श्रीकृष्ण ने ग्वालबालों को भयभीत देखकर उसके मुँह में अग्निरूप धारण कर लिया, जब उसका तालू जलने लगा तो उसने उगल दिया (१०/११/५०)। इसके बाद कृष्ण ने उसे खदेड़ा इसलिए इसे खदेड़ वन भी कहते हैं और बकथरा में कृष्ण ने उसकी चोंच को पकड़कर चीर दिया। बक माने बकासुर थरा या तरा, बक को तरा दिया या थरा सदा के लिये स्थिर कर दिया (१०/११/५१), इसीलिए बकथरा का दूसरा नाम चिल्ली भी है।

बकथरा ग्राम ए जावट संन्निधाने ।
बकासुर कृष्ण बधिलेन एई खानें ।

'चैतन्य चरितामृत' में महाप्रभु का जो प्रेमोन्माद अवस्था में भ्रमण लिखा है, वह इन सभी स्थलों का है। यद्यपि वहाँ मुख्य-मुख्य ही नाम दिये गये हैं। उन मुख्य वनों में खदिर वन भी है।

सब दिन प्रेमावेशे नृत्यगीत कैला ।
तहां हैते महाप्रभु खदिरवन आइला ।

(चै.च.म.ली.१८/५७)

श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन के कारण ही प्रसिद्ध गोस्वामियों ने यहाँ भजन किया। ये सभी अवतरित महापुरुष थे। दो गोस्वामी पादों की खायरा भजन स्थली है।

१ – श्री लोकनाथ गोस्वामी, २ – श्री भूगर्भ गोस्वामी, अतः उनका संक्षिप्त परिचय जानना आवश्यक है।

श्री लोकनाथ गोस्वामी

आप ब्रजलीला में लीला मंजरी थे। पूर्व बंग में १५४० सम्वत् में आपका जन्म हुआ। पिता पद्मनाभ चक्रवर्ती, माता सीता देवी। पिता श्री अद्वैताचार्य द्वारा स्थापित अद्वैत परिषद के प्रारम्भिक छात्र थे। उस समय विद्यालय में प्रतिदिन अध्ययन के प्रारम्भ और अन्त में सङ्कीर्तन आवश्यक था। इनकी माँ भी विदुषी थी। पिता से शिक्षा प्राप्त कर इन्होने श्री अद्वैताचार्य जी से श्रीमद्भागवत एवं अन्य कृष्ण लीला ग्रन्थ पढ़े। अद्वैताचार्य जी ने इन्हें मन्त्र शिष्य बनाकर गौराङ्ग को सौंप दिया। ये निमाई के प्रिय सुहृद बन गये। माता पिता के परलोकगमन के बाद ये विरक्त सन्यासी बन गये। आचार्य चरण के पास गये, उन्होंने पुनः गौराङ्ग के समीप पहुँचा दिया। उस समय नवद्वीप में निमाई के कीर्तन की गंगा बह रही थी। निमाई २४ वर्ष के थे, ये उनसे २ वर्ष बड़े थे। गौराङ्ग ने इनको वृन्दावन जाने की अनुमति दी और बताया कि कुछ दिन बाद श्री रूप, सनातन, गोपाल भट्ट भी वहीं पहुँच रहे हैं। निमाई ने कहा – "मैं भी संन्यास लेने वाला हूँ। इसी माघ में घर छोड़ दूँगा।" लोकनाथ जी, पंडित गदाधर गोस्वामी के शिष्य भूगर्भ जी को साथ लेकर वृन्दावन आये। यहाँ रहकर वे दक्षिण में श्रीरंगम गये क्योंकि कावेरी नदी स्थित श्री रंगम में वैंकट भट्ट के घर चैतन्य चार मास तक रहे किन्तु लोकनाथ जी जब पहुँचे तो इनकी भेंट नहीं हुई, क्योंकि महाप्रभु वहाँ से जा चुके थे। वृन्दावन गए तो वहाँ भी दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, इन्होने प्रयाग जाकर दर्शन की इच्छा की और दर्शन न मिलने पर प्राण त्याग की भी बात सोची। रात्रि में महाप्रभु जी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम वृन्दावन की सीमा से बाहर न जाओ। मैं प्रयाग से सीधा नीलाचल जाऊँगा और तुम्हें अपना समाचार देता रहूँगा। इन्होने आजीवन महाप्रभु की आज्ञा से वृन्दावन वास किया। वृन्दावन सीमा नहीं छोड़ी। ध्यान रहे वृन्दावन पंचयोजनात्मक है – श्री गिरिराज जी, श्री नंदगाँव, श्री बरसाना ये सब वृन्दावन है। ब्रज के ३३३ तीर्थों का उद्धार करने के बाद छाता तहसील के उमराव गाँव में किशोरी कुण्ड पर एक तमाल तरु के नीचे निवास करने लग गये। एक दिन इनके विरह क्रन्दन को सुनकर प्रभु ने कहा –

"मुझे किशोरी कुण्ड से निकालो। चिरकाल से मैं भूखा हूँ।" श्री विग्रह निकाल कर श्री राधा विनोद नाम से भोग लगाकर स्थापना करी। विरक्त थे गले की झोली में ठाकुर को रखते या फिर किसी वृक्ष की कोटर में रख देते। रसोई भोग के लिये एक शिष्य था, उसके बीमार पड़ने पर स्वयं भोग बनाते। एक दिन दर्शनानन्द में भोग बनाना भूल गये तो, प्रभु स्वयं इनका स्वरूप बनाकर भोग बनाने लग गये। एक शिष्य ने दो स्थान पर गुरु दर्शन करके, राधाविनोद जी के दर्शन में डूबे गुरु जी को सचेत किया। वे जब रसोई में आये तो लोकनाथ रूपी प्रभु अन्तर्धान हो चुके थे। सबने देखा राधा विनोद जी मुस्करा रहे थे। चैतन्य चरितामृत लिखने के पूर्व कविराज कृष्णदास जब इनकी आज्ञा लेने आये तो इन्होने अपना यश, अपना नाम लिखने को मना किया। सम्वत् १६४५ श्रावण कृष्ण अष्टमी को इसी खायरे में अपनी जीवन लीला को विराम दिया। इनकी पुष्प समाधि वृन्दावन में श्रीश्री राधा गोकुलानन्द मन्दिर के प्रांगण में स्थित है।

श्री भूगर्भ गोस्वामी

ये ब्रज लीला में प्रेम मंजरी हैं। मुंगेर में जन्म लेकर अध्ययन काल में ही गृह त्याग कर नीलाचल पहुँचे। वहाँ गदाधर पंडित का आश्रय लेकर श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। वहाँ श्री चैतन्य के नाम-सङ्कीर्तन में डूब गये और जब लोकनाथ गोस्वामी महाप्रभु की आज्ञा से वृन्दावन चले तो गदाधर पंडित ने अपने शिष्य भूगर्भ जी को इनके साथ कर दिया क्योंकि ये हिन्दी भाषी थे और मार्ग के ज्ञाता थे। इनका सम्मान जीव गोस्वामी जी आदि श्री रूप-सनातन के समान करते थे। इन्होंने ही कविराज कृष्णदास को चैतन्य लीला गाने की आज्ञा दी; जिससे चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ की रचना हुई। आदि खण्ड परिच्छेद ६८ के ७२ वें पयार में भूगर्भ जी की आज्ञा को लिखा गया है। एक बार श्री भूगर्भ जी गिरिराज जी की परिक्रमा लगा रहे थे। पाँव में चोट लगी, श्री ठाकुर जी एक भक्त का वेष बनाकर अपने स्कंध पर बिठाकर इनके निवास स्थान पर छोड़कर अंतर्धान हो गये। जब भूगर्भ जी को ज्ञात हुआ कि ये स्वयं श्री भगवान् थे, तो बड़ा कष्ट हुआ। प्रभु ने कहा – "तुम मेरी नित्य सेवा करते हो, यदि मैंने एक दिन कंधे पर बैठाया तो दुःख की कोई बात नहीं है।" आपने भी खायरे में भजन किया। इस तरह से सम्पूर्ण ब्रज महज्जनों की तपो भूमि रही है।
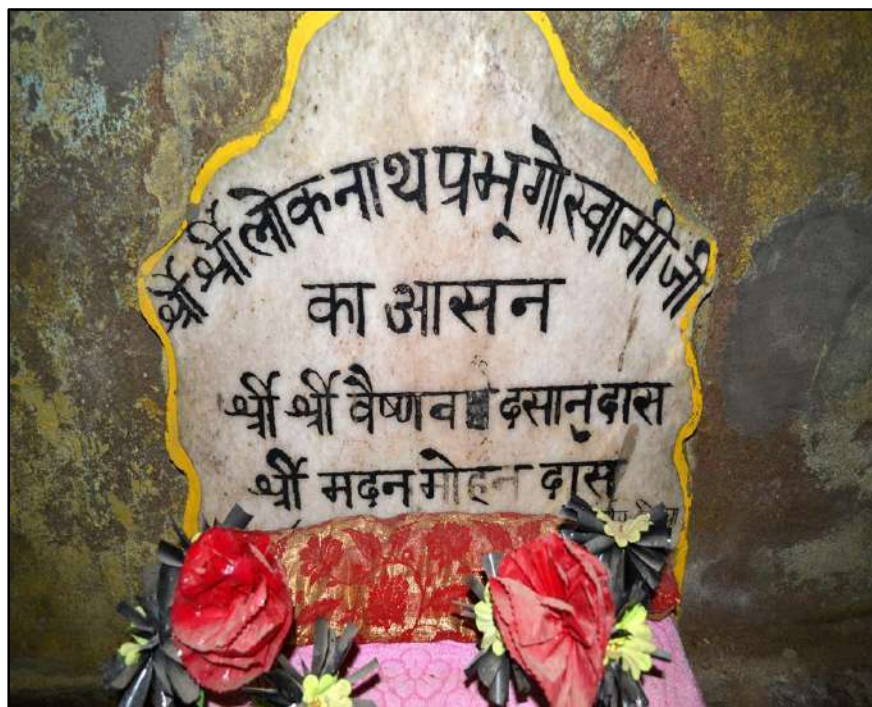
खायरा – श्री लोकनाथ गोस्वामी भजन कुटी एवं श्रीमाधव कुण्ड

अध्याय – १०

लोधौली

लोधौली का वास्तविक नाम लोहांग वन है। यहाँ लोधांग ऋषि ने तप किया था। निकटस्थ ही गिरीश कुण्ड है जहाँ कभी महादेव जी आये थे, इसलिए इसका नाम गिरीश कुण्ड पड़ा। ये सब ५,००० वर्ष पुरानी लीला स्थलियाँ है, जिसका लोगों को कोई ज्ञान नहीं है।

ततो लोहांग वन प्रार्थना मन्त्र:-

लोहांगमुनिसंभूत: तापसे ब्रह्मरूपिणे ।
यमालोकननाशाय नमो लोहवनाय ते ॥

लोहांग मुनि से उत्पन्न आप तापस ब्रह्म रूप हैं, यमलोक दर्शन का नाश करने वाले हैं, ऐसे आप लोहवन को नमस्कार है।

ततो गिरीश कुण्ड प्रार्थना मन्त्र:-

नमो गिरीशकुण्डाय तीर्थराज वरप्रद ।
प्रबंधमोक्षिणे तुभ्यं सर्वदा शिवदायिने ॥

हे तीर्थों के राजा, वर देने वाले, सर्वदा मोक्षार्थी को कल्याण देने वाले आपको नमस्कार है।

श्री पिपासा (पिसाया) वन

यहाँ का सघन वनस्थल बड़ा ही चमत्कारी है। आज भी इस वन खण्ड का तरु, शाखा यदि कोई अपने घर में ले जाता है तो उसके घर में आग लग जाती है या अन्य कई प्रकार के अनिष्ट होने लगते हैं।

रसिकों की वाणी में पिपासा वन

एक बार श्रीकृष्ण यहाँ तृषार्त हुए और यह तृषा रस वर्धक, प्रेमवर्धक थी, जिसका वर्णन श्री चतुर बिहारी जी ने किया है –

प्याय दै री पानी यह मिस गये वाके गेह ।
समझ सोच भर लाई जल अचवावन को ॥
ओक ढीली करी केरि वाही को मुख चितयो तब ग्वालिनी मुसकानी ॥
वह जल भर वैसे ही डारयो फेरि जल भर लाई हौं ।
अचवाय न जानो बोली मधुरी सी बानी ॥
'चतुर बिहारी' तुम प्यासे हो तो पानी पियो ।
नातर पाऊं धारिये रावरे प्यास तिहारी मैं जानी ॥

तृषार्त श्याम सुन्दर अपनी तृषा शान्त करने के लिए एक ब्रजवासिनी के घर गए, वह चतुरा वारि पूरित झारी लाई। श्याम सुन्दर अपने करकोरक आगे करके जल की याचना करने लगे। जैसे ही जल की धारा कर पर पड़ी, श्याम सुन्दर ने अपनी अंजली ढीली कर दी, वह जल डालती रही और ये जल बहाते रहे, निर्निमेष नयनों से उस गोरी का रूप पान करते रहे क्योंकि ये तृषा जल की नहीं रूप सुधा की थी।

सारी स्वर्णिम कलशिया का जल बह गया, वह दूसरी कलशिया लाई, तब भी यही स्थिति। कई कलशियों का वारि समाप्त हो गया किन्तु श्याम सुन्दर तो कर-सम्पुट को मुख से लगाये युगल नयनों को उसके रूप पर टिकाये अभी भी खड़े हुए थे, तब वह चतुरा बोली – "श्याम सुन्दर, अब मैं तुम्हारी तृषा को समझी, तुम जल के प्यासे नहीं प्रत्युत रूप के प्यासे हो।"

जल क्यों न पिए लालन जो हो पिया तुम प्यासे ।
भर लाई यामुनोदक शीतल पीवत क्यों अलसाते ।
जल के मिस तुम डोलत घर-घर नवल नित रसमाते ।
'चतुर बिहारी' पिया प्यासे हो तो पानी पियो हो जीवन के माते ॥

यहाँ प्रभु ने मन्दाकिनी कुण्ड में आकाश गंगा को वास दिया।

ततो मन्दाकिनी कुंड प्रार्थना मन्त्र :-

मन्दाकिनी वियत्पात संभवाय नमोऽस्तु ते ।
कृष्णक्रीडाविहारतृड्शान्तये मुक्तिदायिने ॥

(सौपर्ण संहितायाम्)

आकाश से गिरने से उत्पन्न, हे मंदाकिनी तीर्थराज ! कृष्ण के विहार की क्रीड़ा-प्यास बुझाने वाले मुक्ति दाता, आपको नमस्कार है।

ततो रास मण्डल प्रार्थना मन्त्र :-

विहारसुखरूपाय मंडलाय नमोऽस्तु ते ।
लोकानन्दप्रमोदाय गोपिकावल्लभाय च ॥

हे विहार के सुख रूप रासमंडल, गोपी वल्लभ रूप, लोक को आनन्द देने वाले ! आपको नमस्कार है।

सघन वनस्थल के मध्य रासमण्डल है, जहाँ आज भी राधा माधव के नूपुरों का मधुर क्वणन रसज्ञ जनों को सुनाई पड़ता है। बज्रनाभ जी के समय में यह बड़ा ही सघन वनप्रदेश था। अभी भी कुछ समय पूर्व तक सघन लता-वल्लरियों से आवृत था किन्तु अब शनैःशनैः यह सघन वन भी ह्रासोन्मुख है। पाण्डवों के वंश नाश हेतु उत्तरा के गर्भ स्थित परीक्षित पर ब्रह्मास्त्र छोड़ने के जघन्य कर्म के कारण श्रीकृष्ण से शापित द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने गलित कुष्ठ से मुक्त्यर्थ इस पिपासा वन का ही अवलम्बन किया। यह पतित पावनी ब्रज वसुधा त्रैलोकपति श्रीकृष्ण से भी अतिशय कृपा दायिनी है, जिसके आश्रय से वे कष्टोन्मुक्त हो गए। यहाँ आज भी अश्वत्थामा का मन्दिर दर्शनीय है।

भदावल

रनवारी से २ मील उत्तर पश्चिम में भदावल गाँव है। यहाँ नन्द महाराज का भण्डार गृह भी था। यहाँ के सरोवर में स्नान करने से स्नानार्थी को विद्याधर लोक के समस्त सुखों का भोग मिलता है।

लोधौली – गिरीश कुण्ड एवं पिसाया – अश्वत्थामा की झाड़ी, अश्वत्थामा मन्दिर

पिसाया – रासमण्डल एवं मन्दाकिनी कुण्ड

अध्याय – ११

नन्दगाँव

यत् सौभगं भगवता धरणीभृतापि न प्राप्यते सुरगिरिः स हि को वराकः ।
नंदः स्वयं वसति यत्र सपुत्रदारो नन्दीश्वरः सः मदमंदमुदं दधातु ॥

(श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद कृत नन्दीश्वराष्टक)

श्री नन्दीश्वर पर्वत आनन्द दें, जहाँ श्री नन्द व यशोदा कृष्ण के साथ रहतें हैं। जिस नन्दीश्वर के सौभाग्य को भगवान् कृष्ण के द्वारा धारित श्री गोवर्धन जी भी नहीं पा सकते हैं क्योंकि गिरिराज जी को तो ७ दिन तक ही धारण किया और यहाँ नन्दगाँव में तो दिन-रात लीलाएँ की हैं। इसलिये गिरिराज जी से नन्दगाँव का महत्व अधिक हो गया है –

यत्राहं पर्वतो भूयबलकृष्णसुते नमः ।
नन्दधातृसमेतस्त्वं ममोपरि विराजते ॥

(प.पु)

नन्दगाँव में श्री शिवजी ने ही पर्वत रूप धारण किया है और उन्होंने यशोदा माँ से अपने ऊपर नन्दबाबा और बाल कृष्ण के साथ निवास करने के लिये प्रार्थना किया था।

नन्दगाँव के स्थलों के ज्ञान से पहले बरसाना-नन्दगाँव का सम्बन्ध ज्ञान आवश्यक है क्योंकि जो अभेद राधा व कृष्ण में है, वही अभेद नन्दगाँव व बरसाने में है –

बसो मेरे नैनन में दोउ चंद ।
गौर वरण वृषभानु नन्दनी श्याम वरण नन्दनन्द ॥

(श्री भट्ट जी)

बरसाने में गौर ज्योति है, नन्दगाँव में नील ज्योति। वहाँ ब्रह्मा जी पर्वत बने हैं, यहाँ शिवजी। रसिकों ने दोनों का सम्बन्ध ही पृथ्वी में सर्वश्रेष्ठ रसोदय माना है। राधा जन्म पर चाव में यही पद गाया जाता है –

श्री गरीबदास जी कृत –

मंदर बजै श्री वृषभानु जू कै बाजै माई अन-अन भाँति ।
ऐसो द्योस माई आजु कौ ऐसो जो नित होइ॥
धरती पर माई द्वै बड़े बरसानौ नन्दगाँव ।
बरसाने श्री वृषभान जू नन्दीश्वर नन्दराव ॥

जुगनि-जुगनि माई द्वै बड़े एक जसुदा अरु नन्द।
तिनकैं श्री मोहन प्रगटियौ ब्रज कौ पूरन चन्द॥
जुगनि-जुगनि माई द्वै बड़े इक कीरति वृषभान।
तिनकैं श्री राधा जू अवतरी वर भैया परवांन॥
देव कुसुम बरसैं सबै दुन्दुभि बजैं अकास।
ब्रज जुवतीं फूलीं सबैं बरसाने के वास॥
गन गन्धर्व गावैं सबै निर्त्तक नाचै नांच।
ताल पखावज बाज हीं अपनै अपनै सांच॥
जूथ-जूथ जुवतीं मिलीं तिनमें बहुत सवास।
हँसि-हँसि रोपे साथिये मन में अधिक हुलास॥
ब्रज जुवती आई सबै बैठी आँगन माँझ।
जगमगात भूषण सबै मानों फूली है साँझ॥
भानमती तब बोलि यौ मेवा रहसि मंगाइ।
भरि-भरि ओलिनु दै सबै ऊखिल कोऊ न जाइ॥
एक जू कुम-कुम छिरकहीं एक जु बीरी लेति।
एक अरगजा लेपही एक तंवोरहिं देति॥
बृंद-बृंद जुवतीं चलीं यौं कहि देति असीस।
मोहन जू अरु लाड़िली जीबौ (माई) कोटि बरीस॥
कीरति जु हंसि यौं कहयो गरीब दासि पहिचानि।
निज दासी इनकी करो व्यास बंश की जानि॥

(श्रृं.र.सा.पद.५५)

सवैया –

जानै ठग्यौ सगरे ब्रज कौ तापै राधे ने डारी है ऐसी ठगौरी।
पीत पिछोरी धरी न धरी न करी सुधि नेही किते को गयो री।
शेष गणेश सुरेश अजेश जु नारद शारद व्यास शुकौ री।
पौरी न झांक सकै जिहि की सुतौ झांकत श्री वृषभान की पौरी॥
ऊंची ही ठौरि सु ऊंची ही पौरी औ ऊचौ अनूपम ऊजरौ गेह री।
कारो उजारो भयो जग कौ सब वेद मुदै सब राखें सनेह री।
मोद को मेह री 'किशोरी अली' नित ही सरसै बरसै जु अछेह री॥

बधाई –

आज रंगीली बधाई ब्रज छाय रही ।
फूल रही साखा द्रुम बेली सरस सुगंधन छाय रही ।
कुंवरि किशोरी ने जनम लियौ है सखी सब मंगल गाय रही ।
राधा बाल कृष्ण हित तन मन फूले द्वार भीर अपार रही ॥

एक बार पूज्य बाबा प्रियाशरण जी महाराज से किसी ने पूछा कि कृष्ण लीला का अब तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। न तो कृष्ण हैं, न उनकी वंशी है, न गोपी-ग्वाल। इस पर उन्होंने उत्तर दिया। कृष्ण लीला का प्रत्यक्ष प्रमाण ब्रजभूमि है –

राधाकेलिकलासु साक्षिणी कदा वृन्दावने पावने
वत्स्यामि स्फुटमुज्जवलाद्भुतरसे प्रेमैकमत्ताकृतिः ॥

(रा.सु.नि.२६६)

अहो तेऽमी कुञ्जास्तदनुपमरासस्थलमिदं
गिरिद्रोणी सैव स्फूरति रतिरंगे प्रणयिनी
न वीक्षे श्रीराधां हरहर कुतोपीति शतधा
विदीर्येन्त प्राणेश्वरि मम कदा हंत हृदयम्।
इहैवाभूत्कुंजे नवरतिकलामोहनतनो
रहो अत्रैवानृत्यदद्यितसहिता सा रसनिधिः
इति स्मारंस्मारं तव चरितपीयूषलहरीं
कदा स्यां श्रीराधे चकित इह वृन्दावनभुवि॥

(रा.सु.नि.२०९,२१०)

अथवा –

अहो विधना तोसौं अंचरा पसार मांगौं ।
जनम जनम दीजौ मोहिं याहि ब्रज बसिबौ ॥

(छीत स्वामी)

याही ब्रज से तात्पर्य इसी भौम ब्रज से है।

अथवा –

"श्री हरिवंश अनत सचुनाहीं बिन या रज ही लिए"

(श्री हरिवंश जी)

अथवा –

"ब्रज वीथिन दीजै सोहनी"

(श्री हरिदासजी)

यहाँ का एक-एक कण, एक-एक वन, एक-एक उपवन, एक-एक लता, एक-एक वृक्ष सभी युगल लीला से सम्बद्ध हैं। इस चिरंतन इतिहास की व्यापकता यहाँ के अणु-अणु में लिखी हुई है –

"वृक्षे वृक्षे वेणुधारी"

(श्री वल्लभाचार्य)

सम्पूर्ण ब्रज का इतिहास कोई कैसे लिख सकता है? राधा कृष्ण की विवाह परम्परा का निर्वाह आज तक नन्दगाँव-बरसाने में चल रहा है।

बरसाने का पांड़े होली का बुलावा लेकर जाता है। उत्तर में नन्दगाँव का पांड़े फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को बरसाने सूचना लेकर आता है। नवमी को समधिन यशोदा समध्याने में आती हैं। साथ में श्रीकृष्ण भी अपनी माँ का गालियों से सम्मान सुनते हैं और मुस्कुराते हैं। यह गाली व परम्परा प्रतिवर्ष चल रही है, क्या यह प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है? मनुष्य की मृत्यु के साथ ही उसके सम्बन्ध भी शून्य में लीन हो जाते हैं, कोई नहीं जानता किसका किससे क्या सम्बन्ध था परन्तु यहाँ दोनों गाँवों में सम्बन्ध शाश्वत बना हुआ है। क्या यह प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है? राधा के बाद, आज तक कोई भी बरसाने की बेटी नन्दगाँव में ब्याही नहीं जा रही है, फिर भी नन्दगाँव के यही गाया करते हैं –

बरसानो तो असल ससुराल हमारो न्यारो नातो।
कीरत के कन्या भई यशोदा के है गयो लाल॥
गयो बुलउआ नन्द के नन्दीश्वर आयो धाय।
एक लख तो घोड़ा दीन्हें द्वै लख दीन्ही ब्याही गाय॥

आज भी लाखों-लाखों लोग रंगीली होरी की परम्परा को प्रत्यक्ष देखते हैं। क्या यह प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है? ऐसी परम्परा क्या ब्रज में भी और कहीं है? यद्यपि होरियाँ ब्रज में सर्वत्र मनायी जाती हैं किन्तु ऐसी सम्बन्धात्मिकता की परम्परा विश्व में कहीं नहीं है, इसलिए बरसाने की होरी अनेक लक्ष श्रद्धालु दर्शकों की आस्वाद भूमि बनती है।

आज भी प्रति वर्ष भाद्रशुक्ल त्रयोदशी में, नन्दगाँव के ग्वाल-बाल, साँकरीखोर में आकर मटकी फोड़ना, यह लीला परम्परा का निर्वाह करते हैं। उस दिन नन्दगाँव यहाँ उमड़ पड़ता है और उनका ससुराल की भाँति यहाँ चित्राजी के गाँव (चिकसोली, राधा रस मन्दिर) में स्वागत होता है। क्या यह प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है? उससे दो दिन पूर्व एकादशी को कृष्ण व उनके सखाओं की, गोपियाँ साँकरीखोर में चोटी बाँध देती हैं। उस दिन नन्दगाँव का कोई भी नहीं आता है क्योंकि ससुराल में मान हानि नन्दगाँव वालों को अच्छी नहीं लगती है। सम्बन्ध का इससे अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण क्या होगा?

ऐसा कौन सा कृष्ण उपासक होगा या सम्प्रदाय होगा, जो इन दोनों के सम्बंध को छोड़कर रस पान कर ले?

वृन्दारण्यनिकुञ्जकेलिललितं काश्मीरगौरच्छवि ।
श्रीगोविन्द इव व्रजेन्द्रगृहिणीप्रेमैकपात्रं महः ॥

(रा.सु.नि. ६८)

जो वधूरूपा गौर ज्योति, श्री यशोदा को गोविन्द की तरह प्यारी हैं, वे विजय को प्राप्त हो रही हैं।

प्रेमास्पदां व्रजमहीपतितन्महिष्योर्गोविन्दवन् ।
मनसि तां निदधामि राधाम् ॥

(रा.सु.नि.२९)

अर्थात् – जो दुलहिनि श्री राधा, नन्द और यशोदा को कृष्ण की तरह प्रेमास्पद हैं, उन्हें धारण करता हूँ।

श्री मद्भागवत में भी श्री राधिका रानी को नन्दलाल की वधू के ही रूप में अनेक स्थानों पर बताया गया है।

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ।
वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥

(भा १०/३०/२६)

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥

(भा १०/३०/३२)

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥

(भा १०/३०/३९)

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥

(भा १०/३०/४०)

श्री राधा ने भी कृष्ण को आर्यपुत्र कहकर संबोधन किया है, जैसा कि वधूजनों की परम्परा होती है –

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते ।
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ॥
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते ।
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥

(भा-१०/४७/२१

श्री जीव गोस्वामी जी ने गोपाल चम्पू में राधा कृष्ण विवाह गाया है।

उन्होंने पद्म पुराण का आधार लिया है। वहाँ श्री कृष्ण, दंतवक्त्र के वध के बाद, ब्रज में पुनः आते हैं और पुनः रसमयी विवाह आदि लीलाएँ चल पड़ती हैं (श्री गोपाल चम्पू-उत्तर खंड) पूर्ण ३५ श्लोक ७४- ७७ "हरिविलास लीला तंत्र" में भी विवाह वर्णन है।

श्री सूरदास जी –

ललित लाल कौ सेहरौ जगमगि रह्यौ है री माई।
जननी न्यौछावर करैं बाजे बजत बधाई।
सुर बनिता जकि-थकि रहीं रस मूरत है पाई॥
धनि जसुमति सुत साँवरौ दूलह कुँवर कन्हाई।
राज कुँवरी राधिका नवल दुलहनी पाई॥
यह जस गावैं सारदा जिनके भाग बड़ाई।
यह आनन्द जिनकैं हियैं 'सूरदास' बलि जाई॥

नन्ददास जी –

अरि चल दूलह देखन जाहि।
तैसी यह बनी बरात चहुँ दिसि जगमग रंग चुचाहि॥
गोप सभा सरवर में फूल्यौ कमल प्रमल झपझाहि।
'नन्ददास' गोपिनि के दृग अलि लपटनि को अकुलाहि॥

कृष्णदास जी –

भाँवरि भवन भानु कै सजनी होत है आज देखौ कीजै।
वेद विधिवत विप्र चहुँ दिसि पढ़त हैं सुन श्रवननि सुख दीजै।
झुकी झरोखे भामिनि गावैं दामिनि दुति वहाँ वारनै कीजै।
भांवरि लै बैठे रत्न सिंहासन ललिता आरती कर मन रीझै॥
'कृष्णदास' गिरिधरन रंगीलै रगमग रंग राधा कै रीझै॥

दुलहिन श्रीजी के आने पर नन्दभवन निधियों से भर गया और यशोदा नेग न्यौछावर आदि कर रही हैं।

परमानन्द दास जी –

मांगै सवासनि बार रुकाई।
झगरत अरत करत कौतूहल चिरजीवौ मेरो वीर कन्हाई।
चिर जीवौ वृषभानुनंदिनी रूपशीलगुणसागर भाई॥
'परमानन्द' आनन्द नन्द कै भाग बड़े घर नौ निधि पाई॥

लाड़ सागर और ब्रजप्रेमानन्द सागर यह दोनों सागर ही बरसाना-नन्दगाँव सम्बन्ध पर हैं।

यद्यपि श्री राधा माधव की विवाह लीला 'ब्रह्मवैवर्त्त' आदि पुराणों में भी है। जिसमें ब्रह्मा जी ने दोनों का विवाह कराया है। उनका यहाँ उल्लेख नहीं किया जा रहा है। हाँ, आदिपुराण में अवश्य मथुरा गमन के पूर्व ही अक्षय तृतीया पर वृषभानु जी ने जो कन्या दान किया, वह बरसाने-नन्दगाँव की ही लीला है।

विवाह –

ततो विवाहमकरोद वृषाभानुर्गुणोदयः।
वैशाखे सितपक्षे तु तृतीयासाक्ष्याह्वया ॥
रोहिणीस्वर्क्षे संयुक्ता जयालग्नशुभावहा ।
पारिबर्हादिकं दत्वा वस्त्रमन्नसमृद्धिमत् ॥

(आ पु १२/२०,२१,२२)

विवाह लीला, निकुंज भवन में भी नित्य सखीजन मनातीं हैं –

वृंदारण्यनवप्रसूननिचयानानीय कुंजान्तरे ।
गूढैः शैशवखेलनैर्बेतकदा कार्यो विवाहोत्सवः॥

(रा.सु.नि.५६)

वेदी पुलिन विराजहीं मण्डप वेलि तमाल ।
नच्यौं किधौं यह रच्यौ है व्याह बिहारी लाल ॥
हवै पुरोहित ऋचा उचारत
वेलि तमाल मंडप षच्यौ ।

(श्री युगल शतक श्री भट्ट जी पद ९९)

.

कन्चन मनि मरकत मनि प्रगटी बरसाने नन्दगाँव रे ।
विधिना रचित न होय जै श्री भट्ट राधा मोहन नाँव रे ॥

(श्री युगल शतक श्री भट्ट जी पद.१००)

श्री महावाणी –

श्री राधा कृष्ण विवाह सुख सरबस मंगल-मूल ।
नित नित रचत सहेलियाँ भरी प्रेम परफूल ॥
दंपति संपति सहज सुख दुलहिन दूलह लाल ।
तदपि ब्याह बिधि बिरचहीं बिबिध बिनोदनि बाल ॥

(महावाणी उत्साह सुख-१४१)

भाँवरि में मन भरमावौरी सु विधोकत वेद पढ़ावौरी ।
व्याह की सकल रस रीती नीकी करत भई भाँवती भाँवती की ॥

(महावाणी उत्साह सुख-१५५)

तथा ध्रुवदास जी कृत बयालिस लीला सभामंडल से –

उपज्यो रंग बिनोद इक सखियनि के उर ऐन ।
लाल लड़ैती ब्याह को सुख देखे भरि नैन ॥
निगम छंद तव उच्चरत चतुर सखी द्वै चार ।
पाछे पिय आगे प्रिया भांवरि विधि सौं दीन ॥

तथा श्री सूरसागर (विवाह लीला) –

प्रथम ब्याहबिधि ह्वैरह्यो कंकनचार विचारि ।
की कर जोरिकरौ बिनती कै छुवौ श्रीराधाजी के पांइ ॥
आपुनको तुम बड़े कहावत कांपन लागे हैं दोउ हाथ ॥
छोरहु वेगि कि आनहु अपनी यशुमति माइ बोलाइ ॥
दुलहिनि छोरि दुलहको कंकन की बोलि बबा वृषभान ।

(सू.सा.५८)

"ब्रज की सब रीति भई बरसाने व्याह"

(सू.सा.६०)

"दुलह देखोंगी जाइ उतरे संकेत वट केहि मिस देखन पाऊं"

(सू.सा.६१)

स्वामी हरिदास जी –

"डोल झूलत दुलहिनी दूलहु"

(केलिमाल ४८)

विहारिन देव जी –

दूलह दुलहिनि दिन दुलराऊँ ।
कुमकुम मुख माँडों मँडवा-तर निकुंज बसाऊँ ॥

(रहस्य के पद.१३६)-

हरिवंश जी –

"खेलत रास दुलहिनी दूलहु"

(हित चतुरासी ६२)

नन्दगाँव का इतिहास

वैश्य कन्यका तें जु भये परजन्य धर्म आधारा ।
नारद कौ उपदेश पाइ लक्ष्मीपति भजे भुवारा ॥
नन्दीश्वर पुर वास करत तप संतति हेत विचारा ।

भई अकास विमल वानी सुनि तन मन रही न सँभारा ॥
पाँच पुत्र ह्वै हैं तुम्हरे तिनमैं अति नन्द प्यारौ ।
ताकैं लाल प्रगट है ऐसो तीन भुवन उजियारौ ॥
यह सुनि हरषि भयो मन में जु महावन वास विचारयौ ।
केशी के डर डरपि गाँव सब जमुना पार उतारयौ ॥

(श्रृं.र.सा.रूपलाल जी)

अर्थात् – देवमीढ़ की दो रानियाँ थीं। क्षत्राणी से शूरसेन और वैश्यानी (वैश्य कन्या) से परजन्य जी। शूरसेन से वसुदेव जी और परजन्य से नन्द जी हुए। परजन्य जी ने नारद जी के उपदेश से नंदीश्वर में तप किया, जिससे आकाशवाणी भई कि तुम्हे पाँच पुत्र वरीयसी रानी से होंगे, पीछे केशी के डर से वे महावन में जाकर वास करने लगे, जहाँ पाँच पुत्र हुए, जिसमें मध्यम पुत्र नन्द जी थे। नन्द जी, कंस के भय से महावन छोड़कर, अपने पिता परजन्य से सेवित नन्दीश्वर में पुनः आये। परजन्य जी ने नन्दगाँव में तप किया। तड़ाग तीर्थ को क्षुणहार सरोवर कहते हैं।

यत्रावापि सुरारिहा गिरिधरः पौत्रौ गुनैकाकरः ।
क्षुण्णहारतया प्रसिद्धमवनौ तन्मे तड़ागं गतिः॥

(ब्र.वि.स्तवावली-६०)

जहाँ देव शत्रु असुरों को मारने वाला गिरिधर, गुणों का एकमात्र समूह, पौत्र रूप में पाया, दुर्भाग्य नाशक प्रसिद्ध अवनी पर तड़ाग मेरी गति हों।

चाचा वृन्दावन दास जी ने परजन्य जी की तपस्थली गोवर्द्धन बतायी है। वह भी ठीक है, क्योंकि तप या अनुष्ठान कई जगह किया जा सकता है –

"नृप परजन्य महा तप कीनौं गिरि गोवर्द्धन आई ॥"

(चाचा वृंदावन दास)

यहाँ पर कृष्ण के साँवले होने का कारण भी उन्होंने बताया है। यशोदा की माता पटुला व पिता सुमुख गोप थे। नाना साँवले थे, नानी गोरी थी –

"नाना सुमुख स्याम तन हरि कौ ताहि उन हरे जाइ ।"

इसी से बरसाने वाले, कृष्ण विवाह में, यशोदा के साथ नानी पटुला को भी लक्ष्य बना लेते हैं, क्योंकि नाना साँवले थे, फिर यशोदा गोरी क्यों हुई या नन्द-यशोदा गोरे थे, कृष्ण साँवरे क्यों भये? यह गारी आज तक बरसाने, श्रीजी के मन्दिर में, प्रति वर्ष नन्दगाँव वालों को सुनाई जाती हैं –

गोरे नन्द यशोदा मैया तुम कारे कौन के जइया
तेरी मांय यशोदा रानी काहू कारे सों रति मानी ।

आगे नाना-नानी को भी लेते हैं –

"है पटला तेरी नानी वाकी बात न हमसों छानी"

आदि-आदि।

नन्द ग्राम नन्दबाबा के नाम पर है। नन्दग्राम में नन्दीश्वर पर्वत के रूप में शिव जी विराज रहे हैं –

नन्दीश्वराय देवायाभीरोत्पत्तिहिताय च ।
यशोदा सुखदायैव महादेवाय ते नमः ॥

(स्क.पु.)

अर्थात् – नन्दीश्वर रूप महादेव को नमस्कार है, जो आभीर गणों का हित करते हैं व यशोदा को सुख देने वाले हैं। पहले मन्दिर में नन्दीश्वर जी पर ही श्रीकृष्ण स्नान का जल गिरता था, पीछे व्यवस्था में परिवर्तन हो गया।

यत्र नंदोपनंदास्ते प्रति नन्दाधिनन्दनाः ।
चक्रुर्वासं सुखस्थानयतो नन्दाभिधानकम् ॥

(आदि पुराण)

अर्थात् – जहाँ नन्द आदि ने सुख से वास किया है, वह नन्द नाम का ग्राम 'नन्द गाँव' है।

नन्दभवन प्रणाम मंत्र :-

नन्दधातर्नमस्तुभ्यं यशोदयै नमो नमः ।
नमःकृष्णाय बालाय बलभद्राय ते नमः ॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थात् – श्री नन्द, यशोदा, कृष्ण, बलभद्र को नमस्कार है।

नन्द भवन का वर्णन पद्म पुराण उतर खण्ड में आया है, जिसे जीव गोस्वामी जी ने भागवत की टीका में दिया है –

तस्मिंश्च भवने श्रेष्ठं रम्ये दीपैर्विराजिते ।
श्लक्ष्णे विचित्रपर्यङ्के नानापुष्पविवासिते ॥
तस्मिन् शेते हरिः कृष्णः शेषे नारायणो यथा ।

(भा.टी.जीव गो १०/१५/४५)

अर्थात् – उस श्रेष्ठ, रमणीक, मणि शोभित नन्द भवन में विचित्र प्रशस्त पुष्प शैया पर कृष्ण बलराम शयन करते हैं।

यद्यपि मंदिरों का निर्माण क्रमशः होता रहता है किन्तु स्थल वही है।

लगभग ५५० वर्ष पूर्व भी नन्द भवन नन्दीश्वर पर्वत पर था किन्तु तब वह भवन गुफा के भीतर था जैसा कि चैतन्य चरितामृत मध्य लीला परिच्छेद १८/५१-५७ पयारों में वर्णित है, जिनका दर्शन श्री महाप्रभु जी ने जाकर किया और वहीं उन्होंने श्री विग्रहों का स्पर्श करके प्रेमावेश में नृत्य भी किया। यह बात लगभग सं १५१५ की है।

ताहाँ लीलास्थली देखि गेला नन्दीश्वर ।
नन्दीश्वर देखि प्रेम हइला विह्वल ॥
पावनादि सब कुण्डे स्नान करिया ।
लोकेर पुछिल पर्वत उपरे जाइया ॥
किछु देवमूर्ति हय पर्वत उपरे? ।
लोक कहे, मूर्ति हय गोफार भितरे ॥
दुइदिके माता-पिता पुष्ट कलेवर ।
मध्ये एक शिशु हय त्रिभंग सुन्दर ॥
शुनि महाप्रभु मने, आनन्द पाइया ।
तिन मूर्ति देखिल सेइ गोफा उघाड़िया ॥
ब्रजेन्द्र-ब्रजेश्वरीर कैल चरण-वन्दन ।
प्रेमावेशे कृष्णेर कैल सर्वांग-स्पर्शन ॥
सब दिन प्रेमावेशे नृत्यगीत कैला ।
ताहाँ हैते महाप्रभु खादिरबन आइला ॥

आनन्द घन बाबा

(समय – १२८५)

उस समय नन्दीश्वर पर्वत पर तीन ही विग्रह थे, जिनकी सेवा व पूजा आनन्दघन जी के द्वारा संवत १२८५ से प्रारम्भ हो गई। जो आज तक सुचारू रूप से चल रही है।

वर्तमान मन्दिर में कृष्ण-बलराम, नन्द-यशोदा, श्रीजी एवं दो सखा इनके दर्शन हैं।

नन्दगाँव तो रत्नरूप है। नन्दगाँव की शोभा तभी भई, जब श्रीकृष्ण महावन छोड़कर यहाँ आये –

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥

(भा.१०/०५/१८)

यह भूमि तीन तरह से विशेष लीला स्थली बनी –

एक निवास, दूसरा स्वरूप, और तीसरा गुण – यहाँ श्रीकृष्ण का नित्य निवास है। यह उनका शरीर भी है। जो गुण भगवान् में हैं, वो ही सब गुण धाम में हैं। जो कोई निष्ठा से धाम की सेवा करता है, उसकी सेवा श्रीकृष्ण की सेवा से भी बड़ी होती है क्योंकि श्रीकृष्ण तो दिखाई नहीं देते, धाम दिखाई देता है।

भगवान् स्वयं भी कहते हैं, द्वारिका जाकर, कि "**मोहि ब्रज बिसरत नाहीं**"। वैसे तो यहाँ उनका नित्य वास है परन्तु लीला दृष्टि से प्रकट-लीला में श्रीकृष्ण भी ब्रज की याद में रोते हैं।

नन्दगाँव – बाबा नन्दजी का निवास स्थान है। भागवत् में नन्दबाबा के निवास स्थान के बारे में इतना ही लिखा है कि वे महावन में थे, महावन में पूतना, शकटासुर, श्रीधर, बकासुर, आदि बहुत से आसुरी उपद्रवों के कारण, वहाँ से चलकर नन्दगाँव आये। इसीलिए जो केवल श्रीमदभागवत् पढ़ते हैं, उनको नन्दबाबा के निवास स्थान के बारे में पूरा पता नहीं चलता। उससे केवल इतना ही पता चलता है कि नन्दबाबा महावन से कृष्ण-बलदेव को लेकर नन्दगाँव में वास करने लगे।

पूर्ण स्थिति को जानने के लिए अन्य पुराणों में देखना पड़ता है।

यह नन्दगाँव का इतिहास है कि इनके प्राचीन पुरुष यहीं नन्दगाँव में रहते थे लेकिन केशी के डर से महावन में चले गए थे और फिर बाद में पुनः नन्द गाँव आ गए।

'राधा रानी ब्रजयात्रा' का मार्ग उद्धव क्यार से नन्द बैठक की ओर मुड़ जाता है। नन्द बैठक – यहाँ पर नन्दबाबा नित्य आकर गौचारण से लौटते हुए कृष्ण की प्रतीक्षा किया करते थे। यहाँ चित्र में नन्दबाबा की गोद में कृष्ण बलराम बैठे हैं। यहाँ पर नन्द कुण्ड भी है।

गौचारण लीला

चार वर्ष का अल्पवयस्क ब्रजराज कुमार मैया से गौचारण का हठ कर बैठा। मैया के वात्सल्य ने मना कर दिया – "नहीं कान्हा, गैया ने कहीं तुम्हारे दूध भरे पेट में शृङ्ग (सींग) मार दिया तो?" उस दिन तो यशोदा नन्दन चुप हो गया किन्तु आज, कुमार अवस्था (१ से ५ वर्ष) पूरी हुई तो बस मैया का आँचल पकड़ मचल गया ....

नन्हा कान्हा – "अब मैं इन छोटे छोटे वत्सों को लेकर वन में नहीं जाऊंगा।"

(मैया, कान्हा के घुँघराले, कज्जल केश सँवारते हुए)
मैया – "क्यों?"

नन्हा कान्हा – "अब मैं बड़ा हो गया हूँ, कपिला, कामदा, पद्मगन्धा, श्यामा, अरुणा, शुभ्रवर्णा, नन्दिनी को चराऊँगा।"

मैया – "तो फिर बछड़े कौन चरायेगा?"

नन्हा कान्हा – "दाऊ भैया"

मैया हँस गयी।

उसी बीच कन्हाई तो दौड़कर पहुँच गया खिरक में, पीछे-पीछे मैया, दाऊ भैया, बाबा नन्द, ताऊ उपनन्द सबके सब पहुँचे गोष्ठ में।

बाल गोपाल ने प्रतीक्षित गायों के बंधन खूँटे से खोल कर अपने हाथ में ले लिये, गायें नीलवपु कृष्ण को चाटने लगीं।

यह देख, नन्दजी तो क्या आज उपनन्द ताऊ ने भी कृष्ण को गौचारण की स्वीकृति दे दी।

फिर क्या था?

कार्तिक शुक्ल अष्टमी गुरूवार को महर्षि शाण्डिल्य के द्वारा ब्रज के सब लघु-लघु गोप बालकों का गौचारण संस्कार सम्पन्न हो गया।

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥

(भा. १०/१५/१)

सब ग्वाल, गोपाल सहित वृन्दावन को अपने पादपद्मों से चिन्हित करते हुए आगे बढ़े।

प्रथम गौचारन कौ दिन आज ।
प्रातकाल उठि जसुदा मैया कीनौं है सब साज ।
बिबिध भाँति बाजे बाजत हैं रहयो घोष सब गाज ।
गावत गीत मनोहर बानी तजि गुरुजन की लाज ।
लरिका सकल संग संकर्षन वेनु बजाय रसाल ।
आगें धेनु चले 'गोविंद' प्रभु नाम भयौ गोपाल ॥

गाय चरावन कौ दिन आयौ ।
फूली फिरत जसोदा अंग-अंग लालन उबटि न्हवायौ ।
भूषन बसन बिबिध पहराये रोरी तिलक बनायौ ।
विप्र बुलाय वेद ध्वनि कीनी मोतिन चौक पुरायौ ।
देत असीस सकल गोपीजन आनन्द मंगल गायौ ।
लटकत चलत लाड़िलौ बन कौं 'कुम्भनदास' जस गायौ ॥

लक्षाधिक तो गोधन है, जिनकी सेवा छोटे-छोटे कोमल करों से कन्हाई, सखा समुदाय के सहित करते हैं। छोटी-छोटी मधुर ध्वनि करने वाली घंटिकाएँ उनके गले में बाँध दी हैं। ककुद पर रंग-बिरंगी पुष्प माला, मस्तक पर लाल कुमकुम, इस तरह से समस्त गौ-वंश का भाग्योदय हो गया।

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद् वनम्।
इषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः॥

(भा.१०/१९/२)

यहाँ अजा से तात्पर्य अप्रसूता गाय (अनब्याई गाय अर्थात् बछिया) एवं महिषी शब्द से प्रसूता गाय अर्थात् ब्याई गाय यह अर्थ आचार्यों के द्वारा ग्रहीत है।

भगवत्प्रसादाचार्य विरचिता भक्तमनोरञ्जनी –

"अजा गावः अप्रसूता धेनवः महिष्यो गावः प्रसूता धेनवश्च वनात् वनं..."

श्री वंशीधर जी की भावार्थदीपिकाप्रकाश में –

"अजा स्यादप्रसूता गौः सकृत्सूता महिष्यपि । अन्या गाव इह प्रोक्ता इति शब्दार्थवेदिनः"

यह भी उनके साथ प्रतिदिवस अरण्य में जाते हैं और राम-श्याम की विविध विनोद युक्त लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

अब तो दिन भर चारों ओर गौ नामावली का पारायण होता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं –

"प्यारी गौ रज गंगा न्हात हौं"
और जपत गौअन के नाम

(दान लीला)

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद् विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥

(भा.१०/१५/२)

वृन्दावन की भूमि, बिना जोते-बोये, स्वयं गायों के लिए उपयुक्त हो गई। चारों ओर कोमल हरित घास, फल-पुष्प से लदे हुए उच्च तरु, आगे-आगे जगत् जननी गौ माता, पीछे कृष्ण यश गाता हुआ सज्जित सखा समूह और मध्य में वंशिका बजाते हुए श्याम और गलबैंया डाले बलराम –

आगे गाय पाछे गाय इत गाय उत गाय
गोविन्द को गायनि में बसवोई भावै ।
गायन के संग धावै गायनि में सचु पावै
गायनि की खुर रेणु अंग लपटावै ।

गायन सों ब्रज छायो बैकुण्ठ बिसरायो
गायन के हेत गिरि कर लै उठावै।
'छीत स्वामी' गिरिधारी विट्ठलेशवपुधारी
ग्वारिया कौ भेषु धरै गायन में आवै॥

गोपाष्टमी की परम्परा, आज भी नन्द गाँव में, वहाँ के गोस्वामी समाज द्वारा बड़े ही भाव पूर्ण ढंग से निभाई जा रही है। कार्तिक शुक्ल अष्टमी के दिन, दो बालकों को कृष्ण-बलराम का स्वरूप धारण कराकर, नन्दगाँव के प्रत्येक घर में सखाओं की टोली जाती है, घर-घर में कृष्ण-बलराम और उनकी सखा मण्डली का स्वागत किया जाता है और नाना प्रकार के व्यंजनों का भोग लगाया जाता है। बाल विनोद से भरी कन्हैया की यह लीला आज भी गोपाष्टमी के दिन नन्दगाँव के घर-घर में साकार होती दिखाई देती है। आखिर हो भी क्यों न! नटखट नन्दलाल प्रत्येक नन्दगाँववासी की आँखों का तारा जो है। कन्हैया को लेकर मनाया जाने वाला हर उत्सव, नन्द भवन ही नहीं बल्कि समूचे नन्दगाँव में मनाया जाता है। श्रीकृष्ण वनों में गौचारण करके जब टेर कदम्ब से गायों को एकत्र करके आसेश्वर की ओर जलहरी होकर लौटते हैं, तब ग्वाल बाल, दिन भर के थके श्याम को हँसाने के लिए गीत गाया करते हैं –

खायरे को आवै कुर्ता टोपी लावैं।
लालाय देखन आवै कनुआ देखन आवै।
आवै री मेरो लटकन लाल लड्डुवा खूब खवावै।
गाय चराय घर आवै कान खुजावत आवै।
आवै री मेरो लटकन लाल बरसाने वारी लावै।
राधा प्यारी लावै।
आवै री मेरो लटकन लाल।
माधो सुन माधो।
माधो सुन 'फूहर' के बैन ऊँट चढ़ी मटकावै सैन।
कानी दुलहन काजर दे बूढो बलम बलैया ले॥
साग लाई पात लाई और लाई लड्डुवा।
सास बहु जब जेंवन लागि नाकै लै गयौ कौआ॥
चार लाई बासी कूसी चार लाई सद।
बड़े जेठ कें ते न्यौतो आयौ जैऊँगी तौ अब॥
पीसत सोवै पोवत रोवै भड़भूजा मन मान्यौ।
लै डल्ला पीसन कूँ बैठी मीढेई बिना चना चबानौ॥
अंगिया ढीली खयौ उराहनौ ढींगर बढ़ौ मुटानौ।
जीत लई पारोसिन लड़कै जीतेई बिना अबानौ॥
अंगिया ढीली खयौ उराहनौ खुलो पेट मस्तानो।

मैं पौऊँ तू पीस नपूते मैं मलूक तू कानौ ॥
धोवती पहन के लंहगा बाँधयौ सायौ धर दियौ छाती पै ।
हाथ पै लै के चप्पल चल दई गढ़वावे कूं खाती पै ॥
नन्द गाँव के साँवरे छिटक चलन दे गाय ।
कमई करहला कोन्हई गोधन पल्लीपार ॥
गाँव गोंइरे बाछरू लावौ लाल चराइ ।
बन मैं बढ़िकैं जाहु जिनि जै हैं गाइ चुखाइ ॥

(ब्र.प्रे.सा.४/५६)

गौचारण के बाद से तो कन्हैया की मानो बड़ी व्यस्त दिनचर्या हो गई है। बस दिन-रात गौ समुदाय को सुख देने की चेष्टा में संलग्न रहता है।

कविराज कृष्णदास कृत गोविन्दलीलामृतानुसार –

एक दिन मैया यशोदा के वात्सल्य ने कहा –

"लाल ! हमारे पास गौ-सेवा में चतुर अनेकों दास हैं, बहुत दिन तुमने गौचारण किया, अब यह हठ छोड़ दो, मान भी जाओ। देखो, वन गमन करते समय तुम न छत्र धारण करते हो, न पन्हैया, और कुश-कंटक-कंकड़ युक्त दुर्गम वनों में घूमते हो, इससे हमारा हृदय व्यथित हो जाता है।" वात्सल्यपूर्णा मैया को समझाते हुए श्रीकृष्ण ने बड़ी शिक्षाप्रद बातें कहीं –

गोपालानं स्वधर्म्मो नस्तास्तु निश्छत्र-पादुकाः।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्म्मः सुनिर्म्मलः॥
धर्म्मादायुर्यशोवृद्धिर्धर्म्मो रक्षति रक्षितः ।
स कथं त्यज्यते मातर्भीषुधर्म्मः सुनिर्म्मलः ॥

(गो.लीला.सर्ग.५/२८.२९)

"मैया ! गोप जाति का धर्म है – गोपालन अर्थात् गो सेवा। यदि यह जगत जननी छत्र-पादुका धारण नहीं करतीं, तो भला मैं कैसे धारण कर सकता हूँ? यदि तू इन सब लक्ष-लक्ष गायों के लिए छत्र-पादत्राण का सम्यक् प्रबन्ध कर दे, तो मैं भी धारण कर लूँगा। इस समय रिक्त पद चलना ही मेरे लिए परम धर्म है। धर्म पालन से आयु, यश की वृद्धि होती है। जो मनुष्य धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। अतः भयोन्मुक्त होने हेतु, धर्म पालन ही एकमात्र प्रशस्त उपाय है, फिर हम धर्म को क्यों छोड़ें?" फिर तो मैया बाबा दोनों ने ही गौसेवा व गौचारण की सावधानियों के विषय में कन्हैया को उपदेश दिया।

गाँव गोइँरे विरमे जहाँ। छोटे बड़े मिले सब तहां ॥
ब्रजरानी तब ग्वाल बुलाये। ठोडी गहि गहि सब समझाये ॥
ठाडे जहाँ जु नौ हूँ नन्द। इह उत्साह भरे आनन्द ॥
स्यांने ग्वाल दिये बहु साथ। तिन्है गहायौ सुत कौ हाथ ॥

(ब्र.प्रे.सा.२२/२०,२६)

गोपियों ने भी गोपीगीत में श्रीकृष्ण की गौ भक्ति का वर्णन किया –

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥

(भा.१०/३१/११)

श्री ललिता कुण्ड

ततो ललिता कुंड प्रणाम मंत्र :

ललिते स्नपने रम्ये स्वर्गद्वारविधायिने ।
नमः विमलतोयाय तीर्थराज नमोस्तु ते ॥

हे मनोहर ! हे ललिता कर्तृक स्थापित स्थल ! हे स्वर्गगति प्रदायक ! हे निर्मल जल से युक्त तीर्थराज ! आपको प्रणाम है।

ललिता कुंड की कथा ध्रुवदास जी ने बयालीस लीला में विस्तार से लिखी है। प्रेम सरोवर और संकेत वन में राधा रानी आँख मिचौनी खेलने आती थीं। ध्रुव दास जी के अनुसार, प्रथम मिलन प्रेम सरोवर में हुआ है। एक दिन श्रीकृष्ण ने सुना कि यहाँ वृषभानु की राजकुमारी खेलने आती हैं, अपूर्व सुन्दरी हैं, तो कृष्ण देखने चले गये और उधर श्री राधा ने भी सुना था कि कोई नन्दगाँव में नन्द लाल हैं, बड़े सुन्दर हैं। दोनों ने एक-दूसरे को पहले कभी नहीं देखा था। यह प्रेम की विचित्रता है –

न आदि न अंत विहार करें दोउ लाल प्रिया में भई न चिन्हारी ।
नयी नयी भाँति नयी नयी कांति नयी अबला नव नेह बिहारी ॥
रहे मुख चाह दिए चित आह परे रस प्रीत जो ग्रथि महारी ।
रहे इक पास करें मृदु हास सुनो ध्रुव प्रेम अकथ कथारी ॥

और जब देखा एक-दूसरे को तो, देखते ही रह गए। ठाकुरजी-श्रीजी का हर समय नया रूप है, उसकी हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। नित्य नवीन छवि है, नवीन रूप है। दोनों एक-दूसरे को देखने के बाद भी पहचान नहीं पाते हैं (विस्तार से यह लीला अध्याय ३ प्रेमसरोवर में देखें)।

श्री दोमिल वन

नाम ही इस स्थान की लीला को सूचित कर रहा है । दोमिल – जहाँ दो मिले, दो कौन ? राधा-माधव। यह वन प्रान्त युगल सरकार का मिलन स्थल है। दोमिल के अतिरिक्त 'दोमन वन' नाम भी सुनने को मिलता है किन्तु बात एक ही है, दो मिलें अथवा दो

मन मिलें। पूर्णमासी गुफा के निकटस्थ इस वन में श्री हनुमान जी का मंदिर व 'रुनकी-झुनकी' इन दो सखियों की कुँज भी है, ये दोनों सखियाँ ही यहाँ राधा-माधव का मिलन कराती थीं, अतः इन दोनों सखियों का कुण्ड भी यहाँ है। अक्रूर तीर्थ से एक कोस दक्षिण दिशा की ओर चलने के बाद वस्त्र कुण्ड होते हुए ही 'दोमन वन' का दर्शन होता है।

पूर्णमासी जी

नंदगाँव के बाहर पुरोहितानी पूर्णमासी जी ने स्वयं ही यह स्थान चुना है, गाँव में बच्चों का हल्ला इनके दैनिक भजन पूजन में बाधक है अतः उनके लिए ये सबसे सुन्दर दूर्वादल, फल-अपूपादि से आवृत्त एकान्त स्थान रहने के लिए अति उत्तम है। महर्षि शांडिल्य की भी आप मानी हुई भगिनी हैं। आप सांदीपनी जी की अग्रजा हैं, काशी से गोकुल आयीं – क्योंकि आपके साथ श्रीकृष्ण का चहेता सखा मनसुखा जो है, नाम तो वैसे इसका मधुमंगल है किन्तु अपने हास्य कौशल से कृष्ण के मन को सब प्रकार से सुख पहुँचाने के कारण मनसुख लाल ही सब पुकारते हैं।

मनसुख इनका ओरस पुत्र नहीं है। ये तो आपके पिता ने आपका शीघ्र ही किसी योग्य विप्र कुमार से वाग्दान कर दिया था, विधानवश वे ब्राह्मण कुमार शीघ्र ही दिवंगत हो गये, अतः उनकी प्रथम पत्नि का ये नन्हा शिशु है। कृष्ण का प्रिय सखा है – मधुमंगल। जब से पुरोहितानी जी ब्रज में आयीं है अब तो ब्रज का कोई लघु से लघु कार्य भी बिना उनकी आज्ञा व आशीष के प्रारम्भ ही नहीं होता है। राम-श्याम भी गौचारण को तब जाते हैं जब पहले एक बार पुरोहितानी जी के चरणों में मस्तक नवा आते हैं, और फिर माता के पास २ चीजें तो हमेशा रहती हैं १. वात्सल्य २.आशीष कृष्ण और दाऊ को देखकर ऐसा वात्सल्य उमड़ता है कि पुरोहितानी जी वृद्ध हैं पर आशीष देना कभी नहीं भूलती है और देने लगें तो कहो तो आगे की २१ पीढ़ियों को भी आशीर्वाद दे डालें। आगे श्रीकृष्ण का श्रीराधा से विवाह का सुयोग भी आपने ही कराया। ब्रजवासियों के लिए तो आप सर्वेसर्वा हैं। सारा ब्रज कौन वृद्ध कौन युवक कौन बालक जब जहाँ आपको देख ले, तो प्रणाम करके आशीष लिए बिना आगे नहीं बढ़ता। लीला बिहारी श्रीकृष्ण की बाल लीला देखने, उसमें सहयोग देने, उसमें अपना पात्र निभाने आप काशी से यहाँ आयीं और नन्दगांव में आपने अखण्ड वास किया।

उद्धव क्यार

शुकदेव प्रभु कहते हैं –

उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदञ्छुचः ।
कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥

(भा.१०/४७/५४)

उद्धव जी महाराज कई मास तक ब्रज में रहे, अब तो ४ महीने हो चले, वसंत के प्रारम्भ में आये थे, ग्रीष्म समाप्त हो गया, पर मन नहीं करता यहाँ से जाने को क्योंकि मथुरा में कदाचित् श्रीकृष्ण दृष्टि पथ से अर्द्ध क्षण के लिए इधर-उधर हो जायँ, पर यहाँ तो .. सब वधूटियों के साथ नित्य क्रीड़ा कर रहे हैं। ब्रजगोपियाँ ज्ञान सम्पन्न उद्धवजी को अपने प्रेष्ठ की लीला-स्थलियों का दर्शन कराती हैं, साथ ही वहाँ की लीला भी सुनाती हैं। पहले देखिये सूरदास जी के शब्दों में –

इहां हरि जू बहु क्रीड़ा करी । सो तो चितते जात न टरी ॥
इहाँ पय पीवत बकी संहारी । शकट तृणावर्त इहां हरि मारी ॥
वत्सासुर को इहां निपात्यो । बका अघा इहाँ हरि जी घात्यो ॥
हलधर मारयो धेनुक को इहाँ । देखो ऊधो हत्यो प्रलम्ब जहाँ ॥
इहाँ ते ब्रह्म हमको गयो हरि । और किये हरि लगी न पलक घरि ॥
ते सब राखे संपति नरहरि । तब इहाँ ब्रह्मा आय अस्तुति करि ॥
इहाँ हरि काली उर्ग निकास्यो । लगेउ जरावन अनल सों नास्यो ॥
वस्त्र हमारे हरि जु इहां हरि । कहाँ लगी कहिए जे कौतुक करि ॥
हरि हलधर इहां भोजन किये । बिप्र तियन को अति सुख दिये ॥
इहँ गोवर्धन कर हरि धारयो । मेघ वारि ते हमे निवारयो ॥
शरद निशा में रास रच्यो इहां । सो सुख हमपै बरण्यो जात कहाँ ॥
वृषभ असुर को इहां संहारयो । भ्रुम अरु केशी इहां पछारयो ॥
इहां हरि खेलत आँख मुचाई । कहां लगि बरनैं हरि लीला गाई ॥
सुनि-सुनि ऊधो प्रेम मगन भयो । लोटत धर पर ज्ञान गरब गयो ॥
निरखत ब्रज भूमि अति सुख पावै । 'सूर' प्रभु को पुनि पुनि गावै ॥

भागवतकार भी कहते हैं –

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् ।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥

(भा.१०/४७/५६)

गोपियों के साथ प्रेम बावरे बनकर कभी तो यमुना किनारे पहुँचते हैं, वहाँ की माटी का अपने अंग-अंग में लेपन करते हैं, कभी वन-वनान्तर में घूमते-फिरते हैं, तो कभी गिरिराज की उच्च शिखर पर चढ़ जाते हैं। कभी श्रीकृष्ण से स्पृष्ट तरु के कोमल किसलय, पल्लवों, फलों की शोभा को देखने में ही खुद को भूल जाते हैं। इस प्रकार कृष्ण लीला स्थलियों को देखकर, ब्रज गोपिकाओं के प्रेम को देखकर, श्री उद्धव का ज्ञान तो मानो एक पोट में सिमटकर, गोपियों की उद्दाम गति से प्रवाहित प्रेम नदी में लज्जित हो मुँह छिपाए बह गया। ब्रज लीला कभी बन्द नहीं हुई। चूंकि हरिवंश पुराणानुसार वसुदेवनन्दन ब्रज से गये, न कि नन्दनन्दन, अतः ब्रज में नित्य लीला होती थी, जिसका दर्शन गोपियों ने उद्धव जी को कराया।

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ।
संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥

(भा.१०/४७/४९)

एक प्रेम बावरी ने उद्धव का हाथ पकड़ा और बोली – "यही ..यही है वो नदी जिसमें .. जिसमें श्रीकृष्ण विहार करते थे।" दूसरी, दूसरी ओर ले जाती है, कहती है "यही वो पर्वत है, जिस पर चढ़कर वे बाँसुरी में मधुर तान छेड़ते थे और कभी-कभी तो मध्यरात्रि को ही न जाने क्या मन में आता, राग अलापने लगते, मानो हमें नाम ले-लेकर पुकार रहे हैं", एक भुजा पकड़कर, सलज्ज हो किञ्चित एकान्त वनप्रान्त में ले गयी, बोली – "और यह वह वन है उद्धव जी, जहाँ वे .. वे हमारे साथ रासलीला करते थे और यह जो सामने कृष्ण स्पृष्टा गायें खड़ी हैं, यह भी वे ही हैं जिन्हें कृष्ण के साथ प्रतिदिन सम्पूर्ण दिन बिताने का सौभाग्य मिला। उद्धव ! यह न समझ लेना कि यह लीलाएँ केवल हुई हैं, न न न –

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ।
श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥

(भा.१०/४७/५०)

वे तो हमारे सामने नित्य प्रकट हैं। हम उनसे यदि विलग हो जायें, तो जीवित ही न रह सकें।" इस नित्यलीला को सूरदास जी ने भी गाया कि ब्रज में सदैव कृष्ण हैं। ब्रजलीला सर्वदा चलती रही, कभी भी बन्द न हुई और उस नित्य लीला का दर्शन कर, फिर स्वयं उद्धव जी ने भी इसे स्वीकार किया –

मैं ब्रजवासिन की बलिहारी ।
जिनके संग सदा हैं क्रीडत श्री गोवर्धनधारी ॥
किनहू के घर माखन चोरत किनहूं के संग दानी ।
किनहूं के संग धेनु चरावत हरि की अकथ कहानी ॥
किनहूं के संग यमुना के तट बंसी टेर सुनावत ।
सूरदास बलि बलि चरनन की इह सुख मोहिं नित भावत ॥

उद्धव जी ने गोपीपदरज की कामना तभी तो की –

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

(भा.१०/४७/६१)

"यह रज कणिका कैसे मिले मुझ उद्धव को? यह सोच, थोड़ा मन को झटक देती है। मेरा परम सौभाग्य होगा, यदि यहाँ की पावन वसुंधरा में मुझे तृण, लता, गुल्म, वृक्ष, कंकड़, पत्थर कुछ भी बनने का अवसर मिल जाय और जब ये दूध-दधि विक्रय करने जायँ और मैं मार्ग के मध्य निश्चेष्ट हो पड़ जाऊँ, तो यह अपने कोमल चरणतल से मुझे एक ओर कर दें, बस आ ... हा ... हा ... ! मेरा एक जीवन तो क्या, जन्म-जन्म धन्य हो जायें।

इन्होंने दुस्त्यज श्रृंखलाओं को छोड़, उस कृष्ण चरणरज को प्राप्त किया है, जिसे ऋचायें भी अद्यावधि ढूँढ़ ही रही हैं किन्तु पा नहीं सकी।"

ब्रजधरा में नित्य कृष्ण सान्निध्य प्राप्त होने के कारण प्रतिदिन महामहोत्सव होते हैं। प्रतिदिन गोपियाँ अपने घर-द्वार स्वच्छ सुसज्जित करती हैं, स्थान-स्थान पर कदली स्तम्भ खड़े करती हैं, सुन्दर-सुन्दर नूतन आकृति के फल-फूल से बंदनवार बनाकर लटकाती हैं, घर की ध्वजा को सजाती हैं। क्यों?

"अरे ! नन्हा कृष्ण अभी गौचारण के लिए गया है, आता ही होगा।"

दूसरी – "नहीं नहीं वो तो मैंने प्रभावती के घर दूध-दही चुराने में संलग्न देखा।"

तीसरी – "तब तो मैं भी ताजा माखन निकाल कर सामने ही रख दूँ, यदि वो यहाँ आया और उसे....उसे कुछ नहीं मिला, तो मैं तो इस गौरस का स्पर्श भी नहीं करूँगी, वही वस्तु सफल है जो उनके लिए उपयुक्त है और उसने स्वीकार कर ली है।"

उद्धव इस नित्य लीला में स्थित गोपियों की प्रेम पराकाष्ठा को देखकर चकित-विस्मित-थकित रह जाते हैं। इनको सिखाऊँ कि इनसे सीखूं – दोनों में अपने को असमर्थ अनुभूत करते हैं।

ब्रह्मवैवर्तानुसार

४ महीने पश्चात्, पावस के प्रथम मेघ-खण्ड का दर्शन कर कृष्ण अर्धाङ्गिनि श्रीराधा ने वापस जाने की याद दिलाई –

"उद्धव ! जाओ हमारे प्राणनाथ, तुम्हारे मित्र श्रीकृष्ण राह तक रहे होंगे, उन्हें और कष्ट मत दो।"

कदाचित् श्री राधा रानी याद न दिलाएं, तो उद्धव जीवनपर्यन्त मथुरा को याद ही न करें। सम्पूर्ण ब्रज दर्शन करते हुए उद्धव जी की यत्र-तत्र गोपियों से विशिष्ट वार्तायें हुई हैं, वे स्थल प्रसिद्ध हुए। यथा – वृन्दावन में 'ज्ञान गूदड़ी', जहाँ उनका ज्ञान क्षीण हो, कन्था

(गुदड़ीवत) हो गया और उन्हीं स्थलों में प्रसिद्ध है – नन्दगाँव की यह "उद्धव क्यारी"। कदम्बों के ५६ चौक में बना यह उद्धव क्यार बहुत प्रसिद्ध स्थल था। कालान्तर में कदम्बों का ह्रास हुआ, ५६ चौक में से कुछ ही अवशिष्ट हैं, वर्तमान में तो अधिकांशतया बबूल के तीक्ष्ण काँटे ही सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं।

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.अ.९५,९६)

यशोदा कुण्ड

ततो यशोदा कुंड प्रणाम मंत्र :

धनधान्यसुखं देहि तीर्थराज नमोस्तु ते ।
वैकुण्ठपदलाभाय प्रार्थयामि नमस्तु ते ॥

अर्थात् – हे तीर्थराज ! इस लोक में आप धन-धान्य सुख प्रदान करें, परलोक में वैकुण्ठ पद लाभ प्राप्त करायें। हे उभयलोकसाधक ! आपको बार बार प्रणाम है।

यशोदा कुरुते स्नानं नित्यमेव दिनं प्रति ।
यतो संजायते कुण्डं यशोदा संज्ञकं शुभम् ॥

यशोदा कुण्ड का नाम यशोदा जी पर इसलिए है कि यहाँ यशोदा जी प्रतिदिन स्नान करती थीं। जब यशोदा मैया यहाँ स्नान करने पधारती थीं, तो दोनों भैया भी सखाओं के साथ यहाँ आ जाते थे। यहाँ स्नान करने से धन-धान्य से परिपूर्ण होकर बैकुण्ठ पद की प्राप्ति होती है।

ततो हाऊ प्रणाम मंत्र :

नमः कृष्णेक्षकास्तुभ्यं धर्मकामार्थ मोक्षिणः ।
पाषाणरूपिणो देवा: यशोदाशीषसंस्थिताः ॥

अर्थात् – कृष्ण दर्शन कराने वाले, चारों पुरुषार्थों को देने वाले, यशोदा के आशीर्वाद से स्थित हे पाषाण रुपी देवताओ ! तुम्हें नमस्कार है। श्रीकृष्ण यशोदा कुण्ड पर माँ के साथ आते थे और जब ऊधम करते, तो उनकी चपलता रोकने के लिए मैया इन हाऊ-बिलाऊ से डरवा देती थी। हाऊ का नाम सुनते ही बाल कृष्ण डर कर माँ के आँचल में आ छिपते थे, हाऊ के इसी प्रभाव के कारण मैया प्रसन्न रहती थी और हाऊ-बिलाऊ से विशेष स्नेह करती थीं।

काजल कुण्ड

यहाँ से आगे कारेलो वन है, जिसमें काजल कुण्ड है, जहाँ गोपियों ने कृष्ण को काजल लगाया था।

माँट

नन्द बैठक से नन्दगाँव की ओर यशोदा जी के दधि माँट के दर्शन हैं।

ततो दर्शन प्रणाम मंत्र :

कामसेनीसुताकार्यसुमिष्टदधिभाजनौ ।
नमस्त्वमृतरुपाय देवानां मोक्षहेतवे ॥

(ब्र.भ.वि.)

अर्थात् – यशोदा जी के हे मधुर व अमृत रूप दधि भाजन ! आप देवों को भी मुक्ति देने वाले हैं, आपको नमस्कार है।

यहाँ दो पात्र हैं। बड़ा दधि का, दूसरा घृत का या माखन का। यह पात्र यशोदा कुण्ड के पास में हैं क्योंकि श्रीकृष्ण जब वत्सपाल थे, तब गाँव के पास ही बछरा चराते थे। उस समय मैया यशोदा, सद्लौनी खिलाने के लिए यहीं दधि चलाने आ जाती थीं।

खूंटा

यह उन्ही खूंटो में से एक है, जिससे नन्दबाबा अपनी गायों को बाँधते थे।

मधुसूदन कुण्ड

'मधुसूदन' श्रीकृष्ण का नाम है। उनके नाम का यह कुंड है। मधु को मारने वाला 'मधुसूदन' अथवा 'मधुसूदन' माने श्रृंगार रस का आस्वादक। यहाँ स्नान करने से आयु बढ़ती है।

ततो मधुसूदन कुंड प्रणाम मंत्र:-

केशवाय नमस्तुभ्यं परमायुविवर्धने ।
मधुसूदन कृष्णाय देवानां हितकारिणे ॥

(ब्र.भ.वि.)

हे देववृन्द के हितकारी ! हे दीर्घ आयु प्रदान करने वाले मधुसूदन कुण्ड ! आपको प्रणाम है।

चरण पहाड़ी

श्री नन्द ग्राम में चरण पहाड़ी पर श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह हैं। यहाँ के चरण चिन्हों का प्रसंग श्रीमद्भागवत् में दो बार आया है, पहला प्रसंग अक्रूर जी के आगमन पर है, दूसरा उद्धव जी के आगमन पर।

अक्रूर जी –-

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥

(भा.१०/३८/२४, २५)

अर्थात् – मार्ग में श्रीकृष्ण चिन्तन करते हुए, रथ के द्वारा संध्या के समय अक्रूर जी गोकुल पहुँचे। गोकुल शब्द वैसे सारे ब्रज के लिए प्रयुक्त हुआ है, किन्तु यहाँ इसका भाव नन्दगाँव से है। कहीं वृन्दावन कहीं ब्रज या कहीं सारा ब्रज ही गोकुल नाम से लक्षित है।

इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ।
नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥

(भा.१०/२५/८)

इसी प्रकार प्रसंगानुसार समझ लेना चाहिए।

पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥

(भा.१०/३८/२५)

नन्दगाँव पहुँच कर के अक्रूर जी ने चरण चिन्ह देखे। अक्रूर जी ने कमल, यव आदि चिन्हों से अंकित लोकपाल पूजित चरण चिन्ह देखे, इसके बाद दूसरा प्रसंग उद्धव जी से ब्रजदेवियों के मिलन पर हैं।

ब्रजगोपियाँ कहती हैं – "उद्धव जी ! श्रीकृष्ण के चरण चिन्हों से अंकित यह ब्रजभूमि उनकी मधुर छवि हमारे सामने प्रत्यक्ष कर देती है। हम इन चिन्हों को देखकर उन्हें कैसे भूल सकती हैं?"

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ।
श्री निकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥

(भा.१०/४७/५०)

इन दोनों प्रसंगों में यही बात स्पष्ट होती है कि चाहे अक्रूर जी हों, उद्धव जी हों, चाहे ब्रजवासी अथवा गोपीजन हों वे सभी सम्पूर्ण ब्रजभूमि को श्री चरणों से अंकित देखते हैं क्योंकि वे चरण ब्रजभूमि के रसपोषक एवं श्री वर्धक हैं। भागवत १०/३५/६ में द्रष्टव्य है किन्तु जो चिन्ह उन्होंने देखे, वो हम भौतिक आँखों से नहीं देख सकते हैं।

पनिहारी कुण्ड

इस सरोवर से कन्हैया को बहुत प्रेम है, जब तक पनिहारी कुण्ड का पानी न आ जाय, तब तक यह नन्हा शिशु भोजन ही आरम्भ नहीं करता। इसका अमृतवत् स्वादु जल इसे बहुत प्रिय है, तभी तो मैया यशोदा, स्वयं कन्हैया के लिए बड़ा सा मांट, इस रुचिकर जल से भरकर ले आती हैं।

श्रीकृष्ण ही नहीं, अपितु सब ब्रजवासी यहीं का शीतल जल पीकर आत्मा को तृप्त करते हैं, संध्या हो जाय तो देखो, गोपियों के टोल के टोल, पंक्तिबद्ध परस्पर परिहास करते हुए, कृष्ण चर्चा करते सुनाई पड़ते हैं।

जल भरने को गोपी चली हैं गागर उठाकर पनघट निकेती,
बहते हुए जल ने यह गीत गाया राधा रसिक श्याम राधा बिहारी ।

(बाबा द्वारा रचित ब्र. भा. मा.)

अतः ब्रजवासी तो इसे पनघट कुण्ड ही कहना अच्छा समझते हैं।

गोपाङ्गनाओं और श्रीकृष्ण के परस्पर मिलन के लिए यह स्थान उनका अत्यन्त सहायक है। गोपरमणियाँ आती हैं, जीवनाधार जल भरने, पर यदि वो जीवनाधार .. कृष्ण मिल जाय तो जल को कौन पूछे? कहो तो अपने प्रेष्ठ से बात करने में जल भरना ही भूल जायँ।

आश्चर्य मत करना ! पनघट का सच्चा अर्थ तो कृष्ण मिलन का पन (प्रण) ही है।

क्योंकि वो प्रेम बावरी कहती है –

"पनघट जान दे री पन घट जात है ।"

अर्थात् – मुझे पनघट जाने दे, अन्यथा प्रेष्ठ से मिलने का पन घट जाएगा।

नन्द जू को छैया अलबेलौ मेरी मटकी में मार गयो डेलो ॥
गगरी भरी चली मैं उचके आयो कहूंते छैलो ।
चूनर सारी सबरी भीजी पानी सबरो फैलो ।
चूनर मेरी लग्यो निचोरन कारो मन को मैलो ।
कबहुं पनघट औ यमुना तट वंशी बजावै अकेलो ।
कबहूं घेरै खोर सांकरी लै ग्वालन को मेलो ।

(बाबा द्वारा रचित र.रा.)

और एक विशेष बात –

गोपियों ने विवाह के पूर्व, नन्दलाल को इसी मनोहर कुण्ड के जल से स्नान कराया था और उनका श्रृंगार भी किया था, अतः यह पनिहारी कुण्ड या पनघट कुण्ड कहलाया। यह कदम्ब वृक्षों से आच्छादित है। इस कुण्ड के किनारे मन्दिर में युगल सरकार के दर्शन हैं।

वृन्दा देवी

वृन्दा देवी कई हुई हैं –

१. राजा कुशध्वज की कन्या तुलसी का नाम भी श्री वृन्दा है। जिनका विवाह कृष्णांश शंखचूड़ से हुआ। यह कथा 'ब्र.वै.पु.कृ.ज.खं.अ.१७' में प्राप्त होती है।
२. जालन्धर की स्त्री भी वृन्दा है।
३. वृन्दावन की अधिष्ठात्री भी वृंदा सखी है।
४. एक वृन्दा है महाराज केदार की कन्या।

प्रायः बुद्धि यह सोचकर भ्रांत हो जाती है कि यहाँ जिन वृन्दा का निवास है वे कौन हैं?

इसे यहाँ स्पष्ट किया है –

चरणपहाड़ी से थोड़ा आगे उत्तर दिशा में सुदूर से दिखने वाले उच्च तरुओं के मध्य जिन वृन्दादेवी का रमणीक मनोरम स्थान है, वे केदार कन्या वृन्दा हैं।

श्रीकृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ८६ ब्रह्मवैवर्तपुराणानुसार स्वयं श्री ठाकुर जी ने नन्द जी की जिज्ञासा देख उन्हें यह अद्भुत कथा सुनाई थी। आदि सृष्टि में ब्रह्मपुत्र स्वायंभुव से उत्तानपाद और उनसे महाराज ध्रुव का जन्म हुआ, ध्रुव से नन्दसावर्णि और इनके पुत्र थे – महाराज केदार।

यह बड़े धर्म परायण राजर्षि थे, प्रतिदिन ब्राह्मभोज और गौदान किया करते एवं इन्द्रिय निग्रह के साथ हर कर्म भगवदर्पित ही करते। एक दिन स्वयं कमला (लक्ष्मी), कमलनयनी कन्या के रूप में, इनके यज्ञकुण्ड से प्रकट हुई एवं श्रीकृष्ण को वर रूप में पाने के अभीष्ट से

यमुना किनारे स्थित पुण्यमय वन में तप करने हेतु चली गईं जहाँ आपने तप किया, आपका वह तपोवन ही वृन्दावन की संज्ञा से शोभित हुआ। दीर्घकाल तक किये गये उत्कट तप से प्रसन्न हो ब्रह्मा जी ने वर भी दे दिया – "हे सुमुखि ! कुछ काल बाद निश्चित ही तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा।" तदनन्तर ब्रह्मा जी ने साक्षात् धर्म को उनकी परीक्षा लेने भेजा।

धर्म एक तरुण विप्र के रूप में वहाँ आये और तप संलग्ना वृन्दा से प्रश्न किया।

धर्म – "हे बाले ! तुम्हारे इस उग्र तप के पीछे क्या वासना है? मैं वर देने में सक्षम हूँ, अतः कहो क्या चाहती हो?"

वृन्दा – "विप्र श्रेष्ठ ! निखिल गुण निधान श्रीकृष्ण चन्द्र की अर्धाङ्गिनि बनना ही मेरा स्वत्व है।"

धर्म – "किन्तु हे कमलनयने ! उन पूर्णकाम पुरुषोत्तम भक्तानुग्रहविग्रह को अपने पति के रूप में देखने में केवल रमा और शारदा ही सफल हैं, अन्य कोई नहीं। वैकुण्ठाधिपति की ये दो ही भार्या हैं। १. रमा २. शारदा और गोलोक में जो गोपेश हैं, उनकी भार्या, उनकी प्राणाराध्या, अभिन्न हृदया, नित्य नवीन सौन्दर्य सम्पन्ना श्रीराधा हैं।"

श्रीकृष्ण के दो रूप हैं –

द्विभुज रूप से गोलोकाधिपति हैं और चतुर्भुज रूप से वैकुण्ठाधिपति हैं।

इन्द्र, ब्रह्मा की तो चर्चा ही छोड़ो, द्विपरार्ध की ब्रह्मा जी की आयु, जिनका मात्र एक निमेष है, सनकादिक भी जीवनपर्यन्त उन विभु की सेवा में संलग्न रहते हैं, सहस्रमुखी शेष जी भी अरबों-खरबों कल्पों तक अनवरत, अहर्निश सेवा व नाम जप करते हैं किन्तु वे प्रभु उनके लिए भी अप्राप्य ही रह जाते हैं। फिर –

"हे वृन्दे ! वे तुम्हें कैसे साध्य होंगे?"

(वृन्दा के सतीत्व की परीक्षा लेनी थी अतः धर्म बोले)

धर्म – "जब वो ब्रह्म तुम्हारे लिए दुष्प्राप्य ही है तो तुम मुझे ही वरण कर लो !"

(यह सुनते ही वृन्दा कोपयुक्त होकर धर्म को शाप दे बैठीं)

वृन्दा – "व्यभिचारी, अज्ञान प्रबल ब्राह्मण ! मेरा धर्म मेरा रक्षक है। अगम्या से समागम का जो तूने अश्रोतव्य प्रस्ताव मेरे समक्ष रखा, यह बड़ा जुगुप्सित है।

ब्राह्मण अवध्य होते हैं, अतः मैं तुझे शाप देती हूँ –

"क्षयो भव ! क्षयो भव ! क्षयो भव !"

(तुम्हारा नाश हो जाय ! तुम्हारा नाश हो जाय ! तुम्हारा नाश हो जाय !)

तीन बार ऐसा कहकर, जब चौथी बार कहने को उद्यत हुई तो सूर्यदेव ने आकर रोक दिया और बताया – "देवि ! ये तो स्वयं धर्मराज हैं, परीक्षा लेने आये थे, इनके नाश से जगत्

में सनातन धर्म रूप जीव का सर्वनाश हो जाएगा, अतः इन्हें जीवनदान दो।" वृन्दा ने प्रभु से उनके जीवित होने की प्रार्थना की। लज्जित नत-नयना, धर्म भार्या मूर्ति ने भी आकर प्रभु से पति के लिए प्राण दान की प्रार्थना की।

प्रभु ने वृन्दा से कहा – "सुन्दरी! १०८ युग तक तुमने कठोर तपश्चर्या की, तुम्हें दीर्घायु प्राप्त हुई। अब तुम अपनी आयु धर्म को देकर गोलोक को चली जाओ।

वाराह कल्प में हमारी प्राणेश्वरी श्रीराधा की छायाभूता वृषभानु कुमारी तुम बनोगी, उस समय मेरे कलांश से समुद्भूत रायाण गोप से तुम्हारा पाणिग्रहण होगा।

पापिष्ठ मोहाच्छन्न जन तुमको ही वास्तविक राधा समझेंगे। वास्तविक राधा तो मेरी नित्यसङ्गिनी हैं। उनकी कृपा के बिना उनका दर्शन दुष्प्राप्य है। उनकी जो छाया है, वे ही रायाण गोप की भार्या हैं, वास्तविक राधा नहीं।"

प्रभु की यह मनोहर वाणी सुनकर वृन्दा जी ने धर्म को अपनी आयु का दान कर दिया, अनुक्षण धर्म उठ खड़े हुए और वृन्दाजी गोलोक गमन कर गयीं। वृन्दा का अमोघ शाप 'क्षयो भव' जो तीन बार कहा था, वो भी इस प्रकार घटित हुआ –

सतयुग में धर्म परिपूर्ण था, किन्तु त्रेता में इसके ३ चरण शेष रह गये, द्वापर में एक और घटा, २ चरण शेष रह गये, कलियुग के आदि में १ चरण रह जाएगा और अन्त में यह कला का षोडशांश मात्र रह जाएगा।

यही श्री वृन्दादेवी, युगल सरकार की प्रकट लीला का आनन्द लेने हेतु, आज भी वनदेवी के रूप में नन्दगाँव में विराज रहीं हैं। मन्दिर के सामने आपका एक सुरम्य सर भी है, जिसमें आप स्नान करती थीं। यह वृन्दादेवी कुण्ड के नाम से ख्यात है।

श्री पावन सरोवर

नमः पावनरूपाय देवानां कल्मषापहम् ।
नंदादिपावनायैव तीर्थराज नमोस्तुते ॥

(ब्र.भ.वि.)

हे तीर्थराज ! आप देवताओं के कल्मषों को नष्ट करने वाले व नन्दादि गोपों को भी पावन करने वाले हैं, ऐसे परम पावन स्वरूप आपको प्रणाम है।

तत्रैव सरतो मध्ये यशोदाकूपमुत्खनत् ।
यत्र कूपं पिबेत्तोयं कृष्ण तुल्यं सुतोभवेत् ॥

(ब्र.भ.वि)

वहीं सरोवर के मध्य में यशोदा कूप है। उस कूप के जल पीने से कृष्ण तुल्य पुत्र प्राप्त होता है।

कामसेनी सुताकूप सुपुत्रफलदायकः ।
नमः पावनतीर्थाय गोपिकायै नमोस्तुते ॥

(ब्र.भ.वि)

हे सत्पुत्र फल प्रदायक ! हे कामसेनी की पुत्री के कूप पावनतीर्थ ! आपको और गोपी को प्रणाम है।

नन्दग्राम के उत्तर में काम्यवन कोसी राज पथ पर इंटर कालेज के पीछे ब्रज के ५ सरोवरों में से एक श्री पावन सरोवर है। जो श्री ठाकुर जी को अत्यन्त प्रिय है, यहाँ श्याम सुन्दर सखीगणों के साथ जलकेलि करते थे और जब गौचारण कर लौटते तो अपनी कजरी, बहुला, कपिला, कंचन, श्यामा आदि गायों को इसी विशाल सर के सुमधुर निर्मल जल से तृप्त करते, स्वयं भी गोप सखाओं के साथ जल पान कर, इसमें स्नान करते। कहते हैं कि अपनी लड़ैती श्रीराधा के लिए बाबा वृषभानु ने सर के उत्तरी तट पर सुन्दर महल का निर्माण कराया, जिसमें अपनी अष्ट महासखियों से समावृत हो, किशोरी जी विविध प्रकार की मनोरम क्रीडाएँ करतीं और नन्दलाल जब सर पर आते तो सहज ही यहाँ से उनका दर्शन कर अपने चंचल-युगल दृगों को आनन्द देतीं। पावन सर के बारे में तो ऐसा कथन हैं – कि इस सरोवर के ऊपर से यदि कोई पक्षी भी उड़कर चला जाय तो उसकी मुक्ति में तनिक भी संदेह नहीं रहता। मुक्ति प्रदाता समस्त तीर्थों का स्वयं की मुक्ति की अभिलाषा से यहाँ आवागमन बना ही रहता है। 'ब्रजभक्ति विलासानुसार', इस सरोवर में बाबा नन्दराय जी और मैया यशोदा ने आँचर गाँठ बाँधकर यहाँ स्नान किया था तथा कृष्ण जन्मोत्सव के अवसर पर सवा लाख गायों का दान किया था, अतः यह सरोवर देवों से भी कहीं अधिक महिमाशाली हो गया। इसके जल से स्नान,आचमन करने पर समस्त पाप राशि नष्ट हो जाती है।

सनातन जी की भजन स्थली

श्री रूपजी के अग्रज सनातन जी ने सरोवर के दक्षिण-पूर्वी तट को ही अपने भजन के लिए समुचित समझा, आपकी भजन पद्धति कठोर वैराग्य में पगी हुई थी, भजन आसन पर जब आप बैठ जाते तो कई-कई दिवस अन्न दर्शन भी नहीं करते, एक बार ऐसा ही हो गया, गत ४-५ दिवस से आपकी समाधि खुल ही नहीं रही थी। अपूर्व तप का अचिन्त्य तेज आपकी अलौकिक प्रतिभा को चहुं ओर प्रसारित कर रहा था। अन्न वारि के बिना देह एकदम कृश हो चुका था तो स्वयं करुणा निधान भगवान् अपने बाल रूप में, कमल कर में पय पात्र लेकर पहुँचे, सर के किनारे उनकी भजन कुटी में।

हाथ से हिलाया, बाबा ..ओ बाबा ! (बाबा का ध्यान भंग हुआ, नेत्र खोले)

प्रभु – "यह ले दूध पी ले और भिक्षा माँगा कर, हमारे नन्दगाँव की गोपी प्रतिदिवस तेरी प्रतीक्षा करती हैं।"

बस इतना ही कहने आये थे वे तो, कह कर वहाँ से चले गये।

जिनके लिए भक्तवत्सल को स्वयं आना पड़ा, उन सिद्ध महापुरुष की यही भजन स्थली हैं, जहाँ अभी तक बहुत से गौड़ीय भक्त भजन करते आ रहे हैं। चैतन्य चरितामृत में उल्लेख मिलता है –

श्रीमन् चैतन्य देव का भी ब्रज भ्रमण करते समय काम्य वन से यहाँ आगमन हुआ, यहाँ आते ही आप प्रेम विह्वल हो, इस सरोवर में स्नान किए –

तहां लीलास्थली देखि गेला नन्दीश्वर ।
नन्दीश्वर देखि प्रेम हइला विह्वल ॥
पावनादि सब कुण्डे स्नान करिया ।
लोकेर पुछिल पर्वत उपरे जाइया ॥

(चै.च.म.ली.परि.१८/५१,५२)

श्रीवल्लभाचार्य जी की बैठक

सरोवर के पश्चिमी भाग में श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु जी की बैठक है, जहाँ वे ६ मास पर्यन्त विराजे, भागवत पारायण किया और एक मुगल पर आपकी कृपा हुई, उसे २ जन्मों में ब्रह्म सम्बन्ध द्वारा भगवद्प्राप्ति करायी।

बैठक जी के निकट एक वृक्ष है –नन्द छोंकर, जहाँ प्रतिवर्ष दशहरा के दिन नन्द जी पूजन करते थे।

फुलवारी कुण्ड

फुलवारी कुण्ड का एक नाम पुष्प वाटिका कुण्ड भी है। यहाँ की सरस लीला का गान किया है नन्ददास जी ने अपनी व्यंजक, सरस, प्रवाहमयी, प्रांजल भाषा में –

"एक बार वृषभानु वंशमणि कंचन वरनी श्री राधा नन्द प्रांगण खेलने आई ।"

इन्दुहासिनी की सहज चपलता, बिनु भूषण शोभित शुभांगी को देखकर मैया यशोदा का मन मोहित हो गया। विचार-भँवर में बह गयी मैया।

"यह अमानवी मेरे कान्हा की नित्य संगिनी बन जाय तो कितना अच्छा हो!"

"मैं आज ही कीर्तिदा के पास यह प्रस्ताव भेजूंगी।"

अविलम्ब ग्राम की एक ब्राह्मणी को बुलवाया। उससे अपने मन की बात कहकर तुरन्त ब्रजराज किशोर के लिए, भानुजा का हाथ माँगने वृषभानुपुर भेजा।

ब्राह्मणी भी तो इस प्रस्ताव से अतिशय प्रसन्न थी क्योंकि ये इन्दीवरदलश्याम केवल यशोदा की क्रोड का क्रीडनकम् नहीं है। यह तो सबका स्नेह भाजन है, सबका सर्वस्व है –

"न खलु गोपिकानन्दनोभवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक"

(भा.१०/३१/४)

अतः यह प्रस्ताव लेकर जाना ब्राह्मणी के लिए अपना स्वत्व है। बृहत्सानुपुर में नन्दीश्वर पुर की ब्राह्मणी को देखकर, सबने अपना ही अभ्यागत समझकर आवभगत की।

भानुभवन में जब पहुँची ब्राह्मणी तो कीर्तिदा से जाते ही न केवल यशोदा के अपितु सारे नन्दग्राम के मन की बात कह दी –

“नन्दसूनु के लिए आपकी चंद-बदनी का हाथ माँगने आई हूँ। अब आप अति शीघ्र श्याम से सगाई कर, अपनी सुस्नेही को श्याम-स्वामिनी बना दो, इससे बरसाना और नन्दगाँव के सम्बन्ध में अनन्त प्रेम का समुद्र आन्दोलित होगा।”

यह सुनकर कीर्ति जी बोलीं –

रानी उत्तर दयौ सुन हौं नहिं करौं सगाई
सूधी राधे कुँवरि स्याम है अति चरबाई।
नँद-ढोटा लंगर महा दधि माखन कौ चोर
कहति सुनति लज्जा नहीं करति और ही और॥
कि लरिका अचपलौं॥

(नन्ददास कृत श्याम सगाई)

“बहिन ! यशोदा तो मेरी बाल्यकाल की सखी है। हम दोनों में अपरिसीम प्रेम है किन्तु मेरी कन्या अत्यंत भोली-भाली स्वभाव की सरला है और नन्दकुमार महा उच्छृंखल, रंग के काले, चौर्य, लाम्पट्य सर्व दुर्गुणवान् है, अतः मैं यह सम्बन्ध करने में असमर्थ हूँ।”

ब्राह्मणी ने सब बातें मैया से कही।

सुनकर मैया का अन्तस् औदास्य से व्याप्त हो गया। अन्तर्यामी से भला यह कैसे छिप सकता था?

मैया नेत्रों को निमीलित कर उदास मुख को कर-पल्लवों पर टिकाये चिन्तित बैठी हुई थी कि तभी अन्तर्यामी आए। मैया की चिबुक को कर के सहारे से उत्थित किया। औदास्य का कारण पूछा।

तब मैया बोली – “पुत्र ! तेरे कारण ही उदास हूँ। घर में प्रचुर गौरस होने के बाद भी तू घर-घर चोरी करता है। आए दिन ब्रजगोपियों के साथ रार-तकरार करता है।

मैंने आज राधा के साथ तेरा सम्बन्ध मांगा तो कीर्ति जी ने अपनी लाली राधा से तेरी सगाई करने से इनकार कर दिया।

इससे हमारा बड़ा अपमान हुआ।"

सुनकर सस्मित मुख श्यामसुन्दर बोले – 'मैया, तू चिंता मत कर।

बाबा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ – मैया कीर्ति अब स्वयं सम्बन्ध भेजेगी।" ऐसा कहकर यहाँ फुलवारी कुण्ड पर आकर बैठ गए। श्री राधा रानी जब यहाँ आयीं, नटवर को देखा लता जाल की ओट से, शिरोदेश पर मणियुक्त केकी-पिच्छ झूम रहा है। मृदुल-नील-कलेवर पर पिंगल दुकूल झिलमिला रहा है। अगाध-बोध सम्पन्न शत-सहस्त्र योगीन्द्र-मुनीन्द्र मनोहारी सुषमा सौन्दर्य से सनी मुस्कान, कर्णस्पर्शी विशाल नेत्रों की बंकिम चितवन चोट कर गई। नील चन्द्र की नीली चंचल किरणों से पूरित हो गया, यह पुष्प वाटिका कुण्ड का सम्पूर्ण क्षेत्र।

असमोर्ध्व-सौन्दर्य-सार-सर्वस्व श्रीकृष्ण को जब देखा तो भृकुटी-शर से बिद्ध हो गयी सुकुमारी।

सौन्दर्य सुधानिधिके नील-नीरद लावण्य पर मृदुला का मन ऐसा आकृष्ट हुआ, जैसे अयस्ककान्त मणि (चुम्बक) से लौह-पिण्ड।

नीलाञ्चल से नयनाञ्चल को ढककर चली गईं सघन कुञ्ज में और अद्भुत सौन्दर्यामृत-सिंधु के अंग-संस्थान के स्मरण से दोनों दीर्घ-दृगों से अनवरत अश्रु-प्रवाह होने लगा। सखी-सहचरियों ने देखा, तो सांत्वना देते हुए बोलीं – "राधा ! एक युक्ति से तुम श्याम को पा सकती हो। अभी तुम हमारे साथ घर चलो। वहाँ जाकर तुम अचेत हो जाना। हम मैया को कह देंगी कि राधा को काले नाग ने डस लिया है। हम विष उतारने वाले को जानती हैं। नन्द कुमार विष उतारने में बड़े प्रवीण हैं। महान विषधर सर्पों का विष भी उतार देते हैं।"

श्रीजी ने घर में आकर ऐसा ही किया।

अचेतावस्था में अपनी लाडली को देखकर मैया कीर्ति का हृदय कम्पित हो उठा। घबरा गई मैया।

बड़े-बड़े गारूड़ी (विष उतारने वाले) बुलाये पर सब निरर्थक !

अब तो मैया लाली का कर अपने करतल में रखकर रुदन करने लगी –

सखी कहति समुझाइ कहौ तौं गोकुल जाऊँ
मनमोहन घनश्याम तुरत बाकौं ले आऊँ ।
वह ढोटा अति सोहनों पठवै वाकी माइ
बड़ौ गारुड़ी नन्द को तुरत भली करि जाइ ॥

(नन्ददास कृत श्याम सगाई)

ललिता जी बोलीं – "मैया ! एक बहुत बड़ा गारुड़ी है। आपने भूल की, उसे बुलातीं तो अब तक राधा पूर्ण स्वस्थ हो जाती।"

कीर्ति – "कौन है ललिता – शीघ्र बुला ला।"

ललिता – "मैया ! वो गारुड़ी नन्दकुमार है, जिसने कालिया नाग जैसे महान विषधर को भी अपने वश में कर लिया था। पर मैया एक बात है, राधा के संग सम्बन्ध करने से आपने मना कर दिया था। मानहानि के कारण, अब उसका आना भी सरल नहीं है।"

कीर्ति – "ललिता ! मुझसे बहुत बड़ी चूक हो गई। तू शीघ्र जा और यह कह दे कि राधा के प्राण यदि सचेत कर दिए तो मैं उसी समय सगाई कर दूँगी।"

ललिता – "ठीक है मैया, मैं जाकर मनुहार करूँगी। वैसे नन्दनन्दन मेरे कथन का मान तो रखते हैं।"

(ललिता जी का प्रसन्न मुद्रा में नन्दसदन में प्रवेश)

ललिता – "नन्दनन्दन ! नाट्य सिद्ध हो गया। अब शीघ्र चलो, देर न करो।"

(अब नन्दनन्दन ने नाटक फैलाया)

कृष्ण – "ललिता ! मैं नहीं जाऊँगा।"

ललिता – "अभी चलो तो सम्बन्ध हो जायगा, नहीं तो रह जाओगे ऐसे ही .."

बभूति की पोटली लेकर चल पड़े ललिता जी के साथ गारुड़ी नन्दकुमार।

वृषभानु-भवन में प्रवेश किया।

अब तो मैया कीर्ति बड़ी प्रसन्न हुई।

"आओ यशोदानन्दन, विराजो।"

श्रीकृष्ण ने श्रीजी का गौर कर अपने रक्त कर तल में रखा। दूसरे कर से नाड़ी देखने लगे।

"ओहो ! बहुत तीव्र विष है, स्थिति भी बहुत गम्भीर है।

सावधान होकर सब सुन लो, विष तो मैं उतार दूँगा किन्तु जो समीप होगा, विष उसके ऊपर ही चढ़ जायेगा, अतः सब यहाँ से हट जायें। एकान्त में ही यह उपचार हो सकता है।"

मैया कीर्ति, सखी-सहचरी समूह, सब वहाँ से चले गए।

एकान्त देखकर नन्दनन्दन ने श्रीजी के कर्णकुहर में कहा – "हे ब्रजनागरिकुलचूड़ामणे ! अदभ्रसुदये ! उठो, मैं आ गया हूँ। हमारा नया-नाट्य सार्थक हो गया राधे।"

झट, राधारानी बैठ गईं।

ठाकुर जी ने कर ताड़न करके (ताली बजाकर) सबको बुलाया।

मैया कीर्ति परम प्रसन्न हुईं। बार बार नन्दनन्दन की प्रशंसा करने लगीं।

ललिता जी कर में कंचन थाल लिए बोली – "मैया ! अब शीघ्र अपना कथन सम्पन्न करो।"

कीर्तिदा – "हाँ ललिता ! तू सत्य कह रही है। ला शीघ्र थाल ला। शुभ कर्म में विलम्ब क्यों? मैं अभी सगाई कर दूँगी।"

झट कीर्तिदा ने टीका कर दिया।

सुनति सगाई स्याम ग्वाल सब अंगनि फूले
नाचत गावत चले प्रेम रस में अनुकूले।
जसुमति रानी घर सज्यौ मोतिन चौक पुराइ
बजति बधाई नन्द कै 'नन्ददास' बलि जाइ॥
कि जोरी सोहनी ॥

क्षुण्णहार कुण्ड

यहाँ पर नन्दराय जी के पिता पर्जन्य जी ने तप किया था, उसी तप के फलस्वरूप नन्द, उपनन्द आदि पुत्र पैदा हुए।

मोती कुण्ड

गर्गसंहितानुसार

गिरिगोवर्द्धनोद्धरण के उपरान्त वायु वेग से कृष्ण पराक्रम की चर्चा ब्रज में फैली। ब्रज का गोप समूह ब्रजेश के पास पहुँचा नन्द मन्दिर में और कहा – "महाराज ! आपके वंश में इससे पहले कभी कोई ऐसा पराक्रमी बालक नहीं हुआ, जो सप्त दिवस पर्यन्त सात कोसीय गिरि को अल्पावस्था में धारण कर ले। आप स्वयं भी तो छोटा सा शिला खण्ड नहीं उठा

सकते हो, फिर आपके पुत्र में यह बल कहाँ से आया, फिर आप भी गौर वर्ण हैं, मैया भी गौर वर्णा हैं पर मैया-बाबा से विलग, विलक्षण लक्षण वाला यह श्याम वर्ण का बालक यहाँ कैसे आया? आप सही-सही इसका जन्म रहस्य बता दें, अन्यथा गोप जाति से हम आपको बहिष्कृत कर देंगे।

गोपों के इस प्रकार कहने पर नन्द जी ने बालक के नामकरण अवसर पर गर्ग जी द्वारा कथित सभी बातें बता दीं कि निश्चित ही यह बालक असाधारण है, इसी के अंश से नाना अवतारों की उत्पत्ति होती है, यह परिपूर्णतम है, सबका अंशी है। श्वेत, रक्त, पीत रंग से जन्म ले चुका है। वर्तमान में कृष्ण वर्ण का होने से नाम भी कृष्ण है। वस्तुओं का अधिष्ठातृ देव होने से इसका एक नाम वासुदेव भी है। वृषभानु कुलोद्भव श्री राधिका रानी के ये ही पति हैं, अतः राधापति भी इनका नाम हैं। भूभारहरणार्थ ये ही कंसारि बने हैं।

गर्ग कथित बातें सुनकर गोप बहुत रुष्ट हुए और बोले – "नन्द ! तुम्हारा यह चाल-चलन उचित नहीं है, जो पुत्र का नामकरण भी गुप-चुप कर लिया। अरे, हमें नहीं तो कम से कम अपने भाई बन्धुओं को तो बुलाते।" नन्दालय से निकल कर सभी गोप भानु मन्दिर में पहुँचे एवं वृषभानु जी से बोले – "गोपेश्वर ! नन्द को गोप जाति से पृथक् किया जाय।" वृषभानु जी – "परन्तु, उनका दोष क्या है? वे तो हम सब के परम प्रिय हैं।" गोप – "यदि तुमने उनका परित्याग नहीं किया तो हम तुम्हारा भी परित्याग कर देंगे।" वृषभानु – "मेरा क्या दोष है?" गोप – "तुम्हारी कन्या विवाह के योग्य हो गयी है और तुमने अभी तक उसका विवाह नहीं किया, यह अपराध है", तब वृषभानु जी ने गोपों को सविनय समझाया। "देखो, गर्ग जी पूर्व ही भविष्य वाणी कर गए हैं। मेरी कन्या का विवाह श्रीकृष्ण के साथ सुनिश्चित है। ये तो नित्य सिद्ध दम्पत्ति हैं, लीला के लिए यहाँ आये हैं। गोप बोले – "ओह ! इसीलिए तुम्हारा वैभव भी दिव्य है, नन्द जी को भी उत्कृष्ट वैभव आप से ही प्राप्त है किन्तु गोपेश्वर यदि सचमुच कृष्ण भगवान् हैं तो आप एकबार उनके वैभव का परीक्षण हमारे सामने करिये।"

वैभव परीक्षणार्थ वृषभानु जी ने झट से दिव्य मोतियों के १ करोड़ हार लिए, हार का प्रत्येक मोती १-१ करोड़ स्वर्ण मुद्रा के मूल्य का था और उन हारों को सुन्दर यष्टियों में सज्जित करके कुशल वर वरणकारीजनों द्वारा नन्द मन्दिर भेजा। महाराज नन्द को वे मौक्तिक-हार पात्र भेंट करते हुए वर-वरणकर्ताओं ने कहा – "नन्द जी ! कर्णांत सुदीर्घ विशाल भोले-भाले नेत्रों वाली गौर वर्णा किशोरी के लिए वृषभानु जी ने आपके लाड़ले विश्वजन-मनमोहन का हाथ माँगा है। वर की गोद भरने के लिए पहले कन्या पक्ष की ओर से यह दिव्य मौक्तिक राशि ग्रहण करें एवं हमारी प्रसिद्ध कुल रीति के अनुसार कन्या की गोद भरने के लिए मौक्तिक राशि प्रदान करें।" नन्द जी ने तो ऐसी मौक्तिक राशि प्रथम बार ही देखी थी, अब कन्या गोद भराई के लिए वैसी राशि कहाँ से प्रदान करें। चिन्तित नन्द जी ने यशोदा जी से कहा किन्तु मैया ने तो विस्फारित नेत्रों से निहारते हुए यह कह दिया कि हमारे

समीप ऐसी राशि नहीं है, किन्तु अब क्या करें, कुछ तो करना ही होगा अन्यथा गोप जाति में हमारी बहुत मान हानि होगी। तब तक अलक्षित भाव से श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे और १०० हारों को ले जाकर मुक्ता कुण्ड पर उनकी खेती कर आये। मुक्ता मालाओं के परिगमन अवसर पर १०० हार कम देख कर बाबा और चिन्तित हो गये, तब तक कृष्ण बोल उठे – "बाबा ! आप चिन्ता न करें, हम गोप कृषक हैं। हमने मोतियों की वृद्धि के लिए उनकी खेती कर दी है।" नन्द बाबा ने रुष्ट होकर कहा – "कृष्ण ! तुम निरे नादान हो, ऐसे भी भला कोई मोतियों की खेती करता है" किन्तु जब बाबा ने सेवकों को मोती ढूँढ़कर चुन-बीन कर लाने की आज्ञा दी तो सेवकों ने जाकर देखा – वहाँ तो मुक्ता फल के सैकड़ों वृक्ष खड़े हो गए हैं, जिन पर तारे की तरह मोती चमक रहे थे, जो कि पूर्व मोतियों से भी अधिक दीप्तिमान थे। नन्द बाबा यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अब तो नन्द बाबा ने सप्रसन्न कन्या गोद भराई के लिये उन दिव्य मोतियों को वर-वरणकर्ताओं के द्वारा बरसाना भिजवा दिया, जिन्हें देखकर गोप समूह का सर्वथा संशय नाश हो गया। नन्द नन्दन के द्वारा जहाँ मोतियों की खेती हुई, वहाँ मुक्ता सरोवर प्रकट हो गया, जोकि तीर्थराज कहलाता है। इस स्थान पर एक मुक्ता फल (मोती) के दान से एक लक्ष मोती दान का फल मिलता है।

(ग.सं.गि.खं.अ.६)

छाछ कुण्ड

नन्दबाबा की नौ लाख गायों की छाछ यहाँ एकत्र होती थी, जिसे रोहिणी मैया गोपियों को बाँट देती थीं। यह कामां मार्ग पर गाँव की तरफ है। वर्तमान में यह नाम मात्र को रह गया है।

मोर कुण्ड

ब्रज गोपियों के आग्रह पर श्रीकृष्ण ने यहाँ पर मयूर नृत्य किया था। यह कृष्ण कुण्ड के समीप, कोसी मार्ग पर स्थित है।

कृष्ण कुण्ड

श्रीकृष्ण कुण्ड श्रीकृष्ण की जलकेलि का प्रसिद्ध स्थल है। प्राचीन लीला स्थली, श्रीकृष्ण कुण्ड के विषय में श्रीमद्भागवत में यह प्रसंग मिलता है – उद्धव जी जब ब्रज आये तो वे कृष्ण कुण्ड पर ही स्नान करने गए थे क्योंकि ब्रज गोपियों ने प्रातःकाल नन्द भवन के द्वार पर सुवर्णमय रथ देखकर आपस में जानना चाहा कि यह रथ किसका है?

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि ब्रजौकसः ।
दृष्टवा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन ॥

(भा.१०/४६/४७)

यह चर्चा करते हुए कृष्ण कुण्ड की ओर गईं, जहाँ उद्धव आह्निक कर्म कर चुके थे, वहीं से उद्धव क्यार की ओर गोपियों का प्रस्थान होता है, जहाँ उद्धव गोपी संवाद हुआ और प्रसिद्ध भ्रमर गीत गाया गया। नारायण भट्ट जी ने 'ब्रज भक्ति विलास' में ललिता कुण्ड के पास ही कृष्ण कुण्ड का वर्णन किया है।

कृष्ण कुण्ड के तट पर ठाकुर श्री नृत्य गोपाल जी का मन्दिर है। गौ धूलि बेला में, टेर कदम्ब से लौटते समय, ठाकुर जी गायों की गणना अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं के अनुरूप कंठ में पहनी माला की मणियों से करते थे और प्रत्येक गाय का नाम लेकर गणना करने के बाद नृत्य करने लग जाते थे –

मणिधरः क्वचिदागणयन् गा मालया दयितगन्धतुलस्याः ।
प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥

(भा.१०/३५/१८)

मोहन कुण्ड

"तत्पार्श्वे मोहन कुण्ड"

(ब्र.भ.वि.)

उन्होंने मोहन कुण्ड की लीला का वर्णन ललिता कुण्ड के साथ पुनः किया है।

ललिता स्नपनं कृत्वा मोहनेक्षणमिच्छति ।
ततस्तु तत्समीपे तु स्नपितं कृष्णमोक्षयेत् ॥

(ब्र.भ.वि.१६)

तत्रैव –

ललिता कुर्यात्कुण्डमोहनसंज्ञकम् ।
यत्र स्नायाद्विधानेन कृष्णदर्शनमाप्नुयात् ॥
साफल्यपदमाप्नोति जगन्मोहनकारकम् ।

(ब्र.भ.वि)

आसेश्वर

यहाँ जब महादेव नन्द-भवन में लाला के दर्शन करने गए तो यशोदा मैया ने मना कर दिया कि हमारो लाला छोटो सो है तेरे दर्शन से डर जायगो तो महादेवजी यहाँ आकर आसन लगाकर बैठ गए, इस आस में कि हमारा नाथ सुनेगा और दर्शन देगा। यहाँ आकर आस लगाकर बैठे, अतः आसेश्वर कहलाये।

महादेव के जाते ही लाला ने जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। माँ ने सब उपाय किये तो भी चुप न हुआ तो सबने कहा कि वहाँ एक बाबा बैठा है। बाबा बड़ा करामाती लगता है उसके माथे पर चंदा और जटाओं में गंगा है। शायद वो लाला को ठीक कर दे तब यशोदाजी ने उन्हें बुलवाया, शिवजी आये और श्यामसुन्दर के सामने उन्होंने राधा-यश गाया, श्यामसुन्दर हुंकार भरते रहे और फिर राधा-राधा कहकर रोने लग गए।

माँ ने पूछा – "लाला क्यों रो रहा है?" माँ नहीं समझ पायी, पर इस बात को शिव जी समझ गए कि यह तो हमने जो राधा नाम का जादू मारा इसलिए रो रहा है। यशोदा मैया ने कहा – "जोगी ! तू ही कुछ कर।" शिवजी बोले – "हाँ, हम तुम्हारे लाला को चुप करा देते हैं।" तब मैय्या ने महादेव जी का हाथ लाला के मस्तक पर फिरवाया और शिवजी ने किशोरी जी की नामावली सुनायी, तुरन्त कृष्ण चुप हो गए। यह यहाँ की लीला है। यहाँ एक सुन्दर सरोवर है जिसे आसेश्वर सरोवर कहते हैं।

टेर कदम्ब वन

यहाँ श्रीकृष्ण कदम्ब पर चढ़ करके गायों को बुलाते थे और गायें दौड़ते हुए आ जाती थीं –

कदम्ब चढ़ कान्ह बुलावत गैंया ।
मोहन मुरली को शब्द सुनत ही जहाँ तहाँ ते उठ धैंया॥
आवो आवो सखा संग के पाई हैं एक ठैंयां ।
'गोविन्द' प्रभु बलदाऊ सों कहन लागे अब घर कौ बगदैंया ॥

आज भी गोपाष्टमी के दिन यहाँ जब नन्दगाँव में ठाकुर जी गौचारण के लिए चलते हैं तो यह लीला होती है। यह स्थान आज भी प्राचीन ब्रज के स्वरूप को कुछ अंश में दिखाता है, सघन लता वृक्षों के मध्य यहाँ एक सरोवर भी है, जिसे ब्रजवासीगण टेर कदम्ब कुण्ड कहते हैं।

ततो टेर कदम्ब वन प्रार्थना मन्त्र :-

गोपिका वल्लभायैव कृष्णगोपालरूपिणे ।
नमस्ते सुखरूपाय यशोदा नन्दनाय च ॥

अर्थ – गोपिकाओं के वल्लभ, कृष्ण गोपाल रूप हैं, उन सुख रूप यशोदानन्दन को नमस्कार है।

श्री रूप गोस्वामी जी की यह भजनस्थली रही, यहाँ आपकी भजन कुटी है। पावन सर पर आपके अग्रज श्री सनातन गोस्वामी जी की भजन स्थली रही, अतः उनकी वहाँ कुटी है। आप दोनों महान वैभव छोड़कर वैराग्यमय रहनी से ब्रज में रहे एवं आप के सतत् हरि स्मरण-कीर्तन से ठाकुर-ठकुरानी रीझ गये और आप दोनों पर अद्भुत कृपावृष्टि की। रूप गोस्वामी जी के द्वारा श्री गोविन्द देव सिद्ध अर्चा विग्रह का प्राकट्य हुआ, जो सम्प्रति जयपुर में विराजमान हैं और लाखों लोग जिनका प्रतिदिन दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं, जब तक यह सिद्ध ठाकुर ब्रज में रहे, ब्रज के राजा बनकर रहे।

मीरा जी का जब ब्रजागमन हुआ, उस समय श्रीगोविन्द देव वृन्दावन में ही विराजते थे, जिसे मीरा जी ने अपनी भोली भाषा में गाया –

म्हाने लागे वृन्दावन नीको ।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दर्शन गोविन्द जी को ॥

उन गोविन्द देव के प्राकट्यकर्ता रूप जी यहीं नन्दगाँव में टेरकदम्ब पर अखण्ड भजन करते। उन्होंने जो भी सिद्धि प्राप्त की, यहीं प्राप्त की। एक समय आपके अग्रज सनातन जी टेर कदम्ब का दर्शन करने और आपसे मिलने यहाँ आये, बहुत दिनों के अन्तराल के बाद आप दोनों एक-दूसरे से मिले, कुशल-क्षेम पूछा, कुश-आसन पर बिठाया किन्तु रूप जी अग्रज को अपलक नेत्रों से देख रहे थे और मन ही मन –

बड़े भाई कितने कृषकाय हो गये हैं।

यह सोच उन्हें बहुत कष्ट दे रही थी। सनातन जी कभी भिक्षा माँगते, कभी नहीं माँगते, दिन-रात भजनानन्द में मग्न रहते, किन्तु रूप जी उनके देह दौर्बल्य से बड़े चिन्तित हो गए थे।

सहसा मन में अग्रज की सेवा हेतु एक सूक्ष्म वासना आई – बड़े भैया आये हैं, कोई अच्छा पदार्थ खिलाना चाहिए, खीर होती तो बहुत अच्छा रहता।

किन्तु यहाँ इस घोर अरण्य में दूध, चीनी, चावल कहाँ से प्राप्त हो, अतः कृपा स्वरूपा श्रीराधारानी एक नन्ही बालिका के रूप में सदया दुग्ध पूरित पात्र लिए वहाँ आ पहुँची। रूप जी हैं तो भजन अवस्था में, नेत्र बन्द है, स्थिर आसन है किन्तु मन अग्रज के स्वागत के लिए कल्पनाओं की यात्रा कर रहा है, श्रीजी पहुँचीं, बोलीं।

श्रीजी – "बाबा .... अरे रूप बाबा !"

बाबा ने नेत्र नहीं खोले, निमीलित नेत्रों से ही पूछ लिया – "कौन है?"

श्रीजी – "बाबा ! मैं हूँ,. मैया ने आपके तांई दूध भेज्यो है"

रूप – "लाली यहीं एक ओर रख दै"

मुस्कुराते हुए श्रीजी – "बाबा ! संग में चावल और मीठौ भी दियो है, खीर की इच्छा हो तो बना लीजो।"

तब भी आप अपने इष्ट को जान नहीं पाये।

भजन भंग के भय से नेत्र नहीं खोले पर भजन का सम्पूर्ण फल तो समक्ष साक्षात् खड़ा है।

(पुनः श्रीजी कृपा करते हुए)

श्रीजी – "बाबा ! मैया ने कही है, बाबा भजनस्थ हो, तो तू ही खीर बना दीजो।"

रूप – "अच्छौ लाली ! तो बना जा।"

वहाँ उस पायस को बनाने में क्या विलम्ब होता?

झटपट बनाकर एक ओर रख दिया और अनुकम्पा स्वरूपा श्रीजी चली गयीं।

थोड़ी ही देर में अग्रज अपना दैनिक भजन का नियम पूर्ण करके आये, रूप जी उठे

रूप – "भैया ! आप आ गए?"

सनातन – "हाँ, अब हम चलना चाहते हैं" (अचानक रूप जी को स्मरण आया, कोई कन्या खीर बनाकर रख गई है। आज इच्छा भी हुई थी अग्रज को खीर खिलाने की)

रूप – "भैया ! प्रभु को आज खीर का भोग लगाया है, थोड़ा पा लीजिए।"

सनातन जी ने पायस पात्र उठाकर मुख के समीपस्थ ही किया था बस उसी में प्रेम की प्रगाढ़ता में प्रविष्ट हो गये, उनकी प्रेम मूर्च्छा देखकर रूप जी बोले –

रूप जी – "भैया भैया .."

सनातन – "यह खीर कहाँ से आई?"

रूप – "भैया ! आज आपको खीर खिलाने की इच्छा हुई, उतने में एक छोटी बालिका आई, वही बना गयी।"

सनातन जी समझ गए, सारी लीला ...

सनातन – "रूप ! वो कोई ग्रामीण बालिका नहीं थी, प्रत्युत स्वयं वृषभानु नंदिनी श्रीराधा थीं।" इतना कहकर सनातन जी फफक कर रो पड़े।

सनातन – "रूप ! तुमने बहुत अनुचित किया। इस तुच्छ शरीर के लिए तुमने कामना की, अपने इष्ट को कष्ट दिया, आज के बाद कभी ऐसी कामना न करना।"

सुनते ही रूप गो. जी भी रो पड़े और भारी पश्चात्ताप किया, तदनन्तर दोनों भाइयों ने पायस प्रसाद को ग्रहण किया।

नन्दगाँव के ५६ कुंड

नन्दगाँव में ५६ कुण्डों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है –

सिंह पौर के निकट सरोवर छाछ कुण्ड की छबि न्यारी।
मोती कुण्ड मनोहर दाता निकट कुण्ड है फुलवारी॥
बिलास बट और स्यारस की बट कदम्ब है क्यौरी री॥
कूंआ की कूकेश्वर विराजे अंग भभूत जटाधारी॥
वरणो महमा कृष्ण कुण्ड की संतन के दर्शन भारी॥
नृत्य गोपाल बिराजे ठाकुर सुन्दर मूरत है प्यारी॥
जल बिहार जगमगै जगत में टेर कदम्ब लीला न्यारी॥
जहाँ सप्ताह होत बचायत पारायन होत जीव की उद्धारी॥
आसेश्वर महादेव बिराजे गले फूल माला धारी॥
बहकौ जोग ध्यान झगरा की भंडारा कियौ भारी॥
लेववट में सखा मँडली बटै छाक न्यारी न्यारी॥
बैठक तो अक्रूर भगत की आय बिराजे गिरधारी॥
बस्तर कुण्ड बने बनवारी पाडर खण्डी है न्यारी॥
मोहन कुण्ड मदन मोहन को ललिता कुण्ड ललिता प्यारी॥
जहाँ गढ़यो हिडौलौ अदभुत सुन्दर झूलन श्री राधा प्यारी॥
सूरज कुण्ड सरस अतिसुन्दर गऊअन की बैठक न्यारी॥
उद्धव क्यार कहा लगि वरणों छप्पन चौक छिके क्यारी॥
पूरनमासी है परिपूरण दोऊ मिल रास रच्यौं भारी॥
रुमकी झुमकी कुण्ड मनोहर तिनकी महमा अतिभारी॥
बैठक पै गाय चराई कुण्ड जसोदा छबि छाई॥
ऐंम केम कौ और रावरी माट विलोवे जसुधारी।
कारेलौ और बेलन बन पनिहारी कुण्ड की कर त्यारी॥
कुण्ड रोहनी और दोहनी इनकी महमा अति भारी॥

बादयो को पै विन्दादेबी मानो नगर कोट वारी ॥
चरण पहाणी चरण पादिका कन्चन की बैठक भारी ॥
छप्पन कुण्ड करी परिकरमा 'आनन्दघन' की बलिहारी ॥

उपसंहार

ऊँचे गिर शिखर महल ब्रजराज जू को
अति ही पुनीत तहां दगरे धुरन्धर से ।
शोभा अति प्यारी सोहत है उद्धव क्यारी
देखे वहाँ अनूप रूप चुगैयाँ मोर बन्दर से ।
देखत नहीं पार तहां ब्रह्मा आदि महामुनि
भूले सब ज्ञान ध्यान देवराज इन्द्र से ।
समधिन सी जसोधा समधी नन्दराय जैसे
दुलहन न राधिका सी दूल्हा श्याम सुन्दर से ।
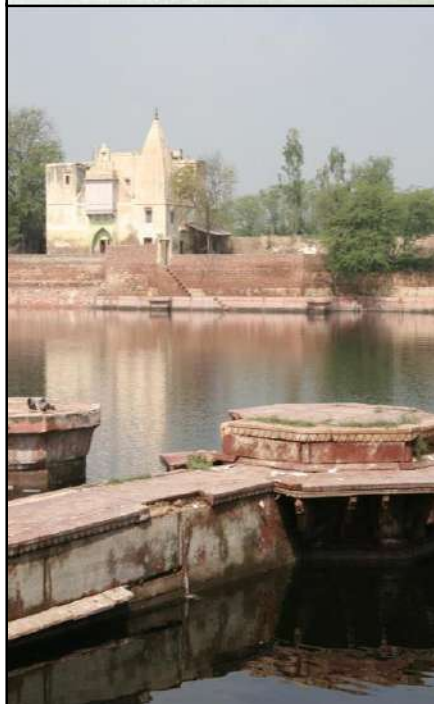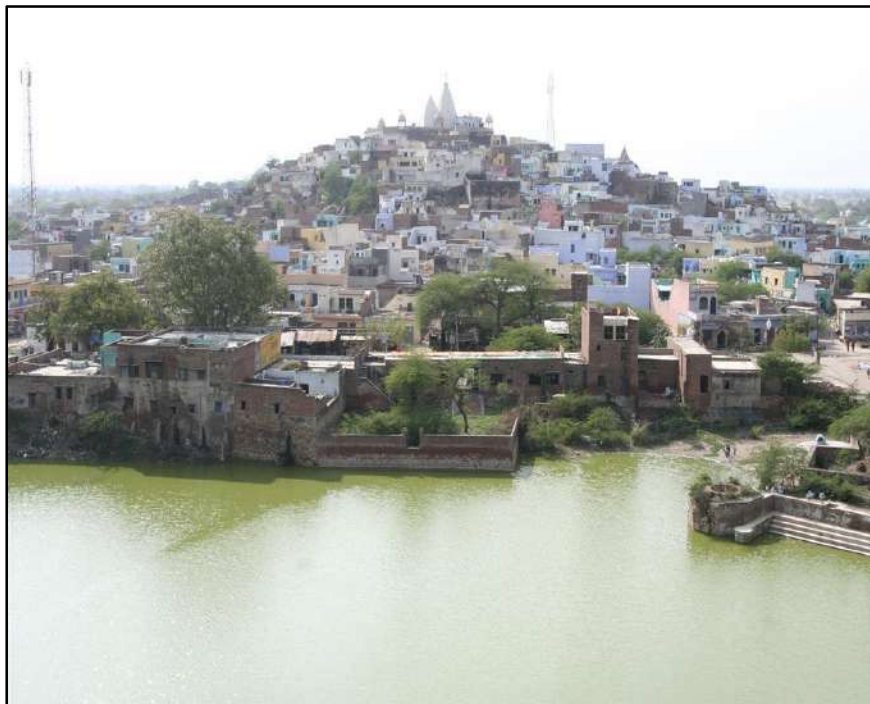
नन्दीश्वर पर्वत, पावन सरोवर एवं श्री नन्दीश्वर महादेव

श्री नन्द भवन मंदिर

नन्द गाँव – चरण पहाड़ी एवं दिव्य चिन्ह

नन्द गाँव – टेर कदम्ब एवं टेर कदम्ब कुण्ड

नन्द गाँव – श्री रुप गोस्वामी भजन कुटी, श्री रूप गोस्वामी चित्र, एवं
श्री सनातन गोस्वामी भजन कुटी

नन्द गाँव – वृंदा कुण्ड एवं वृंदा देवी

नन्द गाँव – आशेश्वर महादेव एवं कुण्ड

नन्द गाँव – मोती कुण्ड एवं मयूर कुण्ड

नन्द गाँव – हाउ बिलाऊ एवं यशोदा कुण्ड

श्री नन्द बैठक एवं यशोदा जी का मांट एवं गाय बांधने का खूंटा

अध्याय – १२

बिजवारी

बज्रवारी, बिजुवारी एवं विद्युन्नगर इन तीन नामों से संज्ञित यह स्थान बहुत ही पावन है। यूँ तो तीनों नाम की ३ भिन्न लीलाएँ हैं किन्तु मुख्य रूप से यह क्षेत्र अक्रूरलीला से सम्बद्ध है। ११ वर्ष ६ मास ५ दिन का नीलमणि श्याम अग्रज एवं अक्रूर जी के साथ फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी को जब मथुरा गमन करने लगे तो पीछे पीछे लकुट लिए छोटे ग्वाल, गौरस पूरित मांट लिए गोपियाँ नन्दगाँव से बिजवारी तक आईं।

भागवतकार भी कहते हैं –

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः।
आदायोपायनं भूरि कुम्भान गोरससम्भृतान् ॥

(भा.१०/३९/३३)

वियोग व्यथा से विक्षिप्त ब्रजांगनाएँ अपने प्राणप्रिय प्रियतम से कुछ सन्देश पाने की कामना से वहीं खड़ी हो गयीं। श्रीकृष्ण ने "मैं सदा तुम्हारे सन्निकट हूँ", कहकर उन्हें धैर्य बँधाया। अक्रूरजी ने रथ मथुरा की ओर बढ़ा दिया।

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणू रथस्य च।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥

(भा.१०/३९/३६)

उन भोली गोपियों को जब तक रथ की ध्वजा और रथ चक्र से उत्थित धूल दिखाई देती रही, वे वहीं जड़वत खड़ी रहीं। मन तो मनमोहन के साथ गमन कर गया, अब तो मनरहित गात्र मात्र शेष था।

ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने।
विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥

(भा.१०/३९/३७)

आशा बार-बार कह रही थी कि खड़ी रहो, शायद नीलमणि ब्रज सीमान्त जाकर लौट आयें।

किन्तु आशा ने निराशा का रूप ले लिया तो घर को लौटना पड़ा उन सरलाओं को।

अहर्निश कृष्णलीला गान करके विरह-वेदना को कुछ कम करतीं।

मथुरा-गमन के समय श्रीकृष्ण ने सांत्वना दी गोपियों को किन्तु अक्रूर जी ने कोई सहानुभूति प्रकट नहीं की। उनके हृदय में गोपियों के प्रति क्रूर भाव आ गया था। वज्र हृदय करने से ही इस स्थान का नाम बज्रवारी पड़ा।

श्री मज्जीवगोस्वामी जी ने वैष्णव तोषिणी में इस वज्रभाव का इस प्रकार विवेचन किया है, जिसमें उन्होंने विष्णुपुराण का दृष्टान्त दिया है।

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ।
अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम्॥

(भा.१०/३९/३२)

एवमुक्तप्रकारेण रूदतीरपि स्त्रियोऽनादृत्येति।अक्रूरस्यापराधो ध्वनितः स्वतः सर्वैरेवानुकम्प्यानां तत्रापि तादृशश्रीकृष्णप्रेम्णा तथा रुदतीनां ब्रजस्त्रीणां कथमपि सान्त्वनमनपेक्ष्य प्रस्थानात् अतस्ताभिरपि तदपराधं मत्वा प्रागुक्तं योऽसावनाश्वास्येति श्री विष्णुपुराणेऽपि 'अक्रूरः क्रूरहृदयः शीघ्रं प्रेरयते हयान्।एवमार्त्तासु योषित्सु न घृणा तस्य जायते' इति अतएव श्री गोकुलमहिम्नास्तु तदपराधस्य फलमक्रूरस्य वक्ष्माणस्यमन्तकप्रसंगे मन्यन्ते सूर्य उदित एवेति स्लग्नाद्यापेक्षया रथं भ्रातृभ्यां ताभ्यामिति शेषः।

(भा.टी.जीव गो.१०/३९/३२)

वज्र हृदय करने का बहुत बड़ा अपराध भी लगा अक्रूर जी को, जिसके कारण उनके मन में स्यमन्तक मणि के लिए लोभ बुद्धि आ गई और श्री भगवान् से उन्होंने कपट किया।

बज्रवारी नाम होने का एक और कारण है जिसका सम्बन्ध बकासुर वध की लीला से है। बकासुर वध का वृत्तान्त श्री 'गर्ग संहिता' में विस्तार से है। बकासुर जब श्रीकृष्ण को मारने के लिए आया तो समस्त देवता ब्रह्मा, शिव, काली, इन्द्रादि प्रभु की सहायता के लिए आये। सबने अपने-अपने अमोघ अस्त्रों का प्रयोग किया किन्तु सब निष्फल हो गए। उस युद्ध में यहाँ सुरेन्द्र ने वज्र का प्रयोग किया, अतः इस स्थान का नाम बज्रवारी पड़ गया।

अक्रूर जी जब श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने लगे तो कुछ गोपियाँ अश्व की लगाम पकड़कर खड़ी हो गयीं। कुछ रथचक्र से लिपट गईं। उसी समय श्रीकृष्ण की इच्छा जानकर योगमाया के प्रभाव से यहाँ इस स्थान पर एक विद्युत पुंज गिरा, इसलिए इसे बिजवारी अथवा विजुआरी नाम की संज्ञा दी गई –

बिजुरिर पुंज ज्ञान हईल सवार।
एई हेतु बीजआरी नाम से इहार।

(भ.र.)

जहाँ पर वियोग हुआ है, उसे वियोग कुण्ड या बिछोर कुण्ड कहते हैं, जो गोपीजनों के वियोगाश्रुओं से बना है।

इस स्थल का तीसरा नाम विद्युन्नगर है। इसका सम्बन्ध महारास लीला से है। जब श्रीकृष्ण श्रीराधा को महारास से लेकर चले तो संकेत वट में आकर वेणी-रचना की –

श्रीकृष्णो राधया सार्द्धं संकेतवटमाविशत् ।
प्रियायाः कबरीपुष्परचनां स चकार ह ॥

(ग.सं.वृ.खं.२१/१८)

तत्पश्चात् खदिरवन आये और इस स्थान पर जब आये तो श्रीजी की कांति विद्युतवत् प्रदीप्त हो उठी, अतः खायरे के समीप यह विद्युन्नगर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अध्याय – १३

श्री जाव वट

नन्दग्राम से ३ कि.मी.पूर्व दिशा में जाव वट स्थित है। यह ब्रज के १२ अधिवनों में से एक है। यह स्थल प्रिया-प्रियतम के ऐक्य को दर्शाता है, वस्तुतः तत्व एक ही है, बस रसिकों के रस पोषण, भक्तों के भाव पोषण, प्रेमियों को प्रेम रस का निर्यास करने हेतु कृपा परवश उसने दो स्वरूप ग्रहण कर लिए १. राधा एवं २. कृष्ण। क्योंकि –

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् ।

(बृह.उप.चतुर्थ ब्राह्मण.१/३)

पहले अकेले आये थे, अतः अवतार लेकर भी रसमयी लीला की सिद्धि में एकाकी रूप को असमर्थ देखकर अपने वाम पार्श्व से ह्लादिनी शक्ति आत्मारूपा श्रीराधा को प्रकट किया तो एक परमोपास्य तत्व होकर भी लीलार्थ दो हुए –

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत् ।

(राधा तापनी उपनिषद्)

किन्तु इससे उनका ऐक्य भिन्न या न्यून नहीं हुआ –

राधाकृष्णयोः एकासनं एका बुद्धिः एकं मनः एकं ज्ञानम् ।
एकात्मा एकं पदं एकासृतिः एकं ब्रह्म अत्र द्वयोर्नभेदाः ॥

(राधोपनिषद द्वितीयः प्रपाठकः)

श्री भगवान उवाच –
ये राधिकायां मयि केशवे मनाग्भेदं न पश्यन्ति हि दुग्धशौक्लवत् ।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति तदहैतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः ॥
ये राधिकायां मयि केशवे हरौ कुर्वन्ति भेदं कुधियो जना भुवि ।
ते कालसूत्रं प्रपतन्ति दु:खिता रम्भोरु यावत्किल चन्द्रभास्करौ ॥

(ग.सं.वृ.खं.१५/३२-३३)

स्वयं भगवान् कहते हैं – "ललिते ! जो मुझ केशव और मेरी प्राणेश्वरी राधा में लेश मात्र भी भेद दर्शन नहीं करते हैं, प्रत्युत दुग्ध और उसकी शुक्लता के समान हम दोनों को अभिन्न मानते हैं, मेरी कृपा से उनके हृदय में अहैतुकी भक्ति का उदय होता है और वे सीधे मेरे नित्य धाम को प्राप्त होते हैं। भेददर्शियों को नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।"

राधा कृष्ण में भेद अशक्य है –

"द्विश्चैको न भवेत् भेदो दुग्धधावल्ययोर्यथा"

दुग्ध और उसकी सफेदी को भिन्न करना जैसे असम्भव है, उसी प्रकार राधा और माधव में द्वैत की कल्पना भी महापापों की अतिशयता है, जो अकरणीय है। वे द्विदेह एक प्राण हैं और सर्वत्र इस गूढ़तम द्वय में एक तत्व का अद्भुत परिवेषण है। तत्वतः एक होने पर भी अपने अचिन्त्य माधुर्य के रसपानार्थ, वे स्वयं श्रीराधा के रूप में प्रकट हो गए –

रासे सम्भूय गोलोके सा दधाव हरे पुरः ।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥

(ब्र.वै.ब्र.ख.५/२६)

द्वैत भाव के उन्मूलनार्थ –

"आत्मानं द्विधा करोत् अर्द्धेन स्त्री अर्द्धेन पुरुषः"

(सुबालोपनिषद२-१)

देह भेद भी दूर करने हेतु, अर्द्ध देह नित्यसंगिनी श्रीराधा और अर्द्ध देह नित्यसंगी श्रीकृष्ण का हो गया –

"हरेरर्द्धतनू राधा राधिकार्द्ध तनू हरिः"

(नारद पाञ्चरात्र)

स्वयं श्री कृष्ण कहते हैं –

"न किञ्चिदावयोर्भिन्न्मेकाङ्गं सर्वदैव हि"

(ब्र.वै.कृ.ज.ख.६/६७)

हम दोनों में कोई भिन्नता नहीं है, हम सदा एक ही हैं।

और ब्रज रसिकों ने तो इस परतत्व का भाव भरा विशद विवेचन किया है, जो मात्र श्रद्धैकगम्य है। श्री ठाकुर जी श्री स्वामिनी जी से कहते हैं –

देहस्तेऽहं त्वमपि ममाशीति तावत् प्रवादः
प्राणस्तेऽहं त्वमपि ममाशीति एतत् प्रलापः।
तेस्यामहमपि तत् बाधितं साधु राधे
नो युक्तं नौ प्रणयविषये युष्मदस्मद् प्रयोगः ॥

(कश्चिद् रसिक)

कृष्ण – "हे लाडली जू ! आप मेरी देह हो, मैं आपकी देह हूँ .... ।"

(लालजी ने सोचा – किन्तु, यहाँ मन, प्राणादि की भिन्नता रह गई; इस प्रवाद को दूर करते हुए बोले)

"आप मेरी प्राण हो, मैं आपका प्राण।"

(किञ्चिद् भेद यहाँ भी रह गया, अतः यह भी ठीक नहीं है, इस प्रलाप का निरसन करते हुए)

कृष्ण – "मैं आपका हूँ, आप मेरी हो।"

अणुमात्र भिन्नतानुभूति इस बार भी हुई, तो बोले – "यह मैं और तू तो एक झगड़ा ही है, आपके और मेरे मध्य, मैं – तू का प्रयोग ही न हो, यह सर्वोत्तम है। अतः –

यः कृष्णः साऽपि राधा या राधा कृष्ण एव सः ।

(ब्र.सं.)

जो कृष्ण है, वही राधा है और जो राधा है, वही कृष्ण है।"

श्याम भये वृषभानु सुतावश और नहीं कछु भावै हो ।
जो प्रभु तिहूँ भुवन को नायक सुरमुनि अंत न पावै हो ॥
जाको शिव ध्यावत निशि वासर सहसानन जेहि गावै हो ।
सो हरि राधावदन चंद को नैन चकोर त्रसावे हो ॥
जाको देखि अनंग अनागत नागरि छबि भरमावै हो ।
'सूरश्याम' श्याम श्यामावश ऐसे ज्यों संग छाँह डुलावै हो ॥

राधा-कृष्ण एक तत्व है, किन्तु श्रीजी के अनन्य ब्रज रसिकों का ऐसा मानना है कि इस तत्व में यदि भिन्नता होती भी है, तो वह यह है – श्री राधिका परदेवता हैं। इनकी आराधना स्वयं श्री हरि भी करते हैं –

"कृष्णेन आराध्यते इति राधा"

(राधोपनिषद)

अर्थात् राधा तत्व श्रीकृष्ण से भी बढ़ गया। बस ! यही इस तत्व की भिन्नता है। तैत्तरीय श्रुतिने भी यही कहा –

रसो वै सः रसँ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति कोह्येवान्यात्कः प्राण्यात् ।
यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ।
एष ह्येवानन्दयाति ।

(तैत्तरीयोपनिषद ब्रह्मानन्दवल्ली सप्तम अनुवाक-१)

आस्वाद्य वस्तु केवल रस है, जो सबके लिए आनन्दप्रद है और वो रसस्वरूप श्रीकृष्ण ही हैं; किन्तु उनको भी रस प्रदान करती हैं, रससार सिंधु श्रीराधा –

"रसभोग प्रदानेन राधा वृद्धिकरीमता"

(दैवी भागवत)

स्वामी श्री हरिदास जी महाराज ने भी कहा –

"बड़े भये हो बिहारी याही छांह ते"

यह श्री जाव वट इसी भाव की लीला का स्थल है। यहाँ श्री कृष्ण ने राधा रानी के चरणों की आराधना की –

राधा पादतलाद्यत्र जावकः स्खलितोऽभवत् ।
यस्माज्जाववटं नाम विख्यातं पृथिवी तले ॥

(ब्रहद् गौतमीय तन्त्र)

अर्थ – यहाँ श्रीजी के चरण तल से जावक (महावर) मिटा था। अतः यह स्थल जाव वट नाम से विख्यात हुआ। यहाँ आराधक श्रीकृष्ण ने स्वाराध्या श्रीजी के श्री पादपद्मो में अपने कर से रक्त-आलक्तक लगाया।

इस स्थल की लीला को रसिकाचार्य महाप्रभु हित हरिवंश जी ने भी गाया –

कामं तूलिकया करेण हरिणा यालक्तकैरंकिता
नानाकेलिविदग्धगोपरमणीवृन्दे तथा वन्दिता ।
या संगुप्ततया तथोपनिषदां हृद्येव विद्योतते
सा राधाचरणद्वयी मम गतिर्लास्यैकलीलामयी ॥

(रा.सु.नि.२०५)

नाना केलि-विलासों में विदग्ध गोपरमणियों की स्वामिनी महाशक्ति श्रीराधा रानी के युग्म चरणों को अपनी गोद में रखकर लालजी मन-नयन को उनके श्री चरणों में केन्द्रीभूत करके, जावक से अद्भुत चित्रकारी कर रहे हैं। पलभर को पलक झपती नहीं हैं। अपलक नेत्र श्रीजी की सेवा में संलग्न हैं –

कर कंजक जावक दै रूचि सौं, बिछिया सजिके ब्रजमाणिले के ।
मखतूल गुहे घुंघरू पहराय छला-छिगुनी चित चाड़िलि के ॥
पगजेब जराव जुलूसन की रवि की किरणें छवि छाड़िलि के ।
जग बन्दत है जिनको सगरो पग वन्दत कीरति लाड़िलि के ॥

रसिक महापुरुष भगवद् रसिक जी ने भी यहाँ की लीला का गान किया –

जावक युत युग चरण लली के ॥
मंजुल मृदुल मनोहर सुख निधि सुभग सिंगार निकुंज गली के ।
अद्भुत अमल अनूप दिवाकर मोहन मानस कंज कली के ॥
सुरतरु कामधेनु चिंतामणि भगवद् रसिक अनन्य अली के ॥

और रसिक शिरोमणि श्री व्यास जी ने तो यहाँ श्रीजी के जावक युक्त चरणों की अनुपम छवि का दर्शन कर उन पर नन्दनन्दन को ही न्यौछावर कर दिया। वे कहते हैं –

सुभग गोरी के गोरे पांय ।
श्याम काम बस जिनहिं हाथ गहि राखत कंठ लगाय ।
कोटि चन्द्र नखमणि पर वारौं गति पर हंस के राय ।
नूपुर धुनि पर मुरली वारौं जावक पर ब्रजराय ॥

श्रीकृष्ण ने श्रीजी के चरणों में यहाँ जावक लगाया, अतः आज भी यह स्थान जाव वट नाम से विख्यात है।

गौड़ीय आचार्यों ने जाव वट को परकीया लीला का केन्द्र माना है।

ततो जाववट प्रदक्षिणा प्रार्थना मन्त्र :-

राधाजावकसंभूत सौभाग्यसुखवर्द्धन ।
रतिकेलि सुखार्थाय नमो जाववटाय च ॥
यत्र राधाकरोत्स्नानं चतुषष्ठिसखिभिस्सा ॥
यस्माज्जाबबटे संस्थं राधाकुण्डं मनोहरं ॥
रक्तनीरसमाक्रान्तं किंचित् पीतसमाकुलं ॥
रतिकेलिसुखं नृणामतिसौभाग्यवर्धनं ॥

(वृ.गौ.त.)

श्री राधिका जी के चरण जावक से उत्पन्न, सौभाग्य सुख प्रदान करने वाले, रति क्रीड़ा सुख विधान करने वाले जाव वट, आपको प्रणाम है।

जहाँ श्री राधा कुण्ड है, जिसमें श्री किशोरी जी ६४ सखियों को साथ लेकर स्नान करती हैं, जो कुछ पीला और रक्त जल से परिपूर्ण है, जो अतिशय सौभाग्य सुख को बढ़ाने वाला व रति केलि सुख के लिए है।

ततो किशोरी कुण्ड प्रार्थना मन्त्र :-

राधायै सततं तुभ्यं ललितायै नमो नमः ।
कृष्णेन सह क्रीडायै राधाकुण्डाय ते नमः ॥

(वृ.गौ.त.)

अर्थ – हे श्रीराधे, हे ललिते, आपको प्रणाम है, हे श्रीकृष्ण क्रीड़ा निमित्त प्रकट श्रीराधा कुण्ड ! श्रीकृष्ण सहित आपको प्रणाम है।

ब्रज जन कथा

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो...

भय से कंस को कृष्ण प्राप्ति हुई यह तो सत्य है किन्तु यह भय उसे अपनी मृत्यु का न था क्योंकि कंस का पराक्रम निश्चित ही विस्मयान्वित कर देने वाला था।

गर्ग संहितानुसार

तपस्थित आवेशावतार परशुराम जी को जब उसने सौ बार महेन्द्र गिरि सहित उठा लिया तो परशुराम जी ने क्रोधित होकर कहा – "यदि तू इतना ही शक्ति सम्पन्न है तो इस तीस लाख मन भार के वैष्णव पिनाक पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर दिखा।" खेल-खेल में कंस ने प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसकी एक बार, दो बार नहीं सौ बार डोर को कान तक ताना। इस विचित्र पराक्रम से प्रभावित होकर परशुराम जी ने वह शिव धनु कंस को ही दे दिया। अब तू ही इसे रख किन्तु स्मरण रखना जो इसे तोड़ देगा वह तुझे न छोड़ेगा।

रामावतार में श्रीराम व रावण का जो युद्ध हुआ वह तो कुछ भी न था, रामावतार के जाम्बवंत, द्विविद आदि महाबलशाली योद्धाओं के पादप्रहार से रावण, मेघनाद आदि व्याकुल हो गए थे।

मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निजबल देखरायो॥

(रा.लं.का.७४क)

मेघनाद के वक्ष पर त्रिशूल का प्रहार किया, जैसे ही वह गिरा जाम्बवान ने क्रुद्ध हो उसका पैर पकड़कर घुमाते हुए पृथ्वी पर पटक दिया तब इन अतृप्त योद्धाओं को कृष्णावतार में प्रभु ने तृप्त किया।

सीता स्वयंवर में जो धनुष था वह शिव धनुष था "कहँ धनु कुलिसहु चाही कठोरा"

वज्र से भी अधिक कठोर था वह धनु। रावण व बाणासुर ने तो उसे स्पर्श करने का भी साहस नहीं किया "रावण बाण छुआ नहीं चापा"और वह प्रभु श्रीराम के स्पर्श मात्र से ही टूट गया।

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

(रा.बा.का.२८३)

अथवा

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

(रा.बा.का.२६१)

इस धनु के तोड़ने पर भी परशुराम जी को विश्वास नहीं हुआ कि श्रीराम सकललोकेश्वर हैं अतः बोले –

राम रमापति कर धनु लेहूँ । खैंचहु मिटै मोर संदेहू ॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ । परसुराम मन बिसमय भयऊ ॥

(रा.बा.का.२८४)

"हे लक्ष्मी कान्त ! आप इस वैष्णव धनु (भगवान् विष्णु का धनुष) को लीजिये एवं खींचिये तब मेरा संदेह भंग होगा क्योंकि इस पिनाक को प्रभु के अतिरिक्त कोई उठा ही नहीं सकता । आपने शिव धनु तोड़ दिया वह कोई बड़ी बात नहीं है । वैष्णव धनु को तान कर दिखाएँ ।" तब वह धनु स्वतः राम जी के समीप चला गया जिससे परशुराम जी विस्मयान्वित हो गये । शिव धनु से बहुत अधिक भारी था वैष्णव धनु जो परशुराम जी के द्वारा कंस को प्राप्त हुआ और उसे भगवान् श्रीकृष्ण ने तोड़ा । कथनाशय है कि कंस की शक्ति को रावणादि कभी नहीं पा सकते थे । रावण ने तो शिव धनु को भी स्पर्श करने का साहस नहीं किया था एवं कंस ने वैष्णव धनु को १०० बार खींचकर तान दिया था । यद्यपि रावण कम शक्तिशाली न था । जिस परम वीर रावण की गर्दन को स्पर्श करके ही चला गया विष्णु भगवान् का सहस्रार (सुदर्शन चक्र) । रावण का कुछ बिगाड़ नहीं पाया सम्पूर्ण संसार का संहारक सुदर्शन ।

महाकवि माघ के शब्दों में –

बृहच्छलानिष्ठुरकण्ठघट्टनाविकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः ।
जगत्प्रभोरप्रसिहिष्णु वैष्णवं न चक्रमस्याक्रमताधिकन्धरं ॥

(शिशुपाल वध.१.५४)

रावण को तो सहस्रबाहु ने ही बगलकैद दे दी, उस सहस्रबाहु का संहार किया परशुराम जी ने, उन परशुराम जी को भी अपने महान पराक्रम से प्रभावित कर लिया था कंस ने ।

कंस के पराक्रम के आगे न रावण कुछ था ना हीं हिरण्यकशिपु । रावण से अधिक शक्ति संपन्न तो शिशुपाल ही था । महाकवि माघ के महाकाव्य शिशुपाल वध में वर्णित है –

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसामनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया ।
दशाननादीनभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् हसत्यसौ ॥

(शिशुपाल वध.१.७१)

शिव से वरदान प्राप्त कर बलशाली शिशुपाल देव, दानव व राक्षस सभी पर शासन करते हुए अतिशय पराक्रमी रावणादि की शक्ति का उपहास करता था ।

हिरण्यकशिपु भी पराक्रमी कम न था जो पीछा करते-करते वैकुण्ठ जा पहुँचा तब वहाँ श्री हरि को उसके हृदय में प्रवेश करना पड़ा कि जहाँ मैं जाऊँगा यह मेरा पीछा करेगा।

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ।
श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥

(भा.८/१९/१०)

भय से काँपते हुए श्री हरि उसके हृदयस्थ हो गए किन्तु इस महावीर के अत्याचार से पीड़ित देवता ब्रह्म लोक भाग आये और ब्रह्मा जी की शरण ग्रहण की।

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ।
धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥

(भा.७/३/६)

किन्तु कंस से पीड़ित देवों को तो अन्यत्र शरण ही दिखाई न पड़ी अतः कंस के ही शरणागत हुए अर्थात् देवों को कंस के अत्याचार से मुक्त करने में विधि भी समर्थ न थे।

केचित् प्रांजलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ।
मुक्तकच्छशिखाः केचिद् भीताः स्म इति वादिनः ॥

(भा.१०/४/३४)

अस्त्र-शस्त्र पृथ्वी पर पटक कर दीनतापूर्वक रक्षा की याचना करने लगते, कुछ चोटी खोलकर शरण लेते तो कुछ लंगोट ही नीचे डाल देते।

कंस की दिग्विजय "भागवत" में वर्णित नहीं है चूँकि वह सूत्र ग्रन्थ है किन्तु "गर्गसंहिता" आदि अन्य ग्रन्थों में इसकी चर्चा है।

गर्गसंहितानुसार कंस की दिग्विजय

हजार हाथी के बल वाले जरासंध के कुवलयापीड गज को भी जिसने उठाकर सैकड़ों योजन दूर फेंक दिया, माहिष्मती नरेश के पाँच पुत्र चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल्य, तोशलादि जो कि प्रख्यात मल्ल थे इनका भी दम करा दिया। द्विविद वानर की अस्थि को चूर्ण बना दिया, केशी को भी जिसने वश में कर लिया। अघ, अरिष्ट, नरक, प्रलम्ब, भौम, धेनुक, तृणावर्त, बकादि अनेकों देवजित दैत्यों को जिसने पराजित कर अपना मित्र बना लिया।

व्योम, बाण, वत्स, कालयवन आदि को परास्त कर उसने फिर देवों को कब्जे में लिया। देवराज का तो अमोघ परिघ (वज्र) की धारें ही तोड़ दी, ऐरावत को एक ही मुक्के में व्याकुल कर दिया, सूंड़ पकड़ कर कई योजन दूर फेंक दिया।

(ग.स.गो.ख.७/५३)

देवों को भागने तक का स्थान न मिला। शिखा खोल कर शरणागत हो गये।

ऐसा परम वीर भी वृषभानु जी महराज के तेज पुंज से धर्षित हो गया।

श्री जी के प्रभाव के कारण।

(ग.स.गो.ख.६/२, ५)

ब्रजवासियों ने स्वयं कहा – "राजन् ! तुम्हारा कथन सत्य है, ये राधा हरिप्रिया हैं तत् प्रभावेण इन्हीं के प्रभाव से आपका वैभव नन्दादि से भी अधिक दिखाई पड़ता है। इस राधा के बल से ही कंस पराभूत हो गया। यह बल, यह वैभव, नन्द जी के निकट भी नहीं है।" श्री राधारानी के इस प्रभाव के विषय में ब्रजजन कथा सत्य ही है –

पराशक्ति का पराक्रम तो देखो, जो बहुविधि प्रयास के बाद भी क्रूर कंस का आतंक किशोरी जी तक न पहुँच सका। एक बार विचार किया कि ब्रज जाकर नन्द-वृषभानु को ही समाप्त कर डालूँ। जाव ग्राम तक आया, यहाँ के स्थानीय ब्रजवासियों का कथन है कि किशोरी वट के निकट किशोरी कुण्ड को पार करने हेतु जैसे ही प्रवेश किया बस बन गया मोटल्ली सखी। निकट ही क्रीड़ारत किशोरी जी की प्रिय सहचरी ललिता जी ने जब स्थूल नितम्बिनी को देखा तो पूछा –

ललिता जी – "अरी मोटल्ली कहाँ ते आयी है? " श्रीजी को देखते ही कंस उनके तेजपुंज से पराभूत हो गया –

सर्वं सौख्यं भोजनादि दृश्यते सांप्रतं तव ।
कंसोऽपि धर्षितो जातो दृष्ट्वा ते बलमद्भुतम् ॥

(ग.सं.गि.ख.६/५)

लज्जा के कारण कंस कुछ न कह सका, स्त्री रूप हो जाने से मथुरा को भाग भी न सका, बस, कर-जोड़कर खड़ा हो गया।

मोटल्ली (कंस) – "मैं आपकी शरण में हूँ श्री राधे, मुझे क्षमा करें।"

तब तक ललिता जी बोल उठीं – "अरी धमधल्ली ! कर जोड़ के बैठवे ते काम नहीं सरैगो, चल गोबर थाप। हमारे वृषभानु बाबा के लाखों गैया हैं। बहुत गोबर होय, थोड़ो काम करेगी तो शरीर की स्थूलता भी कम है जायेगी।"

ब्रज में ऐसी जनश्रुति है कि ६ महीने तक कंस से गोपियों ने खूब गोबर थपवाया। एक दिन कंस ने गिड़गिड़ाते हुए कहा – "स्वामिनी जू ! अब तो दया करो।"

ललिता जी बोलीं – "जा सर में स्नान करके पार चली जा और फिर कभी भूल के भी मत अइयो।" जैसे ही सर में स्नान किया। कंस को पुनः पुरुष रूप प्राप्त हुआ, फिर तो उसने ऐसा पलायन किया कि मुड़कर देखा तक नहीं।

श्री राधारानी की इस अद्भुत वैभव-शक्ति की चर्चा ब्रजवासियों ने स्वयं की –

त्वत्समं वैभवं नास्ति नन्दराजगृहे क्वचित् ।
कृषीवलो नन्दराजो गोपतिर्दीनमानसः ॥

(ग.सं.गि.ख.६/७)

ब्रजवासियों ने कहा – "वृषभानु जी ! आपके पास जो वैभव है, यह तो नंदबाबा के पास भी नहीं है। फिर नन्दनन्दन में कहाँ से होगा? "

नन्दनन्दन का तो यह पराक्रम था कि प्रतिदिन किसी न किसी असुर का आना लगा ही रहता और वे बिना शस्त्राश्रय लिए उसे समाप्त कर देते एवं श्रीजी की ऐसी अद्भुत शक्ति थी कि बक-अघादि गोकुल, महावन, वृन्दावन ही असुरों का आना लगा रहता था, जो कि बरसाने की सीमा से बहुत बचकर आते थे क्योंकि मन में भय था कि यदि हम भी सखी बन गए तो ये गोपियाँ फिर न जाने कब तक गोबर थपवाएगीं –

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥

(भा.७/१/३०)

भयात् कंसो का अर्थ है कंस को भय से ही परा सिद्धि प्राप्त हुई, भय केवल कृष्ण से ही नहीं था अपितु गौर तेज उनकी सखियों से भी था क्योंकि उसका धर्षण हुआ था इसीलिए वृषभानुजा (श्रीराधा) के अद्भुत बल को देखकर वह धर्षित (पराभूत) हुआ। धर्षित होने से ही उसका भय सौ गुना बढ़ गया था।

श्री जाव वट मंदिर एवं किशोरी कुण्ड

अध्याय – १४

धमसींगा

यह धनिष्ठा सखी का गाँव है।

श्री गिड़ोह

ततो गानबन प्रार्थना मन्त्र :-

गोप्युत्साहकृतोद्गान कृष्णेंगितविधायिने ।
सर्वदोत्सव रूपाय नमो गानबनाय ते ॥

(कूर्म.पुराण)

गोपियों के उत्साह से जो गान किया गया, कृष्ण की क्रीड़ाओं का विधान करने वाले, सर्वदा उत्सव स्वरूप, हे गान वन ! तुम्हें नमस्कार है। यह वह स्थल है, जिसका पौराणिक नाम श्री गानवन है। यहाँ गान लीला हुई है। गौचारण काल में यहीं गोप-ग्वालों की कन्हैया के साथ परस्पर संगीत गोष्ठी होती थी क्योंकि कन्हैया का हर सखा उसी की तरह रंगीला-छबीला संगीत शिक्षक है। बड़े-बड़े संगीत मार्तण्ड गन्धर्वों के गायन गुरु-तुम्बुरु और तुम्बुरु के भी गुरु-प्रलयंकर शंकर और भी कोई संगीतज्ञ हो, सबको यहाँ के नन्हे-नन्हे गोप अपनी संगीत गोष्ठी में खुलेआम चुनौती देते हैं –

"भैया जाकू हारवे कौ शौक है वो आ जाय"

बड़े-बड़े देवगण श्री ठाकुर जी के साथ उनकी सख्यरस की लीला में ग्वारिया बनकर ब्रज में आते हैं और उनकी लीला का लाभ लेते हैं।

यह उल्लेख श्रीशुकदेव जी ने किया है –

गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥

(भागवत १०/१८/११)

देवगण आने की सामर्थ्य तो नहीं रखते हैं किन्तु गोष्ठी काल में ऊपर से सुमन वर्षा अवश्य करते हैं, दूर से ही नन्हे-नन्हे ग्वालों को प्रणाम करते हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं।

धन्य है ये धरणी, जहाँ ये छोटे छोटे अत्यन्त चपल ऊधमी कृष्ण सखा, अभी तो इन्हें कछनी पहनना भी नहीं आता और जब गाने लगते हैं तो बड़ों-बड़ों की कछनी उतार देते हैं, प्रणाम है इनको और इनके सर्वस्व, पूर्ण पुरुषोत्तम श्री हरि को। एक समय तो इस वन में इन नन्हे ग्वालों ने ब्रह्मा को भी ठिकाने लगा दिया। ब्रह्मा ने जब ग्वाल व वत्स हरण किया, तो उस समय ब्रह्मलोक में तो ये शान्त रहे कि कहीं हमारे ऊधम से ब्रह्म लोक नीचे पृथ्वी में न धँस जाये, परन्तु सोच लिया कि इस जड़ बुद्धि की यहाँ तो नहीं पर ब्रज में अवश्य खबर लेंगे।

जैसे ही नटखट बालक ब्रज में पहुँचे, पहले तो कन्हैया से गले लग-लगकर मिलने लगे, पर अचानक मनसुखा को याद आया, मैं तो दाऊ से भी २ वर्ष ज्येष्ठ हूँ

बोला – "लाला कन्हैया ! मेरे पाम छू लै ....."

ऋषभ – (दाऊ से तो २ दिन छोटा हूँ पर कृष्ण से तो बड़ा ही हूँ)

"कन्हैया ! लाला मेरे पामन कूं दबा........."

और ये भक्त प्रेमी भगवान् सब की टहल कर रहे हैं। ब्रह्मा का मोह तो दूर करना ही था ब्रह्म को, अतः दिखा दिया अपना ऐश्वर्यमय रूप और ब्रज का वास्तविक स्वरूप.... ब्रह्मा तो जैसे सब चौकड़ी भूल गये, मानो मर कर दुबारा प्राण आये हैं। स्तुति कर जाने ही वाले थे कि एक चपल बालक ने दाढ़ी पकड़ ली और बड़े रौब से पूछा –

"कहाँ भाग्यौ जाय? हाथ से संकेत किया, यहीं बैठ जा धूर में चुप-चाप।"

तोष – "कछु हम ते सीख कै जा"

तब तक एक वेणु ले आया और पूछा – "कभी वेणु बजाई है।" दूसरा –"लाला ! यों पूछ कभी वेणु जीवन में देखी भी है।"

तीसरा – "पोथी-पन्नानते अवकाश मिलै तो कछु दूसरी वस्तु की हू जानकारी होय"

सब मिलकर – "हमारौ सरदार अब वेणु बजाकै दिखावैगौ, दत्त-चित्त सों सुनियो", तब तक पंचानन आ गये, एक ने उठकै उनको भी स्वागत करौ – "भोले ! तू यहाँ बैठ जा ! देख अगर तोपै कछु गान-टान आवै, तौ तेरे तौ पाँच मुख हैं कछु सुना, गाय-बजाये के दिखा, नहीं तो हम तौ एक-एक मुख के हैं, तुम सब चतुरानन, पंचानन, सहसानन कूं मात कर देंगे।" सब देव शान्त बैठे हैं, भाई ब्रज की संगीत गोष्ठी है।

यहाँ तो इनका शिष्यत्व स्वीकार करने में ही लाभ है। नृत्योद्यता अप्सराएँ, वाद्य उठाये किन्नर, गाने को मुख खोले तत्पर गन्धर्व, सब मूर्ति के समान बन गये। देहानुसन्धान भी न रहा। सब मौन धारण करके बैठे हैं और न केवल सिद्ध, देवगण ही प्रत्युत दूर-दूर के वन-पशु समीप आकर जब बैठ जाते हैं, तो लगता है मानो चित्रलिखित हैं। पक्षी समुदाय उच्च तरुओं के ऊपर पंक्तिबद्ध बैठ जाता है और बड़े ही ध्यान से सब सुनते-देखते हैं मानो ये भी

उस गोष्ठी के श्रेष्ठ सदस्य हैं और ये बात तो भाई सत्य है ही क्योंकि ये पक्षीगण कोई साधारण नहीं हैं (भा. १०/२१/१४) बड़े-२ मुनिगण ही हैं जो अपनी दीर्घकाल पर्यन्त की गई साधना को सफल करने यहाँ आये हैं। यह गोष्ठी देखकर ही तो शुक मुनि ने भागवत में एक सम्पूर्ण अध्याय वेणु को दे दिया। जो "वेणुगीत" नाम से ज्ञातव्य है और सूरदास जी ने भी इस लीला को मुखरित किया।

हरि के बराबर वेणु कोऊ न बजावै।
जग जीवन बिदित मुनिन नाच जो नचावै॥
चतुरानन पंचानन सहसानन ध्यावै।
ग्वाल बाल लिए जमुन कच्छ बछ चरावै॥
सुर नर मुनि अखिल लोक कोउ न पार पावै।
तारन तरन अगिनित गुन निगम नेति गावै॥
तिन कौं जसुमति आँगन ताल दै नचावै।
'सूरज' प्रभु कृपा धाम भक्त बस कहावै॥

तभी तो ब्रह्मा ने कहा –

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता
मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः
शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते॥

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥

(भा १० /१४/३२, ३३, ३४)

तो ऐसा ये प्रणम्य स्थल है।

ततो गन्धर्व गण प्रार्थना मन्त्र :-

शुभारत्यभिरामाय तीर्थराज नमोस्तु ते।
विश्वावसुकृतस्नान सुकंठवरदायिने॥

(कू.पु)

शुभा रति से जो सुन्दर है ऐसे तीर्थराज, विश्वावसु गन्धर्व ने जहाँ स्नान किया, उसको सुन्दर कंठ देने वाले तुमको नमस्कार है।

इस बृहद वन प्रान्त में पहले कई पावन सर थे जो कालान्तर में लुप्त होते चले गये, वर्तमान में एक गन्धर्व कुण्ड ही सुरक्षित दिखाई पड़ता हैं। वन के ईशान कोण में गेंदोखर स्थान है, पूर्व दिशा में गौधरवन कुण्ड, दक्षिण दिशा में बेलवन कुण्ड, नैऋत कोण में गोपी कुण्ड, पश्चिम दिशा में जलभर कुण्ड, वायु कोण में विहार कुण्ड दर्शनीय है।

महराना

महरि का पीहर है – महराना। पीहर का नाई भी आ जाये, तो लाली के ससुराल में नाई के सत्कार के लिए भी देवपूजन जैसी तैयारी हो जाती है। मैया की गोद में नन्दकुलचन्द आया तो ननिहाल पक्ष नन्द गाँव आया। नानी पटुला और नाना सुमुख के समान ही महराने का हर नर-नारी पूज्य है यहाँ। महराने के एक विप्र जिन्होंने लाली (यशोदा) को भी खूब लाड़ लड़ाया और जब लाली के लाला की जन्म सूचना मिली तो अपने दौहित्र का मुख देखने को मन उतावला हो गया। देखो हमारी कन्या कितनी भाग्योज्ज्वला है कि महराने से आई तो यहाँ भी महारानी बन गई। इस प्रकार का मन में विचार करने लगे। महराने से विप्रवर दौहित्र को दुलराने नन्द व्रज आये।

सूरदास जी के शब्दों में –

महराने ते पांडे आयो ।
ब्रज घर घर बूझत नंदरावर पुत्र भयो सुनिकै उठि धायो ।
पहुँच्यो आइ नन्द के द्वारे यशुमति देखि आनन्द बढ़ायो ।
पांय धोइ भीतर बैठायो भोजन को निज भवन लिपायो ।
जो भावै सो भोजन कीजै विप्र मनहि अति हर्ष बढ़ायो ।
वयसि बढ़ी विधि भयो दाहिनो धनि यशुमति ऐसो सुत जायो ।
धेनु दुहाइ दूध लै आई पांडे रूचि कै खीर चढ़ायो ।

पीहर के विप्र को देख मैया अतिशय हर्षित हुई। अर्घ्य देकर पादप्रक्षालन कर गोमय से उपलिप्त परिमार्जित भवन में विप्र को बैठाया, सुन्दर-मधुर-भोजन बनाया। चलो देर में ही सही विधि दाहिना तो हुआ जो मुझे दिव्य दौहित्र दिया, विप्रवर विचार करने लगे। विप्र को पायस (खीर) बहुत पसन्द है अतः आज मैया स्वयं खिरक से दूध दुहकर लायी एवं दूध को औटाकर स्वादिष्ट गुलाबी खीर बनाई।

"घृत मिष्ठान खीर मिश्रित करि परुसि कृष्ण हित ध्यान लगायो"

मैया ने पात्र में पायस को परोसा, विप्र श्रेष्ठ नेत्र मूंदकर भगवान् (श्रीकृष्ण) को भोग लगाने लगे।

"नैन उघारि विप्र जो देखै खात कन्हैया देखन पायो"

विप्र को क्या पता उनका यह दौहित्र भगवान् ही है अतः आह्वान के साथ ही नंदलाल घुटुवन चलते हुए पहुँच गये और खीर खाने लग गए। विप्र चिल्लाये – "अरी यशोदा ! देख तो तेरे नटखट पुत्र ने सब जूठा कर दिया।"

मैया दौड़ी हुई आयी – "आप चिंता न करें, मैं अभी और पय मँगाकर पायस बना दूँ।" पुनः पायस बनाई। भोग बेला में फिर नन्दलाल ने जूठा कर दिया, बारम्बार के कृत्य से विप्र देव खीज गये।

देखो आइ यशोदा सुतकृत सिद्ध पाख इहि आइ जुठायो ।
महरि विनय दोऊ कर जोरे घृत मिष्ठान पय बहुत मँगायो ।
'सूर श्याम' कत करत अचगरी बार-बार ब्राह्मणहि खिझायो ॥

पांडे नहीं भोग लगावन पावै ।
करि-करि पाक जबै अर्पत है तबहिं तबहिं छै आवै ।
इच्छा करि मैं बाह्मण न्योत्यौं तू गोपाल खिझावै ।
वह अपने ठाकुरहिं जेंवावत तू ऐसे उठि धावै ॥

नटखट नन्दनन्दन ने मैया के निषेध करने पर भी कई बार भोग को जूठा कर दिया।

मैया – "लाला ! तू बार-बार भोग को क्यों झूठा करै? अब उधर मत जइयो, विप्र देव अपने इष्ट कू स्वादिष्ट भोग लगा रहे हैं।"

लाला – "मैया ! तू मोकू क्यों दोष दे रही है। ये विप्र बार-बार मेरो ध्यान लगावै और मोकू नाम लै-लै कै बुलावै। अब तू ही बता, कहा मैं बुलायवे पे हू विप्र नाना के निकट नहीं जाऊंगो?"

जननी दोष देहु जनि मोको करि विधान बहु ध्यावै ।
नैन मूँदि कर जोरि नाम लै बारहि बार बुलावै ॥
कह अन्तर क्यों होइ भक्त को जो मेरे मन भावै ।
'सूरदास' बलि हौं ताकी जो जन्म पाइ यश गावै ॥

सांचोली

ततो शिक्षावन प्रार्थना मन्त्र :-

गोपीसीक्षाप्रसादाय वासुदेववरप्रद ।
नमः शीक्षावनायैव सौबुद्धिवरदायिने ॥

(अगस्त्य संहितायां)

सांचोली को शिक्षा वन भी कहते हैं। गोपियों की शिक्षा से निर्मल, वासुदेव को वर देने वाले, सद्बुद्धि देने वाले, आपको नमस्कार है।

इति मन्त्रं त्रिभिरुक्त्वा नमस्कारं समाचरेत् ।
सुबुद्धिर्वर्द्धते नित्यं मन्त्रविद्याविशारदः ॥

आपको प्रणाम करने वाला, मन्त्र विद्या में विशारद हो जाता है।

ततो कामसरः स्नानाचमन मन्त्र :-

गोपिकाकामपूर्णाय कामाख्यसरसे नमः ।
देवगान्धर्वलोकानां कलाकामार्थदायिने ॥

(अगस्त्य संहितायां ब्र.भ.वि.)

गोपियों की कामना को पूर्ण करने वाले, देव गन्धर्व आदि सभी को कला, काम और अर्थ देने वाले काम नामक सरोवर आपको नमस्कार है।

गिड़ोह – गेंदोखर कुण्ड, नन्द गाँव एवं गिड़ोह के मध्य – फुलवारी कुण्ड

अध्याय – १५

श्री कोकिला वन

ब्रज के १३७ वनों में से मुख्य १२ वनों में से आप एक हैं।

ततो कोकिलाबन प्रार्थना मन्त्र :-

देवर्षिकिन्नराकीर्ण कोकिलानिर्मिताय च ।
बनायाल्हादपूर्णाय नमस्ते सुस्वरप्रद ॥

(नारदपञ्चरात्रे)

कोकिला सदृश सुमधुर स्वर प्रदान करने वाले देवर्षि, किन्नर आदि महान जनों से युक्त परम आह्लाद से पूर्ण कोकिला द्वारा बनाए गये इस श्री कोकिलावन को प्रणाम है।

गौड़ीय ग्रन्थ श्रीभक्ति रत्नाकर के अनुसार इस वन की स्थिति यावट से पश्चिम में लगभग ३ कि.मी. की दूरी पर है।

जावटेर पश्चिमे ए वन मनोहर ।
लक्ष-लक्ष कोकिले कूहरे निरन्तर ॥

(भ.र)

गर्गसंहितानुसार

वासंती रास के समय ब्रजवधूटियों ने कोटि-कोटि कोकिलाओं से कूजित इस कोकिलावन में गोपीगीत गाकर अपने प्राणवल्लभ ब्रजेन्द्रनन्दन को प्रसन्न किया और यहीं श्रीकोकिला बिहारी से उनका मिलन हुआ।

वैशाख मास की पंचमी तिथि को आरम्भ हुए इस रसमय रास के मध्य ही जब रासबिहारी अन्तर्धान हो गये, तो वन वनान्तर में भ्रमण कर गोपियाँ श्रीकृष्ण का अन्वेषण करने लगीं। हिरणियों की तरह चारों ओर दूर-दूर तक देखती हैं, फिर कभी वृक्षों से, लताओं से, पृथ्वी से, श्रीयमुना से प्राणनाथ का मार्ग पूछती हैं क्योंकि श्री नन्ददास जी का कथन है –

"को जड़ को चेतन न जानत विरही जन"

यही तो विरहावस्था है, जिसमें जड़-चेतन का अंतर भी विस्मृत हो जाए। कहाँ है कृष्ण ! माधव .....गोविन्द ......प्राणनाथ.....जल्दी आप हमारे दृष्टिपथ पर आओ, बस यही ध्वनि चारों ओर से लौट-लौटकर सुनाई पड़ती है। हाय ! उन्हें श्री कृष्ण के बिना चन्द्र सूर्यवत् तापयुक्त प्रतीत हो रहा है। ये चमेली, मोगरा, जुही के सुगन्धित शीतल पुष्पों से आच्छादित वन असिपत्रवन समान, पावन पवन बाण की तरह चुभ रहा है।

सौदासराजमहिषीविरहादतीव जातं सहस्रगुणितं नलपट्टराज्ञाः ।
तस्मात्तु कोटिगुणितं जनकात्मजायास्तस्मादनन्तमतिदुःखमलं हरे नः ॥

(ग.सं.वृं.खं.२२/९)

जिस समय राजा सौदास वशिष्ठ जी के शाप से ब्रह्मराक्षस हो गया था, उस समय रानी मदयंती को अपार दुःख हुआ, उससे भी हजार गुणा अधिक राजा नल की रानी दमयन्ती को हुआ और उससे कोटि गुणा अधिक राम भार्या माता जानकी जी को हुआ और उनसे भी अनंत गुणा अधिक दुःख हे नाथ ! हम ब्रज गोपिकाओं को है।

जो विरह कल्पना से भी परे हो उसे कलम से लिखने का प्रयास तो नासमझी ही होगी।

अनंत-अगाध-अपरिमित, अनिर्वचनीय, अकल्पनीय विरह की इस स्थिति ने ही गोपियों के समक्ष रासेश्वर प्रभु को अतिशीघ्र भेज दिया।

गोपीगीत का उच्चगान इसी पावन स्थल "कोकिलावन" में हुआ, जिसके फल स्वरूप गोपवधुओं को श्रीकृष्ण रूपी सिद्धि सिद्ध हुई।

ब्रजभक्ति विलासानुसार

यहाँ इस बृहद वन में रत्नाकर सरोवर और रास मण्डल है।

ततो रत्नाकरस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

सख्याः क्षीरसमुद्भूत रत्नाकरसरोवरे ।
नाना प्रकाररत्नानामुद्भवे वरदे नमः ॥

अनेकानेक प्रकार के रत्नादि को उत्पन्न करने वाले वरदाता, सखियों द्वारा दूध से बनाये गये हे रत्नाकर सरोवर ! आपको प्रणाम है।

ततो रासमंडल प्रार्थना मन्त्र :-

रासक्रीड़ाप्रदीप्ताय गोपीरमणसुंदर ।
नमः सुखमनोरम्यस्थलाय सिद्धिरुपिणे ॥

अर्थ – हे रास क्रीड़ा से उद्भासित, मन को उल्लसित करने वाले, गोपियों की रसमयी लीलाओं से शोभायमान, सिद्धि स्वरूप रासस्थल ! आपको प्रणाम है।

श्री महाप्रभु जी की बैठक भी यहाँ सब वैष्णवों के लिए दर्शनीय है। **वार्ताजी** – एक वैष्णव ब्रज में अटन कर रहे थे, चून माँगते और उसी से अपना पेट गर्म कर लिया करते थे, एक दिन कोकिलावन में आये, यहाँ रसोई की, प्रभु को भोग लगाया, स्वयं पाया। उस दिन फूलडोल उत्सव था, आप भूल गये, रसोई कर लेने के बाद जब याद आया तो मन में बड़ा पश्चाताप हुआ, अब जल्दी ही एक मजबूत कुञ्ज पर लता बाँध कर प्रभु को झुलाया और दार-बाटी का भोग धराया, उस दिन तीनों समय प्रभु को यही दार-बाटी का भोग लगाया, प्रभु पाकर बड़े संतुष्ट हुए और श्री गुसाँई जी को कहा – "जै जै ! आज तो बड़ा सुन्दर भोग पाया।"

गुसाँई जी – "जै जै ! कैसा भोग? "

श्रीनाथजी – "दार-बाटी का।"

गुसाँई जी – "जै जै ! वह कहाँ से आया? "

श्रीनाथजी – "एक वैष्णव ने यहीं श्री कोकिलावन में डोल के उत्सव में पवाया।"

श्रीनाथजी को बड़ी प्रसन्नता हुई, एक दिन वे वैष्णव गुसाँई जी को प्रणाम करने आये, गुसाँई जी बड़ी प्रसन्नता से बोले – "आओ ! आओ ! आपका भोग पाकर हमारे लाला बड़े प्रसन्न हुए ।"

वैष्णव विनम्र हो बोले – "जै जै ! ये सब तो आपकी कृपा का ही फल है, जो लाल जी की इतनी कृपा वर्षा हमारे ऊपर भई नहीं तो हमारी भला क्या सामर्थ्य?" ये वार्ता यहीं इसी पावन भूमि की है।

और एक मुख्य गाथा –

कृष्ण भक्त शनिदेव

कोकिलावन विहारी के समीप ही उनके श्रेष्ठ भक्त विराजमान हैं – श्री शनिदेव महाराज। हर शनिवार को जहाँ लाखों की संख्या में पहुँच कर भक्तजन आज भी दर्शन लाभ लेते हैं। आपका दर्शन कृष्ण भक्तिप्रद है। राम भक्ति में जैसे सबसे अग्रगण्य हैं 'श्री हनुमानजी', ठीक उसी प्रकार कृष्ण भक्ति में सबसे मूर्धन्य हैं – श्री शनिदेव। आपके पिता सूर्य व माता छाया हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराणानुसार

आप सदैव कृष्ण चिंतन में मग्न रहते थे, कभी दृष्टि उठाकर किसी की ओर न देखना ही आपका नियम था। सदैव निमीलित नेत्रों से रहते थे। एक समय भगवती जगदम्बा ने पुत्र

गणेश को जन्म दिया, इस अवसर पर बड़े-बड़े देव बधाई देने पहुंचे और इच्छित वस्तु प्राप्त किये।

समस्त देवगण अपने-अपने स्थान पर विराजे हुए थे। सूर्य पुत्र शनैश्चर भी वहाँ शंकरनन्दन का दर्शन करने पहुँचे, माता पार्वती व अन्य सब देवों को नतमस्तक हो प्रणाम किया, माता ने कुशल मंगल पूछा, समुचित उत्तर भी दिया। माँ ने कहा – "शनि ! तुम मेरे बालक की ओर देखते क्यों नहीं ? जबसे आये हो बस नीचे मस्तक किये हो।"

शनि – "हे शंकरवल्लभे ! मेरी दृष्टि मंगलकारी नहीं है।"

पार्वती – "ऐसा क्यों कहते हो प्रिय शनि। इसका कारण? "

शनि – "बाल्यकाल से मैं कृष्ण भक्त था, कृष्ण के अतिरिक्त न किसी को देखना चाहता था, न बोलना चाहता था, न अन्य कुछ .... भोगों से एकदम विरक्त। पिता ने चित्ररथ की सुयोग्य कन्या से मेरा विवाह कर दिया, वह भी अत्यन्त तेजस्विनी कन्या थी, किन्तु हर पत्नी पति से समागम की इच्छा तो रखती ही है, मेरी इस ओर बिल्कुल सहमति न देख उसने मुझे शापित किया कि आप मेरी ओर नहीं देखते हो अतः अब जिसकी भी ओर आप देखेंगे, तत्क्षण वो नष्ट हो जायेगा। बस .... तभी से मैं स्वयं कभी मस्तक उच्च नहीं करता।" (पार्वती शनि की बात सुनकर हँसने लगी बोलीं)

पार्वती – "किन्तु तुम्हें मेरे पुत्र की ओर देखना होगा।"

शनि – "किन्तु मैं नहीं चाहता कि बालक का अनिष्ट हो।"

पार्वती – "जो भी हो, बस मेरी आज्ञा का पालन करो।" धीरे-धीरे मस्तक ऊपर किया, बस जैसे ही दृष्टि बालक के ऊपर पड़ी अनुक्षण बालक का मस्तक अपने आप उड़कर गोलोक चला गया, जगदम्बा की गोद रक्त से लथपथ, पुत्र का धड़ मात्र पड़ा है। जोर जोर से विलाप करने लगीं, तभी दयालु श्रीहरि एक गजराज का मस्तक लाये और धड़ से जोड़ दिया। बस बालक जीवित हो गया और वही बालक सब देवों में पूज्य गजानन हुआ। पार्वती जी ने शनैश्चर को शाप दे दिया – "जाओ तुम अंगहीन हो जाओ" किन्तु फिर भी वे तो प्रसन्न थे, कोई प्रतिकार नहीं, यही है कृष्ण भक्त की पहिचान। अतः शनिदेव से श्रेष्ठ कृष्ण भक्त कोई नहीं है। इनके दर्शन से सबसे बड़ा लाभ कृष्ण भक्ति की प्राप्ति होती है और इसी लक्ष्य से इनका दर्शन करना चाहिए। इनके प्रति केवल एक ग्रह की बुद्धि रखना विवेक नहीं है। कृष्ण भक्त होने के कारण ही आप ब्रज में इतने पूज्य हुए। यद्यपि आज लोगों की मानसिक स्थिति कुछ बदल गई है, वे आपको केवल उग्र ग्रह के रूप में देखते हैं। चूँकि आपके वास्तविक स्वरूप (कृष्ण भक्त) से वे परिचित नहीं हैं ।

(ब्र.वै.ग.खं.१२.)
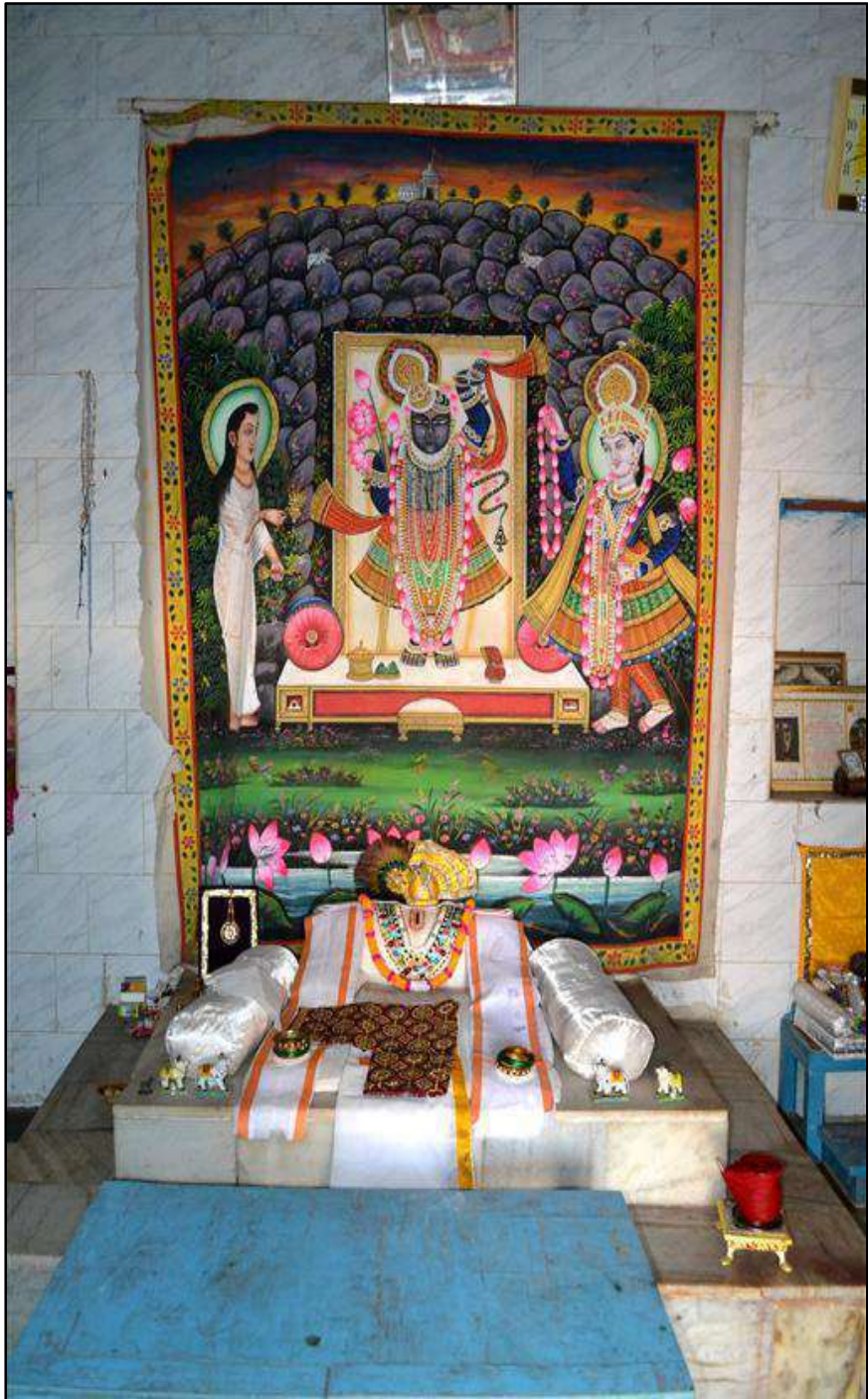
कोकिला वन – श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक

कोकिला वन बिहारी एवं पनिहारी कुण्ड

अध्याय – १६

बठैन

श्री कृष्ण का बैठक स्थल ही बठैन है। कोकिलावन से ४ कि. मी. उत्तर पूर्व दिशा में यह गाँव स्थित है। जंगल में समवयस्क ग्वालों के साथ उछलते-कूदते जब श्रान्त हो जाता है कन्हैया तो सबके साथ इसी स्थान पर आकर बैठता है, अपनी श्रान्ति दूर करता है। कृष्ण का सराहनीय साहस तो ग्वालों के मध्य, प्रतिदिन की चर्चा का विषय बन चुका है किन्तु आज तो दादा दाऊ ने भी कमाल कर दिखाया, अत्यन्त सशक्त धेनुक को, ऐसे पछाड़ गिराया मानो किसी लघु वत्स को गिरा दिया हो, फिर क्या था वे नन्हे ग्वाल दाऊ दादा की जै-जै करने लगे।

उन प्रशंसक ग्वालों को एक ओर करते हुए, बीच से कृष्ण निकले और बोले –"दादा ! आज तक तो आप किसी असुर को मार नहीं पाये, आज मारा भी तो एक गधा।"

दाऊ – "कृष्ण ! तू देखता नहीं वो कितना बलशाली असुर था।"

कृष्ण – "दादा ! था तो गधा ही।"

(सचमुच गधा मारने वाला प्रशंस्य नहीं होता है)

(दाऊ दादा रुष्ट हो गये)

दादा – "कृष्ण ! तू अपनी सब गैया अलग कर ले, आज से हम तेरे साथ गैया नहीं चरायेंगे। हमारी गैया अलग .... तेरी अलग।" (झटपट चंचल मनसुखा ने गायों का विभाजन भी कर दिया, भला शुभ काम में विलम्ब क्यों?)

दादा दाऊ भी आज बचपना कर रहे हैं, कृष्ण को खिजाते चिढ़ाते हुए बोले –

दाऊ – "कनुआ ! मैया यशोदा के साथ मैं ही तुझे हाट से खरीद लाया था।"

(सब सखा एक साथ हँस पड़े)

दाऊ – "देख .... मेरा शुक्ल वर्ण, मैया-बाबा भी गौर गात के हैं और तू", सब सखा एक साथ बोले – "काला-कलूटा है।"

नन्हे कृष्ण ने तो दादा की शिकायत मैया से भी कर दी – "मैया दाऊ बहुत खिजायो" .... दोनों भाई परस्पर लड़-भिड़कर रुष्ट होकर अलग-अलग बैठ गये।

छोटे कृष्ण जहाँ बैठे वह स्थान **लघु विश्राम स्थली** अर्थात् **छोटी बठैन** है।

दादा दाऊ जहाँ बैठे, वह **बृहद विश्राम स्थली** अर्थात् **बड़ी बठैन** है।

(श्रीमद् भागवत के अनुसार बलराम जी ने धेनुकासुर का वध किया।)

दोनों में लगभग आधा कि.मी. की दूरी है, छोटी बठैन में राधा-कृष्ण मंदिर, कुन्तल कुण्ड व बड़ी बठैन में श्री दाऊजी का मंदिर व बलभद्र कुण्ड दर्शनीय है।

बठैन की लीला को परमानन्द दास जी ने बड़ा सुन्दर गाया –

चलौ री सखी नन्दगाँव जाय बसिये ।
खिरक खेलत ब्रजचंद सो हंसिये ।
बसे बठैन सबे सुख माई एक कठिन दुःख दूर कन्हाई ।
माखन चोर दूर-दूर देखूं जीवन जन्म सुफल कर लेखूं ।
जलचर लोचन छिन-छिन प्यासा कठिन प्रीति परमानंद दासा ।

श्री सनातन गोस्वामी जी ने भी इस बैठान अर्थात् बठैन गाँव में कुछ दिन भजन किया था।

बठैन का होरंगा

ब्रज की प्राचीन होलियों में बठैन का होरंगा प्रसिद्ध है, जो जाव और बठैन के गोप-गोपियों में परस्पर खेला जाता है। दाऊ जी मंदिर में समाज करके ढोल, ढप, नगाड़ों की गड़गड़ाहट के मध्य एक अलौकिक ही दृश्य होता है। होली के पश्चात् तृतीया के दिन जाव के हुरियारे बठैन में जाते हैं और बठैन की गोपियाँ लाठियों से उन्हें मारती हैं। वे बबूल के झामे से (काँटों के डंडों से) अपना बचाव करते हैं। हुरंगा की जय-पराजय का केन्द्र एक ध्वजा होती है, जहाँ तक पहुँचने के लिए बठैन की गोपियाँ लाठी-डंडो से प्रहार करती हैं ताकि काँटों की बनाई दीवार तोड़कर लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।

बठैन – श्री दाऊ जी मंदिर

छोटी बठैन – चरण गंगा

छोटी बठैन – चरण पहाड़ी (चरण चिन्ह)

छोटी बठैन लक्ष्मी नारायण मंदिर एवं बठैन कलाँ – बलभद्र कुण्ड

अध्याय – १७

पाण्डव गंगा

वनवास काल में ब्रज में भी पाण्डवों का निवास रहा और इसके काम्यवन में बहुत से चिन्ह भी प्राप्त होते हैं। पर्वत खण्ड के नीचे ही भीम भार्या हिडिम्बा का मन्दिर है। जब वे ब्रज में रहे तो स्वभावतः ब्रज में भ्रमण किया होगा, जहाँ-जहाँ भ्रमण किया उन्हीं स्थलों में पाण्डव गंगा भी हैं, यह एक बड़ा दिव्य स्थल है जो नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था, 'श्रीराधा मानविहारी लाल' के द्वारा इसका जीर्णोद्धार हुआ, सघन वृक्षारोपण भी यहाँ कराया गया, फलस्वरूप आज ये स्थान ब्रज के अत्यन्त मनोहर स्थलों में से एक बन चुका है।

कामर

श्री राधिका मिलनोत्कण्ठा से कामार्थ श्रीकृष्ण एकबार अत्यंत भाव विह्वल हो अपनी मुरली में श्रीराधा-श्रीराधा की मधुर ध्वनि से किशोरी जी का आह्वान करने लगे, फलतः अपनी सहचरियों के साथ श्रीराधा जी वहाँ पहुँचीं, वही स्थल आज 'कामर' कहा जाता है। वहाँ एक लीला और घटित होती है, वहाँ श्रीकृष्ण की कारी कामर चोरी हो जाती है, जिसको सूरदास जी ने अपने पद में गाया है –

मैया मेरी कामर चोर लई।
मैं बन जात चरावत गैयाँ सूनी देख लई।
एक कहे कान्हा तेरी कामर जमुना जात बही।
एक कहै कान्हा तेरी कामर सुरभि खाय लई।
एक कहै नाचो मेरे आगे लै दऊँ और नई।
'सूरदास' जसुमति के आगे अँसुवन धार बही॥

ततो कामरुबन प्रार्थना मन्त्र (कौमर्ये) :-

गन्धर्वाप्सरसाल्हाद देवर्षिसुखवर्द्धिने।
कामरूसुखधाम्ने च नमस्ते रम्यभूमये॥

गन्धर्व अप्सराओं के आनन्द स्वरूप देवर्षियों के सुख बढ़ाने वाले कामरू नामक सुखधाम वन, रमणीक भूमि ! आपको नमस्कार है।

ततो विश्वेश्वरकुण्डस्नान प्रार्थना मन्त्र :-

विश्वेश्वरहरिस्नान तीर्थसंज्ञाय ते नमः ।
त्रैलोक्यवरदायैवाखण्डसौख्यप्रदायिने ॥

विश्वेश्वर हरि के स्नान से उत्पन्न त्रिलोकी को वर देने वाले अखण्ड सुख देने वाले तीर्थ रूप ! आपको नमस्कार है।

यहाँ गोपी कुण्ड, हरि कुण्ड, मोहन कुण्ड, मोहन जी मंदिर, दुर्वासा मन्दिर और दुर्वासा जी की झाड़ी भी दर्शनीय है।

शुक कुण्ड–व्यास कुण्ड

जब परब्रह्म नरावतार लेता है, तो चिरकाल से प्रतीक्षित समस्त सुरगण, ऋषि-महर्षि-ब्रह्मर्षिगण अपना सौभाग्य स्वयं गाने लगते हैं और अवसर पाते ही उसकी ललित लीलाओं का लाभ लेने उसके समीप आने लगते हैं। उसकी चाहे वो ब्रज लीला है, मथुरा लीला है अथवा द्वारिका लीला है।

अब देखो न – ब्रज में कृष्णागमन नहीं हुआ कि उसके पूर्व ही शाण्डिल्य मुनि ब्रज में आसन लगाकर बैठ गये, न जाने लीला पुरुषोत्तम किस क्षण आ जाये और जब मध्य रात्रि को वह आया तो उसके आगमन पर बड़े चाव से, धूम-धाम से उसका जन्मोत्सव मनाया। उस उत्सव में गगन से मगन हो सब सुर पहुँच गये ब्रज अवनि पर।

जब-जब लीला बिहारी धरा पर आते हैं, बेचारे देवगण अधिकाधिक उनके समीप आने में चेष्टारत रहते हैं, नन्दोत्सव पर तो सारा स्वर्ग लोक रिक्त हो गया, सब सुर नीचे उतर आये।

ऋषि समाज को देखो तो ब्रज लीला में –

गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणाः ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥

(भा. १०/१८/११)

गोपवेष धारण कर या कहीं-कहीं तो उनकी लीला में प्रवेश पाने के लिए खग जाति भी स्वीकार कर लेते हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।

आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥

(भा.१०/२१/१४)

द्वारिका लीला में देखो, तो कभी पिण्डारक क्षेत्र में आये हैं –

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि
गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ।
कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे
पिण्डारकं समगमन् मुनयो निसृष्टाः ॥

(भा.११/१/११)

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥

(भा.११/१/१२

कभी मिथिला यात्रा के अवसर पर आये हैं –

नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ।
अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥

(भा.१०/८६/१८)

और ब्रज लीला में तो, जगह-जगह सबने अपना आवासोचित स्थान चयन किया । यथा –

१. माड़व ग्राम में मार्कंडेय जी
२. लोधौली ग्राम में लौधांग ऋषि
३. गांगरोल ग्राम में गर्गाचार्य जी
४. बामनारी ग्राम में दुर्वासा जी

और कामेर ग्राम में भी दुर्वासा जी का निवास रहा। कामेर के निकट ही श्री शुक कुण्ड और व्यास कुण्ड दर्शनीय हैं, जहाँ व्यास जी और शुकदेव जैसे आत्माराम मुनि भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना छोड़, श्री कृष्ण लीलाओं का आनन्द लेने पहुँचे।

इस नन्हे कान्हा के गुण ही ऐसे हैं कि योगी का योग, ज्ञानी का ज्ञान, कर्मकाण्डी का कर्मकाण्ड भुला देते हैं –

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥

(भा.१/७/१०)

अतः ब्रज में जगह-जगह महर्षियों का आवास रहा, सुमधुर कृष्ण लीला का आनन्द लेने हेतु।

श्री शुक रहस्य

एकदा मानलीला सहकारी भ्रमर ने श्रीजी के मान स्थान की मन्दार निकुञ्ज के अन्दर एक दिव्य शुक को आसीन देखा, शुक ने भी अलि को देखा एवं उस पर किशोरी का अनवरत स्नेह देखकर कहा –

सामरहस्योपनिषदानुसार

"तेन शुकेन भ्रमरचातुर्ये निरीक्ष्य तस्या निकुञ्जदेव्याः कृपां निरीक्ष्य अत्याश्चर्ये प्रपेदे"

अत्याश्चर्यान्वित होकर पूछा – **अले त्वं कः?** भ्रमर ! तुम कौन हो? अलि बोला – **अहो शुक त्वं पूर्वं कोऽसि?** शुक तुम क्या थे, तुम्हारा अतीत क्या था?

शुक उवाच – **अहं पूर्वे ब्राह्मणोऽस्मि।** शुक ने कहा – मैं पहले ब्राह्मण था, निरन्तर श्रीकृष्ण भजन ही मेरा प्रिय साधन था। **एकस्मिन् वासरेऽस्मि ब्रह्मलोकं गतः।**

एक दिन मैं भगवद्धाम गया, जहाँ अनन्य रस मार्गी भक्त वृन्दों का दर्शानंद प्राप्त हुआ, उनकी ही कृपा से वहाँ मुझे एकान्तिक निकुञ्ज लीला का भी अनुभव हुआ।

तत्रारिष्टे श्रीराधाकृष्णपुष्करिण्युद्भवां मृत्तिकां भक्षयता तत्र निरन्तरक्रीडास्थलं मया श्रुतं पूर्वम् । अस्या मृत्तिकायाः माहात्म्यं महालीलायाः प्राप्तेः कारणम् ।

वहाँ युगल सरकार श्रीराधाकृष्ण की पुष्करिणी (पोखरा) से मैंने मृद भक्षण किया (ब्रज रज को खाया) उससे मुझे दिव्य दम्पत्ति के श्रुत दिव्य क्रीडा स्थल का अनुभव हुआ। उस मृत्तिका (ब्रज रज) का ही प्रभाव-प्रताप था जो मेरा महा लीला में प्रवेश प्राप्ति का प्रमुख कारण बना अर्थात ब्रज रज से ही नित्य लीलानुभुति हुई मुझे। इतना ही नहीं मेरे सन्मुख अलौकिक महारास लीला प्रकट हुई, जिसके साक्षात्कार का अलभ्य लाभ मुझे मिला। इस लीला से श्री प्रभु ने यह दिखाया –

अस्य स्थानस्य मृत्तिका मया अनुभूता । तेनेदं स्थानं प्राप्तम् । इदं शरीरं तया मृत्तिकया पुष्टं साधनसिद्धं जातम् ।

गोस्वामी जी के शब्दों में –

जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा । मम समीप नर पावहि वासा ॥

मेरी प्रकट ब्रज भूमि नित्य धाम देने वाली है। इस विश्वास से ही यहाँ वास करना चाहिए।

भ्रमर रहस्य

क्या आप जानते हैं, यह अलि कौन है?

सामरहस्योपनिषदानुसार

एक बार लीला शुक ने पूछा – **अहो भ्रमर ! त्वं कथय यदि रुचिः स्यात्?**

अलि बोला – शुक ! मैं पूर्व में जाति से कायस्थ था, स्वरूप से वैष्णव था।

प्रेमाधिक्य में सतत् रसानुभव कर रहा था, प्रेम पथ के विषय में सुन रखा था।

"तेषां साधूनां सङ्गो मयानुभूतः"- साधु संग मिला ।

तत्कथाद्वारेण मम हृदि प्रविष्टो रसः । अहं रसलीलायां प्रपन्नोऽभवम् ।

कथा द्वारा हृदय में रस प्रवेश हुआ एवं रास लीला की प्राप्ति हो गयी।

"भक्तैस्सह ब्रजलोके प्राप्तोऽहं"

भक्त समूह सहित ब्रज लोक में आ गया। भक्तों के साथ मनसा, वाचा कितना समय निकल गया भावाभिभूत हुए, पता ही न चला। भाव के सिद्ध होते ही मेरा धर्म सिद्ध हो गया। सिद्ध धर्म के साथ यह शरीर भी साधन सिद्ध हो गया। युगल रस-राज से मनोभीप्सित भ्रमर रूप मुझे प्राप्त हुआ, इतना ही नहीं वरन् मान्य स्थान भी प्राप्त हुआ। तब से भ्रमर रूप से मैं निकुञ्ज देवी का पावन यश गाता रहता हूँ –

"भ्रमररूपेण तस्या निकुञ्जदेव्या यशः सङ्गायामि"

पाण्डव गुफा एवं पाण्डव गंगा

कामर – मोहन जी मंदिर एवं मोहन कुण्ड
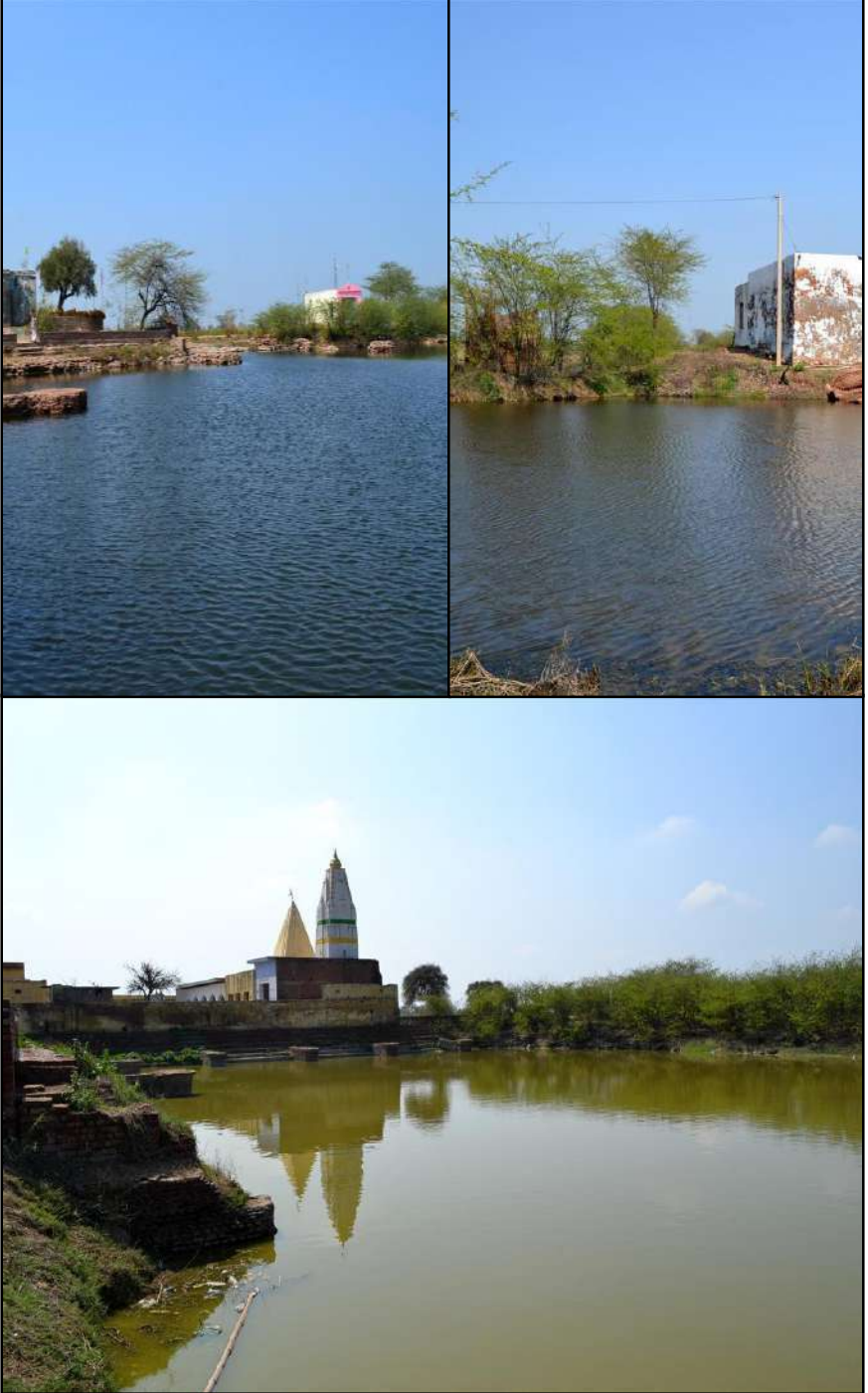
कामर – शुक कुण्ड, व्यास कुण्ड एवं दुर्वासा कुण्ड

अध्याय – १८

श्री कोटवन

कोसी तथा होडल के मध्य दिल्ली – मथुरा राजमार्ग के समीप ही कोटवन है। यह ठाकुर की गौचारण भूमि है। एक समय वे वेणुनाद से अपनी गायों को बुला रहे थे, उसी समय मैया यशोदा वहाँ पहुँची, भवन से वन आगमन में मैया के मुख पर स्वेद कण आ गये, श्रान्ति निवारण हेतु दयालु ठाकुर ने मैया से कहा – "मैया ! इस शीतल कुण्ड में स्नान करो", जहाँ उन्होंने स्नान किया, वही यह शीतला कुण्ड है।

तदनन्तर मैया ने रास दर्शन की इच्छा व्यक्त की, ठाकुर ने विचार किया, मैया के सामने श्रृंगार रस की यह अद्भुत रास लीला गोपियाँ कैसे निष्पन्न करेंगी?

कोट का अर्थ है – किला अतः कोट की ओटक में से यशोदा जी को यहाँ रास बिहारी ने रास लीला का दर्शन कराया, जिससे गोपियों को भी संकोच नहीं हुआ और यशोदा की इच्छा भी पूर्ण हुई। अतः इस स्थल का नाम कोटवन हुआ। ब्रज परिक्रमा करते हुए श्रीमन् चैतन्य देव भी यहाँ आये और यहीं से शेषशायी ग्राम को गए थे, अतः आपकी यहाँ बैठक है।

ए कोटर वन कोटवन सबे कय।
एथा सखा सह कृष्ण सूखे विलसय ॥

(भ.र.)

शीतला कुण्ड के अतिरिक्त यहाँ सूर्य कुण्ड, श्री नाथजी की बैठक, श्री बल्लभाचार्य महाप्रभु जी की बैठक है।

कोटवन – श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी एवं श्रीनाथ जी बैठक तथा शीतला कुण्ड

अध्याय – १९

दधि ग्राम

दधिविक्रयार्थं यान्त्यस्ताः कृष्ण-कृष्णेति चाब्रुवन् ।
कृष्णे हि प्रेमसंसक्ता भ्रमंत्यः कुंजमंडले ॥

(ग.सं.मा.खं.४/६)

कौशल प्रान्त की स्त्रियाँ जो श्रीराम के वर से ब्रज में गोपी स्वरूप में उत्पन्न हुई, परकीया भाव से श्री कृष्ण के प्रति जिनका सुदृढ़ स्नेह था। ब्रज वीथियों में श्रीकृष्ण सर्वदा उनके साथ हास-परिहास करते थे। वे ब्रजांगनाएँ जब दधि विक्रय के लिए जाती थीं, तब "दही लो-दही लो" यह कहना भूलकर "कृष्ण लो-कृष्ण लो" कहने लग जाती थीं। श्याम सुन्दर के प्रति अनुरक्त होकर वे कुञ्ज मण्डल में घूमा करती थीं, सर्वत्र उन्हें कृष्ण ही दिखाई देते थे। प्रेम के सम्पूर्ण लक्षण उनमें विद्यमान थे। इस लीला का चित्रण निम्नलिखित पद में देखिये। शीश पर दधि की भरी मटकी लेकर कोई प्रेम बावरी गोपी क्या कह रही है, अरी माई ! कोई गोपाल को ले लो या इस पंक्ति का दूसरा अर्थ है – "अरी माई ! गोपाल, इस दधि को ले ले।" इस प्रेमोन्माद में घूम रही हैं –

कोई माई लैहों री गोपालहि ।
दधि को नाम श्याम सुन्दर रस बिसर गयो ब्रज बालहि ।
मटकी शीश फिरत ब्रज वीथिनि बोलत बचन रसालहि ।
उफनत तक्र चहुँ दिशि चूवत चित्त लाग्यो नंदलालहि ।
हँसति रिसाति बुलावति बरजति देखहु उल्टी चालहि ।
'सूरश्याम' बिन और न भावै या बिरहिनी बेहालहि ।

"प्रेम के पागलों का एक समुदाय ही ब्रज है ।" गोपी दधि मटकी लेकर कुञ्जों में जा रही है, वनों में कौन दधि खरीदेगा? यह प्रेम की मस्ती, प्रेम की लगन, जो बड़े-बड़े योगी-ज्ञानी नहीं जान सकते। गोपी, गोपाल को टेर रही है। दही का नाम भूल गयी, दही लो-दही लो की जगह कह रही है "गोपाल लो-गोपाल लो।" यह भी भूल गई कि यह कौन सा गाँव है, यह बरसाना है, कि संकेत, कि नन्द गाँव है, कुछ पता नहीं। सिर्फ मटकी शीश पर है। उसको क्या आनन्द मिल रहा है, हम इसे समझ ही नहीं सकते, वहाँ तो प्रेम है। हम लोग जब यात्रा करते हुए ब्रज के वनों में घूमते हुए गोपाल की टेर लगाते हैं,

उस नकली मामले में भी इतना आनन्द आता है कि अब तक याद आती है – फिर असली प्रेम हो तो उसको टेरने में क्या आनन्द आएगा। इसको प्रेम कहते हैं ! जो बात नहीं कहनी चाहिए थी, वो बात कहती जा रही है, अपने प्रेम का भेद खोलती जा रही है। गोपी कहती है – "श्याम तुम उस दिन पनघट पर आये थे, फिर कहाँ चले गए?" सारा भेद अपने आप खोल रही है। जो रसीली बातें नहीं कहनी चाहिए वो कहती जा रही है। इसे कहते हैं प्रेम वैचित्री – प्रेम में सब कुछ भूलना। मटकी में माखन का लौंदा रख कर लायी थी कि कन्हैया मिलेगा तो खिलाऊँगी। माखन जब तक तक्र (छाछ) में रहता है, तब तक नरम रहता है, उसके बाहर कर्रा (ठोस) हो जाता है। मटकी में दही और तक्र भी था लेकिन उसे प्रेम में ध्यान नहीं है। मटकी कुछ टेढ़ी हो गई और तक्र कुछ चूने लगा, उसकी सुन्दर चुनरी और वस्त्र पर सफेद धार बह रही है लेकिन गोपी को कुछ ध्यान नहीं कि क्या हो रहा है? इसी को प्रेम कहते हैं। प्रेम में एक दशा होती है प्रेम वैचित्री – यह एक ऐसी दशा है कि कृष्ण नहीं हैं विरह है फिर भी मिलन करा देती है और कृष्ण पास में हैं तो विरह करा देती हैं। इसके कई नाम हैं, इसको भ्रमाभा भी कहते हैं। यानि प्रेमी के पास प्रतिक्षण श्री कृष्ण भावनाओं में रहते हैं। अपने में खोयी रहती है, कभी हँसती है, कहती है –

"श्याम तुम आ गए ... तो कभी नाराज होती है कि तुम इतनी देर से आए, मैं कब से तुम्हें मटकी लेकर ढूँढ रही थी। कभी कहती है पास आओ, कभी कहती है, नहीं ! दूर चले जाओ, मुझे कलंक लगेगा, तुम बड़े ढीठ हो, बड़े नटखट हो, हमें नहीं छेड़ो।" सूरदास जी कहते हैं उसको कृष्ण बिना कुछ अच्छा ही नहीं लगता, इसी को प्रेम समाधि कहते हैं, अपने आपको और संसार को भूल चुकी है। सारा संसार उसके लिए कृष्णमय है।

यहाँ दधि कुण्ड है, ब्रज भूषण जी का मन्दिर है, वृक्ष में मुकुट का चिन्ह है, दधिहारी देवी के दर्शन हैं।

दधि गाँव – दधि कुण्ड एवं दधिहारी देवी

दधि गाँव – श्री ब्रजभूषण मंदिर

अध्याय – २०

श्री रासोली

रासक्रीडाप्रदीप्ताय गोपीरमण सुंदर ।
नमः सुखः मनोरम्य स्थलाय सिद्धि रूपिणे ॥

(ब्र.भ.वि.)

चरण पहाड़ी और कोटवन के मध्य यह 'रासोली' अर्थात् श्री रास मण्डल रास स्थल है। जहाँ अनन्तानन्त गोपी समुदाय के साथ रासेश्वर भगवान् ने शारदीय रासलीला सम्पन्न की। ब्रज के अधिकांशतः वनों के लुप्त होने पर भी यहाँ की आर्य भूमि सघन लता-वल्लरियों से आच्छादित होने के कारण कृष्ण कालीन ब्रज का अनुभव कराती है। सम्पूर्ण ब्रज में यही एक ऐसा वन अवशेष रह गया है, जो अभी ब्रजनाशियों की चपेट से सुरक्षित है, चपेट में जा रहा था, किन्तु 'श्री राधामानबिहारी लाल जी' की कृपा से ये सुरक्षित हुआ।

राधोपनिषत् में २४ वनों के वर्णन में रास वन आया है –

अथानन्तरं भद्रलोहभाण्डीरमहातालखदिरवकुलकुमुदकाम्यमधुवृन्दावनानि द्वादशवनानि कालिन्द्याः पश्चिमे सप्तवनानि पूर्वस्मिन् पञ्चवनानि उत्तरस्मिन् गुह्यानि सन्ति ।
मथुरावनमधुवनमहावनखदिरवनभाण्डीरवननन्दीश्वरवननन्दवनानन्दवनखाण्डवनपलाशवनशोकवनकेतकवनद्रुमवनगन्धमादनवनशेषशायीवनश्यामायुवनभुज्युवनदधिवनवृषभानुवनसंकेतवनदीपवनरासवनक्रीडावनोत्सुकवनान्येतानिचतुर्विंशतिवनानि नित्यस्थलानिनानालीलयाधिष्ठाय कृष्णः क्रीडति ।

(राधोपनिषत् तृतीयः प्रपाठकः)

श्रीमद् जीवगोस्वामी जी कृत 'वैष्णव तोषिणी' टीकानुसार यहीं इसी स्थल पर रासलीला हुई है।

जीव गोस्वामी जी ने लिखा है –

ततश्च तं दृष्ट्वा भावविशेषाविर्भावेन वनमागत्य तश्च तद्रश्मिभीरञ्जितं दृष्ट्वा तत्र च यमुनातीरभागमद्यापि रासौलीति प्रसिद्धं श्रीवज्रस्थापितं ग्रामचत्वरमागत्य चाकर्षणवेणुना किमपि गीतमगायदिति ।

(भा.टीका.जीव गो.१०/२९/३)

ब्रजाङ्गनाओं के कर्ण कुहरों में वो काम क्लीं जैसे ही पहुँचा कि दौड़ पड़ीं रास स्थल की ओर, शरद ऋतु की यह संध्या, शायद सृष्टि में प्रथम बार ही इस उल्लास के साथ अपनी सब सहयोगी सहेलियों के साथ आई होगी। रात्रिकाल आसन्न है, पर संध्या जाने का नाम ले, तब तो वह प्रभु सेवा करे किन्तु संध्या तो मानो जैसे आज न जाने का हठ कर बैठी है, चन्द्रमा ने सोचा मैं क्यों अपना सौभाग्य खोऊँ? संध्या को ही आप उदित हो गये, आ .. हा .. हा .. ! धन्य है ये रात्रि और संध्या का संगम दोनों में से एक भी तो पराभूत नहीं होता। चन्द्र ने अपनी सेवा आरम्भ करने में विलम्ब नहीं किया, आशु चहुँ ओर दुग्धोज्जवल किरणें सम्पूर्ण धरणी पर फैला दी, रासबिहारी आये इसी रासमण्डल पर जो सम्प्रति रासोली नाम से जाना जाता है और यहाँ आकर वेणु से अलौकिक स्वर-सौष्ठव प्रकट किया, अर्थात् वेणुनाद किया, यद्यपि यह प्रसिद्धि अधिक है कि वृन्दावन वंशीवट में ही वंशीनाद हुआ है, किन्तु यह भी उतना ही सत्य है क्योंकि जीव गोस्वामी जी का मानना है कि रास का प्रारम्भ इसी स्थल से वेणुनाद के द्वारा हुआ है, प्राचीन ब्रज में कलिन्द-नन्दिनी यहाँ से बहती थीं। यह कालिन्दी के कूल का वन प्रान्त था, किन्तु आज तो युग प्रभाव से यमुना जी ब्रज से ही दूर चली गयीं।

अनन्तर गोपियों के सहस्त्र-सहस्त्र यूथ आये हैं, यहाँ इस महारास लीला में भाग लेने। श्री बज्रनाभ जी महाराज द्वारा प्रस्थापित यह लीला स्थल आज भी उतना ही सघन है, यहाँ श्री नाथ जी की बैठक व रास कुण्ड भी है। ऐसे महारास स्थल रासौली को हम बार बार प्रणाम करते हैं।

श्री रास विहारी लाल की जय।

रासोली कुण्ड

रासोली – रास मण्डल एवं श्री नाथ जी की बैठक

अध्याय – २१

श्री हताना

सब पर विजयी होने के बाद दुर्मद हो गया था काम, उस दर्पित कन्दर्प के मद का यहीं दलन किया, रासेश्वर ने। बड़े विश्वास के साथ आया था बेचारा श्री कृष्ण को पराभूत करने, किन्तु उस समय रासेश्वर का वो रूप अनुपमेय था।

भागवतकार कहते हैं – 'साक्षात् मन्मथमन्मथः'

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

(भा. १०/३२/२)

ये तो मन्मथ के मूल अधिदैव काम का भी मनो-मंथन करते हैं।

गलत जगह आ गया बेचारा, इसके साथ रहने वाली मेनका, पुंजकस्थली, रम्भा ... आदि तो यदि कृष्णरमणियों के सामने आ जायें तो दुर्भगा लगती हैं। एक-एक रमणी कोई चन्द्रावली है, कोई शतचन्द्रानना है और फिर रास-रासेश्वरी श्री राधा रानी के एक रोम छिद्र पर यदि समस्त लोकों की महाशक्तियों का निर्मंछन कर दिया जाय तो वो भी न्यून होगा।

रसिकों ने कहा –

राधिका सम नागरि नवीन को प्रवीन सखी ।
रूप गुन सुहाग भाग आगरी न नारि ॥
वरून नागलोक भूमि देवलोक की कुमारि ।
प्यारी जू के रोम ऊपर डारौ सब वारि ॥
आनन्दकन्द नन्दनन्दन जाके रसरंग रच्यौ ।
अंग वर सुधंग नाचति मानतु है अति हारी ॥
ताके बल गर्वभरे रसिक 'व्यास' से न डरे ।
लोक वेद कर्म धर्म छांडि मुकुति चारि ॥

द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की पट्ट महीषियाँ यदि, उस काम की ओर देख दें तो ये उसी में निहत हो जाये, फिर भाई ये तो गोपाङ्गनाएँ हैं, इनके साथ हो रही रसमयी रास लीला के मध्य में हत हुआ, अतः हताना नाम हुआ।

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ।
रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान् प्राकृतो यथा ॥

(भा. १/११/३५)

स्वयं परब्रह्म परमेश्वर मर्त्यधरा पर अवतीर्ण हो सहस्त्रों रमणियों के मध्य सामान्य मानववत् आचरण कर रहे हैं।

इस दिव्य लीला को देखकर रति पति का हताहत होना स्वाभाविक है। ध्यान रहे लौकिक मर्त्य श्रृंगार रस की बुद्धि से यह ग्राह्य नहीं है।

अध्याय – २२

चमेली वन

भागवतानुसार – यह वही वन है, रास के मध्य श्रीकृष्ण के अदृश्य होने पर विरहिणी गोपियाँ उन्हें ढूँढते हुए वन-वनान्तर में भ्रमण करने लगीं। मालती वन में गयीं, मल्लिका वन में गयीं फिर 'जाती वन', जाती का अर्थ है – चमेली अर्थात् यहाँ चमेली वन में आईं। यह वन-प्रान्त गोपियों का अन्वेषण स्थल है। चमेली के सुन्दर सुवासित पुष्पों से आकीर्ण देख गोपियाँ जान गयीं, अवश्य नव घन सुन्दर श्रीकृष्ण स्पर्शानन्द इन्हें प्राप्त हुआ है, नहीं तो इतना रोमांच प्रफुल्लता न होती –

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥

(भा.१०/३०/८)

अतः बारम्बार विरहार्द्र स्वर से एक ही प्रश्न सबसे करती हैं –

"हमारे प्राणनाथ ....प्राणवल्लभ ....कहाँ हैं हमारे प्रियतम?"

नवेलि हे चमेलि तू प्रफुल्ल है द्रुमान में
बिना पिया मिले अली न फूल हो हियान में
बता कहाँ कन्हाई री हमें न चैन प्राण में
पुकारती हरि हरि हरी हरी लतान में ।

(पंडित हरिश्चन्द्र जी)

चमेली वन एवं कुण्ड

अध्याय – २३

नन्दन वन

यहाँ ब्रजवासियों की इच्छानुसार श्रीकृष्ण ने उन्हें स्वर्ग के नन्दन वन का दर्शन कराया और यहीं नन्दनन्दन सरोवर भी है।

ततो नन्दनवन प्रार्थना मन्त्र :-

परिचर्यान्वित देवेशनिर्मिताय वनाय ते ।
नन्दनाय नमस्तुभ्यं नन्दनाख्यबनोपम ॥

सेवा से युक्त, देवराज इंद्र से निर्मित नंदन वन ! आपको नमस्कार है।

ततो नन्दनन्दन कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

कृष्णाभिषेकरम्याय तीर्थराज नमोऽस्तु ते ।
नन्दनन्दनकुंडाय गोपानां वरदायिने ॥

हे तीर्थराज, कृष्ण के अभिषेक से रमणीक, ग्वाल बालों को वर देने वाले, नन्दनन्दन कुण्ड ! आपको नमस्कार है।

नन्द यशोदा मंदिर एवं नन्दन वन

अध्याय – २४

शेषशायी

कलिपावनावतार महाप्रभु श्री चैतन्य, श्री गोपाल जी का दर्शन करने के बाद काम्यवन व श्री नन्द गाँव प्रेमावेश में आये, वहाँ के सरोवरों व श्री नन्दीश्वर का दर्शन करके, गुफा के भीतर स्थित देव मूर्तियों का दर्शन करके, श्री मन्महाप्रभु उसी आत्मविस्मृत प्रेमावस्था में बरसाना धाम में भी आये हैं। बरसाना धाम के अप्रकटित होने के कारण इस आगमन का उल्लेख नहीं किया। उस समय श्री मदनमोहन जी, श्रीगोविन्द देव जी ये सभी अर्चा विग्रह अप्रकटित थे। अतः किसी का नामोल्लेख नहीं है किन्तु इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि महाप्रभु वृन्दावन में आये ही नहीं अथवा बरसाने में आये ही नहीं। बिना बरसाना आये युगलमिलित इस गौरांग विग्रह की यात्रा सम्पन्न कैसे हो सकती थी? नन्दगाँव से खायरा जाते समय मध्य में बरसाना आना निश्चित है, बिना बरसाना आये हवाई जहाज के द्वारा तो खायरा गए नहीं होंगे, अतः बरसाने में आगमन सुस्पष्ट है, जो ऐसा नहीं मानते हैं वे दुराग्रही हैं। श्रीमन् महाप्रभु के दीर्घकाल बाद श्री नारायण भट्ट जी हुए हैं, जिनके द्वारा श्री लाड़ली जी का अर्चाविग्रह वहाँ प्रतिष्ठित हुआ। उसके बाद तो सभी ने श्री धाम बरसाना से ही यात्रा को सम्पूर्ण माना और इसका सुस्पष्ट उल्लेख भी किया। यह रज ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी को भी दुर्लभ अन्य किसी को कैसे प्राप्त हो सकती है?

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥

(भा.१०/९/२०)

जो कोई ब्रज भाव से भावित होगा, उसे ही यह प्राप्त हो जायेगी। यही ब्रज उपासना की विलक्षणता है –

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥

(भा.१०/९/२१)

चाहे ज्ञानी हों, चाहे आत्मभूत ब्रह्मा-शिवादि हों, उन्हें भी दुर्लभ है। केवल ब्रज भाव से भावित भक्ति से ही प्राप्त है। ऐश्वर्य भावना भावित से ये गोपिका सुत प्राप्त नहीं हैं। यशोदा को जब ऐश्वर्य भाव आया तो उसको गोपाल जी ने तिरोहित करके वात्सल्य रति में बदल दिया।

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥

(भा.१०/८/४३)

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन ।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान ॥

(रा.उ.कां.६२ख)

नाहं न यूयं यद्दतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ।
तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥

(भा.२/६/३६)

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥

(भा.२/६/४०)

ब्रह्मा, शिव आदि को दुर्लभ वस्तु भी संशय रहित भावुक को श्रद्धा के बल पर प्राप्त है। जब हृदय में संशय या असत् तर्क आ जाते हैं, तब वह दुर्लभ हो जाती है। प्रह्लाद जी ने भी असुर बालकों को यही कहा –

भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ।
वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥

(भा.७/७/१७)

इसीलिए सभी आचार्य बरसाना, नन्द गाँव दौड़ते हैं –

"चलो वृषभानु गोप के द्वार"(श्री हित हरिवंश जी) अथवा स्वामी हरिदास जी – **"प्यारी जू आगे चल गहवर वन भीतर"** या **"हमारो दान मारयो इन**।" महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक गहवर वन (बरसाने) में इसीलिए है। षड् गोस्वामियों ने भी नन्द-गाँव बरसाने में ही भजन किया, संकेत में गोपाल भट्ट जी, नन्द गाँव पावन सरोवर पर सनातन गोस्वामी, टेर कदम्ब पर रूप गोस्वामी, भूगर्भ गोस्वामी और लोक नाथ गोस्वामी खायरे में और नागरीदास जी, नेही नागरी दास जी, कृष्णगढ़ के राजा नागरी दास जी ये सभी बरसाने में हुए हैं। महाप्रभु चैतन्य भी कामां से नन्द गाँव जाते समय मार्गस्थ होने से बरसाने ही होकर गए होंगे क्योंकि उस समय हेलीकाप्टर या वायुयान की कल्पना नहीं की जा सकती। **"ये दोउ खोर, खिरक, गिरि, गहवर"** ये चारों बरसाने में ही हैं।

बरसाना के बाद खदिरवन होते हुए ब्रज की प्रसिद्ध लीला स्थली शेषशायी (ब्रजवासियों के पौढ़ानाथ) पहुँचे। जिस स्थली को देखते ही उनके मुख से गोपी गीत का यह श्लोक निकला, जो राधा भाव भावित है –

यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥

(भा.१०/३१/१९)

वस्तुतः अधिकतर लोग शेषशैया पर शयन किये श्री विष्णु विग्रह समझते हैं किन्तु यहाँ इस लीला में लक्ष्मी नारायण दम्पत्तियों का प्रवेश ही नहीं है।

सूरदास जी कहते हैं –

"**मुरली धुन वैकुण्ठ गई**", क्योंकि राधा-कृष्ण द्वारा ब्रज-गोपियों की अनुकरण लीला द्वारा श्री लक्ष्मी जी की पादार्चना युगल द्वारा प्रस्तुत की गई। इसलिए मूल में कृष्ण विग्रह ही है। 'ब्रज भक्ति विलास' में यह मन्त्र आया है –

कमलासुखरम्याय शेषशयनहेतवे ।
नमः कमलकिंजल्कवाससे हरये नमः ॥

(कूर्मपुराण)

लक्ष्मी के सुख से रमणीक, शेष के शयन वाले, कमल के पराग से युक्त वस्त्र धारण करने वाले ऐसे हरि आपको नमस्कार है और जो यहाँ महोदधि कुण्ड है, वो क्षीर सागर का स्वरूप प्रस्तुत करता है –

पञ्चामृतसमुत्पन्न पञ्चामृतमयाय ते ।
लक्ष्मीकृताय तीर्थाय नमो मुक्तिमहोदधे ॥

पञ्चामृत से उत्पन्न पञ्चामृत रूप, लक्ष्मी से निर्मित मुक्ति महार्णव महासमुद्र रूप आपको नमस्कार है।

यहाँ पर श्रीकृष्ण का नाम प्रौढ़ लक्ष्मी-नारायण है –

शयनस्थाय देवाय लक्ष्मीसेवापराय च ।
नमो प्रौढस्वरूपाय लक्ष्मीनारायणाय ते ॥

(कौमर्य)

शयन स्थल रूप देव, लक्ष्मी सेवा परायण, हे प्रौढ़ रूप लक्ष्मी नारायण ! आपको नमस्कार है।

इसलिए इनका नाम प्रौढ़ लक्ष्मी-नारायण रखा गया। माहेश्वरी तन्त्र में आख्यायिका है कि लक्ष्मी जी ने ध्यानस्थ वैकुण्ठ नाथ से युगल रस (राधा-कृष्ण) जानने हेतु जिज्ञासा की। उन्होंने गोपनीय होने से उत्तर नहीं दिया, तब लक्ष्मी जी ने केतुमाल पर्वत पर तपस्या की और ब्रह्मा, शिवादि देवताओं ने वैकुण्ठ नाथ से प्रार्थना की कि वे मानवती लक्ष्मी को प्रसन्न करें। "मानवती तपः लीना" तब वैकुण्ठ नाथ केतुमाल पर्वत गये और उन्होंने लक्ष्मी जी को बताया –

"हे देवी ! मैं श्री वृन्दावन विहारी की लीला का ध्यान कर रहा था, इसलिए उस समय मौन रहा।" यह सुनकर के लक्ष्मी जी भी श्री राधिका के चरण नख की कांति की कामना करने लग गयीं। राधा प्रेम रस में लोभवती होकर अपने प्रेम में उसका अभाव मानती हुई वे कामना करती हैं। इसीलिए 'राधा सुधा निधि' में –

कान्ताढ्याश्चर्यकांताकुलमणिकमलाकोटिकाम्यैकपादां-
भोजभ्राजन्नखेन्दुच्छविलवविभवा काप्यगम्या किशोरी ।
उन्मर्यादप्रवृद्धप्रणयरसमहाम्भोधिगम्भीरलीला
माधुर्योज्जृम्भितांगी मयि किमपि कृपारंगमंगीकरोतु ॥

(रा.सु.नि.९१)

ब्रज गोपियों ने जब श्री कृष्ण के अन्तर्धान होने के बाद पुनः प्रगट होने पर प्रश्न किया कि तुम हम सब को छोड़कर कहाँ चले गए थे? तब श्रीकृष्ण बोले –

एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥

(भा.१०/३२/२१)

"हे देवियो ! तुमने मेरे लिए लोक-वेद का सम्पूर्ण रूप से त्याग किया, इसीलिए मैं परोक्ष रूप से तुम्हारा भजन करने के लिए अन्तर्धान हुआ था। तुम मुझमें दोष दृष्टि मत करो क्योंकि मेरा प्रेम सर्वथा अलौकिक है और वह "तत् सुख सुखितः" के भाव से ही भरा हुआ है।

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून् भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥

(भा.१०/३२/२०)

प्रेम के बदले प्रेम इस व्यापार से मेरा प्रेम सर्वथा अचिन्त्य है। मैं सारी चेष्टाएँ प्रेमास्पद के भजन के लिए किया करता हूँ जैसे – निर्धन को धन प्राप्ति के बाद पुनः धन लोप होने पर अत्यधिक उत्कण्ठा की वृद्धि होती है वैसे ही तुम मेरी अन्तर्धान प्रक्रिया को समझो। वस्तुतः तुम्हारा प्रेम –

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(भा.१०/३२/२२)

जो निष्कलंक 'तत्सुख सुखिता' प्रेम है, उसका ऋण मैं ब्रह्मा की आयु पर्यन्त भी प्रयत्न करने पर चुका नहीं सकता हूँ क्योंकि गृहासक्ति प्राणियों की दुर्जर है। शव दाह में भी उसका दाह नहीं होता। उस दुर्जर गेह श्रृंखला को तुमने अनन्त काल के लिए काट दिया और फिर मेरा सेवन किया, मैं ऐसा नहीं कर सकता, तुमने जैसे माता-पिता आदि सब छोड़े, मैं अपने नंदबाबा और यशोदा मैया को नहीं छोड़ सकता। मैं तुम्हारा अनुकरण नहीं कर सकता।

इसलिए मेरी परोक्ष भजन लीला हुई और तुमने पूछा कि मुझे विलम्ब क्यों हुआ, उसका भी उत्तर दे रहा हूँ।

हे गोपियो ! पुष्कर द्वीप के दधिमण्डोद समुद्र के भीतर हंस नामक महामुनि अकाम होकर दो मन्वन्तर से मेरा तप कर रहे थे। उन्हें आज ही आधा योजन एक मत्स्य रूप धारी महान असुर पौण्ड्र निगल गया था। जो मेरा अनन्य चिन्तन करता है –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता.९/२२)

उसके योगक्षेम को धारण करना मेरा व्रत है क्योंकि मेरी उपासना अभय देने वाली है –

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥

(भा.११/२/३३)

मेरा यह व्रत –

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

(वा.रा.युद्ध.का.१८/३३)

इस व्रत की रक्षा के लिए मैंने जाकर चक्र से दोनों मत्स्यों का वध किया और हंस मुनि को निरापद करके श्वेत द्वीप चला गया था –

दुःखिता भवतीर्ज्ञात्वा निद्रां त्यक्त्व प्रियाः ।
सहसा भक्तवश्योऽहं पुनरागतवानिह ॥

(ग.सं.वृ.खं.२२/२३)

और शेष शैया पर शयन करके यहाँ तुम्हें सुखी करने इसी क्षण चला आ रहा हूँ क्योंकि मैं तो निष्काम भक्तों के पराधीन हूँ और मेरे भक्त ही इस निरपेक्षता के सुख को जान सकते हैं।"

इस पर गोपियों ने कहा –

क्षीराब्धौ शेषपर्यंके यद्रूपं च त्वया धृतम् ।
तद्रूपदर्शनं देहि यदि प्रीतोऽसि माधव ॥

(गर्ग.सं.वृं.खं २२/25)

गोपियाँ बोलीं – "हे माधव ! तुम हमें शेष शयन लीला का दर्शन कराओ" –

तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान्गोपीव्यूहस्य पश्यतः ।
दधाराष्टभुजं रूपं श्रीराधापरूमेव च ॥

तत्र शेषो बिसश्वेतः कुण्डलीभूतसंस्थितः ।
बालार्कमौलिसाहस्रफणाछत्रविराजितः ॥

तस्मिन् वै शेषपर्यंके सुखं सुष्वाप माधवः ।
तस्य श्रीरूपिणी राधा पादसेवां चकार ह ॥

(गर्ग.सं.वृं.खं २२/२६,२८,२९)

श्रीकृष्ण वहाँ अष्टभुजा नारायण बन गए और राधा रानी लक्ष्मी बन गईं और क्षीरसागर से शेष जी प्रकट हुए तथा उन पर नारायण रूपी माधव सुख से शयन करने लगे और लक्ष्मी रूपिणी राधा उनके चरण संवाहन करने लगीं।

उस करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान रूप को देखकर गोपियाँ विस्मित हो गयीं।

लघुशेषशयन वन

ततो लघुशेषशयन वन प्रार्थना मन्त्र :-

शेषशयनश्रीकृष्णसुखावासस्वरुपिणे ।
लक्ष्मीपादांह्रि सेव्याय नमस्ते कमलाप्रिये ॥

शेषशायी श्रीकृष्ण के सुखावास स्वरूप, लक्ष्मी से सेवित चरण चिन्हों से चिन्हित, लक्ष्मी के प्रिय सेव्य वन को नमस्कार है।

ततो लक्ष्मी कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

कमलास्नपनोद्भूतपीतांभसलिलाय ते ।
नमः कैवल्यनाथाय त्रैवर्गफलदायिने ॥

लक्ष्मी के स्नान से उत्पन्न, पीले जल वाले, कैवल्य नाथ और त्रैवर्गिक फल देने वाले, आपको ! नमस्कार है।

शेषशायी — क्षीर सागर कुण्ड एवं लक्ष्मी नारायण मंदिर

अध्याय – २५

सुपानो

कंस की क्रूरता कृपा बन गई अक्रूर के लिए।

बस ! विचारों का व्यापार आरम्भ हो गया।

क्या वे आत्मीय मानेंगे मुझे?

कहीं शत्रु नगर से आया जानकर शत्रुता तो नहीं ठानेंगे !

इधर दिव्याङ्गी श्रीराधा के लिए तो यह रात्रि दुःसह दुःस्वप्न का दान करने लगी।

कोमल कमलपत्रों से निर्मित शैय्या भी क्लेशकारिणी हो गई। कर तल का सहारा लिए उठीं कृशोदरी।

श्रीराधा (श्रीकृष्ण से) – प्रियतम ! यह क्या देखा मैंने ! रत्नमयसिंहासन पर आसीन मुझ सुकुमारी का छत्र छीन लिया है एक रोषपूर्ण विप्र ने। दुस्तर सिन्धु में फेंक दिया है, जहाँ बवंडर का रूप लिये वे लहरें मुझे उछाल रहीं हैं, तभी क्या देखती हूँ चाँद के कई टुकड़े हो गये हैं, वे व्योम से भूमि पर गिर रहे हैं, तब तक सूर्य भी अवनि पर आ गिरा। राहु ने दोनों को ग्रस लिया है, तब तक वह क्रुद्ध विप्र मेरे प्राण प्रिय नेत्र गत पुरुष को पकड़कर ले जा रहा है, यह देखकर मेरे कर से क्रीड़ा कमल गिर पड़ा। मणिमय दर्पण भी छन् करके गिरा और चूर्ण हो गया।

भित्ती पर चित्रित आकृतियाँ कभी हँसती हैं, ताल ठोकती हैं, रोती हैं तो कभी नाचती हैं। मेरा प्राणाधिष्ठातृ देव निर्दय हो कर बोला – राधे ! अब मैं विदा लेकर जा रहा हूँ यहाँ से।

तब तक एक काली प्रतिमा मेरा आलिंगन कर चुम्बन करने लगी। मेरा दक्षिण भाग फड़कने लगा और प्राण तो स्वप्न से बाहर आने पर भी रुदन कर रहे हैं। ऐसा करते हुए नेत्रों से अजस्र निर्झरिणी जब प्रवाहित हुई तो कज्जल से घुल मिलकर काली हो गई। इस काली धारा ने कंचुकी को भी काला किया फिर कृष्ण की ओर बढ़ने लगी।

(श्याम सुन्दर ने श्रीराधिका रानी को करयुग्म से उठाया।)

श्रीराधा – हा कान्त ! आपके बिना मृत तुल्य हूँ मैं। घृताहुति पाकर जैसे अग्नि शिखर जी जाती है, उसी प्रकार आपके संग से मैं दिव्य दीप्ति से दमक उठती हूँ। यह संग कदापि भंग न करें।

रुदन करते हुए हरि चरणों में गिर पड़ीं पंकेरुहनयना।

श्रीकृष्ण – प्रिये ! भूल गयीं श्रीदामा का शाप?

व्यथित होने की आवश्यकता नहीं है। शापावधि पूर्ण होने पर वियोग के बाद हमारा-तुम्हारा पुनर्मिलन होगा तब तुम्हें अपने पूर्ण परिकर सहित लेकर गोलोक गमन करूँगा। अब मेरे द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान तुम सुनो व धारण करो।

वायुवत् सर्वत्र विचरते भी मैं निर्लिप्त हूँ। दुग्ध व उसकी धवलता जिस प्रकार अभिन्न है उसी प्रकार हम दोनों अभिन्न हैं। मैं ही महान विराट हूँ, महा विराट मेरा अंश है, क्षुद्र विराट भी मैं ही हूँ। विष्णु के रोमकूपों में भी मेरा ही आंशिक निवास है, ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी मेरी कला हैं। हे देवी ! विश्व ब्रह्माण्ड से बाहर वैकुण्ठ में तुम ही महालक्ष्मी हो एवं मैं ही वहाँ चतुर्भुज नारायण हूँ। वरानने ! वृंदाकानन को पावन बनाना ही आपके मंगलागमन का विशेष उद्देश्य है।

हे देवी ! हम दोनों तो एक-दूसरे का देह व आत्मा हैं, समान प्रकृति-पुरुष हैं, निमित्तोपादान कारण हैं, हमारे-तुम्हारे बिना सृष्टि-सृजन का संकल्प भी सम्भव नहीं। बहु भाँति प्राणाधिका प्रिया जू को वक्ष से लगाकर प्रियतम ने समझाया एवं पुनः दुग्ध फेनवत् धवल कोमल शैय्या पर सुख से सो गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के पूर्व श्री लाड़ली जू ने जो दुःस्वप्न का दर्शन किया वह सुपाने ग्राम की ही लीला है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण अध्याय ६६)

ततो स्वप्न वन प्रार्थना मन्त्र :-

सुस्वप्नदर्शनार्थाय दुःस्वप्नशमनाय ते।
अक्रूरबरद श्रेष्ठ स्वप्नाख्याय नमो नमः॥

सुन्दर स्वप्न के दर्शन के लिए और खराब स्वप्न के नाश के लिए अक्रूर को वर देने वाले हे स्वप्न वन ! आपको नमस्कार है।

ततो अक्रूर कुण्ड प्रार्थना मन्त्र :-

क्रूराक्रूरकृतार्थाय दुर्बुद्धि शमनाय ते।
अक्रूरस्नपनोद्भुत तीर्थराज नमोस्तुते ते॥

क्रूर अक्रूर को कृतार्थ करने वाले मंद बुद्धि का नाश करने वाले अक्रूर के स्नान से उत्पन्न तीर्थराज ! आपको नमस्कार है।

कोसी

कुशलञ्च तत्रैव पुण्य पापहरं शुभम् ।
तत्र स्नातो नरो देवी ब्रह्मलोके महीयते
अपात्रो मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥

(वा.पु.)

इसकी स्थिति गोहेता से साढ़े ५ कि.मी. पश्चिम की ओर है।

गर्गसंहितानुसार

श्री कुश वन (कोसी) श्रीकृष्ण की गौचारण भूमि है। जब से ब्रजेन्द्रनन्दन ५ वर्ष के हुए हैं, वत्सपाल से गोपाल बने हैं, तब से इस पवित्र लता-वल्लरियों से सुरम्य कुशवन में प्रतिदिन का आवागमन हो गया है।

"रम्ये कुशवने सौम्ये लताजाल समन्विते"

(ग.सं.वृ.ख.१०/२०)

भिन्न भाव मत में इसका नाम 'कोष स्थल' है। ऐसी जन श्रुति है कि यहाँ नन्द बाबा का कोष (भण्डार गृह) था। अतः इसका प्राचीन नाम 'कोष स्थल' भी प्राप्त होता है।

विशेष बात –

एक बार नन्द बाबा की इच्छा हुई, सम्पूर्ण तीर्थ-भ्रमण करने की, तो श्री कृष्ण ने उन्हें ब्रज से बाहर गमन करने को मना कर दिया और ब्रज में ही सम्पूर्ण तीर्थों का आह्वान कर उनका दर्शन कराया, अनन्तर ब्रज में ही उन्हें वास स्थान दे दिया।

फिर नन्द बाबा ने उनकी स्वर्णिम द्वारिका दर्शन का भी आग्रह किया। द्वारिका का एक नाम – कुशस्थली भी है, तो उस कुशस्थली (द्वारिका) को भी प्रभु ने ब्रज में इस स्थान पर वास दिया, साथ ही द्वारिका के उच्च रैवतक पर्वत, गोमती व समुद्र को भी यहाँ वास दिया। उच्च रैवतक पर्वत आद्यावधि यहाँ है जिस पर वर्तमान में ब्रजवासीगणों का प्रवास हो गया है। रत्नाकर सागर और गोमती कुण्ड भी यहाँ है, जिसका जीर्णोद्धार विगत १३ वर्ष पूर्व 'कृष्ण संकीर्तन' से 'श्री राधा मान बिहारी लाल जी' के द्वारा हुआ।

गोमती तट पर ही श्रीमद् वल्लभाचार्य जी की बैठक व भगवती देवी के मनोरम दर्शन हैं।

स्यमन्तक मणि लेने हेतु प्रभु जाम्बवान की गुहा में प्रविष्ट हुए। समस्त द्वारिकावासी गुहा के बाहर प्रतीक्षित खड़े दिवस-गणना कर रहे थे।

१ दिन हुआ,२ दिन हुए, ३ दिन हुए किन्तु आज तो द्वादश दिवस हो चले, प्रभु लौटे नहीं क्या कारण है? कहीं ....कोई अनिष्ट तो नहीं हो गया? भयभीत हो सब त्रैलोक्य मंगल के लिए मंगल कामना करते हुए महाशक्ति दुर्गा की शरण में गये और उनकी आराधना की –

सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।
उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥

(भा.१०/५६/३५)

उपासना के फल स्वरूप थोड़ी ही देर में द्वारिकाधीश अपनी द्वितीय पट्ट महारानी सहित बाहर आये।

ये वे ही भगवती देवी हैं, आपत्ति काल में सब द्वारिकावासियों ने जिनकी आराधना की थी।

इस कुशस्थली या कोष स्थल का अपभ्रंश ही कोसी हुआ।

यहाँ के प्रणम्य अन्य दर्शनीय स्थल –

श्री विशाखा कुण्ड, श्री मान कुण्ड, मावई कुण्ड, श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर, श्री बिहारी जी मंदिर, श्री दाऊ जी, श्री राम मंदिर, पञ्चमुखी हनुमान मंदिर, राधा वल्लभ मंदिर, राधा माधव मंदिर, राधाकान्त मंदिर, ऋद्धि-सिद्धि मंदिर।

ततो कुशवन प्रार्थना मन्त्र (ब्रह्मांडपुराण):-

पुण्याय पुण्यरूपाय पावनाय नमो नमः ।
अक्षयफलदायैव नमः कुशवनाय ते ॥

हे परम पावन ! हे पुण्य स्वरूप ! हे अक्षय फल प्रदायक कुशवन ! आपको प्रणाम है।

ततो मानसरःस्नानाचमनप्रार्थना मन्त्र :-

मानसिक्यघनाशाय मुक्तये मुक्तिरूपिणे ।
आह्लादमनसे तुभ्यं नमस्ते मानसाह्वये ॥

हे मानसिक पाप विनाशक ! हे मुक्ति स्वरूप मान सरोवर ! आप मन को आह्लाद प्रदान करने वाले हैं, आपको प्रणाम है।

ततो गोमती स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

गोमती मनसोर्थाय सर्वकामप्रदायिने ।
तपसां सिद्धये तुभ्यं तीर्थराज नमोस्तु ते ॥

हे गोमती ! हे तीर्थराज आप मनोभीष्ट कामनाओं को प्रदान करने वाले हैं। समस्त तापस कर्मों की सिद्धि के लिए आपको प्रणाम है।

खरोंट

यहाँ कन्हैया जी के श्री चरणों में खुरसांट लग गई, जिससे इस गाँव का नाम खरोंट पड़ गया।

फालेन

फालेन ग्राम में ठाकुर जी ने ब्रजवासियों को प्रह्लाद लीला दिखाई। जिसकी अनुकरण लीला आज तक चल रही है। यहाँ आज भी प्रह्लाद मन्दिर का पुजारी (पंडा) एक महीने तक प्रह्लाद मन्त्र का जाप व उपवास करता है और मासान्त पर पूर्णिमा की रात्रि को मन्दिर से निकल कर प्रह्लाद कुण्ड में स्नान कर, शीतला लग्न में लगभग चार बजे जहाँ १० फुट ऊँची होलिका बनाई जाती है और अग्नि प्रज्वलित की जाती है और सबके देखते ही देखते पंडा धधकती हुई आग से निकल कर पुनः प्रह्लाद मन्दिर में चला जाता है। प्रह्लाद मन्त्र के प्रभाव से आग उसे जला नहीं पाती। इस लीला को देखने के लिए देश-विदेश से हजारों लोग आते हैं।
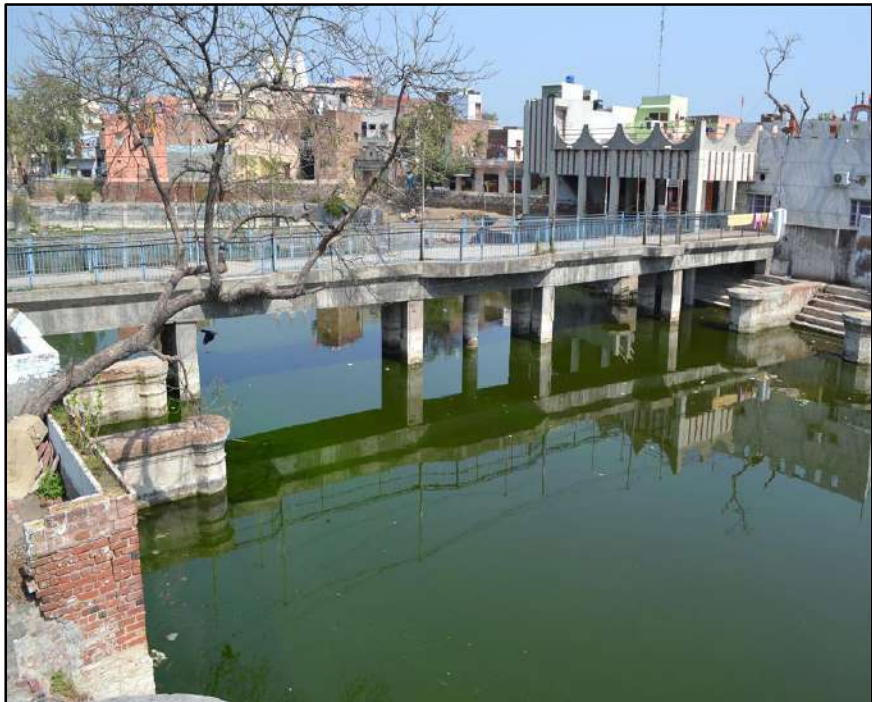
कोसी – गोमती गंगा एवं रत्नाकर कुण्ड
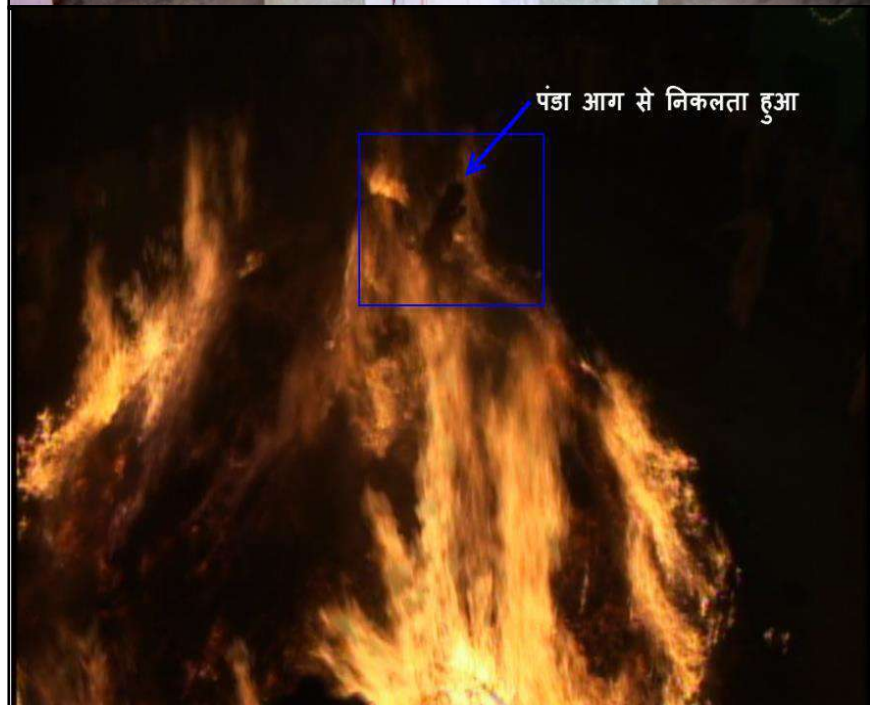
कोसी– श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक एवं फालेन – प्रह्लाद लीला

फालेन – नरसिंह मंदिर एवं प्रह्लाद कुण्ड

अध्याय – २६

पैगाँव

पय माने दूध। पैगाँव नागा जी का गाँव है। नागाजी बड़े सिद्ध महापुरुष हुए हैं। एक दिन में पूरे ब्रज (८४ कोस ब्रज मण्डल) की परिक्रमा कर लेते थे। आज का मनुष्य विश्वास नहीं करेगा। ये आवेश होता है। जैसे विषयावेश होता है, वैसे भजनावेश होता है भक्ति का। विषयावेश में मनुष्य अंधा हो जाता है और उचित-अनुचित नहीं सोचता। क्या उचित है क्या अनुचित है? भागवत में ९ स्कन्ध में लिखा है – माँ, बहन कुछ नहीं देखता, अंधा हो जाता है। अपनी पुत्री को भी नहीं देखता है, विषयावेश ऐसी चीज है। वैसे ही भजनावेश होता है। भजनावेश में ऐसी शक्ति आ जाती है कि महाप्रभु चैतन्य जब आवेश में नृत्य करते थे तो उनकी आँखों से पिचकारी चलती थी, आँसुओं की बूंद नहीं। उनके अंग बढ़ जाते थे। एकबार चटक पर्वत को गिरिराज जी समझकर दौड़े। एक बार अथाह समुद्र में कूद पड़े और भजनावेश में कुछ नहीं हुआ, तो ये महापुरुषों में आवेश होता है, जिसको हम समझ नहीं सकते क्योंकि हम लोग विषयी हैं। विषयावेश में जैसे हम कुछ नहीं सोचते उचित-अनुचित, वैसे ही भजनावेश में ऐसी शक्ति आती है कि जैसे हनुमान जी समुद्र पार कर गए। जब समुद्र किनारे सारी सेना पहुँची तो जटायु का भाई सम्पाती गीध था, गीध के नेत्रों में बहुत शक्ति होती है – **"गीधहि दृष्टि अपार"**। आकाश से देख लेता है कि कहाँ उसका भोजन है और वहीं से उड़ता हुआ आता है और खा कर चला जाता है। सम्पाती ने वहीं से देखकर बता दिया – "देखो, सीता वहाँ बैठी है समुद्र पार। अशोकवाटिका में नीचे बैठीं हैं, जिसमें सामर्थ्य हो समुद्र पार करने की, वो चला जाए, माता का दर्शन करे।" सुनकर सब लोग सोचने लगे – मैं १० कोस उछल सकता हूँ, कोई कहे २० कोस, कोई कहे ४० कोस, कोई ५० कोस। १०० योजन माने ४०० कोस होता है। अंगद बोले – "मैं उछलकर पार जा सकता हूँ लेकिन लौटने में शंका है।" ४०० कोस जाना, ४०० कोस आना आकाश मार्ग से उड़ करके। हनुमान जी चुप बैठे थे। जाम्बवन्त जी समझ गए कि आवेश वाला इस काम को कर सकता है। उन्होंने कहा – "**का चुप साधि रहेहु बलवाना**" "अरे पवन पुत्र ! तुम वायु के समान हो, तुम चुप क्यों बैठे हो? " आवेश आया हनुमान जी को। शरीर में आवेश से एक विशेष शक्ति आ गई। जैसे कामी के अन्दर कामावेश होता है, वैसे भजनानंदी के अंदर भजन का आवेश होता है। हनुमान जी बोले, "कहो तो मैं लंका को उखाड़कर यहाँ रख दूँ। लंका हमारे सामने गूलर का फल है।" जाम्बवन्त ने कहा – "हनुमान जी लंका मत उखाड़ो। सीता जी की सुध लेकर आओ।"

वे बोले ठीक है, एक पर्वत पर चढ़े और उछले, उनके भार से पर्वत पाताल में चला गया, तो ये आवेश की स्थिति होती है। नागा जी इसी आवेश में परिक्रमा करते हुए एक बार कदम्ब खंडी पहुँचे। कदम्ब खंडी में हींस की झाड़ी थी। हींस में काँटे होते हैं, जो टेढ़े होते हैं, उनकी जटा में काँटे फँस गए तो वो सुलझा सकते थे। (ये लीला इसी ग्रन्थ के "नागा जी की कदम खंडी" अध्याय-७७ में दृष्टव्य है)

दूसरी लीला

ललिता जी ने दूध का कटोरा लेकर श्याम सुन्दर के हाथ में दिया क्योंकि वो जानती हैं कि पहले राधा रानी के हाथ में कटोरा दूँगी तो राधा रानी पहले श्याम सुन्दर को पिलायेंगी। इसलिए कृष्ण के हाथ में दिया कि कृष्ण के हाथ में दूँगी तो पहले राधा रानी को पिलायेंगे। जब ललिता जी ने दूध का कटोरा दिया तो श्याम सुन्दर हँस गए, ललिता जी बड़ी चतुर हैं –

हँस हँस दूध पीवत नाथ।
कनक कटोरा भरयो अमृत दियो ललिता हाथ।

ललिता जी ने सोने के कटोरे में कृष्ण को दूध दिया लेकिन उन्होंने क्या किया –

"मधुर कोमल वचन कहि-कहि प्राण प्यारी साथ"

दूध का कटोरा श्याम ने राधा रानी के होठों पर लगा दिया। श्रीजी मना कर रही हैं, नहीं पहले तुम पियो, ललिता ने पहले तुम्हें दिया है। मीठा वचन बोल रही हैं। कृष्ण बोले, नहीं लाड़ली जी पहले आपको पीना पड़ेगा फिर मैं पान करूँगा।

"लाड़ली अंचवाय पहले पाछे आप अघात"

पहले राधा रानी को पिलाया फिर स्वयं पिया। ऐसा क्यों किया? ऐसा इसलिए किया कि कृष्ण के मन में राधा बस रही हैं।

"चिन्तामणि चित बस्यो सजनी निरखि पिय मुस्कात"

राधा रानी देखकर मुस्कुरा रही हैं कि प्रीति हो तो इनके जैसी हो।

"श्यामा श्याम की नवल छवि पर रसिक बलि-बलि जात"

इस लिए पय माने दूध। उस गाँव का नाम पड़ा पय (पय गाँव)।

"उहे देख पय ग्राम श्री कृष्ण ए खाने
पय पाते केला सर्वसखा गन सने"

(भ.र)

ततो पैगांव-आहूतबनप्रदक्षिणा प्रार्थना मन्त्र (आदिपुराण) :-

कृष्णवाक्यसमाहूत समागमविधायिने ।
गोगोपालसुखारामाहूतसंख्याय ते नमः ॥

कृष्ण के वाक्यों से उत्पन्न, सम्मिलन करने वाले, गाय और गोपाल के सुख निवास रूप आहूत नाम वाले वन को नमस्कार है।

ततो ध्यानकुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

गोपीध्यानसमाहूत कृष्णचेष्टाविधायिने ।
ध्यानकुण्ड नमस्तुभ्यं लोकानामिष्टदायिने ॥

गोपियों के ध्यान में बुलाये हुए कृष्ण की चेष्टाओं का विधान करने वाले, सबको इष्ट वस्तु देने वाले ध्यान कुण्ड ! आपको नमस्कार है।

पै गाँव – नागा जी मंदिर, नागा जी के केश सुलझाते हुए ठाकुरजी व श्रीजी एवं गोपाल कुण्ड

अध्याय – २७

उझानी

वंशी की ध्वनि ने न केवल ब्रज के जलचर, थलचर व नभचरों को विमोहित किया बल्कि जड़ जीव तक स्तंभित हो गये। यमुना का प्रवाह विपरीत दिशा में हो गया। इसी से इस गाँव का नाम 'उझानी' पड़ा। यमुना महारानी श्री कृष्ण की पटरानी हैं; भला वे फिर वंशी की प्यारी धुन से क्यों न स्तंभित होंगी ?

श्री शेरगढ़

ब्रज के १२ अधिवनों में शेरगढ़ की गणना है। शेरगढ़ का पौराणिक नाम गढ़ वन एवं रसिकों के आधार पर इसका नाम खेलन वन है। शेरगढ़ नाम होने का यह कारण है कि भारतवर्ष में यवनों के शासन काल में बहुत से परिवर्तन हुए। उस समय शेरशाह सूरी की राजधानी होने से इसका नाम शेरगढ़ हुआ। रसज्ञों ने श्री खेलन वन की लीला का वैदग्ध्य पूर्ण अतिसरस उल्लेख किया है –

सखी मैं दोउन की रूचि पाई ।
खेलनवन खेलत रसभोगी बरसत रंग महाई ।
मोर पक्ष मोहन चुनिलाये मुकुट रचत लख माई ।
प्यारी के सिर धरी चंद्रिका अपने हाथ बनाई ।

एक समय दोनों राधा-माधव की खेलने की इच्छा हुई। यूँ तो युगल सरकार वृन्दावन की वीथियों में निभृत निकुंजों में खेलते ही हैं किन्तु यहाँ खेलन वन में एक विशिष्ट खेल हुआ है। उस समय यहाँ बज्रकील पर्वत था। उस गिरि के ऊपर सघन पादप श्रेणियाँ-वल्लरियाँ एक नवीन सज्जा के साथ अवस्थित थीं।

जिन पर आसीन मयूर भुवन मोहन की रूप राशि का निर्निमेष नयनों से पान कर रहे थे। दर्शन पान के आनन्दोदधि में मत्त मयूरों ने उसी समय अपने रंगीन पिच्छ गिराये और एक अद्भुत लीला का सृजन हुआ –

निर्माय चारू मुकुटं नवचन्द्रकेण गुञ्जाभिरारचित हार मुपाहरन्ती ।
वृन्दाटवीनवनिकुञ्जगृहाधिदेव्याः श्रीराधिके तव कदा भवितास्मि दासी ॥

(रा.सु.नि.३०)

सर्वदा मयूर पिच्छ बीन-बीन कर गोप सुन्दरियाँ सुन्दर मुकुट बनाकर श्रीजी को भेंट करती थीं और श्रीजी लाल जी को धारण कराती थीं किन्तु आज तो श्याम सुन्दर मयूर पंख बीन कर लाये और अपने कर से मुकुट बनाने लगे, जबकि श्रीजी के पक्ष का सखी समुदाय ही सर्वदा लाल जी का श्रृंगार करता था किन्तु आज का तो खेल ही कुछ अलग था, जैसा स्वयं कलाप (मयूर) किरीट धारण करते हैं, ठीक वैसा ही कलाप किरीट बनाकर श्याम सुन्दर ने श्री राधारानी को धारण कराया। विचित्र कौतुकमय श्रृंगार किया। प्रेम के खिलौना हैं ये दोनों किशोर-किशोरी। अनंतर श्री कृष्ण ने विचित्र चिकुर-चन्द्रिका बनाई और श्रीजी के शीश पर वह भी धारण करा दी। न तो पूर्ण रूप से श्रीजी ही बनाया और न श्री कृष्ण ही, युगल रूप बना दिया। यह विचित्र खेल यहीं इस वनस्थल में सम्पन्न हुआ। अतः इस वन का नाम खेलन वन है।

ब्रह्मपुराणानुसार

यहाँ जो बज्र कील पर्वत है, व्योमासुर ने इसकी स्थापना की थी। बलरामजी के वध के लिए उसने यहाँ उद्यम किया। बज्रकील की स्थापना करके उसकी कन्दराओं में अपनी हवेली बनाई और इस पर्वत को बज्र से कील दिया, जिससे इसका नाम बज्रकील हुआ। श्री दाऊ जी महाराज ने व्योमासुर का संहार किया। इसके बाद यह राधा-माधव का क्रीड़ा स्थल बन गया। अतः इसकी पूजा भी हुई और 'श्री गर्गसंहितानुसार' तो श्री कृष्ण द्वारा व्योमासुर वध हुआ। भविष्य पुराण एवं ब्रह्मपुराणानुसार श्री बलराम जी ने वध किया है। दोनों ही प्रबल प्रमाण हैं, कल्प भेद से विचित्र चरित्र होते ही रहते हैं, यथा – जय-विजय शाप से रावण बने, जालन्धर भी रावण बने, प्रताप भानु भी रावण बना, नारद जी के शाप से रूद्र के अनुचर भी रावण बनें। सभी मत सत्य हैं। श्रीकृष्ण द्वारा व्योम वध, बलराम जी द्वारा व्योम वध, दोनों ही बातें सत्य हैं। बलभद्र कुण्ड से आगे यहाँ बाजार में श्री दाऊ जी का मन्दिर भी है। दाऊ जी के मन्दिर के साथ-साथ मदन-मोहन जी और श्रीराधा-वल्लभ लाल के भी दर्शन हैं।

भविष्य पुराणानुसार

एकबार व्योम गोकुल में आया, बलराम जी को अपने विशाल स्कंध पर बिठाकर नभ में ले गया। बलवान तो था ही, बलराम जी को नभ में घुमाने लगा। बलराम जी ने जब उसका विकराल रूप देखा तो समझ गए कि यह असुर है। विकट-संकट में दाऊ जी को देखकर, उधर नीचे सब ग्वाल बाल विलाप करने लगे किन्तु श्रीकृष्ण मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे क्योंकि

ये तो दाऊ भैया के पराक्रम से भलीभाँति परिचित हैं। भला सर्वसमर्थ शेषावतार प्रभु का एक असुर क्या बिगाड़ पायेगा? वह तो स्वयं की बिगड़ी बनाने इनके पास आया है। ग्वाल-बालों को भयभीत देखकर बलरामजी ने उसके स्कन्ध पर बैठकर बल पूर्वक एक धक्का लगाया और व्योम सीधा यहाँ आकर गिरा।

शेरगढ़ –बलभद्र कुण्ड

अध्याय – २८

ऐंचादाऊ जी (ओबे)

यहाँ की लीला श्रीमद् भागवत के १० स्कन्ध के ६५वें अध्याय में यानि उत्तरार्द्ध में लिखी हुई है। इसमें लिखा है कि रथारूढ़ होकर दाऊ जी ब्रज में आए। वे दो महीने ब्रज में रहे। एक दिन दाऊ जी ने अपने यूथ की गोपियों के साथ यमुना किनारे रास किया। यमुना किनारे आने पर उन्होंने यमुना को पुकारा – "हम जल क्रीडा करेंगे, आ जाओ", लेकिन यमुना जी ने ध्यान नहीं दिया। यमुना जी नहीं आईं, दाऊ जी क्रोधित हो गए – "अरे ! मेरी आज्ञा नहीं मानती है, मैं हल से खेंच कर तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।"

हलरेखा कृतार्थाय शेषरोषनिरीक्षक ।
बलदेवस्थलायैव नमस्ते धान्यवर्द्धन ॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थ – शेष के रोष को देखने वाले, उनके आयुध हल रेखा से जो कृतार्थ हुए हैं, हे बलदेव के लीला स्थल आपको नमस्कार है। आप धान्य वर्धन करने वाले हैं।

अष्टाचार्यों ने श्रीमद्भागवत की टीका में लिखा है यह यमुना जी का तिरस्कार नहीं है, क्योंकि यमुना जी के कई रूप हैं उनमें एक रूप है समुद्र पत्नी। दाऊ जी ने इन समुद्र पत्नी को ही अपने हल से खींचा था मूल यमुना को नहीं, यमुना जल में कालिंदी भी रहती हैं। ऐंचा माने यमुना जी को खेंचा, इससे प्रवाह टेढ़ा हो गया है। यमुना जी सीधी बहती जा रही थीं दाऊ जी के खेंचने पर यमुना जी इधर होकर बहने लगी। इसलिए इस स्थान का नाम ऐंचा दाऊ जी पड़ गया। यहाँ दाऊ जी ने जल विहार किया। जब जल विहार करके बाहर निकले तो लक्ष्मी जी वहाँ आईं, उन्होंने दाऊ जी को नीलाम्बर और सोने की माला भेंट की, दाऊ जी का श्रृंगार हुआ। यहाँ मधु धारा निकली थी, वरुण ने वारुणी देवी को भेजा था इसलिए यहाँ दाऊ जी को प्रतीक रूप में आज भी भांग का भोग लगता है।

ततो वाक्य वन प्रार्थना मन्त्र :-

कृष्ण वाक्य समुद्भूत बधिरान्धविनाशन।
सर्वदारोग्यलाभाय वाक्य नाम्ने नमोस्तुते॥

(ब्र.भ.वि)

पर्वतोपरि संस्थित्य वाक्यैः कृष्णः समाह्वयन्।
गोपालांश्च सखीनत्र वाक्यनामाभवद्वनम्॥

श्रीकृष्ण के वाक्यों से उत्पन्न, बधिरता, अन्धता विनाशक, आरोग्य लाभ के लिए आपको नमस्कार है।

तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम्।
स्पृहय तीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः॥

(भा.१०/३५/७)

नदियों का प्रवाह रुक गया। यमुना जी श्रीकृष्ण की चरण रज की अभिलाषा कर रही हैं। किसी तरह से कृष्ण चरण रज मिले कैसे? यमुना किनारे 'अनिलनीतम्' हवा चल रही है, वो रज उड़ा कर ला रही है। 'स्पृहा' माने यमुना जी इच्छा कर रही हैं कि कृष्ण चरण रज मिल जाए 'वयम्' माने गोपियाँ कहती हैं, जैसे हम लोग चाहती हैं।

प्रेमवेपितभुजाः – लहरें रुक जाती हैं और जब लहरें रुक जाती हैं तो पानी ऊपर उठता है। 'स्तिमितापः' कहते हैं, पानी ऊपर गया यानि ये यमुना जी के हाथ हैं, हाथ फैला रही हैं –लाओ कृष्ण चरण रज दे दो तो यह कृष्ण के शब्दों (वाक्य) का प्रभाव है। कृष्ण कभी वंशी बजाते हैं तो कभी अपने कलपदों से (वंशी के स्वरों से) यमुना जी को बुलाते हैं। इसीलिए नारायण भट्ट जी ने इसको वाक्य वन कहा है जहाँ श्रीकृष्ण बहुत मीठा बोलते हैं और गायों को बुलाते हैं।

ऐंचादाऊ जी – यमुना जी एवं दाऊ जी मंदिर

अध्याय – २९

विहार वन

यहाँ श्रीकृष्ण ने शतकोटि गोपियों के साथ रास किया, उन सभी के महान उत्साह भरे झंकृत मोहन शब्दों से विमल रूप विहार की रति से विहार वन नाम का स्थल हुआ। उसके मध्य में रास करने से सौभाग्य वर्धक रास मण्डल त्रिलोकी में विख्यात हुआ।

ततो विहारबन प्रार्थना मन्त्र :-

गोपिका निर्मितायैव नंदसूनुविहारिणे ।
देवर्षिदुर्लभ श्रेष्ठ बनराज नमोस्तु ते ॥

गोपिकाओं से निर्मित नंदलाल के विहार के लिए देवर्षियों को भी दुर्लभ श्रेष्ठ वनराज! आपको नमस्कार है।

ततो वारुणी कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

नमो वरुणरम्याय वारुणीकुण्ड ते नमः ।
इन्द्रादिलोकपालानां वरदाय नमोस्तु ते ॥

वरुण से रमणीक वारुणी कुण्ड! आपको नमस्कार है। इन्द्रादि लोकपालों को वर देने वाले आपको नमस्कार है।

अथ विहारवनोत्पत्तिमाहात्म्यनिरूपणं (ब्रह्माण्डे)

यत्रैवशतकोटिभिर्गोपीभीरासमाचरेत् ।
नन्दसुनुर्महोत्साहैर्झंकारखमोहनैः ॥
नानाविमलरूपेण विहारं रति विहवलं ।
बिहारबनमाख्यातं यस्मान्नाम भविष्यति ॥

ततो शतकोटिगोपिकारासमण्डल प्रार्थना मन्त्र :-

गोपीभ्यो शतकोटीभ्यो स कृष्णाभ्यो नमोस्तु ते ।
देवादिपरमोत्साह रासगोष्ठि नमोस्तु ते ॥
आगत्य वरुणो यत्र वारूणीं मदिरां करोत् ।
कृष्णपानाय गोपीनां पानाय मदविह्वलां ॥
वैहारविह्वलाः गोपीः कृष्णं वैहारविह्वलं ।
दृष्ट्वा करोनमहातीर्थं वारूणीकुण्डमुत्तमं ॥
सुरापानकृतो मोहाद्यत्र दोषो विमुच्यते ।

अर्थ – शतकोटि गोपियों से युक्त रासमण्डल! आपको नमस्कार है। देवों को भी परमानंद देने वाली रास गोष्ठी को नमस्कार है। वरुण ने गोपियों और कृष्ण के पान के लिए मद से विह्वल वारुणी मदिरा का निर्माण किया। विहार में विह्वल गोपियाँ और विहार में विह्वल कृष्ण को देखकर के उत्तम वारुणी कुण्ड महातीर्थ का निर्माण किया, जहाँ मोह से मदिरा पान करने वाला मनुष्य दोषों से मुक्त हो जाता है।

नाना कदम्ब, गुल्म, लता, वृक्षों से आच्छादित विहार वन नामक वन है। यहाँ विहारी जी का दर्शन, विहार कुण्ड दर्शनीय है। विहार वन विहार की स्थली है जहाँ अद्भुत विहार होता है, जो विचित्र होता है उसका अनेक रसिकों ने अनेकों ढंग से वर्णन किया है। जैसे श्रीजी के प्रेम को देखकर श्यामसुन्दर मोहित हो जाते हैं। उनके प्रेम पर रीझने के कारण वो विपरीत प्रेम लीला का प्रारम्भ कर देते हैं। राधा, कृष्ण बनती हैं और कृष्ण, राधा बनते हैं, किशोरी जी के आभूषण श्याम सुन्दर पहनते हैं और किशोरी जी श्याम के आभूषण पहनती हैं। श्यामसुन्दर मानिनी बनकर बैठ जाते हैं। सारी लीलाएँ विपरीत ढंग से होती हैं।

श्याम सुन्दर जो मानिनी नायिका हैं, उनसे श्रीजी कहती हैं –

कहति नागरी श्याम सों तजि मान हठीली ।
हमते चूक कहा परी तिय गरब गहीली ।
वृथा मान नहिं कीजिये सिर चरनन धारति ।
प्यारी हा हा करत न मानै पुनि पुनि चरण गहे ।
कहा करत ये बोलत नाहिं नागरी हंसति हृदय डर भारी ।
निरखि तिय रूप पिय चकित भारी नागरि हठ तजो कृपा करि मोहे भजो ।
'सूर' प्रभु नागरि रस विरह मगन भई देखि छबि हंसत गिरिराज धारी ।
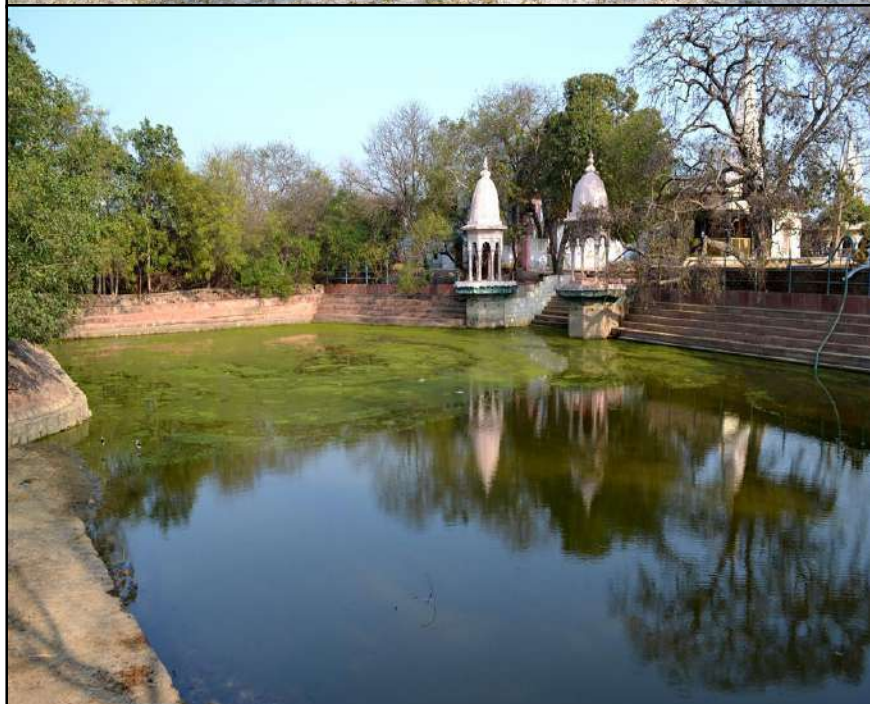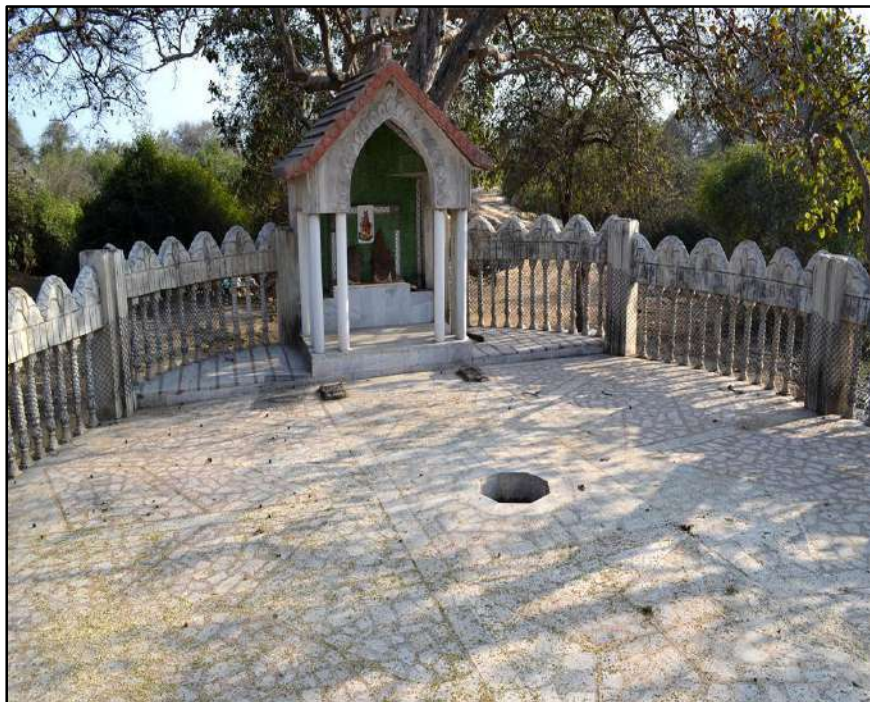
विहार वन – रास मण्डल एवं वारूणी कुण्ड

अध्याय – ३०

कासरोट

कासरोट एक तरह का योग पीठ है। योग पीठ कहते हैं कि जब जीव यहाँ से जाता है भगवान् के धाम में तो जिस जगह भगवान् का मिलन होता है उसे योग पीठ कहते हैं। योगपीठ का अवतार है कासरोट।

गांगरोल

यह गंगा जी का गाँव है, इसे ब्रजवासी गांगरोली कहते हैं। जन्हु या जान्हवी वन या जन्हुवन भी इसका नाम है। जन्हु पुत्री जान्हवी ने श्रीकृष्ण के लिए यहाँ तप किया। जान्हवी या गंगा को गौड़ीय सम्प्रदाय में अनंग मंजरी कहा गया है, जो पूर्व कल्प में श्रीजी की बहन थीं। जिनका विवाह अंतरंग लीला में श्रीकृष्ण से हुआ था।

एक बार मकर संक्रान्ति पर नन्द बाबा गंगा स्नान करना चाहते थे तब श्रीकृष्ण उनको यहाँ लाए, जहाँ गंगा ने कृष्ण दर्शन के लिए तप किया था और कृष्ण के चरन दर्शन पाकर गंगा द्रवीभूत हुई। नन्द बाबा ने यहाँ स्नान किया, गांगरोल इसका नाम पड़ा। ब्रजवासी यही जानते हैं कि यह गर्गाचार्य जी का गाँव है और यहाँ गर्ग मुनि की एक मूर्ति भी पधराई गई है।

अथ जन्हुवनोत्पत्तिमाहात्म्यं (ब्राह्मे)

देवगंधर्वसेव्याय नानाद्रुमलतार्चित ।
विकल्मषाय मोक्षाय तपस्थल नमोस्तु ते ॥
नित्यस्नानं चकारात्र जन्हुश्च तपसांनिधिः ।
जन्हुकूपसमाख्यातं गंगापातसमुद्भवं ॥

देव गन्धर्वों से शोभित नाना प्रकार के वृक्षों, लताओं से युक्त कल्मष नाशक और मोक्ष दाता तपस्थल ! आपको नमस्कार है।

ततो जन्हुऋषिकूपस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

गंगापातसमुद्भुत ! जन्हुतीर्थ नमोस्तु ते ।
सर्वकल्मषनाशाय जन्हुकूप नमोस्तु ते ॥

तपोनिधि जन्हु ऋषि के नित्य स्नान का स्थल है। गंगा जी के गिरने से यह जन्हु कूप प्रसिद्ध हुआ।

गंगा के गिरने से उत्पन्न हे जन्हु तीर्थ ! आपको नमस्कार है, आप सभी कल्मषों का नाश करने वाले हैं।

कासरोट – अक्षयवट एवं गांगरोल कुण्ड

अध्याय – ३१

चीरघाट

वृत्ति आवरण का हरण ही चीर हरण है। श्रीमद्भागवत, श्रीगर्ग संहिता, श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण, सर्वत्र इस लीला का गान हुआ किन्तु श्री ब्रह्मवैवर्त में मर्मोद्भासक विलक्षण उल्लेख मिला, जिसमें श्रीजी की अनुपम आराधना ने असंभाव्य की भावना को भी कोई स्थान नहीं दिया अर्थात् हरण किये हुए वस्त्र न माँगने पड़े न लेने पड़े, वे स्वतः श्रीजी के निकट आ गये। ब्रह्मवैवर्तानुसार – हेमन्त के प्रथम मास मार्गशीर्ष में गोप कुमारिकाएँ गौरी व्रत किया करती थीं, अरुण बेला (सूर्योदय से पूर्व) कलिंदजा के कूल पर जाकर, वस्त्र उतार कर जल में स्नान करतीं। स्नानोपरान्त तट के सन्निकट ही श्याम गौर सम्मिलित वर्ण की कर्पूर रेणुका से बालुकामयी देवी की प्रतिमा बनाकर चन्दन-अक्षत, धूपगंध से उनकी अर्चना एवं मनोरथ करतीं –

हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते ॥

(ब्र.वै.पु.कृ.ज.खं.२७/६)

"हे सृष्टि, पालन, संहारकारिणी जगदम्बे ! नन्द कुल चन्द्र हमें कान्त रूप में प्राप्त हों।" आदि सृष्टि में क्षीरोदशायी श्री हरि ने ब्रह्मा जी को इसी स्तोत्र का उपदेश किया। उनके नाभि कमल में आसीन ब्रह्मा जी जब मधु एवं कैटभ असुरों से पीड़ित हुए तो उन्होंने इसी स्तोत्र से मूल प्रकृति अम्बिका का स्तवन किया, तब सप्रसन्न अम्बिका ने 'सर्वरक्षण' नामक यह कृष्ण कवच ब्रह्मा जी को दिया फिर ब्रह्मा जी ने महेश्वर को यह कवच दिया। गोपिकाओं द्वारा किया गया यह सर्व मंगल स्तोत्र विघ्ननाशी एवं मनोरथ पूर्ण करने वाला है। इसी से उनकी भी मनोरथ सिद्धि हुई। मास पूर्ति के अवसर पर गोपिकाएँ एक दिन निर्वस्त्र होकर जल में स्नान कर रही थीं। उसी समय नन्द तनय सखाओं सहित आकर नग्न क्रीड़ासक्ता गोपकुमारियों के श्वेत, रक्त, पीत, हरित रंगीन वस्त्रों को लेकर कदम्ब तरु पर चढ़ गये। स्नानोपरान्त गोपिकाएँ इतस्ततः स्ववस्त्रों को ढूँढने लगीं। कदम्बासीन गोपाल बोले – "गोपियो ! जल में नग्न हो स्नान कर तुमने देवापराध किया, अतः जलदेव वरुण के अनुचर ही तुम्हारे वस्त्रों को उठाकर ले गये। देखो तुम्हारे द्वारा पूजित देवी ने भी वस्त्रों की रक्षा नहीं की। अवश्य ही वे तुमसे प्रसन्न नहीं हैं।" सुनकर गोपिकाओं को अत्यन्त विषाद हुआ। कर जोड़ कर बोलीं – "श्यामसुन्दर ! अब अधिक पीड़ित न करो, शीत हमारे शरीर को कम्पित कर रहा है, हमारे वस्त्र तुम्हारे ही पास हैं, उन्हें दे दो, जिससे हम जल के बाहर आ सकें।"

लज्जा, संकोच आदि भक्ति के परिपन्थी तत्वों को तिलाञ्जलि दिलाते हुए श्रीकृष्ण ने कहा – "तुम स्वयं जल से बाहर आकर स्ववस्त्रों को ले लो" किन्तु नव भामिनी श्रीराधा जल के बाहर वस्त्र लेने नहीं गईं। जल में ही प्राणेश्वर की स्तुति करने लगीं। तन-मन-प्राण को श्रीकृष्ण में अविचल भाव से स्थित कर दिया। श्रीजी द्वारा यहाँ कृष्णाराधना प्रकट हुई, उस श्रीजी कृत आराधना शक्ति से सभी वस्त्र स्वयं वहाँ चले आये। इससे श्रीजी की आराधना शक्ति प्रकट हुई है। राधा शब्द की निष्पत्ति दस धातुओं से है – १. संसिद्धौ, २. वाराधने, ३. हिंसायां, ४. वृद्धौ, ५. दाने धारणे, ६. द्रोहे, ७. पर्यालोचने, ८. पाके, ९. नक्षत्रे एवं १०. धा धावने।

यहाँ राध् धातु आराधना अर्थ में प्रयुक्त है –

आराधनात्तु कृष्णस्य कृष्णेन आराधनादपि ।
आराधनार्थकाद्धातोः राधो राधेति सिद्ध्यति ॥

अथवा –

या वा राधयति प्रियं व्रजमणिं प्रौढानुरागोत्सवैः
संसिद्ध्यन्ति यदाश्रयेण हि परं गोविन्दसख्योत्सुकाः ।
यत्सिद्धिःपरमा पदैकरसवत्याराधनान्ते नु सा
श्रीराधा श्रुतिमौलिशेखरलतानाम्नी मम प्रीयताम् ॥

(रा.सु.नि.९७)

कभी श्याम सुन्दर श्रीजी से आराधित होते हैं तो कभी श्रीजी श्यामसुन्दर से आराधित होती हैं। यहाँ राध् धातु आराध्य अर्थ में प्रयुक्त है। आराधना की शक्ति से लोचन मोचन होने पर श्रीजी ने देखा निकट तट पर वस्त्र स्वमेव आ गए हैं।

सर्व मनोरथ सिद्धि हेतुभूत इस गौरी व्रत के विषय में देवर्षि नारद जी के पूछने पर स्वयं भगवान नारायण ने कहा – "कुशध्वज कन्या वेदवती ने भी पुष्कर तीर्थ में यह व्रत किया और अम्बिका देवी से श्रीकृष्ण को वर रूप में माँगा।" अम्बिका ने कहा – "जगदम्बे ! तुम तो साक्षात् सती लक्ष्मी नारायण वल्लभा हो। त्रेता में सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम रूप से अवतरित होंगे, तुम मिथिला जाकर शिशु रूप में राजा जनक की अयोनिजा कन्या बन जाओ। वहाँ तुम सीता नाम से विख्यात होगी। प्रत्येक कल्प में तुम उनकी अर्धाङ्गिनी बनोगी," तब वेदवती ही सीता बनी। तरुणी होने पर जनक नन्दिनी ने यही व्रत किया और श्रीराम जी को पति रूप में प्राप्त किया।

राधा रानी ने भी इसी व्रत से समाराधन कर कृष्ण को कान्त रूप में प्राप्त कर लिया। गोपियों ने भी इस व्रत से श्रीकृष्ण को प्राण पति के रूप में पा लिया। व्रत के उद्यापन अवसर पर दुर्गतिनाशिनी दुर्गा प्रकट हो गयीं एवं उन्होंने श्रीजी को अपने हृदय से

लगा लिया। तत्पश्चात् गोपिकाओं के प्रणाम करने पर उन्हें आशीष दिया कि तुम सबका मनोरथ सिद्ध होगा।

अनन्तर स्वयं पार्वती जी ने सर्वलोकाराध्या श्रीराधा रानी की स्तुति करते हुए कहा – "हे राधे ! आप तो श्री हरि को प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। आपने यह गौरी व्रत केवल लोक शिक्षा के लिए ही किया है। आप अमानवी देवी हो, माया से ही मानव रूप में प्रकट हो। श्रीकृष्ण के अर्द्धांग से प्रकट उनके सदृश ही तेजस्विनी हो। समस्त देवाङ्गनाएँ तुम्हारे अंश, कला से समुद्भूत हैं, फिर आप मानवी कैसे हो? अविद्या लिप्त मति ही तुम्हें मानुषी मानेगी। ऐसे मोहान्ध प्राणियों के लिए आपका स्वरूप सर्वथा अगम्य है। तुम श्रीहरि के लिये प्राणस्वरूपा हो और श्रीहरि तुम्हारे लिए। पूर्व काल में साठ हजार वर्षों तक तप करके भी ब्रह्मा जी तुम्हारे पादाम्बुजों का दर्शन न पा सके। वरानने ! तुम साक्षात् महाशक्ति हो, कृष्णाज्ञा से ही गोपी रूप में भूमि पर अवतरित हो। मनुवंशोत्पन्न महाराज सुयज्ञ ने आपकी ही कृपा दृष्टि से गोलोक में प्रवेश प्राप्त किया था। भृगुकुलोत्पन्न परशुरामजी ने भी इक्कीस बार भूमि को क्षत्रिय रहित किया था एवं महेश्वर से आपका मन्त्र प्राप्त करके पुष्कर पुण्य तीर्थ में उसे सिद्ध किया, जिसकी सिद्धि से कार्तवीर्यार्जुन का संहार किया था एवं गणेश का एक दाँत तोड़ने पर जब मैं उन्हें भस्मसात् करने को उद्यत हुई तो उस समय हे ईश्वरी आपने ही उनकी रक्षा की थी। हे जगन्माता ! आपका यह व्रत लोकहितार्थ है।" यहाँ यह विचारणीय बात है कि स्वयं भगवती दुर्गा श्रीजी का स्तवन करते हुए कहीं उन्हें जगन्माता कह रही हैं, कहीं ईश्वरी। फल श्रुति यह है कि श्रीराधा रानी शाक्providerाराध्यराध्या हैं। "दुग्ध में धवलता, अग्नि में दाहकता, भूमि में गन्ध व जल में शीतलता जिस प्रकार अभिन्न हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण में तुम्हारी नित्य स्थिति है। देवाङ्गना, मानव कन्या, गन्धर्व कन्या आदि-आदि इनमें कोई भी तुम्हारे सौभाग्य की समता न कर सकी है न कर पाएगी।

राधिका सम नागरी नवीन को प्रवीन सखी ।
रूप गुन सुहाग भाग आगरी न नारि ॥
वरुन नाग लोक भूमि देवलोक की कुमारि ।
प्यारी जू के रोम ऊपर डारौं सब वारि ॥
आनन्दकंद नन्दनन्दन जाके रसरंग रच्यौ ।
अंग वर सुधंग नाँचती मानतु है अति हारी ॥
ताके बल गर्व भरे रसिक 'व्यास' से न डरे ।
लोक वेद कर्म धर्म छाँड़ि मुकुति चारि ॥

मेरे वर से विधि-शिव के वन्द्य जगदीश्वर श्रीकृष्ण भी तुम्हारे आधीन रहेंगे।"

ऐसा कहकर भगवती दुर्गा तो अन्तर्हित हो गईं एवं नव जलधर वर्ण वाले श्याम सुन्दर के दर्शन हुए। उन्होंने श्रीजी से वर माँगने के लिए कहा। श्रीजी ने कहा – "नाथ ! सदा

सर्वदा मेरा चित्त चञ्चरीक आपके चरणाम्बुजों में लगा रहे एवं परम दुर्लभ भक्ति मुझे प्राप्त हो।"

गोपिकाओं ने भी श्रीहरि से इसी वर की याचना की।

श्रीकृष्ण बोले – "तुम सब मेरी नित्य सिद्धा प्रेयसी हो, राधा मेरी नित्य संगिनी हैं। गोलोक से लीला सिद्धि के लिए ही मेरे साथ तुम सबका यहाँ आगमन हुआ है।"

यह लीला कथानक इस बात की पुष्टि करता है कि समस्त महाशक्तियों की भी आदि शक्ति हैं श्रीराधा रानी जो महाशक्तियों से वन्दित, सेवित एवं पूजित हैं अतः ये ही परमाराध्या हैं।

तपोवन

लक्ष्मी, जिनका ऐश्वर्य रूपी यौवन दुर्वासा जी के शाप से नष्ट हो गया था, वो यहाँ तप करने से पुनः प्राप्त हुआ –

नष्टसंवत्सरोद्भूत लक्ष्मीगुप्तप्रकाशिने ।
नमस्ते यौवनायैव सर्वारिष्टविनाशिने ॥

(ब्र.भ.वि.)

नष्ट संवत्सर में उत्पन्न, लक्ष्मी के द्वारा गुप्त प्रकाश वाले तपोवन, सभी अरिष्ट को नष्ट करने वाले ! आपको नमस्कार है –

विष्ण्वरिष्टकृतस्नान सर्वपापौघनाशिने ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं विष्णुकुंड वरप्रद ! ॥

(ब्र.भ.वि)

हे विष्णु, अरिष्ट से किये हुए स्नान कुण्ड, आप पाप नाशक हैं, ऐसे तीर्थराज विष्णु कुण्ड आपको नमस्कार है।
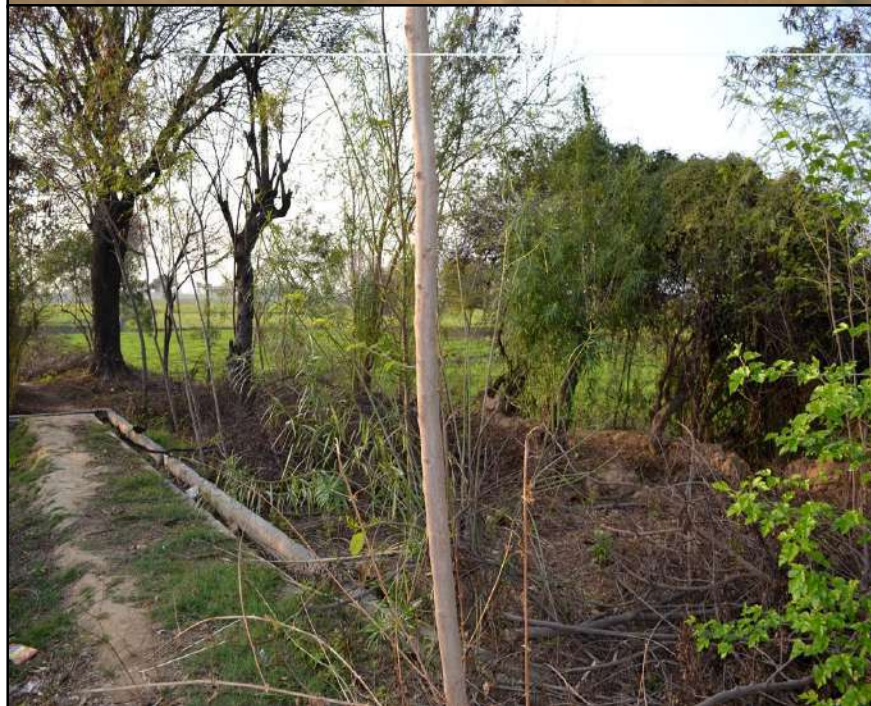
चीर घाट एवं तपोवन (लक्ष्मी जी ने यहाँ तप किया था)

अध्याय – ३२

नन्दघाट

एकबार नन्द बाबा एकादशी व्रत कर द्वादशी को मध्य रात्रि में यमुना स्नान करने चले गए। वहाँ वरुण का सेवक उनको पकड़ कर वरुण लोक ले गया। ब्रजवासियों में हल्ला मच गया नन्द बाबा डूब गए। यशोदा जी रोने लग गईं। श्रीकृष्ण ने कहा, "मैया तू रोती क्यों है?" यशोदा जी बोलीं, "अरे कन्हैया नन्द बाबा डूब गए और मैं रोऊँ नहीं।" कृष्ण बोले, "मैया मैं अभी जाकर नन्द बाबा को लाता हूँ, बाबा डूब नहीं सकते हैं।" श्रीकृष्ण जानते थे कि ये वरुण के दूतों की लीला है, सबको आश्वासन दे श्रीकृष्ण वरुण लोक गए। विशाल पुरी में विशाल दुर्ग को श्रीकृष्ण ने जाते ही भस्म कर दिया। "भय बिनु होइ न प्रीति" वरुण हाथ जोड़ कर आये और बोले, "श्रीकृष्ण को नमस्कार है, असंख्य ब्रह्माण्डों का पालन पोषण करने वाले गोलोकपति को नमस्कार है। चतुर्व्यूह के रूप में प्रकट कृष्ण को नमस्कार है। मेरे किसी मूर्ख सेवक ने यह अवहेलना की है, आप मुझे क्षमा करें। हे भूमन् ! मैं आपकी शरण में आया हूँ।" शरणागत वरुण को देखकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए और नन्द बाबा को जीवित लेकर ब्रज मण्डल में लौट आये। लेकिन नन्द बाबा ने वहाँ वरुण लोक का महान ऐश्वर्य देखा था और यह भी देखा था कि वरुण श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहा है। जब नन्द बाबा आये तो सब ग्वाल बाल इकट्ठे हो गए और कहने लगे –

"अरे ! नन्द बाबा आगयो, मर्‍यो नहीं है, कन्हैया लायो है।"

ग्वाल बाल नन्द बाबा से पूछ रहे हैं – "तू कहाँ गयो।"

नन्द बाबा बोले – "भैयाओ, मैं तो वरुण लोक गयो और वहाँ वरुण ने क्षमा माँगी और कृष्ण की शरण में आयो। जब वरुण ने स्तुति करी और या कृष्ण को भगवान् बतायो, यह हमारो लाला तो नहीं है ! यों कहें भगवान् हैं।"

ग्वाल-बालों ने जब ऐसा सुना तो सब कृष्ण के पीछे पड़ गए और बोले –

"कन्हैया ! तुझे तो भगवान् कहें तो तू हमको अपना वैकुण्ठ दिखा"। यह वैकुण्ठ दर्शन की कथा भागवत में भी आती है, 'गर्ग संहिता' में विस्तार से लिखी है।

श्रीकृष्ण बोले – "अच्छा ग्वाल-बालों, तुमको हम वैकुण्ठ दिखाएँगे, आँख बंद करो।" एक क्षण में उनको वैकुण्ठ ले गए। उन्होंने आँख खोला तो सामने देखा विशाल वैकुण्ठ। हाथ में शंख, चक्र, गदा, पद्म लिए शेषनाग पर श्रीकृष्ण नारायण रूप से लेटे हुए थे।

भागवत में आता है कि अन्धकार से आगे, माया से भी आगे भगवान् का धाम है वैकुण्ठ, वहाँ श्रीकृष्ण उन्हें ले गए। ब्रह्महृद में प्रवेश कराया ग्वाल बालों को, जो अक्रूर को दिखाया था भगवान् ने वह वैकुण्ठ धाम उन्हें दिखाया। भागवत में तो इतना ही लिखा है। इसके आगे 'गर्गसंहिता' में लिखा है, भागवत का भाष्य गर्गसंहिता है। ग्वाल-बाल वहाँ खड़े थे लेकिन वे तो गँवार हैं, उनकी ग्रामीण सभ्यता है। वे आपस में कानाफूसी करने लगे बोले –

"अरे लगै तो है ये हमारे कान्हा का मुख लेकिन याके चार भुजा हैं। कन्हैया के पास तो शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं नहीं"। वे आपस में बात करने लगे। वैकुण्ठ में बड़ी मर्यादा है, वहाँ के पार्षद ग्वाल-बालों को डाँटने लगे, बोले – "ए ! तुम लोग यहाँ कैसे आ गए? तुम्हें पता नहीं है ये हमारा वैकुण्ठ है। तुम क्या बात करते हो, यहाँ भाषण नहीं करो। यहाँ तो साक्षात् वैकुण्ठ नाथ हैं। हाथ जोड़कर खड़े रहो।" ब्रजवासी तो गंवार ही ठहरे। आपस में बोले, "भई चुप रहो बोलो मत, यहाँ तो बड़ी किल्ल पड़ रही है बोलने पर, यहाँ हम तो नीचे हैं और कन्हैया ऊपर बैठ्यो है। याके पास कैसे चलें जब बात ही ना कर सकै तो याके पास कैसे चलेंगे? ये पार्षद नहीं जाने देंगे। ग्वाल-बाल बोले, अरे भैया ! हम तो वैकुण्ठ में आकर पछताये। यहाँ तो बहुत दूर है कन्हैया, चार भुजा वारो, याते बोल नहिं सकै, खड़े नहीं हो सकै, याते हमारो ब्रज बढ़िया हो। कन्हैया के साथ खेलते, घोड़ा बनाते, कुश्ती लड़ते, गेंद खेलते। ये वैकुण्ठ नाथ है कि आफत है"।

कहा करों वैकुण्ठहि जाय।
जहाँ नहीं वंशीवट यमुना गिरिगोवर्धन नन्द की गाय॥
जहाँ नहीं यह कुंज लता द्रुम मंद सुगन्ध बहत नहिं वाय।
कोकिल हंस मोर नहीं कूजत ताको बसिबो काहि सुहाय॥
जहाँ नहीं धुन वंशी की बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाय।
प्रेम पुलक रोमांच न उपजत मन वच क्रम आवत नहीं धाय॥
जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन बाबा नन्द यशोमति माय।
'गोविन्द' प्रभु तजि नन्द सुवन को ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय॥

इस प्रकार से सभी ग्वाल-बाल बड़े दुखी हुए, आपस में कहने लगे –

"तैने तो कही सुसर वैकुण्ठ दिखाओ, आफत आ गई वैकुण्ठ में, यहाँ ठाड़ो रहनो मुश्किल, ऐसे खड़े रहो, सीधे रहो, बोलो नहीं"।

जब श्रीकृष्ण ने चतुर्भुज रूप से देखा कि ग्वाल-बाल दुखी हो रहे हैं तो तुरन्त वैकुण्ठ से ब्रज में ले आये। ब्रज में आकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

ग्वाल-बाल बोले – "वाह भई वाह ! वैकुण्ठ जा कर तो हम पछताये।"

भय गाँव (नन्दघाट) में एक और लीला हुई – भक्तमाल के अनुसार जीव गोस्वामी को उनके गुरु स्वरूप रूप गोस्वामी जी ने निकाल दिया था। कोई दिग्विजयी पंडित एक बार

वृन्दावन में आये और बोले कि कोई हमसे शास्त्रार्थ करो। लोगों ने बताया कि यहाँ सबसे बड़े पंडित रूप गोस्वामी हैं। उनको जीत लोगे तो वृन्दावन जीत लोगे। वो रूप गोस्वामी जी के पास आये। रूप गोस्वामी जी ने कहा कि जीत-हार हम लोग नहीं करते, हम वैष्णव हैं। दिग्विजयी ने कहा तो लिख दो कि हम हार गए। रूप गोस्वामी जी ने लिख दिया "हम हारे" क्योंकि चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है **'तृणादपि सुनीचेन'** ।

आज इस उपदेश का पालन किया जाय तो सारा हिन्दू समाज जो बिखर गया है वो एक हो जाय।

रूप गोस्वामी के द्वारा अपनी पराजय स्वीकार कर लेने पर दिग्विजयी सारे वृन्दावन में दिखाने लगे कि हमने रूप गोस्वामी को हरा दिया। जीव गोस्वामी जी को यह बात बुरी लगी कि यह हमारे गुरुदेव की सरलता का दुरूपयोग कर रहा है। उन्होंने दैन्य में अपनी पराजय लिखा है। जीव गोस्वामी ने दिग्विजयी से कहा तुम हमारे साथ शास्त्रार्थ करो। शास्त्रार्थ में दिग्विजयी को जीव गोस्वामी जी ने पराजित कर दिया लेकिन जब रूप गोस्वामी जी को पता चला तो उन्होंने जीव गोस्वामी से कहा कि तुमने शास्त्रार्थ में उसे पराजित क्यों किया? जीव गोस्वामी कुछ नहीं बोले क्योंकि उन्होंने सोचा कि हम कहें कि आपके सम्मान के लिए हमने ऐसा किया तो इन्हें ये बात अच्छी नहीं लगेगी। रूप गोस्वामी बोले – "जीव ! जाओ मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगा।" तुममे दैन्य नहीं है, महाप्रभु जी ने **'तृणादपि सुनीचेन'** कहा है। तब से जीव गोस्वामी जी परम विरक्त रूप में वृन्दावन छोड़कर नन्दघाट (भय गाँव) में आकर रहने लगे। मधुकरी भी नहीं माँगते थे, आत्मरक्षा के लिए, आत्महत्या नहीं करना चाहिए इसलिए सूखे आटे को पानी में घोलकर कभी कभी खा लेते थे कि जब गुरु ने परित्याग कर दिया तो जीना भी बेकार है और आत्महत्या भी नहीं करनी चाहिए। इसलिए कभी-कभी खा लेते थे।

सनातन गोस्वामी जी ब्रज में घूमा करते थे। वे मधुकरी वृत्ति से ही ब्रज में शरीर निर्वाह करते थे। वे एक दिन घूमते घूमते नन्दघाट पर आये और एक घर में भिक्षा माँगने गए। एक गोपी ने कहा – "बाबा ! ठाढो रह, अभी रोटी लाती हूँ।" सनातन जी खड़े हो गए लेकिन थोड़ी देर बाद वे चलने को हुए, मान-सम्मान की दृष्टि से नहीं बल्कि उन्होंने सोचा ये बेचारी काम कर रही है इसको समय नहीं है। तब तक वह गोपी बोली, "ओ बाबाजी तेरे से तो हमारो घाट वारो बाबा जी अच्छो है"। सनातन जी ने पूछा कि घाट वाला बाबा कौन है? गोपी बोली, "अरे वो तो सूखे आटे को घोल कर कभी-कभी खा ले, तू तो चल पड़ो जबकि मैंने कहा रुक जा।" सनातन जी सोचने लगे घाट वाला बाबा कौन है? वे उनको देखने गए, उस गोपी को भी साथ ले गए। गोपी ने कहा, "देख भीतर है वो गुफा में", सनातन जी ने गुफा के भीतर झाँका तो देखा भीतर जीव गोस्वामी बैठे थे। उन्होंने देखा सनातन जी आये हैं, वे उनके चरणों में लिपट गए और रोने लग गए। वे दोनों आपस में मिलकर रोने लगे। सनातन जी बोले – "जीव ! तुम यहाँ कैसे आये? " जीव बोले – "गुरुदेव ने हमारा परित्याग

कर दिया है और कहा कि हम तुम्हारा मुँह नहीं देखेंगे।" सारी बात बताई कि दिग्विजयी पण्डित को हमने शास्त्रार्थ में हराया था। सनातन जी बोले – "ठीक है चलो हमारे साथ।" सनातन जी जीव गोस्वामी को वृन्दावन लाये, सनातन जी बड़े थे और रूप जी छोटे थे। उन्होंने रूप गोस्वामी से कहा – "रूप ! सब प्राणियों में कृष्ण ही तो हैं।" रूप जी बोले "हाँ भैया।" सनातन जी बोले, "क्या जीव गोस्वामी में कृष्ण नहीं है? " रूप जी चुप हो गये, सनातन जी बोले – "तुमने ऐसा क्यों किया? " फिर उन्होंने जीव गोस्वामी से कहा कि इनके चरण पकड़ो। रूप जी ने जीव जी को छाती से लगा लिया।

जीव गोस्वामी जी की भजन गुफा सन् २०११ तक तो सबके लिए दर्शनीय थी परन्तु बड़े दुःख की बात है कि अब उस स्थान पर नया मन्दिर तो है पर उसका प्राचीन चिन्ह भी नहीं है।

नन्द घाट – नन्द यशोदा एवं श्री जीव गोस्वामी जी की प्राचीन भजन कुटी

अध्याय – ३३

उमरारो

उमराव अर्थात् महाराज। यहाँ राधा रानी की राज गद्दी हुई, श्री राधिका को सिंहासनासीन कर समस्त सहचरियाँ उन्हें सभी का महाराज सम्बोधित कर कहती हैं "श्रीराधा जू इस राज्य की अधिपति हैं।" ललिता सखी उनके मंत्रित्व का कार्य सम्भालती हैं। श्रीराधा रानी अपनी सखियों को आदेश देती हैं कि कौन है जो हमारे राज्य पर अधिकार करना चाहता है जाओ उन्हें पकड़कर लाओ, इस पर सखियाँ हाथ में पुष्प लताएँ लेकर चलीं और सुबल, मधुमंगलादि कृष्ण सखाओं को पकड़कर उमराव अर्थात् महाराज श्री राधा जी के चरणों में उपस्थित कर दिया। उनके दण्ड विधान पर मधुमंगल ने कहा कि ऐसा दण्ड दो कि हमारा पेट भर जाए। इस पर श्रीराधा ने कहा कि ये तो कोई पेटू ब्राह्मण है, इसे लड्डू खिलाओ और छोड़ दो। लोकनाथ गोस्वामी जी ने यहीं पर भजन किया था। यहीं किशोरी कुण्ड से "श्री राधा विनोद" विग्रह भी प्रकट हुए थे।

बसई

गोचारण करते समय नन्द बाबा यमुना किनारे आकर यहीं बसई ग्राम में रुकते थे।

छाता

ततो छत्र वन प्रदक्षिणा प्रार्थना मन्त्र (कूर्म पुराण) :-

गोपिकान्वितकृष्णाय नमस्ते छत्रधारिणे।
इन्द्रादिदेवताभ्यस्तु वरदाय नमो नमः॥

गोपियों से युक्त छत्र धारी कृष्ण को नमस्कार है। इन्द्रादि देवताओं को भी आप वरदान देने वाले हैं, आपको नमस्कार है।

ततो सूर्य्यकुण्डस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

भास्कराय नमस्तुभ्यं प्रतिबिम्बस्वरुपिणे ।
रविपतनसंभूत तीर्थराज वरप्रद ! ॥

हे सूर्य ! आपको नमस्कार है, आप प्रतिबिम्ब रूप हैं। सूर्य के पतन से उत्पन्न हुए हैं, आप तीर्थराज हैं, वर देने वाले है।

रनवारी

छाता से दक्षिण पश्चिम में तीन मील की दूरी पर गाँव रनवारी है, जो सुरत युद्ध का प्रतीक है, यहाँ सुरत युद्ध में राधा रानी की विजय हुई।

अध्याय – ३४

नरी सेमरी

नरी नारायण का प्रतीक है, यहाँ नारायण वन तथा गोपकुण्ड है। सखी वेषधारी श्याम सुन्दर ने हाथ में वीणा लेकर मधुर संगीत से प्रिया जी को चौंका दिया था, इस पर श्रीजी ने उनसे पूछा कि सखी तुमने ये मधुर संगीत कहाँ सीखा? श्याम सुन्दर ने कहा – "मैं स्वर्ग की किन्नरी हूँ।" रीझकर प्रिया जी ने अपनी रत्न माला श्यामल सखी को देनी चाही। इस पर श्यामल सखी की भाव-भंगिमा पहचान ली गई और मानवती श्री श्यामा का मान टूटा और परस्पर मिलन हुआ। सांवरी सखी के कारण गाँव का नाम सेमरी हुआ। पास में ही है नरी गाँव जो हरि (नारायण) शब्द का अपभ्रंश है। यहाँ प्राचीन देवी विग्रह भी है जहाँ नवरात्रों में मेला लगता है जिसमें हजारों की संख्या में दूर-दूर से ब्रजवासी आकर देवी की आराधना करते हैं।

ततो नारायण वन प्रार्थना मन्त्र :-

नारायणसुखावास परमात्मस्वरुपिणे ।
नमो नारायणाख्याय वनाय सुखदायिने ॥

नारायण के सुखवास पूर्ण, परमात्मा स्वरूप सुख देने वाले नारायण नाम के वन को नमस्कार है।

ततो गोप कुण्ड प्रार्थना मन्त्र :-

नन्दादिस्नपनोद्भुततीर्थ निर्मलवारिणे ।
गोपकुण्डसमाख्याय नमस्ते मुक्तिदायिने ॥

नंदादि के स्नान से उत्पन्न निर्मल जल रूप मुक्ति देने वाले गोप कुण्ड नामक तीर्थ ! आपको नमस्कार है।

तारा वन

ततो तारा वन प्रार्थना मन्त्र :-

तारावन नमस्तुभ्यं तपः सिद्धिस्वरुपिणे ।
देवयोनिसमुद्भूत कन्यायै वरदे नमः ॥

(शेषरामायणे)

सिद्धि स्वरूपी तारा वन (तरोली), देवयोनि से उत्पन्न कन्याओं को वर देने वाले, आपको नमस्कार है।

ततो तारा कुण्ड स्नानाचमन मन्त्र :-

तारानिर्मिततीर्थाय ताराकुण्डाभिधायिने ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं सर्वपापप्रणाशन ! ॥

तारा सखी से निर्मित तीर्थ रूप, तारा कुण्ड नाम वाले, सभी पापों को नाश करने वाले तीर्थराज ! आपको नमस्कार है।

चौमुंहा

गो वत्स व ग्वाल-बालों का हरण करके जब ब्रह्मा जी ने देखा कि जिनका मैंने हरण किया है वे तो ब्रज में वैसे ही निर्भय आनन्द कर रहे हैं तो उन्हें अपने किये पर पश्चाताप हुआ और चतुर्मुख ब्रह्मा भयभीत होकर अपने चारों मुखों से स्तुति करते हुए क्षमा याचना करते हैं।

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥

(भा.१०/१४/१२)

"गर्भस्थ शिशुवत् मैं क्षम्य हूँ ।

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥

(भा.१०/१४/१४)

आप ही नारायण हैं, जिनसे मेरा प्राकट्य हुआ है" यही स्थल चौमुंहा कहलाता है।

अध्याय – ३५

पसोली

इसे सर्पस्थली, सपोली अथवा पसोली आदि नामों से जाना जाता है। इसका सम्बन्ध अघासुर लीला से है। जब ग्वालबालों ने विशाल गुफा जैसे मुख को देखा तो रमणीक मार्ग की भाँति उसमें प्रवेश कर गए जबकि श्रीकृष्ण उन्हें रोक रहे थे परन्तु सखाओं को तो श्रीकृष्ण के बल पर सर्वत्र निर्भयता ही रहती थी। अतः उन्होंने अनदेखा करते हुए अघासुर सर्प के मुख में प्रवेश कर लिया परन्तु सभी के प्राणान्त करने की इच्छा वाले उस अघासुर ने अपना मुख श्रीकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में बन्द नहीं किया। ग्वालबालों की स्थिति देख श्रीकृष्ण को उसमें प्रवेश करना पड़ा, तभी जैसे ही उसने अपना मुख बन्द करना चाहा तो कन्हैया ने अपना विशाल आकार प्रकट करके उसका प्राणान्त कर दिया और अपनी अमृतमयी दृष्टि से ग्वाल-बालों को जीवन प्रदान किया। इस सर्प लीला से ही यह स्थल सपोली या पसोली कहलाता है।

दूसरी लीला – महाभारत के अनुसार सत्यवती के पुत्र चित्रांगद ने गंगा पुत्र भीष्म के चरित्र पर शंका की थी, इसके प्रायश्चित स्वरूप उन्होंने पसोली में आत्मदाह किया था।

भीष्म ने शान्तनु की मृत्यु के बाद सत्यवती का मन स्थिर रहे, इस दृष्टि से माता सत्यवती को सत्संग व उपदेश दिया करते थे। इस पर ऐसी जन श्रुति है कि चित्रांगद को शंका हुई | वे एक दिन रात्रि को छिप कर उनकी चर्या देखने के लिए बैठ गए | भीष्म माता सत्यवती को कथा सुना रहे थे। वे सो गईं, उनका एक चरण खाट के नीचे लटक रहा था, भीष्म ने देखा, गिरने की आशंका से चरण को ऊपर रखना चाहा किन्तु वो मर्यादा रक्षणार्थ खड़े विचार करने लग गए –

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

(भा.९/१९/१७)

अंत में वे पलंग के नीचे बैठ गए और सिर से चरणों को घुमा दिया | इस तरह से मर्यादा पालन भी हो गई और मातृ सेवा भी हो गई। यह सब देखकर चित्रांगद को अपने ऊपर ग्लानि हुई और दूसरे दिन उन्होंने भीष्म से ही पूछा, यदि श्रेष्ठ महापुरुष के प्रति शंका रूपी अपराध हो जाए तो प्रायश्चित क्या करना चाहिए क्योंकि चित्रांगद ने भी स्थिति स्पष्ट नहीं किया इस लिए भीष्म ने घटना को ठीक से समझे बिना निर्णय दे दिया कि तुषाग्नि या

तुलाग्नि में शरीर को भस्म कर देना चाहिए। यह सुनकर वे ब्रज भूमि में आ गए क्योंकि उनको ज्ञात था कि महाराज शान्तनु ने ब्रज में शान्तनु कुण्ड (सतोहा) पर ही तपस्या करके भीष्म जैसा पुत्र प्राप्त किया था इस लिए सतोहा से ३ कि.मी. ही पसोली है। जहाँ यह कुण्ड है, यहाँ आकर उन्होंने शरीर का दाह किया था।

चौमुंहा – श्री ब्रह्माजी मंदिर एवं चन्द्र सरोवर, पसोली – मनसा कुण्ड

अध्याय – ३६

आझई

ह्मा जी द्वारा बाल हरण के पश्चात् जब उनका मोह भंग हुआ तो एक वर्ष पश्चात् बालक ब्रज में आये और कहने लगे कि आज ही हमारे सखा कृष्ण ने अघासुर का वध किया है। आज ही से इस गाँव का नाम आझई पड़ा।

जैंत

छटीकरा से ३ मील की दूरी पर जैंत ग्राम स्थित है। यह अघासुर पर श्रीकृष्ण की विजय का प्रतीक है। जब अघासुर का वध श्रीकृष्ण ने कर दिया तो आकाश में समस्त देव पुष्प वर्षा करते हुए जयघोष करने लगे। उसी जयघोष की स्मृति देने वाला जैंत गाँव है। जहाँ जय कुण्ड में आज भी सर्प की प्रतिमा है जो कितना भी पानी भर जाने के पश्चात् भी जल में डूबती नहीं है।

छटीकरा

श्रीकृष्ण की छटी पूजी जाने के कारण इस स्थान का नाम छटीकरा हो गया।

गरुड़ गोविन्द

यहाँ ग्वाल बालों के आग्रह पर गरुड़ को प्रकट करके श्रीकृष्ण गरुड़वाही बने।

वृन्दावन से ६ कि.मी. पश्चिम में जिस स्थान पर श्रीकृष्ण की छटी पूजी गई, वहीं भगवान् का बारह भुजा वाला दिव्य विग्रह है। जो गरुड़ गोविन्द के नाम से विख्यात है।

'गरुडगोविन्द' एइ देखो श्रीनिवास ।
एथा करीलेन कृष्ण अद्भूत विलास ॥
श्रीदाम गरुड हैया खेलये आनन्दे ।
चतुर्भुज गोविन्द चढय तार स्कन्धे ॥
गरुड गोविन्द दूह्न शोभा अतिशय ।
एइ हेतु 'गरुडगोविन्द' नाम कय ॥

(भ.र)

सुनरख

इस स्थान को पावन किया महर्षि सौभरि के सानिध्य ने। एक समय यमुना जल में मुनि तपरत थे, तभी एक मत्स्य को अनेकानेक मादा मत्स्यों से रमण करते देखा। मत्स्य को इस संस्पर्शज भोग से सुखी देख महर्षि के मन में विवाहेच्छा जाग गई। राजा मान्धाता के पास गए।

सौभरि – "हमें आपकी एक कन्या चाहिए।"

"राजन ! महर्षि का वृद्ध शरीर, लटकती त्वचा, श्वेत केश, चलने में पद कम्पन मैं अपनी किस कन्या से अन्याय करूँ, मेरा सभी में समान प्रेम है। कौन चाहेगी वृद्ध वर? यदि मना करता हूँ तो महर्षि का कोप कौन सहेगा !"

(राजा ने बड़ी चतुराई से कहा)

मान्धाता – "महर्षे ! जो कन्या वर ले, वही आपकी अर्धाङ्गिनि।"

महर्षि – "सम्भवतः राजा ने मेरे दुर्बल, रुपविहीन वृद्ध देह को देखकर ही ऐसा कहा है भला कौन राजकुमारी मुझ वृद्ध ऋषि से विवाह चाहेगी, सौभरि जी ने सोचा। अगले ही क्षण ऐसा सुन्दर सुपुष्ट शरीर बना लिया कि देखकर राजकुमारी तो क्या देवकन्याएँ भी तरसें।

पचासों के पास पहुँचे। पचासों में कलह हो गया कि यह पुरुष तो मेरे ही योग्य है, नहीं पहले मैंने कर पकड़ा है अतः मेरा अधिकार है ये पुरुष मुझे चाहता है, अतः मैं इसकी चिरसंगिनि बनूँगी।

महर्षि ने पचासों का वरण किया। महर्षि के साथ पचासों जब अन्तःपुर से बाहर आईं तो राजर्षि बड़े चकित।

समर्थ ऋषि ने पचासों के लिए जंगल में महल खड़े कर दिए। उस वैभव को देखकर सप्तदीपवती अवनि के स्थायी राजा मान्धाता भी विस्मित-थकित थे। मान गए कि सौभरिजी तो सार्वभौम सम्पत्ति के शासक हैं। सौभरिजी भी भोगों में भूल गये भगवान् को किन्तु घृत की बूँदों से अनल बुझती नहीं बढ़ती है। भोगों से संतोष तो नहीं हुआ किन्तु

पूर्वकृत भक्ति के कारण एक दिन शोक किया इस दुष्वार मन पर। ग्लानि की अग्नि से जलने लगे।

अरे ! मेरा सम्पूर्ण ब्रह्मतेज भोगों से स्रवित हो गया। मेरा तपोबल नष्ट हो गया !!!

इन्द्रियों का मौन तोड़ दिया इस चंचल मन ने –

संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे युंजीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसंगः ॥

(भा.९/६/५१)

मुमुक्षुओ ! क्षण भर संग पर्याप्त है जीवन के विनाशार्थ। मन में मोहन को बैठाकर एकाकी रहें। भोगी का भूल में भी संग न करें, संग करना ही हो तो भगवद् चरणानुरागी महापुरुषों का ही करें।

“यह सावधानी हटी तो दुर्घटना घटी”।

कहाँ तो मैं एकाकी था फिर ५० हुआ और अब ५० से सन्तान रूप से ५००० हो गया। कुछ समय बाद गृहत्याग कर संन्यास स्वीकार किया।

पति के संन्यास लेते देख पत्नियों ने भी गृह त्याग कर दिया अरण्य में जाकर महर्षि ने घोर तप करते शरीरांत किया। वे पतिव्रतायें भी पति के साथ सती हो गयीं।

संसार को संयम सिखाने व सावधान करने हेतु ही महर्षि ने यह सब किया।

छटीकरा – श्री गरुड़ गोविन्द मंदिर एवं गरुड़ गोविन्द कुण्ड

सुनरख – सौभरि ऋषि आश्रम एवं सौभरि ऋषि

जैंत – नाग पोखर एवं कालिया नाग

अध्याय – ३७

सेई

एकबार श्यामसुन्दर ने अपने साथी ग्वाल-बालों के साथ वृन्दा विपिन में वन्य-भोज का आयोजन किया, सभी गोप-बालक उन्हें चारों ओर से घेर कर बैठ गये। उन सभी ने विभिन्न प्रकार के रंगीन वस्त्र धारण किये हुए थे, स्वयं वृन्दावन विहारी पीताम्बर धारण करके उनके मध्य में विराजित हुए। उस समय ग्वाल-बालों के मध्य स्थित नन्द नन्दन की शोभा, देव लोक में अनेकानेक देवों से घिरे देवेन्द्र के सदृश अथवा पंखुड़ियों से घिरी हुई सुनहरी कमल की कर्णिका के सदृश हो रही थी, चूँकि बालकों के पास वन्य भोज करने के पात्र तो थे नहीं अतः उन्होंने अरण्य के पुष्पों, अंकुरों, पल्लवों तथा पत्थरों को पात्र बनाकर भोजन करना प्रारम्भ किया। एक गोप-बालक ने अति शीघ्र ग्रास उठा कर कन्हैया के मुख में दे दिया। कान्हा ने भी उस ग्रास को प्रेम से आरोग कर सबकी ओर दृष्टिपात करते हुए कहा – "भैयाओ ! सभी बालक परस्पर में एक दूसरे को अपने सुस्वादु व्यंजनों का रसास्वादन कराओ, मैं तो स्वाद के बारे में कुछ नहीं जानता।" सभी बालक अपने नायक का प्रस्ताव सुनकर समवेत स्वर में बोल उठे – "ऐसा ही हो " और एक दूसरे को अपने भोजन का ग्रास देने लगे। अब पारस्परिक हास्य-विनोद आरम्भ हुआ। सुबल ने गोविन्द के मुख में पुनः कौर दिया किन्तु वह उसमें से थोड़ा सा ही खाकर जोर से हँस पड़े, जिस-जिस बालक ने मुख में ग्रास लिया, वे सभी अट्टहास करने लगे। बालकों ने कहा – "यशोदा नन्दन, हमारी बात सुनो, जिसके नाना मूर्ख होते हैं, उसे स्वाद का ज्ञान नहीं होता, अतएव तुम्हें स्वाद का अनुभव नहीं हुआ।"

आगे चलकर श्रीकृष्ण प्रेमी ग्वाल-बालों की जूठन अत्यन्त अनुनय विनय के साथ माँग-माँगकर और उनके मुख से निकाल कर खाने लगे –

ग्वालन कर ते कौर छुड़ावत।
जूठो लेत सबन के मुख ते अपने मुख लै नावत।
खटरस के पकवान धरे सब तामे रूचि नहिं आवत।
हा-हा करके माँग लेत है कहत मोहि अति भावत।
यह महिमा वह पुन जानत जाहे आप बतावत।
'सूरश्याम' सपनेहु नहिं दरसत मुनिजन ध्यान लगावत।

तो मोहाधिक्य के कारण ब्रह्मा जी श्रीकृष्ण की भगवत्ता के परीक्षार्थ ग्वाल-बालों और गो वत्सों को हरण करके ब्रह्म लोक में छिपा आये। अब नवीन लीला का श्री गणेश करते हुए एवं गोप बालकों तथा गो-वत्सों की जननियों को आनन्दित करने के लिए श्याम सुन्दर स्वयं उनके पुत्र बन गए, इस प्रकार ब्रज गोपिकाएँ और गउएँ गोपाल की माताएँ बन गईं। नन्दनन्दन स्वरूप अपने पतियों और पुत्रों के साथ असंख्य गोपांगनाएँ प्रेम करने लगीं। इस प्रकार वत्स पालन की लीला द्वारा गोविन्द को अपने ही आत्म स्वरूप गो-वत्सों तथा गोप बालकों की अपने ही गोपालक स्वरूप से रक्षा करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया। उस समय बालकों और बछड़ों को ब्रह्म लोक में रखने के बाद ब्रह्मा जी ब्रज में आये तो उन्होंने गो-वत्सों और गोप बालकों सहित श्रीकृष्ण बलराम को क्रीड़ा करते हुए देखा – "अरे ! जिस स्थान पर मैं ग्वाल-बालों तथा बछड़ों को छिपा आया था, श्याम सुन्दर वहाँ से उनको ले आये हैं" ऐसा कहते हुए ब्रह्मा जी अपने निवास स्थान पर गए किन्तु उन्होंने उन सब को पहले की तरह मूर्च्छित पाया, पुनः ब्रज में आये तो उन्हीं गोप-बालकों और गो-वत्सों के साथ नन्द नन्दन को क्रीड़ारत देखकर ब्रह्मा जी अत्यधिक आश्चर्य से जड़ीभूत हो सोचने लगे कि ये गो-वत्स और गोप-बालक सही (सेई) हैं या जिन्हें मैं ब्रह्म लोक में छिपा आया हूँ वे सही हैं। इसी कारण से इस स्थल का नाम सेई हुआ। ब्रह्मा जी की इस जड़ता को देखकर मायापति ने अनुग्रह वश अपनी माया को तिरोहित करके उनको अपने ऐश्वर्य स्वरूप का दर्शन कराया, अब श्रीकृष्ण की भगवत्ता का अनुभव कर भक्तिवश चतुरानन को ज्ञान चक्षु प्राप्त हुए। इस प्रकार ऐश्वर्य दर्शन करके ब्रह्मा तो जड़वत, निश्चेष्ट हो गए, उन्हें इस स्थिति में देखकर मायाधीश ने अपनी माया का आवरण हटा लिया, तब ब्रह्मा जी चेतना को प्राप्त कर, निद्रा से जाग्रत की भाँति उठकर, अत्यन्त कष्ट से नेत्र खोलकर अपने सहित वृन्दा-विपिन को देखने में समर्थ हुए।

उस समय उन्हें वसन्त कालीन सुन्दर लता, कुंजों से सुशोभित दिव्य वृन्दावन का दर्शन हुआ –

सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोऽपश्यत् पुरःस्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥

(भा.१०/१३.५९)

जहाँ हिंसक सिंह शावकों के साथ मृग शावक प्रेम से खेल रहे थे। बाज और कबूतर में, नेवला और सर्प में स्वभाविक वैर भाव नहीं था –

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥

भा.१०.१३.६०

ब्रह्मा जी गोपाल की स्तुति करने लगे – "संकल्प-विकल्प ग्रसित चित्त में ही अभिमान का उदय होता है। पंचानन शिवजी अपने पञ्च मुखों से तथा सहस्रानन शेष जी अपने

सहस्त्र मुखों से जिनकी सेवा एवं स्तुति में संलग्न रहते हैं। वैकुण्ठ वासी विष्णु, क्षीरोदशायी श्री हरि एवं धर्म सुत नारायण ऋषि, गोलोकाधीश उन आप श्रीकृष्ण की सेवा किया करते हैं। ब्रज लीला वैकुण्ठ लीला की अपेक्षा भी श्रेष्ठ है।

जो मनुष्य श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा करता है, वह जगत के सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा का फल प्राप्त करता है और अंत में आपके परमानन्दमय, चिन्मय गोलोक धाम में प्रवेश पाता है।"

श्री राधा रानी ब्रज यात्रा यमुना नदी पैदल पार करती हुई

सेई – ज्ञान कुण्ड एवं श्री ब्रह्मा कुण्ड

सेई – रास मण्डल एवं ब्रह्मा बावड़ी

अध्याय – ३८

देवी आटस

कृष्ण अनुजा देवी एकांशा जब रुदन करने लगी तो उन महामाया के रुदन को सुनकर भयातुर कंस कारागार में गया और देखा कि आठवाँ पुत्र नहीं पुत्री है परन्तु देवकी द्वारा कन्या के वध को मना करने पर भी उस आततायी ने कन्या को छीन लिया और जोर से पत्थर पर पटकने का श्रम किया किन्तु हाथ से छूटकर वह आकाश में अष्टभुजा वाली भगवती के रूप में अट्टहास करते हुए बोलीं – "मूर्ख तू मुझे क्या मारेगा, तुझे मारने वाला तो ब्रज में पैदा हो चुका है। अट्टहास से ही इस स्थल का नाम देवी आटस पड़ा।

ब्रज भक्ति विलासानुसार – इस वन को अशोक वन कहते हैं।

ततो अशोक वन प्रार्थना मन्त्र :-
क्रीडावानररम्याय वृक्षाशोकमनोरमे । सीतावास वृक्षश्रेष्ठ सौख्यरूपाय ते नमः ॥

वानरों की क्रीड़ा से मनोहर ! हे अशोक वृक्षों से आच्छादित सीता जी के आवास से श्रेष्ठ सौभाग्य स्वरूप ! आपको नमस्कार है।

ततो सीताकुण्ड प्रार्थना मन्त्र :-
जानकीस्नानसंभूत तीर्थराजाय ते नमः । नीलपीतकल्लोलांभ परमोक्षस्वरुपिणे ॥

हे जानकी जी के स्नान से समुद्भूत तीर्थराज आप नील-पीत वर्ण के जल से युक्त परम मोक्ष प्रद हैं आपको प्रणाम है।

वराहर

वाराह लीला के आवेश में एकबार श्रीकृष्ण ने यहाँ लीला की थी। इसी कारण इसका नाम वराहर या वरारा हुआ।

एई बराहर ग्रामे वराहरूपे ते।
खेलाईला कृष्ण प्रिया सखार सहिते॥

(भ.र)

आटस

वृन्दावन से ४ मील की दूरी पर आटस गाँव है, यहीं पर अष्टावक्र जी रहे थे। उन्हीं के नाम से आटस गाँव जाना जाता है। उन्होंने भगवान् की मधुर लीलाओं का आस्वादन यहाँ किया था।

मांट

कृष्ण लीला काल में यहीं से यशोदा जी के लिए मांट बनकर जाते थे। मांट शब्द ब्रज में जल भरने के पात्र या दधि मन्थन हेतु काम में लाये जाने वाले मिट्टी के बर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है, जो इस स्थल पर प्रचुर मात्रा में बनते थे।

यह ब्रज के प्रमुख वनों में से एक है, जो दाऊ भैया के गौचारण का क्षेत्र भी है।

बंशीवट बैठे हैं नंदलाल।
भयो है मध्यान्ह छाक की विरियां अपनी गैया छैया लै आवो ब्रजबाल॥
ग्वाल मण्डली मध्य विराजत करत परस्पर भोजन गोपाल।
'आसकरण' प्रभु मोहन नागर सब सुख रसिक रसाल॥

छांहरी

भांडीर वन के पास ही छांहरी या बिजौली गाँव है। जब श्रीकृष्ण अपने बाल-सखाओं के साथ विविध क्रीड़ाओं में आतप व श्रम से गतश्रम की इच्छा करते तो यहाँ सघन वृक्षों की छाया में बैठकर विश्राम करते। छांह से ही छांहरी गाँव नामित हुआ।

सखा सह श्री कृष्ण भांडीरे खेलाइया।
भुंजे नाना सामग्री ए छायाये बसिया।
ए हेतु छांहरी नाम ग्राम एई हय।
यमुना निकट ग्राम देख शोभामय॥

(भ.र)

देवी आटस – मनसा कुण्ड / सीता कुण्ड एवं श्री बलराम जी

अध्याय – ३९

श्री भांडीर वन

पाप पंक का प्रशमन कर देने वाली ये सख्य-सौख्य की रसीली लीलायें सचमुच मानस पंकज को आनन्द के प्रभात से प्रस्फुटित होने को बाध्य कर देती हैं। हृत्प्रांगण में एक असामान्य अक्षुण्ण उल्लास तीव्र गति से दौड़ने लगता है, क्यों न हो, यहाँ की लीला ही कुछ ऐसी है – अचिन्त्य महाशक्ति निकेतन स्वयं अजित भी पराजित हो गये यहाँ –

पराजित भी किसके द्वारा?

गोपकिशोरियों के द्वारा।

सुगठित शरीर वाले ग्वालों के साथ तो मल्लक्रीड़ा होना यहाँ प्रतिदिन का नियम जैसा ही था। एक दिन कौन जाने क्या सूझा, गोपेन्द्रतनय एकाकी आकर इस वनप्रान्त में बिम्बारुण अधरोष्ठ पर मुरलिका को रखकर उसे अधर सुधा का पान कराने लगे, बस फिर क्या था आभीर सुन्दरियों को कहाँ सहन है कि हमारे अधिकार का अधरामृत अधिक समय तक कोई और पिये, पहुँच गयीं उज्जवल विलासिनी, निकुंज प्रचारिणी, परिमल प्रसारिणी, कान्तिमती-कीर्ति कुमारी के साथ भांडीर वन में। निकुञ्जेश्वरी के आते ही स्वागत के लिए आम्र मंजरियों के अंतराल से एक साथ सैकड़ो कोकिलाओं का कुछ-कुछ रव मुखरित हो उठा। किशोरी ने प्रियतम के सन्मुख आते ही पूछा – "आप यहाँ अपने सखाओं के साथ कौन-कौन सी क्रीडाएँ करते हैं?" कोई ऐसी क्रीड़ा बताऊँ, जिसमें ये और इनकी प्राणोंपम सहचरी गण निपुण न हों, थोड़ा सोच कर बोले – "मल्ल क्रीड़ा करता हूँ अपने सखाओं के साथ और विस्मित न होना, इस क्रीड़ा का प्रतिदिन का विजेता मैं ही हूँ", थोड़ा सखियों की ओर देखते हुए कहा। "ओह ! त्रिभंगी सीधा खड़ा होना तो जानते नहीं, मल्ल क्रीड़ा क्या जानते होंगे?" क्रीड़ा चतुरा ललिता ने कहा। श्रीकृष्ण – "ऐसा कहकर तुम लोग मेरा अपमान मत करो, विश्वास न हो तो क्रीड़ा करके देख लो।"

ललिता – "हाँ, हाँ हम इसीलिए आई हैं, हम में से जिससे चाहो मल्ल क्रीड़ा कर लो।"

वैसे इन ब्रज रामाओं के अत्यन्त मृदुल अंग संस्थान हैं किन्तु आज तो लंहगे की जगह सब की सब गोप मल्ल वेष में आ गयीं, क्रीड़ा प्रारम्भ होने से पूर्व एक ने करताड़न किया। श्रीजी का संकेत पाते ही निपुण नायक से क्रीड़ा आरम्भ हो गई, दाँव-पेंच शुरू हो गये।

परिभ्रामण, उत्सर्पण, उत्थापन, उन्नयन, स्थापन, अवपातन....आदि। अवसर आते ही श्रीकृष्ण पैंतरे बदल लेते परन्तु आज तो मल्ल नहीं, मल्लों के दादाओं से भिड़ गए बेचारे, मध्य मध्य में गोपियाँ उत्साह वर्धन हेतु – "वाह-वाह ! बहुत सुन्दर ! काले मल्ल को छोड़ना मत...... श्रीराधा रानी की जय स्वामिनी जू की जय" इत्यादि प्रकार से जय घोष भी करतीं। एक नहीं सबसे क्रीड़ा की, किन्तु सभी से हारना पड़ा बेचारे कृष्ण को। मानो आज यह हारने के लिये ही यहाँ बैठे थे। अजय को पराजय को भी अंगीकार करना पड़ा, आज इन ग्राम्याओं के संग मल्ल कृष्ण उनके बालक से लग रहे हैं क्योंकि –

"तेरे बिरज में गैया बहुत हैं पी पी दूध भई पटिया ।
ब्रज मण्डल देस दिखाय रसिया ॥"

श्रीकृष्ण को पराजित हो लज्जित होना पड़ा। श्रीजी ने अपनी सभी सहचरियों सहित श्रीकृष्ण का परिहास किया। श्रीपाद रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने अपने "ब्रज विलास स्तव" ग्रन्थ में इस लीला का उल्लेख करते हुए भांडीर वन की वन्दना की है। वाराह पुराण एवं भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में श्री भांडीर वन का माहत्म्य सविस्तार वर्णित है।

भागवतानुसार भांडीर वन में प्रलम्बोद्धार –

श्री कृष्ण द्वारा प्रलम्ब का प्राणोत्सर्ग भी यहीं हुआ।

वनस्थल में शीतल मन्द सुवासित पवन कह्वार, उत्पलादि अनेक जाति कमल की गंध के साथ प्रवहमान थीं, प्रभाकर कन्या (यमुना) तो कृष्ण जन्म के बाद पयोनिधि जैसा स्वरूप ले बैठी। पुलिन की कल्प पादप श्रेणी नत-अवनत हो मानो यमुना से बातें करने लगती। पादपों की सघनता रवि-रश्मि को तो ब्रज रज का स्पर्श भी न करने देती। मयूर, शशक, कोकिल गण, भ्रमर समुदाय ये सब तो अपनी भाषा में पुनः पुनः श्रीकृष्ण को वन गमन के लिए पुकार रहे थे। श्रीकृष्ण आये, सखाओं से समावृत्त होकर। इन मित्रों का स्नेह भी एक खेल है, मणि-मणिका को उतार कर एक ओर रख देते हैं एवं ब्रज की रंग-बिरंगी गेरू आदि धातुओं से कृष्ण का श्रृंगार करते हैं और कुछ न तो फलों की माला धारण कर लेते हैं। "कन्हैया ! देख, यह अमरूद की माला है, अंगूर गुच्छे की झालर है, याको धारण कर ले, भूख लगे तो खा लियो,

यह मटर की करधनी है " – रक्तक ने कहा।

"यह कदली को बघनखा पहन ले" – वरुथप बोला।

इस वन्य लीला के दर्शनोत्सुक बड़े-बड़े सुरगण भी गोप वेष में आकर इन नन्हे-मुन्ने बालकों में छिप, जगत नियन्ता जगदीश्वर की स्तुति करने लगते और ये जगदीश्वर सामान्य बालकवत् अपनी मित्र मंडली के साथ भांडीर वन में रस्साकसी, कुश्ती क्रीड़ा, मेंढक फुद्दी, छपका-छपकी, आँख-मिचौनी तथा प्रतिस्पर्धा से लम्बी दौड़ का खेल खेल रहे हैं। नन्हे गोप बड़े गोपों की बाँहों में लटक जाते हैं, झूला-झूलते हैं –

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥

(भा.१०/१८/१६)

इस प्रकार भांडीर वन में यमुना किनारे ऊँची नीची घाटियों में, कुंजों में, सरों में चल रही क्रीड़ा के मध्य प्रलम्ब आत्मोद्धारार्थ आ गया। ऊँचा सुपुष्ट काला शरीर ही इसका स्वरूप है, ग्वाल वेष में स्वयं को छिपाये जब आया और ग्वालों के साथ खेल की इच्छा की तो कन्हैया ने अस्वीकार करना तो कभी सीखा ही नहीं। श्रीकृष्ण बोले –

"आज हम दो दलों में विभक्त होंगे, एक दल होगा – कृष्ण दल, दूसरा दल – दाऊ दादा का।" कुछ ग्वाल प्रलम्ब सखित कृष्ण दल में हो गए कुछ दाऊ भैया वाले में। शर्त यह थी कि जो दल पराजित होगा वह तो सवारी बनेगा और विजयी दल सवार। पहले वृन्दावन में एक ऐसा विशाल वृक्ष था कि उसकी सुदीर्घ शाखा यमुना पार करके भांडीर वन तक आती, जो ग्वाल-बालों के लिये सेतु का कार्य करती –

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ।
भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥

(भा.१०/१८/२२)

ग्वाल-बाल खेलते-खेलते कभी वृन्दावन चले जाते, कभी वृन्दावन से भांडीर वन आ जाते। अंततः खेल में कृष्ण दल हार गया, दाऊ दल जीत गया। अब तो कृष्ण दल के सभी सखा सवारी और दाऊ दादा का दल सवार हो गया। कन्हैया से भार वहन तो होता नहीं, निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने से पहले सवार को कई बार गिरा देता है फिर कई बार विश्राम के लिए समय माँगता है पर इन ग्वालों को तो कन्हैया की पीठ से गिरने में भी आनन्द आता है। अपने पीत जामा को ऐसे खौंस लेता है मानो अब पूरी सृष्टि को वहन करेगा फिर नितम्ब प्रदेश पर दोनों कर रखकर दीर्घ श्वास लेने लगते हैं। "चलो, अभी थोड़ी दूर और है", पुनः सवार को बैठाते हैं, चल पड़ते हैं। दानव पुङ्गव प्रलम्ब ने दाऊ दादा को स्कन्धारूढ़ कर रखा है। दाऊ अधिक शक्ति सम्पन्न हैं। इसे मारकर ही कृष्ण को मारूँगा – प्रलम्ब ने सोच रखा है। निर्दिष्ट स्थान से इतर दाऊ दादा को ले जाने लगा किन्तु दाऊ का भार सह नहीं सका। अरे दूर नहीं ले जा पाया, तो आकाश में उड़ने लगा, धीरे-धीरे वह अपने काले विकराल स्वरूप में आ गया। उसे देख कर पहले दाऊ जी कुछ भयभीत हुये किन्तु स्वरूप स्मरण होते ही उसके मस्तक पर बड़ी जोर से एक मुष्टि का प्रहार किया। बस इतना ही पर्याप्त था उसके उद्धार के लिए चेतना विहीन हो अवनि पर गिर पड़ा। अब तो सब ग्वाल-बाल प्रलम्ब परित्राता दाऊ दादा की बहुत प्रशंसा करने लगे, गोद में उठाये, पीठ ठोके, आलिंगन करें, जय ध्वनि करें।

"प्रलम्ब परित्राता दाऊ दादा की जय"

यह स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है, यहाँ 'मत्स्य कूप' है।

ततो भाण्डीरवन प्रार्थना मन्त्र :-

चतुर्द्दशावताराणां लीलोद्भवस्वरूपिणे ।
नानाद्रव्योद्भवस्थान नमो भाण्डीरसंज्ञिके ॥

(मात्स्ये)

हे १४ अवतारों की लीलाओं द्वारा उत्पत्ति स्वरूप ! अनेकानेक द्रव्यों के उत्पत्ति स्थान भांडीर नामक तीर्थ ! आपको प्रणाम है।

ततो असिभांडतीर्थ प्रार्थना मन्त्र (स्कान्दे) :-

मनोर्थवरदे तीर्थे असिभाण्डहृदाव्हये ।
नमो गोप्यजलाल्हादे तीर्थराज नमोस्तु ते ॥

हे मनोवांछित वर प्रदान करने वाले, असिभांड नामक तीर्थ, हे गोप्य जल से आनन्द प्राप्त, आपको प्रणाम है।

ततो मत्स्यकूपस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

चतुर्द्दशावताराणां जन्मन्युत्सववर्द्धिने
दुग्धोफानमयोद्भूत मत्स्यकूप नमोस्तुते ॥

हे १४ अवतारों का जन्म महोत्सव वर्द्धन करने वाले, दूध के फेन स्वरूप मत्स्य तीर्थ ! आपको प्रणाम है।

राधा माधव का ब्रह्मा जी द्वारा विवाह – इसी पुस्तक के 'विवाह लीला' नामक अध्याय में दृष्टव्य है।

श्री भांडीर वन – बंसीवट महारास स्थल, मत्स्य (वेणु) कूप एवं भांडीर वट

अध्याय – ४०

भद्रवन

कुछ लोग ब्रज में भद्र वन की स्थिति तूमेरा गाँव के पास मानते हैं या कुछ लोग भदावल को भी भद्र वन मानते हैं। इस तरह से दो भद्र वन हो जाते हैं जैसे दो वंशी वट, दो चीर घाट या दो कालीदह की प्रसिद्धियाँ हैं किन्तु पौराणिक प्रमाण से 'ब्रजभक्तिविलास' में यमुना के उत्तर में भद्र वन माना है यद्यपि वहाँ अब केवल गाँव है, वृक्ष नहीं रहे।

ब्रजभक्तिविलासानुसार

चौरासी कोस ब्रज में अड़तालीस वनों का वर्णन आया है, जिनमें बारह वन, बारह उपवन, बारह प्रतिवन और बारह अधिवन हैं।

'पद्म पुराण' में यमुना जी की उत्तर-दक्षिण दिशाओं में बारह वनों का वर्णन मिलता है, इन बारह वनों में से ही एक हैं "भद्र वन"।

इन सभी वनों के अधिदेवताओं का वर्णन 'बृहन्नारदीय पुराण' में किया गया है जैसे – महावन के हलायुध, काम्यवन के गोपीनाथ, कोकिलावन के नटवर, तालवन के दामोदर, कुमुदवन के केशव, भांडीर वन के श्रीधर, छत्रवन के श्रीहरि, खदिरवन के नारायण, लोहवन के ऋषिकेश, भद्र वन के हयग्रीव, बहुला वन के पद्मनाभ, बेलवन के जनार्दन अधिदेवता हैं।

ततो भद्र वन प्रार्थना मन्त्र :-

भद्राय भद्ररूपाय सदा कल्याणवर्द्धने ।
अमंगलच्छिदे तस्मै नमो भद्रवनाय च ॥

हे भद्र रूप भद्रवन ! आप सर्वदा कल्याण के वर्धक एवं अमंगलों के नाशक हैं। आपको प्रणाम है।

ततो भद्रवन स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

यज्ञस्नानस्वरूपाय राज्याखंडपदप्रद ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं भद्राख्यसरसे नमः ॥

हे भद्र नाम वाले सरोवर ! हे तीर्थ राज ! आप यज्ञ दान स्वरूप हैं, आपको प्रणाम है।

ततो भद्रेश्वरमहादेव प्रार्थना मन्त्र :-

भद्रेश्वराय देवाय सर्वदा शुभदायिने ।
नमो भद्रस्वरूपाय वामदेव नमोस्तु ते ॥

हे भद्रेश्वर महादेव ! आप सदा शुभ देने वाले हैं। हे शुभ स्वरूप ! आपको प्रणाम है।

पात्रवन

द्वापरस्य युगस्यान्ते राजा कर्णोऽभवत्सुधीः ।
धातूनांतु चतुर्णां सस्वर्णरुक्मप्रभृतिनां ॥
ताम्रकांस्यद्वयोश्चैव पात्रणि च चकारह ।
घृतशर्करगोधूमतिलपूर्णानि तूर्य च ॥
सद्रव्याणि द्विजातिभ्यो ददौ दानमनुत्तमं ।
अंगिरात्रिभारद्वाजकश्यपेभ्यो प्रणम्य च ॥
यस्मात्पात्रबनं नाम विख्यातं प्रथिवीतले ॥

(ब्र.भ.वि)

द्वापरान्त में प्रतापशाली, दानवीर राजा कर्ण ने स्वर्ण, चाँदी, ताँवा व काँसे के अनेक प्रकार के पात्र बनवाकर उनमें घी, शक्कर, गोधूम तथा तिल आदि भरकर अंगिरा, अत्रि, भारद्वाज व कश्यप आदि ऋषियों की वन्दना करते हुए उन्हें दान दिया, अतएव इसका नाम पात्रबन हो गया।

ततो पात्रबन प्रार्थना मन्त्र :-

सर्वधातुमयस्थान स्वर्ण भूमि नमोस्तु ते ।
रत्नगर्भे नमस्तुभ्यं पात्रस्थल नमोऽस्तु ते ॥

इति मन्त्रं शतावृत्या नमस्कारं समाचरेत् ।
पात्रदानफलं लेभे पुण्यं कोटिगुणं फलं ॥
यथा शक्त्या करोद्दानं चतुष्पात्रं सधातुकं ।
चतुष्पात्रादि धान्यं च द्विजेभ्यो सविधानत ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति सहस्रगुणितं फलं ॥

(ब्र.भ.वि)

हे सम्पूर्ण धातुमय स्थान ! हे स्वर्णभूमि तुम्हें नमस्कार करता हूँ। हे रत्नगर्भ ! आपको प्रणाम है। हे पात्रस्थल आपको नमस्कार है। इस मन्त्र का सौ बार पाठ करते हुए प्रणाम करें तो पात्र दान करने का फल प्राप्त होता है। यथाशक्ति ४ प्रकार की धातुओं के बने पात्रों को घी आदि चार प्रकार के पदार्थों से भरकर यथाविधि ब्राह्मणों को दान करने से समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं व सहस्त्रगुना फल मिलता है।

यत्र कर्णो महात्यागी नित्यस्नानं चकार ह ।
सुवर्णनिर्मितं कुण्डं नीलाम्भः कमलान्वितं ॥
यत्र स्नात्वा करोद्दानं दशभारसुवर्णकं ।
माघकार्तिकयोश्चैव पक्षयोरुभयोरपि ॥
दान कुण्डो भवेदत्र पुण्यं कोटिगुणं फलं ॥

(ब्र.भ.वि)

यहाँ पर महात्यागी कर्ण, कार्तिक एवं माघ के दोनों पक्षों में प्रतिदिन स्नान करने के उपरान्त दस भार स्वर्ण का दान किया करते थे। इसीलिए इस कुण्ड का नाम दानकुण्ड पड़ा। यह कुण्ड स्वर्ण द्वारा निर्मित तथा नीलवर्ण के कमलों से सुशोभित है।

ततो दानकुण्डस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

सर्वाक्षयप्रदस्तीर्थ दानकुण्ड नमोस्तु ते ।
सदेहकर्ण मोक्षाय नमः पापप्रणाशिने ॥
इति मन्त्रं दशावृत्या मज्जनाचमनैर्नमन् ।
सकलेवरजीवात्मा वैकुण्ठपदमाप्नुयात् ॥

हे सम्पूर्ण अक्षय प्रदायक तीर्थ दान कुण्ड ! आपको नमस्कार है। आप कर्ण को मोक्ष देने वाले तथा पापों का विनाश करने वाले हैं। इस मन्त्र का दस बार पाठ करते हुए मज्जन, आचमन एवं प्रणाम करने पर जीव को वैकुण्ठ पद की प्राप्ति होती है।

ततो कर्णदर्शन प्रार्थना मन्त्र :-

कर्णाय दानरूपाय कौरवाय नमोस्तु ते ।
सर्वकल्मषनाशाय मुक्तिदो मुक्तिमूर्तये ॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य पञ्चभिः प्रणतिञ्चरेत् ।
मुक्तिभागी भवेल्लोको दर्शनान्नात्रसंशयः ॥

हे दानवीर कौरव कर्ण ! आपको नमस्कार करता हूँ। आप सम्पूर्ण कल्मषों का नाश करने वाले हैं, आप मुक्तिदाता तथा मूर्तिमान मुक्तिरूप हैं। इस मन्त्र का पाठ करते हुए पाँच बार नमस्कार करने पर मनुष्य केवल दर्शन मात्र से ही मुक्ति लाभ करता है, इसमें कोई संशय नहीं है। इस प्रकार पात्रबन की उत्पत्ति एवं माहात्म्य का निरूपण किया गया।

बेलवन

निरंतर नारायण के वक्ष पर निवास पाने के बाद भी सिंधु सुता श्री लक्ष्मी जी गोपी भाव भावित रस के प्राप्त्यर्थ ब्रज रज का आश्रय लिए हुए हैं।

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः॥
श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम्।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः॥

(भा.१०/२९/३६,३७)

लक्ष्मी जी तो सदैव ही प्रभु की चरण रज पाने को लालायित रहती हैं, इस बात को बार-बार कहा ब्रज पुररमणियों ने –

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये॥

(भा.१०/३०/२९)

युगलचरणारविन्द की चरण रज देखकर कहती हैं –

"यही है-यही है वह रज। जिसे स्वयं श्री ब्रह्मा जी, श्री लक्ष्मी जी एवं धूर्जटि शम्भु भी पापोन्मुक्त होने हेतु निज मस्तक पर धारण करते हैं।" अरे, देवाधिदेव में पाप कहाँ से आया?

महासती लक्ष्मी में पाप !

पापनाशक शिव में पाप !

सृष्टि सृजन कर्ता श्री ब्रह्मा में पाप !

जी हाँ इनमें पाप है। ब्रह्मा व शिव का पाप उनका पुरुषत्व है, जब तक शिव गोपी नहीं बने, रास-रस की प्राप्ति नहीं हुई –

वृन्दावन रास रचायो शिव गोपी बनकर आयो ।
भोले बन गए नर ते नार रटे जा राधे राधे ।
राधे अलबेली सरकार रटे जा राधे राधे।

ब्रह्मा जी को भी दुर्लभ गोपी चरण रज नहीं मिली –

षष्टिवर्ष सहस्राणि पुरा तप्तं मया तपः ।
भक्त्या नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये ।

(बृहद् वामन पुराण)

ब्रह्मा ६० सहस्र वर्ष पर्यन्त रस प्राप्ति के लिए तप संलग्न रहे। कमला का पाप है – उसका नैरस्य व ऐश्वर्य। इन पापों के निर्मूलनार्थ ही युगल चरणरज को ये सदा अपने मस्तक पर धारण करते हैं। चपला कमला ने तो इस रज की प्राप्ति के लिए यहाँ श्री बेल वन में सुदीर्घ काल तक तप किया। अन्य समस्त कामनाएँ त्याग कर ब्रजरजाश्रयी बन गयीं –

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

(भा.१०/३१/१)

यहाँ इनकी तपस्या सिद्ध हुई, इसलिए 'बेल वन' उनकी सिद्ध तपो भूमि है।
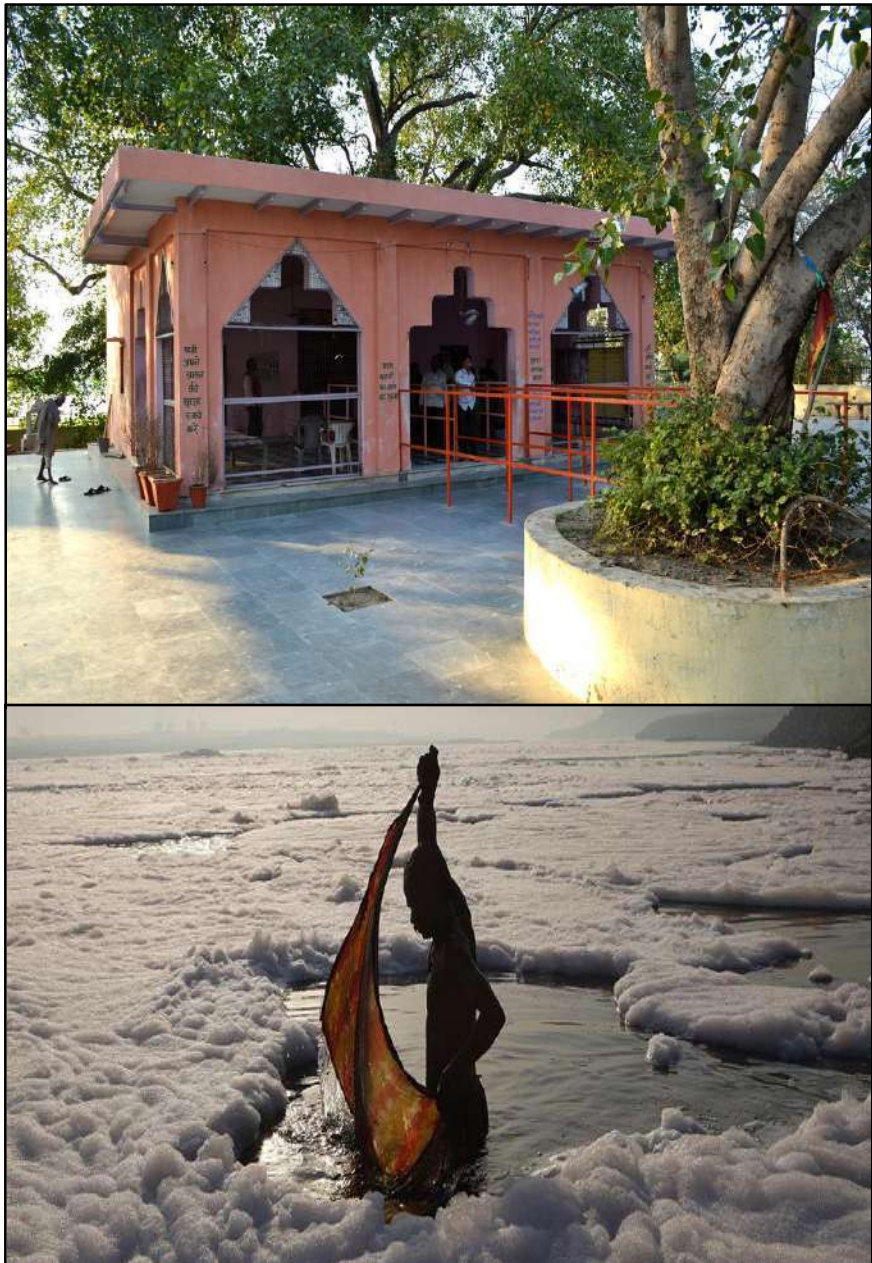
बेलवन – श्री लक्ष्मी जी मंदिर एवं श्री यमुना जी

श्री यमुना जी का उद्धार हर कृष्ण भक्त का लक्ष्य हो। आज यमुना जी हरियाणा में कैद हैं तथा यमुना जी में सिर्फ दिल्ली का मल-मूत्र व कारखानों का विषाक्त जल ही बहता है। एक भारतवासी के लिये इससे बड़ा क्या कलंक हो सकता है? सम्पूर्ण विश्व के कृष्ण भक्तो जागो और यमुना जी के लिए संघर्ष करो।

अध्याय – ४१

श्री मानसरोवर

इस स्थान की अनेकों सरस कथाएं हैं। रासोत्सव में शिव जी को गोपी रूप की प्राप्ति, मानिनी की मानलीला एवं फाग महोत्सव। मानसरोवर का दूसरा नाम "राधारानी" भी है। आसुरी मुनि व शिवजी को गोपी रूप की प्राप्ति –

नारद गिरि पर कृष्णभक्त आसुरि मुनि युगल सरकार के ध्यान में तल्लीन थे, उस तल्लीनता में इन्हें ६०,६०० वर्ष व्यतीत हो गये। तप की शक्ति अन्तर्मुखता से अमृतत्त्व है एवं बहिर्मुखता मृत्यु है। प्रभु के २ रूप हैं। १. पुरुष रूप एवं २. काल रूप।

बहिर्मुखों के लिए वे काल रूप हैं एवं अन्तर्मुख भक्तजनों के लिए पुरुष रूप हैं –

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥

(गीता.५/२१)

प्रभु ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि तुम अन्तर्मुख हो गये तो मेरा ही रूप हो जाओगे अर्थात् साक्षात् ईश्वर ही बन जाओगे।

अन्तर्मुखी आसुरी मुनि को ध्यानावस्था में ६०,६०० वर्ष व्यतीत हो गए। नित्य प्रभु का दर्शन प्राप्त होता। एक रात्रि इन्हें बार बार प्रयास करने पर भी ध्यान में प्रभु न आये। बड़े व्याकुल हो गये, उस विकलता में ये बद्रिकाश्रम चले गये किन्तु वहाँ उन्हें नर-नारायण के दर्शन भी नहीं हुए। तप प्रभाव से लोकालोक पर्वत की ओर प्रस्थित हुए तो वह स्थान भी सहसानन से विहीन था। पार्षदों से प्रभु का पता-ठिकाना पूछा गया तो उन्होंने भी अनभिज्ञता व्यक्त की। अब तो क्षीरसागर से शोभित श्वेतद्वीप में गये किन्तु यह क्या – यहाँ तो शेष की गोद भी सूनी है।

यहाँ भी नारायण नहीं हैं। वैकुण्ठ पहुँचे तो वहाँ भी लक्ष्मी सहित नारायण को न देखकर विस्मयान्वित हो गए। आराधना के बल से नित्यधाम गोलोक में पहुँचे तो वहाँ पावन वृन्दावन की निकुंज में लाड़ली लाल ही नहीं हैं तब पार्षदों ने कहा – "मुने ! व्याकुल न हो, जिस ब्रह्माण्ड में वामनावतार हुआ, जहाँ किसी समय पृश्निगर्भ अवतार भी हुआ था वहीं लाल जी गये हुए हैं।" अब मुनिवर तपोबल से सीधे कैलाश पर आये तो देखते हैं कि शम्भू तो ध्यानस्थ है। नित्य कृष्ण लीला का चिंतन करते रहते हैं।

प्रणाम करते हुए बोले – "हे शम्भो ! मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अटन करके आया हूँ किन्तु मुझे कहीं भी प्रभु दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। आखिर प्रभु गए कहाँ? "

शिवजी ने कहा – "हे आसुरे ! तुम धन्य हो। संसार में धन्य वही है, जिसे कृष्ण-दर्शन की इच्छा है। कृष्ण चर्चा छोड़कर अन्य कामना रखने वाला मृत है, पशु है। इस समय जहाँ प्रभु का वामनावतार हुआ है, पृश्निगर्भ अवतार हुआ है, उस ब्रह्माण्ड में अर्थात् इसी पावन स्थान पर षोड्श कला सम्पन्न प्रभु रासक्रीड़ा कर रहे हैं, अतएव किसी भी लोक में उनकी प्राप्ति नहीं हो रही है। अभी-अभी मैं वहीं के लिए गमनोत्सुक था, तब तक आपका आगमन हो गया।" आसुरि मुनि ने भी साथ गमन करने की प्रार्थना की। कैलाश से चलकर दोनों यमुना जी के तट पर आये। पूरा पुलिन पारावारविहीन प्रसन्नता को प्राप्त हो रहा था।

कुसुमित उपवन की सुषमा इस रासक्रीड़ा को पाकर स्वयं की ही सराहना कर रही थी। रासक्रीड़ा की रजनी की शुभ्र ज्योत्सना सम्पूर्ण वनप्रान्तर को उद्भासित करते हुए अपने भाग्य को गा रही थी। द्वारपालिकायें हाथ में स्वर्णिम छड़ी लेकर इधर-उधर घूमती हुई पहरा दे रही थीं। शिवजी व आसुरि मुनि को अंदर प्रवेश करते हुए देखकर द्वारपालिकाओं ने रोक दिया, यह कहकर कि हम कोटि-कोटि गोपिकाएँ कृष्णाज्ञा से इस वृन्दावन की रक्षा करती हैं। यहाँ एकमात्र पुरुष केवल श्रीकृष्ण ही हैं, अतः तुम वहाँ नहीं जा सकते हो, वहाँ तो केवल गोपी यूथ का ही निर्द्वन्द प्रवेश है, इस पर शिवजी व आसुरी मुनि एक बार दर्शन पाने के लिए अनुनय विनय करने लगे। गोपियों ने इसका उपाय बताते हुए कहा कि आप दोनों इस मानसरोवर में स्नान करें, जिससे आपको दिव्य गोपी रूप की प्राप्ति हो जायेगी एवं दर्शन भी सहज हो जाएगा। तब दोनों ने इसी मानसरोवर में स्नान करके दिव्य गोपी वपु प्राप्त किया। न केवल पुराण ही अपितु ब्रजवासी भी इसी लीला का गायन करते हैं –

वृन्दावन रास रचायो शिव गोपी बनके आयो ।
भोले बन गये नर ते नार भजे जा राधे राधे ।
राधे अलबेली सरकार रटे जा राधे राधे ।

गोपी वपु से शिवजी व आसुरी मुनि दोनों का भीतर रास स्थल में प्रवेश हुआ। माधवी लताओं का वह निकुंज सदन जो विविध सुरभित सुमनों से आच्छादित था।

"यमुनारत्नसोपानतोलिकाभिर्विराजिते"

(ग.सं.वृ.ख.२५/१०)

तपन-तनया-यमुना में रत्नमय सोपान की शोभा विद्युच्छटा को भी मात कर रही थी। नन्दनकानन को भी हेय बनाने वाले इस चिन्मय वृन्दावन धाम का दोनों को निरावरण दर्शन सुख प्राप्त हुआ। नील कल्लोलिनी का निर्मल जल तो नीलमणि की भाँति चमक रहा था। कूल पर समलंकृत सखी समुदाय, मंजरियों के मण्डल से परिवृत रास के लिए प्रस्तुत था।

तब तक ये दो नयी वनितायें रासेश-रासेश्वरी के समक्ष पहुँची। दोनों ने दोनों के अतिशय मृदुल अंग संस्थान का दर्शन पाया। कोई भी हृत्पटल नील-पीत दम्पत्ति के अचिन्त्यानन्त माधुर्य के अपार पारावार का एक सीकर भी ग्रहण कर ले तो उसका अहोभाग्य है। नवीन मेघ के सदृश नीलाभ ब्रजराज किशोर का यह श्यामल कलेवर और उस पर पिंगल-दुकूल की शोभा के विषय में कुछ कहना तो श्रुति, वाग्वादिनी व सहसानन शेष से भी सर्वथा अक्षम है। मानस भावापन्न – मानस मोदिनी, नित्य-नव निकुंजविहारिणी, कनक-दर्पकामोचिनी कान्तिमती श्रीराधा का अवर्णनीय महालावण्य तो दोनों को अनन्तानन्दभार्गव के अतल-तल में ले गया।

वंशीधरं पीतपटं वेत्रपाणिं मनोहरम्।
श्रीवत्सांकं कौस्तुभिनं वनमालाविराजितम्॥

(ग.सं.वृं.ख.२५/१७)

हंसगामिनी-राधा, हंसगमनगति-श्रीकृष्ण रत्नमय रासमंडल पर विराजमान हैं। अरुण कर सरोरूहों में मुरलिका विधृत है। रेशमी पीत-परिधान झिलमिला रहा है, दूसरे कर में मनोहर लकुट है। वक्ष पर श्रीवत्स का चिन्ह है।

कौस्तुभमणि की द्युति तो बड़ी ही निराली है। नीली गौर ग्रीवा में आजानुलम्बिनी कमनीय वनमाला झूल रही है।

क्वणन्नूपुरमंजीरकांचिकेयूरभूषितम्।
हारकंकणबालार्ककुण्डलद्वयमण्डितम्॥

(ग.सं.वृं.ख.२५/१८)

नृत्य मुद्रा में खड़े ललित त्रिभंग देव के चरण-सरोजों में नूपुर व मंजीर झंकृत है। इस ओर नव जलद लला है तो वामपार्श्व में दामिनी लाली हैं। युगल के अंग-प्रत्यंग में विराजे आभूषण मानों विविध वाद्य-ध्वनि कर रहे हों। श्रीजी के पदाम्बुजों में शब्दायमान नूपुर कमल कोष में उड्डयित भ्रमर पंक्ति के समान नाद कर रहे हैं। श्रोणिमण्डल में किंकिणी समूह राजहंसों के क्वणन के समान कलरव कर रहा है। कर कमल में चूड़ियाँ खनखन निनाद कर रही हैं।

कारुण्य-कल्लोलनी के निर्मल कपोल पर श्रुतिमण्डनकारी कुण्डल निर्भय आँख-मिचौनी खेल रहे हैं। पृथु-वक्षोज पर हार हँस रहा है। दर्शनानन्द में निमग्न आसुरी मुनि व महादेव ने दिव्य स्तवन किया –

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्देवदेव जगत्पते॥
पुण्डरीकाक्ष गोविन्द गरुडध्वज ते नमः।
जनार्दन जगन्नाथ पद्मनाभ त्रिविक्रम।
दामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते॥

(ग.सं.वृं.ख.२५/२१,२२)

इस स्थान पर इस स्तुति का पाठ अनन्त फलप्रद है, अतः अवश्य करना चाहिए।

भावार्थ – "हे प्रभो ! आप साक्षात् भगवान हैं। भू-भारापहरण हेतु एवं सज्जनों के कल्याणार्थ आप नन्द सदन में प्रकट हुए हैं।"

स्तुति से प्रसन्न हो रासेश्वर ने कहा – "हे शम्भो ! हे आसुरे ! तुमने ६०,६०० वर्ष पर्यन्त निरपेक्ष होकर तप किया। ऐसे अकिंचन भक्त मुझे प्राणतुल्य प्रिय होते हैं, अब आप दोनों वर रूप में कुछ माँग लो।" अमित दया वर्षिणी श्रीजी ने भी कहा – "हाँ ! हाँ ! शम्भो, आसुरे ! श्याम सुन्दर ठीक कह रहे हैं। तुम कुछ माँग लो।" तब दोनों ने कर जोड़कर कहा –

नमोऽस्तु भूमन्युवयोः पदाब्जे सदैव वृन्दावनमध्यवास ।
न रोचतेनोऽन्यमतस्त्वदंघ्रेर्नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम् ॥

(ग.सं.वृं.ख.२५/३०)

"हे युगल रसराज ! आपको प्रणाम है, आपके औदार्य ने हमें वर माँगने को विवश कर दिया है। हम दोनों सदा-सर्वदा के लिए वृन्दावन वास चाहते हैं। कृपा कर वर प्रदान करें।"

युगल सरकार ने तथास्तु कहकर उन्हें ब्रजवास दे दिया –

निकुञ्जपार्श्वे पुलिने वंशीवटसमीपतः ।
शिवोऽपि चासुरिमुनिर्नित्यं वासं चकार ह ॥

(ग.सं.वृं ख.२५/३२)

उसी समय से वंशीवट के निकट महादेव जी गोपीश्वर रूप में विराजमान हैं। आज भी गोपीश्वर महादेव का मंदिर दर्शनीय है। यही प्राचीन वृन्दावन है।

ततो मानसरोवर प्रार्थना मन्त्र :-

मनोर्थ सिद्धिरुपाय सरसे मानसाह्वये ।
नमस्ते तीर्थराजाय देववैमल्यरूपिणे ॥

मानसरोवर में शिवजी का मनोरथ सिद्ध हुआ। समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले तीर्थराज मानसरोवर स्थान बड़ा पावन है।

मानलीला

मानसरोवर की मानलीला को चाचा वृन्दावनदास ने इस पद द्वारा मुखरित किया है।

पुनि-पुनि लाल भाँवरे लेत ।
को जानै इहि मानसरोवर तट भूले चित चेत ॥

मानसरोवर, श्रीकृष्ण का बड़ा प्रिय स्थान है। बार-बार श्रीकृष्ण मानसरोवर पर आते हैं। कभी श्रीजी के साथ फाग खेलने के लिए तो कभी उन्हें मनाने के लिए तो कभी उनका दर्शन पाने के लिए।

मानसर सोभा संघट माई ।
जहां कछु होत मान को संभ्रम नागरि गहत भुराई ।
अवनी अमल तहां प्रतिबिम्बित गोरे तन पै छाई ।

एक समय प्रिया-प्रियतम बैठे हुए थे। यहाँ की मणि-माणिक्यमयी भूमि में श्रीजी के गौर वर्ण पर लाल जी का नीला प्रतिबिम्ब पड़ा एवं लाल जी के नील कलेवर पर श्रीजी का गौर प्रतिबिम्ब पड़ा। उस प्रतिबिम्ब को देखकर ही मानिनी मान कर बैठी।

सो पिय मुकुर मांहि जब लखियत तब हठ करत महाई ।

श्रीजी बोलीं – "लाल जी ! यह कौन है, जो आपके वक्ष पर बैठी हुई है? " इस भोरेपन को सुनकर लाल जी बोले – "प्यारी जू ! यह कोई अन्य नायिका नहीं है, यह आपका ही प्रतिबिम्ब है, जो मेरे विग्रह पर दिखाई दे रहा है।" श्रीजी बहुत भोरी हैं, बोलीं – "हम कैसे मान लें? " तब ठाकुर जी ने विश्वास दिलाने के लिए एक युक्ति सोची। बोले – "देखो राधे ! हम आपको माला धारण करायेंगे तो वह माला यहीं हमारे विग्रह में भी आ जायेगी, तब तो आप मानोगी कि वक्षासीन कोई अन्य नहीं, आप ही हैं।"

श्रीजी बोली – "हाँ ! मान लेंगी।"

झट लाल जी ने एक वन्य-सुमनमाला श्रीजी को धारण कराई। माला प्रतिबिम्ब में भी आ गई। श्रीकृष्ण बोले – "मैंने सत्य कहा था न राधे !"

अब देखना हम आपके गले से माला उतारेंगे तो प्रतिबिम्ब पर भी माला नहीं रहेगी, कहकर माला उठा ली तो प्रतिबिम्ब भी माल्य शून्य हो गया। अब गोरी भोरी श्रीजी ने मान-त्याग किया।

जब उर कुसुम दाम उर मोरत मान चोर वसि जाई ।

यह तो मेरा ही प्रतिबिम्ब है, ऐसा जब श्रीजी को विश्वास हो गया तो श्रीजी के हृत्प्रांगण से मान रूपी चोर भाग गया एवं मिलन हो गया।

तब रस रंग बढ़त-बढ़त छिन-छिन प्रति कुञ्ज सुभग थल आई ।
सर के तीर लता निज मंदिर केलि करत मन भाई ।
'वृन्दावन' हित रूप जाऊं बलि अलि दृग वांछित पाई ।

होरी लीला

मानसरोवर पर श्रीकृष्ण सखी रूप में राधाराधना करते हैं। यह लीला रा.सु.निधि में भी आई है –

**कालिन्दीतटकुंजमन्दिरगतो योगीन्द्रवद्यत्पदज्योतिर्ध्यानपरः
सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्वयक्षरा ॥**

(रा.सु.निधि.९५)

यमुना जी के किनारे मानसरोवर की कुंज में श्रीकृष्ण योगियों की भांति बैठे हुए हैं एवं श्रीजी का ध्यान कर रहे हैं। मुख से राधा .....राधा ...राधा नामोच्चारण और नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु बह रहे हैं। उस प्रेमाकर्षण के अद्भुतरस से सम्मोहित होकर गौरांगी राधा अनायास श्रीकृष्ण के समीप चली आती हैं। संसार में जितने भी मन्त्र हैं उन सबमें राधा नाम सर्वश्रेष्ठ है, जिसे परमविद्या कहा गया है। सर्वप्रथम राधा नाम का सतत् जाप करने वाली आराधिका का दर्शन ललिता जी को होता है।

नंदगाँव, बरसाने के मध्य समाज गायन में यहाँ की होरी लीला का वर्णन आता है। यहाँ की यह बड़ी विलक्षण होरी लीला है। एकादशी पर मानसरोवर में श्रीराधावल्लभ जी का गोस्वामी समाज जाकर 'समाज गायन' में यह पद गाता है –

(रासाचार्य श्री हितघनश्याम जी की वाणी में मानसर की होरी लीला)

**श्री ललित निकुंज बिहारी खेलत कुंज में ।
पिय किंयैं सखी कौ रूप सखिनि के पुंज में ।**

लाल जी ने छापेदार लँहगा पहनकर सम्पूर्ण श्रृंगार सुमन से किया है। ललिता जी ने जब इस नई गोपवनिता को देखा, दौड़ते हुए श्रीजी के पास पहुँची और बोलीं –

"वहि बारम्बार रटै रट राधा मंत्र कौं"

"हे राधे ! एक नवेली ध्यानस्थ बैठकर आपके नाम को सप्रेम उच्चारण कर रही है।"

राधारानी ने पूछा – "कहाँ है वह?"

ललिता जी बोलीं –

**मानसरोवर माँझ अरी सुनि न्हाइ कैं ।
राधा कौ जाप जपै पानी में जाई कैं ।**

"हे राधे ! मानसर में स्नान करके वहीं आपका नाम जप कर रही है।

तेरी मूरति सोने की अन्हवाइ कें।
ताकौ चरनोदक लै ध्यान लगाईं कें॥

उसने आपकी स्वर्णिम प्रतिमा बना रखी है, उसे स्नान कराके बड़े भाव से उसका पादोदक लेती है। नाना प्रकार से वह आपकी प्रतिमा की पूजा करती है। अमृतवत् सुस्वादु व्यंजनों का भोग लगाती है। भोग लगाने के बाद ही स्वयं प्रसाद ग्रहण करती है।

"तेरी प्रतिमा पहिरे कंठी में पोहि कें"

आपकी छोटी सी प्रतिमा उसने कंठी में पहन रखी है, जो सदा उसके वक्ष का स्पर्श पाती है।

"वंशीधर की सी नांई बंशी बजाबई"

और तो और वह हमारे कन्हैया जैसी वंशी भी बजाती है।

उसकी वंशी के मधुरस्यंदी स्वर से अचर-सचर के गुणों में विरोधाभास हो जाता है।"

"धैनु चरें न चलें न करें त्रिनु खंडली"

वेणुगीत में भी कहा गया है –

शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु।
गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥

(भा.१०/२१/१३)

वंशी के उन्मादक नाद को सुनकर बछड़े घास चरना भूल जाते हैं, मुख में जो दूध है उसे न उगल ही पाते हैं, न निगल ही पाते हैं। जड़ स्थिति को प्राप्त हो गए हैं।

श्रीजी ने पूछा – "ललिते ! उसकी अवस्था क्या है?" तो ललिता ने कहा –

वैस किशोर उन्हारि श्री नंदकिशोर की।
अँखियां बडडी सुख दैनी पैंनी कोर की॥

"बड़े-बड़े कमल सदृश चपल लोचन हैं, जिन्हें देखकर प्रतीत होता है मानो खंजन पक्षी नृत्य कर रहे हैं।

हे लाड़ली जू ! यदि आप नेत्रसुख चाहती हो तो एक बार उसे निहार लो।"

जो सुख चाहौ नेंननि तौ सुख दीजिये।
चलि प्रेम पियूष मयूष पिवौ पी जीजिये॥

यह सुनकर श्रीजी का कोमल गात्र पुलकायमान हो गया।

बात सुने रोमांच किशोरी के भयो।
वृषभानु लली ललिताहि हार हिय कौ दयौ॥

प्रसन्नवदना श्रीजी ने अपने गले का हार उतार ललिता जी को दे दिया।

प्रेम चले भरि नैंन मेंन रस में सनें।
टपके असुवा मनु कंजनि ने मोती जनें॥

नेत्रों से अविराम प्रेमाश्रुपात होने लगा। वे प्रेमाश्रुबिंदु जब उन्नत वक्षोज पर गिरे तो ऐसा लगने लगा मानो कमल मोती पैदा कर रहा है।

श्रीजी के नेत्र तो कमल हैं एवं अश्रुबिन्दु मोती हैं।

"सखी अंश भुजा गति हंस चली गज गामिनी"

गजगामिनी श्रीजी राधाराधिका के दर्शन मिलन को चलीं। मानसरोवर तट पर आकर उस आराधिका के साथ श्रीजी ने होरी-क्रीड़ा आरम्भ कर दी।

"वाल तमालनि बीच गुलाल उड़ावहीं"

नील-पीत-हरित-अरुण विविध रंगों के अबीर से सम्पूर्ण गगन रंजित हो गया।

"चाहति बाल तमाल लतानि उठाइ कें"

तमाल जो कि दोनों का निरावरण मिलन नहीं होने दे रहा था, श्रीजी ने उसे पकड़कर हटा दिया फिर तो दोनों का ऐसा मिलन हुआ।

"मनु हेम लता लपटी नव साँवल कंज सों"

मानो कोई स्वर्णलता नीलकमल से लिपट गई हो। श्रीजी उसके स्वरूप को देखकर चकित-थकित थी।

उन्होंने पूछा –

कौन तिहारौ नाम कहाँ तेरो गाँव री।
तें मेरौ मन मोह्यौ री सखी साँवरी॥

"अरी सखि ! तेरा नाम क्या है? तेरी धन्य जन्म धरा कौन सी है? तेरे रूप ने मुझे यन्त्रित कर लिया है।" तब वह बोली –

स्यामा मेरौ नाम गाँव जहाँ नन्द कौ।
सखि मेरें तेरौ ध्यान चकोर ज्यों चंद कौ॥

"अरी सखि ! मेरा नाम श्यामा है और गाँव तो वही है, जहाँ के नंदबाबा हैं अर्थात् नंदगाँव की हूँ मैं किन्तु चन्द-चकोर की तरह मेरा तुमसे विशेष प्रेम है।"

इसके बाद सखी-समूह दोनों को लेकर वंशीवट आया और वहाँ वंशीवट में दोनों के पीताम्बर-नीलाम्बर में गाँठ लगाकर सखियों ने विवाह रचना एवं खूब गारी गायी।

श्री ब्रजनारि धमारनि गारिनि गावहीं।
ठौरनि-ठौरनि कौकिल फाग मनावहीं॥
हौं बलिहारी जाँउ विहारिनि नाम के।
नित्य विहार कौ हार कंठ 'घनश्याम' के॥

(हितघनश्याम कृत श्रृं.र.सा.पद.सं-२४)

पानी गाँव

फणि कहते हैं शेष जी को। जब बाल कृष्ण को मथुरा से वसुदेव जी गोकुल ले चले तो वर्षा हो रही थी। उनके ऊपर छत्र लगाने के लिए शेष जी यहीं से चले थे। मथुरा से छत्र लगाते हुए गोकुल की ओर गए थे। फणि गाँव का अपभ्रंश ही पानी गाँव है। यहाँ अब भी बहुत विषाक्त रोगों की चिकित्सा होती है, जो प्राचीन काल से चली आ रही है।

मान सरोवर – मान लीला

अध्याय – ४२

श्री वृन्दावन

श्री वृन्दावनधाम-रससस्वरूप, प्रेमस्वरूप, अप्रतिम इस चिन्मय धाम का माहात्म्य निश्चित ही अत्यंत माधुर्यमय, रहस्यमय व अनिर्वचनीय होगा और ऐसा है तभी तो सुरगुरु बृहस्पति के शिष्य, यादवराज सभा के मंत्री, श्रीकृष्ण के परम प्रिय सखा – उद्धव नाम से सुशोभित होने वाले को भी आवश्यकता पड़ गई वृन्दारण्य का तरु, गुल्म, लता, तृण, पत्र-पाषाण बनने की –

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

(भा.१०/४७/६१)

इतना ही नहीं सृष्टिकर्ता भगवान् नारायण के नाभिकमल से समुद्भूत ब्रह्मा जी तो यहाँ तक कह रहे हैं –"इस वृन्दा टवी में किसी भी योनि पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जड़-वृक्ष आदि में मेरा जन्म हो जाय। यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी।"

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां ।
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।

(भा.१०/१४/३४)

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥

(भा.मा.१/६१)

प्रेम के शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य – इन सभी रसों का साक्षात् स्वरूप, धन्य है ये २० कोसीय वृन्दावन।

यहाँ का वास उद्धव ने माँगा, ब्रह्मा ने माँगा, शिवजी तो यहाँ जमकर आसन लगाये बैठे हैं। कहीं गोपीश्वर बनकर तो कहीं ब्रजेश्वर, कहीं आसेश्वर, कहीं चक्रेश्वर।

क्यों न हो २० कोस का यह क्षेत्र जो वृन्दावन की संज्ञा से शोभित है, स्वयं कृष्ण-बलराम को भी बड़ा प्रिय है –

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥

(भा.१०/११/३६)

ब्रजवासी गणों का जब महावन से वृन्दावन गमन हुआ तो वृन्दावन का हरा-भरा वन, अत्यंत मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के सुन्दर-२ पुलिनों को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम के हृदय में उत्तम प्रीति का उदय हुआ। अर्थात् उनके मन को यह बड़ा ही प्रिय लगा।

अरे ! चौंक मत जाना सुनकर, जिस समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने प्रार्थना की प्रभु से भूतल पर आने की, तो लाल जी प्रियाजी से बोले-आपके बिना तो किसी भी लीला की सिद्धि संभव नहीं, अतः आप भी पधारें, तो स्पष्ट मना कर दिया श्रीजी ने। कारण?

कारण स्वयं बताते हुए –

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ॥

(ग .सं.गो.खं.३/३२)

जहाँ वृन्दावन न हो, यमुना न हो, गोवर्धन गिरि न हो, भला वहाँ मेरे मन को सुख कहाँ? तब श्री ठाकुर जी ने –

वेदनागक्रोशभूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम् ।
गोवर्द्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ॥

(ग.सं.गो.खं.३/३३)

नित्यधाम से ८४ कोस ब्रजभूमि, गोवर्द्धन पर्वत, श्री यमुना जी को इस धरातल पर भेजा।

आज ब्रज को लोगों ने बहुत सीमित कर दिया, वृहद् गौत्मीय तंत्र में वृन्दावन का क्षेत्र ५ योजन यानि २० कोस का बताया है – **पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्** – अर्थात ये २० कोस वृन्दावन मेरा शरीर स्वरुप है।

ध्यान दीजिए – श्री वृन्दावन केवल तीर्थ ही नहीं, भगवान् का निजधाम या निजगृह ही नहीं अपितु –

वृन्दाविपिनरम्याय भगवद्वासहेतवे ।
परमाह्लादरूपाय वैष्णवाय नमो नमः ॥

(प.पु)

ये तो श्री भगवान् के परम वैष्णव हैं। बड़े रमणीक वन हैं। भगवान् के पृथ्वी में अवतार का कारण हैं, परम आह्लादमय हैं, इन्हें केवल तीर्थ मान लेना या तीर्थ की दृष्टि से देखना, इनका अपमान होगा। वैसे भी श्रीकृष्ण और उनका धाम, स्वरुपतः अभिन्न हैं और उसमें

भी फिर ये श्री वृन्दावन धन्य है ..... धन्य है जहाँ की अधिष्ठात्री स्वयं श्री लाड़ली जी हैं। वृन्दावन नाम होने के वैसे कई कारण हैं –

वृन्दावन नाम क्यों?

कारण – १

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार तो सतयुग में परम उदार यशस्वी धर्मात्मा राजर्षि हुए हैं केदार, इनकी कन्या थी – वृन्दा । ये लक्ष्मी जी की अंश थीं। महर्षि दुर्वासा जी से इन्होंने 'श्री हरि मंत्र' प्राप्त किया तथा ६० हजार वर्षों तक इसी निर्जन वन में तप किया, जिस उग्र तप के प्रभाव से ये श्रीकृष्ण के साथ गोलोक में गयीं और वहाँ श्री राधा रानी के समान श्रेष्ठ सौभाग्यशालिनी गोपी हुईं। वृन्दा ने जहाँ तप किया, यह वही स्थान है। दीर्घकाल तक वृन्दा की तपोभूमि रहने के कारण इस स्थान का नाम 'वृन्दावन' हुआ।

कारण – २

राजा कुशध्वज की कन्या का नाम था – वेदवती और धर्मध्वज की कन्या का नाम था – वृन्दा। धर्मशास्त्र के ज्ञान में दोनों बड़ी निपुण थीं। वेदवती ने तप के द्वारा नारायण को प्राप्त कर लिया, जो जनकनंदिनी सीता के नाम से सर्वत्र विख्यात हैं। श्रीहरि को पति के रूप में पाने की उत्कट इच्छा तो तुलसी को भी थी किन्तु दुर्वासा जी के श्राप से उसने श्रीहरि के स्थान पर कृष्ण अंश शंखचूड़ को प्राप्त किया, तत्पश्चात् परम मनोहर कमलाकांत नारायण भी उसे प्राण वल्लभ के रूप में प्राप्त हुए। भगवान् श्री हरि के श्राप से देवेश्वरी तुलसी वृक्ष रूप में प्रकट हुईं और तुलसी के श्राप से श्री हरि शालिग्राम शिला हो गये तो उस तुलसी की तपस्या का एक यह भी स्थान है, इसलिए मनीषीगण इसे वृन्दावन कहते हैं – चूँकि तुलसी और वृन्दा समानार्थक शब्द हैं।

कारण – ३

यहाँ की अधिष्ठात्री वृन्दा देवी हैं और अधिष्ठाता गोविन्ददेव हैं, इसलिए भी इस वन का नाम वृन्दावन पड़ा –

वृन्दादेवी समेताय गोविन्दाय नमो नमः ।
लोक कल्मषनाशाय परमात्मस्वरूपिणे ।

(ब्र.भ.वि)

इसके अतिरिक्त – वृन्द कहते हैं 'समूह' को, पूज्य जीव गोस्वामी जी ने लिखा है कि – "वृन्दां अवतीति" जो समूहों का पोषण करता है, 'समूह' से तात्पर्य – गायों का समूह, गोपों का समूह, लता – वृक्षों का समूह। ये बात भागवत जी में भी सुस्पष्ट है –

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥

(भा.१०/११/२८)

अब 'वृन्दाकानन' नाम होने का सुपुष्ट और श्रेष्ठ कारण शायद इस कारण के आगे फिर और जिज्ञासा न हो, इसमें इस कानन की भरपूर महिमा निहित है।

कारण – ४

'वृन्दावन' नाम इसीलिए हुआ –

राधाषोडशनाम्नां च वृन्दानाम श्रुतौ श्रुतम्।
तस्याः क्रीड़ावनं रम्यं तेन वृन्दा वनम् स्मृतम्॥

(ब्र.वै.कृ.ज.ख.१७/२१७)

श्री राधा रानी के सहस्र नामों में श्रेष्ठ हैं 'षोडश नाम' और उन षोडश नामों में उनका एक पवित्र नाम है – वृन्दा, जो कि श्रुति में भी सुना गया है, तो उन 'वृन्दा' नाम धारिणी श्री राधा का यह रमणीय क्रीडा वन है, इसलिए इसे 'वृन्दावन' की संज्ञा दी गयी है। पूर्व काल में श्रीकृष्ण ने श्री राधा की प्रीति के लिए गोलोक में वृन्दावन का निर्माण किया, फिर भूतल पर उनकी क्रीड़ा के लिए यह प्रकट हुआ।

हमारी श्रीजी वृन्दावन की अधिष्ठात्री शक्ति हैं, अतः षोडश नामावली में उनका एक नाम वृन्दावनी भी है, अरे कहाँ तक बताएं मत्स्यपुराण में तो ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है –

"राधा वृन्दावनेवने"

अर्थात् राधा ही वृन्दावन हैं, वृन्दावन ही राधा हैं, परस्पर अभिन्न हैं ये दोनों। जब वृन्दा और वृन्दावन अभिन्न हैं, तो अब भक्तवृन्द के लिए आगे इसकी महिमा के विषय में अधिक कुछ जानने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती। श्रीकृष्ण तो इस अखिल चिदानंद रसों से आप्लावित मधुर वृन्दावन को छोड़कर कदापि अन्यत्र गमन ही नहीं करते हैं –

"वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति"

(प.पु.)

अथवा

नारद उवाच –

तस्मिन वृन्दावने पुण्यं गोविन्दस्य निकेतनम् ।
तत्सेवकसमाकीर्णं तत्रैव स्थीयते मया ॥

(स्क.पु.म..ख.)

अथवा

वृन्दावने च गोविन्दं ये पश्यन्ति वसुन्धरे ।
न ते यमपुरं यान्ति यान्ति पुण्यकृतां गतिम् ॥

(आ.वा.पु.)

श्री वृन्दावन मायातीत, कालातीत धाम है। ब्रज रसिक शिरोमणि व्यास जी ने कहा –

वृन्दावन की शोभा देखत मेरे नैन सिरात।
कुँज निकुँज पुँज सुख बरसत हरषत सब के गात।
राधा मोहन के निजमन्दिर महाप्रलय नहिं जात।
ब्रह्मा ते उपज्यो न अखंडित कबहूँ नाहिं नसात।
फणि पर रवितर नहिं विराट महँ नहिं सन्ध्या नहिं प्रात।
माया काल रहित नित नूतन सदा फूल फल पात।
निर्गुण सगुण ब्रह्म ते न्यारो विहरत सदा सुहात।
'व्यास' विलास रास अद्भुत गति निगम अगोचर बात।

यह सम्पूर्ण वृन्दावन हमारे कन्हैया का क्रीड़ा स्थल है, उनके चरणों से चिन्हित है।

वेणुगीत से भी तो ऐसा ही स्पष्ट होता है –

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं ।
यद् देवकी सुत पदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ॥

(भा.१०/२१/१०)

(एक गोपवधूटी दूसरी से कह रही है) "अरी सखि ! यह वृन्दावन वैकुण्ठ से भी कहीं अधिक अपनी कीर्ति को व्यापक बना रहा है क्योंकि यशोदानंदन श्रीकृष्ण के चरण कमलों के चिन्हों को अपने अंक में धारण करके अत्यंत सुशोभित हो रहा है, अर्थात् यहाँ का कण-कण हमारे कन्हैया के श्री चरणों से चिन्हित है, जहाँ आज भी वह नित्य नूतन लीला कर रहा है।"

कालिय मर्दन लीला

कालीदह – आदित्य टीला – प्रस्कंदन घाट – आज कन्हैया पता नहीं क्या करेगा? खेलने तो गया है गोप बालकों के साथ परन्तु दाऊ भैया साथ में नहीं हैं, गौ-ग्वालमंडली के साथ कालिन्दी के कूल पर लीला प्रारम्भ हो चुकी है, ग्रीष्म ऋतु, मध्याह्न का समय, सूर्य भी सीधा हो गया है, कालिन्दी के अतिरिक्त न कोई सर है न निर्झर। गायों को, ग्वाल बालों को प्यास लग रही है। कालिन्दी के इस पुलिन पर तो केवल एक ही कदम्ब तरु है –

गृहीत्वाऽमृतपात्रं हि मार्गे गच्छन् गरुत्मता ।
कदम्बे कलशं न्यस्य यमुनातीर गो विराट् ॥

(मत्स्य पुराण)

जिस पर अमृत कुम्भ कुछ समय के लिए गरुड़ ने रख दिया था, अतः कालिय के प्रचण्ड विष से भी यह दग्ध नहीं हुआ। इस वृक्ष के अतिरिक्त कहीं छाया भी तो नहीं दिखाई देती, भद्र ने पुकारा – "घोष, मधु मंगल, श्री दामा चलो यमुना जल पीकर प्यास बुझायें।" जल पीते ही सब गाय, ग्वाल निष्प्राण होकर गिर पड़े।

(श्रीकृष्ण ने देखा और बोले) "अरे ! ये क्या ...... बालक निर्जीव हो गये?

यह तो कालिन्दी में रहने वाले कालिया के विष की करतूत है, ठीक है आज इस विषाक्त जल को निर्विष करके ही रहूँगा।" एक ओर से पीयूष पूर्ण दृष्टि घुमाई गायों, वृषभों, बछड़ों और गोपकुमारों पर। बस फिर क्या था सब के सब ऐसे उठ खड़े हुए मानो सोकर उठे हों, (परस्पर देखते हुए) ओह ! तो हमें हमारे कान्हा ने जीवित किया है ! वाह कन्हैया ! ! वाह ! ! कृष्ण सोच रहे हैं – यमुना जल का शोधन कैसे करूँ? किस ब्याज (बहाना) से कूदूँ इस ह्रद में? कोई न कोई ब्याज आवश्यक है (हाथ मलते हुए) अचानक प्रसन्नता की झलक मुख पर और मुख से निकला – मिल गया ब्याज।

सूरदास जी उस ब्याज को यहाँ उदघाटित कर रहे हैं –

श्याम सखा को गेंद चलाई ।
श्री दामा मुरि अंग बचायो गेंद परयो कालीदह जाई ॥
धाइ गह्यो तब फेंट श्याम की देहु न मेरी गेंद मँगाई ॥
और सखा जिनि मोको जानो मोसों जिनि तुम करौ ढ़िठाई ॥
जानि बूझि तुम गेंद गिरायो अब दीन्हे ही बनै कन्हाई ॥
'सूर' सखा सब हंसत परस्पर भली करी हरि गेंद गिराई ॥

(सूरसागर)

कंदुक क्रीड़ा प्रारम्भ हो चुकी है। सावधान रहें .... बहुत अल्प काल के लिए ही चलेगी। आगे तो दूसरा लक्ष्य पूर्ण करना है। एक-दूसरे की ओर गेंद फेंकी जा रही है, अब

कन्हैया का क्रम है, ले श्री दामा ! पकड़... (फेंक दी)। बेचारा श्री दामा अपने को बचाने लगा, उतने में गेंद कालीह्रद में पहुँच गई, बस फिर क्या था पकड़ ली फेंट कृष्ण की- "ला कान्हा ! मेरी गेंद दे .... दे गेंद ....नांय देगो? " (कृष्ण हँसते हुए) "गेंद कहा मेरी फेंट में है सो दऊँ? " सोच रहे हैं – गेंद भी देनी है और कालिन्दी को कालुष्य रहित भी करना है, बस चढ़ गये कदम्ब पर वहीं से चिल्लाये – "श्री दामा ! गेंद ला रहा हूँ।" (कदम्ब की सर्वोच्च शिखर पर कृष्ण को देखकर सभी सखा चिल्लाये), "कान्हा .....! कन्हैया ....! माधव ...! गोपाल ! उधर मत जा, लौट आ, कन्हैया ! मुझे गेंद नहीं चाहिए।" श्रीदामा भी चिल्लाया परन्तु गेंद का तो ब्याज मात्र है, लक्ष्य तो कुछ और है, उस लक्ष्य को पूर्ण करने हेतु जैसे ही कूदे, ग्वाल बालों का हृदय धक् से हो गया अरे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ! कन्हैया ऽ ऽ ऽ ऽ ! ।

ह्रद का जल ४०० हाथ दूर-दूर तक फैल गया मानो कृष्ण का आलिंगन करने कालिन्दी ऊपर की ओर उछलीं, पहले कृष्ण ऊपर कालिन्दी नीचे थीं, अब कालिन्दी ऊपर कृष्ण नीचे ह्रद में पहुँच गये।

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।
पर्यक् प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ॥

(भा.१०/१६/०७)

निद्रागत कालिय पर कठोर ठोकर का आघात किया, उठ ! फूत्कार करता कालिय उठा, उसका क्रोधाधिक्य देखकर तो लगता है मानो अब सारी सृष्टि को अपने में समाहित कर लेगा। एक सौ फण हैं, बार-बार बाल कन्हैया के मर्म श्री अंगों पर दंशन कर रहा है, दुष्ट कभी जकड़ लेता है, कभी चोट का पैंतरा ढूँढ़ता है, गाय ग्वाल निष्प्राण पड़े हैं परन्तु चिन्ता की बात नहीं, दोनों टक्कर के योद्धा हैं। कुछ ग्वालों की उस भीषण दृश्य को देखकर श्वास की गति अवरुद्ध हो गई है, कुछ गिरते-उठते, दौड़ते-पड़ते सीधे नन्दभवन पहुँच गये हैं; बोलना चाहते हैं पर मुख से ठीक से शब्द भी नहीं निकल रहे हैं – मै ऽ ऽ ऽ ऽ या, क ऽ ऽ ऽ ऽ न्हैया, का ऽ ऽ ऽ ऽलिन्दी.......

हाइहाइ करि सखनि पुकारयो ।
गेंद काज यह करी श्री दामा नन्दमहर को ढोटा मारयो ।

(अमंगल सूचक अपशकुन भी होने लगे हैं)

यशुमति चली रसोई भीतर तबहिं ग्वालि एक छींकी ॥
ठिठकिरही द्वारे पर ठाढ़ी बात नहीं कछु नीकी ।
आइ अजिर निकसी नँदरानी बहुरो दोष मिटाइ ।
मंजारी आगे दै निकसी पुनि फिरि आँगन आइ ।
व्याकुल भई निकसि गई बाहिर कहाँ धौं गयो कन्हाई ।
बांयो काग दहिन खर सूकर व्याकुल घर फिरि आई ।
खन भीतर खन बाहिर आवति खन आँगन इहि भाँति ।
'सूरश्याम' को टेरत जननी नेक नहीं मन शांति ।

(सूर सागर)

ब्रजरानी व्याकुल हैं कि आज मैं जैसे ही रसोई में गयी, तुंगी ताई को छींक हो गई, अपने आप छींके से दधि-भाण्ड गिर पड़ा, आज मार्तण्ड का प्रचंड ताप भी मलिन होने लगा, कुत्तों का रुदन, किसी के दाहिने अंग फड़कते हैं, किसी के बाँये अंग। एक-एक करके सब ब्रजवासीगण नंदभवन की ओर दौड़े आ रहे हैं और सबके मुख पर एक ही प्रश्न है – "हमारा नीलमणि कहाँ है?

नंदरानी ! ओ नंदरानी ! क्या हुआ तुम बोलती क्यों नहीं .... युवराज कहाँ हैं अरे दाऊ तो यहीं हैं, फिर क्या कन्हैया कहीं अकेला गया है? हाँ–हाँ मैया कन्हैया कहाँ है? " बालक-वृद्ध सबका मन एक ही जगह है – कृष्ण में। मैया तो किसी की ओर देख ही नहीं रही है, बस निकली भवन से और दौड़ने लगी, कहाँ जा रही है, ये तो स्वयं को भी नहीं पता, फिर कृष्ण पदचिन्ह देखे, उन्हीं का सहारा लिए बस आँख बंद करके दौड़ी जा रही है। कन्हैया......लाड़ले लाल......कान्हा......आँखों से अश्रुपात हो रहा है, बाबा नन्द, भैया दाऊ अन्य ब्रजवासीगण मैया का अनुगमन कर रहे हैं, चरण चिन्ह कालिय दह की ओर जा रहे हैं, सबके हृदय की धड़कन तीव्र होने लगी है, आखिर कन्हैया को आज क्या सूझा .... !

(दृश्य – कालिय और कृष्ण का युद्ध)

अब तो अश्रुपात भी बंद हो गया, एकटक हृद की ओर दृष्टि है, शरीर को हिलाने में भी मैया असमर्थ है पर हृद में कूदने को तत्पर है, गोपियों ने रोका, सांत्वना दी। बाबा को दाऊ भैया ने रोका, प्राण हैं या नहीं हैं अब तो ये भी जानना कठिन हो रहा है। पुनः-पुनः सब शरीर हिलाते हैं, झकझोरते हैं, सचेत करते हैं। इधर वात्सल्यसिंधु से भी अब न रहा गया, उछलकर फणों पर चढ़ गये और ऐसा नृत्य किया कि तांडव के मार्तण्ड शूलपाणि को भी चकित-विस्मित-स्तंभित कर दिया।

इस लीला का एक दूसरा कारण भी है –

एक बार स्वामिनी जी श्याम सुन्दर को नृत्य सिखा रहीं थीं कि लाल जी ये गति लो, ये और भी मोहक है, अब ये लो, ये और भी आकर्षक है। इस लीला को रसिकों ने भी गाया है –

"लाल को नचवत सिखवत प्यारी"

अब लाल जी नृत्य तो सीख गये, पर ऐंठ में फूले डोलैं तो श्रीजी ने एक दिन कही, "क्यों जी ! हम सों ही सीखके और हमारे आगे ही इतरात हौ।"

लाल जी बोले, "ये तो हमारी गति है, तुमते कब सीखी? "

(नोंक-झोंक बढ़ गई)

श्रीजी बोलीं, "यदि सच में बड़े कलाकार हो, तो कोई नूतन गति दिखाओ।"

लालजी बोले, "प्यारी जू ! जरूर दिखाऊँगो।"

अतः फणछत्र पर ऐसा तांडव नृत्य किया लाल जी ने, जिसे देखकर शिवजी भी जड़वत् स्तब्धित हो गये –

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीय ।
गन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ॥
प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीत ।
पुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥

(भा.१०/१६/२७)

इधर ब्रह्मा जी, नारद जी आदि देवों ने जब देखा, प्रभु नृत्य करना चाहते हैं तो गगन से सुमन वृष्टि करने लगे। गन्धर्वराज चित्ररथ ने मृदंग ध्वनि का विस्तार किया, हूहू गन्धर्व ने गान आरम्भ किया, हाहा गन्धर्व ने नगाड़े के साथ ढोल पीटा। चारों ओर से वाद्यों की गड़गड़ाहट –

और फिर नृत्य आरम्भ हुआ, सूरदास जी का भाव देखो –

फन-फन प्रति निर्तत नंदनंदन ।
जल भीतर युगयाम रहे कहुं मिट्यो नहीं तनु चन्दन ॥
उहै काछनी कटि पीताम्बर शीश मुकुट अति सोहत ।
मनु गिरि ऊपर मोर अनंदित देखत ब्रजजन मोहत ॥
अमरथ के अमर ललना संग जय जय ध्वनि तिहुँ लोक ।
'सूरश्याम' काली पर निर्तत आवत ब्रज की ओक ॥

जो फन नत नहीं हो रहा है, उस पर चोट कर रहे हैं, मनोहर नट वेष से नट नृत्य आरम्भ है, ताल के साथ पदविन्यास करने से उसके फन बिखर गये रक्त की उल्टियाँ होने

लगीं। इस काली दमन को देखकर, अपने कन्हैया की जीत देखकर मानो प्राणरहित देह में प्राण आ गये, सब एकाएक खड़े हो गये और चारों ओर जयघोष करने लगे, बोलो कालिय मर्दन भगवान् की जय ऽऽऽऽऽ कालिय दमन की जय ऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ। आकाश से पुष्प वृष्टि हो रही है, मैया के सूखे नेत्रों में बाढ़ आ गई। एक बार फिर से प्रसन्नता की अश्रुवृष्टि हुई, ब्रजवासियों का उच्च गान प्रारम्भ हुआ।

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो ।
रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्नगात्रः॥
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं।
नारायणं तमरणं मनसा जगाम॥

(भा.१०/१६/३०)

"कालीदह ते निकस कै आयो री मेरो बारौ सो कन्हैया"

वर्ष भर के बारह आदित्य होते हैं, द्वादश आदित्य वहाँ लाला को तपाने के लिये आये कि दीर्घ काल तक जल में रहने के कारण ठंड तो नहीं लग गई। अतः कालीदह के समीप जो उच्च टीला है उसका नाम द्वादशादित्य टीला है। आदित्य टीले के समीप प्रस्कंदन घाट है। द्वादश आदित्यों ने जब बाल-गोपाल को अपनी ऊष्णता प्रदान की तो शरीर से स्वेद (पसीना) बहने लगा, अतः वह पुण्यमय प्रस्कंदन तीर्थ हुआ –

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छ्रुणुत्वं वसुन्धरे ।
क्षे प्रस्कंदनं नाम सर्वपाप हरं शुभम् ॥

वृन्दावन में ऐसी अनेकों लीला प्रभु ने कीं और इन लीलाओं के माध्यम से न केवल अध्यात्म की शिक्षा दी है अपितु पर्यावरण शुद्धि का एक असमोर्ध्व उदाहरण प्रस्तुत किया। जैसे –

- कालिय मर्दन द्वारा जल तत्व का शोधन किया।
- तृणावर्त संहार द्वारा वायु तत्व का शोधन किया।
- मृद भक्षण द्वारा पृथ्वी का शोधन किया।
- व्योमासुर वध द्वारा आकाश तत्व का शोधन किया।
- दावानल पान द्वारा अग्नि तत्व का शोधन किया।

जो भूमि हमारे कन्हैया के सम्पूर्ण शैशवावस्था की लीलाओं का केंद्र है, उस दिव्य भू-भाग का नाम है 'श्रीवृन्दावन' जहाँ न केवल कालिय मर्दन ही हुआ, केशी भी अश्व का रूप बनाकर वृन्दावन की रमणीय भूमि में कृष्ण करों से स्वयं का उद्धार कराने आ पहुँचा।

केशी लीला

विशालकाय दुःसह वेग वाले उस अश्व रूप दैत्य को देखकर ब्रजवासी भयभीत होकर इधर-उधर भाग रहे हैं। भयाक्रांत ब्रजवासियों को भय से मुक्त कराने के लिए श्यामसुन्दर स्वयं उस मानवभक्षी असुर के समक्ष आ गये, हिनहिनाता हुआ वह बड़े वेग से आया और वक्ष पर पिछले पदों से दुलत्ती का प्रहार किया, बस आपस में हो गयी तना-तनी फिर माधव ने उसे ऐसे एक ओर फेंक दिया जैसे बालक कमण्डल को फेंक देता है। अन्त में उसके मुँह में अपनी बाँह डाली और जब तक वह उसके उदर तक नहीं पहुँच गयी उसे बढ़ाते रहे, कंठ अवरुद्ध हुआ, प्राणवायु रुकी और केशी का शरीर फूट की भाँति फट गया। चारों ओर से केशी के काल 'केशव' की जय-जयकार, गगन से देवों द्वारा सुमन वृष्टि प्रारम्भ हो गयी।

व्योमासुर उद्धार

केशी की तरह क्रीड़ा के मध्य प्रभु ने व्योम का समुद्धार भी कर दिया। अब गोप रूप में आये हुए व्योम का स्वागत कुछ अलग ढंग से करने जा रहे हैं।

'व्योम गोप' माधव के मित्र मंडल में मिल चुका है, आज संयोगवश अग्रज नहीं आये हैं, इधर माधव ने किसी को अस्वीकार करना तो कभी सीखा ही नहीं –

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा ।
बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥

(रा.सु.का-३९)

फिर अभी तो व्योम गोप रूपधारी ने कोई अघ किया भी नहीं है। उसने 'भेड़ चोरी' खेल का प्रस्ताव रखा, जो कि सफल हो गया। भेड़ों की चोरी करनी है, व्योम कुछ गोपों को साथ लिए चोर बन गया है, कुछ गोप श्रीकृष्ण के साथ रक्षक और शेष सब भेड़ें । श्रीकृष्ण तो सदा से ही सबके रक्षक हैं, यहाँ भी रक्षक का ही पात्र सम्भाले हैं। दुष्ट व्योम भेड़ बने गोपों को स्पर्श करके अपने साथ ले जाता है और थोड़ी सी आड़ मिलते ही मोहित करके उन्हें एक विशाल गुफा में रख आता है और गुफा द्वार को एक विशाल शिला से बंद कर दिया है, धीरे-धीरे ग्वालों की संख्या बहुत कम रह गयी तो सुबल चिल्लाया – "अरे भद्र ! ये नया मित्र कहाँ ले जाता है बार-बार भेड़ों को, अब तो केवल २ भेड़ें ही रह गई हैं परन्तु मुझे तो अब चोर भी दिखाई नहीं दे रहे।" भद्र और सुबल ने इधर-उधर देखते हुए कहा - "चलो कान्हा को बतायें चलो... चलो... कान्हा ! ओ भाई तू कैसा रक्षक है? तेरे देखते-देखते भेड़ों की चोरी हुई तो हुई, चोरों की चोरी भी हो गयी।" कान्हा - "अच्छा इस बार आने दो उसे", व्योम आया, व्योम के व्यामोह भंग का समय भी समीप आ लिया था, अतः उसकी दानवी

माया हटी भीषण विकराल रूप प्रकट हुआ, बस माधव ने पटक दिया उसे और कंठ पकड़ लिया, इतना ही बहुत नहीं था, अतः थप्पड़, घूंसे, पदाघात की वर्षा होने लगी व्योम के विकराल देह पर, कब उन कठोर प्रहारों से वह समाप्त हो गया ये भी नहीं पता चला। कुत्सित देह से मुक्त कर उसे नित्य गोपकुमार का स्वरुप दे दिया। इसके बाद ब्रजकिशोर का गुफा में प्रवेश हुआ, बस ग्वालों की मूर्छा समाप्त। कृष्ण को देखकर सब उछल पड़े परस्पर आलिंगन किया। तोक ने बड़ी प्रसन्नता के साथ सबको बताया – "हमारे कान्हा ने उस दुष्ट को मार दिया।" नाचते गाते हुए सोल्लास ब्रजागमन हुआ।

गर्गसंहितानुसार

काशी के सम्राट् भीमरथ ने एक बार पुलस्त्य ऋषि का सम्मान नहीं किया, जिससे क्रोधित पुलस्त्य ऋषि का शाप ही उसके दैत्य बनने का कारण हुआ, किन्तु मुनियों का शाप भी कल्याण का हेतु है। भीमरथ के शरणापन्न होने पर ऋषि ने कहा – "द्वापरांत में पवित्र ब्रजमंडल में यदुवंश शिरोमणि श्रीकृष्ण द्वारा तुम्हें योगि दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति होगी।" वही भीमरथ ऋषि अपराध के कारण व्योमासुर बना, अतः महद्अपराध (भक्तापराध) से तो जीव को सदैव सावधान रहना चाहिए।

(ग.सं.मा.ख.२४)

कृष्णदास जी ने भी कहा है –

ये अपराध परम पद ह्वै ते उतरि नरक में परिबो ।
हरि भक्तन सौं गरब न करिबो ॥

किन्तु शाप रूपी कृपा ने आज व्योम को श्रीकृष्ण का साक्षात्कार कराने में विलम्ब नहीं किया तो ऐसी अनेकानेक माधुर्यमयी लीलाओं से आपूरित ब्रज वृन्दावन में हमारे स्वामी ने प्रारब्धवशात् दानव शरीर प्राप्त दैत्यों का दमन भी किया तो बिना अस्त्र-शस्त्र के, इसलिए श्री बल्लभाचार्य जी ने कहा – इनका तो सर्वस्व मधुर है।

"दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्"

वृन्दावन के ठाकुर

यह तो कुछ कृष्ण लीला पर चर्चा हुई, अब कुछ महद् चर्चा हो जाय क्योंकि वृन्दावन के विषय में तो कुछ अंशों को लेकर ही चला जा सकता है अन्यथा ग्रन्थ का प्रारूप ही परिवर्तित हो जायेगा। इस पावन वसुंधरा में हमारे अनेकों आचार्यों द्वारा सेवित, प्रकट विग्रह भी हैं, जिन्हें हम अर्चावतार के नाम से जानते हैं, ये बड़े सिद्ध विग्रह हैं। जैसे –

- स्वामी श्री हरिदास जी महाराज के सेव्य – श्री बिहारी जी

- हरिवंश जी महाराज के सेव्य – श्री राधावल्लभ जी
- सनातन जी महाराज के सेव्य – श्री मदन मोहन जी
- रूप जी महाराज के सेव्य – श्री राधा गोविन्द जी
- गोपाल भट्ट जी महाराज के सेव्य – श्री राधा रमण जी
- मधु गोस्वामी जी महाराज के सेव्य – श्री गोपी नाथ जी
- जीव गोस्वामी जी महाराज के सेव्य – श्री राधा दामोदर जी

इन महापुरुषों को इन सिद्ध विग्रहों की प्राप्ति किस प्रकार हुई, इसके पीछे तो इनका बड़ा विस्तृत इतिहास है, किन्तु संक्षेप में एक झलक देखें –

ललितावतार रसिकाचार्य स्वामी श्री हरिदास जी महाराज के "बाँके बिहारी" – वृन्दावन के राजा, स्वामी जी के आराध्य, ये बाँके बिहारी वास्तव में बड़े बाँके हैं।

बाँके शब्द के दो अर्थ होते हैं –

१. टेढ़ा
२. सुन्दर

बाँकेबिहारी लाल जी (स्वामी हरिदास जी)

जो टेढ़ा है उसके सुन्दर होने में संदेह हैं और जो सुन्दर है उसके टेढ़े होने में संशय है, पर ये ठाकुर तो टेढ़ा भी है और सुन्दर भी, न जाने क्या मन में जँची इस तरह से प्रकट होने की। यद्यपि सम्पूर्ण वृन्दावन अपनी महिमा के कारण प्रणम्य है, तथापि न जाने क्यों निधिवन की इस निश्चित सघन कुञ्ज को प्रतिदिन श्री स्वामी जी महाराज प्रणाम करते हैं, फिर एक बार सजल नेत्रों से निहार लेते हैं, फिर कभी हँसते हैं तो कभी गाते हैं। सेवा में तत्पर रहने वाले शिष्यगण भी इस घटनाक्रम से बड़े सोच में हैं। कुछ कारण जानने की भी उत्सुकता है, न रहा गया तो एक दिन साहस करके जिज्ञासा प्रकट कर ही दी। प्रथम तो स्वामी जी ने शिष्यों को दिव्य दृष्टि प्रदान की। तदनंतर उसी लता-कुञ्ज की ओर दृष्टि पात करने के लिए कहा, जैसे ही उस ओर दृष्टि गयी – उस कुञ्ज प्रासाद में श्री लाड़ली लाल का दिव्य ललित केलि-विलास दृष्टि गोचर हुआ, बस फिर क्या होना था ! उस दिव्य आन्दानुभूति में देहानुसंधान भी किसी को न रहा। स्वामी जी ने अपने प्रधान शिष्य विट्ठल विपुल देव जी को रंगमहल से झारी लाने की आज्ञा दी। विट्ठल विपुल देव जी स्वर्णिम झारी बाहर लाए क्योंकि स्वामी जी चाहते थे कि ये लीला इनके मस्तिष्क में केवल एक आभास बनके न रह जाय, अपितु वे इसे परम सत्य और साक्षात् समझें। झारी लेकर जब विट्ठल विपुल देव जी बाहर आये और पुनः उस रंग प्रासाद की ओर देखा तो न वहाँ रंग प्रासाद था न ही कोई लीला विलास। तब स्वामी जी ने उक्त पद का गान किया –

"माई री सहज जोरी प्रकट भई जो रंग की गौर श्याम घन दामिनी जैसे"

(केलिमाल)

स्वामी जी के प्रधान शिष्य श्री विट्ठल देव जी उस बाँकी झाँकी का दर्शन करके अत्यंत मोहित हुए, प्रार्थना की कि गुरुवर ! इसी कृपा का इच्छुक हूँ कि इस बाँकी झाँकी के दर्शन नित्य हों। भक्तवत्सल गुणनिधान दयानिधान भगवान् ने भक्त की इस शुभाकांक्षा का आदर किया और उसी स्थली से बिहारी जी भक्तों पर कृपा करने हेतु मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी के शुभ दिन निधिवन में प्रकट हुए, जो कि विहार पंचमी के नाम से भी ज्ञात होती है। तत्पश्चात् स्वामी जी की आज्ञा से श्रेष्ठ शिष्य श्री विट्ठल विपुल देव जी बिहारी जी को निज गोद में लेकर बाहर आये।

बस, निधिवन में 'बाँके बिहारी जी' के प्राकट्य के बाद से तो स्वामी जी का यश, सर्वत्र वायु वेग से प्रसारित होने लगा।

नृपति द्वार ठाडे रहें दर्शन आसा जास की ।
आसुधीर उद्योतकर रसिक छाप हरिदास की ।

(भक्तमाल)

बड़े-बड़े राजा, महाराजा, संगीत सम्राट्, योगी, यती-सन्यासी आपका दर्शन करने को कतार में खड़े रहते। अकबर तक आपका गान सुनने अपनी बादशाही छोड़कर आपके पास आया। एक बार पर्वतपुरी नामक संन्यासी भी आपका सुन्दर सुयश सुनकर परीक्षा लेने के लिए आपके पास आये। परीक्षार्थ वे आकार परिवर्तन करने लगे। कभी सिंह बनकर दहाड़ने लगते, कभी सर्प बनकर फुँफकारते हुए उन्हें भयभीत करने का प्रयास करते, पर ये क्या ! यहाँ तो पर्वतपुरी के सारे प्रयास निष्फल हो गये। स्वामी जी ने अपने शिष्य से कहा - देखो, "ये पर्वतपुरी संन्यासी हैं, भगवद् कृपा से इन्हें नर देह मिला। इच्छानुकूल रूप धारण करने की क्षमता से इन्होने अपना पतन स्वयं चुन लिया। जो नर देह छोड़कर देवता बनकर तो नहीं आये, अपितु पशु बनके यहाँ आये, व्यर्थ हैं ऐसी सिद्धियाँ जो मनुष्य के पतन का कारण बन जाँये।" स्वामी जी का प्रतिदिन का नियम था कि अपने ठाकुर को बड़ा लाड़ लड़ाते थे।

गान के साथ उत्तम-उत्तम भोग आरोगते –

"उत्तम भोग लगाय मोर मर्कट तिमि पोषे"

(भक्तमाल)

अवशिष्ट भोग प्रसाद को मोर, बंदर व मछलियों को खिला देते और स्वयं मुट्ठीभर चने खाकर प्राणवृत्ति से जीवन यापन करते। परीक्षार्थ पर्वतपुरी जी भी स्वामी जी के द्वारा पुष्ट किये जा रहे मोरों के समुदाय में मोराकृति धारण कर आ मिले।

करुणा करते हुई स्वामी जी के मुख से निकला-"देखो ये नया मोर आया है।" आज, स्वामी जी की कृपापूर्ण दृष्टि पड़ी और सद्स्मृति आयी, सद्विवेक हुआ फिर तो बार-बार चरणों में गिरते, क्षमा माँगते, बड़ी ग्लानि हुई अपने दुष्प्रयास पर। स्वामी जी की करुणा तो

बार-बार अनाधिकारी पर भी उमड़-उमड़ कर आ रही थी, अतः कृपा नदी में पर्वतपुरी जी स्नात अभिषिक्त हुए। स्वामी जी ने उन्हें प्रकाश दास नाम से सम्बोधित किया। इसका आशय, मात्र यही अनुभूत होता है कि वैष्णवता के समक्ष समस्त ऋद्धि-सिद्धि न्यून हैं। स्वामी जी के समक्ष अपनी ऋद्धि-सिद्धि का प्रदर्शन करना सूर्य को दीपक दिखाना था। ऐसे न जाने कितने ही सिद्ध, कर्मकाण्डियों को स्वामी जी की कृपा ने वैष्णवता प्रदान की।

दयाराम सारस्वत ब्राह्मण का नश्वर पारसमणि से मोह दूर कर उसे प्रिया-प्रियतम के नाम, गुण, कथा-कीर्तन रूपी वास्तविक पारस में अनुरक्त किया। अतः भगवत रसिक जी कहते हैं –

पारस सो धन परिहरयो सेवक अकबर शाहि ।
श्री स्वामी हरिदास सम और बतावौं काहि ॥
और बतावौं काहि अब वैराग्य ज्ञान की ।
भक्ति सुमूरतिमंत प्रेम निधि दशा ध्यान की ॥
नित्य विहार आधार प्रगट सेवा नहिं आरस ।
'भगवत रसिक' अनन्य मिले गुरु पूरे पारस ॥

आपकी अनन्यता, अपरिग्रहता, नाम निष्ठा, धाम निष्ठा से प्रभावित होकर श्री हरिराम व्यास जी का कथन है –

अनन्य नृपति स्वामी श्री हरिदास।

श्री कुँज बिहारी सेये बिन जिन छिन न करी काहू की आस ।
सेवा सावधान अति जानि सुघर गावत दिन रसरास ।
ऐसो रसिक भयो न ह्वैहैं भुव मण्डल आकास ।
देह विदेह भये जीवत ही बिसरे विश्व विलास ।
श्री वृन्दावन रज तन मन भजि तजि लोक वेद की आस ।
प्रीति रीति कीन्ही सबहीं सो किये न खास खवास ।
अपनो व्रत हठि ओर निवाह्यो जौं लौं कंठ उसास ।
सुरपति भूपति कंचन कामिनि जिनके भाये घास ।
अबके साधु व्यास हमहूँ से जगत करत उपहास ।

आप गान कला के बड़े चतुर नायक थे –

"गान कला गंधर्व स्याम स्यामा को तोषें"

(भक्तमाल)

आपके समक्ष गन्धर्व तो आपके गान की कला मात्र भी नहीं हैं, कारण – "आपका गान केवल युगल सरकार को रिझाने के लिए ही था, संसार में मान-सम्मान, ख्याति-प्रख्याति की उपलब्धि के लिए नहीं था।" राजा राम बुन्देला के प्रधान गायक तानसेन भी आपके शिष्य

थे और तानसेन के ही शिष्य थे बैजू बावरा। स्वामी जी की कृपा से ये संगीत जगत् के महान सम्राट हुए । श्री स्वामी जी महाराज काव्य, संगीत, उपासना, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में अद्वितीय हैं। केलिमाल जैसा असमोर्ध्व ११० पद रत्नों के दिव्य ग्रन्थ का निर्माण कार्य आपके अतिरिक्त अन्य के द्वारा असंभव था। आप ही निकुंजोपासना के जन्म दाता थे। आपके सम्प्रदाय में (सखी सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय में) स्तुत्य ८ आचार्य हुए हैं। जिनकी वाणियाँ अष्टाचार्यों के नाम से प्रख्यात हुई। आप तो इन आचार्यों से पृथक्, उपास्य कोटि में थे। आपके पट्ट शिष्य हुए – श्री विट्ठल विपुल देव रूप जी, जिन्होंने आपकी आज्ञा से श्री बिहारिन देव जी को अपने शिष्य रूप में स्वीकार किया।

तो यह था – बिहारी जी के स्वामी जी का अति संक्षिप्त परिचय। (विशेष भक्तमाल में देखें)

राधावल्लभ लाल जी

श्री हित हरिवंश जी के लाड़ले राधा वल्लभ लाल –

"श्री हरिवंश गुसाँई भजन की रीति सकृत कोउ जानि है"

(भक्तमाल छ.९०)

कोई विरला ही इन्हें जान सकता है। गुरू आज्ञा से राधा रानी के अनन्य उपासक श्री हित जी महाराज का नाभा जी जब ध्यान करने बैठे तो ये अंतर्देश में प्रगट ही नहीं हुए, गुरु देव से निवेदन किया गया तो रहस्योद्घाटित करते हुए गुरु ने आज्ञा की, ये तो श्रीजी के अनन्य भक्त हैं। अतः इनके विषय में जानने के लिए, प्रथम तुम्हें श्रीजी से प्रार्थना करनी होगी तब स्वयं श्री अग्रस्वामी जी ने श्रीजी के चरणों की वंदना की –

"वन्दौं श्री राधिका पद पद्म"

तब जाकर कहीं श्री नाभा जी के मानस पटल पर इनकी स्फूर्ति हुई, अन्यथा श्री नाभा जी जैसे सिद्ध संत के लिए भी उनकी उपासना पद्धति का रहस्यमय ज्ञान अगम्य था –

"श्री राधा चरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी"

राधा रानी का दास बनने की इस प्रबल अभिलाषा से कोई ये न समझ बैठे कि श्री हिताचार्य जी की उपासना में लाल जी का कोई स्थान नहीं है –

श्रीहरिवंश सुरीति सुनाऊँ ।
श्यामा-श्याम एक संग गाऊँ ।
छिन एक कबहुँ न अंतर होई ।
प्रान सु एक देह हैं दोई ॥
राधा संग बिना नहिं श्याम ।
श्याम बिना नहिं राधा नाम ॥

(सेवक वाणी)

ये नवयुगल किशोर-किशोरी ही, श्री हित जी के आराध्य-सेव्य-उपास्य हैं किन्तु इतना अवश्य है –

हित जू की रीति कोऊ लाखिन में एक जानै ।
श्रीराधा ही प्रधान मानै पाछै श्रीकृष्ण ध्याइये ।

श्री हित हरिवंश जी

ये उत्तर प्रदेश सहारनपुर जिला में देवबन्द में बिराजते थे। यजुर्वेदीय गौड़ ब्राह्मण दम्पति श्री व्यास मिश्र जी एवं श्रीमती तारा रानी जैसे दिव्य दम्पत्ति को दीर्घ काल तक संतान का सुख न मिला, अतः एक दिन आपने अपने अग्रज संन्यासी नृसिंहाश्रम जी से अंतर्वेदना कह सुनाई तो वे सहसा बोले – “यदि भाग्य में है तो अनायास उसकी प्राप्ति हो जाएगी।” यह सुनकर तारा का कहना था कि यदि हमें भाग्य पर रहना है तो इसमें आपके भजन का आपकी कृपा का क्या महत्व रहा? बस ये सुनते ही समाधिस्थ हो गए अग्रज। नेत्र बंद हैं, प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं प्रभु ने हृदयाकाश में प्रकट होकर कहा – “चिंता न करो, व्यास मिश्र के पावन गृह में मेरी ‘वंशी’ का अवतार होगा।” अतः हित जी महाराज को ‘वंशी’ का अवतार कहा गया। अग्रज ने ये मंगल समाचार अनुज को दिया फिर उस दिव्य आनंद का पारावार कहाँ रहना था? अब तो व्यास मिश्र के हृदय ने कहा - “तारा इस समय हम दोनों को ब्रजयात्रा करनी चाहिए।” उसी यात्रा काल में जब ‘बाद’ ग्राम में आगमन हुआ तो हित जी का आगमन तो यहाँ पहले से सुनिश्चित हो चुका था। वैशाख शुक्ल पक्ष एकादशी जैसी पुण्य तिथि सोमवार वि.सं. १५३० में अरुणोदय के समय ‘श्री हित हरिवंश महाप्रभु जी’ का प्रादुर्भाव हुआ, कुछ समय ‘बाद ग्राम’ में निवास के पश्चात् पुनः देवबंद आगमन हुआ। ब्रज में एक प्राचीन कहावत है “पूत के पाँव तो पालने में ही दीख जायो करें”, सो हित जी महाराज में छिपी हुई अलौकिक प्रतिभा बाल्यकाल से ही प्रगट होनी आरम्भ हो गई।

यदि कहीं से कर्ण पुटों में राधा नाम पड़ जाता तो राधा-राधा कहकर नृत्य करने लगते। राधा नाम के प्रति तो आपकी ऐसी स्वभाविक प्रीति थी। एक बार पिता श्री व्यास मिश्र जी श्यामा-श्याम का श्रृंगार कर रहे थे, तो बार-बार श्रीजी, ठाकुरजी के रूप में और ठाकुरजी, श्रीजी के रूप में दर्शित हो रहे थे। शायद मेरे से ही तो कहीं श्रृंगार करने में कोई त्रुटि तो नहीं हो गयी है, ऐसा विचार कर व्यास मिश्र जी ने श्यामा-श्याम का पुनः श्रृंगार किया, किन्तु ये तो पुनः पूर्ववत् ठाकुर श्रीजी, और श्रीजी ठाकुर जी के रूप में दिखाई दिये, समझ नहीं पा रहे हैं। आखिर ये मेरे साथ क्या लीला 'लीला बिहारी' खेल रहे हैं। अचानक सामने से जय-घोष सुनायी पड़ा। बाहर जाकर जैसे ही झाँका कि यह जय ध्वनि किसने की? तो देखते हैं 'हितू' दो बालकों को, जिनमें से गौर वर्ण वाले बालक को कृष्ण और श्याम वर्ण वाले बालक को राधा रानी बनाकार उनके साथ खेल कर रहा है । बस यही परिवर्तन पिता श्री व्यास मिश्र को मन्दिर में प्रत्यक्ष देखने को मिला, तब समझे पिता व्यास मिश्र कि ओह ! यह कोई साधारण बालक नहीं है। इसकी असाधारणता से तो बोध होता है कि इसका किसी असाधारण जगत् से अवतरण हुआ है। आपकी महाप्रसाद में भी बड़ी निष्ठा थी, ऐसी अनेकों मधुरतम गाथा आपके जीवन चरित्र में प्राप्त होती हैं यथा –

एक बार शरद पूर्णिमा के सुअवसर पर स्वयं श्रीजी ने अपनी चुनरी आपको ओढ़ाई, झूलन उत्सव पर लाल जी ने, लाड़ली जी ने आपको अपने वस्त्राभूषण रखने को दिये। एक बार मध्य रात्रि को आपको श्रीजी ने स्वप्नादेश किया कि आपके घर के समीप जो जलहीन कूप है, उसमें श्री रंगीलाल जी का विग्रह है। अतः उसे प्रकट करके आप उनकी सेवा पूजा का विस्तार करें। सबेरा हुआ, स्वप्न भली-भाँति स्मृति में है, जल्दी ही आज्ञा का पालन करना है। कुछ बालकों को लेकर चल पड़े और उसी कुएँ के निकट पहुँच गये। जाते ही प्राण परवाह को एक ओर रखे और झट से कुएँ में धम्म कूद पड़े। वहाँ उन्हें बड़ा मनमोहक नील और गौर तेज का दर्शन हुआ। ये ही थे श्रीरंगीलाल जी, गोद में लिया और स्वतः ऊपर आ गये। कुएँ को घेरे हुए बहुत से लोग खड़े हैं, व्यासमिश्र जी अधीर हैं पर जैसे ही हितूलाल को रंगीलाल सहित देखा तो प्रसन्नता ने शोक सीमा को तोड़ दिया तत्पश्चात् वेदमंत्रोच्चारण के साथ प्रतिष्ठा की गई और श्रीनवरंगीलाल नाम रखा गया। सम्प्रति देवबन्द में आप विराजमान हैं।

१६ वर्ष की अल्पायु में श्री रुक्मिणी देवी के साथ हितू जी का पाणिग्रहण हुआ। जिसके फलस्वरूप श्री वनचंद्र जी, श्री कृष्ण चन्द्र जी, श्री गोपीनाथ जी ये ३ उत्तम सुत एवं साहिबदे नामक सुपुत्री हुई। आयु के ३२ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् स्वयं श्रीजी ने आपको एक बड़ी रसमयी आज्ञा की कि आप मेरी सेवा तथा निकुँजधाम के कलकेलि विलासों को जगत् में प्रकाशित करो। इस अभीष्ट आज्ञा को पाते ही आप तुरंत वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर दिये। नदी, वन, पर्वतों को पार करते हुए 'चटथावल ग्राम' की धरणी धन्य करने जब यहाँ तक पहुँचे, तो यहाँ के स्थानीय आत्मदेव ब्राह्मण को भी स्वप्नादेश हुआ कि आप

अपनी दोनों कन्याओं को हितूजी के हवाले कर दें यानी हितू जी के साथ इनके पीले हाथ कर दें तथा दहेज रूप में मेरा ये राधावल्लभ विग्रह प्रदान कर दें। इधर भी बस यही आदेश हुआ – "हितू ! आत्मदेव ब्राह्मण जो कहे, करें, इनकार न करना।"

प्रातः दोनों ने अपनी श्रद्धा निष्ठा का परिचय देते हुए श्रीजी का इच्छित कर्म कर डाला। हित जी दोनों कृष्ण दासी और मनोहरी दासी को साथ लिये राधा बल्लभ लाल के अत्यंत मनोहर चारू-दर्शनीय श्री विग्रह को बैलगाड़ी में पधराकर २ मास में अपनी यात्रा पूर्ण करते हुए, श्री यमुना जी के निकट 'मदनटेर' स्थल पर पहुँचे, जहाँ ८ श्लोकों में यमुनाष्टक द्वारा यमुना जी की स्तुति की। आपके कोमल व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आपके दर्शनार्थ ब्रजवासियों का तो मानो एक ताँता बँध गया। नरवाहन नामक एक जन ने आपको तीर फैंकने को कहा कि जहाँ तक तीर की पहुँच होगी, वह सब भूमि आपके अधिकार में होगी। ऐसी अनुश्रुति कि वह तीर सनसनाता हुआ चीरघाट तक पहुँचा, तब श्री हित जी महाराज ने वहीं रासमण्डल को प्रकाशित किया। आपकी गूढ़तम, दुरूह निकुँजोपासना श्रृंगार-रसोपासना बड़ी ही सरस, प्रशस्त और वन्दनीय है। आपके द्वारा प्रचलित लाड़ले राधावल्लभ लाल की ५ आरती ७ भोग की सेवा आज तक सुव्यवस्थित रूप से जारी है। आपके द्वारा रचित 'हित चतुरासी' आदि अत्यन्त अप्रतिम ग्रन्थ हैं, जिसमें आपकी गुरु श्रीलाड़ली जी की अन्तरंग, रसमयी, रहस्यमयी लीलाओं का उद्धरण प्राप्त होता है। श्री हरिराम व्यास जी का कहना है –

हुतो रस रसिकनि कौ आधार।
बिनु हरिबंसहि सरस रीति कौ कापे चलिहैं भार॥
कौ राधा दुलरावै गावै वचन सुनावै चार।
श्रीवृन्दावन की सहज माधुरी कहिहैं कौन उदार॥

(व्यास वाणी)

आपके द्वारा वृन्दावन में मानसरोवर, सेवाकुँज, रासमण्डल और वंशीवट इन ४ दिव्य स्थलियों का प्रकटीकरण हुआ।

आपका महाप्रयाण काल – वि० स० १६०९, आश्विन शुक्ल पक्ष, पूर्णिमा। आपके लीला प्रवेश के उपरांत ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचंद्र जी महाराज ने सेवा कार्य सँभाला और आपकी रसोपासना का बड़ा प्रखर प्रचार-प्रसार किया।

श्री ब्रज वृन्दावन के तीन ठाकुर ऐसे हैं जिनके साथ श्रीजी की गादी रूप में सेवा होती है।

१. बाँकेबिहारी जी
२. राधावल्लभ जी
३. राधारमण जी

अब देखिये 'श्री गोपाल भट्ट जी के राधारमण जी' को –

राधा रमण जी (श्री गोपाल भट्ट जी)

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु जी के बड़े अनुग्रह पात्र रहे। आपका जन्म श्री रंगम क्षेत्र के बेलगुंडि नामक गाँव में विक्रम संवत् १५५७, माघ मास कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि को हुआ। वेंकट भट्ट जी और श्रीमती सदम्बा जी को आपने, अपने माता-पिता बनने का सौभाग्य प्रदान किया। एक बार श्री चैतन्य महाप्रभु जी जब दक्षिण भारत में तीर्थाटन कर रहे थे तो आपके पिता श्री वैंकटभट्ट जी के अनुनय विनय करने पर महाप्रभु जी ने आप ही के घर को तीर्थ तुल्य बनाने का सौभाग्य दान दिया। उस समय आप अल्प वयस्क थे। मात्र ११ वर्ष की उम्र किन्तु आपने उस प्रथम दर्शन में ही महाप्रभु जी को सर्वस्व समर्पित कर दिया। उस समय महाप्रभु जी का अगाध स्नेह और दिव्योपदेश आपको प्राप्त हुआ।

चातुर्मास्य की अवधि जब पूर्ण हुई, तो आपने महाप्रभु जी के साथ जाने का आग्रह पकड़ लिया, किन्तु महाप्रभु जी ने उस समय आपको आज्ञा की कि अभी माता-पिता की सेवा करो, तदनन्तर वृन्दावन में रूप-सनातन की सन्निधि में चले जाना। अब तो अक्षरशः आज्ञा पालन होने लगा। माता-पिता के देहावसान के पश्चात् आप अपने को रोक न पाये और इस पावन भूमि वृन्दावन में रूप-सनातन की सन्निधि में आ गये। वृन्दावन जब आप आये तो उस समय आप अपने साथ शालिग्राम प्रभु को लाये, श्री मन्महाप्रभु जी के प्रिय पार्षदों में षड् गोस्वामियों में आपकी गणना हुई। आपकी विद्वत्ता की अलौकिक प्रतिभा किसी से अवर (कम) नहीं थी। आखिर श्री महाप्रभु जी के कृपापात्र वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् श्री प्रबोधानंद सरस्वती जी से आप शिक्षित हुए, ये आपके चाचा लगते थे। इनसे आपने न्याय, वेदान्त, व्याकरण, साहित्य, दर्शन अलंकारादि का तन्मयता पूर्वक अध्ययन किया था। नीलाचल में विराज रहे महाप्रभु जी को जब गोपाल भट्ट जी का आगमन सूचित हुआ, तो एक वैष्णव के द्वारा उन्होंने प्रभु प्रसादी तुलसीमाला योग पट्ट और बहिर्वास भेजा, जिसे पाकर महाप्रभु जी की महती अनुकम्पा की अनुभूति करते हुए गोपाल भट्ट जी गद्गद हो गये क्योंकि –

"मुख्यस्तु महत्कृपयैव भगवद्कृपालेशाद्वा"

(नारद भक्ति सूत्र)

गोपाल भट्ट जी के प्रथम सुसेव्य ठाकुर – श्री शालिग्राम प्रभु थे, जिन्हें ये गण्डकी नदी से लाए थे और बड़ी प्रीतिपूर्वक सेवा करते थे, किन्तु जब रूप गोस्वामी जी को गोविंददेव को लाड़-चाव लड़ाते देखते, सनातन गोस्वामी जी को मदनमोहन को लाड़ लड़ाते देखते एवं मधु पंडित को गोपीनाथ जी को लाड़ लड़ाते देखते तो अनायास ही आपका मन भी कह उठता कि मैं अपने शालिग्राम को कैसे लाड़ लड़ाऊँ? कैसे इनका श्रृंगार करूँ? कैसे वस्त्र

धारण कराऊँ? कैसे शयन कराऊँ? किधर मस्तिष्क करूँ, किधर चरण करूँ, पता नहीं किधर से ये सोते हैं, किधर से ये खाते हैं, किधर से देखते हैं, ऐसा सोचकर फिर आप निराश हो जाते। एक दिन एक भक्त सेठ वृन्दावन में आया और सब मंदिरों में श्री विग्रहों के लिए वस्त्र-आभूषण दे रहा था। जब वह गोपाल भट्ट जी को उनके ठाकुर जी के लिए वस्त्राभूषण देने लगा, तो गोपाल भट्ट जी कुछ नतमस्तक होकर विचार में पड़ गए कि मेरे प्रभु के तो, न हस्त हैं, न श्री चरण हैं, न ग्रीवा है, न कटि हैं ये तो गोलमटोल हैं। यदि मेरे प्रभु विग्रह रूप होते तो मैं भी इनको वस्त्र धारण कराता, सुन्दर-सुन्दर पत्रावलि करता, अब क्या गोलमटोल के श्रृंगार करूँ? रोज पीले चन्दन से पोत देते तो कढ़ी के पकोड़े सदृश प्रभु दिखाई पड़ते।

अतः आपने गायन किया –

झूलौ झूलौ मेरे गण्डकि नन्दन ।
जैसे कढ़ी पकोड़ी फोरयो ऐसे लिपट्यो चन्दन ॥
हाथ न पाँव नैन नहिं नासा ध्यानहिं होत आनन्दन ।
जालन्धर अरु वृन्दावल्लभ करत कोटि हौं वन्दन ॥

वस्त्राभूषण लेने से मना करते हैं, कहीं बेचारे सेठ को दुःख न हो जाय इसका भय है और यदि ले लेते तो प्रभु को धारण कैसे करायेंगे? किन्तु प्रभु का भी तो प्रण है –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

(गीता ४/११).

"जाकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥"

जब आप नामदेव के लिए ब्रह्मराक्षस में से प्रकट हो सकते हैं, प्रह्लाद के लिये खम्बे से प्रकट हो सकते हैं तो श्री गोपाल भट्ट जी के लिए शालिग्राम से आपका प्राकट्य कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं थी। एक बार पुनः निराशापूर्ण दृष्टि से आपने शालिग्राम की ओर देखा कि यदि ये वस्त्राभूषण मैं ले भी लूँगा तो आपको धारण कैसे कराऊँगा? जैसे ही उधर दृष्टि गई तो क्या देखते हैं – नीलोत्पल, नीलसरोरुह, नीलमणि, राधारमण जी जिनकी त्रिभंगी गति है। हाथ में वंशी लिए खड़े हैं, श्री मुख पर मधुर मुस्कान है, प्रेममयी चितवन है और गोपाल भट्ट जी की ओर कटाक्ष कर रहे हैं। मानो कह रहे हैं ले अब तो मुझे वस्त्र आभूषण धारण करा। अब तो झट से सेठ जी के हाथ से गुसाँई जी ने वस्त्राभूषण ले लिए और प्रभु को धारण कराकर श्रांतिरहित श्वास ली। सेवा प्राकट्य ग्रन्थानुसार संवत् १५९९ में उस शुभ दिवस को वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि थी, अतः अद्यावधि इसी तिथि को ठाकुर श्री राधारमण जी का प्राकट्योत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। श्री गोपाल भट्ट जी वृन्दावन वास करते हुए ६२ वर्ष तक श्री राधारमण जी की सेवा में

तत्पर रहे। आपकी सेवा-परिचर्या से प्रसन्न होकर स्वयं राधारमण प्रभु ने एक बार एक वणिक के पास जाकर आपको कर्ज से मुक्त किया। राधारमण जी का ये "द्वादश अँगुल का श्री विग्रह" पृष्ठ भाग से शालिग्राम जैसा ही लगता है।

राधा रमण जी की विचित्र विशेषता

भक्तों का ऐसा कथन है कि राधा रमण जी के दर्शन कर लेने से श्रीगोविन्ददेव जी, श्री गोपीनाथ जी और श्री मदनमोहन जी तीनों ठाकुरों का दर्शन लाभ मिल जाता है।

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जी बड़े दूरदर्शी थे, अतः आपने अपने प्रधान शिष्य गोपीनाथ दास जी, जोकि बड़े विरक्त वैष्णव संन्यासी थे, इनके अनुज सद्गृहस्थ दामोदर दास जी को दीक्षित करके श्री राधारमण लाल की समस्त सेवा-परिपाटी समझाकर सेवाकार्य का भार सौंप दिया। सम्प्रति समस्त गोस्वामीगण दामोदर दास जी के वंशजों में गोस्वामी कृष्णचन्द्र जी के मँझले सुत गोस्वामी "मुन्ना जी" सेवायत हैं। गोस्वामी श्री गोपालभट्ट जी महाराज के द्वारा उस समय चलाई गई अखण्ड भोग राग की व्यवस्था गोस्वामीगणों द्वारा आज तक सुचारू रूप से परम्परागत ढंग से चल रही है।

गोपीनाथ जी

श्री मधु गोस्वामी जी के गोपीनाथजी –

आपका निवास स्थान बंगाल प्रांत माना गया है। एक बार आपके मन में कृष्ण दर्शन की चटपटी लगी, अतः आप बंगाल से वृन्दावन आए क्योंकि आपने सुना था कि श्रीकृष्ण का कहना है –

"ब्रज तजि अनत न जैहों मोहे नन्द बाबा की आन"

ब्रज वृन्दावन ही मेरा एकमात्र ठिकाना है।

आज भी वृन्दावन में इस रंगीले-छबीले ठाकुर का दर्शन होता है। ये सुनकर कृष्ण प्राप्ति का निश्चय करके बंगाल को छोड़ वृन्दावन में आप पधारे और यहाँ आकर कृष्णान्वेषण करने लगे। कभी लता-वृक्षों से पूछते हैं –

कोथाय कृष्ण .... कोथाय कृष्ण। प्रेम की कसौटी विरह ने पागल कर दिया है मधु गोस्वामी जी को, कभी कहते हैं – "वो देखो कृष्ण, उस कदम्ब के वृक्ष पर बैठा अपनी वंशी से बात कर रहा है।" (दौड़े कदम्ब की ओर) अरे यहाँ से भी गायब हो गया। चारों ओर दृष्टिपात करते हुए सहसा बोले – "ओह ! अब यमुना में चला गया, अरे कृष्ण ! डूब जाएगा, लहरों से मत खेल, बाहर आ जा" पकड़ने को दौड़ते हैं। "केशव ! ओ माधव ! अरे ये तो, यहाँ से भी अन्तर्हित हो गया।" अब तो गोसाँई जी अवनि पर अनाथ की तरह गिर पड़े, कुछ क्षणों बाद एक हाथ से भूमि का सहारा लेकर उठे, ढूँढ़ना छोड़ दिया, पूछना आरम्भ किया,

'तुमी कोथाय कन्हाय भाय' जो भी सामने आता है, बस उसका हाथ पकड़ते हैं और कहते हैं "भैया ! वो नवनीत चोर कहाँ हैं ...? कहाँ है मेरा प्राणवल्लभ ...?" कोई किसी मन्दिर में भेजता, कोई किसी मन्दिर की ओर संकेत करता, जाते सर्वत्र, पर संतोष कहीं भी नहीं होता क्योंकि आप तो अपने ठाकुर से ढेर सारी प्रणयवार्ता करके उसे अपने अंक में देखना चाहते थे। उस उत्कट विरह में आपको धूप-ताप, क्षुधा, पिपासा का तो कभी भान ही नहीं होता था। एक दिन अगाध विरह के समुद्र में डूबे हुए आप वंशीवट के निकट यमुना के किनारे बैठे हुए कृष्ण को पुकार रहे थे। विरह की बहुत अगाधता है, यमुना जी की भी अगाधता कम नहीं है यमुना जी बढ़ रहीं हैं मानो कृष्ण विरह के समुद्र से संगम चाह रही हैं, यमुना की कगार विच्छिन्न होने लगी, सहसा वही ढाय गिरी जिस पर आप बैठे हुए थे। अनंत जल में आप छप्प से गिर पड़े और डूबने लगे, बस यही क्षण था श्री गोपीनाथ प्रभु के प्रकट होने का। प्रभु ने आपका अभीष्ट पूर्ण करते हुए आपको अपने अंक में ले लिया। उस कोमल, शीतल स्पर्श को पाकर आपके ...नेत्रों ने देखना चाहा कि ये दिव्य स्पर्श किसका है? नेत्र जब खुले तो पहिचान गये – "अरे ! ये तो वही है, जिसे मैं ढूँढ़ रहा था। वाह भाई ! मैं तो इस बात से अनभिज्ञ था कि तेरे मिलने के ढंग भी भिन्न-भिन्न हैं। किसी को यमुना में गिराकर मिलता है तो किसी को यमुना से निकालकर मिलता है।"

गोपीनाथ जी बोले – "मधु ! अब क्या चाहते हो? "

मधु – "प्रभो ! अभी भी संदेह है आपको? मुझे सदा आपकी इस मनोहर छवि का दर्शन मिलता रहे, ये नटवर वपु सदा मेरे नेत्रों के समक्ष बना रहे।"

सांत्वना देते हुए गोपीनाथ बोले – "ठीक है, आपकी इच्छा मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।" उसी समय गोपीनाथ जी विग्रह रूप में परिवर्तित हो गए और कहते हैं – "इसमें तुम्हें मेरा साक्षात् दर्शन होगा।" यद्यपि हम लोगोंके लिए तो वे सर्वानुग्रहकारक रूप से हैं किन्तु अधिकारी मधु गोस्वामी जी के लिए तो वे भक्तानुग्रहकारक, भक्त कृपाल प्रभु साक्षात् ही थे। लगभग ४० वर्ष तक आप वंशीवट के निकट मधु गोस्वामी जी के साथ उनकी झोंपड़ी में विराजे, तदनन्तर सन १५८९ में अकबर बादशाह के दरबारी खण्डेले राजा रायसल सेखावत ने आपके लिए लाल पत्थर का बड़ा मनोरम मन्दिर बनवाया, तब आप वहाँ विराजमान हुए किन्तु उन दिनों भारत मुगलों से आतंकित था, अतः आपको वृन्दावन से काम्यवन ले जाया गया, वहाँ १७४७ ई.में बंगाल प्रांत के जिला वर्धमान में राजा त्रिलोक चंद तथा रानी भानुमती ने गोपीनाथ जी के लिए एक भव्य मन्दिर बनवाया तब आप २८ वर्ष तक वहाँ भी विराजे किन्तु जब काम्यवन तक आतंक की पहुँच हो गई, तो आप जयपुर की धरा पवित्र करने आये। कामां तथा जयपुर के अतिरिक्त श्री गोपीनाथ जी के राजस्थान में सात मन्दिर और भी हैं। वर्तमान में आप जयपुर की धरा पर ही विराज रहे हैं, यहाँ श्री वृन्दावन में आपके मन्दिर के दो भाग हो गए, जिसमें से एक भाग में महाप्रभु चैतन्य देव विराज रहे हैं और दूसरे भाग में आपका प्रतिभूत विग्रह प्रतिष्ठित है।

अन्य भावुकों का ऐसा भी मत है कि वस्तुतः श्री गोपीनाथ जी का प्राकट्य श्री परमानन्द भट्टाचार्य जी के निमित्त हुआ था, बाद में अपने ही इस श्री विग्रह की सेवा का कार्यभार श्री मधु गोस्वामी जी को सौंपा था। सभी भाव सही है क्योंकि –

"भक्तियोगो बहुविधोमार्गैर्भामिनि भाव्यते"

(भा. ३/२९/७)

बस यहाँ भी यही हो रहा है। गोपीनाथ जी के विषय में भावुकों के भिन्न-भिन्न कथन हैं। कुछ भावुकों की यह भी मान्यता है कि सर्वप्रथम गोपीनाथ प्रभु को श्रीमन् महाप्रभुजी ने पुरी से वृन्दावन को आते समय मधु जी के गुरु श्री गदाधर जी को यह विग्रह दिखाया, आप इनकी बड़े लाड़-चाव से सेवा करते रहे। वृद्धावस्था में आपकी पृष्ठ पर कूबड़ निकल आया, असमर्थ होते हुए भी आप अपने ही हाथों से प्रभु की सेवा करते रहे। आपकी ये निष्ठा देखकर श्री गोपीनाथ जी पालती मारकर बैठ गये अतः श्री जगन्नाथपुरी में अभी तक "टोटा गोपीनाथ" के नाम से आप प्रख्यात हैं। आज अपने गुरुवत् ठाकुर की सेवा-अर्चना करने की तीव्र अभिलाषा मधु गोसाँई जी के मन में भी फूट पड़ी, तब आपकी इस प्रबल भावना से मन्त्र-मुग्ध हो श्री गोपीनाथ जी ने वंशीवट में आपको साक्षात् दर्शन दिये।

एक बार श्रीमन् नित्यानंद प्रभु की पत्नी, जान्हवी (जाह्न्वा) जी गोपीनाथ जी के दर्शन करने मन्दिर में गईं, तो दर्शन करते करते विचार करने लगीं, हमारे लाल जी तो बहुत उन्नत हैं, श्रीजी भी तनिक उन्नत होतीं तो यह जोड़ी और भी मन को भाती, तो मध्यरात्रि को गोपीनाथजी ने स्वप्नादेश किया कि मेरे सम प्रिया जी का स्वरूप आप पधराओ। ऐसी अनुश्रुति है कि जान्हवी जी ने एक बड़ी सुन्दर प्रतिमा प्रकाशित की, जिसमें वे स्वयं समाविष्ट हो गईं और निजपरिकर को आज्ञा की कि इसे मन्दिर में ठाकुर जी के साथ विराजमान कर दो। प्रथम तो पुजारी इसमें सहमत न हुए किन्तु तुरंत प्रभु ने आज्ञा की कि यह विग्रह मेरे वाम पार्श्व में तथा पहले वाला प्रियाजी का स्वरूप मेरे दक्षिण पार्श्व में विराजमान कर दो, अनुक्षण आज्ञा का पालन हुआ। तभी से मध्य में गोपीनाथ जी तथा वाम पार्श्व में श्री जान्हवी माँ, उनके निकट ही देवी विश्वेश्वरी जी तथा दक्षिण पार्श्व में छोटे स्वरूप में श्रीराधारानी, ललिताजी सहित विराजमान हैं, जो अपनी रूप माधुरी से भक्तों को प्रफुल्लित, आनंदित कर रही हैं।

मदनमोहन जी

श्री सनातन गोस्वामी जी के मदनमोहन जी –

बड़ा विस्तृत इतिहास है आपका, किस विषय को लेकर चर्चा करें यह समझ पाना भी दुष्कर हो रहा है।

अतिसंक्षिप्त एक अंश

षड्गोस्वामी ग्रंथाधार पर आपका अवतरण वि.सं. १५२२ में हुआ। अभी तो जीवन के कुछ ही क्षण निकले थे कि आपको सहज वैराग्य हो गया।

"संसार स्वाद सुख वांत ज्यों दुहु रूप-सनातन त्याग दियौ"

वमनवत् नाशवान अनित्य जगत् का त्याग आपने कर दिया। बंगाल प्रांतस्थ गौड़ देश के शासक हुसैनशाह के यहाँ आप उनके दबीर खास (प्रधान मंत्री) थे।

इस राज्यैश्वर्य का जो आपने प्रशंसनीय त्याग किया, ये बड़ा ही दुष्कर था, श्री गौरांग महाप्रभु जी की प्रेरणा से आपने वृन्दावन वास किया, किन्तु आपसे पूर्व आपके अनुज श्री रूप जी ने गृहत्याग किया, रूप जी के गृहत्याग के उपरान्त तो आपके लिए गृह में रहना एक संकट बन गया। अतः आपने प्रधानमंत्री पद भी त्याग दिया। जिसके परिणामस्वरूप हुसैन शाह ने आपको कारागार में बंद कर दिया, किन्तु उस कृष्णावेश को किसी कारागार में कैद करना असम्भव था, अपने सम्पूर्ण जीवन का अर्जित धन ७,००० अशर्फियाँ कारागार के अधीक्षक को दीं, उसने लोभ में आकर रात्रि में ही आपको गंगापार करा दिया। इसके बाद काशी पहुँचकर चंद्रशेखर वैद्य के ग्रह में श्रीमन् महाप्रभु जी से आपकी भेंट हुई और फिर महाप्रभु जी की आज्ञा से आपने वृन्दावन को गमन किया। संयोग की बात आप जब वृन्दावन पहुँचे उसके पूर्व ही श्री रूप जी नीलाचल प्रस्थान कर चुके थे, अतः परस्पर मिलन न हो पाया। कुछ दिन वृन्दावन की अवनि पवित्र करते रहे, फिर झारखंड होते हुए नीलाचल पहुंचे, वहाँ महाप्रभु जी की आज्ञा से आपने एक वर्ष पर्यन्त निवास किया और फिर पुनः वृन्दावन में आये। यहाँ आकर महाप्रभु जी के आदेशानुसार अनेकों विलुप्त तीर्थ स्थलों के जीर्णोद्धार के साथ-साथ बृहद् भागवतामृत, बृहद् वैष्णव तोषिणी, श्री लीलास्तव आदि अनेकों वैष्णव ग्रन्थों का प्रणयन किया।

एक दिन आपके साथ महावन में बड़ी रसमयी घटना घटी, भगवद् भजन में निमग्न आपने सहसा एक श्यामलोज्ज्वल, ललित लावण्य युक्त एक द्वादश वर्षीय बालक को देखा, जो आपकी ओर एक प्रबल प्रभावकारी मुस्कान फेंक रहा था। इस साक्षान्मन्मथ-मन्मथ की रुपमाधुरी ने आपको सुध-बुध रहित कर दिया था। अपनी अल्पकालिक स्फूर्ति कराकर वो तो न जाने कहाँ छुप गया? कहाँ अन्तर्हित हो गया? किन्तु आपका अरण्य में क्रन्दन प्रारम्भ

करा गया, नेत्रों से अविरल अश्रुपात होने लगा। मुख से मर्मस्पृष्ट चीख निकलने लगी – हा गोविन्द ! .... हा गोपाल ! .... हा माधव ! .... हा केशव, मूर्च्छित हो गिर पड़ते हैं। होश आता है, तो पुनः वही चीत्कार, हा ...प्राणनाथ ! ...हा प्राणवल्लभ ! ...ज्यादा नहीं केवल एक बार और दृष्टिगोचर हो जा और फिर से निर्बल निराश होकर भूमिष्ट हो जाते हैं। आज सम्पूर्ण वृन्दावन रेणु आपकी अश्रुधारा से अभिषिक्त हो गई। अश्रुपात करते करते निद्रा लग गयी तो उस तन्द्रावस्था में आपने देखा सौन्दर्य का समष्टि रूप वही नन्हा बालक बोला – "बाबा ! रो मत।" कोमल करों से अश्रुओं का प्रवाह रोकते हुए आज्ञा की – "मथुरा जा... वहाँ मैं श्री परशुराम चतुर्वेदी के घर में हूँ। मुझे वहाँ से ले आ" बस निद्राभंग हुई। प्रातः काल होते ही मथुरा की ओर दौड़े, मथुरा की एक-एक वीथि में जा-जाकर सबसे एक ही सवाल करते हैं। परशुराम चौबे का पावन गृह कहाँ है? किसी एक पुरवासी ने कहा – "परशुराम चौबे तो अब ना रहे पर उनकी वृद्धा गृहिणी अवश्य है, जा यहाँ से सीधौ चलौ जा सामने जो उच्च अट्टालिका दिखाई पड़ रही है, ये ही है वाको घर।" दौड़ते-लड़खड़ाते पहुँचे परशुराम चौबे के गृहद्वार पर और खड़े हो गये, क्योंकि सामने ही खड़े हैं मदनमोहन और मानो बड़े ध्यान से वृद्धा की बातें सुन रहे हैं, तो वृद्धा ऐसा क्या कह रही थी? वृद्धा का प्रलाप – "मदनमोहन ! मैं तो अब ज़रा से ग्रसित हो गई हूँ " किसी दिन मर जाऊँगी, पर मेरी एक चिंता को निवारण कर, मेरे बाद तोकू कौन लोरी गाय-गाय कै, हाथ फेर-फेर कै सुनावैगौ...? कौन उबटन लगाय कै स्नान करावैगौ...? कौन अपने हाथन सौं खिलावैगौ ...? " आप इस प्रणय रुदन में व्यवधान बनना नहीं चाहते हैं परन्तु उसकी समस्या का समाधान करने में समर्थ हैं। अतः बोल उठे – "मैया ! तू चिंता मतकर, मैं इसकी सब सेवा सुव्यवस्थित रूप से सम्भाल लूँगा, ला तू इसे मुझे दे दे।" वृद्धा वोली – "अरे बाबाजी ! तू अपनौ सर्वनाश क्यों करै?

जब ते ये मेरे घर आयौ, मेरौ तो सर्वनाश है गयौ, पहलै बहुत बड़ौ धन-धान्य ते संपन्न कुटुम्ब हतौ, अब तौ मैं अकेली ही रह गई। याते तो मोकू यही उपलब्धि भई है –कि इतने बड़े घर में एक याके और मेरे सिवाय कोई ना बचौ।" सनातन जी बोले – "मैया ! याके ऊर्णनाभि सदृश जाल में फँसकर मैं भी ऐसी ही दशा कूं प्राप्त है गयो हूँ, अब मेरे पास भी या लंगोटी के अतिरिक्त कछु नहीं है। और याते ज्यादा अब मेरौ ये कहा नाश करैगौ।" वृद्धा के द्वारा ली गई मदनमोहन सेवा निष्ठा की परीक्षा में आप सफल थे। अतः श्री मदनमोहन प्रभु लेकर आप वृन्दावन में आ गये। आपकी रहनी तो साक्षात् वैराग्य की मूर्ति थी, २-४ दिनों में कभी एक बार मधुकरी करते और सतत् भजनस्थ रहते पर अब मदनमोहन के लिए तो आप बड़े चिंतित रहने लगे। मधुकरी में आटा माँगकर लाते और कभी पाककार्य तो किया नहीं जैसी बनती अंगा-बाटी बनाकर भोग में रख देते, एक दिन मदनमोहन जी का कहना था – कि बाबा ! कम से कम इन सूखी बाटियों में नमक तो मिला दिया करो, अतः दूसरे दिवस आटे के साथ नमक भी माँगना पड़ा। नमक युक्त बाटियों का जब भोग रखा तो पुनः श्री मदनमोहन जी ने कहा – "बाबा ! थोड़ा-सा घृत और पड़ जाय तो ये आराम से सुख देते

हुए गले से उतर जाय।" सनातन जी बोले – "प्रभु ! आप कहो तो मैं अपनी वैराग्य वृत्ति का भी उल्लंघन कर दूँ किन्तु घृत मुझे कोई याचना करने पर भी देने को तैयार न होगा और फिर भला यहाँ इस निर्जन वन में घृत कहाँ से आया? भिक्षा का अन्न भी मथुरा जाकर पाता हूँ।" करुणालय प्रभु ने अपनी व्यवस्था के विषय में स्वयं विचार किया। अपनी व्यवस्था का तो ब्याज मात्र था, भला जगदाधार जगद् नियंता, जगदीश्वर को किस वस्तु का अभाव? वस्तुतः आपका लक्ष्य सनातन जी की कीर्ति पताका को प्रकाशित करना था।

अतः कुछ विचित्र चरित्र किया –

उन दिनों यमुना के अगाध जल में जहाज द्वारा व्यापार हुआ करता था भा.१०/६/८ अगाधतोयहृदनी –

हृद माने पाताल तक जिस जल का सम्बन्ध हो जाता है। प्राचीन काल में यमुना जी में अनेकों हृद थे, हृद से नदी की अगाधता सूचित होती है, नदी में जो उत्ताल लहरें उठती थीं, उनसे सारा ब्रज आर्द्र हो जाता था और ऐसी सुन्दर-सुन्दर पुष्पित सुगन्धित हरी-हरी कोमल लताओं की सघनता थी कि लताओं की उस सघनता में सूर्य की किरण उस आर्द्र भूमि का स्पर्श भी करने में समर्थ नहीं थीं। "असूर्यं पश्याः राजदारा" ऐसी ऊँची अट्टालिकाओं में राजमहिषियाँ रहती थीं कि वे सूर्य को देख नहीं सकती थीं, वैसे ही ब्रजगोपियाँ थीं, लताओं की अट्टालिका में 'असूर्यं पश्याः थीं।'

धन्य है यह सघन वृन्दावन, जहाँ सूर्य की किरणें ब्रज की धरा का स्पर्श नहीं कर पाती थीं। ऐसा था वह कृष्ण कालीन ब्रज, जो आज मात्र कल्पना बनकर रह गया है, तो यह थोड़ी हृद शब्द पर चर्चा बढ़ गयी। दैव इच्छा से मुल्तान के निवासी रामदास कपूर नामक व्यापारी का माल से लदालद जहाज सनातन जी की भजन स्थली द्वादशादित्य टीला कालीदह के निकट ही चक्रवात से चक्कर काटने लगा। सघन वन में कोई दिखाई भी नहीं दे रहा है जिससे जहाज रक्षित करने की प्रार्थना कर सकूँ, अचानक कुछ बच्चे खेलते हुए दिखाई पड़े, उनमें से एक पीताम्बरधारी सुन्दर सा बालक बोला – "अरे व्यापारी ! सनातन बाबा की दुहाई दे, उनका जयघोष कर अपने आप जहाज रक्षित ह्वै जायगो।" अब तो, बचाओ-बचाओ के स्थान पर सनातन बाबा की जै ! सनातन बाबा की जै ! सनातन बाबा की जय होने लगी, थोड़ी देर में अपने आप डगमगाता हुआ अस्थिर जहाज सुचारू रूप से चलने लगा। इस आर्द्र चमत्कार को देखकर व्यापारी जहाज से कूदा, और गया बालक के निकट पूछा – "बालक ! कौन हैं वे सनातन बाबा? कहाँ रहते हैं?" अपार प्रसन्नता है मुख पर, जल्दी-बाजी में अभी श्वास भी पूर्णरूप से नहीं ली है, हाँफते हुए – "अरे लाला ! जल्दी सनातन बाबा के पास किसी तरह से पहुँचा दे।" मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए बालक का कहना था कि वे ऊपर टीले पर भजन कर रहे हैं। सुनते ही क्षण भर भी ज्यादा था ऊपर पहुँचने में, जाकर प्रणाम किया, "बाबा ! आपकी कृपा से डूबते हुए जहाज सहित मेरी रक्षा हो गयी, अब आप मेरे योग्य कोई सेवा बताओ ...।" सनातन जी को तो कुछ पता भी नहीं है

उसकी भाषा, भाव समझने में भी कठिनाई हो रही है। आखिर यह कह क्या रहा है? और कहना क्या चाहता है ...? यह जानने के लिए आपने पूछा – "तुम्हें इस निर्जन वन में मेरे इस एकमात्र निवास स्थान का पता किसने दिया? " व्यापारी ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया बस सुनते ही सनातन जी की स्थिति अवर्णनीय हो गई, बोले – "जिनकी कृपा से तू सुरक्षित हुआ है, उनके लिए एक मन्दिर का निर्माण करा और उनके भोग-राग की व्यवस्था कर", तब सन् १५९२ के आसपास व्यापारी द्वारा इस लाल पत्थर वाले भव्य मन्दिर का निर्माण हुआ। ऐसी किंवदन्ती है कि औरंगजेब के द्वारा यह मन्दिर ध्वस्त किया गया तब पुनः महाराज गुणानंद ने पुनर्निर्माण कराया। श्री मदन मोहन जी का प्राकट्य सुनकर उड़ीसा के राजा प्रतापरूद्र के सुपुत्र श्री पुरुषोत्तमजाना ने बड़ी श्रद्धा सहित दो विग्रहों को पुरी धाम से वृन्दावन भेजा, तब श्री मदनमोहन जी ने निजी पुजारी को स्वप्नादेश किया कि पुरी से जो दो विग्रह पधारे हैं, उनमें उन्नत विग्रह वाली तो ललिता जी हैं तथा वामन विग्रह मेरी प्राणाधारा राधा हैं। अतः राधा विग्रह को मेरे वाम पार्श्व में तथा ललिता विग्रह को दक्षिण पार्श्व में विराजमान करो। आज्ञानुसार आज भी मध्यस्थ मदनमोहन जी के वाम भाग में राधारानी, दाहिने भाग में ललिता जी विराजित हैं। प्राचीन मन्दिर के निकट ही पश्चिम की ओर श्री सनातन गोस्वामी की भजन स्थली, पावन समाधि व ग्रन्थ समाधि अत्यंत मनोरम व दर्शनीय हैं। वर्तमान में तो आपके सेव्य श्री मदन मोहन जी करौली में अपनी अलौकिक रूपमाधुरी से वहाँ के भक्तसमूह को आनंदित कर रहे हैं।

गोविन्द देव जी

श्री रूप गोस्वामी जी के गोविन्द देव जी –

सत्य ही तो कहा परशुराम देवाचार्य जी ने –

संत हरि के बाप हैं संत हरी के पूत।
परशुराम जो संत न होते रामहू जाते अऊत॥

बार-बार इस पवित्र धरा के म्लान करने का प्रयास किया गया। कभी तो यहाँ के देवालयों के उन्मूलन द्वारा तो कभी दिव्य श्री विग्रहों पर कठोर आघात द्वारा किन्तु महत् जनों का अवतरण भी दुरात्माओं के दुष्प्रयास के दमन हेतु यहाँ होता रहा है। उन्हीं महान आत्माओं में थे आप (श्री रूप गोस्वामी जी) १५ वीं शताव्दी के अंतर्गत आपके द्वारा चतुर्दश वर्षीय गोविन्द देव जी प्रभु का प्राकट्य होना सुनिश्चित था।

शाण्डिल्य मुनि के आदेशानुसार प्रभु के धामागमन के उपरांत श्री बज्रनाभ जी द्वारा अनेकों लुप्त लीलास्थलियों का व अनेकों अर्चावतारों का प्रकटीकरण हुआ। बज्रनाभ जी की माता ऊषा जी जिन्होंने श्रीकृष्ण का साक्षात् दर्शन किया था, उनका कथन था कि श्रीमदनमोहन जी के श्री चरण, श्रीगोपीनाथ जी का वक्षस्थल, श्रीगोविन्ददेव जी का

मुखारविंद भगवान् श्रीकृष्ण से पूर्णतः मिलता है तो ये वे ही गोविन्ददेव जी हैं। यह श्री विग्रह पौने पाँच हजार वर्ष पूर्व द्वापरांत में श्री कृष्ण के प्रपौत्र श्री बज्रनाभ जी के द्वारा श्री वृन्दावन में पधराया गया था और कितनी ही बार आततायियों के आक्रमण से भूमिगत हुआ। ५०० वर्ष पूर्व श्री रूप गोस्वामी जी के द्वारा आपका प्राकट्य हुआ।

बात कुछ इस प्रकार है – यवनों के अत्याचार काल में आप भू-गर्भस्थ हो गये और दीर्घकाल तक भूमिगत रहे एक दिन जनता जनार्दन पर आपका वात्सल्य उमड़ा और आपने श्री रूप गोस्वामी जी को ही इस अनुपम कार्य का अधिकारी समझा। अर्द्ध रात्रि को स्वप्नानुरोध किया, गोविन्द देव – "रूप बाबा, अरे रूप बाबा ! अरे बाबा ! मैं यहाँ गोमा टीला के नीचे दब्यौ पड़ौ हूँ। प्रतिदिन एक गैया आयकै मोकूं अपनी अमृत तुल्य दुग्ध धार सौं पोषित करै, अब तुम मोकूं यहाँ सौं निकाल के मेरी सेवा करौ और या सेवा परिपाटी कू बढ़ाऔ।" बस इतना सा ही आदेश करके वह वात्सल्य सिंधु ललित लाल स्वप्न में ही पता नहीं कहाँ छुप गया, गायब हो गया या चला गया। तन्द्रा का तार टूटा जाग्रतावस्था को प्राप्त हुए, स्वप्न भी स्मरण में था, अरे ! आज 'माघ शुक्ल पंचमी' है। कुछ ब्रजवासियों को आपने एकत्रित किया, सारा स्वप्न कह सुनाया, सुनते ही दौड़े सब इधर-उधर कोई कुदाल लाया, कोई छबरा लाया और खनन कार्य प्रारम्भ कर दिया, आसपास की सारी भूमि दुग्ध धार से आर्द्र हो चुकी थी, सभी ब्रजवासियों को इस बात से बड़ा विस्मय था। साथ ही मन में बड़ी उत्सुकता थी कि न जाने कौन सी दिव्य निधि प्रकट होने वाली है कुछ ही समय में त्रिभुवन मोहन अपनी रूपमाधुरी से समस्त ब्रजवासी जनों को प्रफुल्लित करते हुए प्रकटे, अब तो चारों ओर से "बोल गोविन्द देव जी की जय – गोविन्द देव जी की जय" यही जयघोष कानों का प्रिय विषय बन गया था।

ये श्रीगोविन्द देव ही वृन्दावन के ईश्वर, राजराजेश्वर वृन्दावनेश्वर हुए। राजा प्रताप रूद्र के दत्तक पुत्र श्री पुरुषोत्तम जाना को श्रीजी ने स्वप्नादेश किया कि पुरीधाम में चक्रबेड़ नामक स्थान पर मेरे विग्रह को लक्ष्मी जी की मान्यता देकर जन समुदाय गलत भ्रान्ति में है, मैं तो ब्रजेन्द्रनंदन कृष्ण की प्राणवल्लभा राधा हूँ, गोविन्द देव के प्रकट होने के इसी स्वर्णिम क्षण के लिए प्रतीक्षित थीं, अब वे प्रकट हो गये हैं; अतः अब मुझे उन्हीं के निकट भेज दिया जाय। अनुक्षण आदेश का पालन हुआ। श्रीजी के सानिध्य से तो आपकी कीर्ति का और भी विस्तार हुआ, नाम पड़ा – श्रीराधा गोविन्द देव। १५९० ई० में श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्य जयपुर के राजा मानसिंह ने लाल पत्थरों द्वारा सात मंजिल का एक बृहद् भवन बनवाया। जिस समय मन्दिर, मूर्ति भंजक औरंगजेब के अत्याचार की आँधी ब्रज में आई, ध्वंसकारियों द्वारा मन्दिर का ऊपरी भाग ध्वस्त हो गया | १६७० ई० में औरंगजेब द्वारा इस मन्दिर का विध्वंस हुआ। ३ मंजिलें तोड़ दी गयीं, किन्तु मन्दिर ध्वंस होने से पूर्व ही श्रीगोविन्ददेव जी जयपुर को प्रस्थान कर चुके थे। सं.१८०५ वि. में गौड़ीय वैष्णवों द्वारा

विग्रह प्रतिष्ठित हुआ। नन्दकुमार वसु बंगाली वैष्णव द्वारा सन् १८८७ वि. में मन्दिर निर्माण हुआ सम्प्रति विग्रह दर्शन वहीं होता है।

वर्तमान में आप जयपुर में विराजमान हैं। आपके सौंदर्य से चकित विस्मित होकर रूप गोस्वामी जी कहते हैं।

स्मेरा भंगीत्रय परिचितां साचिविस्तीर्ण
दृष्टिं वंशी न्यस्ताधर किशलयामुज्ज्लांचन्द्रकेण ।
गोविन्दाख्यां हरितनुमितः केशितीर्थोपकण्ठे
मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे ! बंधुसंगेऽस्तिरंगः ॥

"अरे भाई ! यदि तुम्हारी गृह में थोड़ी सी भी आसक्ति हो, तो केशीघाट के निकटवर्ती ईषद् हास्य युक्त, ललित त्रिभंग मधुर बंक अवलोकन तथा जिनके रक्त अधरों पर बंशी सुशोभित है, मयूर पंख द्वारा अनन्त सौंदर्य प्रसारित कर रहे हैं, ऐसे इस गोविन्द देव का दर्शन मत करना, यदि ये उत्तम भूल की तो तुम्हारी घर से तो आसक्ति हट जायेगी और फिर अनायास मन इनकी ओर आकृष्ट होगा।"

आपके इस कथन का आशय – "यदि सांसारिक विकट संकटों से उन्मुक्त होना चाहते हो तो अवश्यमेव इन गोविन्द देव जी के दर्शन करो।" जनश्रुति है कि गत २७० वर्षों से आप जयपुर में विराजमान हैं। श्री रूप गोस्वामी जी द्वारा विरचित उज्ज्वल नीलमणि, भक्तिरसामृत सिंधु जैसे भक्तिमय वैष्णव ग्रन्थ निश्चित ही उनकी अद्भुत अलौकिक आभा-प्रतिभा को सूचित करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय ६ पार्षदों में से श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी इसी मन्दिर में निवास करते हुए भागवत पाठ करते थे; जिस पीठ पर विराजकर आप पाठ करते थे, वह आपके पट्ट शिष्य श्री गदाधर भट्ट जी को प्राप्त हुआ जो कि श्री राधावल्लभ मन्दिर के समक्ष भट्ट जी के मन्दिर में सुसज्जित सुरक्षित रखा हुआ है। वृन्दावन का तो कण-कण कृष्ण लीला से पूरित है, यदि वृन्दावन के केवल मंदिरों के नाम का भी उल्लेख करें, तो एक नूतन कोष तैयार हो जायेगा और यदि उनकी लीलाओं का वर्णन किया जाय तो महावेद बन जाय और कहो तो फिर भी सम्पूर्णलीलाओं का समावेश उसमें न हो पाये। अतः अब हम सभी लीलास्थलियों को प्रणाम करते हुए आगे बढ़ेंगे।

राधा दामोदर जी (जीव गोस्वामी)

श्री पूज्य पाद् श्री रूप गोस्वामी जी महाराज के अनन्य कृपा पात्र शिष्य थे – श्रीजीव गोस्वामी जी महाराज। आपका एक अलौकिक असाधारण वैदुष्य था, जिससे आपको विद्वत् वैष्णव राज्य का सिरमौर कहा। आपके द्वारा गोपाल चम्पू, हरिनामामृत व्याकरण, सर्व सम्वादिनी टीका, षट् सन्दर्भ आदि ग्रन्थ ही आपका परिचय कराने में समर्थ हैं। ९० वर्ष की आयु में आपने ४ लाख श्लोक लिखे, अपने गुरु श्री रूपगोस्वामी जी

से आपने श्रीराधा दामोदर का विग्रह प्राप्त किया था। १२५ वर्ष तक प्रभु ने आपकी सेवा ली तत्पश्चात् श्रीराधा दामोदर जी जयपुर आ गये, मन्दिर में सनातन जी द्वारा दी गयी गिरिराज शिला विराजमान है, जिसकी परिक्रमा करने से अनायास गिरिराज परिक्रमा का फल प्राप्त होता है। इस शिला में ठाकुर जी की वंशी, लकुट, श्री चरण एवं गौ का खुर ये ४ चिन्ह सुस्पष्ट व दर्शनीय हैं, इसके अतिरिक्त राधादामोदर जी के मन्दिर में अन्य सिद्ध ठाकुर भी विराजमान हैं, जयदेव जी के राधा-माधव जी, कविराज कृष्ण दास जी के राधा वृन्दावन चन्द्र जी, भूगर्भ जी के छैल चिकनियाँ जी।

राधा दामोदर मन्दिर के अलावा भी वृन्दावन में आचार्यों के प्रसिद्ध ठाकुर विराजमान हैं जैसे –

श्यामानन्द जी के श्री राधा श्यामसुन्दर जी, श्री लोकनाथ गोस्वामी जी के श्री राधा विनोद जी, श्री हरिराम व्यास जी के – श्री युगल किशोर जी, भक्तिमती मीरा बाई के गिरिधर गोपाल, लाला बाबू (कृष्ण चंद्र) के सुसेव्य श्री राधा कृष्णचंद्र जी।

ब्रज चौरासी कोस में वृन्दा विपिन का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, जैसे श्री राधा-माधव की लीलाएँ हुई हैं। इसकी सम्पूर्ण स्थलियों का वर्णन विस्तारभय से सम्भव नहीं है लेकिन जहाँ से जिस लीला स्थली का स्पर्श किया जाय बस मन वहीं चिपक जाता है, ऐसा रस का पावन क्षेत्र है वृन्दावन। वृन्दावन में आज यद्यपि वन भले ही न दिखाई देता हो परन्तु भगवान् के रासरस का रसास्वादन सारे विश्व के भक्तजन करते रहते हैं।
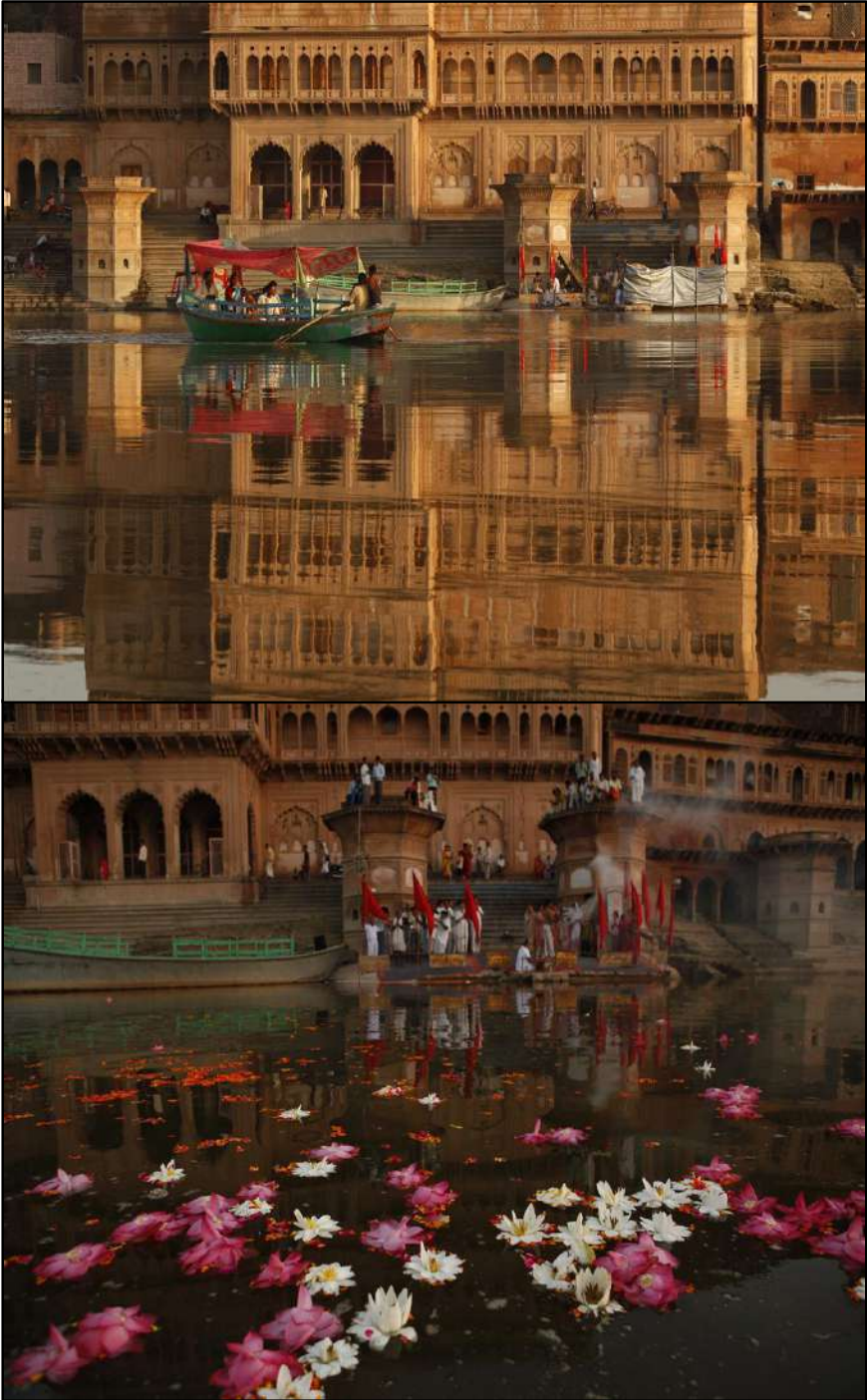
केशी घाट वृन्दावन – श्री यमुना जी पूजन
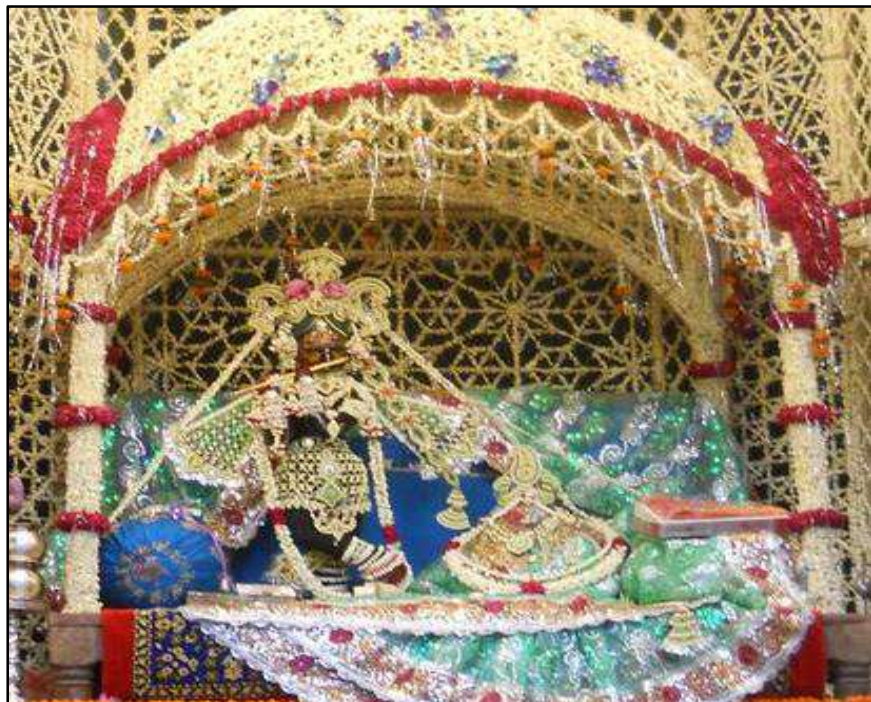
श्री राधा वल्लभ लाल जी

श्री मदन मोहन मंदिर एवं श्री सनातन गोस्वामी समाधि

श्री गोविन्ददेव जी मंदिर एवं श्री रंगजी मंदिर

श्री राधा गोपीनाथ जी
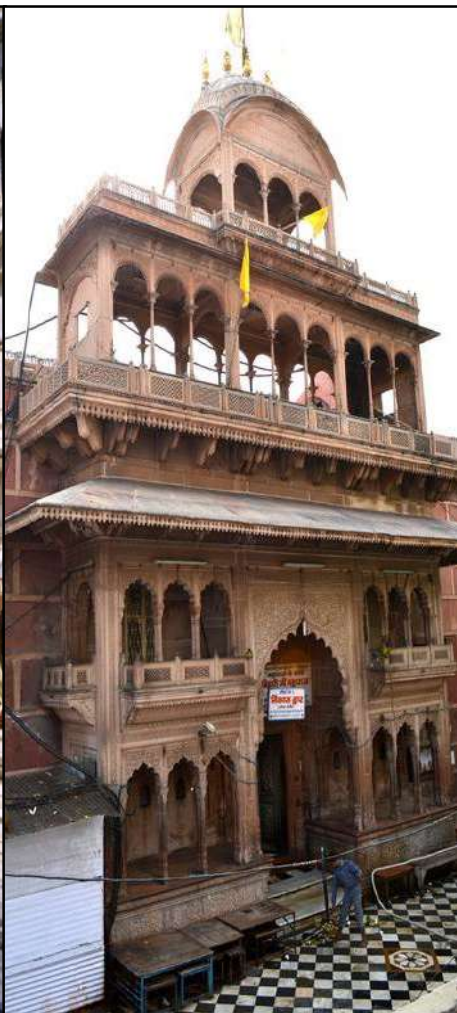
श्री कृष्ण-बलराम मंदिर (ISKCON) एवं श्री बाँके बिहारी मंदिर

श्री गोपेश्वर महादेव एवं सेवा कुञ्ज
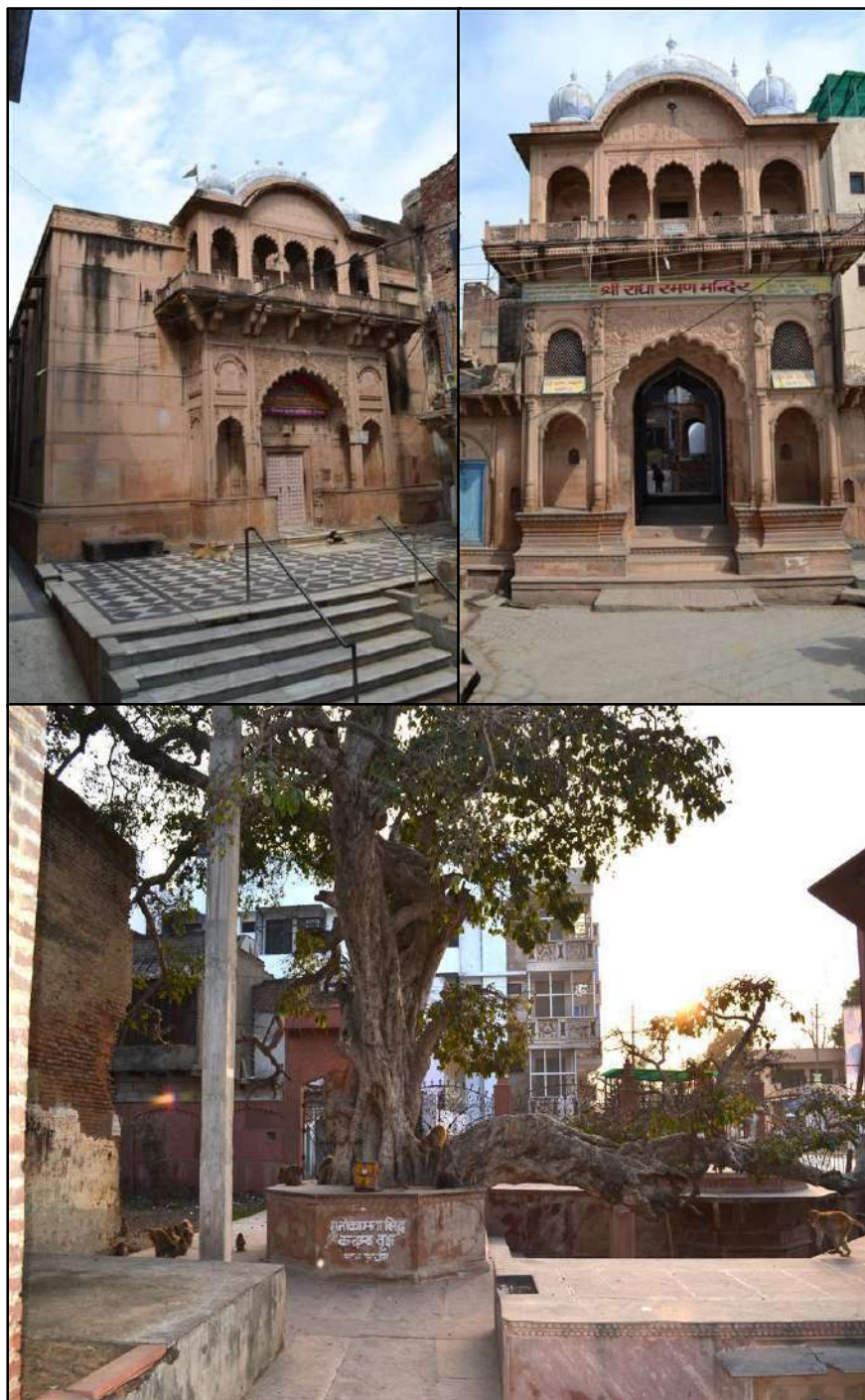
श्री राधारमण मंदिर एवं कालीदह

टटिया स्थान एवं वंसीवट

इमली तला एवं निधि वन

अध्याय – ४३

भतरोड़

श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों सहित अशोक वन में पहुँचे। छाक न पहुँचने पर एक समय गोचारण करते-करते समस्त ग्वाल-बाल बुभुक्षा शान्ति हेतु अपने प्राण प्रिय सखा श्रीकृष्ण से ही कहते। उन्होंने ऐसे ही एक अवसर पर वृन्दावन से मथुरा की ओर के सघन वन में भूख से व्याकुल हो श्रीकृष्ण से कहा कि भैया अब तो ना जाने प्राण ही निकल जायेंगे, कहीं से भोजन का प्रबंध करो। इसपर श्री कृष्ण ने कहा कि पास ही में ब्राह्मण लोग बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं, वहाँ जा कर उन से भोजन माँग लाओ। भोजन लेने सखा वहाँ गए तो परन्तु श्रीकृष्ण महिमा से अनभिज्ञ उन यज्ञ प्रेमियों ने उन्हें निराश ही लौटने को विवश कर दिया और श्री कृष्ण को आप बीती स्थिति से अवगत करा दिया, पुनः श्रीकृष्ण ने कहा –“तुम सब लोग यज्ञ पत्नियों के समीप जाओ, वे अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगी।” श्रीकृष्ण रूप सुधा रस माधुरी का श्रवण कर चुकी उन यज्ञ पत्नियों ने अपने पतियों के विरोध के पश्चात् भी विविध रसमय खाद्य व्यंजनों को लेकर श्रीकृष्ण दर्शन लालसा से स्वयं सखाओं के साथ जाने का संकल्प किया। श्री जीव गोस्वामी जी ने कहा है कि उन यज्ञ पत्नियों को मथुरा में ही वन्य-पुष्प फल विक्रयणियों द्वारा कृष्ण लीला सुनने से कृष्ण रति प्राप्त हो गई थी। श्रवण मात्र से जातानुरागा रति उत्पन्न हो गई। जब श्रीकृष्ण-बलराम को देखती हैं तो अपनी सुधबुध खो बैठती हैं। श्री कृष्ण बोले – “हे देवियो ! तुम्हारी दर्शाभिलाषा पूर्ण हुई अब तुम लौट जाओ।” जिससे विप्र गण यज्ञ सम्पन्न कर सकें परन्तु ऐसी कौन सी अभागिन होगी जो श्रीकृष्ण माधुरी को पाकर लौट जाने को उद्यत होगी,

श्रीकृष्ण बोले –

युष्माकं तु प्रभावेण पतयो वो द्विजातयः ।
सद्यो यज्ञफलं प्राप्य युष्माभिः सह निर्मलाः ॥
गमिष्यंति परं धाम गोलोकं प्रकृतेः परम् ।
अथ नत्वा हरिं सर्वा आजग्मुर्यज्ञमण्डले ॥

(ग.सं.मा.खं.२१/१८,१९)

“तुम्हारी निर्मला भक्ति के प्रभाव से तुम्हारे ब्राह्मण पति भी तुम्हारे साथ प्रकृति से परे मेरे नित्य धाम गोलोक को प्राप्त हो जायेंगे, जाओ अब तुम लौट जाओ।” कृष्णाज्ञा से अवाञ्छित

प्रत्यागमन जब हुआ तो घरों में आकर उन्होंने देखा, उनके पति स्वयं को धिक्कार रहे हैं। कृष्ण दर्शन लब्ध गोपिकाओं के अलौकिक तेज से अभिभूत हो उनके पति अपने भाग्य को कोसने लगे, जो श्रीकृष्ण दर्शन व उनकी सेवा से वंचित रह गए। ऐसी पावन लीला का साक्षी भतरोड़ अपनी प्राचीनता को इंगित करता हुआ भक्तों को दर्शनानन्द दे रहा है।

ग्वाल बालों की क्षुधा या भोजन की अप्राप्ति के मूल में यज्ञ पत्नियों पर कृपा करना ही मूल कारण था।

ततो यज्ञपत्नीस्थल (भतरोड़) प्रार्थना मन्त्र :-

ब्रह्मयज्ञाय तीर्थाय यज्ञपत्नीकृताय च ।
यज्ञपत्नीमनोरम्य सुस्थलाय नमोऽस्तु ते ॥

"हे ब्रह्म यज्ञ रूप तीर्थ ! आप यज्ञ पत्नियों के द्वारा निर्मित हैं और उन्हीं से रमणीक हैं, ऐसे सुन्दर स्थल को नमस्कार है।"
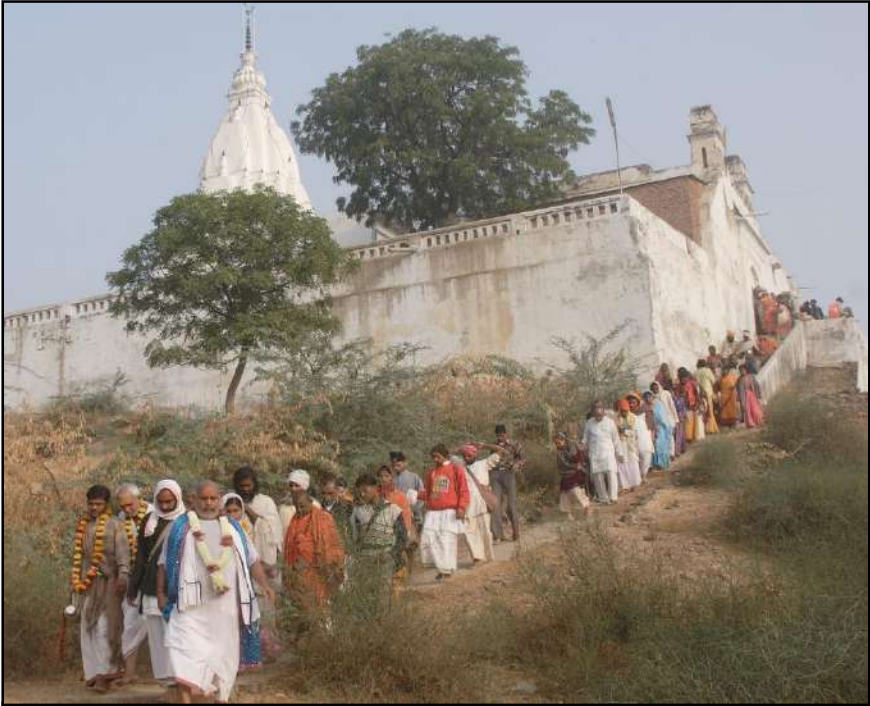
श्री भतरोड़ मंदिर

अध्याय – ४४

अक्रूर घाट

ब्रजोन्मादिनी ब्रज गोपियों व गोप कुमारों के परम प्रिय श्रीकृष्ण चन्द्र को कंस के आदेश पर अक्रूर जी लेने के लिए ब्रज पहुँचे और उन्हें मथुरा ले जाने की बात कही तो जैसे सभी ब्रजवासी प्राणहीन हो गए हों, उन्हें लाख ढाढ़स दिलाया गया परन्तु प्राण नाथ के बिना प्राण कहाँ रहेंगे। श्रीकृष्ण को ले जाने पर मूर्च्छित ब्रजवासी तो उनकी प्रतीक्षा में समय व्यतीत करते रहे, उधर अक्रूर जी श्रीकृष्ण को लेकर पतितपावनी श्री यमुना कूल पहुँच कर स्नानोद्यत हुए और कालिंदी में प्रवेश किया तो आश्चर्यचकित हो क्या देखते हैं कि दोनों भाई बलराम-कृष्ण यमुना जल में दिखाई दे रहे हैं। उधर रथ की ओर झाँकते हैं तो वहाँ भी श्रीकृष्ण रथासीन हैं, भ्रम समझकर पुनः डुबकी लगाई तो फिर देखा श्रीकृष्ण भगवान् जल में ही हैं। सहस्र मुख शेषशैय्या पर वे लेटे हुए हैं, सारा रहस्य समझकर अक्रूर जी भगवान् की स्तुति करने लगे –

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥

(भा.१०/४०/२१)

यही स्थली अक्रूर घाट के नाम से प्रसिद्ध हुई।

ततो अक्रूरघाटस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

विष्णुलोकप्रदस्तीर्थं मुक्ताक्रूरप्रदायिने।
कृष्णेक्षणप्रसादाय नमस्ते विष्णुरूपिणे॥

(ब्र.भ.वि.)

अक्रूर जी को मुक्ति प्रदान करने वाले, हे विष्णु लोक प्रद अक्रूर तीर्थ ! हे विष्णु स्वरूप! श्रीकृष्ण दर्शन व उनकी प्रसन्नता के निमित्त आपको नमस्कार है।

लोहवन

यहाँ की जो सबसे प्रसिद्ध लीला है, वो यह है कि इस स्थान पर जरासंध हारा था। उसने मथुरा पर आक्रमण किया था। मथुरा के बाहर यहाँ पर उसका कृष्ण-बलराम के साथ युद्ध हुआ था। सूरदास जी ने लिखा है –

श्याम बलराम कंस जब मारयो ।
सुनि जरासंध वृत्तांत अस सुता ते ।
युद्ध हित कटक आपनो हंकारयो ।
जोरि दल प्रबल सो चल्यो मधुपुरी ।
सुन्यो भगवान जब निकट आयो ।

श्रीकृष्ण ने सुना कि जरासंध निकट आ गया है तो उस नगर के बाहर दोनों भाई आये और युद्ध शुरू हुआ जिसमें श्रीकृष्ण की विजय हुई। इस स्थल को ब्रजवासी लोग अपनी नाम संज्ञा से कुछ और कहते हैं किन्तु इसका वास्तविक नाम जरासंध पराजय स्थल है अथवा इस कुण्ड को सूर्य कुण्ड भी कहते हैं।

लोहवन में जो काली सी मूर्ति है वह लोहजन्घ ऋषि की है। बहुत से लोग इसे लोहासुर कहते हैं। यह गलत है क्योंकि लोहवन का नाम लोहजन्घान ऋषि के नाम पर रखा गया है। उन्होंने यहाँ ब्रज प्राप्ति के लिए तप किया था। बहुत से वन ऋषियों के नाम पर हैं। जैसे – महावन महा नाम के ऋषि के नाम पर है, लोधांग ऋषि के नाम पर लोधोली गाँव है, मार्कंडेय ऋषि के नाम पर माड़व गाँव है।

ततो लोहवन प्रार्थना मन्त्र (वायु पुराण) :-

लोहजंघानसम्भूत कलाकाष्ठास्वरूपिणे ।
सर्ववाधाविमुक्ताय नमस्ते लोहसंज्ञके ॥

लोहजन्घान ऋषि से उत्पन्न, कलाओं की पराकाष्ठा रूप, सभी बाधाओं से मुक्त होने के लिए आपको नमस्कार है।

ततो जरासंधाक्षौहिणीपराजयस्थान प्रार्थना मन्त्र :-

कृष्णविजयिने तुभ्यं सूर्यकुण्डसमाह्वय ।
नमस्ते तीर्थराजाय सर्वकल्मषनाशने ॥

(ब्र.भ.वि.)

कृष्ण की विजय वाले सूर्य कुण्ड नामक तीर्थराज ! आपको नमस्कार है। आप सभी कल्मषों का नाश करते हैं। यह स्थल महाभारत की लीलाओं को ब्रज से जोड़ता है और यही अग्रिम द्वारका आदि लीलाओं का बीज है।

लोहजंघ ऋषि

ततो देवाः समाजग्मुः लोहजंघतपस्थलं ।
लोहजंघ ऋषिर्नाम्ना तपश्चक्रेति दीर्घकम् ॥
चतुर्विंशभवैर्वर्षैः कृष्णदर्शनमाचरत् ।
वरदानं समालभ्य वैकुण्ठमगमत्पदम् ॥
लोहजंघ ऋषेर्मूर्त्ति स्थापयेयुः सुरानघाः ।
ऋषेस्तु दर्शनादेव मुक्तिमागी भवेन्नरः ॥

(रुद्रयामल)

ततो लोहजंघ ऋषिमूर्ति प्रार्थना मन्त्र :-

लोहजंघ ऋषे तुभ्यं नमामि परमेश्वर ।
विनाशाय यमालोकं सर्वदा कुरु मङ्गलम् ॥
लोहपात्रे घृतं धृत्वा दीपदानं समाचरेत् ।
मन्त्रं त्रिधा समुच्चार्य नमस्कारत्रयं चरेत् ॥
कदाचिन्नैव तस्यास्ति यमदूतस्य दर्शनं ।
वज्रतुल्यं भवेत् कायस्त्रिलोकविजयी भवेत् ॥

(रुद्रयामल)

प्रार्थना मंत्र – हे लोहजंघ ऋषि ! हे परमेश्वर ! मैं आपको नमन करता हूँ। यमलोक की यातना का विनाश करके सदा-सर्वदा मेरा मंगल करिए। लोहे के बर्तन में घी डालकर दीपदान करते हुये ३ बार मन्त्रपाठ पूर्वक तीन प्रणाम करने से कभी भी मनुष्य को यमदूतों के दर्शन नहीं हो सकते। वज्रतुल्य देह प्राप्तकर मनुष्य तीनों लोकों में विजय प्राप्त करता है।

तत्पश्चात् देवगण लोहजंघ नामक तपस्थली की ओर गये। वहाँ लोहजंघ नाम से युक्त ऋषि ने चिरकाल तक तपश्चर्या की थी। २४ संवत्सर के पश्चात उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन लाभ और वरदान प्राप्तकर वैकुण्ठ धाम को प्रयाण किया। यहाँ स्थित लोहजंघ ऋषि की प्रतिमा को देवताओं ने स्थापित किया। इन ऋषि की दर्शन प्राप्ति से ही मनुष्य मुक्तिगामी हो जाता है।

तारापुर

यह गाँव तारा सखी के नाम पर है, जो महारास में आयीं हैं। वैसे भी यहाँ से गोकुल थोड़ी दूर रह जाता है, गोकुल के पास होने से श्रीकृष्ण यहाँ खेलने आया करते थे आस-पास के गाँवो में, और अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करते थे। यहाँ श्रीकृष्ण की अनेक क्रीड़ाओं में एक क्रीड़ा है कन्दुक क्रीड़ा। श्रीकृष्ण ने यहाँ एक गोपी को अपनी ओर आकर्षित किया, जबकि वो तो पहरे में थी, उसके पास पहुँचना ही कठिन था क्योंकि ऊपर तिमंजले में उसका निवास था। श्रीकृष्ण ने देखा कि इसके ऊपर भी कृपा करनी है। उसकी गली से कन्दुक क्रीड़ा करते हुए चले, ग्वाल-बाल भी साथ में हैं, कोलाहल करते आ रहे हैं। कोलाहल सुनकर वह गोपी ऊपर चढ़ कर आई, जब झाँक कर देखा तो नीचे एक बड़ा नील सुन्दर बालक गेंद खेलता चला आ रहा है, अद्भुत छवि है –

सुन्दर बदन सदन की शोभा निरख नयन मन थाक्यो री थाक्यो।
हौं ठाढ़ी बीथिन है निकस्यो उझकि झरोखन झाँक्यो री झांक्यो।
मोहन एक चतुराई कीन्ही गेंद उछार गगन मिस ताक्यो।
वारयो री लाज बैरिन भई मोकूं मैं गंवार मुख ढांक्यो री ढांक्यो।
चितवन में कछु कर गयो मो तन मन न रहत क्यों राख्यो री राख्यो।
'सूरदास' प्रभु सरबस लै गये हंसत-हंसत रथ हांक्यो री हांक्यो।

नंदी-बंदी

यह ब्रज का प्रसिद्ध क्षेत्र है किन्तु वर्तमान काल में यह देवी क्षेत्र (शक्ति पीठ) के नाम से प्रसिद्ध है। यह परिवर्तन कब से हुआ, यह अज्ञात है। प्राचीन काल में यह सखियों का केन्द्र स्थल था। बन्दी एवं आनन्दी ये दोनों श्रीजी की सखियाँ थीं, गर्ग संहिता के प्रमाणानुसार गोवर्धन पर्वत स्थित श्रृंगार शिला पर एक बार श्रीजी का श्रृंगार हुआ। वहाँ सभी महासखियों और महाशक्तियों ने श्रीजी का श्रृंगार किया।

ताटंकयुगलं बंदी कुण्डले सुखदायिनी।
आनन्दी या सखी मुख्या राधायै भालतोरणम्॥

(ग.सं.वृं.खं.२०/१०)

यमुना ने श्रीजी के चरणों में नूपुर पहनाये, लक्ष्मी जी ने करधनी, मधुमालती ने हार, ललिता जी ने चोली, विशाखा जी ने कंठाभूषण, गंगा जी ने बिछिया, एकादशी ने कंकण, शतचंद्रानना ने बाजूबंद, मधुमती ने अंगद पहनाये, उसी स्थल पर आनन्दी और बन्दी नाम

की सखियों ने कुण्डल और भाल-तोरण श्रीजी को धारण कराये थे, भाल तोरण उस भूषण को कहते हैं जो मस्तक पर पहनाया जाता है जो मस्तक की शोभा वृद्धि करता है।

इस तरह से यह स्थान द्वापर युग में राधा रानी की सखियों बन्दी एवं आनन्दी का जन्म स्थल था लेकिन कालान्तर में कब से यह देवी पीठ बना, ये परिवर्तन कैसे हुआ, इसके बारे में कुछ अनुसन्धान किया जाए तो पता चल सकता है। 'गर्ग संहिता' की भूमिका के अनुसार तो ये दोनों राधा रानी की सखियाँ थीं और उनका श्रृंगार करती थीं। इसके अतिरिक्त ब्रजवासियों के अनुसार ये दोनों नंद बाबा के खिरक में गोमय (गोबर) थापने का कार्य करती थीं तथा नन्दबाबा ने यहाँ आकर इन देवियों का पूजन किया। इस प्रकार इस विषय में ब्रजवासियों की अनेक कथाएँ चल रही हैं। जो भी हो, वर्तमान समय में यहाँ नवरात्रि का मेला भी होता है तथा अनेकों श्रद्धालु भक्त शक्ति पीठ के रूप में यहाँ दर्शन हेतु आते हैं।

श्री अक्रूर जी मंदिर एवं श्री अक्रूर घाट

नंदी बंदी आनंदी एवं आनंद कुण्ड

अध्याय – ४५

श्री दाऊ जी

श्री नन्दनन्दन के ये अग्रज संकर्षण ही इस ब्रज धरा के अधिष्ठातृ देव हैं, यानि बड़े भैया दाऊ दादा ही ब्रज के राजा हैं। राजा का कर्तव्य है समस्त प्रजाजनों को पुत्रवत् स्नेह व दया का भाजन बनाये, सो तो आपमें भरपूर है और सच पूछा जाय तो इसीलिए आपका नाम 'दाऊ दयाल' है –

"ब्रज के राजा इनको कहियत दीनदयाल बड़े बलराम"

तो अनुज में दया का व्यसन न्यून है क्या? नहीं न्यून तो नहीं है किन्तु भक्तों पर ही इस व्यसन की वृष्टि होती है, अभक्तों पर नहीं, अभक्तों के लिये तो अनुज का सिद्धांत बड़ा नृशंस है –

जो मम भक्त सौं बैर करत है सो बैरी निज मेरो ।
देख विचार भक्त हित कारण हाँकत हौं रथ तेरौ ॥

किन्तु अग्रज के प्रेमपात्र पाण्डव तो थे ही, आपने कौरवों में ज्येष्ठ प्रमत्त-पापी दुर्योधन से भी समान प्रेम किया। तभी तो अनुज ने ही बड़े भैया का मधुर नूतन नामकरण कर दिया अर्थात् श्री कृष्ण ने ही दाऊ जी को दयाल नाम दिया, अन्य ने नहीं। देखिये भागवत जी –

श्री कृष्ण ने ही दाऊ जी को ब्रज के अधिष्ठाता पद पर प्रतिष्ठित किया। गौचारण काल में श्रीकृष्ण कहते थे –

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।
स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥

(भागवत १०/१५/४)

'स तत्र तत्रारूणपल्लवश्रिया' श्रीकृष्ण कथन – "दादा ! जहाँ से आप शीतल ज्योत्सना का विस्तार करते हुए निकलते हैं, वहाँ के पत्र-पुष्प-पाषाण, चर-अचर सम्पूर्ण प्रकृति आपका स्वागत करती है।" फिर कहते हैं – "दादा ! आज से आपका एक नवीन नाम और हो गया है, वो क्या? "

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥

(भा.१०/१५/६)

यहाँ इस श्लोक में अनघ शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण ने दाऊ जी के लिए किया, अनघ का तात्पर्य? "**नास्ति विद्यते अघः भक्तानां यस्मिन्**" इतनी अपरिमित दया है कि भक्तों के अपराधों पर तो कदापि ध्यान जाता ही नहीं है। इसलिये अनुज ने तो आपको दाऊ दयाल सम्बोधन दे दिया। यों तो सम्पूर्ण ब्रज वसुंधरा आपके चरणों से चिन्हित हुई, किन्तु विशेष आत्मीयता प्राप्त की बलराम ग्राम ने, मत्स्यपुराणानुसार जिसका नाम विद्रुम वन है कारण – जिस समय कंस के अत्याचार के कारण रोहिणी जी महावन के सौभाग्य वर्द्धन हेतु यहाँ की पावन अवनि पर विराज रही थीं, उस समय यहाँ विद्रुम की लताओं से उत्पन्न मूंगा और मणियों को लेने यहाँ आती थीं। उनसे सुन्दर-सुन्दर हार बनाकर उससे कृष्ण-बलराम का श्रृंगार किया करती थीं। विद्रुम का बाहुल्य ही इस धरा के विद्रुमवन नाम होने का हेतु बना। तप्तकाञ्चनवर्णा मैया रोहिणी का सौभाग्य ही ऐसा उत्कृष्ट है, जिन्हें गोकुल, मथुरा, द्वारिका तीनों सर्ग की निखिल लीला का दर्शन लाभ मिला। मत्स्यपुराणानुसार मैया ने यहाँ स्नान के पश्चात् मुक्ता दान किया, अतः यहाँ उनका रोहिणी कुण्ड भी है। मैया रोहिणी के कोमल चरणों से चिन्हित, दाऊ दादा के स्वकरों से लालित-पोषित-पल्लवित विद्रुमवन के बारे में मत्स्यपुराण का कथन है –

विद्रुमार्यागता यत्र रोहिणीभूषणाय सा ।
स्नानं चकार शुद्धयर्थं मुक्तादानं करोति सा ॥

विद्रुमोद्भवरूपाय तालांकरचिताय च ।
सर्वसौंदर्यगन्धाय वनाय च नमोस्तुते ॥

(मत्स्य पुराण)

यहाँ एक विशाल कुण्ड भी है, स्थानीय जनश्रुति के अनुसार इसे क्षीरसागर कहते हैं। ब्रजभक्ति विलास व आदिपुराणानुसार इसे दुग्ध कुण्ड के नाम से भी जाना जाता है। इसका कारण है कि जिस समय श्रीकृष्ण पुत्र अनिरुद्ध ने दिग्विजय की, तो उस समय उनका समस्त यादवीय विशाल सेना समुदाय सहित ब्रज प्रदेश में भी आगमन हुआ, तब नन्द बाबा ने उन सभी को आमंत्रित किया।

उत्तम सर्वलक्षण सम्पन्न लक्ष-लक्ष गायों के दुग्ध से इस कुण्ड को पूरित किया गया, जिससे कोटि यादवजन एक साथ भोजन करें अतः इसका नाम दुग्ध कुण्ड है।

ततो दुग्ध कुण्ड प्रणाम मन्त्र :-

सुधामयपयस्तुभ्यं हलायुधवरोद्भव ।
चिरायुर्वरदायैव दुग्धकुण्ड नमोस्तुते ॥

भावार्थ – अमृत तुल्य जल वाला श्री बलराम जी के हल से उत्पन्न, आयुवर्धक दुग्ध कुण्ड को प्रणाम है।

आदिपुराणानुसार –

यत्रैव बलदेवस्तु यदुपुत्रैः समन्वितः ।
भोजनं क्रियते स्वेच्छं कृतदुग्धाढ्यपायसम् ॥

भावार्थ – यहाँ इस पुण्यमय तीर्थ में हमारे दाऊ भैया ने समस्त यदु पुत्रों के साथ इसी सर पर भोजन किया था।

गोप क्रीड़ा के चतुर नायक – 'दाऊ जी'

ब्रज की मर्यादा ही ऐसी है जिसकी दृष्टि में न कोई ब्रह्म है न परमात्मा, यहाँ की मर्यादा इतनी मात्र है कि बस गँवार बन जाओ, सो तो कान्हा और दाऊ जन्म लेते ही बन गये थे, तभी तो सख्य रस की प्रधान गोप क्रीड़ा के चतुर नायक बन सके अन्यथा बिना गँवार बने ये सब कहाँ सम्भव था? श्रीकृष्ण-बलराम की गोपलीला विशेष देखें – भा. १०/११/३९,४० एवं १०/१२/४-१०।

अब गँवारों का खेल प्रारम्भ होने जा रहा है –

कन्हैया – "दाऊ भैया ! आज हम दोनों नाचेंगे", दाऊ – "कन्हैया नाचने कौ मन तौ मेरौ भी है पर जब तक कोई गावैगौ नांय तब तांई मेरे तौ पाम न उठ सकै", मोहन – "भैया ! यामें कौन सी बात है ल्यो हम गामैं अभी, हम का काहू ते कम गानौ जानै।" गान प्रारम्भ भयौ, तो दाऊ जी को नृत्य भी आरम्भ है गयौ, फिर दाऊ जी बोले – "कन्हैया ! अब तू तैयार हो जा", इस तरह से क्रीड़ा जारी है, श्रीदामा बोला – "भैया तुम दोनों न्यारे-न्यारे नाचौ तौ चोखो ना लगै अब हम गामै तुम दोनों नाचौ", युगल नृत्य आरम्भ हुआ। आ हा हा ! धन्य है धन्य है ये धरा एक ओर पीताम्बरधारी, दूसरी ओर नीलाम्बरधारी, नृत्य के बहाने मानो धरा के समस्त नूतन-पुरातन मनोरथ को सिद्ध कर रहे हैं। सौंदर्य सिन्धु रसिक शेखर के स्कन्ध देश तक लटक रही काली-लटूरियों में गुँथे श्वेत सुमन तो सचमुच कज्जल आकाश में शोभित चन्द्रमा के सदृश हैं। इनका पाद-विन्यास तो देखो, कटि तट पर बँधी क्षुद्र घंटिका की क्वणन व नन्हे-नन्हे चरणों का आलिंगन करने वाले नूपुरों की सुमधुर रुनझुन ध्वनि ने तो सारी सृष्टि को विस्मित कर दिया है। दोनों भाईयों की हर एक नृत्य की

गति नेत्रों के समक्ष चकाचौंध पैदा करने वाली है, किन्तु मित्रों ने देखा तो वे पहिचान गये कि अब अधिक नेत्रों को सुख देना उचित नहीं। युगल पादपद्म, मुखपद्म कुछ श्रान्त अनुभूत हो रहे हैं। सहसा मित्र चिल्ला उठे, "ओ कन्हैया ! ओ दाऊ भैया बस-बस, अब हम भी नाचेंगे, एक ओर कूं हट जाओ", कृष्ण-बलराम ने किनारा ले लिया, ग्वाल बाल – "लालाओ ! अब तुम दोनों गाओ, तब हम हिलेंगे, मतलब नाचेंगे", दोनों ने गाना आरम्भ किया तो गन्धर्वगण गाल पर कर रख कर दोनों को एक नजर से देखने लगे। दोनों का गान, सैकड़ों का नाच जब सम्पन्न हुआ तो अब झगड़ा हो गया कि कौन अच्छा नाचा? भला ये कौन कहे, नहीं हम अच्छा नृत्य नहीं जानते, सब अपने अपने बाबाओं की नाक रखने के लिए लड़ने झगड़ने लगे, मैं अच्छो नाच्यो-नाच्यो, चारों ओर से बस एक ही कलरव, पर दादा दाऊ तो दयाल हैं। दाऊ ने निर्णय दिया – "नहीं भाई, तुम सभी अच्छा नाचे हो, सब नृत्य कला में पारंगत हो।"

ता ता थेईया-थेईया नाचे राम गोपाल।
दाऊ गावै मोहन नाचै मोहन गावै दाऊ नाचै
ठुमका दै-दै नाचै देवै हाथन ते करताल॥
दोऊ गावैं ग्वाला नाचैं ग्वाला गावैं दोऊ नाचैं
नाचें गावैं हंसैं हंसावैं रंग रंगीले ग्वाल॥
होड़ा-होड़ी भयी लड़ाई सब में है गई हाथापायी
दाऊ ने तब न्याय कराई नाचैं गावैं सबै भुलाई
ऐसे खेलैं खेल सबै मिल बछरन के प्रतिपाल॥

(रसिया रासेश्वरी)

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः।
गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः॥

(भा.१०/१५/१५)

बाल लीला के बालक (कान्हा-बलराम)

अत्यन्त चपल हैं दोनों, क्षण भर में लड़ लेते हैं, क्षण भर में एक-दूसरे को मना भी लेते हैं तो उज्ज्वल दन्त खिल उठते हैं। यशोदा मैया दाऊ का पक्ष करती हैं और मैया रोहिणी कृष्ण की पक्षधर हैं। कृष्ण जानते हैं कि दाऊ जी के बारे में मुकद्दमा रोहिणी मैया की अदालत में ही पेश करना ठीक है। वहीं दाल गलेगी, छोटी मैया के पास तो केस उल्टा पड़ जाएगा। दौड़ गये नन्हे नन्हे चरणों से। अञ्जन रञ्जित कमल सरीखे दोनों नेत्रों में अश्रु इतने भर आये हैं कि बस पलक गिरते ही नीचे टपक जायेंगे, ओठ फड़क रहे हैं। दौड़ते हुए गिर पड़े, बड़ी मैया रोहिणी जी की गोद में, रुदन प्रारम्भ कर दिया। दीर्घ श्वास खींचते हुए फिर बीच-बीच में सिसकियाँ..... बोलने का प्रयास किया मै ऽ ऽ या ऽ ऽ ऽ दा ऽ ऽ ऽ ऊ ऽ ऽ ऽ

ऽ भै ऽ ऽ या ऽ ऽ ऽ। रोहिणी मैया भयभीत कन्हैया की धक-धक कर रही छाती देखकर परेशान है।

(कन्हैया के वक्ष पर हाथ रखकर) "पुत्र ! कन्हैया ! मेरे कान्हा ! क्या हुआ? आज तुझे किसने आहत किया? क्या धृष्टता की दाऊ ने? बोल तो सही ! "

श्रीकृष्ण – "मै ऽ ऽ या ऽ ऽ ऽ मुझे डरा दि ऽ ऽ या ऽ ऽ"

अनुज ने एक-एक करके क्रमशः दाऊ भैया की शिकायतों का तांता बाँध दिया –

देख री रोहिणी मैया कैसे हैं बलदाऊ भैया ।
यमुना के तीर मोहे झुझुआ बतायो री ॥
सुबल श्री दामा साथ हँस-हँस पूछत बात ।
आप डरपै और मोहे डरपायो री ॥
जहाँ-जहाँ बोले मोर चित रहत ताही ओर ।
भाजो रे भाजो रे भैया देखो वह आयो री ॥
आप गये तरु चढ़ मोहिं छांड्यो वाही तर ।
धक्-धक् छाती करे दौरयो घर आयो री ॥
उछंग सों लिये लगाय कंठ सों रहे लपटाय ।
वारी रे वारी मेरो हियो भर आयो री ॥
'परमानन्द' रानी द्विज बुलाय वेदमन्त्र पढ़ाय ।
बछिया की पूँछ गहि हाथहि दिवायो री ॥

इस पद के माध्यम से श्री परमानन्द दास जी ने बड़ा सुन्दर सख्य लीला का निरूपण किया है। बड़ी मैया ने तुरंत वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाया है और स्वस्तिवाचन प्रारम्भ करा दिया, गौभक्ति का दिग्दर्शन, तुरंत मैया ने श्वेत गैया मंगवायी और बोलीं – "लाला ! गैया की पुच्छ कौ स्पर्श कर, कभी भी तेरे पास झुझुवा नहीं आवेगो और अब तू कभी दाऊ के संग खेलवे कानन में मत जईयो।"

कान्हा – "मैया ! मैं तो स्वयं कभी नहीं जानो चाहूँ, परन्तु दाऊ दादा ने मोकू बहका दियो, कि कन्हैया चल वन में बड़ौ तमासौ है रह्यौ है। मैया मोकू तो ये और याके सखा तमासौ दिखावै के बहाने ते लै गये, मैया ! याके सखा भी ऐसे ही धूर्त हैं।"

मैया निपट बुरो बलिदाऊ ।
कहत है वन बड़ौ तमासौ सब लरका जुरि आऊ ।
मोहू को पुचकार चले लै जहाँ बहुत मन झाऊ ।
ह्वां ही ते कहि छांड़ि चले सब काटि खाऊ रे हाऊ ।
डरप कांपि के उठ ठाड़्यो भयो कोऊ न धीर धराऊ ।
पग–पग गयो चल्यो नहिं जाई वे भागे जात अगाऊ ।
मोसों कहत मोल को लीनों आप कहावत साऊ ।

'परमानन्द' बलराम चबाई तैसेहि मिले सखाऊ ॥

महान् पराक्रमी-बलराम जी

अरे हमारे दाऊ दादा न होते तो क्या कोई धेनुक को मार पाता? क्या कोई प्रलम्ब से पंगा ले पाता? क्या कोई बल्वल से बल आजमा पाता? हमारे छोटे भैया कृष्ण कन्हैया ने तो वो कर दिखाया जो साधारण मानव नहीं कर पाता अर्थात् – नाना अमानुषिक कार्य किये और बड़े भैया बलराम जी ने तो वो कर दिखाया जो अनुज के भी बस की न था। इसका अकाट्य प्रमाण है, "भागवत भाष्य-गर्ग संहिता" जिसमें बड़ा विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है, दाऊ जी के पराक्रम का, किन्तु यहाँ ग्रन्थ विस्तार के भय से अति संक्षिप्त चर्चा के लिए हम चेष्टारत होंगे।

एक समय यदुवंशियों ने समग्र संसार पर विजय पाने का ध्रुव निश्चय किया, विजय प्राप्ति के उपरान्त उनके द्वारा एक विशाल अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न हुआ, उस अश्वमेघ यज्ञ के विजयी अश्व को लेकर रुक्मवती नन्दन अनिरुद्ध सर्वत्र विचरण कर रहे थे। अनुशाल्व, युवनाश्व और भीषण इन तीन अपराजित महान बलवान राक्षसों को जब आपने पराजित किया फिर आगे तो किसी का साहस ही नहीं हुआ अश्व रोकने का। ६ मास बीत गये, ६ मास शेष थे। उस समय नैमिषारण्य में बल्वल का वास था, महान शक्ति सम्पन्न इस दानव का अन्त करने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं थी। अतः यज्ञ दूषित कर देने पर भी ऋषिगण मौन ही रहते। शिवजी से वरदान प्राप्त था, अतः श्री कृष्ण भी उसे नहीं मार सकते थे, ये काम तो अतिशय शक्ति युक्त बलराम भैया को ही करना था, सो विधान भी बन गया, नारद जी ने बल्वल को कहा – "तेरे भाई शकुनि को यादवों ने मार डाला है और तू ऐसे ही शक्तिशाली बना घूमता है ! शौर्य हो तो भाई की मृत्यु का प्रतिकार कर यानि बदला ले .....। इस समय यदुवंशी सारा संसार जीतने में लगे हुए हैं और अश्वमेधीय अश्व को लिए चुनौती देते हुए घूम रहे हैं, नारद जी बोले – जा ... इस समय वह अश्व प्रयाग पहुँच गया है; त्रिवेणी में जल पी रहा है", इतना सुनना ही था कि अपनी विजय निश्चित मानकर वायुवेग से चल पड़ा और जाकर अश्व को पकड़ लिया।

प्रहार पर प्रहार, आघात पर आघात आरम्भ हुए तो दुष्ट दानव अश्व सहित ही अन्तर्धान हो गया। अब कहाँ अस्त्र फेकें.... किसे मारें.... किससे युद्ध करें....? बेचारे बैठ गये उदास, नारद जी वहाँ भी पहुँचे, बोले – "इसे तो शिव का वरदान प्राप्त है। १२ वर्ष कठोर तप करके इसने यह वरदान माँग लिया है कि आप सदैव मेरी सहायता करना, सो पहले ही बता दूँ, इसे जीतना कोई खेल नहीं है।"

यदुवंशी वीर बोले – "जीतें तो तब, जब कोई दिखाई पड़े, जब कोई दिख ही नहीं रहा तो क्या आपस में लड़ें? "

कोई पता-ठिकाना तो हो उसका कि वह है कहाँ। नारद बोले – "सो तो पता-ठिकाना मैं लिखवा दूँ, इस समय वह समुद्र के उस पार पांचजन्य उपद्वीप में है", पर अब समस्या आई कि समुद्र पार कौन करे, तो उद्धव, सात्यकि जैसे महान महारथियों की सहायता से ३० योजन अर्थात् ४०० कि.मी. का पुल बाणों से मात्र ४ पहर (१२ घंटे) में बना दिया, अब तो सारी सेना पांचजन्य द्वीप पर पहुँच गई। मय नामक दानव ने शुक रूप में आकर ये सब देख लिया और बल्वल को समझाया – "महाराज ! इनसे सन्धि कर लेने में ही हमारा कल्याण है, भगवान् राम ने तो पत्थर का पुल बनाया और उसके निर्माण कार्य में भी कई दिन लगे थे, किन्तु यहाँ तो श्रीकृष्ण वंशज अनिरुद्ध की सेना ने मात्र १२ घंटे में बाणों से ही पुल बना डाला।" मय की बात सुनकर बल्वल ने उसे भीरू कहा, बोला – "जाओ, तुम भी विभीषण की तरह उस कृष्ण की शरण में चले जाओ, मैं तो युद्ध करूँगा, १ करोड़ दैत्य योद्धाओं की सेना लेकर। "युद्ध प्रारम्भ हो गया। सब अपने-अपने समान योद्धाओं से भिड़ गये, बेचारी पृथ्वी तो प्रकम्पित हो उठी, यही नहीं नभ में खड़े इन्द्र, कुबेरादि देव जो युद्ध देखने आये थे, उस भीषण युद्ध को देखकर नभ में ही डामाडोल होने लगे, चारों ओर से भीषण चीत्कार, कर्कश ध्वनियाँ, गजों की चिंघाड़ ही सुनने को मिल रही है, अनिरुद्ध जी ने युद्ध कौशल दर्शित करते हुए ऊर्ध्वकेश, नद, सिंह, वृक, कुशाम्बुद्ध आदि बड़े बड़े योद्धाओं को समाप्त कर दिया। तब पुनः मय ने बल्वल से कहा – "अभी भी समय है महाराज आप इनकी शरण ले लें, हमारे एक-एक करके सब योद्धा मारे गये", किन्तु बल्वल कहाँ मानने वाला था, बोला –

"मैं इस कृष्ण से भलीभाँति परिचित हूँ, ये वही है न जो माखन चुरा कर खाता था,

ये वही हैं न जो जरासंध के भय से भाग गया था समुद्र में।"

सूर्य अस्त होने की तैयारी में गये, अतः युद्ध को उस दिन वहीं बंद कर दिया। बल्वल ने यह घोषणा कर दी, कि हमारे इस पांचजन्य द्वीप के सभी दैत्यों को लड़ना है जो-जो भी समर-क्षेत्र में कल देर से पहुँचेगा, मैं उसे समाप्त कर दूंगा।

अगले दिन सेनापति सेन्यपाल के पुत्र को देर हो गई, बल्वल ने प्रतिज्ञानुसार उसका प्राणांत करा दिया, उसके अगले दिन बल्वल पुत्र कृष्ण भक्त कुनन्दन को भी विलम्ब हो गया, सेनापति ने अवसर पाते, आक्रोश में कहा – "कुनन्दन का वध भी न्यायानुसार आवश्यक है।" वीर पुत्र को मरने के लिए तैयार देख बल्वल की आँखो में अश्रु छलक आये, कुनन्दन बोला – "मुझे मृत्यु से भय नहीं है किन्तु एकबार श्रीकृष्ण की स्तुति कर लेने दो, उनका दर्शन करने का सौभाग्य तो मुझ अधम को अलभ्य ही रह गया।" इधर बड़े-बड़े प्रयास किए उसे मारने के किन्तु सब प्रयास निष्फल गये, क्योंकि –

यं च रक्षति श्रीकृष्णस्तं को भक्षति मानवः ।
भक्तं हंतुं चागतो यः स विनश्यति दैवतः ॥

(ग.सं.अश्वमेध खं.३३/६०)

"भला भगवान् जिसके रक्षक हैं उसका काल, कौन हो सकता है?" अर्थात् कोई नहीं।

तत्पश्चात् बल्वल पुत्र कुनन्दन कृष्ण पुत्र सुनन्दन के साथ भिड़े, अनिरुद्ध द्वारा बड़े-बड़े अमोघ अस्त्रों का प्रहार प्रारम्भ हुआ जृम्भणास्त्र, मोहनास्त्र, ...इत्यादि। इधर कुनन्दन ने जब मृत्यु का वरण कर लिया, तो वहाँ बाघम्भर धारण किए, आशुतोष श्री शिव पहुंच गये, बोले – "कहाँ है सुनन्दन, जिसने हमारे भक्त कुनन्दन को मारा !" शिवजी के क्रोधाधिक्य के कारण सुनन्दन समाप्त हो गया, तब अंत में श्रीकृष्ण अपने समस्त आयुधों सहित प्रकट हो गए, चारों ओर से जयध्वनि – जयघोष होने लगा। शिवजी ने प्रभु को प्रणाम व स्तुति की। अपराध के लिए क्षमा याचना की, प्रभु बोले – "हे शम्भो ! तुमने कोई अनुचित नहीं किया, मैं जानता हूँ, तुम वरदान बद्ध थे, अतः अपने भक्त के लिए लड़ रहे थे", इसके बाद श्रीकृष्ण ने अपने पुत्र सुनन्दन को जीवित किया। बल्वल के प्राणांत का समय भी निकट आ रहा था, जो दाऊ जी के हाथों ही निश्चित था। जिस बल्वल को न अनिरुद्ध मार पाये, न श्रीकृष्ण फिर अन्यों की तो गणना करना ही व्यर्थ है, उसे अब हमारे हलधर भैया धराशायी करेंगे, नैमिषारण्य में बल्वल का उत्पात बढ़ता ही जा रहा था, ऋषि महर्षिगण बेचारे मौन साधे हुए हैं। उनका धैर्य, उनकी क्षमा भी असीम है । चारों ओर जब पीव, रक्त, विष्ठा-मूत्र, मांस-मदिरा की वृष्टि होती है, तो उसकी दुर्गन्ध से श्वास लेना भी दुष्कर हो जाता है। एक दिन सुन्दर पर्व के अवसर पर एकाएक प्रचण्ड आंधी चलने लगी, सम्पूर्ण नभमण्डल आवृत्त हो गया, अति दूषित वस्तुओं की वृष्टि करते हुए, नभ में अमोघ त्रिशूल लिए शैलाकार घोर कज्जल वर्ण, रक्तवत् लाल-लाल श्मश्रु केश, भीषण गर्जना करता हुआ दिखाई पड़ा, दाऊ भैया ने अपने हल-मूसल का स्मरण किया और वे उपस्थित हो गये, बस फिर कहाँ विलम्ब होना था? हमारे दाऊ भैया को धनुष-बाण से टुक-टुक करने की कला की क्या आवश्यकता। हल से खींचा बल्वल को और मूसल से तो खोपड़ी फोड़ दी, बिजली-सी कौंध गयी। रक्त की धारा सर से ऐसी बही, जैसे शिव मस्तक से गंगा। छटपटाता हुआ नष्ट हो गया।

ब्रज के राजा – दाऊ दादा

'गर्गसंहितानुसार' चाक्षुषमन्वन्तर में चाक्षुष मनु के यहाँ नागलक्ष्मी जी ज्योतिष्मती के रूप में अवतीर्ण हुईं, वैवस्वत मन्वंतर की २७ चतुर्युगी व्यतीत होने पर बर्हिष्मती ही राजा रैवत के यहाँ रेवती रूप में आईं, जिनका पाणिग्रहण हमारे दाऊ दादा के साथ हुआ, जिससे वे रेवतीरमण कहलाये। बलदेव गाँव के इस मंदिर में यहाँ रेवती-मैया वाम भाग में न होकर आमने-सामने हैं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे शरमा रहीं हैं, इस लिए वहाँ खड़ी हैं, ये तो प्रेम वैचित्री है, दोनों सदा एक-दूसरे को देखते हैं। एक दूसरे को देखने से प्रेमाशक्ति प्राप्त होती है –

मिलिबो नयनन ही को नीको ।
चारों नयन भये इक ठौरे धोको मिट गयो जी को ।
खट्टी छाछ मने नहिं भावै 'सूर' पिवैया घ्यो को ।

ततो युगल स्वरूप रेवती रमण प्रणाम मन्त्र :-

रेवतीरमणायैव गोपानांवरदायिने ।
अन्योन्यसन्मुखालोक प्रीतये नमस्तु ते ॥

(आ.वा.पु.)

रेवती-रमण आपका नाम है। ब्रज के गोपों को वर देने वाले हैं, परस्पर एक-दूसरे के समक्ष खड़े हुए हैं। ऐसे रेवती रमण को प्रणाम है।

दाऊ जी के होरंगा का इतिहास

बरसाने की रंगीली होरी – दाऊ जी के हुरंगा का इतिहास, राम-श्याम के विवाहोत्सव के रूप में राधारमण, रेवतीरमण राम-श्याम का विवाहोत्सव ही बरसाने में होरी व दाऊ जी में हुरंगा के रूप में मनाया जाता है।

पल्ले पर गई रंग में रंग दई होरी खेलत रसिया ।
लंहगा सबरो रंग में कर दियो रंग दइ अंगिया ।
रंग बिरंगी कर के छोड़ी रंग दइ फरिया ॥
डफ लै होरी गावन लाग्यो दै दै हंसिया ।
हांसी सुन रिस लागै बदलो लूँगी मन बसिया ॥
रसिया की धोती पकड़ी मैंने मूठन के कसिया ।
धोती फाड़ बनयो कोड़ा पीटयो मन भरिया ॥
पिट-पिट के हू फाग सुनावै दाऊ को भैया ।
ऐसो भयो होरंगो ब्रज में गावै दुनिया ॥

होरी विवाहोत्सव

बरसाने की होरी श्रीकृष्ण के विवाहोत्सव के रूप में –

नन्दगाँव कौ पाँड़े ब्रज बरसाने आयौ ।
भरि होरी के बीच सजन समध्याने धायौ ॥
भानु भवन भई भीर फाग कौ खेल मचायौ ।
समध्याने की गारी सुनत श्रवण सुख पायौ ॥

बिना विवाह के समधी संबन्ध संभव नहीं।
पीत पिछौरी तानि रंगीलो मण्डप छायो।
नवल आम के मोर को मोरि मौर बनायो॥
नग न्यौछावर कीन्हे कीरति कलश धरायो।
मन की भांवरी दीनी चित्त चौक पुरायो॥
होरी की अठवारी करी दूलह दुलरायो।
नीकी बनी बरात बरातिनि रंग बढ़ायो॥

विवाह में गारी-गान –

होरी की गारी को शाषा चारि पढ़ायो।
नैनन पियो पियूष हितुनि को हियो सिरायो॥
तो लौं होरी खेलत गिरिधर दूलह आयो।
सांचे स्वांगनि साजि सबै समूह सुहायो॥

दाऊ जी का हुरंगा दाऊ जी के विवाहोत्सव के रूप में –

खेलौ बलदाऊ जी सों होरी।
वै तो कहिये ब्रज के राजा फगुवा लैन चलो री
फागुन में हिय उमगि मरयो है मन भावै सोई करौ री
लाज सब दूर धरो री ॥
चोवा लाओ चन्दन लाओ अबीर बनाओ भर झोरी
बैंया पकरि के याहि नचाओ (याकि) मुख ते लगाय देओ रोरी
हाल ऐसो ही करो री ॥
कहत मुकुंद बार नाय कीजै पकरि लेउ बरजोरी
कोई काजर कोई बेंदी लगाओ (याके) सेंदुर मांग भरो री
नील पर धूरि धरो री ॥

अथवा

पल्ले पर गई रंग में रंग दई होरी खेलत रसिया॥
लहंगा सबरो रंग में कर दियो रंग दइ अंगिया।
रंग बिरंगी कर के छोड़ी रंग दइ फरिया॥
डफ लै होरी गावन लाग्यो दै दै के हंसिया।
हांसी सुन रिस लागै बदलो लूंगी मन बसिया॥
रसिया की धोती पकड़ी मैंने मूठन ते कसिया।
धोती फाड़ बनायो कोड़ा पीटयो मन भरिया॥
पिट पिट के हू फाग सुनावै दाऊ को भैया।
ऐसो भयो होरंगो ब्रज में गावै दुनिया॥

अथवा

ब्रज जुवतिन के बस परे सुनियत श्री बलराम
केसरि मुख मंडन कियौ गंडन बिन्दु लगाय

(बलदेव विलास)

जब तक विवाहोत्सव होरी लीला के रूप में नहीं माना जायेगा श्रृंगार रस सिद्ध नहीं होगा। चूँकि आचार्यों ने महारास लीला का आरम्भ ही होरी लीला से माना है।

"वसन्तसम्भावितहोलिकाद्योतनमपि ज्ञेयम् ।"

(श्री राम नारायण कृत भावविभाविका)

सभी रसिकाचार्यों ने भी इस होरी विवाहोत्सव को गाया –

दिन डफ ताल बजावत गावत
भरत परस्पर छिन-छिन होरी ॥
अति सुकुमार बदन श्रम बरसत
भलै मिलै रसिक किसोर किसोरी ॥
बातनि बतबतात राग रंग रमि रह्यौ
इत उत चाहि चलत तकि खोरी ॥
सुनि 'हरिदास' तमाल स्याम सौं
लता लपटि कंचन की थोरी ॥

(केलिमाल)

अथवा

कनक कपिस पट सोभित सुभग सांवरे अंग ।
नील बसन कामिनि उर कंचुकी कसूंभी सुरंग ॥
ताल रबाब मुरज डफ बाजत मधुर मृदंग ।
सरस उकति-गति सूचत वर बंसुरी मुख चंग ॥
दोऊ मिलि चाँचर गावत गौरी राग अलापि ।
मानस-मृग बल बेधत भृकुटि धनुष दृग चाँपि ॥
दोऊ कर तारिनु पटकत लटकत इत उत जात ।
हो-हो-होरी बोलत अति आनंद कुलकात ॥
रसिक लाल पर मेलत कामिनि बंदनधूरि ।
पिय पिचकारिनु छिरकत तकि कुमकुम पूरि ॥

(हित चतुरासी)

अथवा

श्री राधा कृष्ण विवाह सुख सरबस मंगल मूल ।
नित-नित रचत सहेलियां भरी प्रेम परफूल ॥

(महावाणी)

प्यारी मोहन सौं हँसि कह्यो आवहु जू मिलि खेलैं फाग ।
सुनि मन मुदित उदित भये को बरने कवि तिनि को भाग ॥

(बिहारिन देव जी)

श्री मद् राधासुधानिधि में विवाह गान –

प्रीतिं कामपि नाममात्रजनितप्रोद्दामरोमोद्गमां
राधामाधवयोः सदैव भजतोः कौमार एवोज्ज्वलाम्।
वृन्दारण्यनवप्रसूननिचयानानीय कुंजान्तरे
गूढं शैशवखेलनैर्बतकदा कार्यो विवाहोत्सवः॥

(रा.सु.नि. ५६)

गारी गान

विशेष बात – विवाह में गारी गान होता है।

होरी विवाहोत्सव ही है अतः महावाणी में विवाह के साथ-साथ गारी भी गाई गई हैं।

निज-निज अंग लड़ाय के सहचरि गावत गारि ।
कहत सबै गोरे तुमहिं देखौ मुकर निहारि ॥

(महावाणी)

शिव विवाह में भी गारी गान हुआ –

गारी मधुर स्वर देहि सुंदरि बिग्य वचन सुनावहि

(रा.बा.का.९९)

राम विवाह में भी गारी-गान हुआ —

पंच कवल करि जेवन लागे । गारि गान सुनि अति अनुरागे ॥

(रा.बा.का.३२९)

गारी गान विवाहोत्सव में ही होता है। होरी में भी गारी गान होता है, बिना गारी के श्रृंगार रस सिद्ध नहीं होगा।

श्रीकृष्ण को कितनी गालियाँ दी हैं ब्रज गोपियों ने –

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वांक्षवद्
यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥

(भा.१०/४७/१७)

श्रीकृष्ण को कौआ कहा।

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥

(भा.१०/४७/१२)

धूर्त कहा, कपटी कहा। रास पंचाध्यायी में भी प्रणय कोप किया।

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं
कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।
नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किञ्चित्
संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥

(भा.१०/२९/३०)

क्रोधपूर्वक बोली हैं। यह भाषा प्रेम की शोभा है। प्रेम की पहिचान है – सहिष्णुता। नायक नायिका में यदि सहिष्णुता नहीं है, सहिष्णुता के बिना तो विवाह के दो-चार दिन बाद ही तलाक की स्थिति आ जायेगी। इसीलिए विवाह काल में गारी गाने-सुनने की प्रथा है। चाहे तुम महादेव हो या श्रीराम हो या श्रीकृष्ण हो, विवाह काल में सबने गालियाँ सुनी हैं। गाली सुनना बहुत बड़ा धर्म है। भागवत में भी ससुराल की गारी का वर्णन है –

गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ।
प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाप्यकृत नोचितम् ॥

(भा.४/२/१२)

गौरी हमारी मृगयानैनी । बन्ना हमारो बन्दर नयना ॥

अथवा

भोला आवे रे भोला आवे रे
भोला मेरो भंगड़ भारी आक धतूरा खावे रे ।
तोहू भांग न चढ़ी मस्ती पे कालकूट पी जावे रे ॥
मोहिनी रूप धरे नारायण भोला पीछे भागे रे ।
बावरो भयो दिगम्बर डोले मोहिनी पकड़ न पावे रे ॥
लज्जा छोड़ दिगम्बर दौड़े मोहिनी पकड़ न पावे रे ॥

अथवा

दिगम्बर भयो भोला दिगम्बर भयो भोला
मोहिनी रूप धरयो नारायण देख-२ भोला बावरो भयो ।
मोहिनी पीछे बावरो डोले नंगो भयो भोला नंगो भयो ॥

क्या कारण है कि भारत वर्ष में पहले तलाक नहीं होता था? क्योंकि यहाँ विवाह के समय ही नायक को गालियों के द्वारा सहिष्णु बना दिया जाता था और यह निरख-परख लिया जाता था कि नायक सहनशील है कि नहीं। विदेशों में तो पशुवत् प्रेम है जैसे एक कुत्ता अनेकों कुतियाओं को ग्रहण करता व छोड़ता है अथवा एक कुतिया अनेकों कुत्तों को पकड़ती व छोड़ती है, यह पशु रति है किन्तु भारत वर्ष की संस्कृति देखो –

जन्म कोटि लगि रगर हमारी ।
बरउँ शम्भु न त रहउं कुआरी ॥

(रा.बा.कां.८१)

यह देव रति है।

रति के तीन भेद हैं –

१) देव रति

२) मनु रति

३) पशु रति

राम, कृष्ण व महादेव जी के विवाह में भी गारी गान हुआ है, यह देव रति है। इसीलिए रुक्मणि जी ने भी कहा –

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः
स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ।
यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्
युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥

(भा.१०/६०/४४)

प्रेम की पहिचान

संसार में पाँच प्रकार के पति हैं –

१) गधा जी (घर के भार वाहक)

२) बिजार (साँड़) जी (घर के धंधों में जुते रहने वाले)

३) कुत्ता जी (स्त्री से तिरस्कृत)

४) बिलाव जी (कृपण व हिंसक)

५) क्रीत (स्त्री दास)

हतभगा को ही ये पाँच प्रकार के पति मिलते हैं। इनमें सहिष्णुता नहीं है, प्रेम करना जानते नहीं हैं अतः निर्वाह भी अधिक समय तक नहीं हो पाता है, दो-चार वर्ष अथवा दो-

चार दिन में ही तलाक हो जाता है। लहकौरी की प्रथा इसीलिए विवाह में चलाई गई, जिसमें वर-वधू एक-दूसरे को ग्रास देते हैं अर्थात् जूठन खाते हैं। कपट देव पूजन होता है, इसमें बन्नी की जूती को कपड़े से ढककर देव बना कर देव पुजाया जाता है। लहकौरी में पार्वती और सरस्वती भी सहयोग करती हैं –

लहकौरि गौरी सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं ।

(रा.बा.का.३२७)

प्रेम की पहिचान है सहिष्णुता। इसीलिए मान लीला होती है। मान क्या है? अदाक्षिण भाव अर्थात् अनुदार नायिका का उदारता से रति दान न करना ही मान है। मान लीला में नायक को नायिका का मान सहना पड़ता है, मनुहार करना पड़ता है। जैसे स्वयं श्रीकृष्ण ने भी किया –

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः ।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥

(भा.१०/३०/३५)

"कामिन्ह कै दीनता देखाई ।"

(रा.अर.का.३९)

अथवा हित जी महाराज ने कहा –

प्रीति की रीति रंगीलौ ही जानै ।
यद्यपि सकल लोक चूडामणि दीन अपनपौ मानै ॥
यमुना निकट निकुंज भवन में मान मानिनी ठानै ।

(हित चतुरासी)

प्रेम में मान

मानिनी के द्वारा मान का हठ जब बना ही रहता है तो मान मनावन की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है –

चलहि किन मानिनि कुंज कुटीर ।
तो बिनु कुंवर कोटि बनिता-जुत मथत मदन की पीर ॥
गद-गद सुर विरहाकुल, पुलकित श्रवत विलोचन नीर ।
क्वासि-क्वासि वृषभानु नन्दिनी बिलपत विपिन अधीर ॥
बंशी बिसिख व्याल माला वलि पंचानन पिक कीर ।
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृगरिपु चीर ॥
जय श्रीहित हरिवंश परम कोमल चित चपल चली पिय तीर ।
सुनि भयभीत बज्र को पंजर सुरत-सूर रणवीर ॥

(श्री हित चतुरासी ३७)

भावार्थ – हे मानिनी ! आप कुञ्ज कुटीर में क्यों नहीं चलती हो, आपके बिना कृष्ण करोड़ों वनिताओं का संग पाकर भी मन्मथ की पीड़ा से मथित हैं। स्वर गद्गद हो रहा है, बोल नहीं पा रहे हैं, विरह से आकुल हैं, शरीर में पुलक और आँखों से आँसू बह रहे हैं। हे वृषभानु नन्दिनी ! कहाँ हो-कहाँ हो, अधीर होकर विलाप कर रहे हैं। वंशी बाण की तरह (जैसे बाण पीड़ा देता है) और सर्प की तरह मालाएँ उनको अप्रिय लग रही हैं। कोयल और तोता जब बोलते हैं तो शेर की गर्जना जैसा कष्ट होता है। चन्दन जहर की तरह लगता है। हवा आग की तरह लग रही है। पीताम्बर किवाच (बंदर किवाच से बहुत डरता है क्योंकि उससे खुजली हो जाती है) की तरह लग रहा है। यह सब सुनकर परम कोमल चित्त वाली राधा चल पड़ीं प्रियतम के पास। श्रीजी आ रही हैं यह सुनकर श्यामसुंदर जो वज्र से भी ज्यादा दृढ़ व शूर हैं भयभीत हो गए।

अथवा

अप्रेक्षे कृतनिश्चयापि सुचिरं वीक्षेत
दृक्कोणतोमौने दार्ढ्यमुपाश्रितापि निगदेत्तामेव याहीत्यहो।
अस्पर्शे सुधृताशयापि करयोर्धृत्वा बहिर्यापये
द्राधाया इति मानदुस्थितिमहं प्रेक्षे हसन्ती कदा॥

(रा.सु.नि. २३०)

हाथ पकड़ कर बाहर निकाल रही हैं। जो कठोर मानिनी को भी मना लेता है, वह है नायक। मान है कसौटी और प्रेम है सोना। मान की कसौटी पर घिसे बिना प्रेम, प्रणय नहीं बनेगा। सोने को कसौटी पर घिसे बिना चमक नहीं आयेगी। खर, शूकर, श्वान में साहस नहीं इस पर खरे उतरने का। श्री कृष्ण ही इस कसौटी पर खरे उतरे।

प्रेम क्या है? नायिका मान कर रही है, पुनः-पुनः मनुहार करने पर भी रुष्ट हो रही है तथापि नायक मना ही रहा है।

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे ।
यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्त्तितः ।

(उज्ज्वल नीलमणि १४/६३)

मान के बाद प्रणय है। नायिका को विश्वास है नायक मनायेगा इसलिए वह मान करती है, जो मना नहीं सकता वह प्रेमी नहीं अहंकारी है, यही सिखाया श्रीकृष्ण ने – कामिनां दर्शयन् दैन्यं..... के द्वारा जान बूझ कर दिखाया प्रेम क्या है, प्रेमी बनना चाहते हो तो सहना सीखो। धर्म संस्थापन के लिए ही तो भगवान् अवतार लेते हैं तो यहाँ कौन सा धर्म सिखाया? रास के द्वारा प्रेम धर्म की शिक्षा दी। प्रेम रूपी धर्म की स्थापना की। प्रेम में अहम् ही अधर्म है। उसका नाश किया –

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥

(भा.१०/२९/४८)

तो परीक्षित जी ने जो कहा कि परदाराभिमर्शन अधर्म है, वहाँ अधर्म क्यों किया प्रभु ने? वह वस्तुतः अधर्म नहीं है, वहाँ तो प्रभु ने जीवों पर कृपा की है –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(भा.१०/३३/३७)

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे ।
यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्त्तितः ।

(उज्ज्वल नीलमणि १४/६३)

ध्वंस का कारण विद्यमान है तथापि ध्वंस नहीं हो रहा है, यह भाव का बंधन ही प्रेम है। नाना प्रकार से मानिनी की सेवा कर रहे है, मना रहे हैं।

जहं जहं चरन पड़त प्यारी जू तेरे
तहँ तहँ मन मेरो करत फिरत परछाँहि ।

(केलिमाल)

मान, प्रणय, राग, और अनुराग

ऐसा मान ही गाढ़ होकर प्रणय बनता है, प्रणय ही राग बनता है, राग में दुःख भी सुखवत् प्रतीत होता है –

माई री मोहे यह बदनामी लागे मीठी ।

(मीरा जी)

अथवा

जो मेरो यह लोक जायेगो अरु परलोक नसाए री ।
नन्द नन्दन को तऊ न छाड़ों मिलूंगी निसान बजाय री ॥

(परमानंद दास जी)

अथवा

कोटिक हू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारों।

(रसखान)

अथवा

तजि देह को गेह को नेह सबै बसिये सुख सौं नित कुञ्ज गली ।
उमड़ी ही रहे जहाँ श्याम घटा बरसैं सरसैं रस भांति भली ।
सुख दुःख जहाँ इक रंग रहें हैं करील के कंटक कुंद कली ।
सुध लेत जहाँ निज दासन की ब्रज चाँद पिया वृषभानु लली ।

राग ही फिर अनुराग बनता है –

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा

(रा.उ.का.६१)

अथवा

अनुराग में –

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥

(भा.१०/३१/१५)

अथवा

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्द विरहेण मे ॥

(शिक्षाष्टक-७)

द्वारिका वासियों ने कहा –

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद् रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥

(भा.१/११/९)

हे अरविन्दाक्ष ! जब आप अपने बन्धु-बान्धवों के साथ मिलने के लिए हस्तिनापुर अथवा ब्रज चले जाते हैं तब वह काल हमारे लिए अतिदीर्घ हो जाता है, रवि के बिना भटकती आँखों जैसी हमारी स्थिति हो जाती है ।

अनुराग ही भाव बनता है, भाव में अनिष्टाशंका होती है । गोपियों ने कहा –

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः
शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥

(भा.१०/३१/१९)

भाव एवं महाभाव

भाव फिर अंतिम अवस्था पर पहुँच कर महाभाव बनता है। महाभाव में वंशी-वनमाला से भी ईर्ष्या हो जाती है।

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म
वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥

(भा.१०/२१/९)

किन्तु यह द्वेष नहीं वंशी का सौभाग्य-गान, वनमाला की सौभाग्य सराहना ही है। प्रेमियों की भाषा ही अलग है तो प्रेम की कसौटी है सहिष्णुता, जिसमें उत्तीर्ण होने के लिए मानिनी का मनुहार करना पड़ेगा, गाली भी सहन करनी पड़ेगी।

होरी के अवसर पर बरसाने में नन्दगाँव के लोग बराती के भाव से आते हैं। बसन्त पंचमी लक्ष्मी-नारायण भगवान् की भी विवाह तिथि है और होरी का डांड़ा बसन्त पंचमी से ही गढ़ जाता है –

ब्रज खेलत ब्रजराज कुमार । होरी डाडौ रोपियो ॥
पुनि सांडिल्य बुलाइ कैं लगन महूरत स्याम सुधाइ ॥

(वृन्दावन दास जी)

पुनश्च

रितु वसंत सुख खेलिये हो आयौ फागुन मास ।
होरी डाडौ रोपियौ सब ब्रज जन हिये हुलास ॥

(गोविन्द स्वामी)

फागुन पूर्णिमा ही गौर पूर्णिमा मानी जाती है। दाऊ जी का हुरंगा ही दाऊ जी का विवाहोत्सव है।

दाऊ दाऊ सब कहैं मैया कहे न कोय ।
दाऊ के दरबार में मैया कहे सों होय ॥

जैसे बरसाने में कृष्ण-राधे कोई नहीं कहता वैसे ही यहाँ भी मैया रेवती का नाम ही प्रथम लिया जाता है, दाऊ जी को रेवती रमण कहते हैं। बिना विवाह के रेवती जी का ब्रज आगमन सर्वथा असंभव ही है एवं रेवती जी पार्श्व में न होकर सन्मुख हैं चूँकि यहाँ रोहिणी मैया दाऊ जी के साथ रहती हैं तो मैया के सामने वधू पति के पार्श्व में नहीं बैठ सकती अतः

ब्रज की पर्दा प्रथा का पालन करते हुए श्री रेवती जी वाम भाग में न होकर सामने ही हैं, वैसे भी यहाँ प्रेम का इतना प्रभाव है कि दोनों एक-दूसरे को सदैव देखना चाहते हैं –

रेवतीरमणायैव गोपानां वरदायिने ।
अन्योन्यसन्मुखालोकप्रीतये च नमस्तु ते ॥

(ब्रज भक्ति विलास)

प्रेम, संबन्ध और विवाह

प्रतीति के बाद ही प्रीति संभव है।

जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥

(रा.उ.का.८९)

प्रेम तो संबन्ध के बाद ही होता है एवं विवाह के बाद ही संबन्ध संभव है।

कृष्ण विवाह

द्वारिका में रुक्मिणी श्रीकृष्ण की स्थापना हुई, ब्रज में सर्वत्र श्रीराधा-कृष्ण की उपासना हुई, आखिर वृन्दावन में श्रीजी की इष्टता का कारण क्या है क्योंकि यहाँ श्रीजी के साथ श्याम सुन्दर के साथ विवाह हुआ है और द्वारिका में रुक्मिणी जी के साथ, उसी प्रकार बलदेव में दाऊ जी के साथ रेवती जी की स्थापना का कुछ तो कारण होगा, आचार्यों के द्वारा यह स्थापना कारण रहित तो घोषित नहीं की जा सकती ।स्थापना का एक मात्र कारण है इष्टता, इष्टता तभी होती है जब वहां तत् सम्बन्धी लीला हुई हो। यदि रेवती जी का ब्रज से कोई सम्बन्ध ही स्वीकार नहीं किया जायेगा तो बिना इष्टता के स्थापना सिद्ध नहीं होगी फिर बलदेव में तो दाऊ जी से अधिक रेवती मैया की मान्यता है। "दाऊ के दरबार में मैया कहे सो होय।"

कृष्ण जन्म में अनेकों मत हैं –

१) वसुदेव - देवकी से श्री कृष्ण हुए।
२) नन्द - यशोदा से श्री कृष्ण हुए।

श्रीमद्भागवत में ही इस अद्भुत बालक का प्राकट्य (भागवत १०-३-८, ९) मैया देवकी से बताया फिर (भागवत १०-५-१) में बालक को नन्दात्मज कह दिया। (भागवत १०-१४-१) में पशुपाङ्गज कह दिया। (भागवत १०-८-१४) में तवात्मज कहा। (भागवत १०-९-२१) में गोपिकासुत कहा।

आदिपुराण वचन –

नन्दपत्न्यां यशोदायां मिथुनं समजायत ।
गोविन्दाख्यपुमान् पुत्र कन्या सा मथुरां गता ॥
वसुदेव समानीते वासुदेवेऽखिलात्मनि ।
लीने नन्दसुते राजन् घने सौदामिनी यथा ॥

रसिकों की वाणी में – **यशोदा नालिन छेदन दैहों** – (टीका)।

अब यहाँ कोई भी वचन काट्य न होने से सबको स्वीकार करना पड़ेगा।

दाऊ जी विवाह

दाऊ जी व रेवती जी का द्वारिका में विवाहोत्सव मानने वालों को भी मैया रेवती का ब्रज लीला से सम्बन्ध तो स्वीकार करना ही पड़ेगा अन्यथा बलदेव में आचार्यों द्वारा दाऊ जी व रेवती जी की स्थापना को लोग निराधार व कपोल कल्पित ही कहेंगे। रेवती मैया की ब्रज में स्थापना ब्रज लीला से सम्बन्ध दिखाती है, वह चाहे विवाह के द्वारा अथवा दाऊ जी के साथ द्वारिका से ब्रज में आवागमन के द्वारा।

श्री हरिवंश पुराण, श्री गर्ग संहिता, श्री विष्णु पुराण, श्री गोपाल चम्पू –आदि के अनुसार दाऊ जी का विवाह स्थल श्री द्वारिका है किन्तु श्री ब्रह्मवैवर्त, ब्रज भक्ति विलास व रसिकों का कथन है कि दाऊ जी का विवाह स्थल – विद्रुम वन (बलदेव) है। श्री सुदर्शन सिंह चक्र का भी यही मत है।

समन्वय –

"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता ।"

(रा.बा.का.१४०)

दोनों ही मत सत्य हैं।

यथा –

किसी जन्म में प्रतापभानु के रावण बनने की कथा है, किसी जन्म में सनकादिक से शापित हो जय-विजय के रावण बनने की कथा प्राप्त होती है तो किसी जन्म में “तहँ जलन्धर रावण भयऊ” जलन्धर के रावण बनने की कथा है।

इसी प्रकार यहाँ भी बलदेव विवाह स्थल विद्रुमवन, द्वारिका दोनों को ही स्वीकार करना चाहिए, यही इसका समन्वय है।

जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण विवाह की चर्चा हुई, वहाँ-वहाँ सर्वत्र सभी ने बलराम विवाह गाया। चूँकि अग्रज के रहते अनुज का पहले विवाह होना शास्त्र विरुद्ध है इसे "परिवेत्ता" दोष कहा गया है –

शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्तायमग्रभुक् ।
राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥

(भा.९/२२/१५)

शन्तनु परिवेत्ता (अग्रज के रहते पहले स्वयं विवाह किया) थे, जब ये सिंहासनासीन हुए तो द्वादश वर्ष वर्षा ही न हुई अतः सभी ने परिवेत्ता दोष का बड़ा ध्यान रखा है। यद्यपि भगवान् को शाप बाधा बाधित नहीं करती, कोई दोष नहीं लगता –

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥

(भा.१०/३३/३०)

समरथ कहुं नहिं दोषु गोसाईं । रबि पावक सुरसरि की नाईं ॥

(रा.बा.का.६९)

तथापि भगवान् ही धर्म मर्यादा के उपदेष्टा व रक्षक भी हैं इसीलिए श्रीमज्जीव गोस्वामी जी ने गोपाल चम्पू में पहले बलराम विवाह गाया फिर कृष्ण विवाह गाया। 'गर्ग संहिता' में भी प्रथम बलराम विवाह है। 'हरिवंश पुराण' में भी पहले दाऊ विवाह का वर्णन है। भागवत जी में तो शुक मुनि ने परिवेत्ता दोष के निवारणार्थ दो बार दाऊ जी का विवाह गाया ९/३/२७-३६, १० श्लोकों में दाऊ जी का विवाह गाया।

फिर दशम स्कन्ध में भी कृष्ण-रुक्मणि विवाह के पूर्व एक श्लोक –

आनर्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रैवतीं सुताम् ।
ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद् बलायेति पुरोदितम् ॥

(भा.१०/५२/१५)

में बलराम जी का विवाह वर्णन किया है। विवाह गान सभी ने किया किन्तु यह विवाहोत्सव हुआ कहाँ, इसका स्पष्टीकरण नहीं किया। महान विभूति श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र' ने भी "भगवान् वासुदेव" ग्रन्थ में बलराम विवाह का स्थान मथुरा मण्डल ब्रज भूमि को माना किन्तु ब्रज भूमि में भी यह विवाहोत्सव कहाँ हुआ? 'ब्रह्मवैवर्तपुराण', 'ब्रज भक्ति विलास' आदि से यह स्पष्ट हुआ।

ब्रज भक्ति विलासानुसार (मात्स्य पुराण)

विद्रुमोद्भवरूपाय तालांकरचिताय च ।
सर्वसौन्दर्यगन्धाय वनाय च नमोस्तु ते ॥

मैया रोहिणी जी को विद्रुम वन (बलदेव ग्राम) बहुत प्रिय था, कारण कि दाऊ जी महाराज ने इस वन को बनाया। सुन्दर विद्रुम वृक्ष चतुर्दिक् सुन्दर-सुगन्धित बेल से समावृत रहते, उनके भी चारों ओर कदम्ब की सघन पंक्ति बड़ी मनोहर लगती, रोहिणी जी स्वयं यहाँ श्रृंगार करतीं, यह श्रृंगार भूमि है। देव, गन्धर्व, किन्नरों से वेष्टित इस वन में मैया रोहिणी प्रतिदिन आतीं और आभूषण बनाने के लिए विद्रुम (मूंगा) लेकर जातीं। उनके सुन्दर-सुन्दर आभूषण निर्माण करतीं। उसी स्थल को रोहिणी जी ने अपना प्रिय जान करके चुना –

रोहिणी कृत तीर्थाय नमस्ते कल्मषापह ।
देवगन्धर्वभूषाय सर्व सौभाग्यदायक ॥

रोहिणी जी से रचित, पापों को दूर करने वाला, देवता व गन्धर्वों का भूषक सभी सौभाग्यों को देने वाला, इस तीर्थ को नमस्कार है।

दाऊ जी के विवाह का अवसर जब निकट आया तो मैया को बलदेव स्थान ही अच्छा लगा। सूर्य वंश में महाराज शर्याति के तीन पुत्र हुए – उत्तानबर्हि, आनर्त्त, भूरिषेण। आनर्त्त से रेवत हुए, रेवत से ककुद्मी, ककुद्मी से रेवती जी का जन्म हुआ। कन्या के लिए सुयोग्य वर पूछने ब्रह्मलोक गए। वहाँ कुछ क्षण प्रतीक्षित रहे पश्चात् ब्रह्मा जी से कन्या के लिए वर पूछा।

ब्रह्मा जी बोले – "पृथ्वी पर तो इस समय तुम्हारे नाती-पोतों के गोत्रों का भी नाम-चिन्ह नहीं है।"

२७ चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी है, इस समय शेषावतार बलराम जी अवतरित हैं, यह कन्या सर्वथा उन्हीं के योग्य है अतः विवाह में विलम्ब न करें। ककुद्मी ब्रह्माज्ञा से आये, कोई वंशज शेष न बचा अतः बिना बरात ही कन्या विवाह को बलदेव ग्राम आये। ब्रजवासियों को तो अपने लाला की वधू चाहिए, बरातियों से क्या प्रयोजन? स्वयं ही घराती-बराती बनकर वे सभी प्रथाओं का निर्वाह करने लगे। दाऊ जी में आज भी हुरंगा-विवाहोत्सव के समय दाऊ जी के ही हुरयारे रहते हैं व दाऊ जी की ही हुरियारिन रहती हैं चूँकि इस विवाहोत्सव पर ये ही घराती भी रहे और बराती भी।

ब्रह्मवैवर्तानुसार

दत्त्वा कन्यां विधानेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि ।
गजेन्द्राणां त्रिलक्षं च जामात्रे यौतुकं ददौ ॥
दशलक्षं तुरङ्गाणां रथानां लक्षमेव च ।
रत्नालंकारयुक्तानां दासीनां चापि लक्षकम् ॥
मणिलक्षं रत्नलक्षं स्वर्णकोटिं च सादरम् ।
वह्निशुद्धांशुकं रम्यं मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥

(ब्र.वै.पु.कृ.ज.खं.१०६/४, ५, ६)

ककुद्मी ने दहेज में तीन लाख हाथी, दस लाख घोड़े, एक लाख रथ, एक लाख मणि, एक लाख रत्न, एक करोड़ स्वर्ण मुद्रा, सुन्दर कान्ति युक्त वस्त्र, मोती-माणिक-हीरों की तो गणना ही नहीं। दहेज देने की सामर्थ उनको ब्रह्मा जी से प्राप्त हुई क्योंकि ब्रह्मा जी ने ही विवाह का वर बताया और यह भी बताया था कि तुम्हारा राज्य समाप्त होने पर भी तुम इच्छित दहेज देने की सामर्थ प्राप्त कर लोगे।

द्वारिका से विवाहोत्सव का आनंद लेने के लिए दस हजार यदुवंशी भी आये हैं, जिनके लिए क्षीर सागर में खीर बनी, खूब ज्यौनार भई। इस तीर्थ के प्रभाव से इसके सेवन करने वालों को अतुल लक्ष्मी प्राप्त होती है।

यत्र नन्दादयो गोपाः यदोर्नैमन्त्रणञ्चरेत् ।
दशायुतगवां दुग्धं समानीयात्रप्रक्षिपुः ॥
दुग्धपूर्णं पयोकुण्डं प्रचख्युर्दुग्धकुण्डकं ।
नानामिष्टान्नद्रव्यैस्तु सिताद्यैःद्राक्षेक्षुचरैः ॥
तण्डुलैः पायसं चक्रुर्बलदेवस्य प्रीतये ।
श्रावणे च सहो मासे पायसं च निवेदनम् ॥
तेषां गृहे वसेत् लक्ष्मीर्दुग्धपूर्णवसुन्धरा ।
हलिनो वरदानेन जलं दुग्धं प्रजायते ॥

(ब्रज.भ.वि.प.पु)

यत्रैव बलदेवस्तु यदुपुत्रैःसमन्वितः ।
भोजनं क्रियते स्वेच्छं कृतदुग्धाढयपायसम् ॥
नन्दादिसकलैर्गोपैर्बहुदुग्धविभूतये ।
यत्रैव वनयात्री च नैवेद्यं पायसं चरेत् ॥

(ब्रज.भ.वि.आ.पु)

अथान्तरे च निर्बन्धे साङ्गे मङ्गलकर्मणि ।
रेवतीं वेशयामास योषितां कमलाकलाम् ॥
देवकी रोहिणी चैव यशोदा नन्दगेहिनी ।
अदितिश्च दितिः शान्तिर्जयं कृत्वा च मन्दिरम् ॥

(ब्र.वै.पु.कृ.ज.खं.१०६/८, ९)

यहाँ पर दाऊ जी ने समस्त यादवों सहित खीर खाई थी, नन्दादि सभी गोपों ने विभूति (समस्त यादवों का सम्मान विभूतियों से ही संभव है) अतः ब्रज की समस्त गायों को दुहा गया। इसलिए यहाँ वन यात्री को भी नैवेद्य में पायस (खीर) चढ़ानी व पानी चाहिए। आज भी पायस (रबड़ी) आदि दाऊ जी को अवश्य समर्पित होती है, यह परम्परा उक्त श्लोक का प्रमाण है।

मांगलिक कृत्यों के पश्चात् मैया देवकी, मैया रोहिणी, मैया यशोदा, अदिति, दिति, शान्ति, लक्ष्मी आदि ने रेवती को जय-जयकार पूर्वक मन्दिर में प्रवेश कराया, आज भी मैया का ही जयघोष बलदेव में होता है –

"दाऊ के दरबार में मैया कहे सो होय"

विवाह के बाद अतिशय संकोच, लज्जा के भाव में मैया रेवती आज भी वाम पार्श्व में नहीं दाऊ जी के सन्मुख विराजमान हैं। ससुराल में वधू पति के निकट सन्मुख नहीं बैठती है फिर प्रेम भी तो यही कहता है।

मिलिबो नैनन ही को नीको ।
चारों नयन भये इक ठोरे धोको मिट गयो जी को ॥

(सूरदास)

ब्राह्मणान्भोजयामास ददौ तेभ्यो धनं मुदा ।
मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य वल्लभा ॥

(ब्र.वै.पु.कृ.ज.खं.१०६/१०)

विवाह के पश्चात् मैया रोहिणी ने ब्राह्मणों को भोजन कराया, उचित दान दिया, मंगल आशीष प्राप्त किया।

लेखक श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, एम.ए. विद्यालंकार, अध्यक्ष पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा का अद्भुत ग्रन्थ 'ब्रज का इतिहास (प्रथम खण्ड)' भी इस बात का प्रबल पौराणिक प्रमाण है कि रेवती रमण का विवाह स्थल ब्रजमण्डल ही है।

मैया यशोदा का विवाह में यहाँ सम्मिलित होना बलदेव में दाऊ जी के विवाह का पर्याप्त प्रमाण है। ऐसा क्या विशेष है जो दाऊ जी व बरसाने की होरी-हुरंगा का दर्शन करने सम्पूर्ण संसार उमड़ पड़ता है?

कारण : राम-श्याम का विवाह ही होरी-हुरंगा का निश्चित इतिहास है।

रेवती रहस्य

संकर्षण का संग पाने के लिए नागलक्ष्मी रेवती में विलीन हुई। सृष्टि के आदि की घटना है – चक्षुष पुत्र चाक्षुष मनु ने विशाल यज्ञ किया। उस यज्ञ कुण्ड से ज्योतिषमती नाम से विभूषित होने वाली कन्या उत्पन्न हुई। विवाह योग्य होने पर पिता के पूछे जाने पर कन्या ने सर्वाधिक बलवान पुरुष को पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। चाक्षुष मनु ने अपनी कन्या के योग्य वर ढूँढ़ना आरम्भ किया। मृत्यु लोक में तो चर्चा ही नहीं की। सीधे स्वर्ग से देवराज इन्द्र को बुलाया, सम्मान सहित बैठाया और प्रश्न किया – "देवराज ! क्या आपसे अधिक बलवान कोई पुरुष है?" इन्द्र – "वायुदेव के सहयोग से ही मेरे समस्त

कार्य संपन्न होते हैं। अतः निश्चित ही वे मुझसे अधिक बलवान है।" वायुदेव का आह्वान किया गया, वायुदेव ने यह कहते हुए कि मेरा वेग पर्वतों को हिला नहीं पाता है इसलिए निश्चित ही पर्वत मुझसे अधिक शक्ति संपन्न है फिर पर्वतों ने अपने से अधिक भूमण्डल को बताया तब भूमण्डल ने अपने से श्रेष्ट संकर्षण को बताया। संकर्षण से अधिक शक्ति युक्त कोई नहीं है, जिनके एक मस्तक पर पर्वत, नदी, समुद्र, वन, अखण्ड भूमण्डल राईवत् रखा है और सम्पूर्ण त्रिलोकी को समाप्त करने वाला महापातकी भी जिनके नाम कीर्तन से कैवल्य पद प्राप्त कर लेता है, उनसे अधिक शक्ति सम्पन्न दूसरा संभव नहीं। अनुक्षण ज्योतिषमती पितृ आज्ञा से तप हेतु विंध्याचल गिरि गईं एवं शीतोष्ण द्वन्द सहते हुए कठोर तप में अवस्थित हो गईं। तप के तेज से ज्योतिषमती का मुख मण्डल चमक उठा। अनेकानेक देवगण ज्योतिष्मती के निकट पहुँचे।

इन्द्र बोले – "देवि ! सकर्षण के लिए व्यर्थ ही इतना तप तुम कर रही हो, मैं देवराज हूँ, मेरा वरण कर लो।"

यमराज – "मुझसे विवाह करने पर पितृ लोक में मेरी सबसे श्रेष्ठ पत्नी बनकर सुख से रहोगी।"

कुबेर – "मेरा वरण करने पर धनाभाव तो कभी रहेगा ही नहीं।"

अग्नि – "मुझ जैसा तेज युक्त पति तुम्हें कहाँ मिलेगा, मेरा वरण कर लो।"

वरुण – "सप्त समुद्रों का यह दुर्लभ वैभव मेरे ही अधिकार में है।"

सूर्य – "प्राणी मात्र का नेत्र हूँ मुझसे श्रेष्ठ तुम्हें कौन मिलेगा।"

चन्द्रमा – "मैं सभी औषधियों का अधीश्वर, नक्षत्रराज, अमृत की खान, बल का दाता हूँ मेरा ही तुम वरण करो।"

मंगल – "अपना कल्याण चाहती हो तो मैं मंगल करने वाला मंगल ही हूँ। हे मंगल कामिनी ! तुम मेरा ही वरण करो।"

बृहस्पति – "मैं देव गुरु हूँ, देवों को छोड़ मेरा ही वरण तुम्हारे लिए सम्यक् रहेगा।"

शुक्र – "मैं दैत्य गुरु हूँ, जिन दैत्यों के भय से देवता छिपने का स्थान ढूँढ़ते हैं। मेरा वरण करने पर किसी भी प्रकार का तुम्हें भय नहीं रहेगा।"

शनि – "नर तो क्या देव भी मुझसे भयभीत रहते हैं, अतः मुझसे अधिक बलशाली कौन होगा? तुम मेरा ही वरण करो।"

इन सभी देवों की बात सुनकर ज्योतिषमती के प्रचण्ड क्रोध से भूमण्डल सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड काँप उठा। क्रोधित ज्योतिषमती ने देवों को शापित किया।

ज्योतिषमती – "शनि ! जा तू लंगड़ा हो जा, काला कलूटा हो जा। काले तिल का तेल पी व उड़द खा। शुक्र ! तू काना हो जा।

बृहस्पति ! तू स्त्री भाव को प्राप्त हो जा।

बुद्ध ! तू निष्फल हो जा (तेरे दिवस जो कार्य किया जाएगा वह सफल नहीं होगा)

मंगल ! तू बन्दर मुख हो जा।

चन्द्रमा ! तुझे राजयक्ष्मा रोग हो जाये।

सूर्य ! तू बिना दांत का हो जा।

वरुण ! तुझे जलंधर रोग हो जाए।

अग्नि ! तू मलादि सब कुछ (खाद्य +अखाद्य) खा।

कुबेर ! तेरा पुष्पक विमान छिन जाये।

यमराज ! तू शक्तिशाली राक्षसों से पराजित हो जा।

इन्द्र ! तू कपट पूर्वक मेरे निकट आया, संकर्षण का निंदक, जा तेरी पत्नी का हरण होगा। स्वर्ग से तुझे भगा दिया जाएगा।"

बदले में इन्द्र ने भी ज्योतिष्मती को शाप दिया – "तुम संकर्षण को प्राप्त करके भी पुत्रहीना रहोगी।"

तब तक विधि वहाँ पहुँचे वर माँगने को कहा।

ज्योतिष्मती बोलीं – "मुझे संकर्षण पति रूप में प्राप्त हों, यही वर चाहिए।"

विधि – "सुमुखी ! यह दुर्लभ वर मैं तुम्हें देता हूँ। अभी वैवस्वत मन्वंतर प्रारम्भ हुआ है, इसकी २७ चतुर्युगी व्यतीत होने पर संकर्षण तुम्हारे पति होंगे।"

ज्योतिष्मती – "मैं दीर्घकाल की प्रतीक्षा नहीं कर सकती, मुझे संकर्षण शीघ्र ही मिलें ऐसा वर दीजिए अन्यथा अन्य देवों की तरह मैं आपको भी शाप दे डालूंगी।"

भयभीत विधि बोले – "हे देवी ! तुम आनर्त देश के राजा रेवत की कन्या बनो, इससे एक ही जन्म में तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा।"

वर देकर विधि अन्तर्हित हो गए, तदनन्तर ज्योतिष्मती ने राजा रेवत के यहाँ जन्म लिया, रेवती नाम हुआ। राजा रेवत कन्या का सुयोग्य वर ढूँढ़ने ब्रह्मलोक पर्यन्त गए, तब वहाँ ब्रह्मा जी ने श्री बलदेव को ही कन्या का सुयोग्य वर बताया। ब्रह्मलोक में तो एक ही क्षण व्यतीत हुआ किन्तु मृत्यु लोक में तो २७ चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी थी, अतः पृथ्वी पर राजा रैवत के पुत्र, पौत्र, नाती तथा सगोत्र भी नहीं रह गए थे अतः बिना बरात ही कन्या विवाहार्थ आये।

दाऊ जी – क्षीर सागर कुण्ड एवं बलदेव जी मंदिर में राधा रानी ब्रज यात्रा

दाऊ जी का होरंगा एवं होरंगा समाज

अध्याय – ४६

ऋणमोचन

अक्रूर जी के साथ मथुरा गमन के समय श्रीकृष्ण कहते हैं –"अरे ! हम जा रहे हैं। नन्द बाबा और यशोदा मैया ने हमारे लिए सब कुछ सहा और अपना बेटा समझ कर उन्होंने सब गालियाँ सुनी, हम इनके ऋणी तो हैं ही, इनका ऋण कभी नहीं चुका पायेंगे।" ऋणमोचनघाट पर श्रीकृष्ण ने स्नान किया और बोले – "जो यहाँ स्नान करेगा वो माता-पिता के ऋण से मुक्त हो जाएगा।"

चिन्ताहरण

यह स्थान महादेव लीला से सम्बद्ध है। मथुरा से नन्दलाल जब नन्दब्रज आये तो नन्दमहोत्सव हुआ, उस महा-महोत्सव में शिव जी भी पधारे। जन्माष्टमी अवसर पर नन्दगाँव में जब नन्दोत्सव गोस्वामी-ब्रजवासी गण मनाते हैं तो आज भी महादेव लीला होती है।

'गर्गसंहितानुसार' महादेव जी का आगमन नन्दोत्सव से ही आरम्भ हो जाता है। श्री नारद जी वर्णन करते हैं – "राजा बहुलाश्व ! पुत्रजन्मोत्सव पर नन्द बाबा ने एक कोस लम्बी भूमि में रत्नगिरि खड़े कर दिये, जिनकी स्वर्ण शिखर पर उगते हुए रवि की रक्त किरणें रत्नगिरि पर कहीं-कहीं लालमणि का स्फुरण करा रही थीं। ब्रज-वसुन्धरा में सर्वत्र सिन्धुसुता का साम्राज्य हो गया, अलौकिक घटनाएँ संघटित हुईं, राशि-राशि पद्म प्रस्फुटित हो गये।" "षड् ऋतु रहत सदा कर जोरे" नीलमणि शिशु की दिव्य ज्योति सम्पूर्ण दिङ्मण्डल को विद्योतित करने लगी। ब्रजपुरवासियों के आनन्द-रसोदधि की लहरों का तो न कोई 'अर्थ' जान सकता है, 'इति' का तो फिर प्रश्न ही नहीं रह जाता। मांगलिक नृत्य गान आरम्भ हुआ तो तरुणी क्या वृद्धा गोपियाँ भी अपनी अवस्था विस्मृत कर नव-तरुणीवत नाचने लगीं। "**गोपी झमक झमक के नाचें ग्वाला गावैं मीठे गान**।" नौ नन्द, उपनन्द, छः वृषभानु सभी आये। गोपियाँ कंचन थाल में मोती लुटाते हुए आयीं। आनन्दोन्मत्त गोप वधूटियों ने कर पकड़ कर यशो दायिनी यशोदा एवं आरोहण कारिणी रोहिणी को नचा दिया और तो कहाँ तक कहें जड़ चेतन सब नृत्य कर रहे हैं। गोपियों के उत्तंग कुचों पर मणिमालाएँ भी उछल रही हैं, गुरु नितम्ब पर बंधी किङ्किणी भी क्वणन सहित कूद रही है। रत्न गुच्छ

गुम्फित अवलम्बित चंचल वेणी तो बहुत ही आनन्द ले रही है। आज के दिव्यातिदिव्य आनन्द रस के निर्झर का सीकर कोटि-कोटि रसार्णवों को जृम्भित कर रहा है। उस दिव्य रसार्णव में उनमज्जन-निमज्जन हेतु सनकादिकजी, कर्दम नन्दन प्रभु (कपिल), शुकदेव जी, व्यासदेव जी, दत्तात्रेय जी, पुलस्त्य जी सभी पधारे। नारद जी भी ब्रह्मा जी की अंगुली पकड़ कर आये। **"चतुर्मुखो वेदकर्ता द्योतयन्मंडलं दिशाम्"** चार मुख के देव को देखकर ब्रजवासी जन तो खूब हँस रहे हैं। ब्रज में बड़ा कोतूहल है, तब तक वृषारूढ होकर पञ्चानन आ गये। **तथा तमनु भूताढयो वृषारूढो महेश्वरः ।**

गजारूढ़ होकर शचि पति इन्द्र आ गए। इसी प्रकार अपने-अपने वाहनों पर आसीन होकर वायुदेव, यमराज, कुबेर, अग्नि, चन्द्रमा, वरुण, कार्तिकेय आदि समस्त देवगण आये। हंसासीन होकर देवी सरस्वती पधारीं, सिंहासीन होकर भगवती दुर्गा आयीं, गौरूपा पृथ्वी आयीं एवं पालकियों पर बैठ कर षोडश मात्रिकायें आयीं, षष्ठी देवी भी पधारीं। नन्द ब्रज में आनन्द-कन्द नन्द-नन्दन के आगमन पर प्रेमिल तथा रसिक हृदय चिर वाँछित अक्षुण आनन्द सर में सराबोर हो गए। नन्दोत्सव भी सम्पन्न हो गया किन्तु चंद्रचूड़ (शिव) को कहाँ चैन कैलाश में? पुनः चल दिए नन्दालय की ओर। इस महादेव लीला का रसिकाचार्यों ने विस्तार पूर्वक गान किया है। विचित्र वेषभूषा वाले श्री शिव जब पहुँचे नन्द मन्दिर के बाहर, द्वार पर देखा, यहाँ तो अभी भी नन्दोत्सव जैसी ही गोपियों की भीड़ लगी हुई है। कोई किसी कार्य में व्यस्त है तो कोई किसी कार्य में, मानो नन्द मन्दिर अब इन्हीं का निज निकेतन (घर) हो गया है।

(ग.सं.गो.खं.अध्याय१२)

शिव स्वरूप –

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम् ।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयम्
चकारचण्ड्ताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥

(शिव तांडव स्तोत्र)

जटा जूट से गंगा जल बह रहा है, गले में सर्प माल, मुंड माल धारण किये हुए हैं, कर में डमरू घोष कर रहा है। औघड़ रूप लिए महादेव बाबा ने द्वार पर रुकते ही आवाज लगाई "अलख निरंजन" (अपने आप से)। लगता है अभी किसी ने सुना नहीं। पुनः "अलख निरंजन"। मैया बाहर आई। योगी राज – "भिक्षांदेही" (रत्नापूरित थाल आगे बढ़ाते हुए) – "स्वीकार करौ बाबा"। योगीराज – "हमें तो आपके लाला के दर्शन की भिक्षा चाहिए।"

मैया – "कहा कही बाबा जी, मोकू स्वयं तेरे औघड़ रूप कू देखकर डर लग रह्यो है, तेरे अंग में तमाम साँप-सपूरे लटक रहे हैं। मेरो लाला तो नवजात है, देखकर डर जायेगो, मैं अपने लाला के दर्शन तोकू नहीं कराऊँगी।" मैया के वचन सुनकर शिवजी यमुना किनारे

इसी स्थान पर (चिन्ताहरण) आ कर बैठ गए, इस चिन्ता में कि अब प्रभु के दर्शन कैसे होंगे, मैया ने तो मना कर दिया है। इधर नन्द भवन में यशोदा नन्दन का रुदन आरम्भ हुआ। मैया ने बहुत यत्न किया चुप कराने का। कभी खिलौना दें, कभी दूध पिलायें किन्तु ये त्रिलोकी पति भी तो हठ कर बैठे हैं त्रिपुरारी से मिलने का। गोपीजन बोलीं – "मैया ! हमें तो लगै वो जोगी ही कछु कर गयो है, नहीं तो ऐसो तो लाला कभी नहीं रोयो।" ऐसो ही लगै यह वह जोगी को ही करो धरो है, जाओ तुम वाको बुला लाओ। गोपीजन चिन्ताहरण आयीं, जहाँ शिवजी चिन्तित बैठे हुए थे। गोपीजन बोलीं – "बाबा ओ बाबा ! कहा सोच रह्यो है जल्दी चल ...।"

योगीराज – "कहाँ? "

गोपीजन – "नन्द भवन में"

(महादेवजी समझ गए, हमारे नाथ ने हमारी बात सुन ली, अब तो अभीष्ट पूरा होगा ही, क्यों न थोड़ी देर नखरे कर लें)

योगीराज – "वहाँ ते मैया ने मोकू भजा दियो, मैं नहीं जाऊँगौ।"

गोपी – "अरे योगीराज ! मैया ने ही तोकू बुलवायौ है, तू कछु मन्त्र-जंत्र, झाड़ा-फूँकी करनौ जानै? " (महादेव जी समझ गए कि नाथ ने यह स्वांग रच्यौ है तो हम क्यों मना करैं?) बोले योगीराज – "अरी गोपियो ! मैं तो ऐसो मन्त्र जानूं, ऐसो ताबीज बना दूंगौ कि फिर तुम्हारौ लाला जनमभर नहीं रोवैगौ।"

गोपीजन – "अच्छौ तो जल्दी चल अब तू।" यहाँ इस स्थान पर महादेव जी की चिंता दूर हुई इसलिए इस स्थान का नाम चिन्ताहरण है। उसमें भी विशेष तो यह है कि यहाँ जो भी आता है, महादेव उसकी भी चिंता दूर कर देते हैं तो चिन्ताहरण नाम दोनों पक्ष में है।

१. निज चिन्ताहरण हुई।
२. जन चिन्ताहरण होती है।

मैया ने योगीराज कू बुला तो लियौ पर अभी भी लाला के दर्शन करायबे कू तैयार नहीं है।

मैया – "बाबा ! तेरे अंग-अंग में साँप लटक रहे हैं, कोई इधर फुफकार मार रह्यौ है तो कोई हमारी ओर फुसकार रह्यौ है।"

योगीराज भी सोचवे लगे अभी तौ मामलो सुलझो नहीं है। मैया इतनी जल्दी दर्शन नहीं करावैगी।

चाचा वृन्दावन दास जी के शब्दों में –

रसिक जोगी मचल्यौ मेरे आँगन मानत नहि समुझायौ ।
भिक्षा लेइ न मुख तें बोलै इनको मतौ उपायौ ॥
बूढ़ी बड़ी भेद कहौ याकौ मुहि संदेह दबायौ ।
पुत्र भये पै पहिलैं कबहूँ काहू कैं हो आयौ ॥

योगीराज – "अरी मैया ! मैं तेरे लाला के दर्शन करवे या गोकुल में पहले भी आ चुकौ हूँ ।"

सुन्यौ न देख्यौ ऐसौ कबहूँ जैसौ भेष बनायौ ।

मैया – "ऐसो वेष वारो योगी तो मैंने आज तक कभी नहीं देखौ ।"

पलना ओर चितै कैं इन कछु आक धतूरौ खायौ ॥

मैया – "बड़े बड़े योगी आये, कोई माल-पुआ खावै, बढ़िया-बढ़िया पदार्थ खावै और यह तो जहर खा रह्यौ है, एक टक पालने की ओर देख रह्यौ है ।"

देखि जटनि तें वरषत पानी गरै नाग लपटायौ ।
चन्दा सौ चमकत है माथैं सब तन भस्म लगायौ ॥
बाघम्बर ओढ़ैं यह सजनी डौंरू हाथ बजायौ ।
किलकत है सुनि कुँवर कन्हैया ऐसौ इन कछु गायौ ॥

मैया – "अरी देखो तो सही, याकी आवाज सुनकै हमारौ लाला प्रसन्न हैके किलकारी मार रह्यौ है ।"

(सब सखियाँ परस्पर बोलीं) – "चलौ या जोगी ते पूछैं तो सही, यामे तो सचमुच बड़ो चमत्कार है ।"

आवौ री आवौ सब बूझौ कौन बात हठ लायौ ।

गोपीजन – "अरे जोगीराज ! तू हठ क्यों करै? दूर ते ही लाला कू देखके चलौ जा ।"

जिहिं तिहिं भाँति टरै मो घर तें देहु याहि मन भायौ ॥

सब बोलीं – "याकू याकी मनभायी वस्तु दे दो, पर कैसे भी याकू यहाँ ते विदा करो ।"

मैया बोली – "मोकू तो बड़ी शंका है रही है क्योंकि याके नाग मेरी ओर फुसकार रहे हैं ।" सर्प शिव पार्षद हैं अतः वे भी मैया के दर्शन करके प्रसन्न है रहे हैं और उनकी तरफ अपने फन फैला रहे हैं ।

हौं संकति धीरज धरि तद्यपि तुमकौं टेरि बुलायौ ।

"अरी ! या बाबा जी कू जल्दी भगाओ कहीं कन्हैया ने साँप देख लिए तो डर जावैगो, रोवैगो ।"

बालक की जौ दृष्टि परैगौ निश्चैं जाइ डरायौ ॥

वृद्धा पूर्णमासी जी आदि ने कही जोगी जी ।
जो चाहिए सो लै लेओऔर यहाँ ते विदा ल्यो ॥

तब बोलीं गोपी सुख ओपी मधुरौ वचन सुनायौ ।
कौन काम तुम नाथ हमारी नगरी मन बिरमायौ ॥

वृद्धा गोपी – "यहाँ कहा लैवे आयो हो बाबा" ।

मैं तपसी वन खंड निवासी जनमत जोग कमायौ ।
ताको फल लाग्यौ इह नगरी सुधि पायें उठि धायौ ॥

"अरी मैया ! मैं जनम ते ही जोग कर रह्यो हूँ। ध्यानावस्था में मोकू ज्ञात भयो कि मेरी आजन्म साधना को फल यहाँ गोकुल में आ गयो है तो मैं वाकू लैवे आयो हूँ।"

गोपीजन ने पूछा –

कौन वृक्ष अरु बेल लग्यौ फल ताकौ तुम जु बतायौ ।

"कौन से वृक्ष और बेल में लग्यो है बाबा तेरो फल ! अरे यहाँ कोई वृक्ष नहीं है यह तो मणिमय भवन है, जा कोई बगीचा में आसन जमा, जहाँ वृक्ष हों वहाँ तेरो फल होगो।"

नहिं वन नहीं बाग ह्यां बलि जाउँ आसन जहाँ जमायौ ॥

सुनकर महादेव जी हँस गये।

हरहर हँसे नाथ यह सुनि कैं लाग्यौ वचन सुहायौ ।

बड़ी भोली गोपी है, अनन्त ब्रह्माण्ड के फल कू पहिचान नहीं पा रही है। बोले –

कौन वृक्ष कौ बाग बताऊँ जसुमति भवन दुरायौ ॥
सुकृत पुञ्ज की लता जसोमति परम तत्व फल जायौ ।

"अरी गोपीजनों ! या ब्रह्माण्ड में जितने सुकृत हैं उनकी लता है यशोदा मैया, या लता में ही परम तत्व रूपी फल आयो है, नन्द भवन रूपी बाग में।"

मोहि देखि मणि मन्दिर रानी मोरि कपाट छिपायौ ॥

ऐसो सुनते ही मैया ने कक्ष के द्वार बंद करके अपने लाला कू दुरा (छिपा) लियो।

योगीराज – "गोपियों ! हमारे स्वामी अलख पुरुष (श्रीकृष्ण) ने ही हमकू यहाँ भेज्यो है, या सो हमें सब पता है।"

अलख पुरुष मेरौ अन्तर जामी तिन मोहि प्रेरि पठायौ ।

महादेव जी ने विचार किया ऐसे बात नहीं बनेगी अब कुछ सिद्धाई दिखानी चाहिए।

योगीराज – “गोपियो ! जाके रानी यशुदा से कहो मेरे पास एक ऐसो ताबीज है कि जा बालक कू पहना दूँगो, वही अमर है जायगो, अगर इच्छा होय तो पहिराय दूँ नहीं तो पीछे पछतावे ते कछु नहीं है। मैंने बहुत श्रम ते वाकू बनायो है।”

बहुत जतन करि जंत्र मन्त्र सौं गंडा इक रचि लायौ ॥
पुत्र जनम तैं दान बहुत दियौ सुजस सकल जस छायौ ।
तेरे भूर भाग की महिमा बरबस चित्त जू चुरायौ ॥
काया अमर करन तुव सुत की मेरौ मन अकुलायौ ।

“मैया ! मैं तो बस तेरे लाला कू यह ताबीज पहिनाय के अमर करबे यहाँ आयो हो, पर तू या ताबीज की महिमा कू समझ नहीं पा रही है, पीछे पछतावैगी।”

खोजि विकट गिरि बूटी लायौ तैं आदरु न दिवायौ ॥
मेरी वानी अमृतसानी जौ न मोद उपजायौ ।
तौ पाछैं सुधि करि है रानी आगम तोहि जतायौ ॥

लाला के अमर हैवे की बात ते मैया के मन में लालच आ गयो, थोड़ी सी किवाड़ खोलके बोली – “अरी रोहिणी जी ! बाबा जी कछू चमत्कारी लगै, चूनमंगा नहीं है।” पहिले तो जोगी जी की ओर देख भी नहीं रहीं और अब...

उझकि उझकि देखति मन्दिर तें जननी मन ललचायौ ।
सुनौ रोहिनी रावल बानी महा पुरुष दरसायौ ॥

महादेव जी ने एक और चाल चली, विचार कियौ मैया तो अब वश में है गई है, अब श्रीकृष्ण कू और वश में करनौ है । श्रीकृष्ण कू वश में करने के लिए सींगी में राधा-राधा नाम गा दियौ, बस राधा नाम सुनते ही ठाकुर जी हुंकारी भरने लगे।

नाथ समझि सींगी में रूचि सौं राधा नाम सुनायौ ।

रा.सु.नि.३ में भी यही बात कही गई है –

"सद्यो वशीकरण चूर्णमनंतशक्तिं तं राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि॥"

पहले लाल नैं भरयौ हूंकरा पुनि कै रुदन करायौ ।

नन्दनन्दन हुंकारी भरके राधा नाम सुनकर प्रेम में रोने लग गये।

"राधा राधा नाम जो सपनेहुँ में लेत ।
ताको मोहन लाडलो रीझ अपन पौ देत ॥"

राधा नाम लेने वाले को श्याम सुन्दर प्रसन्न होकर उसे स्वयं को भी दे देते हैं। राधा नाम सुनकर श्याम सुन्दर रोते-रोते बोले –

कहाँ कहाँ यों कहत श्याम घन रावल मर्म जनायौ ॥
रबकि पालनैं तें तव मैया गोदी धरि दुलरायौ ।

मैया गोद में लेके दुलरावे लगी, लाल क्यों रोवै ।

गहरे लेत उसास अति लड़ौ समुझि नाथ मुसकायौ ॥

श्याम सुन्दर प्रेम में लम्बी-लम्बी साँस लेने लग गये । यह देखकर महादेव जी मुसकुरा गये वाह ! हमारा जादू चल गया ।

मैया देखके घबड़ा गई, लाला कैसी लम्बी-लम्बी साँस लै रह्यो है ।

बोली – "अरे जोगी ! अब तू याके वा ताबीज कू बाँध दै, लाला बहुत रो रह्यौ है ।"

महिर अधिक संकित है जोगी बोलि हाथ फिरायौ ।

महादेव बोले – "मैया ! तू चिंता मत कर, मेरे पास मन्त्र-तन्त्र, ताबीज, गंडा सब कुछ है ।"

मैया बोली – "तौ जल्दी कछु कर ।" महादेव जी आगे बढ़े और श्याम सुन्दर पर 'राधा-राधा' कह कै हाथ फेरौ ।

'पद्म पुराण' में यह बात उल्लिखित है कि स्वयं श्रीकृष्ण ने युगल मन्त्र –

राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे ।
राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम राधे राधे ॥

शिव जी को दिया है । इस मन्त्र को वे जपते हैं और यही माला शिवजी ने श्याम सुन्दर पर फेरी ।

महा मन्त्र स्यामा नामावलि शिव रसना सरसायौ ॥

सुनते ही बाल कृष्ण लाल पुनः हुंकारी भरने लगे ।

लाल अमी श्रवननि पीयो पुनि-पुनि हूंकरा भरायौ ।

मैया ने लाला कू प्रसन्न देखके आँचल हटा दियो और बोली – "लै जोगी ! अब तू दर्शन कर लै, तैने हमारे लाला कू चुप करा दियौ ।"

तब रानी अंचल उघारि कैं सुत बिधु बदन दिखायौ ॥

अब तक तो मैया ने लाला को आँचल में छुपा रखौ । जैसे ही महादेव जी और श्रीकृष्ण के नेत्र मिले बस शिवजी को प्रेम छा गया ।

चितये में दृष्टि जोरि रावल तन अन्तर प्रेम घुमायौ ।

योगीराज बोले – "मैया ! अभी एक चमत्कार और है हमारे पास ।" मैया को विश्वास तो अब जम ही गयो, पूछी – "कहा? " तो बोले – "हमारी जटा-जूट में एक जंत्र है यदि तेरो

लाला वाकौ स्पर्श कर दे तो कभी कोई बाधा याको स्पर्श नहीं कर पावैगी। बस याको चरण मेरी जटान पै रख दे।"

महादेव जी प्रभु का चरण स्पर्श चाहते थे बोले –

माता मेरे सीस जंत्र है यौं कहि चरन धरायौ ॥
वेपथ भये अजिर मैं लोटत नाथ सिंधु सुख न्हायौ ।

बाल गोपाल प्रभु कौ चरण स्पर्श करते ही महादेव जी प्रेम में गिर पड़े। ब्रज रज में लोटवे लग गये। मैया घबड़ा गई – "अरे ! या जोगी कू कहा है गयो यह कहा चक्कर कभी जोगी कू कछु है जाय तो कभी हमारे लाला कू कछु है जाय।

अरी गोपियो ! या जोगी कू उठाओ तो सही।"

बड़ी बार मैं चेत्यों रावल गंडा गर पहिरायौ ॥

बहुत देर बाद जोगीराज की मूर्च्छा दूर भई।

मैया – "अरे जोगी ! तोकू कहा है गयो? "

जोगीराज – "मैया ! मोकू कछु नहीं भयो, मैं सबकू यह गंडा नहीं दऊँ अतः मैं अपने नाथ ते पूछ रह्यौ कि तेरे लाला कू गंडा पहराऊँ कि नहीं। अब नाथ की आज्ञा है गई है, सुनके मैया प्रसन्न है गई।"

महादेव जी ने अवसर पाते ही बाल कृष्ण के श्री चरनन कू अपने कर तल में रख लियो क्योंकि अब सिद्धाई जम गई, कोई मना तो कर ही नहीं सकै।

लै कर चरण निहारत पुनि पुनि मन करि माथौ नायौ ।

खूब मन भरके महादेव जी ने चरण स्पर्श कियौ। अपने बटुआ में ते भस्म निकारी और बाल गोपाल के चरण नख एवं गंभीर नाभि में लगा दई।

तनक भभूती काढि बटुआ ते नख पुनि नाभि छुवायौ ।

जोगी – "मैया ! अब तेरो लाला अमर है गयो है।

माता अमर भयो यह बालक मेरे गुरु लखायौ ॥

मैया ! हमारे गुरु अलख पुरुष ने कह दई है कि तेरो बालक अमर है गयो है।"

मैया बड़ी प्रसन्न है गई।

जोगी – "देख मैया, यह हमारी ध्वजा है, अब तू याकी पूजा कर और हमारौ खप्पर भर।"

आदि नाथ की धुजा चढ़ाई पुनि खपरा भरवायौ ।

यह जोगियों में सिद्धाई जमाने का ढोंग होता है, ध्वजा की पूजा कराना, खप्पर भरवाना।

मैया – "जोगी ! कौन सी वस्तु ते खप्पर भरूँ? तोकू कहा चाहिये? हीरा लै लै, मोती लै लै, वस्त्राभूषण लै लै।"

जोगीराज – "ना मैया ना ! तेरे लाला के जनम की जो पंजीरी है, वा पंजीरी ते याकू भर दै। हम जोगी हैं, हीरा-मोती कौ कहा करेंगे? वस्त्र के रूप में लाला की पीली झिंगुली दै दै।"

हठि कै लई पंजीरी झंगुली सींगी नाद करायौ ॥

मैया – "अरे बाबा ! यह छोटी सी एक बिलांद (लगभग८ इंच) की झिंगुली ते तेरो कहा होयेगो? जो चाहिये लै लै" परन्तु जोगीराज ने कछु नहीं लियौ।

जोगीराज – "मैया ! अब हम जा रहे हैं, तैने हमारो मनोरथ पूर्ण कर दियो, तेरो लाला जीतौ रहै, प्रसन्न रहै।"

देत असीस जियौ सुत जुग जुग मो अभिलाष पुजायौ ।
'वृन्दावन' हित रूप चरित लखि उर आनन्द बढ़ायौ ॥

(श्रृं.र.सा.२७/१३३)

ब्रह्माण्ड घाट

यहाँ कन्हैया ने मृद भक्षण लीला की, मृद भक्षण करने के बाद ग्वाल बालों ने यशोदा से कहा, "मैया! तेरा लाला माटी खाता है" तो कान्हा बोले, "ना-ना मैया! मैंने माटी नहीं खायी है –

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ।

(भा.१०/८/३५)

ये सब ग्वाल-बाल झूठ बोलते हैं, मैं मिट्टी नहीं खा सकता, मैया, यदि तू मुझे झूठा समझती है तो मेरे मुख को देख ले।" यशोदा जी ने कहा – "ठीक है, मुख दिखा।" श्रीकृष्ण ने मैया को मुख खोल कर दिखाया तो अखिल ब्रह्माण्ड का दर्शन यशोदा ने अपने नन्हे से शिशु के नन्हे से मुख में किया। ब्रह्माण्ड देखकर मैया महान आश्चर्य में डूब गई और ब्रह्माण्ड विहारी के ऐश्वर्य से प्रभावित होकर उन्हें भगवान् मानने लगीं।

अब तो मैया के वात्सल्य प्रेम के भूखे यशोदानन्दन ने सोचा कि मेरी ऐश्वर्य लीला का मैया को ज्ञान होने पर माधुर्य रस से सनी मधुर लीला तो हो ही नहीं सकती। अतएव उन्होंने मैया के हृदय से अपने प्रति ऐश्वर्य भाव हटाकर पुत्र भाव उत्पन्न कर दिया।

मो देखति यशोदा तेरे ढोटा अबही माटी खायी।
एहि सुनके उठके रिस धाई बाँह पकड़ लै आयी।
एक कर सौं भुज गाढ़ै कर एक कर लीन्है साँटी।
मारति हौं तोहे अबहि कन्हैया बेगि न उगलो माटी।

श्यामसुन्दर बोले –

सब लरिका अब तेरे आगे झूठी कहत बनाई।
मेरे मुख तू कह नहिं मानत दिखराऊँ बाई।
अखिल ब्रह्माण्ड की महिमा दिखरायो मुख माहीं।

इस तरह यह ब्रह्माण्ड घाट की ब्रह्माण्ड दर्शन लीला है।

ऋणमोचन घाट एवं चिंताहरण घाट

श्री चिंताहरण महादेव एवं श्री ब्रह्माण्ड घाट

अध्याय – ४७

महावन

मधुरातिमधुररमणीय वातावरण से आपूरित यह ब्रज वसुन्धरा १२ वनों, १२ उपवनों, १२ प्रतिवनों, १२ अधिवनों के अड़तालीस वन समुदाय से युक्त एक दिव्य गोलोक का भाग है, जिसमें महामहिमामय महावन की गणना १२ वनों में आती है –

काम कोकिला कुमुद खदिरवन छत्र ताल बहुलावन बेल ।
भद्र भांडीर महा लोहजंघ बारह वन युगल सुकेलि ॥

ब्रजमण्डल को १३७ वनों का समूह कहा गया है। ये सभी वन उपवन श्री भगवान् के श्री अंग माने गये हैं। इस प्रकार श्री भगवदंग स्वरूप इस समृद्ध वन-सम्पदा का चौरासी कोस का भू-भाग ब्रजमण्डल नाम से इस भूतल पर अवतीर्ण हुआ है। इस ब्रजमण्डल के महावन नामक क्षेत्र को अपनी सरस बाल-लीलाओं का आनन्द देने के लिए प्रभु ने चुना। धाम-धामी दोनों का परम सौभाग्य है जो धाम को तो धामी का दर्शन, स्पर्श प्राप्त हुआ और धामी को धाम का दर्शन-स्पर्श प्राप्त हुआ या इस प्रकार से कह दिया जाए कि लीला बिहारी को तो लीला स्थान प्राप्त हुआ और लीला स्थान को प्राप्त हुआ लीला-बिहारी का सानिध्य।

अब सबसे पहला प्रश्न उठता है – महावन नाम क्यों पड़ा?

इसका कारण 'बृहद्गौतमीतंत्र' में बताया गया है कि "**महानमहा**" नामक एक बहुत बड़े ऋषि हुए हैं। उन्होंने इस वन में बहुत तप किया था।

ततो महावन प्रणाम मन्त्र :-

महान्महाऋषिर्नाम यत्र तेपे महातपः ।
वर्षपंचसहस्रैस्तु महावन नमोस्तुते ॥

(ब्र.गौ.त.)

५,००० वर्ष तक महानमहा ऋषि ने यहाँ उग्र तप किया। दीर्घकाल तक ये उनकी तपोभूमि रही। अतः उनके नाम से इस स्थान का नाम महावन हुआ तो यह भूमि तपस्या की पीठ है। कृष्ण क्रीड़ा वर देने वाली और त्रिलोकी का रमण क्षेत्र है।

ततो महावन प्रार्थना मन्त्र :-

तपः पीठ नमस्तुभ्यं कृष्ण क्रीड़ा वरप्रद ।
त्रैलोक्यरमणक्षेत्र महावन नमोस्तुते ॥

(ब्र.गौ.त.)

ऋषि की तपोभूमि रही सो तो ठीक है पर "कृष्ण क्रीड़ा वरप्रद" और "त्रैलोक्य रमणक्षेत्र" ये दो विशेषण तो इतने अद्भुत हैं कि ये दो विशेषण ही यहाँ की समस्त लीला महिमा के परिचायक हैं। इस रसमय देश में अनेकानेक संत-महापुरुषों ने निवास किया। यह उनकी भजन स्थली, साधन स्थली रही है। जैसे – महाराज श्री आसकरन जी, श्री मदनगोपाल दास जी, श्री गोविन्द स्वामी, श्री छीत स्वामी, श्री नारायणदासब्रह्मचारी, श्री जादवेंद्र दास कुम्हार, श्री जगन्नाथ जोसी, श्री बाबा वेनु जी, श्री गोविन्ददास भल्ला, श्री कृष्णदास जी, श्री यादवेन्द्र दास, श्री अलीखान जी, श्री ताज बीबी। सबके जीवन चरित्र का उल्लेख तो यहां स्थानाभाव के कारण संभव नहीं है, किन्तु इतना अवश्य समझ लेना चाहिए कि बड़ी-बड़ी निधियों ने यहाँ निवास किया। इस भूमि के महत्त्व को जाना, पहचाना, सौन्दर्य-सम्वर्द्धन किया और साथ ही इसकी सुरक्षा भी की। इन्हीं में से कुछ महज्जनों का अति संक्षिप्त विवरण उद्धृत है।

अलीखान जी

यवन भक्त अलीखान जी बहुत बड़े पद पर प्रतिष्ठित थे, भक्त पृथ्वीपति के पास से तविसा की हुकूमत लेकर महावन में आकर रहे और नित्य श्री गुसाँईजी से कथा सुनने जाते। एक दिन कथा में सुना कि –

वृक्षे वृक्षे वेणुधारी पत्रे पत्रे चतुर्भुजः ।
यत्र वृन्दावनं तत्रः लक्ष्यालक्ष्य कथा कृतः ॥

(चौरासी वैष्णव वार्ता)

अर्थात् यहाँ के वृक्ष-वृक्ष में कृष्ण हैं, पत्ते-पत्ते में भी कृष्ण हैं। यहाँ इस वृक्ष की सेवा करनी चाहिए और इस वृक्ष की नहीं, यह भेद नहीं। सब कुछ यहाँ प्रभु ही हैं। यह श्लोक सुनकर इन्होंने ये घोषणा करा दी कि ब्रज के वृक्ष के पत्ते को भी यदि कोई तोड़ेगा तो वह दण्डपात्र होगा। एक दिन एक तेली ने वृक्ष की एक डाल तोड़ दी, तो अलीखान ने उसका सारा तेल उस वृक्ष के मूल में डलवा दिया, तब से सबको ऐसा भय हो गया कि किसीने भी ब्रज महावन के एक पत्ते को भी कष्ट नहीं पहुँचाया।

ब्रज का सौन्दर्यीकरण किया इन महापुरुषों ने, ब्रज की सेवा की, ब्रज की रक्षा की।

नित्य गोकुल में श्री गुसाँईजी कथा कहते और ये महाभाग प्रतिदिन कथा सुनने मधुवन से गोकुल जाते। इनकी निष्ठा से प्रभावित होकर श्री गुसाँईजी भी तभी कथा आरम्भ करते जब अलीखान जी आ जाते, तो सब वैष्णवों ने विचार किया कि यह मलेच्छ जब आता है तब ही गुसाँईजी कथा प्रारम्भ करते हैं। ये क्या सुनता होगा और क्या धारण करता होगा? तो गुसाँईजी ने सब वैष्णवों के हृदय की बात जानकर उनसे पूछा कि कल कथा में क्या प्रसंग हुआ? यह बताने में सब असमर्थ थे। अब अलीखान जी जब आये तो उनसे पूछा गया, तो ये हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से बोले – "आपकी आज्ञा होय तो कल की कथा कहूँ अथवा आज्ञा होय तो जिस दिन से कथा सुन रहा हूँ, सब दिनों की कहूँ।" यह सुनकर गुसाँईजी बहुत प्रसन्न हुए। ऐसे कृपापात्र थे अलीखान जी कि जो कुछ भगवत कथा सुनते, कभी भी उसका एक अक्षर तक न भूलते। इनकी वार्ता का सार यही है कि भगवद्भक्ति का मार्ग जीवमात्र के लिए खुला हुआ है। इसमें जाति-पाति का कोई भेद नहीं है। जातिशून्य इस मार्ग में तो जिसका जितना प्रभु में अगाध प्रेम है, वह उतना ही उत्तम कुल वाला है।

इस प्रकार अलीखान पठान सम्राट् अकबर के ब्रजप्रदेश के हाकिम होकर महावन में रहते थे। अपनी न्यायप्रियता से ब्रज में अतिलोकप्रिय शासक थे। इसके अतिरिक्त श्री गुसाँईजी के अमृतरुपी वचनामृतों को सुनकर भगवच्चरणों में लीन रहते हुए उच्चकोटि के परम भगवदीय वैष्णव हुए। श्री गोकुल से रमणरेती को जाते समय गोप कुआँ से आगे अलीखान जी का समाधि स्थल है, जो ब्रजयात्रा के अंतर्गत आता है। इसी महावन की धरा पर एक बार अकबर के नवरत्नों में श्रेष्ठ गायक तानसेन आये, अच्छा तो गाते थे ही, एक दिन श्री गुसाँईजी के पास गाने के लिए पहुँच गये। वहाँ गाया इन्होंने तो पारितोष रूप में १०,००० मुद्रा और एक कानी कौड़ी श्री गुसाँईजी ने दी तो तानसेन ने विस्मित होकर पूछा कि १०,००० मुद्रा और उसके साथ एक कौड़ी? ये देने का क्या अभिप्राय है? तो गुसाँईजी बोले – "१०,००० मुद्राएँ" और उसके साथ एक कौड़ी देने का अभिप्राय है कि तुम बादशाह के गायक हो तो इसलिए दस हजार मुद्राएँ, पर तुम्हारे गाने की कीमत हमारे गवैये के आगे कौड़ी भर की ही है, तब तानसेन ने कहा – "ये बात मैं कैसे मानूँ? अपने गाने का गुमान जो था।"

तब श्री गुसाँईजी ने गोविन्द स्वामी को अपने पास बुलाया और आज्ञा की – "एक पद गाओ", तब सारंग राग में गोविन्द स्वामी जी ने एक पद गाया जिसे सुनकर तानसेन चकित थे। विचार किया – "इनके आगे तो मेरा गान ऐसे है जैसे "मखमल के आगे टाट" और इसलिए इन्होंने १०,००० मुद्राओं के साथ ये कानी कौड़ी रखी। इसके बाद गोविन्द स्वामी से प्रार्थना की, अनुनय-विनय किया तानसेन ने कि आप हमें गान सिखाओ तो गोविन्द स्वामी का उत्तर था – "हम तो अन्य मार्गीय से बात भी नहीं करते हैं", तब तानसेन श्री गुसाँईजी के शिष्य बने और २५,००० मुद्रा भेंट किया और फिर गोविन्द स्वामी के पास गायन सीखा। सीखकर श्री नाथ जी के पास कीर्तन करने लगे। महीने में एक बार बादशाह

के पास जाते और अधिकांश महावन में रहते। एक बार इनका गान सुनकर श्री नाथ जी मुस्कराए। उस दिन से तानसेन ने बादशाह के यहाँ आना-जाना भी छोड़ दिया और श्री गुसाँईजी के पास ही रहने लगे।

तो ये धरा ऐतेहासिक भी रही है।

अब हम लोग यह जानना चाहेंगे कि "कृष्णक्रीड़ावरप्रद" और "त्रैलोक्य रमणक्षेत्र" इसे क्यों कहा गया?

आहाहा !

श्री गोविन्द की लीला भूमि "महावन" कितनी मनोहर है ये –

'साक्षान्मन्मथमन्मथ' जहाँ अवतार लेने आ रहे हैं इसके दर्शन मात्र से मन, प्राण को परमानन्द प्राप्त होता है। चारों ओर शीतल-मन्द-सुगंध समीर बह रही है। शुक-पिक-कपोत और मदमाते मयूर के कलरव में एक अनोखी प्रसन्नता झलक रही है। चारों ओर जय हो – जय हो, बधाई हो – बधाई हो इस मधुर स्वर का गुंजार हो रहा है। आखिर क्या कारण है इस प्रसन्नता का? महावन में इस प्रसन्नता का कारण सूरदास जी अपनी वाणी से मुखरित कर रहे हैं –

गोकुल प्रगट भये हरि आई ।
अधम उधारन असुर सँहारन अंतर्यामी त्रिभुवनराई ।
माथे पर धरि वसुदेव ल्याये नंदमहर घरमे पहुँचाई ।
जागी महरि पुत्र मुख देखत पुलक अंग उर में न समाई ।
गद्गद कंठ बोल नहिं आवे हर्षवंत है नंद बुलाई ।
आवहु कंत देव परसन भये पुत्र भयो मुख देखौ धाई ।
दौरि नन्द गये सुत मुख देख्यो सो शोभा सुख बरणि न जाई ।
'सूरदास' पहिले यह माँग्योदूध पिआवन यशुमति माई ।

आ ही गये महावन की धरा पर यशोदा की गोद में नन्दनन्दन। धन्य है ! ! धन्य है ! ! पूरा महावन भली प्रकार मृदुल तृणों से भर गया है। लताएँ 'पुष्पों' से और वृक्ष 'फलों' से बोझिल हो रहे हैं। वन में मधु-छत्रकों की भरमार हो गयी है और मधुमक्खियाँ मधु से भरे छत्र को छोड़कर उसी क्षण दूसरा छत्रक बना लेती हैं। मानो आमंत्रण देती हैं कि इसे ले लो – इसे ले लो और हमारा श्रम सफल करो।

सबेरा हुआ। महर ने सबसे पहले अपनी गोद में एक नीलकान्ति लाल को देखा। वात्सल्य ऐसी हिलोरे लेने लगा, मानो उसमें बाढ़ आ गयी है, क्या करूँ? किसे बुलाऊँ? किसे बताऊँ? किसको दिखाऊँ? "अरी ! अरी ! बहिन सुनन्दा ! सुन ! ! जरा ब्रजराज को तो बुला।" दौड़ी गई, न अपनी सुध, न मार्ग की। जैसे-तैसे खिरक तो पहुँच गयी। लोक-लाज सब भूल गयी। सीधा ब्रजराज के कान पर जाकर मुँह रुका और गोकुल का सौभाग्य

बताती हुई कहती है – "भैया बहुत-बहुत बधाई ! उठो ! उठो ! यशोदा भाभी ने पुत्र रत्न उत्पन्न किया है " बस इतना ही कहना था, इतना ही सुनना था कि ब्रजराज युवराज को देखने धाये – "अरे कहाँ है? कहाँ है? " जहाँ देखो गोपी-ग्वाल। आखिर ऐसा क्या हुआ नन्द भवन में? हुआ क्या? (उस नीलोत्पल को देखकर) – "अरे ये तो वही है ! अरे वही है ! जिसे मैं खिरक में बैठा ध्यान में देख रहा था।" नन्दराय जी भूल गये सब कुछ।

नंदराइ के नवनिधि आई ।
माथे मुकुट श्रवण मणि कुण्डल पीतवसन भुजचारु सुहाई ।
बाजत ताल मृदंग यंत्र गति चरचि अरगजा अंग चढ़ाई ।
अक्षत दूब लिए शिर बंदत, घर घर बंदनवार बधाई ।
छिरकत हरद दही हिय हर्षत गिरत अंक भरि लेत उठाई ।
'सूरदास' सब मिलत परस्पर दान देत नहि नन्द अघाई ।

अब दान का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। दान केवल नन्द बाबा जी ने ही नहीं दिया। जो भी बहुमूल्य वस्तु हाथ में आ रही है, जो सामने आ रही है बस उसीको लगे ऊपर उछालने। कौन दे रहा है? किसे दे रहा है? क्या दे रहा है? ये तो पता नहीं।

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम् ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥

(भा.१०/५/१५)

ब्रजराज तो हैं ही परमोदार और मनस्वी,उन्होंने लुटाना आरम्भ किया तो सुन्दर-सुन्दर वस्त्र-आभूषण, गायें, रत्नकोष ऋषियों-मुनियों को, ब्राह्मणों को एवं सूत-मागध-बंदीजनों को इतने दिए कि उनके केवल घर ही नहीं, मन भी भर दिया, हाथ जोड़कर, पैर पकड़कर, मना-मनाकर दे रहे हैं।

अरे ये तो ले लो, ये नहीं तो ये ले लो, कुछ तो ले लो, ये तो अवश्य लेना पड़ेगा।

कनक माट मँगाई हरद दही मिलाय छिरकै परस्पर छलबल धाइके ।

(सूरसागर)

साथ में गान और नृत्योत्सव, कोई किसी के मुख पर नवनीत लगा रहा है, कोई हरिद्रा मिला तेल फेंक रहा है, कोई किसीसे किसीका गठजोर कर रहा है। ताली के साथ बड़ा हास्य और उच्च मंगल ध्वनि हो रही है। बालक-वृद्ध सब नाच रहे हैं।

नाचत तरुण वृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई

ड्योंढ़ी तो पिटवा दी है। आज कोई भी वन में नहीं जाएगा।

आजु वन कोऊ जिनि जाइ

गोपियाँ तो अपने-अपने पतियों को छोड़ कर पहले से पहले पहुँच रही हैं। कोई भी वन में न जाए।

ब्रज भयो महर के पूत जब यह बात सुनी ।
सुनी आनंदे सब लोग गोकुल गनक गुनि ।
पिय पहले पहुंचि जाइ अति आनन्द भरी ।

(सूरसागर)

अरे बड़ी-बड़ी महाशक्तियाँ –

लक्ष्मी सी जहाँ मालिन बोलै बंदन माला बांधत डोलै ।

लक्ष्मी मालिन बनके बौरी सी फिर रही हैं, ब्रज को सजाती हुई, और तो और –

द्वार बुहारत फिरत अष्ट निधि, कौरेन सथिया चींतत नव निधि

(सूरसागर)

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥

(भा १०/५/१८)

ब्रजराज के ब्रज में उसी दिन से सब ऋद्धि-सिद्धि खेलने लगीं। यशोदानन्दन के आगमन से वह ब्रज कमला का क्रीड़ास्थल बन गया।

गृह गृह ते गोपी गावती जब रंगीली गलिन बिच भीर भई तव ।
सोवरन थाल रही हाथन लसि कमलन चढि आये मानो शशि ।
उमंगे प्रेम नदी छबि पावै नन्द नन्द सागर को धावै ।
कंचन कलश जगमगे नग के भागे सकल अमंगल जग के ।
डोलत ग्वाल मानो रणजीते भये सबहि के मन के चीते ।
अति आनन्द नन्द रस भीने पर्वत सात रत्न के दीने ।
कामधेनु ते नेक नवीने द्वै लख धेनु द्विजन को दीने ।
नन्दद्वार जे याचक आए बहुरो फिरि याचक न कहाए ।
घर के ठाकुर के सुत जायो 'सूरदास' तब सब सुख पायो ।

जो याचक आया नन्दभवन में, वह फिर जीवन भर के लिए वहाँ से दाता बन कर गया।

यह नंदोत्सव कोई लिखने का विषय नहीं अपितु आनन्दानुभूति का विपुलार्णव (अगाध समुद्र) है।

महावन में लाला ६ दिन के हो गये हैं, तो क्या आज षष्ठी महोत्सव है? जी हाँ ! चारों ओर दिव्य वातावरण है। कहीं उच्च स्वर से स्वस्ति पाठ, तो कहीं देवी षष्ठी का पूजन, कहीं यज्ञ-हवन, कहीं नवजात के लिए आशीष प्रदान, कहीं गोपियों का नाच-गान तो कहीं नन्द बाबा का दान।

महोत्सव सम्पूर्ण हुआ। कंस से प्रेरित शिशुघातनी पूतना का आगमन हुआ। (सोचते हुए) "महाराज चिंता न करें आपके काल का काल बनके जा रही हूँ। यदि नहीं मारा उसे तो मेरा भी नाम पूतना नहीं", प्रतिज्ञा कर चुकी है पूतना। सावधान रहना ! बड़ा सुन्दर रूप बनाया। स्तनाग्र में कालकूट विष लगाए चल दी है –

आजु हौं राजकाज करि आऊँ।
बेगि सँहारौं सकल घोष शिशु जो मुख आयसु पाऊँ।
तौ मोहन मूर्छन वशीकरन पढ़ि अमित देह बढाऊं।
अंग सुभग सजिकै मधु मूरति नयननि माहँ समाऊँ।
घसिकै गरल चढ़ाइ उरोजनि लै रूचिसों पय प्याऊँ।
'सूरदास' प्रभु जीवत ल्याऊँ तौ पूतना कहाऊं॥

अब देखना है कि किसकी प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर है, पूत की या पूतना की।

यह तो पूर्व ही स्पष्ट है कि विजय का पात्र पवित्रता ही है। कपट की विजय संभव नहीं। यह पूतना तो कपट का प्रतीक है। ऊपर से देवी का रूप और प्रतिज्ञा मारने की, वृत्ति हिंसा की।

गोकुल

अब महावन-गोकुल में प्रवेश हुआ। उसके सुन्दर रूप से सब ब्रजवासी चकित हैं, पर अधिक नहीं क्योंकि नन्दनन्दन के जन्म के बाद तो देवी देवताओं का रोजाना का आना जाना हो गया है। ब्रज में चपला कमला तो अपने चांचल्य से संन्यास लेकर आसन उठाये ब्रज में क्षेत्र संन्यास लेकर बैठ गयी हैं। नहीं जाऊँगी ! नहीं जाऊँगी ! और नहीं जाऊँगी इस ब्रज भू को छोड़कर।

"ओ हो ! तो ये सब देवी देवता पागल हो गये हैं जो अपना स्वर्ग छोड़-छोड़ कर यहाँ गोबर युक्त गलियों में घूम रहे हैं, नन्दभवन का अन्वेषण करते हुए। ये भी कोई देवी होगी, कहाँ तक देवी-देवताओं को देखें। चलो भाई अब अपना काम करें।" ब्रजवासियों ने पूतना को देखकर कहा।

इसके बाद यशोदा-रोहिणी ने देखा। कमल नयन ने तो उसे देखा भी नहीं। उसके आने के पूर्व ही अपने दोनों नेत्र कमल बन्द कर लिए कि इस बाल-घातनी का दर्शन ! ! छी-छी-छी ! ! मैं नहीं करूँगा। विषाक्त स्तन मुँह में दे दिया – "ले पी ले।" अब क्या पी ले? ये तो बताया ही नहीं – दूध पी ले या विष पी ले या प्राण पी ले, तो सोचते हैं – "दूध पीता हूँ तो विष और प्राण रह जायेंगे। विष पीता हूँ तो दूध और प्राण रह जायेंगे। यदि प्राण पीता हूँ तो कुछ भी शेष नहीं रहेगा और सब कुछ पान हो जाएगा।" ऐसा विचार करते हुए कि

प्राणपान ही उत्तम है, प्राणों का पान कर लिया। बस हो गयी पूत की जीत। बोलो पूतनोद्धारक पूत की जय ! !

पर कंस कहाँ हार मानने वाला? एक ब्राह्मण को भेजा जिसका नाम सिद्धर था कि जाओ बिना मारे मत लौटना। सिद्धर बोला – "महाराज ! मै तो आपका परम आज्ञाकारी हूँ, चिंता न करें आप।" "ठीक है, अविलंब जाओ" कंस ने कहा। वह नन्दभवन पहुँचा, 'यशोदा जी' कहते हुए प्रणाम किया। "मैया मोकूँ भोजन करा, ब्राह्मण हूँ। बड़ी दूर सों आयो हूँ, लाला के दर्शन करवे।" "अच्छो ब्राह्मण देव, तब तांई आप यहीं विराजो। "मैं यमुना नहा आऊँ" – स्नान के लिए प्रार्थना करती हैं। (सिद्धर ब्राह्मण इधर उधर देखते हुए) "चली गयी ! चली गयी ! बड़ा अच्छा हुआ।" इधर हिलते हुए पलने में पड़े-पड़े पूतना विजयी सोच रहे हैं – "पूतना को तो मार दिया पर ये तो ब्राह्मण है।

इसे मारना तो ठीक नहीं है, परन्तु चिकित्सा तो इसकी भी आवश्यक है।" जैसे ही ब्राह्मण आया पास में कि इसे समाप्त कर दूँ, इसकी गर्दन मरोड़कर।

जबही ब्राह्मण हरि ढिंग आयो ।
हाथ पकर हरि ताहि गिरायो ॥

उस बच्चे ने हाथ पकड़कर गिरा दिया परन्तु इतना ही काफी नहीं था। पाँव से दबाकर उसकी जीभ मरोड़ दी। जीभ टेढ़ी हो गयी और फिर पाँव से मटका फोड़ दिया और दही लेकर उसके मुँह पर लपेट दिया। जिससे मैया को लगे, दई मारो खुद ही ज्यादा माखन खा मरो और फिर पालने में आ गये और बड़ी जोर से क्रन्दन किया। मैया तब तक पानी लेकर आई, अंदर आते ही देखा – लाला रो रहा है, माट-मटका फूटें पड़े हैं। ब्राह्मण के मुख के चारों ओर माखन लगा हुआ है। (पानी एक ओर रखते हुए थोड़े रोष भरे स्वर में) "अरे ! चोर घर में घुस आयो। चल निकल नन्दभवन तें, आयौ कहाँ को ब्राह्मण? दूध-दही कू खा गयो, माट-मटका फोड़ दीये और मेरो लाल रुला दियो।

चल-चल बाहर निकल .... निकल .... निकल।" दुष्ट बेचारा ब्राह्मण अ-अ-आ-ई-ई-ई-ऊ मानो मैया को अक्षर ज्ञान कराने लगा। अब जीभ हो तो बताये। जनार्दन ने तो जिह्वा ही मरोड़ी सबसे पहले कि किसीको कुछ बता ना पाए।

ब्राह्मन को घर बाहर कीन्हो ।
गोद उठाई कृष्ण को लीन्हो ॥

ब्रजवासियों का नन्दभवन में दौड़ते हुए प्रवेश –

"पुरवासी सब दौड़े आये सूरदास हरि के गुण गाये"

"अरी ! कन्हैया सकुशल तो है न।"

"हे परमेश्वर ! हमारे कन्हैया को कभी कुछ न हो।" एक बूढ़ी गोपी – "लाला ! तू जुग-जुग जी।" (एक गोपी चुम्बन लेते हुए) – "इन सब दैत्यन कू नन्दभवन ही मिलौ कहा? " कोई हाथ देखती है, कोई चरणों को देखती है। "कहीं कुछ कर तो नहीं दिया इस चाण्डाल ब्राह्मण ने।" (सब ब्रजवासी-गण चैन की साँस लेते हुए) "चलो सकुशल हैं, कहीं कुछ नहीं हुआ, बड़ी कृपा है ईश्वर की।"

चलो सिद्धर (श्री धर) की श्री तो धर दी एक ओर। अब कोई और तो नन्दभवन को आने को उद्यत नहीं है? क्या श्री धर की पराजय से कंस ने पराजय स्वीकार कर ली? नहीं-नहीं-नहीं !!

सुन्यो कंस पूतना मारी। शोच भयो ताके जिय भारी॥
कागासुर को निकट बुलायो। तासों कहि सब वचन सुनायो॥
मम आयसु तुम माथे धरौ। छल बल करि मम कारज करौ॥
इह सुनिकै तिन्ह माथो नायो। सूर तुरत ब्रज को उठि धायो॥

अब क्रम है – कागासुर का ...

"कागरूप एक असुर धरयो"

बड़े उत्साह से जा रहा है नन्दप्रासाद की ओर कि मैं अब उसका काल बनूँगा, तो अधिक समय नहीं लगेगा उसे समाप्त होने में। "ओह ! तो यह रहा नन्दसदन, पहले तनिक देख तो लूँ, कहाँ है कंस का काल कहलाने वाला? ये रहा ! यही है वो नीला प्रकाश, नीलमणि। बहुत अच्छा हुआ, यशोदा तो कार्यरत है। मैं भी जल्दी ही अपना कार्य सम्पन्न करूँ।" जैसे ही वज्रवत चोंच का सम्पूर्ण शक्ति से प्रहार किया कि मेरा तो एक प्रहार ही पर्याप्त है। "आ जा मुझे भी अवसर प्राप्त हुआ तेरे साथ क्रीड़ा करने का। (यह सोचकर कुछ खिलखिलाए) मै भी किसके साथ खेलूँ? मैया तो दिनभर काम में लगी रहती है, चलो तुम ही एक-एक करके रोज खेलने आ जाया करो। पर मैं रोज एक ही खिलौने के साथ खेलना नहीं चाहता। मुझे तो रोज नए खिलौने चाहिए।" तभी तो आप जिस खिलौने से खेलते हैं उसे वापस ही नहीं भेजते हैं कि कंस कहीं फिर से इसे न भेज दे। किन्तु कागासुर को

कंठ चापि बहु बार फिरायो गहि परक्यो नृपपास परयो।

अपने कोमल-करों से गला दबा कर, ऊपर घुमाते हुए, संसार दर्शन कराते हुए, सीधा कंस के सिंहासन के समक्ष फेंक गिराया।

तुरंत कंस तेहि पूंछन लाग्यो क्यों आयो नाहि काज सरयो।

"अरे मारके आया या मरके?" कंस ने पूछा

बीत्यो जाम ज्वाब जब आयो। सुनहु कंस तेरो आयु सरयो॥
धरि अवतार महावन कोऊ। एकहि कर मेरो गर्व हरयो॥
'सूरदास' प्रभु कंस निकन्दन। भक्त हेतु अवतार धरयो॥

"महाराज ! महाराज ! कंदर्प दर्पहा ने एक ही बार में मेरा गर्व हर लिया, ये कोई सामान्य बालक नहीं है। ये तो साक्षात् देवादि देव मालूम पड़ते हैं।"

(कंस उपहास की हँसी हँसते हुए) "तो तू भी ये विद्या सीख आया।"

कन्हैया – "बहुत हुआ दैत्य दमन, बहुतों की समस्या सुलझाई मैंने। मेरी भी तो कोई सुलझाओ, चलो मैया से ही जाकर कहूँ। मैया ! ओ मैया !" यशोदा – "हाँ लल्ला, यहाँ चले आओ कक्ष में।" कन्हैया – "अरे आता हूँ" (देहरी पर चरण रखा)। सबकी अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। किसी को परिवार पोषण की, किसी को धन कमाने की। किसी को कुछ तो किसी को कुछ, पर इनको क्या भारी समस्या है? पूछो मत बहुत बड़ी समस्या आ गयी है। यदि आप सुलझा सकें तो अवश्य मदद करें इन बाललीलाबिहारी की। अब समस्या सुनो – हाथ में चोटी पकड़े हुए हैं कि मेरी चोटी कब बढ़ेगी? चन्दखिलौना लाला ने माँगा, तो वो समस्या तो मैया ने थाल में जल भरकर चंद का प्रतिबिम्ब दर्शाते हुए हल कर दी, पर ये चोटी वाली समस्या नहीं सुलझा पा रही हैं। ये महान समस्या इसी महावन में पैदा हुई। चोटी हाथ में पकड़े हुए कभी स्वयं देख लेते हैं, कभी मैया को दिखाते हैं, फिर पकड़ के हिलाते हैं कि बढ़ा इसे। लंबी कर इसे दाऊ भैया से ज्यादा। तूने खूब दूध पिलाया मुझे पद्मगंधा का, सुरभि का पर ये तो उतनी की उतनी ही है –

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी
किती बार मोहिं दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वैहैं लाँबी-मोटी ।
काढ़त-गुहत-न्हवावत ओछत नागिनि सी भुईं लोटी ॥
काचो दूध पियावति पचि-पचि देति न माखन-रोटी ।
'सूरश्याम' चिरजीव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

अब ये समस्या कौन सुलझाए भाई?

न सुलझे तो मत सुलझे तो लड़ने दो दोनों भाइयों को।

श्रीकृष्ण-बलराम ने बाल सुलभ चापल्य की अनेक रसभरी लीलाओं से इसी महावन की रमणीय पावन-रज में माता यशोदा के हृदय कमल को न केवल आह्लादित किया है अपितु सहज क्रीड़ाओं के द्वारा कंस के बड़े-बड़े महाअसुरों का वध करके ब्रजवासियों के आमोद को बढ़ाया और उन्हें निर्भय किया। ऐसे महावन के मनोहर क्षेत्र में वनों की प्राकृतिक सुषमा का तो आज अवश्य अभाव है क्योंकि शनैः-शनैः नवीनीकरण की प्रवृत्ति के कारण यहाँ के क्या, सम्पूर्ण ब्रज का ही स्वरूप खोने की ओर अग्रसर है, फिर भी यहाँ भक्तों को आज भी बड़ी सुखद अनुभूति होती है।

गोकुल – ठकुरानी घाट एवं श्री गोविन्द स्वामी की टेकरी

गोकुल महावन – चौरासी खम्बा नन्द भवन एवं नन्द कूप

गोकुल महावन – पूतना खार एवं दामोदर लीला स्थल (ऊखल बन्धन)

अध्याय – ४८

रमण रेती

रमणरेती की जो प्रसिद्ध कथा है, 'गर्गसंहिता' में उसका इस प्रकार वर्णन है – एक बार मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हेतु ब्रजभूमि में पधारे। रमणरेती में उन्होंने देखा परम चित्ताकर्षक बाल गोपाल अपने साथी गोप-बालकों के साथ वहाँ रज में लोटते, परस्पर विभिन्न प्रकार की बाल क्रीड़ाएँ कर रहे थे। दिगम्बर वेष में छोटे-छोटे बालकों के साथ नन्द नन्दन को बालोचित क्रीड़ा करते देखकर दुर्वासा जी के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ। मन ही मन वे सोचने लगे – "क्या यह वही सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर है? यह बालकों के साथ पृथ्वी पर क्यों लोट रहा है? मुझे तो यह केवल नन्द का सामान्य बालक मालूम पड़ता है, षड्ऐश्वर्य युक्त श्रीकृष्ण नहीं है।" जब मुनिवर दुर्वासा इस प्रकार मोहग्रसित हो गए तब तक बाल गोपाल उनकी दृष्टि के सम्मुख आकर हँसने लगे, हँसते हुए नंदलाल ने श्वास ली और दुर्वासा श्वास द्वारा उनके मुख में चले गए। मुख के भीतर जाकर उन्होंने परम अद्भुत लोक देखा। वहाँ एक विशाल अरण्य था, उस अरण्य में विचरण करते समय ऋषि को एक अजगर ने निगल लिया। उसके उदर में मुनि ने एक विशाल ब्रह्माण्ड का दर्शन किया। वहाँ स्थित एक श्वेत पर्वत पर दुर्वासा जी ने शतकोटि वर्षों तक कठोर तप किया। कोटि वर्ष पर्यन्त तप करने के बाद नैमित्तिक प्रलय हुआ। सातों समुद्र सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने में लीन करके दुर्वासा जी के पास आये। दुर्वासा जी उस समुद्र के अथाह वेग में बहने लगे, इस प्रकार बहते हुए उन्हें एक सहस्र युग व्यतीत हो गए, तत्पश्चात् जल के भीतर उन्हें दूसरे ब्रह्माण्ड का दर्शन हुआ। उस ब्रह्माण्ड के हृद में प्रविष्ट होकर वे अलौकिक सृष्टि में पहुँच गये। उसके भीतर स्थित लोकों में दुर्वासा जी ब्रह्मा की आयु पर्यन्त विचरण करते रहे। इसी तरह वहाँ एक छिद्र देखकर मुनि उसके भीतर प्रवेश कर गए। प्रवेश करते ही उस ब्रह्माण्ड से बाहर निकल आये। तदनन्तर उन्हें विशाल जल राशि दिखायी पड़ी। उस अथाह जलराशि में उन्हें कोटिशः ब्रह्माण्डों की राशियाँ प्रवाहित होते हुए दिखायी पड़ीं। जब मुनि ने उस जल को ध्यान से देखा तो वहाँ उन्हें विरजा नदी का दर्शन हुआ। उस दिव्य नदी के उस पार पहुँचने पर दुर्वासा जी ने साक्षात् गोलोक धाम में प्रवेश किया। वहाँ मुनि एक परम रमणीय निकुञ्ज के भीतर घुसे तो उन्हें वहाँ पर श्री राधा वल्लभ श्यामसुन्दर का दर्शन हुआ।

उन्हें देखकर श्रीकृष्ण हँस पड़े, हँसते समय उनके श्वास से खिंचकर दुर्वासा जी भगवान् के मुख में प्रवेश कर गए और पुनः बाहर निकल आये। बाहर आने पर उन्होंने देखा वही नन्हा

शिशु, जो रमणरेती की मनोहर बालुका पर बालकों के साथ क्रीड़ा कर रहा है। अब दुर्वासा जी समझ गये कि यही अनन्त ब्रह्माण्ड नायक सच्चिदानन्द प्रभु हैं। फिर तो दुर्वासा जी हाथ जोड़कर नन्दनन्दन की स्तुति करने लगे –

मुनिरुवाच –

बालं नवीनशतपत्रविशालनेत्रं बिम्बाधरं सजलमेघरुचिं मनोज्ञम् ।
मन्दस्मितं मधुरसुंदरमंदयानं श्रीनन्दनंदनमहं मनसा नमामि ॥
मंजीरनूपुररणन्नवरत्नकांचीश्रीहारकेसरिनखप्रतियंत्रसंघम् ।
दृष्टयाऽऽर्तिहारिमषिबिंदुविराजमानं वंदे कलिंदतनुजातटबालकेलिम् ॥
पूर्णेन्दुसुंदरमुखोपरि कुंचिताग्राः केशा नवीनघननीलनिभाः स्फुरंति ।
राजंत आनतशिरः कुमुदस्य यस्य नन्दात्मजाय सबलाय नमो नमस्ते ॥

(ग.सं.गो.खं.२०/२४,२५,२६)

मुनि ने कहा – "जिनके नयन नवीन विकसित शतदल पंकज के सदृश विशाल हैं, लाल अधर बिम्बाफल के समान अरुण तथा श्याम अंग वर्षाकालीन मेघ की मनोहर श्याम कांति को छीनने वाला है, जिनके मुखकमल पर मन्द मुस्कान की दिव्य छटा विराजित है एवं जो ललित मधुर मंदगति से विचरण कर रहे हैं, उन बाल्यावास्थासे सम्पन्न, मनोज्ञ श्री नन्दनन्दन को मैं मन से नमस्कार करता हूँ। जिनके चरण कमल मञ्जीर और नूपुर से सुशोभित हो रहे हैं तथा कटि प्रदेश में खनखनाती हुई नवीन रत्न निर्मित करधनी शोभित हो रही है। जो बघनखा से युक्त यंत्र समुदाय तथा सुन्दर कण्ठहार से शोभासम्पन्न हैं, किसी की नजर न लग जाए, इसलिए यशोदा ने नील मुखकमल पर काजल का डिठौना लगा दिया है तथा जो कलिन्दतनया के तट पर बालोचित क्रीड़ा में संलग्न हैं, उन श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ। पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर मुख है, उस मुख के ऊपर जो घुँघराली लटूरियाँ लटक रही हैं, उनकी कैसी अद्भुत शोभा है, ऐसा प्रतीत होता है कि बादल आकर उस नीले चाँद पर छा गए हैं। जिनका मस्तक रूपी कुमुद झुका हुआ है, इस प्रकार जो विशेष शोभा को प्राप्त हो रहे हैं, उन नन्दनन्दन को एवं उनके अग्रज श्रीबलराम को मेरा बारम्बार नमस्कार है।" जो प्रातःकाल उठकर इस 'श्री नन्दनन्दन स्तोत्र' का पाठ करता है, उसके नेत्रों के सम्मुख श्री नन्दनन्दन सानन्द प्रकट होते हैं।

यहाँ की बहुत सी कथाएँ हैं। यहाँ भगवदीय आसकरन जी को एक ऐसी होली लीला के दर्शन हुए थे, जिसको देखकर वे ३ दिन तक वहीं बेसुध खड़े रहे, वह होली अत्यन्त प्रसिद्ध है। राजा आसकरन जी बल्लभ सम्प्रदाय के अत्यन्त प्रसिद्ध भक्त हुए हैं। रमणरेती केवल बाललीला का ही स्थल नहीं है, यह श्रृंगार लीला का भी स्थल है किन्तु यह बात कम लोग जानते हैं।
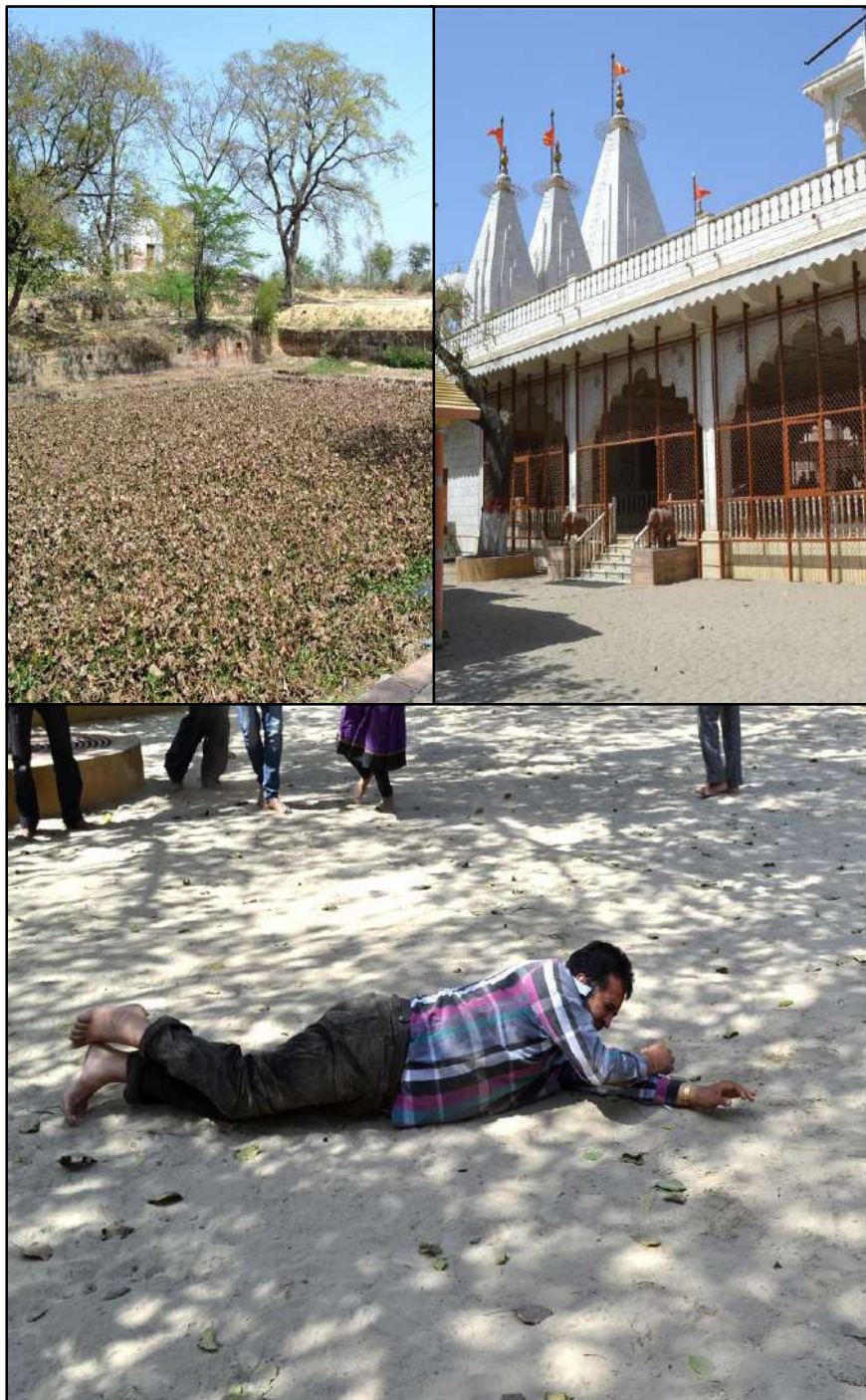
गोप तलैया, श्री राधा रमण बिहारी मंदिर एवं रमण रेती

रमण रेती – श्री रसखान जी की समाधि एवं प्राचीन ऐतिहासिक टीला

अध्याय – ४९

रावल

राधा जन्म बरसाने या रावल दोनों स्थानों पर गाया गया है। अतः बधाई में दोनों स्थलों का नाम है। जैसे – 'बरसाने ते दौड़ी नारी एक नन्द भवन में आई जू' ... । (नंददास जी) 'आज सखी मंगल में मंगल कीरत कन्या जाई' ..., 'आज बरसाने बजत बधाई'...(सूरदास), 'आज रावल में भीर भई'....(रामदास जी), 'जन्म बधाई कुँवर लली की'..., 'आज रावल में बजत बधाई' (सूरदास जी)

जन्म लियो वृषभान गोप के बैठे सब सिंघद्वार री ॥
लग्न घड़ी बलि नक्षत्र शोध के गुरुजन कियो विचार री ॥
कंचन मणि आँगन आगे रही बोलत द्विजवर बेनरी ॥
कबहुँक सुध पावत सु भवन में पुत्र जनम के चेनरी ॥
इतने एक सखी आई धाय के जहाँ बैठे ग्वालरी ॥
वेगि पुकार कह्यो मुख आली प्रगटी सुता लघु वालरी ॥
तब हँसि तारी दे गुरुजन को देखे जनम विधानरी ॥
हमारे कोटि पुत्र की आसा पूरन करी वृषभानरी ॥
कर भाजन श्रृंगी जू गर्ग मुनि लग्न नक्षत्र बल शोधरी ॥
भए अचरज ग्रह देखि परस्पर कहत सबन प्रति बोधरी ॥
सुद भादो शुभ मास अष्टमी अनुराधा के शोधरी ॥
प्रीति योग बल बालव करन लग्न धनुष वर बोधरी ॥
प्रथम पहर दिन उदित दिवाकर सत्या सुखद सुजातरी ॥
नाम करन राधा रति रंजन रमा रसिक बहु भांतरी ॥
सुन वृषभान सुता जिन मानो ऐसी रमा रति लोलरी ॥
नाहिन ओर सुन्दर त्रिभुवन में श्री राधा समतोलरी ॥
नाहिन सची रमा गिरिजा रति रोम रोम प्रति ठानेरी ॥
नवनिधि चार पदारथ को फल आयो सकल ग्रहतानेरी ॥
जब ब्याहन शुभ योग होयगो शोभा कहत न आवेरी ॥
दस ओर चार लोक को नायक सोई सुता वर पावेरी ॥
तब हँस कह्यो दुर्वासा सबन सों सुनो श्रुति सकल गुवालरी ॥

मेरे हि चित आयो निश्चय नंद महर घर बालरी ॥
वृन्दावन रस रास रसिकमणि दम्पति सम्पति मानेरी ॥
संकेत स्थल विहरत दोऊ सोई सकल यह जानेरी ॥
युवती यूथ मध्य रसिक शिरोमनि वल्लभ कुल नंद लालरी ॥
यह जोरी जुग जुगत होयगी श्रीराधारमण गोपालरी ॥
शिव, विरंची जाकी जूठन न पावत सोई ग्रास परस्पर देतरी ॥
कुँजन-कुँजन क्रीडत अद्भुत अगम निगम रस लेतरी ॥
यह विध कह्यो द्विजराज जुगत सों ग्वाल मंडली जानेरी ॥
जय जय कार करत सुर लोकन बाजत तूर निशानरी ॥
घर घर तें सब गोपी निकसी गावत मंगल बालरी ॥
पिकबेनी मृगनेनी सुंदर चलत सुचाल मराल री ॥
जो रस नंद भवन में उमग्यो ताते दूनो होतरी ॥
हय गय धेनु ओर मणि दीनी बंदीजन द्विज बोहोत री ॥
वसन विचित्र सबन पहराये सब शिशु देखन जायरी ॥
मुख अवलोकि कहत चिरजीयो पुलकि- पुलकि सचु पायरी ॥
सुर मुनि नाग धरनी जंगम को आगम अति सुख देतरी ॥
शशि खंजन विद्रुम शुक के हरि इनको छिन बल लेतरी ॥
यह छवि निरख निरख सचु पावत पुनि डोरत तृन तोररी ॥
'सूरदास' उर बसो निरंतर राधामाधव जोररी ॥

यह अनोखी बधाई है, इसमें ९ योगेश्वर, गर्ग, दुर्वासा आदि राधाष्टमी पर आये हैं। नन्द भवन से दूना उत्सव श्रीजी की बधाई में हुआ है और श्रीजी के सौन्दर्य की तुलना में न लक्ष्मी, न पार्वती कोई भी महाशक्तियाँ नहीं है। इस बधाई में बरसाना व रावल नाम न देकर केवल इतना ही कहा कि वृषभानु भवन के सिंह द्वार पर सभी ऋषि राधा जन्म की प्रतीक्षा में बैठे हैं और जैसे ही सूचना पाते हैं, वे सब नामकरण आदि जातकर्म संस्कार में लग जाते हैं। वृषभानु महल ब्रज में तीन स्थान पर है बरहाना, बरसाना, रावल। जब गोकुल लीला होती है तब श्रीजी रावल रहती हैं, नन्द गाँव लीला में श्रीजी बरसाने विराजती हैं, जब नन्द बाबा बसई रहते हैं तब श्रीजी बरहाने विराजती हैं।

सर्वज्ञ सर्वविद्या विशारद महर्षि गर्गाचार्य जी पावन यमुना तट पर शोभायमान वृषभानु पुरी रावल में आये। छत्र और दण्ड धारण करने से वे दूसरे इन्द्र और धर्मराज की तरह शोभायमान हो रहे थे। द्वितीय सूर्य की भाँति उनका तेज दसों दिशाओं को प्रकाशमान बना रहा था। पुस्तक एवं मेखला से सुसज्जित मुनि श्रेष्ठ गर्ग दूसरे ब्रह्मा की तरह मालूम पड़ते थे। शुभ्र वस्त्रों के धारण करने के कारण उनकी आभा भगवान् विष्णु की तरह प्रतीत होती थी। ऋषि कुलचूड़ामणि गर्ग जी को अपने द्वार पर आया देखकर वृषभानु जी ने बड़े

सम्मान के साथ उनके चरणों की वन्दना की और करबद्ध होकर वे उनके सामने खड़े हो गए। अर्चना पद्धति के जानकार वृषभानु राय ने गर्ग जी को एक श्रेष्ठ आसन पर विराजित करके शास्त्रीय विधि से उन महामुनि की उपासना की, तत्पश्चात् उनकी प्रदक्षिणा करके श्री वृषभानु जी इस प्रकार बोले, "महापुरुषों का आगमन शान्ति का हेतु होता है क्योंकि इससे गृहस्थों को परम शान्ति प्राप्त होती है। मनुष्यों के हृदयस्थ अज्ञान अन्धकार का नाश संत महापुरुषों के द्वारा ही होता है न कि सूर्य द्वारा।महाराज, आपके दर्शनों से हमारी सम्पूर्ण गोप जाति परम पावन हो गयी। पृथ्वी पर आप जैसे अमलात्मा महापुरुष अपनी चरण-रज से तीर्थों को भी पवित्र करते हैं। भगवन्! मुझे एक परम मंगलमयी कन्या रत्न की प्राप्ति हुई है, जिसका नाम है राधिका। आप अच्छी प्रकार से मनोयोग पूर्वक चिंतन करके यह बताने की कृपा करें कि इसके अनुरूप सुलक्षणों से सम्पन्न वर कौन है, जिसके साथ इसका पाणिग्रहण संस्कार किया जाए क्योंकि आप सूर्य के सदृश त्रिलोकी में भ्रमण करते रहते हैं, आप सर्वज्ञ हैं अतः आपके द्वारा निर्दिष्ट सर्वगुणसम्पन्न वर को ही मैं इस मंगलमयी कन्या को अर्पण करूँगा"।

देवर्षि नारद कहते हैं – "राजन्, वृषभानु जी की यह अभिलाषा सुनकर, गर्ग जी तुरन्त उन्हें निर्जन यमुना तट पर ले आये, वहाँ एक परम रमणीक स्थल था जो नील यमुना की निर्मल तरंगों की सुमधुर ध्वनि से सदा गुंजायमान रहता था। वहाँ गोप शिरोमणि वृषभानु जी को विराजमान करके सर्वज्ञ मुनि गर्ग ने इस प्रकार कहा।

"वृषभानु जी, एक गोपनीय तथ्य है, इसे किसी को मत बताना। अनन्त ब्रह्मांड नायक, गोलोकाधिपति, परिपूर्णतम ब्रह्म, जिनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है, उन्हीं लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का नन्द बाबा के गृह में प्राकट्य हुआ है"।

श्री वृषभानु राय जी बोले – "महर्षे, नन्द जी परम धन्य और अवर्णनीय सौभाग्य से युक्त हैं। अब आप भगवान् श्रीकृष्ण के अवतरण का सम्पूर्ण रहस्य मुझे बताने की कृपा करें।"

महर्षि गर्ग बोले – "ब्रह्मा जी की प्रार्थनानुसार भू-भार हरण करने तथा कंस आदि नराधमों का विनाश करने हेतु गोलोक पति भगवान गोविंद इस धरा पर अवतरित हुए हैं। उन्हीं नन्द नंदन प्रभु की परम प्रेयसी, गोलोकेश्वरी श्रीराधा रानी का ही तुम्हारे सदन में कन्या रूप से प्राकट्य हुआ है। तुम्हें भगवान् की आह्लादिनी शक्ति श्रीजी की अतुलनीय महिमा का ज्ञान नहीं है"।

श्रीनारद जी ने कहा – "उस समय गोपेश्वर वृषभानु के हृदय में आनन्द का सिंधु उमड़ पड़ा और वे रोमांचित हो उठे। उन्होंने कीर्ति रानी को बुलाकर इस विषय में गहन विचार विमर्श किया। तदनन्तर राधा-माधव की अतुलनीय महिमा को जानकर गोपेन्द्र वृषभानु आनन्द अश्रु प्रवाहित करते हुए पुनः ऋषि वर गर्ग जी से बोले।" वृषभानु राय ने कहा – "महामुने! उन्हीं परमेश्वर श्रीकृष्ण को मैं अपनी इस पद्माक्षी बालिका को समर्पित करूँगा। आपने मुझे विलक्षण मार्गदर्शन किया है। अतः आप के ही निर्देशानुसार इस कन्या का

पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न होवे।" गर्ग मुनि बोले – "गोपवर ! श्रीराधा और उनके प्राणनाथ माधव का शुभ विवाह संस्कार मैं नहीं करूँगा। पावन यमुना तटवर्ती भांडीर वन में इनका शुभ विवाह सम्पन्न होगा। वृन्दावन के समीपवर्ती किसी निर्जन स्थान में सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्मा के द्वारा इनका विवाह संस्कार सम्पन्न होगा। हे गोपेश्वर ! तुम इन श्रीराधा को मधुराधिपति श्यामसुन्दर की प्राणवल्लभा समझो। इस जगत में सम्राटों के अधिपति तुम हो एवं समस्त लोकों का अधिपति गोलोक धाम है। तुम अपनी सम्पूर्ण गोप जाति के सहित गो लोक धाम से ही इस वसुन्धरा पर आये हो, उसी प्रकार समस्त गोपांगनाएँ भी श्रीजी की आज्ञानुसार गो लोक से अवतरित हुई हैं। बड़े बड़े यज्ञ संपादन करने पर देवताओं को भी असंख्य जन्मों तक जिनका दर्शन दुर्लभ है, वे ही गोलोकेश्वरी श्रीकृष्ण वल्लभा राधा रानी तुम्हारे भवन के प्रांगण में गुप्त रूप से विराजित हैं तथा असंख्य गोप और गोपिकाएँ उनका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करते हैं।" श्री नारद जी ने कहा – "हे राजन् ! श्रीराधा-माधव की यह अतुलनीय महिमा श्रवण कर वृषभानु राय और रानी कीर्ति अत्यन्त आश्चर्यचकित और परमानंद से रोमांचित होकर गर्गजी से इस प्रकार कहने लगे "द्विजवर, राधा शब्द की तात्विक व्याख्या बताने की कृपा करें। मुनिवर ! इस पृथ्वी पर मन के संशय को निर्मूल करने वाला आपके सदृश कोई नहीं है"। गर्गाचार्य जी ने कहा – एक बार की बात है, मैं गंधमादन गिरि पर गया था। शिष्यगण भी मेरे साथ थे। वहीं श्री नारायण के मुखारविन्द से मैंने सामवेद का यह सारांश श्रवण किया। 'र' कार से रमा का, 'आ' कार से गोपाङ्गनाओं का, 'ध' कार से धरा का तथा 'आ' कार से विरजा नदी का ग्रहण होता है। लीला पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण का सर्वोत्तम तेज चार रूपों में विभाजित हो गया। लीला, भू, श्री, और विरजा, ये ४ श्रीकृष्ण पत्नियाँ श्रीराधा रानी के मंगलमय विग्रह में विलीन हो गईं। इसलिए मनीषी जन श्रीराधिका को परिपूर्णतम कहते हैं। गोपराज ! जो मानव राधा-कृष्ण के इस नाम का सतत् कीर्तन करते हैं, उनके लिए चारों पुरुषार्थ तो क्या अपितु प्रत्यक्ष भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात्कार भी सुगम हो जाता है।"

श्री नारद जी ने कहा – "राजन् ! उस समय सपत्नीक वृषभानु जी परम आश्चर्यचकित हो गये। श्रीराधा गोविन्द के अतुलनीय वैभव को जानकर वे परमानन्द की साकार प्रतिमा बन गए। तदनन्तर श्री वृषभानु राय ने ऋषि कुल चूड़ामणि श्री गर्गाचार्य की अर्चना की। तत्पश्चात् वे तत्वज्ञ एवं त्रिकालज्ञ मुनीश्वर गर्ग जी अपने गन्तव्य को पधार गए।"

रावल – श्री राधारानी मंदिर

अध्याय – ५०

ब्रजरजधानी श्री मथुरापुरी

रा संसार जिस ब्रह्म ज्ञान से मथा जाता है अथवा सारा संसार जिसमें अन्तर्हित है, उस ब्रह्मज्ञान का जो आधार रूप है, वह श्री मथुरा है यानि श्री मथुरा जी सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञान, भक्ति का केंद्र है।

मथ्यते तु जगत् सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा ।
तत्सारभूतं यत्तस्यां मथुरा सा निगद्यते ॥

(श्री गोपाल तापनी उपनिषद उ. ख. ७२)

भारत

गण्यमान महात्माओं से जैसा श्रवण करने को मिला, हम लोग भारतवर्ष के कहलाते हैं इसका अर्थ है – 'भा' माने ज्ञान, 'रत' माने लीन, भा-रत अर्थात् ज्ञान में लीन।

मथुरा

जहाँ ज्ञान भी लीन हो जाय, '**सा मथुरा निगद्यते**" उसे मथुरा कहते हैं।

पद्मपुराणानुसार

भारत की प्रख्यात मोक्ष प्रदायिनी, परम पावन प्राचीनतम सप्त पुरियों में हमारे प्रियतम की जन्म भूमि श्रेष्ठ, श्री मथुरा जी की गणना, श्लोक के प्रथम पाद में ही हो जाती है –

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका ॥

(प.पु.)

धन्य है-धन्य है यह पुरी, ये नगरी। यह जो हमारे आश्रय दाता की भी आश्रयिणी बनी फिर क्या संदेह है इसके बैकुण्ठ से भी उत्कृष्ट होने में? अर्थात् कोई संदेह नहीं –

अहो मधुपुरी धन्या बैकुण्ठाच्च गरीयसी ।
दिनमेकं निवासेन हरौ भक्ति प्रजायते ॥

(प.पु.पा.ख.)

मात्र एक दिवस के वास से पंचम पुरुषार्थ "कृष्ण प्रेम" का हृदय में प्रस्फुटन होने लगता है फिर अपर लाभों से क्या प्रयोजन?

भूगोपाल चक्रे सप्तपुर्यो भवन्ति तासां मध्ये साक्षात् ।
ब्रह्म गोपालपुरीरीति चक्रेण रक्षिता हि वै मथुरेति ॥

(गो.ता.उप)

भारत के भू-भाग में अयोध्यादि सप्तपुरियाँ हैं। उन सप्त पुरियों में श्री कृष्ण जन्म भूमि के नाम से 'श्री मथुरा' जी ही गौरवान्वित हुई। जिस धरा पर षोडश कला सम्पन्न सच्चिदानन्द का आगमन हुआ, जो सहस्त्र-धारी के सहस्रार से सदा सुरक्षित है, फिर क्या संदेह उस धरा के असाधारण – अप्राकृत, मायातीत, गुणातीत होने में? सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग चारों युगों में इसकी अवस्थिति रही है, जिसके अनेकानेक प्रमाण भी प्राप्त होते हैं।

देखिये –

पुराकृतयुगस्यान्ते मधुनामासुरोऽभवत् ।
इन्द्रादीन् सकलान् जित्वा त्रैलोक्यधिपतिर्भवेत ॥
नाम्ना मधुपुरी प्रशंशासासुरेश्वर: ।
तदैव पीडिता देवा: केशवं शरणं ययु: ॥
नमो नारायणायैव माधवाय नमोस्तु ते ।
मधुं विनाशाय स्वामिन्नस्माकं परिपालय ॥
इतिविज्ञापितो विष्णुर्युयुधे मधुनासह ।
दशवर्षप्रमाणेनासुरं तत्रावधीद्धरिः ॥
सर्वेदेवाः समागत्य माधवं नाम चक्रिरे ।
मधोः पुरीं समुत्पाद्य मथुरां नाम चक्रिरे ॥

सतयुगान्त में मधु नामक दैत्य सभी असुरों को जीतकर त्रिलोकपति बन गया था। मधु के निवास काल में उस स्थान का नाम मधुपुरी पड़ा। दुरात्मा के अत्याचारों से भयाक्रान्त हो समस्त सुरगण प्रभु की शरण में आये। १० वर्ष प्रभु के साथ संग्राम चला, अन्त में मधु का प्राणान्त हो गया। तत्पश्चात् देवों ने प्रभु की वन्दना की और प्रभु को नूतन नाम से संबोधित किया – 'माधव' और मधुपुरी का नाम रखा – 'मथुरा'

उसी समय देवों द्वारा ८४ तीर्थ यहाँ स्थापित हुए।

वाल्मीकि रामायण, महाभारत और हरिवंश पुराणानुसार मथुरा का नाम मधुरा, मधुपुरी प्राप्त होता है। कहीं-कहीं महुरा, मधुपघ्ना, मधुषिकादिक नाम भी मिलते हैं।

विष्णुपुराणानुसार

त्रेतायुग में – शत्रुघ्न ने मधु पुत्र लवणासुर का वध करके मधुवन का सघन कानन काटकर मथुरा नगरी की स्थापना की –

हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ॥

(वि० पु.१/१२/०४)

इसके अलावा भागवत में भी शुकदेव जी ने वर्णन किया है –

शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ।
हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥

(भा.०९/११/१४)

शत्रुघ्न जी ने मधुवन में मधु के पुत्र लवण नामक राक्षस को मारकर वहाँ मथुरा नाम की पुरी बसायी।

हरिवंशपुराणानुसार

"छित्वा वन तत्सौमित्रः"

(हरिवंश पुराण.१/५४/५५)

से ज्ञात होता है कि शत्रुघ्न ने मधुवन के जंगल कटवाकर आवासोचित नवीन नगरी मथुरा को बसाया और यहाँ द्वादश वर्ष पर्यन्त राज्य शासन किया। कुछ जनों का मन्तव्य है कि शत्रुघ्न द्वारा नव निर्मित नगरी का नाम शूरसेन नगरी था।

द्वापरान्त में तो मथुरा का महत्व ही मुख्यतः हमारे सर्वस्व श्री कृष्ण की जन्मभूमि, कर्मभूमि और फिर कंस का काल बनने के कारण बढ़ा, जो सर्व विदित है और कलियुग में इसकी अवस्थिति बार-बार नष्ट करने पर भी उछलती रही, जिसका प्रमाण हमारा इतिहास और हम स्वयं हैं, अतएव इस पुरी की उपस्थिति चतुर्युगों में जो कही गयी, वह अकाट्य सत्य है –

वाराह उवाच –

विंशतिर्योजनानां हि माथुरं मम मंडलम् ।
पदे पदेऽश्वमेधानां फलं नात्र विचारणा ॥

(आ.वा.पु.१६८/९)

विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मंडलम् ।
यत्र तत्र नरः स्नातो, मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

(आ.वा.पु.१५८/१)

स्वयं वाराह भगवान् ने कहा – (पृथ्वी से) “मेरा माथुर मण्डल विंशति योजन विस्तृत है अर्थात् ८० कोस, बड़ा व्यापक क्षेत्र है।” यहाँ पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और स्नान से समस्त पापों से निवृत्ति हो जाती है। पुराणों में यह मथुरा मण्डल या माथुर मण्डल कहलाया। ६३५ ई० में ह्वेनसांग मथुरा आया था, ह्वेनसांग के अनुसार मथुरा राज्य का विस्तार ८३३ मील अर्थात लगभग १२३० कि० मी० था। इस राज्य में मथुरा, आगरा, भरतपुर, करौली, धौलपुर तथा ग्वालियर राज्य के उत्तर का आधा भाग सम्मिलित बताया जाता है और मथुरा नगर का विस्तार उसने ५ कि०मी० का बताया है। श्री प्रभु की लीला के बाद यह स्थान लुप्त प्रायः हो गया था तब कलियुग में श्रीमन् महाप्रभु जी ने यहाँ स्वयं आगमन कर व लोकनाथ आदि गोस्वामी गणों द्वारा मथुरा जी का पुनः प्रकटीकरण कराया –

"मथुरार लुप्त तीर्थे करिअ उद्धार"

(चै.चरि)

गर्गसंहितानुसार

भागवत भाष्य ‘गर्गसंहिता’ – मथुराखण्ड – मथुरा माहात्म्य में तो नारद जी ने राजा बहुलाश्व के समक्ष ३९ श्लोकों में मथुरा के एक-एक रज-कण का माहात्म्य समुद्-घाटित कर दिया। प्रथम तो राजा बहुलाश्व ने प्रश्न किया “श्री मथुरा जी का कौन अधिष्ठातृ देव है? कौन यहाँ का रक्षक है? कौन चारु है ? कौन मंत्री है? कौन सेवन करता है? ” तब श्री नारद जी ने कहा –

"स्वयं हि मथुरानाथः केशव क्लेशनाशनः"

“स्वयं क्लेश नाशक केशवदेव ही मथुरा के नाथ हैं, जिन्हें वाराह देव के नाम से भी पुकारते हैं। स्वयं भगवान् ने अपनी केशव देव जी की मूर्ति सर्वप्रथम कपिलदेव ब्राह्मण को प्रदान की – इसके पश्चात् तो यह भ्रमणशील रही, कपिलदेव से इन्द्र के पास, इन्द्र से रावण, रावण से श्री राम प्रभु इसे अयोध्या लाये और राम जी की वन्दना करके उनसे शत्रुघ्न जी उस श्री केशव वाराह प्रभु के विग्रह को लाये, जिसकी मथुरा में स्थापना की, वे ही साक्षात् कपिल वाराह मथुरा के श्रेष्ठ मंत्री हैं। मथुरा के रक्षक हैं – भूतेश्वर महादेव, जिन्हें मथुरा के कोतवाल के रूप में देखा जाता है। इसका पुष्ट प्रमाण ‘गर्गसंहिता’, ‘आदिवाराह पुराण’ आदि ग्रंथों में मिलता है –

क्षत्ता श्री मथुरायाश्च नाम्ना भूतेश्वरः शिवः ।
दत्त्वा दण्डं पातकिने भक्त्यर्थान्मंत्रतां व्रजत् ॥

(ग.सं.म.ख.मथुरा महात्म्य-२५/९)

मथुरा के क्षेत्रपाल श्री भूतेश्वर, पापियों को दण्ड देकर भक्ति के लिए उन्हें मन्त्र देते हैं।

मथुरायां च देव त्वं क्षेत्रपालो भविष्यसि ।
त्वयि दृष्टे महादेव मम क्षेत्रफलं भवेत् ॥

(वा.पु.१६८/५, ६)

श्री कृष्ण ने कहा – "देव ! आप मथुरा के क्षेत्रपाल होंगे, हे महादेव ! आपके दर्शन करके लोग मेरे धाम को प्राप्त करेंगे।" यहाँ इस अवनि पर परमपिता ब्रह्मा को तप द्वारा स्वायंभुव जैसा पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, वरुण को जल- स्वामित्व प्राप्त हुआ, अम्बरीष को मुक्ति, ध्रुव को ध्रुव पद, स्वयं प्रभु राम को लवणासुर पर विजय, रावण को सब देवों पर जय व शान्तनु ने भीष्म जैसा पुत्र पाया।

मथुरा माहात्म्य स्वयं वाराह प्रभु ने पृथ्वी देवी को सुनाया था –

ब्रुवञ्जनो नाम फलं हरेर्लभेच्छृण्वँल्लभतेत्कृष्णकथाफलं नरः ।
स्पृशन्सतां स्पर्शनजं मधोः पुरि जिघ्रंस्तुलस्या दलगंधजं फलम् ॥

(ग.सं.मथु.ख.२५/२६)

मथुरा का नाम ही ले लो, श्री कृष्ण नाम लेने का फल मिल जाता है। मथुरा का नाम सुनने से श्री कृष्ण कथा श्रवण का फल मिल जाता है, स्पर्श करने से सन्त स्पर्श का फल और सूँघने से तुलसी पत्र का फल, अगर मथुरा का दर्शन हो गया तो आ ......हा ......हा ....साक्षात् श्री कृष्ण दर्शन हो गया। मथुरा जी में चौदह करोड़ वन हैं, जिनमें चौदह करोड़ तीर्थ हैं।

यन्नाम पापं विनिहंति तत्क्षणं भवत्यलं यां गृणतोऽपि मुक्तयः ।
वीथीषु वीथीषु च मुक्तिरस्यास्तस्मादिमां श्रेष्ठतमां विदुर्बुधाः ॥

(ग.सं.मथु.ख.२५/३२)

यहाँ गली-गली में मुक्ति घूमती है।

काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या ।

(ग.सं.मथु.ख.२५/३३)

काशी आदि सप्तपुरियों में भी मथुरा जी ही धन्य हैं - धन्य हैं क्योंकि मथुरा जी ४ प्रकार से मुक्ति देती हैं, मथुरा में जन्म हो या यज्ञोपवीत हो, मृत्यु हो अथवा अन्त्येष्टि हो, इनमें से एक भी बात हो तो प्राणी की मुक्ति हो जाती है कारण कि यहाँ पापकर्षण श्री कृष्ण का प्राकट्य हुआ, ११ वर्ष ब्रजवासियों को गोकुल में अपनी अनूदित लीलाओं से आनन्दित किया, उसके बाद मथुरा का सौभाग्य जागा । अक्रूर जी के साथ मथुरा में आगमन हुआ, पीताम्बर-नीलाम्बरधारी दोनों भैया मथुरा की महिमा बढ़ाने आ रहे हैं, यह जानकर पुरस्त्रियाँ चिरकाल बाद उस बहुश्रुत रूप का दर्शन करने एकाएक दौड़ पड़ीं। ऊँची-ऊँची गगनचुम्बी अट्टालिकाओं पर अटपटी वेष-भूषा धारण किये चढ़ गयीं। आज मणिमण्डित मथुरा की वीथि-वीथि पुष्पों से खचाखच हो गयी हैं, पता नहीं किस वीथि का सौभाग्य पहले जाग जाये और जब ग्वाल-बालों से समावृत कोटि मन्मथमन्मथ विश्वेश का दर्शन लाभ प्राप्त

हुआ तो खुद को ही भूल गयीं। दृष्टि कृष्ण के मुखाम्बुज से टस से मस भी नहीं हुई, बेचारियों को सम्भाले भी कौन? क्योंकि सबकी स्थिति ऐसी ही है। दीनबन्धु की दिव्य लीलाओं से स्नात्, अभिषिक्त यह मथुरा केवल स्थूल चक्षुगोचर मथुरा ही नहीं है, प्रत्युत दया धाम की दिव्य चिन्मय लीलाओं से इसका शाश्वत सम्बन्ध है। यहाँ की सब स्थलियाँ, घाट, तीर्थ, भव्य भवन, यहाँ के वासी, यहाँ के पशु-पक्षी, यहाँ की श्री यमुना जी, स्थावर-जड़्गम सब दिव्यत्व को प्राप्त हैं किन्तु ये दिव्य परिकर दिव्य दृष्टि, दिव्यबुद्धि से ही गम्य है।

मथुरा पुरी का वैशिष्ट्य

इदं पद्मं महाभागे सर्वेषां मुक्तिदायि च ।
कर्णिकायां स्थितो देवि केशवः क्लेशनाशनः॥

(आ.वा.पु.१६३/१५,१६)

इसकी बड़ी विस्मयजनक सृष्टि है। मथुरा की आकृति है – कमलाकृति।

यहाँ के अधिष्ठातृ देव – 'केशवदेव' इस पुरी की मध्य कर्णिका में विराजते हैं। पश्चिम पत्र में हरदेव जी (गिरिराज जी में), उत्तर पत्र में गोविन्द देव जी

(वृन्दावन में), दक्षिण पत्र में श्री वाराह देव (मथुरा में) विराजते हैं, पूर्वीय पत्र पर विश्रान्ति नामक भगवद्स्वरूप विराजमान हैं। इसलिए ब्रज में कहते हैं –

ब्रज समुद्र मथुरा कमल वृन्दावन मकरन्द ।
ब्रज बनिता सब कुमुद है कैरव गोकुल चन्द ॥

ब्रज ही तो भारत की भक्ति, शक्ति का केंद्र था एवं है।

श्री कृष्ण जन्म भूमि

अनेकों बार हमारे इस सांस्कृतिक केंद्र को नष्ट करने का प्रयास किया, मथुरा नगरी के प्राचीन आध्यात्मिक स्थल लुप्त प्रायः भी कर दिये, किन्तु इस ब्रज, इस धरा का गोलोक से यहाँ अवतरण हुआ है। यह तो सनातन लीला भूमि है हमारे लीला बिहारी की। अतः इसे सम्पूर्ण रूप से नष्ट कोई भी नहीं कर पाया और आज यह पुनः पूर्ववत् अपनी कीर्ति के प्रकाश का प्रसार सर्वत्र कर रही हैं । श्री ठाकुर जी के प्रपौत्र श्री बज्रनाभ जी महाराज द्वारा श्री कृष्ण जन्म भूमि का निर्माण हुआ, तत्पश्चात् ८०० ई० के लगभग विक्रमादित्य द्वारा मन्दिर का निर्माण हुआ। सन् १००० से १०२६ ई० तक राजा जयपाल के शासन काल में महमूद गजनवी का भारत पर एक बार नहीं, १७ बार आक्रमण हुआ। मथुरा पर भी सर्वप्रथम यवन शासक गजनवी ने ही १०१७-१८ ई० में आक्रमण किया, अनेकों लीला स्थलियों को नष्ट प्रायः कर सम्राट् विक्रमादित्य द्वारा जन्म भूमि पर बने विशाल मन्दिर को

तोड़ डाला। भगवान् वासुदेव के उस मन्दिर की भव्यता का वर्णन करते हुए मीर मुंशी अल-उल्वी जो कि महमूद गजनवी का मंत्री था, उसने गजनवी के भारत आक्रमण जो १०१७ ई० में किया, उसकी चर्चा तारीखे यामिनी नामक पुस्तक में की है कि वासुदेव मन्दिर को देखकर स्वयं सुल्तान ने कहा था कि इस भव्य इमारत को बनाना चाहें तो १० करोड़ दिनार (स्वर्ण मुद्रा) से कम व्यय न होगा और चाहे कितने ही योग्य व अनुभवी कारीगर लगा दिए जायें, २०० वर्ष से कम अवधि नहीं लगेगी। सुल्तान ने कहा – "यह किसी मनुष्य की कारीगरी है ही नहीं इसे बनाने वाला कोइ देव ही होगा और देव निर्मित भवन को कोई कारीगर क्या बनायेगा? उसके बाद सुल्तान महमूद ने २० दिन तक मथुरा शहर को लूटा। सोना, चाँदी, बहुमूल्य मूर्तियाँ तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं को सैकड़ों ऊँटों पर लाद ले गया। अलबदायुनी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि उस समय सुल्तान की आज्ञा से एक देव मूर्ति तोड़ी गयी, जिसका वजन ९८,३०० मिस्कल शुद्ध सोना था। उन दिनों यवन मथुरा की बहुत संपत्ति ले गये, उस गंभीर स्थिति से गुजरने के बाद इस मन्दिर का पुनः निर्माण हुआ। सं० १२०७ में कन्नौज के राजा विजयचन्द्र के द्वारा शासन काल में संवत् १२०७ में जज्ज नामक महाशय ने कृष्ण जन्म स्थान पर एक नया मन्दिर बनवाया, सन् १५१५ ई० के लगभग श्री मन्महाप्रभु चैतन्य देव उस मन्दिर में पधारे थे।

गोकुल देविया आहला मथुरा नगरे ।
जन्म स्थान देखि रहे सेई विप्र धरे ॥

(चै.चरि.)

संवत् १४८९ में सिकंदर लोदी ने इसे नष्ट किया। यहाँ के मन्दिर और मनोरम घाटों को नष्ट-भ्रष्ट करके बड़ी-बड़ी मस्जिदें खड़ी कर दीं और यह सख्त आदेश दे दिया कि घाटों पर कोई भी हिन्दू स्नान करने न आ सके और न कोई नाई उनका क्षौर कर्म करे।

इसके बाद अकबर बादशाह का शासन काल आया जो सन् १५५६ से १६०५ ई० तक रहा, किन्तु अकबर उदार व्यक्तित्व युक्त था। अकबर कालीन ब्रज में हिन्दू धर्म का खूब प्रचार प्रसार हुआ। ब्रजमण्डल में खूब ठाकुरों की विधिवत सेवा, पूजा, संतों का समादर होता रहा, इसके अतिरिक्त अकबर ने स्वयं श्री गोविन्द मन्दिर, दामोदर मन्दिर के लिए २०० बीघा जमीन दी और स्वामी श्री हरिदास जी, रूप गोस्वामी जी, जीव गोस्वामी जी आदि महान संतों के पास उसका समय-समय पर दर्शनार्थ आगमन भी होता रहा।

इसके बाद पुनः लगभग १६१५ ई० में ओरछा के राजा वीर सिंह बुंदेला ने ३३ लाख की लागत से केशवराय के जीर्ण-शीर्ण विशाल मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। अपनी भव्यता, पच्चीकारी एवं अलंकरण की दृष्टि से ये तत्कालीन मंदिरों में अग्रगण्य रहा।

१६५० ई० में जब फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर यहाँ आया तो उसने अपना अनुभव लिखा कि जगन्नाथ और बनारस के बाद मथुरा का मन्दिर सबसे विख्यात है। यह मन्दिर सम्पूर्ण भारत में अत्यंत सुन्दर एवं उत्कृष्ट मंदिरों में से एक है। उसके बाद सन् १६६३ ई० में

बर्नियर आया तो उसने भी मथुरा को उल्लेखनीय कहा। अकबर का शासन काल १५५६ ई० से १६०५ ई० तक कहा जाता है, उसके तुरन्त बाद १६०५ से १६२७ ई० तक जहाँगीर का शासन रहा फिर जहाँगीर के जाते ही १६२८ से १६६८ तक ४० वर्ष शाहजहाँ रहा, शाहजहाँ के बाद १६६९ से १७०७ तक औरंगजेब ने हिन्दुओं पर मथुरा की धरा पर अपार प्रहार किये, सन् १६६९ में पुनः जन्म भूमि के मन्दिर का विध्वंस हुआ और इसके स्थान पर एक मस्जिद खड़ी की गयी। औरंगजेब ने जो मथुरा पर कहर किया, इससे मुगल साम्राज्य का जल्दी ही आधिपत्य नष्ट हो गया, सन् १७०७ से १७३९ तक के बीच के काल में बहादुरशाह (फारुखशियर) एवं मुहम्मद शाह रंगीला आदि शासक हुए।

सन् १७३९ से १७४४ ई० तक नादिरशाह का साम्राज्य रहा, उसके बाद १७४४ ई० से अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों में तीन बार युद्ध हुआ, इसके बाद २०० वर्ष तक भारत पर अंग्रेजी शासन काल आ गया किन्तु इसमें हमारे ठाकुर विग्रहों पर किसी ने उंगली नहीं की। १८०० से १८५७ ई० के मध्य हिन्दुओं में कुछ जाग्रति आयी। १८१५ ई० में काशी नरेश पटनीमल ने जन्म भूमि की जगह को एक भव्य मन्दिर बनाने की इच्छा से खरीद लिया और भी धार्मिक नगरियों में (अयोध्या, काशी आदि में) हिन्दू राजा संगठित होकर मंदिरों का निर्माण कराने लगे। १८०४ से १८५७ ई० तक ऐसा कहते हैं कि भारत में शान्ति काल रहा। इस बीच किसी भी प्रकार का घटनाक्रम प्राप्त नहीं होता है। १८५७ ई० अंग्रेजी शासन काल में भारत का स्वतंत्रता संग्राम हुआ। लगभग एक शताब्दी बाद १९४७ ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन छिड़ा और भारत स्वतंत्र हुआ, इसके बाद १५ अक्तूबर सन् १९५३ में राजा पटनीमल का स्वप्न श्री मदन मोहन मालवीय के प्रयास से साकार हुआ, १८१५ ई० में उन्होंने जन्म भूमि को खरीद तो लिया किन्तु कृष्ण स्मारक का निर्माण न करा सके तब पटनीमल के उत्तराधिकारी रायकृष्ण दास से ८ फरवरी सन् १९४४ ई० में वह जन्म भूमि की जमीन घनश्यामदास बिड़ला के सहयोग से श्री मालवीय जी ने खरीद ली और फिर सन् १९५१ ई० में श्री कृष्ण जन्मभूमि ट्रस्ट की स्थापना हुई। जिसके अध्यक्ष श्री गणेश वासुदेव मालवंकर को नियुक्त किया। उसके बाद एम० अनन्तशयनम् आयंगर हुए। मुसलमानों ने इसमें व्यवधान भी डाला फिर १५ अक्तूबर सन् १९५३ ई० में ट्रस्ट के योग्य अध्यक्ष महान संत श्री अखण्डानन्द स्वामी जी बने, इसी बीच १९५६ ई० में कल्याण के प्रधान जन्मदाता श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी (भाई जी) सैकड़ों भक्तों के साथ मथुरा पधारे, इसके बाद तो कार्य स्वतः पूर्णता की ओर अग्रसर होने लगा। १९६५ में श्री भाई जी के द्वारा एक भागवत भवन का निर्माण हुआ। ब्रज के कण-कण में जिसने अपनी ललित लीलाओं का सौरस्य बिखेरा, उस जगदाधार, जगत् नियन्ता, जगदीश्वर की जन्म भूमि को इस कलियुग में उत्थान-पतन की कितनी विषम परिस्थियों से गुजरना पड़ा। यह सम्पूर्ण भारत के लिये मानो "धैर्य मत छोड़ो" की शिक्षा का उद्घोष कर रहा है।

मथुरा के वन

'गर्गसंहितानुसार' स्तुत्य-वन्द्य-प्रणम्य मथुरा के अन्दर १४ करोड़ वन हैं, जिनमें कोटि-कोटि तीर्थ हैं, इन सबका वर्णन तो लेखन दौर्बल्य, अल्पबुद्धि, ग्रन्थ विस्तार का भय और फिर आगे की लीलाभूमि में प्रवेश करने की चटपटी आदि-आदि कारणों के कारण संभव नहीं है।

किन्तु फिर भी हम संक्षेप में अवश्य लाला की लीला भूमि के विषय का आस्वादन करते हुए ही बढ़ेंगे।

केशवदेव जी

चतुरशीति क्रोशत्वं मर्यादं रक्ष सर्वदा ।
नमस्ते केशवायैव नमस्ते केशी नाशक ॥

(रूद्रयामल)

हे केशी दैत्य के नाशक केशव ! आपको नमस्कार हैं। आप मेरी चौरासी कोस की यात्रा की मर्यादा रक्षा करें।

केशवदेव जी – '**न केशव समो देवः**' (वा० पु०) केशी को मारकर बन गए केशवदेव (केशव सा न देव कहीं) केशवदेव के संरक्षण में पालित-पल्लवित-विकसित इस भूमि में अनेकानेक देव, मुनि विराज रहे हैं। कहीं तीर्थ रूप में, कहीं वन-उपवन के रूप में, कहीं सर-घाट के रूप में। बड़े-बड़े वैष्णव आचार्यों ने आश्रय लिया इस धरा धाम का। श्री निम्बार्काचार्य प्रभु ने यहाँ की शोभा बढ़ाई, पुष्टिमार्गीय श्री महाप्रभु बल्लभाचार्य जी भी यहाँ पधारे और विशाल वृक्षों पर सुकोमल किसलय, नीलवर्णा यमुना, लता-वल्लरियों से आच्छादित यहाँ का कोना-कोना, ऐसी मथुरा राजधानी का दर्शन किया, तदनन्तर केशवदेव मन्दिर में आये, दर्शन किये और यहाँ श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण भी किया। श्री मन्महाप्रभु चैतन्य देव जी इस धरा पर आकर प्रेम के गम्भीर तल में पहुँच गये और अद्भुत नृत्य कला का दर्शन कराया –

अहें श्री निवास कर केशव दर्शन ।
एथा श्री चैतन्य केल अद्भुत नर्तन ॥

(भ.र)

वर्तमान में आप (केशवदेव) कानपुर की औरैया तहसील में रसधान ग्राम की धरणी का सौभाग्य वर्द्धन कर रहे हैं।

मथुरा मण्डल के रक्षक

मथुरा के रक्षार्थ जिन्हें स्वयं प्रभु ने प्रस्थापित किया – चतुर्दिक चार महादेव हैं।

१. श्री गोकर्ण महादेव (उत्तर दिशा में)
२. श्री पीप्लेश्वर महादेव (पूर्व में)
३. श्री रंगेश्वर महादेव (दक्षिण में)
४. श्री भूतेश्वर महादेव (पश्चिम में)

श्री भूतेश्वर जी

भूतानां रक्षणार्थाय स्थापितो हरिणा स्वयं ।
सर्वदा वरदो नाथ भूतेशाय नमोस्तुते ॥

(रूद्रयामल)

आप भोजराज कंस के इष्ट, बज्रनाभ जी के द्वारा स्थापित चार महादेवों में से एक हैं, यह स्थान श्री कृष्ण जन्म भूमि से थोड़ी दूरी पर दक्षिण की ओर स्थित है। आपके ही निकटस्थ पाताल देवी का भी मनोरम दर्शन है।

पोतरा कुण्ड

पोतरा कुण्ड - लाला के जन्म स्थान के समीप ही यह सर अपने असाधारण सौभाग्य को बता रहा है कि मैं वही हूँ जहाँ सद्योत्पन्न नवजात छोटे कृष्ण के जन्म के उपरान्त पीले वस्त्र प्रक्षालित हुए।

विश्राम घाट

तीर्थराज नमस्तुभ्यं देवानां हितकारिणे ।
परस्परसुराधिष्ट विश्रान्त्यै वरदे नमः ॥

(प.पु)

इसी रमणीक स्थान से मथुरा की परिक्रमा प्रारम्भ होती है। कंस शरीरान्त के उपरान्त श्री विश्वेश यहीं आकर श्रान्ति रहित हुए, यहाँ उन्होंने विश्राम किया, हिरण्याक्षवधोपरान्त वाराह भगवान् ने भी इसी स्थान पर अपनी श्रान्ति दूर की, लवणासुर को मार शत्रुघ्न जी ने भी यहीं विश्राम किया, गोलोक से मधुपुरी की यात्रा से थकीं हारी यमुना जी ने भी यहीं चैन पाया।

अतः यह स्थान सम्प्रति विश्राम घाट के नाम से प्रख्यात है, यह यमुना के पावन पुलिन पर स्थित है –

तीर्थराज नमस्तुभ्यं देवानां हितकारक ।
कंसवधश्रमप्राप्तश्रीकृष्ण श्रम हारिन् ॥

(आ.वा.पु)

इस दिव्य रमणीय घाट के विषय में 'आदिवाराहपुराण' का कथन यथोक्त है। सूर्योदय काल में विश्राम तीर्थ, मध्यान्ह काल में दीर्घ विष्णु तथा अपराह्न काल में श्री केशवदेव जी में विष्णु तेज विशेष रूप से विद्यमान रहता है। श्रीमद् आचार्य वल्लभ प्रभु जब यहाँ पधारे, तो उस समय लोदी का शासन काल था, लोदी के हिन्दू धर्म विनाशक कानूनों के कारण यह स्थान श्मशान सदृश हो चुका था, न कोई यहाँ स्नान कर सकता था, न कोई क्षौर कर्म, न दान आदि, तब पूज्य आचार्य जी ने ही यहाँ सर्वप्रथम स्नान किया और अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय देते हुए, अपने निजी-निजी खवासों को निर्भीकता पूर्वक लोदी के पास भेजा, यह कहलवाया कि हिन्दू धर्म में व्यवधान डालने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं। अतः अनुक्षण अपने सभी आदेश निरस्त कर दो तब से यह स्थल अपने पूर्वकाल में खेलने लगा। अपनी पुरातन पद्धितयों के अनुसार लोग स्नान क्षौर आदि कर्म करने, कराने लग गए। विश्राम घाट, मथुरापुरी में यमुना जी का मध्य पूर्वी घाट माना जाता है।

समीपस्थ तीर्थ

वसुदेव-देवकी मन्दिर, मुकुट मन्दिर, कृष्ण बलदेव मन्दिर, अन्नपूर्णा मन्दिर, यमुना जी, धर्मराज जी, हनुमान जी, चर्चिका देवी, गोवर्धननाथ जी, सत्यनारायण प्रभु, सब विराजमान हैं।

मथुरा के द्वारिकाधीश

द्वारिकाधीश ग्वालियर में नागा महात्माओं के सेव्य विग्रह थे। ग्वालियर में सेठ गोकुलदास जी पारिख इनके परम भक्त थे। ये ग्वालियर राजा के यहाँ हीरा परखते थे। एक बार सिंधिया राज्य की सेना उज्जैन का माल लूटकर ग्वालियर लाई तो ग्वालियर महारानी बैजाबाई जो वैष्णवी थीं, वह लूट का माल अपने कोष में नहीं रखा क्योंकि उसमें देव मन्दिरों का धन होने की आशंका थी अतः रानी ने पारिख जी को आज्ञा दी – आप इस धन को ले जाकर ब्रज के किसी पुनीत कार्य में लगा दीजिए। द्वारिकाधीश ने रात्रि में पारिख जी को स्वप्नादेश किया – आप हमें भी अपने साथ ब्रज ले चलें। प्रातः पारिख जी ने प्रार्थना की नागाओं से कि द्वारिकाधीश की ऐसी इच्छा है। ठाकुर की इच्छा जानकर नागाओं ने तत्काल पारिख जी को कहा – आप जब भी ब्रज जावें हमारे प्रभु को अवश्य लेते जावें।

सं.१८५० वि. में द्वारिकाधीश के साथ ही पारिख जी ब्रज पधारे। सर्वप्रथम द्वारिकाधीश जी को गोल पाड़े में स्थित जूनामन्दिर में पधराया गया। कुछ समय बाद मथुरा-वृन्दावन के मध्य यमुना तट पर अक्रूर घाट के निकट ही मन्दिर बनवाकर (भतरौड़ मन्दिर) उसमें विराजमान किया, किन्तु वहाँ न पारिख जी का मन लगा, न द्वारिकेश का अतः पारिख जी ने मथुरा में असकुण्डा एवं विश्राम तीर्थ के मध्य मन्दिर बनवाना आरम्भ किया, मध्य में रोगग्रस्त होने से अपने घनिष्ठ मित्र मनीराम जो कि परम वैष्णव थे, धन के नाम पर पास में कुछ न था, बड़े निर्धन थे। इनके ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीचन्द को पारिख जी ने अपनी सारी सम्पत्ति का अधिकारी बना दिया। इधर मन्दिर निर्माण का कार्य अभी अधूरा ही था कि रोगग्रस्त पारिख जी का गोलोक गमन हो गया। शेष निर्माण कार्य सेठ लक्ष्मीचन्द द्वारा सम्पन्न हुआ, मन्दिर में श्री द्वारिकाधीश की प्रतिष्ठा हुई। बाद में सेठ लक्ष्मीचन्द के पश्चात् उनके वंशज सेठ गोविन्द दास जी ने सेवा संभाली जो कि पुष्टि सम्प्रदाय से दीक्षित थे। वल्लभकुल के गोस्वामी श्री गिरिधर लाल जी महाराज काँकरौली को ज्येष्ठ शुक्ला ११ सं.१९३० को श्री द्वारिकाधीश जी का मन्दिर सेवा पूजा के लिए भेंट कर दिया। तब से आज तक मन्दिर का सेवा कार्य पुष्टि मार्गीय वैष्णवों के अधिकार में है। पुष्टि सम्प्रदायानुसार द्वारिकाधीश के ८ बार झाँकी दर्शन होते हैं – (१) मंगला, (२) श्रृंगार, (३) बाल, (४) राजभोग, ये चार झाँकियाँ प्रातःकाल की हैं एवं (५) उत्थापन, (६) भोग, (७) संध्या आरती, (८) शयन ये चार झाँकी सायंकाल की हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल श्रृंगार के पश्चात् माखन-मिश्री का प्रसाद एवं रात्रि में शयन के पश्चात् मोहन भोग का प्रसाद भक्तों में वितरित होता है। श्रावण मास में हिंडोला दर्शन, रंग-बिरंगी घटाओं का दर्शन, जन्माष्टमी, अन्नकूट आदि यहाँ के मुख्य महोत्सव हैं।

अपार वैभव सम्पन्न ये राजाधिराज तो सचमुच द्वारिकाधीश हैं, आपका भव्य भवन १०८ फुट लम्बी व १२० फुट चौड़ी चौकी पर यमुना किनारे असीकुण्डा घाट पर स्थित है। चतुर्भुज धारी सुकोमल श्यामल शरीर वाले प्रभु, रुक्मिणी जी सहित दर्शन देते हैं। ग्वालियर के खजाञ्ची परमभक्त श्री गोकुल दास पारीख जी ने सं० १८७१ में इसका निर्माण कार्य कराकर कांकरौली के वल्लभ कुलीय गोस्वामी गणों को भेंट कर दिया।

आपका कृष्ण वर्णीय वपु, दीर्घ चार भुजायें, पदमदलायत लोचन, नित्य प्रफुल्ल मुखश्री, त्रिभुवन सुन्दर ये रूप निश्चित ही यहाँ के ही नागरिकों की बात नहीं, प्रत्युत कोई भी नेत्र देख ले तो पलकें गिराना ही भूल जातीं हैं, वस्तुतः नेत्रों का फल भी तो यही है जो गोपाङ्गनाओं ने कहा –

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामःसख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥

(भा.१०/२१/०७)

श्री यमुना जू

आपका रूप केवल तरल स्निग्ध जल ही नहीं है, द्वारिकेश की चतुर्थ पट्टरानी यमराज की भगिनी, ब्रज के अनेक क्षेत्रों को अपने मधुर जल से अभिषिञ्चित करने वाली सौभाग्यशालिनी देवी, श्रीमद् वल्लभ प्रभु ने यमुनाष्टक के द्वारा, गो.पाद श्री विट्ठलनाथ जी ने यमुना षट्पदी एवं नन्ददास जी आदि अनेकों महत्जनों ने अपने-अपने भावों द्वारा आपकी वन्दना की –

युवयोर्वक्त्रसंजाताः केलिश्रमकणा शुभाः ।
अतः संजायते नूनं तटिनी कापि चोत्तमा ॥
सर्वैः सखीगणैः पयं त्वं प्रसीद कुरुष्व च ।
इदमेव परं पुण्यं युवयोः केलिजं जलं ॥

(स.कु.सं)

राधा-माधव का स्वेद कण, श्रम बिंदु ही आपका वास्तविक स्वरुप है। राधा-माधव ही आपका उद्गम स्थान है। एक समय अकबर के पूछे जाने पर श्री जीव गोस्वामी जी महाराज ने आपको गंगा से भी उत्कृष्ट बताया। भारत की शोभा ब्रज से है। ब्रज की शोभा यमुना जी से है, यद्यपि आज यमुना जी की दर्दनाक स्थिति निश्चित ही यमुना प्रेमी व ब्रज प्रेमियों के लिये अपार वेदना प्रद है। किन्तु क्या करें, हम लोगों का प्रमाद ही यमुना जी को दीर्घ काल से अभी तक उसी दयनीय स्थिति में देखता आ रहा है। किन्तु इस बात का साक्षी तो हमारा इतिहास भी है कि ब्रज पर, भारत पर, सनातन धर्म पर जब-जब कोई संकट की घड़ी आयी तो समय-समय पर संत, महापुरुषों ने ही हमें सुरक्षित, सुसज्जित किया। उन्होंने इसे बचाया, सजाया, सँवारा सौन्दर्यीकरण आदि अनेकानेक क्रिया-कलापों द्वारा इसकी सेवा की।

उसी श्रंखला में ब्रज सेवा का एक प्रशंसनीय, प्रत्यक्ष, अपूर्व स्थान 'श्री मानमन्दिर सेवा संस्थान' – देखें एक नजर – पर्वत खनन पर पूर्ण विराम, गौ सेवा, गौ रक्षा का अथक प्रयास, सवा लाख वृक्षों के बाद सवा करोड़ वृक्षों का संकल्प, ब्रज के अनेक सरोवरों, कुण्डों, घाटों का निर्माण आदि अवर्णनीय प्रयासों के पश्चात् अब 'श्री मान मन्दिर', पूज्य श्री रमेश बाबा जी महाराज के निर्देशन में नवीन इतिहास लिखने जा रहा है, वो है श्री यमुना जी की सुरक्षा, हरियाणा क्षेत्र में कैद यमुना को मुक्ति दिलाने के लिये यह संस्था अपनी पूर्ण शक्ति से सतत् लगी हुई है, विश्वास है कि अतिशीघ्र यमुना जू कृपा करेंगी और वो दिन आपके-हमारे-सबके सामने शीघ्र उपस्थित होगा, जब यमुना का परम पवित्र जल अपने कल-कल मधुर स्वरों के साथ प्रवाहित होगा, बाहर से आये असंख्य यात्री इस मधुर जल से आचमन स्नान कर अपने को कृतार्थ समझेंगे। श्री यमुना जी कृपा करें।

त्रेता में श्री यमुनाजी, श्री सीता जी द्वारा सेवित पूजित हुईं –

कालिन्दीमध्यमायाता सीता त्वेनामवन्दत ।
स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेन्मे पतिर्व्रतम् ॥
यक्ष्ये त्वां गोसहस्रेण सुराघटशतेन च ।
स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥

(वा.रा.अयो.कां.५५/१९,२०)

द्वापर में स्वयं श्री कृष्ण ने अनेकों बार यमुना पूजन किया, यमुना जी के सौन्दर्य का वर्णन किया –

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥

(भा १०/१८/०६)

फिर कलियुग में ये स्थिति क्यों? तनिक इस बिन्दु को अविस्मृत करके, संगठित होकर कायिक, वाचिक, मानसिक यथा शक्ति अपना कर्तव्य कर्म समझकर पूर्ण करें। यह किसी एक व्यक्ति, एक सम्प्रदाय, एक आश्रम अथवा एक प्रान्त का कार्य नहीं है, प्रत्युत प्राणीमात्र का कर्तव्य है।

गताश्रम तीर्थ

कंस वध के पश्चात्, ऐसा जन कथन है कि प्रथम बार श्रम निवृत्ति के लिये श्रीकृष्ण कुछ क्षण यहाँ विराजे।

वरदोसि महारम्य नानाक्लेशनिवारक ॥
गतश्रम महास्थान नमस्ते नारदार्चित ॥

(वा.पु)

श्री नारद जी द्वारा अर्चित, अनेकों कष्टों को दूर करने वाले वरदायक गताश्रम महान स्थान को प्रणाम है।

अब सभी स्थानों को प्रणाम करते हुए हम लोग प्रभु की अन्य लीला भूमियों में भी प्रवेश करने के इच्छुक हैं।

मथुरा के टीले

पहले यहाँ के टीलों के बारे में जानें – ध्रुव टीला, ऋषि टीला, कलियुग टीला, बलि टीला, कंस टीला, रजक वध टीला, अम्बरीष टीला, हनुमान टीला, गताश्रम टीला, यहाँ के

महादेव – श्री भूतेश्वर, श्री गोकर्णेश्वर, श्री पिप्पलेश्वर, श्री रंगेश्वर, श्री गल्तेश्वर, श्रीकालिंदीश्वर, श्री सोमेश्वर, श्री रामेश्वर, श्री वीरभद्रेश्वर आदि।

यहाँ के उन्नत टीले – ध्रुव टीला, धनुष टीला, नाग टीला, गणेश टीला, नारद टीला, सप्त ऋषि टीला एवं कंस टीला।

मथुरा के कुंड

यहाँ के लीला सम्बन्धी कुण्ड – शिवताल कुण्ड, बलभद्र कुण्ड, पोतरा कुण्ड, महाविद्या कुण्ड, सरस्वती कुण्ड, आदि।

मथुरा के स्थल

यहाँ के स्थल – रजक वध स्थल, कुवलयापीड़ वध स्थल, रंगभूमि स्थल, कंस वध स्थल, कुब्जा कूप (यहाँ कुब्जा का घर था)।

मथुरा के घाट

यहाँ के घाट – वसुदेव घाट (इसी घाट से वसुदेव जी कृष्ण को लेकर गोकुल गये थे)।

असकुण्डा घाट, मणिकर्णिका घाट, कृष्ण गंगा घाट, गौ घाट, दशाश्वमेध घाट, शाम्ब घाट, तिन्दुक घाट (बंगाली घाट), नाग तीर्थ घाट, सोमतीर्थ घाट, अस्सी घाट, धारा पतन, घंटा भरण, बैकुण्ठ, प्रयाग, अतिसुक्त एवं कन्खल।

मथुरा के तीर्थ एवं मन्दिर

तीर्थ

गोकर्ण तीर्थ, तिन्दुक तीर्थ, यमुना तीर्थ, अविमुक्त तीर्थ, गुह्य तीर्थ, चक्र तीर्थ, मोक्ष तीर्थ, संयमन तीर्थ, वोधि तीर्थ, वसुमती तीर्थ, ऋषि तीर्थ, कोटि तीर्थ इन सब दिव्य लीला स्थलियों के प्रणाम मंत्र श्री नारायण भट्ट गोस्वामी जी द्वारा विरचित श्री ब्रज भक्ति विलास में दर्शनीय है।

मन्दिर

शत्रुघ्न मन्दिर – रामाज्ञा से ब्रज रक्षार्थ शत्रुघ्न जी का यहाँ आगमन हुआ। मथुरा में विराजमान शत्रुघ्न जी को हम प्रणाम करते हैं।

ततो मन्दिर श्री पद्मनाभ जी प्रार्थना मन्त्र :-

नमस्ते कमलाकान्त पद्मनाभ नमोस्तुते ।
माथुर मंडलम् रक्ष प्रदक्षिणा वरप्रद ॥

(विष्णु यामल)

हे लक्ष्मीकान्त पद्मनाभ प्रभो ! आप इस मथुरा मण्डल की रक्षा करें, आप प्रदक्षिणाकारियों के लिये विजय वरदान देने वाले हैं।

ततो मन्दिर श्री दीर्घ विष्णु जी प्रार्थना मन्त्र :-

अखण्ड ब्रजरक्षार्थे दीर्घमूर्ति धरो हरिः ।
सर्वदा वरदो नाथ नमस्ते दीर्घ विष्णवे ॥

अखण्ड रूप से ब्रज की रक्षा करने हेतु श्री हरि ने दीर्घ विग्रह धारण किया, दीर्घ विष्णु को प्रणाम है, आप घीया मण्डी में विराजमान हैं।

ततो मन्दिर श्री चर्चिका देवी जी प्रार्थना मन्त्र :-

त्वं वैष्णवी महादुर्गे मार्ग देहि वरप्रदे ।
बैकुण्ठगमनार्थाय दुर्गसेनि नमोस्तुते ॥

(ब्र.भ.वि)

हे देवी ! आप वैष्णवी हैं, वरदायिका हैं, बैकुण्ठ जाने के लिए हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।

श्री कुब्जा कृष्ण मन्दिर – यहाँ कुब्जा और श्री कृष्ण का रंगशाला गमन काल में मिलन हुआ था। यह बड़ा प्राचीन मन्दिर है, यहाँ कुब्जा, श्री कृष्ण के सुकोमल श्यामल श्री अंग पर मोहित हुई थी और तब दोनों भाईयों ने उस पर कृपा करते हुए, उसके नीले-पीले अंगराग को अपने गौर-कज्जल वर्ण पर लगाया।

रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ।
धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥

(भा.१०/४२/०४)

श्री कंस काली मन्दिर – ये श्री कृष्ण की भगिनी हैं, जो कंस के हाथ से उड़कर नभ में अष्ट भुजी देवी के रूप में प्रकट हुई थीं –

सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥

(भा० १०/ ४ /०९)

चामुण्डा देवी मन्दिर – श्री बलराम प्रभु को माता देवकी के गर्भ से निकालकर, रोहिणी जी को माँ बनने का सौभाग्य प्रदान करने वाली अद्भुत देवी हैं, इनके इस सत्कार्य से प्रसन्न हो, प्रभु ने इनको वर दिया कि आगे आपको लोग अनेकों नामों से जानेंगे, आरती पूजा करेंगे। (भा.१०/०२/१२)

श्री सरस्वती मन्दिर – विद्या देवी, वाक्देवी, यहाँ पर विराज रहीं हैं, पास ही आपका निर्मल जल से पूरित सुन्दर सर भी है।

श्री महाविद्या मन्दिर – (सिद्ध पीठ) यह ब्रज के ८ सिद्ध पीठों में से एक है, आप श्री कृष्ण एवं समस्त ब्रजवासियों से पूजित सेवित हैं। शिव रात्रि के पर्व पर अम्बिका वन में समस्त ब्रजवासियों सहित गोपाल जी ने आपकी पूजा की थी।

तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समवस्थितम् ।
दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥

(भा.१०/३४/१०)

श्री पशुपति नाथ महादेव मन्दिर – अम्बिका देवी के समीप ही आप विराज रहे हैं, यहाँ कृष्णकाल में सरस्वती नदी प्रवाहित होती थीं, जिसका उल्लेख भागवत में प्राप्त होता है, जिसमें समस्त ब्रजवासियों ने स्नान आदि करके भगवान् पशुपति नाथ और भगवती अम्बिका की पूजा की थी, आज तो वह नदी लुप्त होकर नाले के रूप में बदल गयी है, जिसे ब्रजवासी जन सरस्वती नाला कहते हैं।

श्री पञ्चमुखी महादेव मन्दिर – सुदामा माली के आप सेव्य हैं, आराध्य हैं –

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥

(भा.१०/४१/४३)

श्री गर्तेश्वर महादेव मन्दिर – गर्त से उद्भव होने के कारण आपका नाम ही गर्तेश्वर हो गया, व्याधि नाश के लिए आपका दर्शन प्रशस्त है।

ततो गर्तेश्वर महादेव प्रार्थना मन्त्र :-

गर्तेश्वर नमस्तुभ्यमतिदीर्घज्वरापह ।
हरये शम्भवे देव ! शरीरारोग्यमाचर ॥

(ब्र.भ.वि)

हे प्रभो ! आप हमारे देह को भी आरोग्य दें।

उपसंहार

व्यास सखी –

तीन लोक ते मथुरा न्यारी और न दूजी दीसिये।
केशवराय गोवर्द्धन गोकुल पल-पल मांहि परीसिये।
जमुनाजल विश्रांत मधुपुरी कोटि कर्म जहाँ नासिये।
नन्दकुमार सदावन विहरत कोटि रसायन रासिये।
'व्यासदास' प्रभु युगल किशोरी कोटि कसौटी कासिये।

धनि-धनि मथुरा धनि-धनि मथुरा धनि मथुरा के वासी हो।
जीवनमुक्त सबै विहरत हैं केशवराय उपासी हो।
माला तिलक हृदय अति राजत मुनिजन ज्ञान प्रकासी हो।
स्थावर जंगम सबै चतुर्भुज काम क्रोध कुल नासी हो।
सुगम नदी विश्रांत जमुनजल मज्जन काल विनाशी हो।
'व्यासदास' षट पुरी दुरी सब हरिपुर भयो उदासी हो।

धाम में आज भी इसी भाव से प्रवेश करें कि यहाँ श्री हरि विराजमान हैं। जो केवल दिव्य चक्षुओं से ही दृष्टिगोचर हो सकते हैं।

मथुरा– श्री कृष्ण जन्मभूमि मंदिर

मथुरा – श्री द्वारिकाधीश मंदिर एवं विश्राम घाट

मथुरा– श्री भूतेश्वर महादेव, कंकाली देवी (योगमाया) मंदिर

अध्याय – ५१

सतोहा

यह शान्तनु जी की तपस्थली है, यहाँ के तप प्रभाव से ही इनको भीष्म जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई। यहीं शान्तनु सरोवर है।

देखोह 'सातोञा' ग्राम-कुण्ड सुनिर्मल ।
शन्तनु मुनिर एइ तपस्यास्थल ।

(भ.र)

मधुवन

यह वही प्रदेश है जहाँ नारद जी ने ध्रुव को भेजा। यहाँ पर ध्रुव टीला है। इस टीले के चारों ओर सुन्दर सघन वन व बड़ी सुन्दर झाड़ियाँ हैं। यहाँ जो ऊँचा सा टीला है, उसी पर ध्रुव जी ने तप किया था। इसी तपप्रभाव से ध्रुव जी ने काल को जीत लिया –

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ॥

(भा.४/८/४२)

ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयार्भकः ।
मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥

(भा.३/१४/५)

तदोत्तानपदःपुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ।
मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥

(भा.४/१२/३०)

यहाँ नित्य श्रीकृष्ण रहते हैं। यहाँ ध्रुव जी आये और उन्होंने कृष्ण लीलाओं का ध्यान किया, वो लीलाएँ जो श्रीकृष्ण भविष्य में करेंगे। नारद जी ने उन्हें कृष्ण लीला का उपदेश देकर कृष्ण मन्त्र दिया और उन्होंने इसी टीले पर बैठ कर भजन किया। कृष्ण स्मरण करते हुए १ मास तक उन्होंने तीन-तीन रात्रि के अंतराल से कैथ और बेर के फल खाकर शरीर का पोषण किया, २ मास में छः-छः दिन बाद सूखी घास एवं पत्ते खाकर कृष्णाराधन किया,

फिर तप बढ़ा दिया, ३ महीने में नौवें-नौवें दिन केवल जल पर ही रह गए। ४ महीने में १२-१२ दिन के अन्तराल में श्वास खींचने लगे। ५ महीने में तो उन्होंने श्वास लेना भी बंद कर दिया। सारा संसार काँप गया। ऐसी उग्र तपस्या को देखकर भगवान् स्वयं यहाँ आये। अभी तक तो भक्त लोग भगवान् के दर्शन की इच्छा करते हैं, लेकिन शुकदेव जी कहते हैं कि सामने से उस बालक को देखने के लिए स्वयं भगवान् आये कि कैसा अद्भुत बालक है! चलो देखें। भगवान् को भक्त के दर्शन की इच्छा हुई। मधुवन के शेष भाग में जो कुण्ड है, वह यहाँ का प्रसिद्ध कुण्ड है, इसे मधुसूदन कुण्ड भी कहते हैं और यह लवणासुर वधस्थल है। मधुवन सख्य लीला तथा श्रृंगार लीला का प्रसिद्ध स्थल है। सख्य लीला की बात यह है कि जब यहाँ मधुवन में श्रीकृष्ण आ जाते थे तो नंदरानी बहुत ज्यादा छाक भेजती थी। यहाँ छाक लीला होने से सख्य लीला सम्पन्न हुई। श्रृंगार रस की लीला में भी श्रीकृष्ण महारास में घूमते-घूमते यहाँ आते हैं। 'गर्ग संहिता' में वृन्दावन खण्ड में इसका वर्णन मिलता है कि यहाँ पर बड़ी सुन्दर संगीत सभा हुई। मधुवन में श्रीकृष्ण ने वंशी बजाई है क्योंकि यह बड़ा मीठा वन है।

बंसी बाज रही मधुवन में कैसे जाऊं मेरी बीर।
औचक सुनी मुरलिया बाजी मेरो मनुआ है गयो राजी।
सुध बुध मेरी उतही भाजी।
लोक लाज की कौन सुने मेरो जियरा धरे न धीर।

यह वही मधुवन है। आज भी यहाँ जो लताएँ दिखाई पड़ रही हैं, इन्हीं के नीचे ये लीलाएँ हुई हैं। मधुवन में श्रीकृष्ण ने रास किया था। वहाँ उन्होंने इन रागों का गान किया – भैरव, मेघ मल्हार, दीपक, मालकौंस, श्री और हिंडोल। ये राग मधुवन में राधा-कृष्ण ने गाये। इन रागों का अलग-अलग प्रभाव है। भैरव से चेतना आती है, मेघ मल्हार से वर्षा होती है, दीपक से ज्योति जलती है, मालकौंस से भक्ति आती है, श्री से कल्याण होता है तथा हिंडोल से आनन्द होता है। इसीलिए ये राग भगवान् ने मधुवन में गाये और उसके बाद नृत्य किया। यहाँ ८ ताल, ३ ग्राम और ७ स्वरों से रास हुआ। श्रीकृष्ण यहाँ रासेश्वरी राधा रानी के साथ नाचे हैं। यह ग्रंथो में लिखा है। रासेश्वरी राधा रानी ने यहाँ रासेश्वर को उंगली पकड़ कर नचाया है –

नाचे नाचे रे कन्हैया राधा रानी रही नचाय।
हाथन ते हाथन कूं पकरें कबहूँ गलबैयाँ में जकरे।
पीताम्बर और फरिया फहरे।
उड़ उड़ जावै पीरो पटुका सारी ते लिपटाय।

ततो मधुवन प्रार्थना मन्त्र :-

मधुदानसमुद्भूत सहस्त्रगुणितार्थदः ।
माघवेशाय रम्याय नमो मधुबनाय च ॥

मधु दान से उत्पन्न, हजारों गुना अर्थ देने वाले, हे माधव ईश आप रमणीक हैं, ऐसे मधुवन को नमस्कार है।

ततो मधुसूदन कुण्ड प्रार्थना मन्त्र :-

मधुसूदनकुण्डाय तीर्थराज नमोऽस्तु ते।
पीतरक्तसितस्यामनिर्म्मलक्षीरपूरितः ॥

हे मधुसूदन कुण्ड तीर्थराज ! आपको नमस्कार है। पीले, लाल, श्वेत और नील निर्मल जल से भरे हुए तीर्थराज आपको नमस्कार है।

अहे श्रीनिवास एहि देखो मधुवन ।
सर्व काम पूर्ण होय कोरिले दर्शन ॥

(भ.र)

सतोहा - श्री शान्तनु कुण्ड एवं कृष्ण कुण्ड, मधुवन

अध्याय – ५२

तालवन

तालवन में धेनुकासुर नामक नरभक्षी गधा रहता था। इस स्थान की कथा "गर्ग संहिता" में भी है एवं "ब्रह्मवैवर्तपुराण" में भी किन्तु दोनों जगह भिन्न-भिन्न है। भागवत जी व गर्गसंहितानुसार तो धेनुक का वध दाऊ दादा ने किया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण अनुसार धेनुक के वधकर्ता श्रीकृष्ण हैं।

गर्ग संहितानुसार

देवर्षि नारद जी, राजा बहुलाश्व को यह कथा सुना रहे हैं –

तालवन में ताड़ के सुन्दर-सुन्दर परिपक्व फल लगे हुए थे। जिसकी सुगन्ध चारों ओर फैल गयी किन्तु धेनुकासुर के भयवश उस वनस्थल में कोई भी आता-जाता नहीं था। धेनुक कंस का सखा था, इसमें करोड़ों सिंहों की शक्ति थी।

एक बार ग्वाल बालों ने भूख लगने पर ताड़ के पके हुए फलों की सुगन्ध लेते हुए राम-श्याम से कहा – "भैया ! आज तो ताड़फल खाने की इच्छा हो रही है।" दाऊजी निर्भय होकर ग्वाल-बालों को लेकर गए तालवन में। ग्वाल-बाल पके-पके फल नीचे गिराने के लिए वृक्षों को हिलाने लगे। टपटप पके फल नीचे गिरने लगे। फलों के नीचे गिरने की ध्वनि से धेनुक जाग गया। क्रोध में रेंकता हुआ आया और उसने आते ही दाऊ जी के वक्ष पर दुलत्ती मारी। दाऊ जी ने उसके पिछले दोनों पैर पकड़ लिये और आकाश में घुमाते हुए विशाल ताड़ तरु पर दे मारा। वह वृक्ष ही गिर पड़ा फिर धेनुक ने दाऊ जी को १ योजन दूर धक्का मार दिया, तब दाऊ जी ने उसे पकड़कर ऐसा घुमाया कि उसका मस्तक फट गया और अचेत होकर गिर पड़ा। यद्यपि गधे के सींग नहीं होते हैं किन्तु उसने दानवी माया से ४ सींग प्रकट किये एवं ग्वाल-बालों पर झपटा, ग्वाल-बालों ने सोचा ऐसे समय कृष्ण-बलराम को अकेला नहीं छोड़ना चाहिए। ये ग्वाल-बाल भी केवल दूध-दही चुराना ही नहीं जानते हैं, बड़े बलवान हैं। श्रीदामा ने धेनुक को डण्डे से मारा। सुबल ने मुष्टि प्रहार किया। स्तोक कृष्ण ने पाश द्वारा, अर्जुन ने लात द्वारा, तेजस्वी ने तो उसकी गर्दन ही पकड़ ली। वरुथप को कुछ न मिला तो गेंद से ही मारने लगा तब तक श्रीकृष्ण ने उसे उठाकर घुमाते हुए गोवर्धन पर्वत पर पटक दिया। इससे २ घड़ी तक तो मूर्छित रहा फिर क्रोध में उठा एवं

कृष्ण को १ लाख योजन ऊपर उड़ा ले गया, वहाँ युद्ध करने लगा। प्रभु ने उसे वहाँ से नीचे पटक दिया, मूर्छित हो गया। होश आने पर उसने गिरिराज पर्वत को उखाड़कर गेंद की तरह प्रभु के ऊपर मारा, तब खल-दल संहारी कृष्ण ने गिरिराज पर्वत को उसके मस्तक पर दे मारा, उसने पुनः फेंका। गेंद का सा खेल होने लगा। अन्त में श्रीकृष्ण ने उस पर्वत को अपने पास रख लिया तब उसने पुनः धरा को विदीर्ण करते हुए दाऊ जी के वक्ष पर दुलत्ती मारी एवं गर्जना करने लगा। इस बार दाऊ जी ने धरा पर पटक कर उसको ऐसा मुष्टि प्रहार दिया कि काम समाप्त ही कर दिया। मृत्योपरान्त दिव्य देह धारण करके भगवद् धाम को चला गया।

राजा बहुलाश्व ने प्रश्न किया – "नारद जी ! यह धेनुकासुर पूर्वजन्म में कौन था? यह प्रभु से वैर करने पर भी दिव्य देह से भगवद् धाम को प्राप्त कर गया।" तब नारद जी ने कहा – "राजन् ! प्रह्लाद पुत्र विरोचन से बलि एवं बलि के ज्येष्ठ पुत्र का नाम था – साहसिक।

एक बार १० हजार स्त्रियों के साथ गन्धमादन पर्वत पर विहार कर रहा था। निकट ही एक कन्दरा में दुर्वासा जी तप कर रहे थे। भोग में मनुष्य यह भूल जाता है कि कहाँ क्या करना चाहिए। दुर्वासा जी के तप में व्यवधान हुआ। कन्दरा से बाहर भोगरत साहसिक को देखकर उन्होंने क्रोधित हो शाप दे दिया।

"मूर्ख ! गधे की तरह भोग में लगा हुआ है। पशुओं में भी गधा सबसे ज्यादा भोगी होता है। जा तू गधा ही बन जा।" क्षमायाचना की तो दुर्वासा ऋषि बोले – "४ लाख वर्ष तक गधा बन, उसके बाद तालवन में दाऊ जी के हाथों तेरा उद्धार होगा।"

ब्रह्मवैवर्तपुराणानुसार

स्वयं नारायण भगवान् नारद जी को यह कथा सुना रहे हैं – ताड़ के पके-पके फल गिरने के लिए जब ग्वाल-बालों ने वृक्षों को हिलाया। फल गिरे ग्वाल-बालों ने भरपेट खाए, तब तक वहीं धेनुक पहुँच गया। ग्वाल बाल उस भयानक विशालकाय गधे को देखकर डर गये, रोने लगे एवं कृष्ण-बलराम को रक्षा के लिए पुकारने लगे तब श्रीकृष्ण ने दाऊ जी को कहा – "भैया ! आप इन बालकों को दूर ले जाओ और इस दुष्ट दैत्य को तो मैं ही अकेले देख लूँगा। यह बलि का पुत्र साहसिक है। समस्त देवगण मिलकर भी इसे परास्त नहीं कर सकते हैं।" धेनुक मुँह फाड़कर आया। श्रीकृष्ण को निगल गया, प्रभु ने उसके उदर में अग्नि रूप धारण कर लिया तब उसने पुनः प्रभु को मुख से बाहर कर दिया एवं प्रभु की मधुर मुस्कान युक्त मुख को देखकर उसकी दानवी बुद्धि जाती रही। वह पहिचान गया कि ये तो भगवान् हैं, सर्वेश्वर हैं फिर तो युद्ध के स्थान पर वह प्रभु की स्तुति करने लगा – "हे भगवन् ! आपने ही वामन बनकर मेरे पिता से भिक्षा माँगी थी। आप भक्तवत्सल हैं। आपने ही मेरे पिता को सुतल लोक का राज दिया। भोग के कारण मुझे गधा बनना पड़ा। अब आप शीघ्र

सुदर्शन चक्र से मेरा वध करके मुझे इस अनार्य योनि से मुक्त करें और ऐसी कृपा करें कि पुनः जन्म ही न हो।" धेनुक ने जो स्तुति की है, इसका नित्य पाठ करने से यहाँ तक लिखा है कि भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। उसकी स्तुति सुनकर प्रभु ने विचार किया ऐसे भक्त का मैं कैसे वध करूँ? तब प्रभु ने उसकी स्मृति का हरण कर लिया। अब वह पुनः अपने उसी आसुरी भाव में आकर बोला – "ए मनुष्य के बच्चे ! अभी मैं तुझे यमलोक भेजता हूँ ! " कहकर टूट पड़ा प्रभु पर, भीषण संग्राम हुआ। चक्र से उसका शिरश्छेदन कर दिया। उसके देह से एक तेजपुंज प्रकट हुआ एवं प्रभु के चरण कमलों में विलीन हो गया। उसकी मृत्यु पर देवों ने पुष्पवृष्टि की। ग्वाल-बाल भी खुशी से नाचने लगे। नारद जी ने पूछा – "प्रभो ! धेनुक पूर्वजन्म में कौन था? इसे गधा योनि की प्राप्ति कैसे हुई? " नारायण भगवान् ने बताया – "देवर्षे ! एक बार ब्रह्मा जी ने सब जगह से तिल-तिल सौन्दर्य लेकर तिलोत्तमा नामक सर्वांग सुन्दरी अप्सरा को बनाया। वह चंद्रमा से मिलने जा रही थी, मार्ग में बलि पुत्र साहसिक पर मोहित हो गई। कुलटायें एक पुरुष से रति नहीं करती हैं। वे तो जो मिल जाए उसी से रमण करने लगती हैं। तिलोत्तमा साहसिक के साथ विहार करने लगी। दोनों ऐसे भोगान्ध हो गये, यह भी नहीं देखा कि समीप में दुर्वासा जी ध्यानस्थ हैं। दुर्वासा जी ने जब नेत्र खोले तो गधे की भाँति निर्लज्ज भोग देखकर तुरन्त शाप दे दिया – "निर्लज्ज ! तू भक्त शिरोमणि बलि का पुत्र होकर पशुवत् नग्न भोगाचरण कर रहा है। जा गधा बन जा।"

तिलोत्तमा की ओर देखते हुए बोले – "कुलटा ! जा तू दानवी बन जा।" दोनों को भोग का आवेश थोड़ा ठण्डा होने पर होश आया। क्षमा याचना करने लगे, ऋषि को दया आ गई। दयावश बोले – "साहसिक ! जा ब्रज में चला जा, वृन्दावन के समीप तालवन है, वहाँ रह, धामवास से तेरे पाप नष्ट होंगे फिर श्रीकृष्ण द्वारा कल्याण होगा।" महात्माओं का दण्ड, शाप, क्रोध भी भगवान् से मिला देता है। फिर तिलोत्तमा से बोले – "जा ! तेरा भी कल्याण होगा, तू बाणासुर की पुत्री ऊषा बनेगी एवं श्रीकृष्ण पौत्र अनिरुद्ध तेरा वरण करेंगे।"

ताल वन – वेत्र गंगा एवं दाऊ जी मंदिर

अध्याय – ५३

कुमुद वन

चिन्मयी प्रकृति के चिन्मय सौन्दर्य से युक्त कुमुदवन में जब श्रीकृष्ण व उनके सखा पहुँचे तो वहाँ कुमुद पुष्पों को देखकर उन्हें भोजन की इच्छा हुई। सुन्दर दृश्य में सुन्दर आहार सौरस्य देता है। उसी समय सौन्दर्य और लावण्य की देवी श्रीराधा पधारीं, उनके कर कमलों में प्रेम पूरित दधि की मथनियाँ थी। उन्होंने आकर एकान्त में उसे गोविन्द को अर्पित किया किन्तु वे बिना श्रीजी के अकेले कैसे आस्वाद ले सकते थे। उन्होंने अपने कर-कमल से वृषभानु नंदिनी के अरुण अधरों में साग्रह दधि का कौर दिया, जिसे वे मना ही नहीं कर सकती थीं क्योंकि मधुराधिपति श्रीकृष्ण के प्रेम का माधुर्य जिससे वह कौर सना हुआ था। रसिक श्रीकृष्ण ने भी माधुर्य रूपा श्री राधिका के अधरामृत से युक्त उस दधि को जब चाखा तो उससे उन्हें अद्भुत आनन्द की प्राप्ति हुई और उस दधि पात्र को लेकर अपने सखाओं की ओर दौड़े और जाकर उन्होंने सखाओं में वितरण किया। युगल स्वरूप की माधुरी से युक्त वह दधि अनास्वादित था, उस स्वाद को पाकर सखा लोग बोले –

आज दधि मीठो मदन गोपाल।
भावत मोहि तिहारो जूठो चंचल नयन विशाल।
आने पात बनाये दोना दिये सबन को बाँट।
जिन नहिं पायो सुनो रे मेरे भैया मेरी हथेरी चाट।
बहुत दिना हम बसे कुमुदवन कृष्ण तिहारे साथ।
ऐसो स्वाद हम कबहुं न चाख्यो सुन गोकुल के नाथ।
आपन हंसत हंसावत ग्वालन मानस लीला रूप।
'परमानन्द' प्रभु हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूप।

सभी तीर्थों को भगवान् ने ब्रज में निवास दिया क्योंकि वे ब्रज में रहना चाहते थे। कुमुदवन में भगवान् ने गंगासागर को निवास दिया। कृष्ण लीला काल में यहाँ कुमुद (रात्रिकालीन कमल) का बाहुल्य था। यहाँ कपिल जी की मूर्ति एवं श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक भी है।

गर्गसंहितानुसार

'गर्गसंहिता' के अनुसार इस कुण्ड को पद्म कुण्ड कहते हैं। श्रीजी ने यहाँ श्याम सुन्दर का श्रृंगार किया।

श्यामा-श्याम की छवि साध।
मुकुट मण्डल पीत पट छवि देखि रूप अगाध।
प्रिया हा हा करति पुनि-पुनि देहु प्रीतम मोहि।
अंग-अंग संवारति भूषण रहति वह छवि जोहि।
काछि कछनी पीत पट कटि किंकिणी अति शोभ।
हृदय वनमाला बनावत देखि छवि मन लोभ।
कहाँ लगि गान करूँ मैं मोहन, कालिंदी थिर नीर बहाऊं।
बेनी शीश फूल पहनो हरि तुम वृषभानु सुता बन बैठो।
तिहारो आभूषण मैं पहनूँ अपनो तुमहि पहनाऊं।
तुम मानिनी मान कर बैठो मैं गहि चरण मनाऊं।

इस तरह यहाँ परस्पर श्रृंगार की भी लीलाएँ हुई हैं।

ततो कुमुदवन प्रार्थना मन्त्र (पाद्मे) :-

कुमुदाख्याय रम्याय नानाल्हादविधायिने।
नानाकुमुदकल्हाररुपिणे ते नमो नमः॥

अर्थात् – अनेक भाँति के आह्लाद को प्रदान करने वाले, आप नाना भाँति के कुमुद एवं कल्हार रूप में सुशोभित हैं। हे सुन्दर कुमुद वन ! आपको नमस्कार है।

ततो पद्मकुण्डस्नानाचमनप्रार्थना मन्त्र :-

इन्द्रादिदेवगन्धर्व्वैराकीर्ण विमलार्थिने।
पद्मकुंडाय ते तुभ्यं नानासौख्य प्रदायिने॥

अर्थात् – इन्द्रादि देवों एवं गन्धर्वों से व्याप्त निर्मल अर्थ स्वरूप पद्म कुण्ड ! नाना भाँति के सुख प्रदान करने वाले आपको नमस्कार है।

प्राचीन मान्यतानुसार ब्रजवासी कुमुद वन में कपिल भगवान् का निवास भी मानते हैं। यहाँ आज भी कुण्ड के तट पर मन्दिर में कपिल भगवान् का श्री विग्रह स्थापित है।

कपिल ऋषि

ततो कपिलतीर्थ प्रार्थना मन्त्र (भविष्य पुराण):-

गुप्तयोगसमायुक्त कपिलाधिष्ठितस्थले ।
नमो ब्रह्मण्यरूपाय देवहूतीसुताय ते ॥

जैसे गंगा सागर में कपिल जी का एक ही दिन दर्शन होता है वैसे ही यहाँ भी गुप्त योग से युक्त महर्षि कपिल से अधिष्ठित, गुप्त स्थलरूप आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मण्य देव हैं, हे देवहूति पुत्र ! आपको नमस्कार है।

कुमुद वन – श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक, श्री कपिल भगवान् मंदिर एवं गंगा सागर (पद्म) कुण्ड

अध्याय – ५४

श्री यमुनावतो

चन्द्र सरोवर परासौली के निकटस्थ है – 'यमुनावतो ग्राम'। सारस्वत कल्प में ब्रज में यमुना जी तीन धाराओं में प्रवाहित थी। गिरिराज जी की पूर्व दिशा में बहने वाली धारा का नाम यमुना, मथुरा में बहने वाली धारा का नाम कालिन्दी और कामवन से गोवर्धन की ओर आने वाली धारा का नाम स्वर्णरेखा था। यमुना जी के यहाँ प्रवाहित होने से इस ग्राम का नाम यमुनावतो हुआ। आज भी खनन करने पर यमुना रेणुका यहाँ से निकलती है, जो किसी समय में यमुना के यहाँ प्रवाहमान होने की पुष्टि करती है।

एक मत यह भी है कि यहाँ श्री यमुना जी ने गोपी वेष धारण करके महारास में प्रवेश किया था। उस समय इस गोपी विशेष को श्रीजी ने 'यमुनावती' नाम से सम्बोधित किया, इस आधार पर भी गाँव का नाम यमुनावतो कहा जाता है।

यह ग्राम दो-दो महापुरुषों की जन्मभूमि होने के कारण महामहिमामय है। एक तो श्री कुम्भनदास जी और दूसरे इनके ही सुपुत्र श्री चतुर्भुजदास जी।

श्री कुम्भनदास जी

सदा श्रीनाथ जी की अपरोक्षानुभूति होती थी दोनों महापुरुषों को। संवत् १५२५ वि. में कार्तिक, कृष्णपक्ष एकादशी के दिन गौरवा क्षत्रिय परिवार में परम भागवत श्री कुम्भनदास जी महाराज का जन्म हुआ। कृषि आपकी पैतृक वृत्ति एवं भगवद्भक्ति अक्षुण्ण संपत्ति थी।

वि.सं. १५५० के लगभग महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का ब्रजयात्रा करते हुए जब श्री गिरिराज जी में आगमन हुआ तब आचार्य पाद के द्वारा श्री गोवर्धन नाथ की प्रतिष्ठा हुई और उसी समय कुम्भनदास जी ने उनसे शिष्यत्व स्वीकार किया। कुम्भनदास जी को संगीत-विषारद देखकर आचार्य पाद ने इन्हें श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा सौंप दी। इस तरह से सूरदास जी के भी पूर्व आप यह सेवा बड़ी निष्ठा से करने लगे। बाद में श्री विट्ठलेश जी द्वारा अष्टछाप की स्थापना पर वि.स.१६०२ में आपकी गणना अष्टछाप में हो गई।

नित्य, नवीन पद रचना करके श्रीनाथ जी को सुनाते थे। बहुत जल्दी सर्वत्र आपके गान की प्रसिद्धि हो गई। एक बार अकबर बादशाह ने कुम्भनदास जी का गान सुनने के लिए

उन्हें अपने दरबार में बुलाया। विशेष आग्रह पर अपने सहज श्रृंगार में चल दिये कुम्भनदास जी, सिर पर कई टूक की टेढ़ी पाग, बरसों पुराना अंगरखा, जीर्णशीर्ण धोती, हाथ में टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी, पाँव में घिसी हुई पन्हैया।

बादशाह ने बड़ी आवभगत की कुम्भनदास जी की किन्तु यह राजशाही ठाट, नरकतुल्य लग रहा था उन्हें। बादशाह ने पद गायन के लिए प्रार्थना की। कुम्भनदास जी ने देखा, अरे ! इस समय तो मैं गोवर्धन नाथ को पद सुनाता, सारी भड़ास कुम्भनदास जी की पद के द्वारा मुख से विगलित हो गई।

भगत को कहा सीकरी काम ।
आवत जात पन्हैया टूटी बिसर गयो हरि नाम ॥
जाको मुख देखत दुःख उपजत ताको करन परी परनाम ।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर बिनु सब झूठौ धनधाम ॥

स्पष्टवादी कुम्भनदास जी को मान-सम्मान, धन-धान का तो कोई प्रलोभन था नहीं और ना हीं मृत्यु का कोई भय था, अतः मन में जो आया निर्भीक होकर गा दिया। अनन्तर बादशाह ने शीघ्र ही ससम्मान कुम्भनदास जी को ब्रज भेज दिया क्योंकि वह उनकी मनःस्थिति को समझ गया था।

संवत् १६२० वि. में महाराज मानसिंह ग्राम यमुनावतो में कुम्भनदास जी का दर्शन करने आये, उस समय बालकृष्ण लाल कुम्भनदास जी गोद में विराजे हुए थे। सख्य में पगे दोनों (भगवन+भागवत) वार्तालाप कर रहे थे।

बालकृष्ण – 'कुम्भनदास जी ! आपसे एक बात कहूँ? "

कुम्भन – "कहो भगवन् ! "

(तभी राजा मानसिंह का कुम्भन दास जी की पर्णकुटी में प्रवेश और बालकृष्ण का अन्तर्हित होना।)

विरह वेदना के थपेड़ों से कुम्भनदास के प्राण रुदन करने लगे। मुख पर औदास्य छा गया। प्रसन्नता तो सुदूर खड़ी हो गई; राजा को देखकर मन दुर्भाग्य को गाने लगा –

"कहाँ से आ गया नरेश?

वार्ता पूरी भी न हुई, न जाने क्या कहता सर्वेश .... ! "

नरेश सविनय प्रणाम करके एक ओर आसीन हो गया।

तिलक स्वरूप करने के लिए कुम्भनदास जी ने अपनी भतीजी से आसन और दर्पण माँगा।

भतीजी ने कहा – "पिताजी ! न आसन है, न दर्पण। पड़िया आसन को खा गई, दर्पण को पी गई। अभी दूसरा लाती हूँ।"

नरेश के कुछ समझ में नहीं आया।

आसन कोई भक्ष्य पदार्थ नहीं है और दर्पण कोई पेय पदार्थ नहीं है।

तब तक वह बालिका तृणासन और मृत्तिक निर्मित एक पात्र में पानी भर कर ले आई, तृणासन पर आसीन हो, जल में मुख देखकर श्री कुम्भनदास जी महाराज ने तिलक किया, तब राजा मान सिंह पड़िया के आसन खाने और आरसी पीने का अभिप्राय समझे। श्री कुम्भनदास जी की निर्धनता देखकर राजा ने मणिमण्डित स्वर्णिम दर्पण देने का साहस किया, कुम्भनदास जी ने उसे अस्वीकार कर दिया।

१,००० स्वर्ण मोहर देनी चाही तो उसकी भी उपेक्षा कर दी। चलते-चलते मानसिंह ने यमुनावतो गाँव कुम्भनदास जी के नाम करना चाहा तो कुम्भनदासजी बोले – "ग्रीष्म में टेटी, शीत में झरबेरिया, ये दोनों हमारे सेठ हैं, इनके सहारे सुखपूर्वक जीवन यापन हो जाता है। कुम्भनदास जी की इस निष्किंचन अपरिग्रह वृत्ति को देखकर राजा मानसिंह विस्मयान्वित हो गये।

महाराज – "मेरे योग्य कोई तो सेवा बता दीजिए", राजा ने एक बार पुनः अनुरोध किया। इस पर कुम्भनदासजी बोले – "कभी मत आना।"

भतीजी बोली – "घर में कुछ नहीं है, राजा की भेंट ले लेना था।"

कुम्भनदास जी बोले – "राँड़, नाथ जी कहा कहेंगे; लेने की बात हाँसी में भी नहीं कहनी चाहिए।"

निःस्पृहता, अपरिग्रह और उत्कट त्याग की पराकाष्ठा पर स्थित कुम्भनदास जी को प्रणाम करके राजा लौट गया।

राजा के जाते ही कुम्भनदास जी पुनः बोले – "नरेश के आने से बाल-कृष्ण अपनी बात भी पूरी नहीं कर पाये। न जाने क्या कहते? "

तब तक बालकृष्ण आकर कुम्भनदास जी के अंक-पर्यंक में बैठ गये।

कुम्भनदास – "जै, जै ! आप उस समय क्या कहना चाह रहे थे? "

कृष्ण – "कहना क्या चाह रहा था, यही कि राजा जो कुछ दे उसे ले लेना, मना मत करना और आपने तो देने की अभिलाषा से यहाँ आने को ही मना कर दिया उसे।"

कुम्भनदास – "जै, जै आप ही बताइये 'विश्वेश का सेवक होकर, नरेश से कुछ लूँ? आप त्रैलोक्याधिपति हैं और वो बराक महीपति .... ।"

श्री कुम्भनदास जी का जीवन-चरित्र अवर्णनीय निरपेक्षता से परिपूरित है, जिससे स्वयं भगवान् भी बार-बार पराभूत हो गये।

यह निरपेक्षता ही थी, जिससे नाथ सदा साथ रहने लगे कुम्भनदास जी के।

नाथ जी – कुम्भनदास दास जी ! चलो आज हमारे साथ पेट पूजा करो।

कुम्भनदास जी – जैसी आज्ञा नाथ।

(दोनों साथ चल दिये)

नाथ जी तो एक सूने सदन में ऐसे प्रवेश कर गये जैसे ग्रह मालिक स्वयं ही हों, कुम्भन जी को भी अनुगमन करना पड़ा।

नाथ जी – "कुम्भनदास जी ! अपनी पीठ पर चढ़ाओ मोकूं।"

कुम्भनदास जी की पीठ पर चढ़कर ऊपर लटका मटका उतारना सहज हो गया।

नाथ जी – "अब विलम्ब न करो जो भाये सो खाओ दूध-दही, माखन-मिश्री।"

शीघ्रता में दोनों कर से उदर भरने का प्रयास था, तब तक पिंगल दुकूल खुल गया, खाने में व्यवधान न हो अतः दो भुजा और प्रकट करना ही ठीक लगा नाथ को। दो भुजाओं से नीचे लटका दुकूल सम्भाला। यह ठीक रहा, न भोजन रुका, न लज्जा गई।

श्री कुम्भनदास जी के भाग्य का कुम्भ भर गया, द्विभुज के चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन हुआ। तब तक ब्रज सुंदरियों ने द्वार पर घेर लिया चोरों को।

कुम्भन जी की आर्त दृष्टि नाथ के मुखमण्डल पर रुक गई, यह कहने को कि करो आप मरैं हम।

नाथ जी – "न - न मरवे को कहा काम? शस्त्र छोड़ो।"

कुम्भन जी – "वह कैसे? "

नाथ जी – "अभी बताऊँ।"

युगल कपोल दूध से गोल किये और द्वार पर खड़ी ब्रज सुन्दरियों के नेत्रों में फूँ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ करके दूध की पिचकारी छोड़ दी।

वे आँचल लेकर नेत्र पोंछे इतना समय पर्याप्त था दोनों को भागने के लिए, पर आज का यह घटित दृश्य कुम्भनदास जी के नेत्रों के आगे स्थिर ही रहा। चतुर्भुज रूप का चिन्तन करते हुए गाया –

आनि हरि पाये हो नीके।
चोरि चोरि दधि माखन खायौ गिरिधर दिन प्रति हीके।
रोक्यो भवन द्वारि ब्रज सुंदरि ये ठाढ़े पय पीके।
अब कैसे जैयत अपने घर भाजन फोरि दूध दधि घी के।
'कुम्भनदास' प्रभु भले परे फंद जान न दैहौं भांवते जीके।
भरि गंडूष छींट दै नैंननि गिरिधर धाय चले दै कीके।

सर्वेश के सर्वान्तरतम-सरस-सख्य के सौख्य में ही सदा सुख मिलता रहा कुम्भनदासजी को।

७ पुत्र, ७ पुत्रवधू, १ भतीजी, दम्पत्ति –१७ प्राणी थे घर में। निर्धनता दूर करने की दृष्टि से दयालु श्री गुसाँई जी ने विचार किया, जब ये भगवान् से कुछ नहीं लेते तो फिर गुरु प्रदत्त द्रव्य क्या स्वीकार करेंगे? अतः वि.सं.१६३१ में गुसाँई जी ने कुम्भनदास जी को द्वारिका-यात्रा में चलने को कहा कि वैष्णवों की भेंट से कुछ आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी। कुम्भनदास जी गिरिराज गोवर्धन से आजीवन बाहर नहीं जाना चाहते थे। गुरु अवज्ञा का भय भी था। अतः चल तो दिये किन्तु अप्सरा कुण्ड तक आते-आते श्रीनाथ जी से वियुक्त होने का ऐसा विरह-ज्वर चढ़ा, हृतल एकदम से कम्पित हो उठा। दर्शनेन्द्रिय उस मृदुल-नील-कलेवर के दर्शन की प्यास से व्यग्र हो उठी।

सावन-भादों की धारा की भाँति नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। पर,

कौन जाने यह अन्तर्व्यथा?

कौन जाने इस प्रेम की गहराई .....?

अभी एक प्रहर ही व्यतीत हुआ था और आपके विरह-व्यथित चित्त ने गाया –

कितेक दिन है जु गये बिनु देखे।
तरुण किशोर रसिक नन्दनन्दन कछुक उठति मुख रेखें।
वह चितवनि वह हास मनोहर वह नटवर वपु भेखें।
वह शोभा वह कान्ति वदन की कोटिक चंद विशेषें।
श्यामसुन्दर संग मिलि खेलन की आवति जियरा अपेखें।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखें।

गुसाँई जी को जब कुम्भनदास जी की यह स्थिति ज्ञात हुई कि बिना श्रीनाथ जी के ये प्राणोत्सर्ग ही कर देंगे तो तत्क्षण नाथ जी की सेवा में लौटने की आज्ञा दी। एक बार गुसाँई जी गोकुल गये हुए थे, उस दिन गुसाँई जी का जन्म दिवस था। नाथ जी बोले – "आज जलेबी बननी चाहिए।" अब तो वैष्णवों ने जन्मोत्सव मनाने हेतु द्रव्य एकत्रित किया। किसी ने १ रुपया दिया, किसी ने दो, कुम्भनदास जी अपने २ पड्डा, २ पड़िया बेच करके ५ रूपये लाये। जलेबियाँ बनी, मन्दिर सज्जित किया, सोल्लास वैष्णवों ने राजभोग में जलेबियों का नाथ जी को भोग लगाया। कुम्भनदास जी ने बधाई का पद गाया।

श्री गुसाँई जी ने पूछा – "आज कौन सा उत्सव है? "

सेवकों ने कहा – "महाराज ! .... आपका जन्मदिवस है।"

"जलेबी किसने बनवाई?" गुसाँई जी के इस प्रकार पूछने पर सद्दू पाण्डेय ने कहा – "जै जै ! इसमें सभी वैष्णवों का योगदान है।

सबने एक-एक, दो-दो रूपये दिए, इस प्रकार २१ रुपये एकत्रित हुए। उन २१ में ५ रुपये तो कुम्भनदास जी ने दिये।"

गुसाँई जी ने चकित होकर पूछा – "कुम्भना ! तुम्हारे पास ५ रूपये कहाँ से आये? "

गुसाँई जी के इस प्रकार पूछने पर कुम्भनदास जी कुछ नहीं बोले। रामदास जी ने बताया – "जै जै कुम्भनदास जी अपने पड्डा, पड़िया बेचकर ५ रूपये लाये", तब कुम्भनदास जी दैन्य से बोले, "अपना शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचिके यदि आपके अर्थ लगे तो वैष्णवधर्म सिद्ध होय हम ऐसे कहाँ है"? यह सुनकर गुसाँई जी की हृदय भावोर्मियाँ तरंगायित हो उठीं। अष्टछाप के सुकवियों में आपकी सर्वप्रथम नियुक्ति हुई और दीर्घकाल तक नाथ जी की सेवा पूर्ण निष्ठा से की।

११५ वर्ष की दीर्घायु पूर्ण करके सं.१६४० वि. के समकालीन, परम पावन संकर्षण कुण्ड पर जब आप ऐहिक लीला का संवरण करने लगे तो उस समय श्री गुसाँई जी ने पूछा – "कुम्भनदास जी ! इस समय आपका मन किस लीला चिन्तन में है? "

तब कुम्भनदास जी ने नन्दतनय और उनकी नित्य संगिनी भानु तनया की रूप माधुरी का दिग्दर्शन कराने वाले इस पद का गायन किया –

"रसिकनी रस में रहत गड़ी"

वास्तव में श्री कुम्भनदास जी त्याग एवं निरपेक्षता के आदर्श, परम भागवत और भगवद् प्रपन्न सद्गृहस्थ थे।

श्री चतुर्भुज दास

श्री कुम्भनदास जी के सुपुत्र परम भागवत श्री चतुर्भुज दास जी तो श्री कृष्ण के 'विशाल' सखा के अवतार थे।

कुम्भनदास जी की बड़ी तीव्र वासना थी कि मुझे दिन-रात सत्संग मिले।

यद्यपि भगवान् स्वयं इनके साथ खेलते, निरावरण दर्शन देते, वार्तालाप करते तथापि सतत् सत्संग की कमी आपके हृदय को सदैव कचोटती रहती।

इसी वासना की पूर्ति के लिए प्रभु ने परम भागवत पुत्र श्री चतुर्भुजदास इन्हें दिए, जो जन्म से ही इनके साथ भगवद् चर्चा करने लग गए।

एक बार कुम्भनदास जी अपने खेत पर उदास बैठे हुए थे।

"कुम्भनदास जी, आज आप उदास क्यों है?

मैं नित्य आपके पास आता हूँ, फिर भी आप उदास ... ! "

नाथजी के इस प्रकार पूछने पर कुम्भनदास जी बोले –

"नाथजी ! आप आकर चले भी तो जाते हो। मुझे सतत् सत्संग की वासना है, कोई भक्त मिलता तो अहर्निश कथा-वार्ता, सत् चर्चा करता और सुनता। सतत् सत्संग का अभाव ही मेरे औदास्य का कारण है।"

नाथजी बोले – "आप चिन्ता न करें कुम्भनदास जी। मैं आपको भक्त संतान दूँगा, जो आपके इस अभाव को दूर कर देगी।"

७ पुत्र होने पर भी जब कोई आपसे पूछता, "आपके कितने पुत्र हैं?"

तो आप कहते – "डेढ़।" "सो कैसे?"

छठवें पुत्र कृष्णदास जी को आप अपना अर्द्ध पुत्र मानते थे क्योंकि इनकी कुछ भजन में प्रवृत्ति थी किन्तु चतुर्भुज दास जी तो भक्ति की पुनीत मन्दाकिनी लेकर ही पैदा हुए थे। चतुर्भुजदास के जन्मावसर पर कुम्भनदास जी नाथ जी के साथ चोरी करने किसी ग्वालिन के घर गए हुए थे। चतुर्भुज दास जी जब ११ दिन के हुए तो कुम्भनदास जी ने श्री गुसाँई जी के पादपद्मों में उन्हें रख दिया। श्री गुसाँई जी ने बालक का नाम चतुर्भुजदास रखा। वि.सं. १६०२ के लगभग गुसाँई जी द्वारा अष्टछाप की जब स्थापना हुई तो उसमें कुम्भनदास जी के साथ साथ उनके पुत्र श्री चतुर्भुज दास जी की भी नियुक्ति हो गई। जन्म से ही पालने में पौढ़े हुए आप कुम्भनदास जी को सुन्दर-सुन्दर कथानक सुनाते, और वे बड़े दत्तचित्त होकर सुनते। प्रभु की सर्वान्तरतम माधुर्यमयी लीलाओं का जैसा अनुभव होता, वही आप पद के द्वारा व्यक्त करते।

एक बार श्री ठाकुर जी चतुर्भुजदास जी से बोले – "ओ कुम्भना के ! चल तोकू मल्ल बनाऊँ।"

चतुर्भुज दास – "कैसे प्रभो? "

बाल कृष्ण – "मेरे संग चल, दूध, दही, घृत, नवनीत खैयो।"

चतुर्भुज दास – "चलो प्रभु।"

(दोनों चल दिए)

प्रथम तो चौकन्नी दृष्टि से सर्वत्र देखा, कहीं कोई है तो नहीं, फिर एक गृह में प्रवेश किया। तक्र का मांट उठाया, गट-गट-गट सब पी गये। रिक्त मांट एक ओर पटक दिया। फिर नवनीत पूरित मांट उठाया, जितना खा सके खा लिया, अवशिष्ट नवनीत का मुख पर लेपन कर लिया।

उदरपूर्ति के पश्चात् तो गृह में दधि-दूध-घृत चारों ओर फैला दिया और उस दधि कर्दम में छप-छप-छप खेलने लगे।

तब तक गृहस्वामी आ गया। उसने देखा तो नाथजी तो भाग खड़े हुए। पिटे बेचारे चतुर्भुज दास जी। पिट-पिटाकर जब आये तो झुंझलाकर बोले –"वाह प्रभो ! स्वयं तो भाग आये, मुझे पिटवा दिया।"

बालकृष्ण – "अरे कुम्भना के ! रोष क्यों करे, बिना पिटे-कुटे मल्ल थोड़े ही बनें? "

श्री चतुर्भुज दास जी नित्य यमुनावतो से गोवर्धन नाथजी की कीर्तन सेवा और दर्शन के लिए आते थे। यदा-कदा गोकुल में नवनीत प्रिया के दर्शनार्थ भी चले जाते किन्तु नाथ जी का विरह उनसे असह्य हो जाता था, नाथ जी की कृपा से चतुर्भुज दास जी को ठाकुर जी की नित्य लीला का दर्शन होता।

एक दिन श्री गुसाँई जी महाराज प्रभु के श्रृंगार करने के बाद आरसी (शीशा) दिखा रहे थे तभी चतुर्भुज दास जी ने गाया –

सुभग सिंगार निरखि मोहन को ।
ले दर्पण कर पियहिं दिखावै ॥
आपुन नेक निहारिए बलि जाऊं ।
आज की छवि कछु कहत न आवै ॥

एक वैष्णव ने पूछ ही लिया, "गुसाँई जी महाराज ! नाथजी का श्रृंगार करके आप नित्य आरसी दिखाते हो फिर चतुर्भुज दास जी ने यह क्यों गाया? " –

आज की छवि कछु कहत न आवै

गुसाँई जी ने स्वयं समाधान न करके वैष्णव को कहा कि यह प्रश्न तो आप चतुर्भुजदास जी से ही करें।

चतुर्भुजदास जी वह प्रश्न सुनकर बोले –

माई री आज और काल और छिन-छिन प्रति और और ।

यह रूप तो नित्य-नव नवायमान है अतः शंका कैसी।

चतुर्भुज दास जी जन्मसिद्ध थे। लीलारसानुभूति में निमग्न श्री कुम्भनदास जी ने एक पंक्ति गायी –

वे देखो बरत झरोखनी दीपक हरि पौढ़े ऊंची चित्रसारी ।

इसी लीला का अनुभव करते हुए, दूसरी पंक्ति श्री चतुर्भुज दास जी ने गायी –

सुन्दर वदन निहारन कारन राखें हैं बहुत जतन करि प्यारी ।

भावार्थ – नव-नीरदाभ-नील श्री अंग की शोभा को श्रीजी निरख रही हैं और इसीलिए रात्रि में प्रज्वलित दीप को निर्वापित नहीं करती है।

चतुर्भुज दास जी के मुख से यह पंक्ति सुनकर कुम्भनदास जी समझ गये कि जो अनुभव मुझे होते हैं, वे ही जन्मजात सिद्ध चतुर्भुज को भी होते हैं।

एक समय गुसाँई जी महाराज अपने खवासों के साथ किसी कार्य से ब्रजबाह्य जा रहे थे। चतुर्भुजदास जी को भी साथ चलने को कहा। वे चल तो दिए, परन्तु ब्रज के बाहर होते ही आपका चित्त विरह-विदग्ध हो गया, वाणी के कंठ ने गान आरम्भ किया –

श्रीगोवर्द्धन वासी सांवरे लाल तुम-बिन रह्यौ न जाय हो ।
ब्रजराज लडैते लाडिले ।
बंक चितै मुसकाय कें लाल सुन्दर बदन दिखाय ।
लोचन तलफै मीन ज्यों लाल पल छिन कल्प विहाय ॥
सप्तक स्वर बंधान सों लाल मोहन वेणु बजाय ।
सुरत सुहाई बांधिके नेंक मधुरे-मधुरे गाय ॥
रसिक रसीली बोलनी लाल गिरि चढ़ गैयां बुलाय ।
गांग बुलाई धूमरी नेंक ऊँची टेर सुनाय ॥
दृष्टि परे जा दिवस ते लाल तब ते रुचे न आन हो ।
रजनी नींद न आवही मोहि बिसरो भोजन पान हो ॥
दरसन कों नैना तपै लाल वचन सुनन को कान हो ।
मिलवे को हियरा तपै मेंरे जिय के जीवन-प्रान हो ॥
पूरण राशि मुख देख के लाल चित चोरयो वाही ओर ।
रूप सुधारस पान के लाल सादर कुमुद चकोर ॥
मन अभिलाषा है रही लाल लगत न नैन-निमेष हो ।
एक टक देखे भावते प्यारो नागर नटवर वेष हो ॥
लोक-लाज कुल बेद की लाल, छांडे सकल बिबेक हो ।
कमल कली रवि ज्यों बढ़ै लाल छिन-छिन प्रीति विशेष हो ॥
कोटिक मन्मथ वारने लाल देखत डगमगी चाल ।
युवती जनमन फंदना लाल अम्बुज नयन विशाल ॥
कुंज भवन क्रीड़ा करो लाल सुख निधि मदन गोपाल ।
हम श्री वृन्दावन मालती तुम भोगी भ्रमर भुवाल ॥
यह रट लागी लाड़ले लाल जैसे चातक मोर ।
प्रेमनीर वरषा करो लाल नवघन नंद किशोर ॥
युग-युग अविचल राखिये लाल यह सुख शैल-निवास हो ।
श्रीगोवर्द्धनधर रूप पै बलि जाय 'चतुर्भुजदास' हो ॥

तब नाथजी ने वहीं अपना साक्षात्कार कराया। साथ ही यह भी कहा – "**एक वर्ष तक जो नित्य इस पद का गान करेंगे, उन्हें निःसंदेह मेरा दर्शन प्राप्त होगा।**" अंत में, रूद्र कुण्ड पर, इमली के वृक्ष के नीचे पांचभौतिक देह से विलग हो आप गोलोक-गमन कर गए।

यमुनावतो ग्राम में 'कुम्भनदास जी कूप' है, वहाँ अश्वत्थ-वृक्ष है, जिसके नीचे श्रीनाथ जी की चरण चौकी है। यहाँ श्रीनाथ जी कुम्भनदास जी को साक्षात् दर्शन देते थे। यहाँ श्री नाथ जी, कुम्भनदास जी की खिरक है, श्यामा गाय की बैठक है। गाँव में एक तालाब है, जिसे 'कुम्भन तलाई' कहा जाता है।
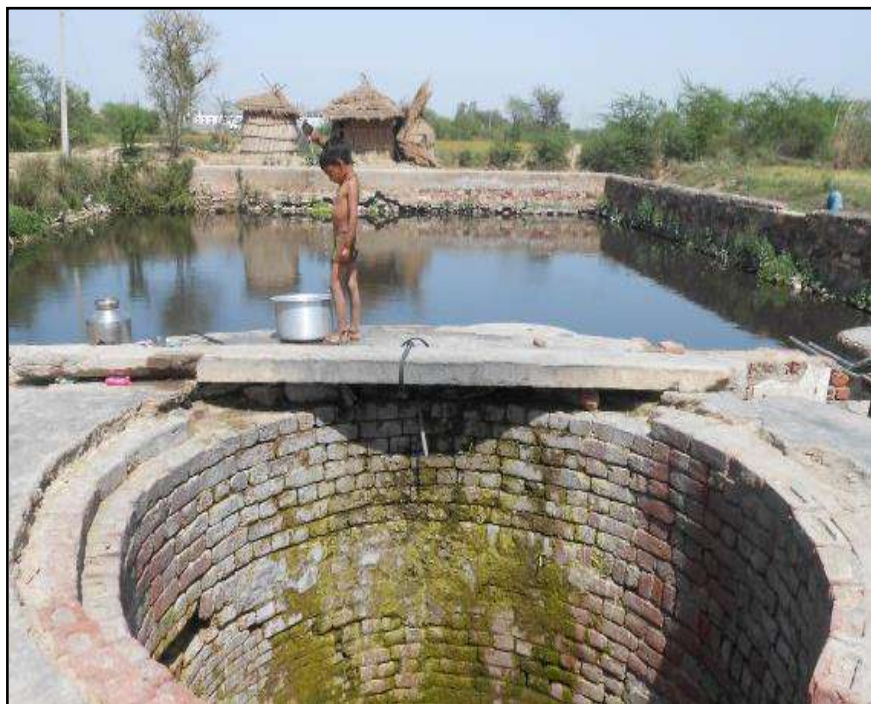
कुम्भनदास जी कूप, बैठक एवं श्रीनाथ जी की चरण चौकी

श्रीनाथ जी की चरण चौकी - यहाँ श्रीनाथ जी कुम्भनदास जी को साक्षात् दर्शन देते थे।

अध्याय – ५५

माधुरी कुण्ड

जाती वन माहात्म्य –

आषाढ़शुक्लसप्तम्यामागतो ब्रजयात्रया ।
राधा प्रियसखी यत्र माधुरीनामगोपिका ॥
राधाकृष्णार्चनार्थाय रचयेन्मालतीबनं ।
नानाद्रुमलताकीर्णं मथुरामण्डलं द्युतिं ॥

(नृसिंह पुराण)

यहाँ श्रीजी की प्रिय सखी माधुरी नामक गोपी ने राधा-माधव की अर्चना के लिए मालती वन का सृजन किया, जो कि भाँति-भाँति के वृक्ष लताओं से आच्छन्न तथा माथुर मण्डल की शोभा का द्योतक है।

नृसिंह पुराण के अनुसार यहाँ आषाढ़ शुक्ल सप्तमी की ब्रज यात्रा वर्णित है।

ततो जातीबन प्रार्थना मन्त्र :-

माधुरीनिर्म्मितायैव जातिबन नमोस्तुते ।
अतिसौगंध्यमोदाय लक्ष्मीरूपाय ते नमः ॥

(नृसिंह पुराण)

हे माधुरी सखी द्वारा आरोपित जातीवन ! आप अतिशय सौगंध्य व शोभा से संयुक्त हैं, श्याम सुन्दर के मन को मोद प्रदान करने वाले हैं, आपको नमस्कार है।

ततो माधुरीकुण्डस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

माधुरीरचितं तीर्थं पीतवारिसमाकुल ।
नमस्ते माधुरीकुंड मानरूप नमो नमः ॥
यत्र राधाकरोन्मानं माधुर्या सह विह्वला ।
कुटिलेक्षणा दृष्टया सा श्रीकृष्णमवलोकयेत् ॥
बहुभिः प्रार्थनाभिः सा माधुर्या सुदृशाभवत् ।
विलासं कुरुतेऽसौ सा कृष्णेन सह मोहिता ॥
मानपूर्णं विलासस्य माधुरीस्थलमीरितं ।

(ब्र.भ.वि.)

हे माधुरी द्वारा विरचित माधुरी कुण्ड ! आप पीत वर्ण के जल से संयुक्त हैं। हे मान लीला के द्योतक ! आपको नमस्कार है।

यहाँ माधुरी गोपी के साथ विह्वल होकर श्रीजी ने मान किया और वाम नेत्रों से श्रीकृष्ण को देखने लगीं, अनन्तर माधुरी गोपी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्यामसुन्दर के साथ में विलास किया। यहाँ मान पूर्ण विलास होने के कारण अर्थात प्रथम मान अनन्तर विलास करने के कारण इस स्थल का नाम 'मानमाधुरी' स्थल है।

ततो मानमाधुरीस्थल प्रार्थना मन्त्र :-

मानपूर्णनिवासाय राधारमणहेतवे ।
विलासमाधुरीस्थान रतिसौख्याय ते नमः ॥

(ब्र.भ.वि.)

हे राधा रमण विलास के निमित्त मान विलास माधुरी स्थल ! आप अतिशय सौख्य स्वरूप हैं। आप मान पूर्ण विलासमय स्थल हैं। आपको नमस्कार हैं।

अध्याय – ५६

गणेशरा

यहाँ गन्धर्वों ने श्रीकृष्ण लीला में भाग लिया था। श्रीमद्भागवत के युगल गीत में इसका वर्णन आता है कि सभी ग्वाल-बालों ने श्रीकृष्ण का श्रृंगार कुंद के फूलों से किया। कुंद के फूलों का मुकुट, कुंद के फूलों के कुण्डल, कुन्द के फूलों का हार, कुंद के फूलों की कौंधनी। 'कुन्ददामकृतकौतुकवेषो'

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥
मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं मानयन् मलयजस्पर्शेन ।
वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥

(भा.१०/३५/२०,२१)

यहाँ कौतुकवेषो का अर्थ वल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भागवत की टीका सुबोधिनी में किया है। ऐसा श्रृंगार किया ग्वाल-बालों ने कि सब लोग हँसने लगे। कौतुक वेष था क्यों? श्रीकृष्ण यमुना जी के किनारे गाय और ग्वाल-बालों से घिरे खड़े हैं। गोपियाँ यशोदा जी से कह रही हैं – "हे निष्पाप यशोदे ! तुम्हारा पुत्र वहाँ प्रेमियों के बीच में विहार कर रहा है।" यशोदा जी की ओर से गोपियाँ थोड़ी-थोड़ी देर में समाचार देती थीं ताकि कोई असुर न आ जाए, कोई बाधा न सता जाए। इसलिए दौड़कर गोपियाँ कह रही हैं – "हे यशोदे ! तुम्हारा लाला विहार कर रहा है। उसका ऐसा वेष है कि सब हँस रहे हैं", ग्वाल लीला है। उस समय का दृश्य है, शीतल-मन्द-सुगन्ध-समीर बह रही है, इन तीनों गुण से युक्त समीर पूर्णतया ग्वाल-बालों के विहार क्रीड़ा के युक्त थीं। शीतल होने से विहार में जो गर्मी होती है वो नहीं लगती, मन्द होने से ठण्ड (सर्दी) नहीं लगती, सुगन्ध होने से रूचि पैदा करती है। एक आश्चर्य है ! उपदेव कहते हैं गन्धर्वों को, वे देवयोनि में होते हैं लेकिन मुख्य देवताओं से नीचे होते हैं। उपदेवगण माने गन्धर्वगण। गन्धर्वों का काम है गाना-बजाना और अप्सराओं का काम है नाचना। गन्धर्व लोग आये हैं अनेक प्रकार के वाद्य-यंत्र बजा रहे हैं। जैसे वीणा, महुअर, वंशी, सारंगी इत्यादि। गोपियाँ यशोदा से कहती हैं कि वे तुम्हारे कृष्ण को रिझाने के लिए गीत गाते हुए आये हैं। ये गन्धर्व देव लोक के रहने वाले हैं और वहाँ से जिस पर भगवान् की कृपा है उसको लीला दिखाई पड़ रही है। जैसा कि श्रीमद्भागवत में लिखा है, उस समय श्रीकृष्ण ग्वाल लीला कर रहे थे, ग्वाल लीला मुख्यतया हास्य रस प्रधान होती है और गोपियों की

लीला श्रृंगार रस प्रधान होती है। ग्वाल-बाल हँस रहे हैं, हँसा रहे हैं, चोरी कर रहे हैं, दही का मटका ला रहे हैं, खा रहे हैं और मुँह में लगा रहे हैं। सारे मुँह में दही का लेप कर दिया, दही की मूँछ और दाढ़ी बना दिया। यह सब ग्वाल लीला है। इस प्रकार वे हँसते और हँसाते हैं, किसी के पेट पर दही का तिलक लगा दिया और बोले "यह पेटू है याके पेट पर तिलक लग रह्यो है, माखन लग रह्यो है, ऐसो खायो है कि माखन याके पेट से निकल के बाहर आ रह्यो है"। इस हास्यरस प्रधान ग्वाल लीला को गन्धर्वों ने देखा और आपस में कहने लगे कि देखो इसको अविनाशी पुरुष कहते हैं। कोई कहते हैं कृष्ण अवतार हैं, ब्रह्म हैं, यह ब्रह्म होकर पेट पर दही और माखन का तिलक लगा रहा है और छीन-छीनकर एक-दूसरे का जूठन खा रहा है। यह कैसा ब्रह्म है? गन्धर्वों ने कहा – "चलो ब्रह्मा जी से कहा जाए कि क्या यही ब्रह्म है जो इस तरह से हँस रहा है खा रहा है।" गन्धर्वों के मुख से ऐसा सुनकर ब्रह्मा जी को मोह हो गया। उन्होंने आकर देखा कि कृष्ण ग्वारियाओं के साथ हँस रहे हैं। सूरदास जी कहते हैं – "इस प्रकार ब्रह्मा जी को जो मोह हुआ वह गन्धर्वों के कुसंग से हुआ।" इसी भाव को सूरदास जी ने गाया है –

देखत गण गन्धर्व सकल सुर पुर के वासी ।
आपस में वे कहत हँसत ये ही अविनाशी ॥

तब तक कृष्ण ने किसी के मुख से जूठन निकाल कर खा लिया तब गन्धर्व बोले – "यही अविनाशी है, भुक्खड़", वे सब आश्चर्य में हो गए कि ये कैसा भगवान् है। यहाँ जब गन्धर्वों ने ऐसा देखा –

देखि सबै अचरज भये कह्यो ब्रह्म सों जाय ।
जाको अविनाशी कहत सो ग्वालन संग खाय ॥

बोले, "चलो ब्रह्मा से कहें ये कैसा भगवान् है? " ब्रह्मा से जाकर बोले, "अरे ! वह जूठन खा रहा है, कैसा भगवान् है? ब्रह्मा को कुसंग व्याप गया। सूरदास जी कहते हैं – "ब्रह्मा तुरंत वृन्दावन में देखने आ गए कि बात सही है कि नहीं।" आये तो देखा चारों ओर कमल खिल रहे हैं, ऐसा ब्रज था। वहाँ की छटा देखकर ब्रह्मा जी आश्चर्य में पड़ गए क्योंकि ब्रह्म लोक में इतना आनन्द नहीं है। उन्होंने देखा यहाँ गोपियाँ खड़ी हैं और कृष्ण माखन दही खा रहे हैं। हाथ में माखन का लौंदा लेकर मुँह में डाल रहे हैं, ऐसा लगता है मानो कमल चंद्रमा को जो सुधाकर है उसे खिला रहा है। ब्रह्मा जी ने यहाँ आकर जो कुछ देखा उससे उनको मोह उत्पन्न हुआ। यह मोह लीला गन्धर्वों से शुरू हुई थी। इस प्रकार यहाँ गणेशरा में गन्धर्वों द्वारा यह लीला हुई है।

अध्याय – ५७

खेचरी

'ख' माने आकाश, आकाश में चलने वाली मायाविनी पूतना को खेचरी कहते थे। उसका मूल निवास यहीं था। पूतना की लीला कौन नहीं जानता है।

पूतना जो तारन हारो ऐसो और कौन दया वारो ।....

राल

इस रालवन का नाम राल इसलिए है क्योंकि यहाँ होरी होती है। ब्रज में अलग-अलग ढंग की होरियाँ होती हैं। बरसाने-नन्दगाँव की विश्व प्रसिद्ध लठामार होरी, दाऊ जी का हुरंगा जिसमें कोड़ामार होरी होती है, जाव-बठैन में बबूल के झामों से प्रेम भरी पिटाई होती है, मुखराई का चरखुला नृत्य, फालेन में पूर्णिमा के दिन पण्डा धधकती आग में होकर निकलता है और यहाँ (राल) में झंडी की होली होती है। ध्वज कौन जीतता है, कौन हारता है, इस बात की रार होती है। इसलिए भी इसे राल कहते हैं। राल वन के भीतर ही अति प्राचीन विहार वन है।

**कदम वन वीथिन करत विहार ।
अति रस भरे मन मोहन पिय तोरयो प्रिया उर हार ॥
कनक भूमि बिखरे गज मोती कुँज कुटी के द्वार ।
'गोविन्द' प्रभु श्री हस्त कर पोवत सुन्दर ब्रजराज कुमार ॥**

राल – विहार वन कुण्ड एवं विहार वन

अध्याय – ५८

सौंख

श्रीखचूड़ यक्ष का यहाँ निवास होने से यह शंख ग्राम हुआ। शंख ग्राम का अपभ्रंश ही सौंख हुआ। शंखचूड़ का इतिहास भागवतकार ने तो सूक्ष्म दिया है किन्तु 'श्री गर्ग संहिता' और 'श्री ब्रह्मवैवर्त पुराण' में इसका विशद विवेचन है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृति खण्ड में १३ से २० अध्यायों में यह कथा विस्तार से है। 'ब्रह्मवैवर्त' के अनुसार सतयुग में एक राजा हुए हैं – वृषध्वज। ये बड़े भारी शैव थे किन्तु इनमें एक दोष था कि ये भगवान् लक्ष्मी-नारायण को नहीं मानते थे, जहाँ भी लक्ष्मी-नारायण की पूजा होती, उसे बंद करा देते। यह देखकर इनको भगवान् सूर्य ने शाप दे दिया। महादेव जी ने क्रोध किया और त्रिशूल लेकर सूर्य के ऊपर टूट पड़े। सूर्य अपने पिता कश्यप जी को साथ लेकर ब्रह्मा जी की शरण में गए।

ब्रह्मा जी बोले – "शिव का क्रोध रोकना कठिन है। चलो हम सब भगवान् की शरण लें।" तीनों वैकुण्ठ गए, वहाँ भगवान् नारायण ने ब्रह्मा, कश्यप और सूर्य इन तीनों को अभय प्रदान किया। बोले – "तुम भय मत करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।" उसी समय वहाँ शंकर जी पहुँच गये क्रोध में लाल आँखें थीं किन्तु भगवान् नारायण को देखकर उन्होने प्रणाम किया तब ब्रह्मा, कश्यप, सूर्य इन सबने शंकर जी को प्रणाम कर उनकी स्तुति की। भगवान् नारायण बोले – "हे शम्भो ! आप क्रोध क्यों करते हैं?"

शिवजी बोले – "प्रभो ! वृषध्वज मेरा भक्त है। सूर्य ने उसे शाप दे दिया, अतः उसकी श्री नष्ट हो गई।"

भगवान् नारायण बोले – "वैकुण्ठ में तो अभी आधी घड़ी व्यतीत हुई है परन्तु पृथ्वी पर २१ युग व्यतीत हो चुके हैं। इस समय वृषध्वज का पुत्र रथध्वज भी पृथ्वी पर नहीं है। उसके दो पुत्र १. धर्मध्वज एवं २. कुशध्वज हैं।

आप उनको जाकर कहिये कि वे लक्ष्मी जी की उपासना करें, इससे उनकी श्री लौट आएगी, तब दोनों पुत्र धर्मध्वज, कुशध्वज ने श्रीजी की उपासना की, तब कुशध्वज से एक पुत्री हुई, जिसका नाम वेदवती था। १ मन्वन्तर (३० करोड़ वर्ष) उसने पुष्कर में तप किया, भगवान् को पति रूप में प्राप्त करने के लिए तब व्योम वाणी हुई कि भगवान् तुम्हारे पति होंगे

किन्तु दूसरे जन्म में। यह सुनकर वो रुष्ट हो गयी कि पता नहीं कब दूसरा जन्म होगा – कब इष्ट की सिद्धि होगी ....?

मुझे तो अभी चाहिए। मुझे दूसरा जन्म ही नहीं चाहिए, मुझे इसी जन्म में भगवान् पति के रूप में चाहिए। वह फिर से तप करने चली गई। वेदवती जी बहुत सुन्दर तो थी ही। एकबार रावण वहाँ पहुँचा तो उसके रूप पर मोहित हो गया और बोला – "देवि ! आप यहाँ क्यों तप कर रही हैं? आपके जैसी सुन्दरी हमने कहीं नहीं देखी।" उसने वेदवती जी को हाथ पकड़कर खींचना चाहा। रावण की इस चेष्टा को देखकर वेदवती जी ने तप की शक्ति से इतनी जोर से हुंकार किया कि रावण जड़ हो गया। न हाथ हिले, न पाँव, न उँगली हिले, न आँख हिले न पलक गिरे। ऐसी वेदवती जी में तप की शक्ति थी। उनकी हुंकार से ही रावण की सब शक्ति क्षीण हो गई।

इस कथा का संकेत 'वाल्मीकि रामायण' में भी मिलता है। उसके बाद रावण ने वेदवती जी की मन से स्तुति की क्योंकि वाणी तो जड़ हो गई थी, बोल तो सकता नहीं था। मन से स्तुति करने लगा – "हे वेदवती ! मुझे क्षमा कर दो।" उसकी मानसिक स्तुति से वेदवती जी प्रसन्न हो गयीं, किन्तु फिर भी उन्होंने शाप दे दिया – "दुरात्मन ! तूने मेरे इस शरीर का स्पर्श कर लिया है इसलिए इसे तो अब मैं नहीं रखूँगी किन्तु मेरे ही कारण तेरा और तेरे बांधवों का नाश होगा", कहकर वेदवती जी ने शरीर छोड़ दिया तब रावण ने उस शरीर को गंगा जी में प्रवाहित किया। पश्चात्ताप करने लगा – कि मैंने क्या कर दिया, सती स्त्री का कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिए, मैं तो अमर था।

रावण के नाभि में अमृतकुण्ड था, शिवजी का वरदान था। हजारों सिर काटने के बाद भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती थी। ज़रा सी भूल पर मैंने अपनी मृत्यु को स्वयमेव बुला लिया। छोटी सी भूल ही मनुष्य के भविष्य को नष्ट कर देती है। वे ही वेदवती फिर राजा जनक की पुत्री सीता हुई, भगवान् श्रीराम उनके पति हुए। जब रावण के द्वारा सीता हरण का समय आया तो मायामयी सीता (नकली सीता) उत्पन्न करके, श्रीराम जी ने वास्तविक सीता को अग्नि में छिपा दिया था। रावण के मरने पर अग्नि ने वास्तविक सीता को राम जी को वापिस लौटा दिया किन्तु जो मायामयी सीता थी, अब वो कहाँ जाए? तो भगवान् राम ने कहा – "तुम पुष्कर में तप करो।" पुष्कर में तप करने के उपरान्त वे स्वर्ग की लक्ष्मी बन गईं।

स्वर्ग की लक्ष्मी बनने के बाद वही फिर द्रौपदी बनी थी। द्रौपदी का एक नाम इसीलिए त्रिहायणी भी है। ये सतयुग में वेदवती, त्रेतायुग में छायासीता और द्वापर में ये द्रौपदी हुई। ये कुशध्वज की पुत्री थी और इनके भाई धर्मध्वज के यहाँ, तुलसी जी का जन्म हुआ। ये गोलोक में रहती थीं, राधारानी के शाप से ये धर्मध्वज की पुत्री बनीं। तुलसी नाम इनका इसलिए पड़ा कि इनके रूप की कोई तुलना नहीं थी। एक बार तप करने बद्रिकाश्रम में गयीं,

तो इनके उग्र तप से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी आए, वरदान के लिए कहा तो तुलसी बोली – "मैं तो पूर्वजन्म की गोलोक की गोपी हूँ, राधारानी के शाप से यहाँ आई हूँ।

श्री कृष्ण ने मुझे वरदान दिया है कि भगवान् विष्णु तुम्हें पति नहीं मिलेंगे। श्रीकृष्ण का ही अंश शंखचूड़ है, पहले वो तुम्हे पति रूप में मिलेगा (यह शंखचूड़ सांखी वाले शंखचूड़ से भिन्न है) फिर नारायण तुम्हें शाप देंगे तब तुम उनके शाप से वृक्ष बनोगी और तुम भी उनको शाप दोगी, वे तुम्हारे शाप से पाषाण बनेंगे। तुम वृन्दावन में तप करोगी, वृन्दावन तुम्हारे ही नाम से बनेगा, बाद में श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लोगी।" उसके बाद ब्रह्मा जी ने राधारानी का "षोडशाक्षर मन्त्र" तुलसी जी को दिया। बोले – "इसके प्रभाव से तुम उन्हीं के समान बन जाओगी।"

शंखचूड़ जो कि सुदामा गोप था, श्रीजी के शाप से वह शंखचूड़ बना और फिर तुलसी का पति बना। ब्रह्मा ने तुलसी से कहा – "देवि ! भगवान् का ऐसा ही विधान है, अभी तुम्हें शंखचूड़ के साथ रहना पड़ेगा, बाद में श्री कृष्ण प्राप्ति भी हो जायेगी।"

एक बार शंखचूड़ ने सारी त्रिलोकी को जीत लिया, देवताओं को भिक्षुक बना दिया। देवता शिवजी की शरण में गए किन्तु शिवजी भी शंखचूड़ को मार नहीं सकते थे क्योंकि उसके पास एक दिव्य कवच था। युद्ध हुआ, शिवजी मार नहीं पाए शंखचूड़ को। यद्यपि उनके साथ भगवती काली, स्वामी कार्तिकेय जी भी थे तब शंखचूड़ का रूप बनाकर भगवान् ने तुलसी का पातिव्रत नष्ट किया जिसके प्रभाव से शंखचूड़ का शिवजी के अमोघ त्रिशूल द्वारा प्राणान्त हुआ। तुलसी ने श्री हरि को शाप दे दिया कि तुम पत्थर बन जाओ तो भगवान् शालिग्राम बन गए। भगवान् ने भी तुलसी को शाप दे दिया कि तुम वृक्ष बन जाओ। तुलसी, तुलसी वृक्ष बन गईं तब तुलसी शालिग्राम का विवाह हुआ।

शंखचूड़ का भगवान् शिव द्वारा वध हुआ, तब से ही शंख भगवान् की सेवा में आने लग गया। इस शंखचूड़ का निवास यहीं सौंख में था और इसी के नाम पर गाँव का नाम सौंख है। यह शंखचूड़ सांखी वाले शंखचूड़ से भिन्न है। वह शंखचूड़ यक्ष था और यह शंखचूड़ कृष्ण भक्त था।

जैसे – माण्डव्य ऋषि के शाप से धर्मराज को एक ही समय में ३ रूप से जन्म लेना पड़ा। १. महाराज युधिष्ठिर २. श्वपच बाल्मीकि एवं ३. दासी पुत्र विदुर। उसी प्रकार सुदामा गोप ही दोनों शंखचूड़ माने जाते हैं। एक रूप से यक्ष शंखचूड़ जिनका निवास सांखी ग्राम में था। दूसरे रूप से कृष्ण भक्त शंखचूड़ जिनका निवास सौंख ग्राम में था।

यह कोई संशयात्मक विषय नहीं है। एक ही लीला कल्पभेद से अनेक प्रकार की होती है। यथा – रामचरितमानस में किसी कल्प में प्रतापभानु रावण बनता है तो किसी में जलन्धर।

"तहाँ जलन्धर रावण भयऊ"

(रा.बा.का.१२४)

कल्पभेद से सभी लीलायें सत्य हैं। ऐसे अनेकानेक उदाहरण इस बात का समन्वय करते हुए तथ्य की पुष्टि करते हैं। जैसे – प्रभु के वक्ष से धर्म उत्पन्न हुए, उन्हीं प्रभु के पृष्ठ से अधर्म। वेन की जंघा से निषाद और भुजा से पृथु भगवान् उत्पन्न हुए।

वत्सवन

लीलाधारी बालकृष्ण की बड़ी मनोहारी लीलाएँ हठात् चित्त को वश में कर लेती हैं। ऐसी ही एक लीला वत्सचारण क्षेत्र 'बछ गाँव' की है। जब ब्रह्मा जी ने ग्वाल-बालों व बछड़ों का हरण किया था तो एक वर्ष पर्यन्त उन्हें अपने पास रखा और यहाँ श्रीकृष्ण ने वत्स रुप धारण कर लिया था। उन सब को ब्रह्माजी ने यहीं वत्स वन (बछ गाँव) में लाकर छोड़ा था। उस समय कृष्ण रूपी वत्स के ऊपर अपना अगाध स्नेह उड़ेला। एक लीला और भी यहाँ की आती है कि बहुत अधिक बुभुक्षु होने पर जब ग्वालबालों ने श्रीकृष्ण से भोजन की जिज्ञासा की तो श्रीकृष्ण ने मधुरवंशी वादन किया और देखते ही देखते सुस्वादिष्ट व्यंजनों से आपूरित्पात्र स्वतः ही वहीं एकत्रित हो गए। सबने प्रसन्नचित होकर भोजन किया। यहीं बाँसुरी कुण्ड, राम कुण्ड, विमल कुण्ड, शंकर कुण्ड, ज्ञान कुण्ड, सहस्र कुण्ड, कनक कुण्ड विभिन्न कुंडों की भी सृष्टि हुयी।

यद्यपि श्रद्धालुओं की मनोरुचि के अनुसार परिक्रमा मार्ग परिवर्तित हो जाता है फिर ब्रज के समस्त गाँवों में गमन संभव नहीं हो सकता। सभी स्थल लीलाओं से संबद्ध अतः आस्वादनीय है। आजकल पैंठा या सीधे-सीधे आन्यौर, जतीपुरा, गोवर्द्धन, राधाकुण्ड, कुसुम सरोवर होकर लोग परिक्रमा करते हैं। अतःआसपास के क्षेत्रों का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है। पैंठा व सौंख के आसपास नगला सबला, नगला शेरा, नगला सत्तू, डोमपुरा, कोंथरा जहां कोंथर कुण्ड भी है। उधर सौंख के आसपास मल्हू, नैनू पट्टू, जंगली नगला, अहमल नगला, ननु एवं तसिया आदि गाँव है। ऐसे ही गोवर्द्धन की ओर, और भी कुछ गाँव हैं।

अध्याय – ५९

नीम गाँव

गोवर्धन ग्राम से ४ कि.मी. उत्तर दिशा में स्थित श्री नीम गाँव चतुःवैष्णवसम्प्रदायाचार्यों में प्रतिपादनकर्ता; भगवान् वासुदेव के सुदर्शन चक्र के अवतार श्री श्री निम्बार्काचार्य जी की भजन-भूमि है। आपकी अलौकिक भक्तियुत ज्ञान-गरिमा ने सर्वत्र भक्ति की पुनीत मंदाकिनी प्रवाहित कर दी। अतः विशद् आलोचना के बाद भी शाखाचंद्र-न्याय से किञ्चित् इङ्गित मात्र ही किया जा सकता है, आपके जीवन के विषय में –

भगवद् रूप आचार्यों का तो स्मरण ही पावन बना देता है जीव की चित्त भूमि को।

काल की कालिमा, वासना के तिमिर से आच्छन्न मन एवं ममता के महामोह-पाश में बँधे ताप-तप्त प्राणियों के अन्तस्तल को धवल बनाने के लिए ही तो आपका अवतरण होता है।

श्री निम्बार्काचार्य

श्री भक्तमालानुसार आचार्यपाद का परिचय :-

निम्बादित्य आदित्य कुहर अज्ञान जु हरिया ।

(भक्तमाल)

श्री निम्बार्काचार्य जी अज्ञान रूपी कोहरे के विनाशक व शुद्ध भक्ति के प्रकाशक थे।

सर्वत्र ही आपका प्रवेश है :-

१. श्री वासुदेव के अभिन्न आयुधों में आप "सुदर्शन चक्र" के अवतार हैं।

निम्बादित्याय देवाय जगज्जन्मादिकारिणे ।
सुदर्शनावताराय नमस्ते चक्ररूपिणे ॥

(श्री निम्बार्कस्तोत्र)

२. निभृत-निकुञ्ज के सहचरी परिकर में "श्रीरंगदेवी जी" के रूप में युगल रसराज की अभीष्ट सेवा का संपादन करते हैं।

३. ब्रजलीला में नित्य संगी – 'तोष सखा' के अवतार हैं।

४. गौ चारण लीला का आनन्द लेने हेतु – 'धूसरि गऊ' के अवतार हैं।
५. ब्रज लीला का आयुध – 'लकुट' के अवतार हैं।
६. श्रीजी के अलंकारों में – शुक-चञ्चु को हेय बना देने वाली नासा में झूलती 'नथ' हैं।
७. श्रीजी के श्री अंग की अविच्छेद्य 'अंग कान्ति' है।
८. और भगवद्भक्ति के प्रचार-प्रसार हेतु आचार्य रूप में भी आप अवतरित हैं।

वैष्णव मतानुसार – आप द्वापरकालीन हैं।

सम्प्रदाय के कतिपय सुधीतत्ववेत्तागणों के मतानुसार –

विक्रम की ५ वीं शताब्दी में आपका आविर्भाव हुआ। महाराष्ट्र (दक्षिण काशी) में वैदूर्यपत्तन तीर्थ, जो एकनाथ जी की जन्मभूमि है। सम्प्रति पैठण नाम से ख्यात इस पावन अवनि पर पिता श्री अरुण मुनि के प्रतापी-तेज पुञ्ज ने माता श्रीमती जयन्ती देवी के कूँख से जन्म ग्रहण किया। माता-पिता नियमानंद कहकर बुलाने लगे। कुछ समय बाद पैठण छोड़कर वे बालक सहित ब्रज में श्री गिरिराज जी के समीपस्थ गाँव में निवास करने लगे जो वर्तमान में नीम गाँव के नाम से जाना जाता है।

बालक बाल्यकाल से ही अद्भुत प्रतिभाशाली था। भगवान् नारायण ने हंस रूप से सनकादिक को जो उपदेश किया, सनकादिक ने वही देवर्षि नारद को दिया और नारद जी द्वारा श्री निम्बार्काचार्य जी महाराज ने वह उपदेश प्राप्त करके उसका प्रतिपादन किया। आचार्य पाद ने ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में 'अस्मद् गुरवे नारदाय' कहा है। वहीं गुरु परम्परा में सनकादिक मुनीश्वरों का भी स्मरण किया है।

ऐसी मान्यता है कि नारद जी ने श्री निम्बार्काचार्य जी को "गोपाल मन्त्र" की दीक्षा दी।

एक बार एक यति आपके यहाँ पधारे, परस्पर शास्त्रचर्चा आरम्भ हो गई। चर्चा में संलग्न दोनों महत् जनों को सूर्यास्त कब हो गया पता न चला। यति नियमतः सूर्यास्त होने पर भोजन ग्रहण नहीं करते थे किन्तु आचार्य यह नहीं चाहते थे कि कोई अभ्यागत मेरे यहाँ आकर उपोषित रहे।

कोटिसूर्यसम्प्रभ सुदर्शन चक्र के मूर्त अवतार तो थे ही आचार्यपाद।

अतः उसी रूप से प्रकट हो गये प्रांगण के नीम तरु के ऊपर। चारों ओर प्रकाश फैल गया तब आचार्य चरण बोले – "देखिये, अभी सूर्य अस्त नहीं हुआ, अतः आप भोजन कर लें।" अब तो यति भोजन करने को बाध्य थे। यति भोजन कर, हस्त-मुख प्रक्षालन करके उठे तो वहाँ से वह सूर्य मण्डल अदृश्य था।

निम्ब-तरु पर निस्तब्ध रात्रि में भी आदित्य का प्रकाश चक्षु गोचर कराने के कारण ही नियमानंद से आपका नाम निम्बादित्य या निम्बार्काचार्य हो गया और आपका वह आश्रम भी निम्बग्राम कहा जाने लगा। निम्बग्राम का अपभ्रंश ही नीम गाँव है।

आप द्वारा रचित अनेकों ग्रन्थ ही आपकी बहुमुखी प्रतिभा के परिचायक हैं।

यथा –

गीताभाष्य, कृष्णस्तवराज, गुरुपरम्परा, वेदान्त तत्व बोध, राधाष्टक ऐतिह्यतत्वसिद्धान्त, स्वधर्माध्वबोध, वेदान्तकामधेनुदशश्लोक ......आदि। वर्तमान में 'वेदान्त-पारिजात सौरभ एवं वेदान्तकामधेनुदशश्लोक'ये दो अति संक्षिप्त ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं।

राधिका परदेवता का सर्वोच्च स्थान है – श्री निम्बार्क सम्प्रदाय में।

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदां विराजमानामनुरुपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥

(वेदान्तकामधेनुदशश्लोक)

आपका इन अन्तरंग-गोपन भावों से अनुस्यूत मार्ग राधाभिषिक्त रसवेदी जनों के लिए ही गम्य है।

आपकी शिष्य परम्परा –

श्री निम्बार्काचार्य जी के शिष्य हुए श्री निवासाचार्य जी। इन्होने आचार्य के ब्रह्मसूत्र भाष्य पर 'वेदान्त कौस्तुभ' नामक ग्रन्थ लिखकर उसकी व्याख्या की। इस 'वेदान्तकौस्तुभ' की टीका आगे चलकर काश्मीरी केशव भट्टाचार्य जी ने की। श्री निवासाचार्य जी के पश्चात् शिष्य परम्परा से ग्यारहवें आचार्य हुए श्री देवाचार्य जी।

इन्होनें 'वेदान्त जाह्नवी' तथा 'भक्तिरत्नावली' नामक दो ग्रन्थ लिखे, जिनका सम्प्रदाय में अत्यन्त सम्मान है।

श्री देवाचार्य जी के दो शिष्य हुए – श्री सुन्दर भट्टाचार्य जी तथा श्री ब्रजभूषण देवाचार्य जी। इन दोनों आचार्यों की परम्परा आगे चलकर विस्तीर्ण हुई। श्री सुन्दर भट्टाचार्य जी की शिष्य परम्परा में सत्रह भट्टाचार्य आचार्य और हुए। इनमें सोलहवें काश्मीरी श्री केशव भट्टाचार्य जी हुए। काश्मीरी केशव भट्टाचार्य जी के शिष्य श्री भट्ट जी ने 'युगल शतक' की रचना की। यही ग्रन्थ 'आदि वाणी' कहा जाता है। श्री भट्ट के भ्रातृवंशज गोस्वामी अब भी निम्बार्क सम्प्रदाय की सीधी परम्परा में ही है। श्री भट्ट जी के प्रधान शिष्य श्री हरिव्यास जी हुए। इनके अनुयायी आगे चलकर अपने को 'हरिव्यासी' कहने लगे। श्री हरिव्यास जी के बारह शिष्य हुए, जिनमें श्री शोभूरामदेवाचार्य, श्री परशुराम देवाचार्य, श्री घमण्डदेवाचार्य तथा श्रीलपरागोपालदेवाचार्य अपनी प्रमुख विशेषताओं के कारण उल्लेखनीय हैं। इनमें से श्री शोभूरामदेवाचार्य जी की शिष्यपरम्परा में चतुर चिन्तामणि की परम्परा इस समय देश में अधिक व्यापक है। श्री परशुराम देवाचार्य जी महाराज की परम्परा को ही सर्वेश्वर की अर्चा प्राप्त है और निम्बार्क सम्प्रदाय के पीठाधिपति इसी परम्परा के आचार्य होते हैं। ब्रज में जो रास लीला का वर्तमान प्रचार है, वह श्री घमण्ड देवाचार्य जी की भावुकता से प्रादुर्भूत

परम्परा है। श्रीलपरागोपालदेवाचार्य जी के शिष्य श्री गिरिधारीशरण देवाचार्य जी जयपुर, ग्वालियर आदि अनेकों राजकुलों के गुरु हुए हैं। श्री हरिव्यासदेव जी की यह शिष्य-परम्परा है। उनके भ्रातृवंशज अपने को 'हरिव्यासी' नहीं मानते। वे निम्बार्क-सम्प्रदाय की सीधी परम्परा में हैं। श्री देवाचार्य जी के दूसरे शिष्य श्री ब्रजभूषणदेवाचार्य जी की परम्परा में श्री रसिकदेवजी तथा श्री हरिदास जी हुए हैं। ऐसी भी मान्यता है कि महाकवि जयदेव जी इसी परम्परा में हैं। श्री रसिक देवजी के आराध्य श्री रसिकविहारी जी तथा श्री हरिदास जी के परमाराध्य श्री बांकेविहारीजी हैं। श्री हरिदास जी के अनुयायियों की एक परम्परा के लोग अपने को 'हरिदासी' कहते हैं। इनका मुख्य स्थान वृन्दावन में टटिया स्थान है। कृष्ण प्रणामी या प्रणामीसम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री प्राणनाथ जी की जीवनी में उनको हरिदास जी का शिष्य कहा गया है। इस प्रकार कृष्ण-प्रणामी परम्परा भी निम्बार्क-सम्प्रदाय की हरिदास जी की परम्परा की ही शाखा है। इस प्रणामी-सम्प्रदाय का मुख्यपीठ, पन्ना (बुन्देलखण्ड) में है।

श्री निम्बार्काचार्य जी तथा उनकी परम्परा के अधिकांश आचार्यों की यह प्रधान विशेषता रही है कि उन्होंने दूसरे आचार्यों के मत का खण्डन नहीं किया है। श्री देवाचार्य जी ने ही अपने ग्रन्थों में अद्वैत मत का खण्डन किया है। श्री निम्बार्काचार्य जी ने प्रस्थानत्रयी के स्थान पर प्रस्थानचतुष्टय को प्रमाण माना और उसमें भी चतुर्थ प्रस्थान श्रीमत् कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास प्रणीत परमहंस-संहिता 'श्रीमद्भागवत' को परम प्रमाण स्वीकार किया।

निम्ब-ग्राम के दर्शनीय स्थल

निम्बार्क सम्प्रदाय द्वारा सेवित युगल सरकार का मंदिर, सुदर्शन मंदिर, गुरु परम्परा में – श्री हंस भगवान, महर्षि सनकादिक, देवर्षि नारद, जगत् गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य जी का विग्रह दर्शनीय है। मन्दिर के निकटस्थ है – सुदर्शन कुण्ड, कुण्डेश्वर महादेव, प्राचीन तपस्थली।
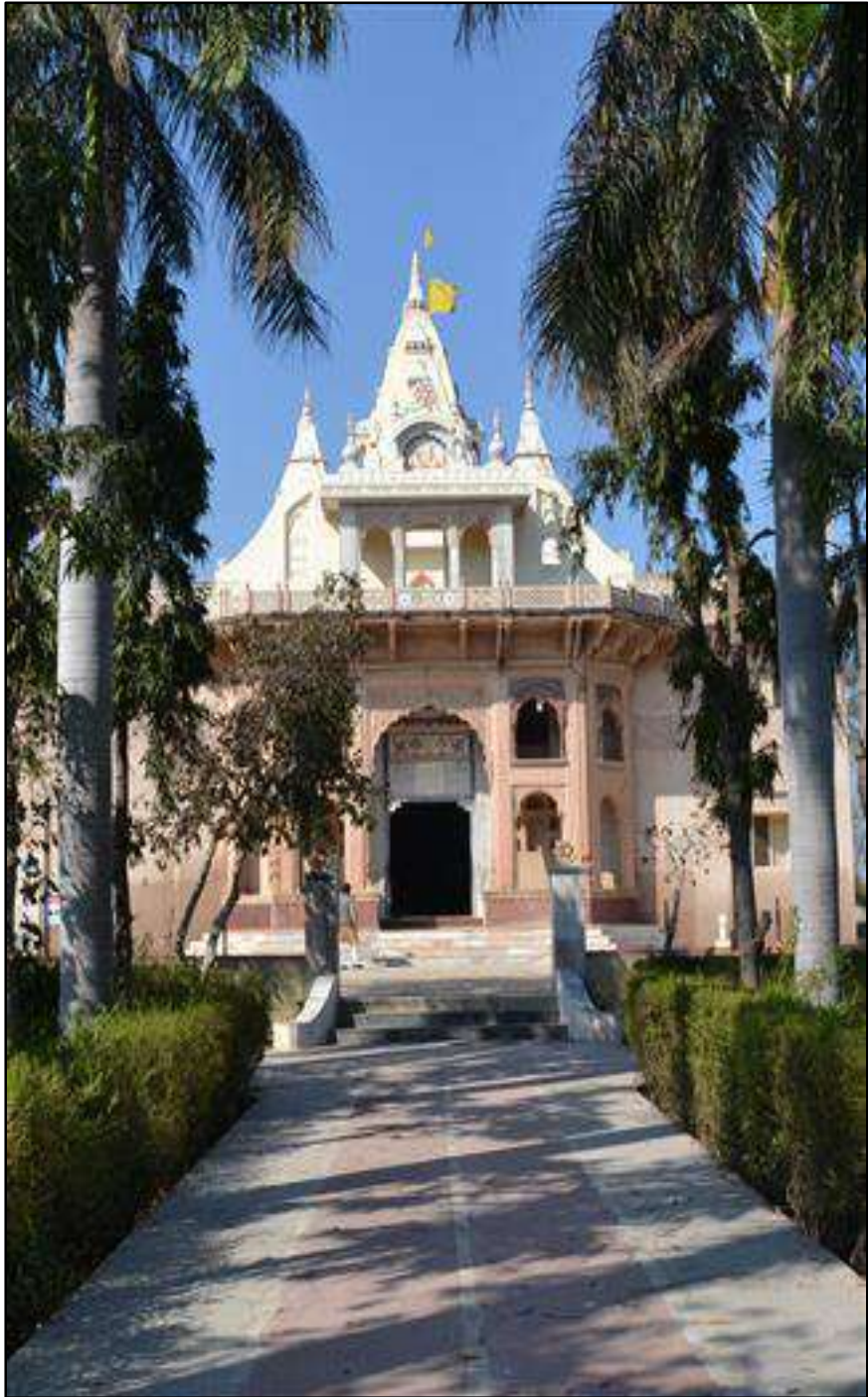
नीम गाँव - श्री निम्बार्काचार्य स्थल
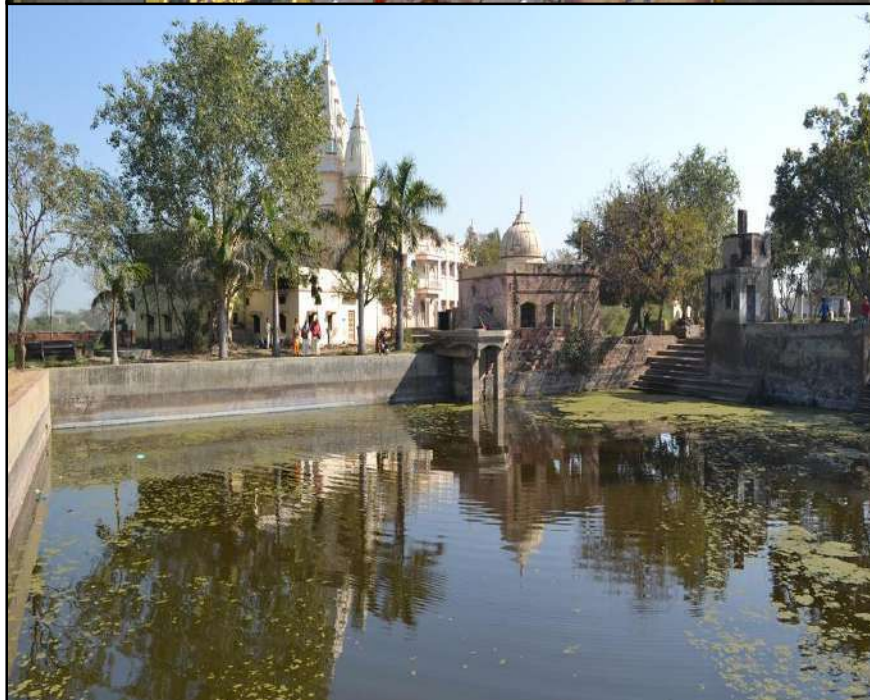
नीम गाँव – श्री निम्बार्काचार्य जी एवं श्री सुदर्शन कुण्ड

अध्याय – ६०

शकरवागाँव

यह गाँव सखीतरा से उत्तरपश्चिम की ओर डेढ़मील दूरी पर है। यहाँ पर इन्द्र ने कृष्ण को सुरभि गाय का दान दिया था। यहाँ पर शक्रकुण्ड और ग्वालकुण्ड भी हैं।

श्रीसाँखी

ब्रज में अनेकों असुरों का प्रवास था।

यथा –

१. पूतना का ग्राम खेचरी
२. बकासुर का बाकल
३. व्योमासुर का गढ़वन (शेरगढ़)
४. अघासुर का पसोली
५. दंतवक्र का दतिहा
६. शंखचूड़ यक्ष का साँखी
७. कृष्ण भक्त शंखचूड़ का सौंख (दोनों शंखचूड़ भिन्न हैं)

शंखचूड

श्रीजी के शाप से सुदामा गोप ही शंखचूड़ बने थे। शाप इत्यादि तो अवतार का ब्याज मात्र होता है।

दिग्विजयी शंखचूड़ को कोई पराभूत नहीं कर सकता था।

गर्गसंहितानुसार

गदायुद्ध में शंखचूड़ यक्ष की टक्कर का संसार में कोई योद्धा कहीं नहीं था। बाहुबल जब बढ़ जाता है तो बिना युद्ध के भुजाओं में सरसराहट (युद्ध की खुजली) चलती रहती है।

एक दिन देवर्षि से उसने पूछा –

शंखचूड़ – "वीणावादक ! मुझे कोई योद्धा बता।"

नारद – "यक्षराज ! तुम्हारे समकक्ष योद्धा तो केवल एक ही है।"

शंखचूड़ – "कौन है वह परमवीर? "

नारद – "कंस !"

सुनते ही गदायुद्ध विषारद शंखचूड़ मथुरा आ गया।

दक्षिण हस्त में १ लाख भार लोहे की गदा लेकर कंस से बोला – "देखो, यदि तुम मुझे जीत लोगे तो मैं आजन्म तुम्हारी दासता करूँगा और यदि मैं तुम्हें जीत लूँगा तो तुम मृत्यु पर्यन्त मेरे दास बनोगे।"

शर्त ध्यान में रखते हुए, घमासान समर शुरू हो गया।

दोनों का देह वज्र की तरह कठोर था। देह से गदा यदि टकरा जाती तो चूर-चूर हो जाती किन्तु देह पर एक रक्त लकीर तक न खिंचती। सैकड़ों गदाओं का चूर्ण जब अखाड़े में बिखर गया तो घूँसे से संग्राम चला। २७ दिन हो गये दोनों को, मरने मारने पर तुले हुए हैं। जय-पराजय सुदूर खड़ी है, कौन किसका वरण करे, यह निर्णय वे स्वयं भी नहीं कर पा रही है।

कंस ने दोनों कर पर उठाकर १०० योजन ऊपर उछाल दिया शंखचूड़ को और इस परमवीर ने कंस को १० हजार योजन ऊँची सैर करा दी। सारा व्योम काँप उठा। एक-दूसरे को उठा-उठाकर पटकने लगे तो पृथ्वी कम्पायमान हो गई। उसी समय गर्ग मुनि वहाँ पधारे। दोनों ने युद्ध छोड़ उन्हें प्रणाम किया।

गर्ग जी ने विचार किया – इन दोनों का तो कुछ बिगड़ना है नहीं, ये तो वरदान प्राप्त हैं किन्तु इनके कारण विश्व नष्ट हो जायेगा।

गर्ग जी ने कहा – "कंस ! तुमने मात्र एक मुष्टि मारी थी पुरन्दर के चतुर्दन्त ऐरावत को, उसी में जानू टेक दिये थे उसने।

तुम्हारी एक मुष्टि मौषल की तरह जब पड़ती है तो बस फिर मरना ही अच्छा लगता है। तुम्हारा एक घूँसा सहने की ताकत किसी में नहीं है तो तुम्हें कोई पराभूत या मृत्योन्मुख कौन करेगा? और जो करेगा उसे तुम जानते ही हो, वह तुम्हारी ही नाम राशि है – "कृष्ण"।

बड़े-बड़े दैत्य तुम्हारे मुक्के की मार खाकर मृत्यु का ग्रास बन गये किन्तु शंखचूड़ धराशायी नहीं होगा तुमसे। जीवन भर समर चलता रहे तो भी तुम दोनों के मध्य जय-पराजय का निर्णय असम्भव है क्योंकि जो तुम्हारा काल है वो इसका भी है।

जो तुम्हे मारेगा, वही इसे भी ....

अतः तुम दोनों परस्पर मैत्री कर लो।" गर्ग जी का सुझाव प्रिय लगा दोनों को, युद्ध छोड़कर गले लगकर मित्र बन गये।

अब शंखचूड़ को केवल कृष्ण ही कृष्ण सूझ रहा था।

कंस के विशाल प्रस्कंध प्रदेश पर कर-तल रखकर बोला – "मित्र ! अब तुम निश्चिंत रहो, मैं अभी जाकर शत्रु को समाप्त करता हूँ, पर वो कृष्ण होगा कहाँ? " शंखचूड़ के मन में प्रश्नोत्थित हुआ।

"चलो, उस वीणावादक के पास ही चलता हूँ उसे सबकी खबर रहती है कंस तक पहुँचाया तो कृष्ण तक भी पहुँचायेगा।"

शंखचूड़ – "वीणावादक ! कृष्ण कहाँ है? "

नारद – "इस चाँदनी रजनी में तो वो रास कर रहे हैं।"

शंखचूड़ – "रास क्या होता है? "

नारद – "कोटिशः गोपांगनाओं सहित नृत्य।"

शंखचूड़ – "वह योद्धा है या नचकैया।"

शंखचूड़ अतिशीघ्र रासस्थल पर पहुँचा, वहाँ उसे रासेश-रासेश्वरी के दर्शन हुए।

श्री राधयाऽलंकृतवामबाहुं स्वच्छन्दवक्रीकृतदक्षिणांघ्रिम् ।
वंशीधरं सुन्दरमंदहासं भ्रूमंडलैर्मोहितकामराशिम् ॥

(ग.सं.वृं.खं २३/३०)

युगल रसराज का वह नित्य-नव-तारुण्य, राशि-राशि काम का मर्दन कर रहा था।

वाम-नील-कर सरोज षोडश वर्षिया किशोरी के स्कंध पर शोभित है, दक्षिण कर में चिर-संगिनी मुरलिका है, निज वाञ्छानुसार दक्षिण पाद थोड़ा सा टेढ़ा करके उसके अग्रतल का सहारा लिए खड़े हैं।

हास्य युक्त मुख सुधा-वृष्टि कर रहा है, भ्रू-नर्तन पर तो राशि-राशि मदन मोहित है। कोटि- कोटि मदन मदहारी त्रिभुवन-जन-मन-मोहन के साथ रास में दीक्षित लावण्यमयी गोपकुमारियों की ग्रीवा-गति, कटि-स्पन्दन, पद-विन्यास, गति-परिवर्तन के समक्ष समुद्र-सुता (लक्ष्मी) क्या वस्तु है?

शंखचूड़ ने जब सुन्दर-सुन्दर गोपियों को देखा तो सोचा-बड़ी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ हैं। चलो, युद्ध तो फिर बाद में हो जायेगा, पहले इनमें से एकाध को पकड़कर ले चलें, ऐसी सुन्दर रमणियाँ फिर कहाँ मिलेगीं? शंखचूड़ ने शत चन्द्रमाओं के समान उज्जवलकान्ति वाली शतचंद्रानना नामक गोपिका को उठा लिया और भागने लगा।

श्री नारद उवाच –
व्याघ्राननं कृष्णवर्णं तालवृक्षदशोच्छ्रितम् ।
भयंकरं ललज्जिह्वं दृष्ट्वा गोप्योऽति तत्रसुः ॥

(ग.सं.वृं.खं-२३/३३)

काला रंग, व्याघ्र के समान मुख, १० ऊँचे ताड़ के वृक्षों के बराबर उच्च था, जीभ बाहर निकली हुई। विकराल रूप वाले शंखचूड़ को देखकर गोपीदल में खलबली मच गई, सब की सब हा कृष्ण ! हा राम ! पुकारने लगी। उनका करूण क्रन्दन सुनकर श्रीकृष्ण, शाल का विशाल वृक्ष उखाड़कर उसका पीछा करते हुए भागे। शंखचूड़ ने जब पीछे मुड़कर देखा तो सोचने लगा – ये केवल नचकैया ही नहीं है, परमवीर पुरुष मालूम पड़ता है। भीतिवशात् शंखचूड़ शतचन्द्रानना को छोड़कर वहाँ से भागा। इतनी तेज भागा कि भागते-भागते हिमालय की घाटी में पहुँच गया और वहाँ उसने भी एक विशाल शाल का वृक्ष उखाड़ लिया, फिर कृष्ण ने शंखचूड़ पर शालवृक्ष का प्रहार किया, शंखचूड़ ने भी श्री कृष्ण (ठाकुर जी) को कई मुक्के मारे और गर्जना करने लग गया फिर कृष्ण ने उसे पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया। पराक्रमी शंखचूड़ ने भी श्रीकृष्ण को पटक दिया। युद्ध चलता रहा, पृथ्वी काँप उठी तो ठाकुर जी ने सोचा ज्यादा लम्बा युद्ध ठीक नहीं है। पृथ्वी काँप रही है तो प्रभु ने अन्त में एक ऐसा मुक्का मारा कि उसका मस्तक धड़ से अलग हो गया और मस्तक पर जो चूड़ामणि थी उसे निकाल लिया, ठीक उसी तरह निकाल लिया जैसे कोई पुण्यात्मा पुरुष कहीं से निधि प्राप्त कर लेता है। उसके बाद शंखचूड़ के शरीर से एक विशाल ज्योति निकली और श्रीकृष्ण सखा श्री दामा के भीतर विलीन हो गयी।

श्री साँखी रास मण्डल एवं सरोवर

अध्याय – ६१

सहार

ततो सारिकावनोत्पत्तिमाहात्म्य –

श्रावणकृष्णपञ्चम्यां ब्रजयात्राप्रसंगतः ।
यत्रैव सारिकानां च क्रीडानं विरुतं रतिं ॥
पश्यति परमानन्दो राधयाः संयुतो हरिः ।
यतो नाम समुद्भूतं सारिकावनमुत्तमं ॥

श्रावण कृष्ण पंचमी में सारिका वन की यात्रा है। वहाँ श्यामसुन्दर श्रीजी के साथ मुदित होकर सारिकाओं के क्रीड़न तथा मनोहर शब्द को सुनते हैं।

ततो सारिकावन प्रार्थना मन्त्र :-

सारिकाल्हादसौख्याय नानाश्रुतसुखप्रद ।
युगलाय नमस्तुभ्यं रमारमणनामतः ॥

हे रमा रमण युगल सरकार, आप सारिकाओं के सौख्य के विषय हैं, उनको नाना भाँति सुख प्रदान करने वाले, आपको प्रणाम है।

इति मन्त्रं षडावृत्या नमस्कारं समाचरेत् ।
तस्यैव बन्धनो नास्ति सुवाक्यं श्रूयते सदा ॥
दुर्वाक्यं न कदा तस्य श्रवणस्य पथं चरेत् ।

इस मन्त्र के षडावृत्ति पूर्वक नमस्कार करने से बंधन की निवृति और निरंतर प्रिय वाक्य श्रवण करने को प्राप्त होते हैं। उसको कभी दुर्वाक्य श्रवण नहीं करने पड़ते।

श्रीराधाकृष्णयोश्चैव मनसाल्हादसम्भव ।
यतो मानसरो यत्र जायते तन्मनोहरं ॥
नानाहंसवकाकीर्णं कलनिर्ल्हाद सारसं ।
देवांगनासमाकीर्णं देवगन्धर्वसंकुलं ॥

जहाँ देव, देवांगना व गन्धर्व समुदाय से समावृत, श्री राधा कृष्ण के मानसिक आह्लाद से उद्भूत, मनोहर मानसरोवर है। वहाँ अनेक प्रकार के हंस, चक्रवाक, बक, सुन्दर रव युक्त सारस आदि पक्षी गण मनोहर शब्द पूर्वक क्रीड़न करते हैं।

ततो मानसरोवर प्रार्थना मन्त्र :-

भगवन्मनसोद्भूत राधामंदविहासज ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं श्रीमानसरसे नमः ॥

अर्थ – माधव के मन व श्रीजी के मन्द हास्य से समुद्भूत मानसरोवर ! आप तीर्थराज हैं, आपको नमस्कार हैं।

नन्द बाबा के ज्येष्ठ भ्राता श्री उपनंद जी सहार गाँव में रहे थे। यह गाँव सिवार से ५ कि.मी. उत्तर पश्चिम में है।

हाहा वन

हाहा वन का एक नाम देवपुरा भी है –

ततो हाहा वन दर्शन प्रार्थना मन्त्र :-

गोपिकाक्षोभकृत्कृष्णनानानृत्यविधायिने ।
विमलोत्सवरूपाय हाहावन नमोऽस्तु ते ॥

(भविष्योत्तरे)

गोपिकाओं के क्षोभक, कृष्ण के अनेक प्रकार के नृत्य स्थल निर्मल उत्सव रूप, आपको नमस्कार है।

ततो रतिकेलिकूप स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

रतिकेलिसखास्नानकूपतीर्थ नमोऽस्तु ते ।
गंगावेत्रवतीगोदात्रिधाजल स्वरुपिणे ॥

(ब्र.भ.वि)

रति केलि सखी के स्नान से निर्मित गंगा, गोदावरी और वेत्र वती के जल रूप, आपको नमस्कार है।

अध्याय – ६२

भरना खुर्द

सूर्यपुत्री यमुना जी की श्रीकृष्ण भक्ति देखकर सूर्य देव भी ब्रजराज की भक्ति करने यहाँ स्थित सूर्यकुण्ड पर आये थे। इसी स्थल पर श्री किशोरी जी सूर्यपूजा के लिए आया करती थीं और श्री कृष्ण भी पुरोहित बनकर पूजा कराने यहाँ पधारते। इस तरह दोनों का मिलन यहाँ होता।

यमुनाजनकं सूर्यं सर्वरोगापहारकम् ।
मंगलालयरूपं तं वन्दे कृष्णरतिप्रदम् ॥

गौड़ेश्वरसम्प्रदाय में ४ सिद्ध संत हुए हैं, जिनमें से एक श्री गोवर्धन में, एक श्री काम्यवन में, एक रनवारी में और एक छोटे भरने में। यहाँ जो सिद्ध संत हुए हैं, वे एक बार विरह में सूर्यकुण्ड में कूद पड़े तो उन्हें श्रीजी की चन्द्रिका-चिन्ह से युक्त एक पाषाण शिला प्राप्त हुई। श्रीजी ने कहा – “इसमें हमारी चन्द्रिका का चिन्ह है इसके दर्शन करके तुम्हारा विरह शांत रहेगा।” अद्यावधि वह शिला मन्दिर में दर्शनीय है।

राधा कुण्ड के समीप जसुमति सखि का ग्राम जसोती तथा वसुमति सखि का गाँव वसोती है।

बाटी के निकट तोष ग्राम है जो श्रीकृष्ण के प्रिय सखा तोष का गाँव है। जो श्री कृष्ण को नृत्य सिखाते थे।

तोष के पश्चिम में है नाखेत ग्राम।

उधर मथुरा मार्ग पर अडींग गाँव है, जहां श्रीकृष्ण गोपियों से दान लेने के लिए अड़ गए थे। इसके अतिरिक्त कंस की मृत्यु के पश्चात् उसके आठ भाई यहाँ भागकर आ गए थे। जिन्हें बलराम जी ने मारा था।

डिरावली के पास भरना कला ग्राम भी है, जहाँ एक जल प्रवाहित बाँध है।

पाली

भक्तिरत्नाकर अनुसार –

एइ देखो 'पालिग्राम' अपूर्व उदयान ।
पालिता नामेते यूथेश्वरी-वास स्थान ॥

'पाली' गाँव में इस सुन्दर बगीचा को देखो – यहाँ पालिता नाम की यूथेश्वरी का निवास था।

सियानो

अघासुर वध लीला सुनकर सभी ब्रजवासी बड़े प्रसन्न हुए और आश्चर्य करने लगे तथा कहने लगे कि भाई कृष्ण अब सियाना हो गया। सियाना का अर्थ है बुद्धिमान। सियाना के नाम से ही यह गाँव जाना जाता है।

भरना खुर्द – सूर्य मंदिर

भरना खुर्द – सूर्य कुण्ड एवं श्रीजी चन्द्रिका

अध्याय – ६३

कुंजेरा (नवा ग्राम)

कुञ्जों की सघनता यहाँ होने के कारण इसका नाम कुंजेरा (वर्तमान मे नवा ग्राम) पड़ा। यहाँ राधाकुण्ड के कुञ्जों की सीमा है। यहाँ गोपियों ने मिलकर हाथी का आकार धारण किया था तथा श्री कृष्ण उस पर आरूढ़ हुये थे। कुंजर क्रीड़ा से कुंजेरा बना। यहाँ प्राचीन दाऊ जी का मंदिर एवं प्राचीन छतरी है।

अबे लोग कहे कुंजेरा नामे ग्राम ।
ऐथा राधा कृष्णेर विलास अनुपम ॥

(भ.र.)

यहीं के आस पास के गाँव हैं – नगला कासोरिया, भगोसा, मड़ोरा, पलसों।

पलसों

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः।
सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः॥

(भा.१०।३९।३५)

यदुवंश कुलमणि श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरे मथुरा प्रस्थान करने से ब्रज गोपाङ्गनाएँ अत्यधिक विकल हो रही हैं, तब "मैं आऊँगा" दूत के द्वारा यह प्रेम पूर्ण सन्देश भेज कर उनको धैर्य बँधाया।

'परशो' नाम ग्राम एइ देखह अग्रेते ।
परशो नाम हैल जैछे कहि संक्षेपेते ॥
रथे चड़ि कृष्ण मथुराय यात्रा कैला ।
गोपिकार दशा देखि, व्याकुल हैला ॥
लोकद्वारे कहिलेन शपथ खाइया ।
कालि परश्वेर मध्ये मिलित आसिया ।
ए हेतु परशो नाम हईल इहार ॥

(भ.र)

आगे इस परशो (पलसों) गाँव को देखो। जब श्रीकृष्ण रथ में बैठकर मथुरा को निकले, तब गोपियों की दशा को देखकर श्रीकृष्ण व्याकुल हो उठे और उन्होंने कसम खायी कि कल या परशो लौट आयेंगे और सभी से मिलेंगे। इसलिए इस गाँव का नाम परशो हुआ।

सीह

परशो-निकट एइ शी नामेते ग्राम ।
संक्षेपे कहिये जैछे हइलो शी-नाम ॥
एथा कृष्ण चन्द्र धैर्य धरिते ना पारे ।
गोपिकार दशा देखि कहे वारे वारे ॥
मथुरा हइते शीघ्र करिवो गमन ।
सेइ हेतु शीघ्र शी कहये सर्वजन ॥

(भ.र)

परशो (पलसों) के पास यह सीह (शी) गाँव है| गोपियों की दशा देखकर श्रीकृष्ण से यहाँ रहा नहीं गया| बार-बार उन्होंने कहा – "मथुरा से मैं शीघ्र ही लौटकर आऊँगा|" शीघ्र से इस गाँव का नाम शी (सीह) पड़ा।

कोनई ग्राम

श्री राधा प्रतीक्षा में व्याकुल श्री कृष्ण ने किसी सखी को भेजा था कि हमारी प्राणाराध्या आज क्यों नहीं आयी उन्हें ले आओ। जब वह लौटकर आयी तो उसने श्री राधा नाम जैसे ही लिया तो पूरी बात सुने बिना ही उसे अकेले देख बोलने लगे कि क्यों न आई,क्यों न आई ? इसी से इस गाँव का नाम कोनई पड़ा।

कै ना आई दूती रे श्री कृष्ण पूछय ।
ए हेतु क्यों नाई अब कोनई कहे ॥

(भ.र)

सिवार

सिवार के हड़िया वन में पूज्य बाबा महाराज जी के सद्‌गुरुदेव पूज्य श्री प्रिया शरण जी महाराज निवास करते एवं महावाणी का पाठ करते थे।

कुंजेरा – दाऊ जी का प्राचीन मंदिर एवं छतरी

अध्याय – ६४

गोवर्द्धन

गोगोप, ग्वाल के सम्वर्द्धन एवं राधामाधव की दिव्य लीलाओं के आश्रयभूत, श्री गिरिराज जी को ब्रजेन्द्रनन्दन श्री कृष्णचन्द्र ने अपनी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधा की अभीप्सित एकान्त-रासरसस्थली के रूप में श्री गोलोकधाम में विरजा के तट पर प्रगट किया, जो अत्यन्त विस्तृत एवं सैकड़ों शिखरों वाला था, उन्हीं शतश्रृंग, गिरिराज जी का गोलोक से भूतल पर अवतरण हुआ। जब श्रीकृष्ण ने रास-रस के इच्छुक ऋषिगण एवं अनेक अवतारों में श्रीकृष्ण प्रेयसी होने की आकांक्षा से संजोने वाली ललनाओं को फलवती बनाने व भू-भार के हरण का उद्देश्य लेकर भूतल पर आने की इच्छा श्रीजी से व्यक्त की, तो वे वियोग की कल्पना मात्र से विह्वल हो साथ चलने को उद्यत हुईं, परन्तु उन्होंने कहा –

"नाथ ! जहाँ श्री यमुना जी, वृन्दावन तथा गिरिराज जी नहीं हैं, वहाँ मेरा मन सुख की अनुभूति नहीं कर सकता।" भगवान् ने ८४ कोस पर्यन्त भू-भाग, जो विरजा नदी और गोवर्धन पर्वत से युक्त था, पृथ्वी पर भेज दिया।

वैष्णव वार्ता में आता है कि जो जीव गोवर्द्धन आता है, उसे कृष्ण अवश्य मिलते हैं –

डगरि चलि गोवर्द्धन की बाट ।
खेलत तहाँ मिलेंगे मोहन जहाँ गोधन की ठाट ।

(स्वामी परमानंद दास)

ततो गोवर्द्धन प्रार्थना मन्त्र (स्कन्धे) :-

गोवर्द्धन गिरे तुभ्यं गोपानां सर्वरक्षक ।
नमस्ते देवरूपाय देवानां सुखदायिने ।

हे गोवर्द्धन गिरि ! आपको नमस्कार ! आप गोपगणों के रक्षक हैं, देवरूप हैं और देवताओं को सुख देने वाले हैं।

श्रीगिरिराज गोवर्द्धन की उत्पत्ति

गिरिराज गोवर्द्धन की उत्पत्ति में दो लीलाएँ प्रसिद्ध हैं :-

गर्ग संहितानुसार

जब पृथ्वी का भार उतारने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण इस भूतल पर पधारने लगे, तो उन्होंने अपनी प्राणवल्लभा श्रीराधा से कहा – "प्रिये ! तुम मेरे वियोग से भयभीत रहती हो, अतः तुम भी भूतल पर चलो।" श्री राधा बोलीं – "जहाँ वृन्दावन नहीं है, जहाँ यमुना नदी नहीं है, जहाँ गोवर्द्धन नहीं है वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता।"

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ।

(गर्ग.सं.गो.खं.३/३२)

तब श्री राधा रानी की प्रसन्नता के लिए श्री हरि ने यमुना, वृन्दावन, गोवर्द्धन को पृथ्वी तल पर भेजा।

एक समय पुलस्त्य ऋषि नाना तीर्थों में अटन कर रहे थे, उस समय उन्होंने द्रोणाचल के पुत्र गोवर्द्धन को देखा। जो माधवी लता के सुमनों से आवृत्त था, वहाँ वृक्ष फल-पुष्पादि के भार से नत थे, पर्वत पर शान्ति का वास उसे और भी सुरम्य बना रहा था, इस दिव्य सौन्दर्य से आकृष्ट हो मुनि के मन में उसे प्राप्त करने की इच्छा हुई। इसके लिए वे द्रोणाचल के समीप गए। द्रोणाचल ने उनका आदर सत्कार किया। उसके बाद पुलस्त्य जी पर्वत से बोले –"हे द्रोण ! तुम पर्वतों के स्वामी हो। मैं काशी निवासी मुनि, तुम्हारे निकट याचक बनकर आया हूँ। तुम अपने पुत्र को मुझे दे दो, क्योंकि यहाँ अन्य किसी वस्तु से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।" पुलस्त्य जी की यह बात सुनकर पुत्र स्नेह से विह्वल द्रोणाचल के नेत्रों में आँसू भर आये। अवज्ञा के भय से मना भी तो नहीं कर सकते थे। अतः बोले – "हे श्रेष्ठ मुनिवर ! मैं पुत्र स्नेह से आकुल हूँ। यह पुत्र मुझे अत्यंत प्रिय है किन्तु आपके शाप से भयभीत होकर मैं इसे आपके हाथों में देता हूँ।"

तभी गोवर्द्धन ने मुनि से कहा – "हे मुने ! मेरा शरीर ८ योजन लंबा, २ योजन ऊंचा, ५ योजन चौड़ा है। इस विशाल गिरि को आप किस प्रकार ले चलेंगे? "

पुलस्त्य जी बोले – "बेटा ! तुम मेरे हस्ततल पर बैठकर सुखपूर्वक चले चलो।"

गोवर्द्धन ने कहा –" हे मुने ! मेरी एक शर्त है...."

पुलस्त्य – "वो क्या? "

गोवर्धन – "आप जहाँ कहीं भी भूमि पर मुझे एक बार रख देंगे वहाँ से मैं पुनः उत्थान नहीं करूँगा।"

मुनि – "मेरी भी प्रतिज्ञा है कि आपको मार्ग में कहीं नहीं रखूँगा।"

तदनन्तर गोवर्द्धन अपने पिता को प्रणाम करके मुनि के दाहिने हस्ततल पर आरूढ़ हुए। उस समय श्री गोवर्द्धन जी के नेत्र अश्रुपूरित हो गये।

पुलस्त्य मुनि गोवर्द्धन को लेकर चल दिए। चलते-चलते ब्रज मण्डल में जब पहुँचे तो गोवर्द्धन पर्वत को स्मरण आया –

दानलीलां मानलीलां हरिरत्र करिष्यति।
तस्मान्मया न गन्तव्यं भूमिश्चेयं कलिन्दजा॥
गोलोकाद्राधया सार्द्धं श्रीकृष्णोऽत्रागमिष्यति।
कृतकृत्यो भविष्यामि कृत्वा तद्दर्शनं परम्॥
एवं विचार्य मनसा भूरि भारं ददौ करे।
तदा मुनिश्च श्रान्तोऽभूद्भूतपूर्वं गतस्मृतिः॥
करादुत्तार्य तं शैलं निधाय ब्रजमण्डले।
लघुशंकांजयार्थं हि गतोऽभूद्भारपीड़ितः॥

(ग.सं.वृ.ख.२/३८-४१)

यहाँ ब्रज में हमारे स्वामी श्री कृष्ण, प्राणेश्वरी श्रीराधा सहित अवतीर्ण होकर ग्वालबाल, गोपीजन आदि के साथ अनेकों लीला करेंगे। अतः मुझे यहाँ से अन्यत्र नहीं जाना चाहिए। ऐसा मन में विचार करके गोवर्द्धन ने अपना भार बहुत अधिक कर दिया। इससे मुनि थक गए और उन्हें अपनी शर्त याद नहीं रही। उन्होंने गोवर्द्धन को ब्रजमण्डल पर रख दिया और लघुशङ्का करने चले गये, फिर स्नान किया और गोवर्द्धन को उठाने लगे, पर ये क्या? इन्होंने तो हिलना भी बन्द कर दिया, पुलस्त्य जी ने गोवर्द्धन से कहा – "अब उठो" ! मुनि दोनों हाथों से गोवर्द्धन को उठाने लगे, पर उठा न पाये। मुनि गोवर्द्धन से बोले – "हे गिरिश्रेष्ठ ! चलो-चलो, भार अधिक मत बढ़ाओ। मैं जान गया हूँ कि तुम रूठे हुए हो। शीघ्र बताओ तुम्हारा अभिप्राय क्या है? " गोवर्द्धन बोले – "हे मुने ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। आपने ही मुझे यहाँ स्थापित किया है। अब मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार यहाँ से नहीं उठूँगा।" यह सुनकर मुनि क्रोधित हुए और उन्होंने शाप दे दिया – "तू बड़ा ढीठ है। तूने मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया, अतः तू प्रतिदिन तिल-तिलभर क्षीण होता चला जा ! " शाप देकर मुनि काशी चले गए।

आदिवाराह पुराणानुसार

जब श्री राम, सेतु बाँध रहे थे, उस समय श्री राम की आज्ञा से वानरराज श्रीहनुमान जी गोवर्द्धन पर्वत को कंधे पर रख कर आ रहे थे। उस समय देववाणी हुई कि समुद्र में सेतु बन गया है। हनुमान जी ने यह सुनकर, इन्हें यहाँ ब्रजमण्डल पर रख दिया। इसपर हरिभक्त गोवर्द्धन जी ने हनुमान जी से कहा कि आपने भगवान् के चरण चिन्ह से मुझे वंचित किया, अतः मैं आपको शाप दे दूँगा। भयभीत हो, हनुमान जी ने कहा –" हे गिरिवर ! क्षमा कीजिये। द्वापरान्त में प्रभु इन्द्र का गर्व हरण करने के लिए उसकी पूजा का खंडन कर आपकी ही पूजा करायेंगे। इंद्र कुपित होकर ब्रज में उत्पात करने लगेंगे, तो उस समय आप ब्रजवासियों की रक्षा करेंगे। द्वापर के अंत में आपकी इच्छा की पूर्ति होगी।" इस प्रकार कहकर हनुमान जी आकाशगामी होकर श्री राम जी के पास गए और समस्त वृत्तान्त सुनाया। श्रीरामजी बोले – "हे कपिश्रेष्ठ ! आप गिरिराज को जाकर कहिये कि सेतुबंध के लिए लाए गये ये सब पर्वत मेरे चरण स्पर्श से विमुक्त हो गए हैं, किन्तु मैं उस गिरिराज को हस्तकमल के स्पर्श द्वारा पवित्र करूँगा। मैं वसुदेव के कुल में उत्पन्न होकर ब्रज में विविध बालक्रीड़ाएँ करूँगा और गोवर्द्धन पर गौचारण करूँगा।" यह सब वृत्तान्त हनुमान जी ने जाकर गिरिराज को सुनाया, जिसे सुनकर गिरिराज संतुष्ट हो गये।

श्रीगोवर्धन महिमा

गर्ग संहिता

श्रीनारद जी ने राजा बहुलाश्व को श्री गोवर्धन की महिमा का बोध कराया। पावन गोदावरी के तट पर विजय विप्र रहता था। कर वसूलने एक बार मथुरा आया। घर लौटते समय गोवर्धन मार्ग पकड़ लिया, गिरिगोवर्धन की श्यामलोज्ज्वल कान्ति देख मन सहज ही उनकी ओर यंत्रित हो गया। हाथ में एक नील, स्निग्ध पत्थर उठा लिया और मार्ग तय करते हुए जब ब्रज से बाहर आया तो एक भीषणाकृति वाला राक्षस दिखाई दिया। उसका मुँह छाती में, ३ पैर, ६ भुजा, ३ हाथ, लम्बी जीभ, वक्रदन्त, रक्त नेत्र, रक्त केश, वह भूखा राक्षस विजय ब्राह्मण के समक्ष, उसको खाकर अपनी भूख मिटाने हेतु खड़ा हो गया। ब्राह्मण ने भयवश हाथ में जो पत्थर था, वही उस राक्षस को मार दिया, उस गिरिराज-शिला के स्पर्श मात्र से वह राक्षस भगवान् के सारूप्य को प्राप्त हो गया ! हाथ में वंशी, वक्ष पर वनमाला, मस्तक पर किरीट, कान में कुंडल शोभित थे।

बद्धाञ्जलि हो, साभार बोला – "हे मानद ! इस नीलोज्ज्वल-पाषाण के स्पर्श से तुमने मुझे इस अनार्य योनि से मुक्त कर दिया।"

राक्षस के देव बनने पर, ब्राह्मण एक तो पहले ही विस्मित था फिर राक्षस द्वारा जब यह सुना कि गिरि-शिला के स्पर्श का ही यह विलक्षण-चमत्कार है, तो विस्मय का पारावार टूट गया।

विजय – "हे शुभव्रत ! मैं स्वयं जिज्ञासु हूँ ; आप कृपा करके बतायें पाषाण स्पर्श का क्या फल होता है?"

देव – "हे ब्राह्मण ! यह कोई साधारण गिरि-पाषाण नहीं है –

गिरिराजो हरे रूपं श्रीमान् गोवर्द्धनो गिरिः ।
तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥

(ग.सं.गि.ख.१०/१४)

श्री गिरिराज साक्षात् श्रीकृष्ण का तन्वंग है। इनके दर्शन मात्र से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

ऋष्यमूकस्य सह्यस्य तथा देवगिरेः पुनः ।
यात्रायां लभते पुण्यं समस्ताया भुवः फ़लम् ॥
गिरिराजस्य यात्रायां तस्मात्कोटिगुणं फलम् ।
गिरिराजसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥

(ग.सं.गि.ख.१०/२२,२३)

बड़े-बड़े ऋष्यमूक, सह्यगिरि, देवगिरि आदि पर्वतों व सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने पर मनुष्य को जो फल मिलता है, उससे कोटि गुना अधिक फल, गिरिराज गोवर्धन की प्रदक्षिणा से मिलता है।" अतः 'गर्गसंहिता' में घोषणा कर दी: गिरिराज समान प्रशस्त तीर्थ न पहले ही कभी हुआ और न भविष्य में कभी होगा ही –

"गिरिराज समंतीर्थं न भूतं न भविष्यति"

फिर उस देव ने अपना पूर्व चरित्र बताते हुए कहा – "हे ब्राह्मण देव ! पूर्वजन्म में, मैं एक धनी वैश्य था। जुआ, मदिरा का मुझे कुत्सित व्यसन था। अंत में वेश्यागामी बन गया, माता-पिता को गर (विष) देकर समाप्त कर डाला; पत्नी को तलवार की तीक्ष्ण धार से ! एक दिन वेश्या को भी अंधकूप में धकेल समाप्त कर दिया, सैकड़ों लोगों का फाँसी द्वारा अंत कर दिया। धन के लोभ में आकर अनेकों ब्रह्महत्या, क्षत्रिय हत्या, वैश्य हत्या, शूद्र हत्या मैंने कर डालीं।

एक दिन शिकार करने वन प्रान्त में गया, काले सर्प ने मुझे डस लिया और मेरा शरीरान्त हो गया। यमदूतों ने मुझ अत्यन्त पातकी को एक मनवन्तर तक कुम्भीपाक नरक

में डाल दिया। वहाँ से निकलकर एक कल्प तक तप्तसूर्मि नरक की यातनाओं को मैंने भोगा, तत्पश्चात् ८४ लाख योनियों में, प्रत्येक योनि में एक वर्ष तक कष्ट पाता रहा।

तदनन्तर भारत वर्ष में शूकर योनि में जन्म हुआ, उसके बाद १०० बार व्याघ्र बना, १०० जन्म भैंसा, सहस्त्र जन्म तक सर्प योनि में कष्ट पाता रहा, १० हजार वर्ष पश्चात् – जलरहित जंगल में मैं महाखल विकराल राक्षस बना। शूद्र रूप से ब्रज में जाने का दुष्प्रयास किया, तो प्रभु पार्षदों ने मुझे मार-पीटकर वहाँ से भगा दिया और तभीसे मैं यहाँ इस घोर जंगल में रह-रहा हूँ। गिरिराज-शिला का स्पर्श दे, तुमने मेरा उद्धार कर दिया।"

तभी वह देव आकाश से अवतरित रथ पर आरूढ़ हो, भगवद्धाम चला गया। ऐसी अलौकिक महिमा से पूरित हैं – श्रीगिरिराज गोवर्धन।

आदिवाराह पुराण

स्पृश्यति यदि कदाच्छ्रिद्धया हेलया वा।
सकृदपि गिरिराजस्यैक मूर्तिं क्वचिद् यः॥
द्विज सुर नरघाती तस्करोवान्तकाले।
ब्रजति स हरिलोकं स्वेष्टदासत्वमाप्य॥

(आ.वा.पु.)

श्रीगिरिराज और गिरिधर में भेदाभाव है। अतः यदि कोई मनुष्य श्रद्धा अथवा अश्रद्धा पूर्वक भी श्रीगिरिराज जी का स्पर्श कर लेता है, तो वह देवघाती हो, नरघाती हो या अत्यन्त निकृष्ट तस्कर ही क्यों न हो, सीधा प्रभु के नित्य धाम वैकुण्ठ में पहुँचता है। इसमें सबसे बड़ा ज्वलन्त उदाहरण है – वह राक्षस, जो विजय ब्राह्मण द्वारा फेंके गये हरिदासवर्य गिरि-पाषाण से कृष्ण लोक को प्राप्त हो गया। अतः गिरिराज जी को प्रेमीजनों ने प्रिया-प्रीतम की "प्रीति-प्रतिमा" माना है।

श्री मानसीगंगा

"गंगा हरि मानस सौ प्रकटी ब्रज में लहर-लहर लहराय"

गंगे दुग्धमयेदेवी भगवन्मानसोद्भवे।
नमः कैवल्यरूपाढ्ये मुक्तिदे मुक्तिभागिनी॥

(ब्र.भ.वि.)

आपका यह दुग्धमय स्वरूप आज भी अधिकारियों को यदा-कदा प्रत्यक्ष, चर्म-चक्षु गोचर होता है।

"स्नात्वा मानसगंगायां दृष्ट्वा गोवर्धने पापांशोऽपि न तिष्ठति ।"

श्री भगवान् के मानस प्रादुर्भूत इस दुग्धमयी मानसीगंगा में स्नान करके, श्री हरिदेव जी के मनोहर दर्शन, और गिरिराज जी की परिक्रमा करने के बाद, पापांश भी कहाँ ठहर पायेगा?

तभी तो भावुक समुदाय मुखरित हो उठता है –

मानसीगंगा श्री हरिदेव गिरिवर की परिकम्मा देव ।
कुण्ड कुण्ड चिन्नामत लेव अपनौ जनम सफल करि लेव ॥

'वाराहपुराणानुसार' मानसी गंगा के पूर्व में इन्द्रतीर्थ, दक्षिण में यमतीर्थ, उत्तर में कुबेर तीर्थ हैं।

एक बार नंदबाबा को गंगा स्नान की इच्छा हुई, किन्तु नन्दनन्दन नहीं चाहते हैं कि बाबा ब्रज से बाहर जायें, अतः बाबा की बलवती वासना पूर्ण करने हेतु कार्तिक अमावस्या को नन्द-तनय श्री कृष्ण ने मन से कल्मषनाशिनी श्री गंगा जी का अभ्युदय किया। अतः इनका नाम "मानसी गंगा" हुआ।

बोलो श्री मानसी गंगा की ऽऽऽऽ जय !

मानसी गंगा का उज्ज्वल स्वरूप दर्शन कर ब्रजवासियों का मन आनन्द पूरित हो गया, सबने नन्द बाबा सहित मानसी गंगा में स्नान किया और दीपदान किया। मानसी गंगा में दीपों की दीप्ति ऐसी प्रतीत होने लगी मानो मार्ग भूल गगन के तारे गंगा में उतर आये हैं।

भरतपुर नरेश सूरजमल ने भी दिल्ली पर की गयी चढ़ाई के अवसर पर प्राप्त अपार धन-सम्पति का विजयोत्सव मनाते हुए श्री मानसी गंगा में दीपदान किया था। आज भी दीपावली की कार्तिक अमावस्या पर श्रद्धालु भक्तजन दीप प्रज्ज्वलित कर मानसी गंगा को सज्जित सुशोभित करके द्वापर कालीन प्राकट्योत्सव को बड़े उत्साह से मनाते हैं। मानसी गंगा, ब्रज-बाह्य गंगा से अधिक महिमामयी है, क्योंकि वह 'चरण गंगा' है और यह 'मानसी गंगा'। यहाँ का माहात्म्य तो ये है –

"गंगा नाम लियै तर जावै न्हावे ते प्रभु पाय"

यहाँ प्रिया-प्रियतम विदग्धा सखी समूह सहित नित्य-नवीन लीलाओं का संपादन करते हैं। कभी जलक्रीड़ा, तो कभी नौका विहार। गुसाँई 'श्रीरघुनाथदास' जी ने इन ललित-केलि विलासों का साक्षात्कार किया।

प्रथम मत

भयाक्रांत ब्रजवासीगणों के रक्षार्थ श्री कृष्ण ने वृषभासुर का वध कर दिया। गौ भक्त गोपीवृन्द स्वामिनी श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण की भर्त्सना करने लगे। तुम्हें वृष हत्या लगी है, अतः विलग रहो हमसे ! ये चपल-चकोर भला, कैसे वियुत रह सकते हैं, गौरचन्द्र से?

झट, वृषहत्या से विमुक्त होने हेतु मन से पाप नाशिनी श्री मानसी गंगा को प्रकट कर दिया।

श्री गिरिराज जी की स्नेह युक्त गोद में इस पावनी गंगा को आमेर नरेश मानसिंह के पिता राजा भगवानसिंह ने पत्थरों द्वारा चारों ओर से बाँध कर एक विशाल तालाब का रूप दिया था। उनके पश्चात्, राजा मानसिंह ने इसका नवीनीकरण कराया। भरतपुर के प्रतापी राजा जवाहर सिंह ने भव्य महल व कलात्मक छतरियाँ इसी स्थान पर बनवाई। राजा सूरजमल की महारानी किशोरी रानी का महल एवं उनके निकटवर्ती ठाकुर श्री किशोरी श्याम जी का मन्दिर इसी क्रम में बनी मानसी गंगा की तटवर्ती इमारतें हैं, जिनका निर्माण स्वयं में गर्वित होता हुआ दिखाई पड़ता है। गर्ग संहितानुसार ये श्री गोवर्धन के युगल-नयन हैं।

द्वितीय मत

एक बार गंगा जी के मन में इच्छा हुई, कि मेरी अनुजा यमुना कितनी सद्भाग्या है, जो सखी-सहचरी समूह सहित युगलसरकार, इस स्नेह भाजा यमुना में जल केलि करते ही रहते हैं। क्या कभी मेरा भी भाग्योज्ज्वल होगा? गंगा जी ने अनुजा यमुना से निवेदन किया, यदि तुम चाहो तो मेरा भी भाग्योदय सम्भव है। कृष्ण प्रेयसी कालिंदी ने गंगा जी की इच्छा पूर्ण करने के लिए श्री ठाकुर जी से प्रार्थना की। भक्तवत्सल ने गंगा जी का भी मन से आह्वान कर उन्हें ब्रज में यहाँ बुलाया और चतुरा गोपियों के साथ जल क्रीड़ा, नौका लीलादि करके गंगा जी को भी संतुष्ट किया।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने स्वप्रणीत "श्री गोवर्धनाष्टकम्" में मानसी गंगा में हुई नौका लीला का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है –

यत्रैव गंगामनुनावि राधामारोह्य मध्ये तु निमग्ननौकः ।
कृष्णो हि राधानुगलो बभौ स गोवर्धनो मे दिशतामभीष्टम् ॥

(गोवर्धन अष्टक श्लोक सं.७)

श्री ठाकुर जी नाविक बनकर नौका खे रहे हैं, विदग्ध तो हैं ही। कभी-कभी नौका को जानबूझकर डगमगाने लगते हैं, तो राधारानी भीतिवशात् आलिङ्गनबद्ध हो जाती हैं।

आषाढ़ पूर्णिमा

मानसी गंगा के पावन पर्वों में आषाढ़ पूर्णिमा का दिवस बहुत महत्त्व का है। वैष्णव परम्परा में यह दिवस गुरुपूर्णिमा या व्यासपूर्णिमा नाम से ख्यात है, जिसके दो प्रधान कारण हैं –

प्रथम – श्री भगवान् के चौबीस अवतारों में परिगणित श्रीमत्श्री कृष्ण द्वैपायन व्यासदेव इसी तिथि को प्रकट हुए थे, जिनके द्वारा प्रणीत श्रीमद्भागवत् महापुराण समग्र जग के लिए परमोपादेय है। अतः आज के दिवस को साभार, भक्तजन व्यासपूजा अर्थात् गुरु पूजा कहते हैं।

द्वितीय – श्री मन् चैतन्य देव के आज्ञावर्ती श्री सनातन गुसाँई जी ने मस्तक मुंडन कराकर मानसी गंगा के उत्तर तटवर्ती श्री चकलेश्वर में भजन किया। आप प्रतिदिन सव्रत गिरिराज जी की परिक्रमा लगाते। आज के दिवस सम्वत् १६११ वि. में आपने नित्य धाम गमन किया तब अनुयायियों ने सिर मुंड़वाकर मृदंग, ढोल, झांझ व मंजीरों से अत्यंतोत्साह सहित विमान में आपके पार्थिव को लेकर नृत्य करते हुए मानसी गंगा की प्रदक्षिणा की थी। अतः ब्रजमण्डल में यह पावन पर्व 'मुड़ियापूनो' के नाम से सब जानते हैं। आज भी इस पावन पर्व पर डोले में श्री मन् महाप्रभु व श्री रूप-सनातन जी के चित्रपट लेकर गौड़ीय वैष्णव समूह बड़े उद्दाम वेग से नृत्य करते हुए –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

उच्च स्वर से युगल महामंत्र का गान करते हुए मानसी गंगा की परिक्रमा जब लगाते हैं, तो सारा वातावरण विशुद्ध भक्ति से अवगुंठित हो जाता है। श्री वल्लभ सम्प्रदाय के अष्ट महाछाप कवियों में 'और कवि गढ़िया नंददास जड़िया' इस उक्ति से सम्मानित श्री नंददास जी ने भी यहीं श्री मानसीगंगा के तट पर निर्मित मनसादेवी मन्दिर के समीपस्थ अश्वत्थ वृक्ष के नीचे पर्ण कुटी में निवास किया। विलक्षणताओं से पूरित आपका जीवन चरित जीवों को लक्ष्य देने वाला है। वस्तुतः इन महान आत्माओं का आविर्भाव 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' ही होता है।

श्री नन्द दास जी

भोज सखा के अवतार – श्री नन्ददास जी

१६-१७ वीं शताब्दी में श्री वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टमहाछाप के सुकवियों में आपका स्थान है। जिसमें से ४ रत्न तो श्री वल्लभ प्रभु के शिष्य व अन्य ४ रत्न गुसाँई श्री विट्ठलनाथजी के शिष्य हुए।

आचार्य चरण श्री वल्लभ प्रभु के – श्री सूरदास जी, श्री कुम्भनदास जी, श्री परमानन्द दास जी एवं श्री कृष्ण दास जी। गुसाँई विट्ठलनाथजी के श्री गोविन्द स्वामी, श्री नन्ददास जी, श्री छीतस्वामी जी एवं श्री चतुर्भुज दास जी।

बहुमुखी प्रतिभाशाली, अष्टमहाछाप के नागर कविता व पदावली निर्माता कवियों में सर्वसम्मानित स्वनामधन्य श्री नन्ददास जी महाराज हैं। आपका जन्म वि.सं. लगभग १५९० में सनाढ्य ब्राह्मण कुल में शूकर क्षेत्र (सोरों) के निकट जिला एटा के रामपुर ग्राम में हुआ था। आपकी रचनायें अतिशय श्लाघनीय हैं, न केवल सर्वसाधारण, प्रत्युत बड़े-बड़े रसिकजनों ने आपकी भक्ति प्राधान्य काव्य प्रवीणता को भूरि-भूरि धन्य कहा है –

श्री ध्रुवदास जी का कथन –

नन्ददास जो कछु कहयौ राग रंग सौ पागि।
अच्छर सरस सनेहमय सुनत श्रवण उठि जागि।
रमन दशा अद्भुत हुती करत कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही बहत नैन जल धार॥
बावरो सो रस में फिरैं खोजत नेह की बात।
आछे रस के वचन सुनि बेगि विवस है जात॥

श्री नाथ जी का कथन –

श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिकसु प्रभु हित रंगमग्न॥
लीला पदरस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।

आपकी १४ रचनायें लोक प्रख्यात है। कतिपयजनकथनानुसार इनमें ११ कृतियाँ आपकी व ३ किन्हीं अन्य की है। रास पंचाध्यायी, सिद्धांत-पंचाध्यायी, अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी, रूपमंजरी, विरह मंजरी, रस मंजरी, भ्रमरगीत, श्याम सगाई, श्री गोवर्धन लीला, रुक्मिणी-मंगल, श्री सुदामा चरित्र, भागवत् दशम स्कन्ध एवं पदावली, इन १४ रत्नों के निर्माता आप ही हैं।

रूप मंजरी

कृष्ण भाव भाविता, भक्ता रूप मंजरी के नाम पर ही आपने अपने इस काव्य का प्रणयन किया। दो सौ बावन वैष्णववार्तानुसार – हिन्दू राजा की पुत्री रूप मंजरी का विवाह अकबर बादशाह के साथ हुआ। भक्ता रूप मंजरी का व्रत था, मैं देह संस्पर्श न कभी करुँगी और न ही करने दूँगी। अतः अकबर भी दृष्टि मात्र से ही उनका उपभोग करता, कभी स्पर्श नहीं करता। भक्ता रूपमंजरी में दिव्य शक्ति थी, अपनी प्रगल्भ भक्ति के प्रभाव से प्रतिदिन स्वमुख में एक गुटका रखकर श्री नन्ददास जी के समीप सत्संग में जाया करती थीं। उस गुटका के प्रभाव से प्रतिदिन गमन-प्रत्यागमन सहज ही हो जाता। एक समय अकबर के सन्मुख किसी ने यह पद गाया –

देखो देखो री नागर नट निरतत कालिन्दी तट ।
गोपिन के मध्य राजै मुकुट-लटक ॥
काछिनी किंकनी कटि पीताम्बर की चटक ।
कुण्डलन किरन रवि रथ की अटक ॥
तत थेई तत थेई सबद सकल घट डरप ।
उरप तिरप गति पद की पटक ॥
रास मध्य राधे राधे मुरली में एक रट ।
'नन्ददास' गावैं तहाँ निपट निकट ॥

यह पद सुनते ही शंकित हो, अकबर ने पूछा – "क्या ये सत्य है कि जिसने यह गाया है, वह लीला में निकटस्थ ही था, या फिर अनृत कह दिया......."

"अभी वे विद्यमान हैं, अतः उन्हीं से पूछा जाय", किसी एक ने कहा।

जिज्ञासु अकबर सपरिवार ब्रज आया। नन्ददास जी को बुलवाने हेतु बीरबल को भेजा, लोकहितनिरत नन्ददास जी ने यह कहकर बीरबल को लौटा दिया कि २ दिन बाद आयेंगे। किन्तु जब आपने यह सुना, कि भक्ता रूपमंजरी भी आयी हुई हैं, तो आप सीधे बिल्छू कुण्ड पहुँचे, जहाँ वे एकान्त में बड़े लाड़ से अपने ठाकुर जी को भोग लगा रही थीं। वहाँ आपने एक पद गान किया, अनन्तर आप दोनों ने प्रभु प्रसाद ग्रहण किया।

"मुझे सदा के लिए श्री गिरिराज जी और मानसी गंगा का सान्निध्य सुलभ हो जाय", रूपमंजरी ने अपना यह अभीष्ट व्यक्त किया।

नन्ददास जी ने कहा – "ठाकुर भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं ; चिन्ता न करो।"

नन्ददास जी स्नान हेतु मानसी गंगा आये। बीरबल सविनय, सादर उन्हें बादशाह अकबर के पास ले गया। अकबर जिज्ञासु था। अतः पूछा – "पद में जैसा आपने कहा,

'नन्ददास गावै तहाँ निपट निकट' क्या इस रास लीला काल में, आप समीपस्थ थे, अथवा कोरी कल्पना मात्र है? "

"बस, इतनी अल्प सी बात, इसे रूप मंजरी जी स्पष्ट करेगीं" नंददास जी ने कहा।

बादशाह ने रूपमंजरी जी के समक्ष जब यह शंका रखी, अनुक्षण स्वदेह त्याग, वे नित्यलीला में प्रविष्ट हो गयीं। ..... अकबर ने आकर नन्ददास जी को यह घटना क्रम बताया और अपनी शंका के समाधान की इच्छा की।

तत्क्षण नन्ददास जी भी पार्थिव से पृथक् होकर, नित्य लीला में प्रविष्ट हो गये। चकित-विस्मित-थकित अकबर को बीरबल ने समझाया – "प्रेम अत्यन्त गुह्य है। श्री नन्ददास जी तो सर्वदा 'निपट-निकट' होकर ही पद गाया करते थे। इस अवगुण्ठित रहस्य को अनधिकारी के सम्मुख प्रकट करने की इच्छा न थी, उन दोनों की। अतः प्राण परित्याग किया।"

जदपि अगम ते अगम अति निगम कहत है जाहि ।
तदपि रँगीले प्रेम ते निपट निकट प्रभु आहि ॥

(नन्ददास कृत रूपमंजरी)

श्री सच्चिदानंद शुक्ल के २ पुत्र थे –

१. आत्माराम
२. जीवाराम

आत्माराम जी के श्री तुलसीदास जी।

जीवाराम जी के श्री नन्ददास जी।

इस प्रकार मानस के प्रणेता गुसाँई श्री तुलसी दास जी महाराज आपके चचेरे अग्रज थे। इस विषय में नाना मतान्तर हैं। आपके पिता स्वनामधन्य श्री जीवाराम, माता श्रीमती कमला देवी थीं। विप्र मूर्धन्य अलौकिक आभा-प्रभा-प्रतिभा युत आपने कविवर अष्ट सखान्तर्गत (अष्टछाप) में भी विशेष सम्मान पाया है। आपकी उच्चतम कृति निगूढ़ाति निगूढ़ाशयों से पूरिता पद्यात्मक "रासपंचाध्यायी" अध्येताओं के हृदय में भावोद्दीपन करती है। जिस शब्द को पढ़ो वही दृगान्चलों पर नृत्य करने लगता है।

आपकी रसप्रचुर, रसोत्कृष्ट, सारगर्भित, भावपूरित कृतियाँ भावुकों के भगवत् परक भावों का न केवल भरण-पोषण करती हैं ; प्रत्युत उनके भाव सरोरुह को मुकुलित कर देती हैं। आपकी इन जगद्स्तुत्य, हृदयस्पर्शी, भावाब्धि पूरित, भावाभिवृद्धि करने वाली, आपके अंतर्निहित भावों को कहने वाली श्रेष्ठतम कृतियों के विषय में, यथाशक्य कहने के उपरान्त भी मनस्तोष नहीं होता। आपकी उच्चतम कृतियों के विषय में भगवदीयों का कथन है कि, "श्रीनन्दास जी की वृत्ति आचार्य चरण श्री वल्लभ प्रभु की सुबोधिनी जी का संक्षिप्त सार है।"

यह कथन अतिशयोक्ति नहीं है अपितु यथार्थ है।

आपका एक व्यसन

शूकर क्षेत्र के निकट श्री नृसिंह जी की पाठशाला में आपका प्रारम्भिक अध्ययन चला। अनन्तर आप काशी आ गये, यहाँ पूर्व ही श्री तुलसीदास जी महाराज, श्री शेष सनातन जी से अध्ययन कर रहे थे, आपने भी किया। अतः श्री तुलसीदास जी को अपना बड़ा गुरु भाई मानकर, आपने कहा –

श्रीमत् तुलसी दास स्वगुरू भ्राता पद वन्दे ।
शेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाय अनन्दे ॥

यह पद परस्पर में अत्यधिक प्रेम का परिचायक है।

२५२ वैष्णव वार्ता में लिखा है कि श्री नन्ददास जी लौकिक विषयासक्त थे किन्तु पुष्टिमार्गाचार्यों का तो कथन है –

"रसिकाः काम वर्जिताः"

काम वर्जित ही परम रसिक है। (जीवन के पूर्वभाग में विषयासक्ति व उत्तरभाग में कृष्णासक्ति यह सब केवल प्रभु इच्छा से ही है। जय-विजय को शाप मिला उसके पीछे भी प्रभु इच्छा ही मुख्य थी।)

विषय विदूषित जो हैं, वो रसिक नहीं हैं और फिर नन्ददास जी तो परमरसिक थे। आपके चर्म चक्षु सौन्दर्य-पीयूष व्यसनी अवश्य थे किन्तु यह व्यसन सर्वथा असामान्य था। विषय लिप्त मति के लिए श्री नन्ददास जी का रसासिक्त हार्द अगम्य है। रूप रसिक नन्ददास जी का रूप में अपूर्व राग था। आप जहाँ भी सुंदरता देखते, दूषण-विहीन वृत्ति से सहज आकृष्ट हो जाते।

एक समय भक्तों का समूह मथुरा-द्वारिका की यात्रा करने जा रहा था, आपकी भी इच्छा हुई मैं भी चलकर मथुरा भूमि का दर्शन करूँ, चल पड़े। मथुरा धरा में जब प्रविष्ट हुए, तो मन में स्वतः ही घनानन्द की अनुभूति होने लगी –

"पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः"

(भा.४/०८/४२)

यहाँ के कण कण में आज भी रासेश की अद्भुत लीलाएँ रुपायमान हो रही हैं। क्षण-क्षण में उनका मधुर मधुर वदन, मधुर हँसन साकार हो रहा है। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीकरण में उनकी नीलोज्ज्वल कान्ति झिलमिलाती है!

द्वारिकेश के भी दर्शन करने है; किन्तु मन, मथुरा से जाने को तैयार हो तब तो! ब्रज के जीव थे, अतःअटक गये ब्रज में।

सोचा, चलो एकबार रणछोड़ राय के दर्शन कर आऊँ, फिर आजन्म ब्रजवसुन्धरा में ही रहूँगा। द्वारिका के लिए चले, तो मार्ग ही भटक गये। सिंहनद ग्राम जा पहुँचे, वहाँ आपके रूप रस पिपासु चक्षु एक क्षत्राणी पर पड़े, वह अपनी अट्टालिका पर सघन, सुकोमल, स्निग्ध भ्रमर कृष्ण केशराशि को सुखा रही थी, उस पर दृष्टि पड़ते ही मोहित हो उन्हें लगा, कि अब तक तो मैंने जो भी रूप देखा, वह एक आभासमात्र था किन्तु आज तो भुवन-विमोहिनी सौन्दर्य-सुधा सिन्धु, सर्वचित्ताकर्षक-चित्ताकर्षिणी .....अहा हा ! दिव्य रूप-रस का पान किया इन नयनों ने। यह रूप इस लोक का हो, ऐसा सम्भव नहीं है। अवश्य ही यह मेरे इष्ट के रूप से संपृक्त है। कई दिन हो गये, क्षत्राणी के मुख दर्शनोपरांत ही, आप वारि (जल) स्वीकार करते।

गाँव में जब यह बात चर्चा का विषय बन गयी, तो उस घर के सदस्य क्षत्राणी को लेकर, जल्दी ही भोर में गोकुल के लिए प्रस्थान कर गये कि जब यहाँ नहीं रहेंगे कुछ दिन, तो स्वतः लौट जाएगा। मध्याह्न में जब कुटिल गतिका कृष्णवर्णा, कलिन्द-तनया कालिन्दी के कूल पर पहुँचे, तब तक पीछे क्या देखते हैं – श्री नन्ददास जी भी पीछे- पीछे चले आ रहे हैं। क्षत्री परिवार झट, नौका में बैठकर उस पार को गया और १० रु. अधिक देकर, नाविक से मना कर दिया, किन्तु अल्पकाल के लिए आपका चित्त विक्षिप्त हो गया।

श्री यमुना जी के तट पर बैठे तो श्री यमुना जी की कृपा आपको प्राप्त हो गयी और वहाँ कई पदों द्वारा आपने श्री यमुना जी का स्तवन किया –

नेह कारनै जमुना जू प्रथम आई।
भक्त की चित्त वृत्ति सब जान कै ताही ते अति आतुर जो धाई॥
जैसी जाके मन हती इच्छा ताकी तैसी साध जो पुजाई।
'नन्ददास' प्रभु ताहि पै रीझत जमुना जू के जस जो गाई॥

जो जमुना जमुने जु गावै।
सेस सहसमुख गावत निसिदिन पार न पावै॥
सकल सुख देनहार तातैं करो।
उच्चार कहते ही बार-२ भूलि जिन जावो।
'नन्ददास' की आस जमुने पूरण करी।
ताते कहूँ घरी-घरी चित्त लावो॥

उधर, वह क्षत्रिय परिवार जब श्री गोकुल पहुँचा, राजभोग का समय था, श्री नवनीत प्रिया जी की बाँकी-झाँकी का दर्शन कर, गुसाँई जी ने सबके लिए प्रभु प्रसाद की पातर लगवायीं, एक पातर अधिक लगायी। क्षत्री ने कहा – "महाराज ! हम तो तीन, यह एक पातर ..."

गुसाँई जी – “यह एक पातर उस नन्ददास ब्राह्मण की है, वे विप्र कहाँ भोजन करने जाएँगे।” (क्षत्री के लज्जित नयन, नत हो गये)

गुसाँई जी ने क्षत्रिय परिवार को समझाया कि वह कोई विषयी जीव नहीं है और श्री नन्ददास जी को बुलवाया। आकर जैसे ही उन्होंने उस अचिन्त्य-अनन्त-अनिर्वचनीय-अद्भुत-अलौकिक-लावण्य-सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्य परिपूर्ण यशोदोत्संग ब्रजानंदकन्द नन्दनन्दन के दर्शन किये फिर अब कहाँ का सौन्दर्य शेष रह गया था?

"सुन्दरता तिहुँ लोक की ले ब्रज में आनी"

अथवा

या छवि पे रसखान अब वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं पाइ रहे सो खोज॥

अथवा

जाकी सुंदरता जग बरनत।
मुख छवि लखि द्युति चन्द्र लजावै॥

अथवा

जो कोउ कोटि जन्म लगि जीवे कोटिक रसना पावे।
तउ वह रुचिर वदनारविंद की शोभा कहत न आवे।
देवलोक भुवलोक रसातल कवि कुल मति अति डरिये।
सहज माधुरी अंग-अंग की कहो कासों पर तरिये।

गुसाँई जी की कृपा हुई, नन्ददास जी के ऊपर। वि.सं. १६०७ के लगभग ब्रह्म सम्बन्ध हुआ और श्री विष्णुदास छीपा के स्थान पर अष्टसखाओं में आपकी नियुक्ति हो गयी। अब श्रीनाथ जी के सम्मुख, आपकी प्रतिदिन कीर्तन सेवा रहती। एक मास आप गोवर्धन में श्रीनाथ जी के पास रहते, एकमास गोकुल में श्री नवनीत प्रिया जी के पास रहते।

एक दिन मन में विचार आया, बिना भक्त सेवा के भक्ति में दृढ़ता नहीं आती है। अतः परासौली में आपने षड्मास श्री सूरदास जी का संग किया। श्री तुलसी दास जी को जब मालूम हुआ कि श्री नन्ददास जी ने गुसाँई विट्ठलनाथ जी की शिष्यता स्वीकार कर नाथ जी की कीर्तन सेवा सम्भाल ली है तो आप बड़े प्रसन्न हुए और एक पत्र लिखकर भेजा –

घर कौ परनौ परिहरयो कहौ कौन उपदेश।
तुलसी यासों जानिये नहीं धर्म को लेश॥

अर्थात् – नन्ददास जी ! रामोपासना छोड़कर, आपने दूसरी उपासना स्वीकार कर ली, यह तो एक स्त्री के द्वारा अपना पातिव्रत धर्म नष्ट करने के समान है।

उत्तर में श्री नन्ददास जी ने लिखकर भेजा –

हम चाकर श्री रघुनाथ के जन्म जन्म के दास ।
रूप माधुरी मन हरयौ डार प्रेम की फांस ॥

अर्थात् – हमारा विवाह तो श्री रघुनाथ जी से ही हुआ था किन्तु अधिकार हमारे ऊपर श्रीकृष्ण ने कर लिया है। रघुनाथ जी एक पत्नीव्रत हैं, अनेकों को नहीं सम्भाल सकते किन्तु श्री कृष्ण तो १६ सहस्र एक सौ आठ महीषियों के पति है अर्थात् अनेकों को सम्भालने वाले हैं।

२५२ वैष्णववार्तानुसार –

गुसाँई तुलसीदास जी श्री गोवर्धन में आये, नन्ददास जी से मिलने। श्री गोविन्द कुण्ड पर दोनों मिले, बातें की। बात ही बात में गो. तुलसीदास जी बोले –

धाम रुचै तो रहहु अयोध्या पुरी रुचै रहु काशी ।
वन रुचै रहिये दण्डकवन गिरि कामद अविनाशी ॥

झट, नन्ददास जी बोले –

जो गिरि रुचै तो बसै गोवर्धन गाम रुचै तो बसो नँदगाम ।
नगर रुचै तो बसौ मधुपुरी शोभा सागर अति अभिराम ॥
सरिता रुचै तो बसौ श्री यमुना तट सकल मनोरथ पूरन काम ।
'नन्ददास' कानन रुचै तो बसौ भूमि वृन्दावन धाम ॥

यह सुनकर तुलसी दास जी का कथन था –

कहा कमी श्री रघुनाथ के छांड़ी कुल की कानि ।
मन अनुरागी है गयौ सुनि मुरली की तान ।

नंददास जी बोले –"भैया ! भूल तो आप लोगों ने की जो मेरा नाम, नंददास रखा, नन्ददास नाम होने पर नन्द-तनय का अधिकार हो जाना, स्वभाविक है। पहले ही नाम दशरथ दास रखते, तो कदाचित् दशरथ नन्दन का अधिकार होता।"

ये तो मात्र प्रेम की वार्तायें थीं।

वस्तुतः दोनों भक्तों के लिए राम-कृष्ण अभिन्न थे।

नन्ददास जी ने वहाँ एक पद गाया भी –

रामकृष्ण कहिये उठि भोर ।
वे अवधेश धनुष कर धारैं, ये ब्रज जीवन माखन चोर ॥
उनके छत्र चँवर सिंहासन भरत शत्रुघ्न लछिमन जोर ।
इनकै लकुट मुकुट पीताम्बर नित गायन संग नन्द किशोर ॥
उन सागर में शिला तराई इन राख्यौ गिरि नख की कोर ।
'नन्ददास' प्रभु सब तजि भजिये जैसे निरखत चन्द्र चकोर ॥

वि.सं.१६४० के लगभग यहीं मानसी गंगा के तट पर अश्वत्थ-वृक्ष ताल में आपने इस स्थूल देह को छोड़ नित्य धाम में प्रवेश किया। मानसी गंगा के पूर्व-दक्षिण कोने पर श्री वल्लभघाट है। यहाँ छौंकर के वृक्षतल में श्री मद् वल्लभाचार्य जी की बैठक है। इसी स्थान पर श्री मन्महाप्रभु चैतन्य देव से आपकी भेंट हुई थी। दो महज्जनों का मिलन-स्थल निश्चित ही पूज्यनीय है, प्रणम्य है, महामहिमान्वित है।

निकटस्थ दर्शनीय स्थल

मानसी गंगा के पूर्व में – श्री गिरिराज मुकुट-मुखारविन्द, प्राचीन श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, श्री किशोरीश्याम का मन्दिर, श्री गिरिराज मन्दिर, श्री मन्महाप्रभु जी की बैठक, श्री राधाकृष्ण मन्दिर।

मानसी गंगा के पश्चिम में – श्री गिरिराज महाराज (साक्षी गोपाल), श्री विश्वकर्मा, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर।

मानसी गंगा के उत्तर दिशा में – श्री राधावल्लभ, श्री नरसिंह, श्री श्यामसुन्दर, श्रीबिहारी जी, श्रीलक्ष्मीनारायण, श्री नाथ जी, श्रीनन्द बाबा मन्दिर, श्रीराधारमण जी नूतन मन्दिर, श्री अद्वैत दास बाबा की भजन कुटी, श्रीराधागोविन्द जी भागवत भवन, श्री चकलेश्वर महादेव, श्री महाप्रभु मन्दिर, श्री रास कुण्ड, झूलन क्रीड़ा स्थान, सिद्ध हनुमान मन्दिर।

मानसी गंगा के दक्षिण में – श्रीहरिदेव मन्दिर, श्री ब्रह्म कुण्ड मन्दिर, श्री मनसादेवी मन्दिर, श्री गोरे दाऊ जी, श्री गन्धेश्वर महादेव, श्री यमुना मोहन, श्री बिहारी जी।

श्रीगिरिराज लीलायें

श्रीगिरिराज जी की भूमि में सख्य, दास्य, वात्सल्य, श्रृंगार आदि अनेकों रसों की अगणित लीलायें हुई हैं।

रसिकों की वाणी में सख्य रस –

बोलत कान्ह बुलावत गैया ।
गिरि गोवर्धन ऊपर ठाढ़े कर पीताम्बर लैया ॥
लागी भूख पियो चाहत है याको पय मथि घैया ।
धार कर देत सब ही ग्वालन कूँ तब ही छाक पठैया ॥
तेहि अवसर ग्वालिन वन आई दधि ओदन विधि ठैया ।
भोजन करत सुरत जब कीनी प्रिय 'दयाल' बलि जैया ॥

गौचारण के लिए गये हुए, सब गोप बालकों को भूख लगी।

मधुमंगल – "कन्हैया ! अब तो सूर्य भी सीधा हो गया, पर छाक नहीं आई और ये भूख बार बार मोदक की याद दिलाती है; अब तो तू ही कुछ कर ! "

अंशु – "हाँ भैया ! मेरा पेट भी पिचककर कमर से चिपक गया है।" क्षुधा पीड़ित गोपबालों की क्षुधा निवारण हेतु कृष्ण गोवर्धन शिखर पर चढ़ गये। कंकण सज्जित वाम कर कटि-तट पर रखे हुए, दक्षिण हस्त में अपना रेशमी पट-पीत लेकर उसे घुमाते हुए झाला देकर अपनी अरुणा, तरुणा, नन्दिनी, कामदा, कपिला, पद्मगन्धा ..... आदि गायों को बुला रहे हैं। संकेत पाते ही बड़े-बड़े काले श्रृंगों वाली गायों ने एकबार अपना शरीर जोर से हिलाया, पूँछ ऊपर उठायी और द्रुत गति से दौड़ पड़ीं। उनके गले में बँधी क्षुद्र घंटिकायें मधुर ध्वनि करते हुए नाचने लगीं। गायों में मानो प्रतिस्पर्धा थी कि कौन पहले गोपाल को पायेगी ..... !

सबसे पहले नन्दिनी पहुँची, इसका तो एक ही काम है, कन्हैया के पीछे जाकर खड़ी हो जाती है सदा और वे आश्रयदाता सदा इसीके पेट से पीठ सटाकर खड़े होते हैं : मानो नन्दिनी के आश्रय के बिना ये खड़े होने में भी सक्षम नहीं हैं।

"गोपाल के पास पहुँचकर कुछ तो उनका कोमल गात्र चाट-चाटकर श्रान्ति दूर करने लगीं, कुछ बार-बार मुड़कर अपने दुग्ध पूरित भारी स्थूल-थनों की ओर देखती; फिर कन्हैया की ओर देखती मानो कह रही हो – गोपाल ! हम आ गई हैं अब तुम दुग्ध पी लो।"

कान्हा को गो दुहन बहुत प्रिय है, नन्दसदन में तो कभी अवसर मिलता नहीं। अतः वन से ही अपने मनोरथ पूर्ण करके घर जाते हैं। दुहनकाल में श्री कृष्ण की कोमलाङ्गुलियों का थोड़ा-सा स्पर्श प्राप्त होता है कि गो स्तनों से स्वतः दूध की मोटी धारा गिरने लगती है। इनका दुग्ध समाप्त ही नहीं होता, कान्हा को अपनी दोहनी ही नीचे से हटानी पड़ती है। वस्तुतः वात्सल्य, वस्तु का विस्तार कर देता है।

कान्हा – “भद्र, तोक ! ये लो दुग्ध । अब इसे मथो और घैया निकालो ।” कच्चे दूध का मथित, परिष्कृत रूप ही घैया है । सब क्षुधार्थ गोपबालकों ने दुग्ध मंथन कर घैया निकाली और श्याम सहित स्वादु घैया का पान किया, तब तक छाक भी आ गई ।

श्री दान घाटी लीला

सभी आचार्यों ने अनुपम अर्थाभिव्यक्ति करते हुए अपनी-अपनी वाणी में दान की ललित लीला को गाया है । “श्रृंगार रस सागर” में जिसके अनेकों पद मिलते हैं । गौड़ीय आचार्यों ने भी श्री दानकेलि कौमुदी एवं श्री दानकेलि चिंतामणि ग्रन्थों में दान घाटी पर हुई ब्रजराज कुमार और भानुनन्दिनी के मध्य नोक-झोंक, रार-तकरार, वर्जन-तर्जन से हुई दानलीला को गाया है । श्री चैतन्य महाप्रभु जी जब श्री गिरिराज जी पधारे, तो दान लीला के विषय में जिज्ञासा करने लगे –

अहे ! श्री निवास एई दान घाटी स्थान ।
रसिकेन्द्र कृष्ण एथा साधे गव्यदान ॥
एई खाने श्रीचैतन्य संगेर विप्रेरे ।
जिज्ञासेन दान प्रसंगादि धीरे-धीरे ॥

(भ.र.)

आनन्दाभिभूत कर देने वाली यह अशिष्टता भी बड़ी रस प्रचुर है ।

महापुरुषों की वाणी में दान घाटी की लीला

श्री हरिराय जी

श्याम-दरस-परस की पिपासु ये गोपवनितायें समूह स्वामिनी तप्त काञ्चन वर्णा श्रीराधा को लेकर दधि विक्रय के बहाने चल पड़ी हैं । अन्तस् में अदम्य लालसा है मोहन-मुख पंकज देखने की । गौरांगी का गोरा गात्र वस्त्राभरणों को सज्जित कर रहा है । कटि की मणि किंकणी, शंख के सौंदर्य को भी तिरस्कृत करने वाली ग्रीवा में झूलती मुक्तामाला और नाना मणियों से जड़ा हुआ मुख पर झीना अंचल है मानो दिन में मुखचन्द को निकलने से निषेध कर दिया है कीर्ति कुमारी ने ।

चन्द्र, दिन में तेरा क्या कार्य ....?

शीश पर दो कञ्चन कलश रखकर और एक छोटा कनक-कलश अरुण कर पल्लव का सहारा और कुछ कटि का सहारा दिये ले चल रहीं हैं । चंचल नयन चतुर्दिक् घूम रहे हैं चतुर चूड़ामणि कृष्ण चन्द्र को देखने के लिए ।

आगे-पीछे, अगल-बगल सहस्रशः उन मन्मथ-मन्मथ मानस मन्थिनी की सहचरियाँ मांट-मटके लिए इनके दीर्घ दृग भी कृष्ण मुख सरोज के अन्वेषण में व्यस्त हैं। धीरे-धीरे आगे बढ़ रही हैं ब्रजबालायें।

श्री गोवर्धन की शिखर ते मोहन दीनी टेर।
अंतरंग सों कहत है सब ग्वालिनि राखी घेर॥

तब तक गिरि-शिखर पर चढ़े हुए भक्त-मनोरथ-पूरक कृष्ण चिल्लाये –

"भद्र, तोक, अंशु, मनसुख-धनसुख, रक्तक-पत्रक, सुबल.... कहाँ हो ऽ ऽ ऽ?

अरे दौड़ो-दौड़ो, देखो वो जा रही हैं खञ्जन नयना ब्रज-वामायें। इनके शोण पर रखे और कर में दबे हुए मटके रिक्त नहीं होंगे ....

जल्दी ले लो इनसे सुस्वादु गोरस।"

सुबल – "पर, वे हमें क्यों देंगी? "

कृष्ण – "सुबल ! तुझे स्वयं तो नोंक-झोंक आती नहीं, अन्य को भी नहीं करने देता सदा ऐसी बातें करता है कि सुनने वाले को नींद आ जाये। कभी देह गर्म करने वाली बातें भी किया कर।"

मनसुख – "किन्तु तुम दोनों बातों में विलम्ब क्यों कर रहे हो? मेरी नासिका और मेरा उदर तो मुझे बार-बार माँट की ओर खींच रहा है। कुछ देर तुमने और विलम्ब किया तो मेरा उदर तो मुझे छोड़, भाग खड़ा होगा।"

(सब हँसे और दौड़ पड़े)

सबसे पहले पहुँचा पेटू विप्र मनसुख।

एक ओर श्रीराधा हैं, ब्रज-रामाओं सहित : दूसरी ओर कृष्ण हैं : सखा समूह सहित एक ओर कर में रसपूरित माँट : दूसरी ओर कर में वेत्र-लकुट।

मनसुख – "अरे नवेलियो ! थोड़ा सा नवनीत तो दे दो ..."

सब विदग्धा गोपियाँ एक साथ बोलीं – "हम वन में तुम पेटुओं को पंगत कराने ही तो आई हैं, हुँ, हटो पथ से।"

भद्र, तोक ने वेत्र अड़ाया, तो उसे भी हटाकर ये चतुरा आगे बढ़ गयीं।

मनसुख – "हमारा सुकुमार सरदार पीछे रह गया है, तभी तुम ये ऐंठ दिखा रही हो। उसके सामने तो तुम्हारी जिह्वा ओष्ठ-बिल से बाहर ही नहीं निकलती है।"

मनसुख – "कन्हैया ! जल्दी आ ये हठीली नवेलियाँ तो सुनती भी नहीं है ...."

ग्वालिनि रोकी नारि है ग्वाल रहे पचिहार ।
अहो गिरिधारी दौरियो सो कह्यो न मानत ग्वार ॥
चली जात गोरस मदमाती मनौं सुनत नहीं कान ।
दौरि आये मन भामते सो रोकी अंचल तान ॥

लो, आ गए इनके सरदार।

आते ही मुखावरक अंचल पकड़ लिया।

बहुत दिना तुम बचि गई हो दान हमारो मार ।
आज हौं लैहौं आपनो दिन दिन को दान संभार ॥

(कृष्ण, सखाओं की ओर मुख करके)

"अरे ! मैं बहुत दिनों से ढूँढ़ रहा हूँ इन चोरों को, जो हमारे वन पथ से निकलती हैं और कर भी प्रदान नहीं करतीं। आज मैं गिनकर सब दिनों का हिसाब पूरा करूँगा।"

ब्रजेश-तनय बहुत चतुर हैं, इन कार्यों में –

रस निधान नव नागरी निरख वचन मृदु बोल ॥
क्यों मुरि ठाडी होंत हौ घूँघट पट मुख खोल ॥
हरखि हिय हरि करखि कैं मुख ते नील निचोल ।
पूरन प्रगट्यौ देखियै मानौं चंद घटा की ओल ॥
ललित वचन समुदित भये नेति-नेति यह बैन ।
उर आनन्द अतिही बढयौ सो सुफल भये मिलि नयन ॥

श्रीजी मयूर मुकुटी से मुँह मोड़कर, तुनक कर खड़ी हो गयीं।

"सुनयना, गौर वर्णा ! थोड़ा अपना मुखचन्द्र तो दिखाओ", कहकर श्री कृष्ण ने स्वयं दोनों करो से युग्म उरोजों पर लहराता अञ्चल धीरे से छूकर हटा दिया। उस चन्द्र का परमोज्ज्वल धवल ज्योत्सना से सारा कुसुमित कुञ्ज, कल्पतरु कानन दीप्तिमान हो उठा ; मानो पूर्णिमा के कोटिक शशांक एक साथ उदित हो गये हों। यह उपमा उस अनुपमेय-अनिर्वचनीय-अचिन्त्य सौन्दर्य राशि का क्षुद्रतम अंश भी नहीं है।

भला, उस सौन्दर्य-समुद्र को शब्दों की परिधि में बाँधना सम्भव है?

लज्जा की श्रृंखला का अतिक्रमण करके चञ्चल-खञ्जन नयन जा मिले श्याम-मयंक के पद्मदलायत नयनों से।

यह मारग हम नित गईं कबहुँ सुन्यौ नहिं कान ।
आज नई यह होत है सो मांगत गोरस दान ॥

सब सखियाँ एक स्वर में – "हम प्रतिदिन इस मार्ग से गौरस बेचने जाती हैं, आज तक तो किसी ने दान नहीं माँगा, उसमें भी गौरस का दान तो हमने कभी, कहीं सुना तक नहीं। आज ब्रज में ये नयी रीति कहाँ से आ गई? "

तुम नवीन नव नागरी नूतन भूषण अंग ।
नयौ दान हम मांगनौ सो नयो बन्यो यह रंग ॥

चंचल मोहन – "तुम नवीन हो, तुम्हारे वस्त्राभरण, श्रीअंग सब कुछ नवीन है, अतः आज का दान, दान की रीति भी नूतन होनी चाहिए", कहकर चपल कन्हैया ने सुमुखि के उन उरोज का स्पर्श करने को कर अग्रसर किया तो वीना विनिन्दित स्वर में गोपन-दक्ष ने कहा –

चंचल नयन निहारिये अति चंचल मृदु बैन ।
कर नहिं चंचल कीजिये तजि अंचल चंचल नयन ॥

"हे चंचल नयन ! तुमने चंचल नेत्रों से हमें निहारा, फिर चंचल मीठे वचन कहे, किन्तु ....अब इन चंचल करों को रोको और मेरा अंचल छोड़ो।"

सुंदरता सब अंग की वसनन राखी गोय ।
निरख निरख छबि लाड़िली मेरो मन आकर्षित होय ॥

"लाड़िली यह दिव्य अंग कान्ति, जो तुमने वसनाच्छादित करके रखी, इस पर सहज मेरा मन आकृष्ट हो गया है।"

अतिशय चपल ने तब तक अपनी पान-पीक श्रीजी के अंचल से पोंछ दी।

प्रणयकुपिता बोलीं –

नेंक दूर ठाड़े रहो कछु ओर सकुचाय ।
कहा कियौ मन भावते मेरे अंचल पीक लगाय ॥

"जरा भी संकोच नहीं हुआ, अंचल से पीक पोंछने में।"

सस्मित मुख श्याम –

कहा भयो अंचल लगी पीक हमारी जाय ।
याके बदले ग्वालिनी मेरे नयनन पीक लगाय ॥

"कोप न करो, मेरी पीक अंचल से लग गयी तो क्या हुआ? तुम प्रतिकार में सप्रसन्न मेरे नेत्रों में अपनी पीक लगा दो अर्थात् अपने अधरामृत से मेरा मुखाम्बुज चुम्बित करो।"

सूधे वचनन मांगिये लालन गोरस दान ।
भ्रुहन भेद जनाइ कैं सो कहत आन की आन ॥

"गरबीले, तुम्हें गौरस चाहिए तो सीधे-सीधे क्यों नहीं कह देते हो? तुम कुछ कहते हो और तुम्हारे नेत्र कुछ और ही अनर्गल प्रलाप करते हैं।"

जैसे हम कछु कहत हैं ऐसी तुम कहि लेहु ।
मन मानै सो कीजिये ये दान हमारो देहु ॥

नटखट नटवर – "सुसौरभा ! तुम भी, जैसे हम कहते हैं वैसे कह लो तन से, मन से, नयन से, हमें तो कोई आपत्ति नहीं किन्तु हमारा दान दिये बिना नहीं जा पाओगी।"

कहा भरे हम जात हैं दान जो मांगत लाल ।
भई अबार घर जान दै सो छाँड़ो अटपटी चाल ॥

"ऐसा क्या है हमारे पास, तुम्हें दान देने योग्य?" सुकोमलाङ्गी ने पूछा –

भरे जात हौ श्रीफल कंचन कमल वसन सौं ढाँक ।
दान जो लागत ताही को तुम देकर जाहि निसाँक ॥

"नील कञ्चुकी से आवृत, अपने वक्षोज का दान देकर जाओ अर्थात् अपने यौवन का दान दो।"

इतनी विनती मानिये मांगत ओली ओड़ ।
गोरस कौ रस चाखिये लालन अंचल छोड़ ॥
संग की सखी सबै फिर गईं सुनि हैं कीरति माय ।
प्रीति हिये में राखिये सो प्रगट कियें रस जाय ॥
काल्ह बहोरि हम आइ हैं गौरस लै सब ग्वारी ।
नीकी भांति चखाइ हौं मेरे जीवन हौं बलिहारी ॥

सशंकित चित्ता राधा – "लालन ! अब इतनी विनती तुम भी हमारी मानकर अंचल छोड़ दो, सब सखी-सहचरियाँ चली गई हैं, मैं एकाकिनी हूँ, उन्होंने कहीं बता दिया मैया कीर्ति को, तो हमारा तुम्हारा प्रेम प्रकट हो जायेगा। सर्वत्याग की पृष्ठभूमि पर निर्मित-पल्लवित-पोषित यह पुनीत प्रेम पथ जितना गोपनीय हो, उतना ही सरस है, प्रकट होने से, यह रस-विहीन हो जाता है। कल हम सब पुनः आयेंगी और तुम्हें जो चाहिए जितना चाहिए गौरस का दान देंगी।" किन्तु ये चंचल लालन कहाँ मानने वाला है –

सुनि राधे नव नागरी हम न करैं विश्वास ।
कर को अमृत छांडि कैं को करै काल्हि की आस ॥
तेरौ गोरस चाखवे मेरो मन ललचाय ।
पूरन शशि कर पाय कैं चकोर न धीर धराइ ॥

"देखो ! हम किसी पर विश्वास नहीं करते हैं। कर का अमृत छोड़कर, कल की आशा क्यों करें? जैसे पूर्ण शशि को देखकर चकोर धैर्य छोड़ देता है, वैसे ही तुम्हारा गौरस देखकर मैं ...... ।"

मोहन कंचन कलशिका लीनी सीस उतार ।
श्रम कन बदन निहारि कैं सो ग्वालिनि अति सुकुमार ॥
नवल विजन गहि लाल जू श्री कर देत ढुराय ।
श्रमित भई चलौ कुञ्ज में नेंक पलोटूं पाँय ॥
जानत हौ यह कोंन हैं ऐसी ढीठयों देत ।
श्री वृषभानु कुमार हैं तोहि बीच को लेत ॥

नहीं माने मोहन, शीष से नवनीत पूरित कनक-कलश बार-बार निषेध करने पर भी उतार ही लिया। इस मधुर वर्जन-तर्जन में अत्यंत सुकुमारी के मुखाम्बुज पर स्वेद बिंदु की अनुशासित पंक्ति बन गई।

श्रीजी को श्रमित देखकर श्याम सुन्दर सेवा करने लगे, कभी व्यजन ढुरायें, कभी पाद संवाहन करें।

सहजकुपिता –

गोरे श्री नंदराय जू गोरी जसुमति माय ।
तुम याही ते सामरे ऐसे लच्छिन पाय ॥
मन मेरौ तारन बसे और अंजन की रेख ।
चोखी प्रीति हिये बसे याते साँवल भेख ॥
आप चाल सो चालिये यहै बड़ेन की रीति ।
ऐसी कबहूँ न कीजिये हसैं लोग विपरीति ॥
ठाले ठूले फिरत हौ और कछु नहिं काम ।
वाट घाट रोकत फिरौं आन न मानत स्याम ॥

"काम-धाम हैं नहीं निठल्ले फिरते हो, काले कर्म करते हुए। नन्दराय जी गोरे, मैया यशोदा गोरी, तुम्हारा सांवला गात होने का एकमात्र कारण यही है" –

"तुम्हारे काले कर्म"

यही हमारौ राज है ब्रज मण्डल सब ठौर ।
तुम हमारी कुमुदनी हम कमल वदन के भौंर ॥

"देखो राधे ! सम्पूर्ण ब्रज मण्डल पर हमारा स्वतन्त्र साम्राज्य है। तुम विकसित कुमुदनी हो और हम तुम्हारे सरोज गात्र के भ्रमर हैं।"

ऐसे में कोऊ आइ है देखे अद्भुत रीति ।
आज सबै नन्दलाल जू प्रगट होयगी प्रीति ॥

एकांगिनी राधा – "देखो लालन ! अब मैं जा रही हूँ, कोई आता होगा। हमारा यह प्रेम गुह्य ही रहना चाहिए।"

ब्रज वृन्दावन गिरि नदी पशु पंछी सब संग ।
इनसों कहा दुराइये प्यारी राधा मेरो अंग ॥

"श्यामा जू ! ब्रज के अचर-सचर, समग्र जीव मेरा श्री अंग हैं, अतः इनसे दुराव कैसा? "

अंश भुजा धरि लै चलौ प्यारी चरन निहोर ।
निरखत लीला रसिक जू जहाँ दान की ठौर ॥

यही है वह दान की ठौर (स्थान), जहाँ कृष्ण दान के व्याज से ब्रज ललनाओं को रोकते और उनका अंग स्पर्श करते हैं।

पारस्परिक सुख-दान की लालसा से निष्पन्न हुई इस दान लीला को सभी आचार्य महापुरुषों ने गाया है। ब्रज पुरवासिनी-गोप-सुन्दरियाँ कृष्ण दरस-परस से न थकती हैं, न छकती हैं।

कृष्ण से स्पृष्ट हो उनके अन्तस्तल का अनुराग-सिंधु अनन्त, अपरिसीम, आनन्द-ऊर्मियों से परिपूरित हो जाता है।

श्री गोविन्द स्वामी

महादानी वृषभानु किशोरी तुव कृपावलोकन दान दै ..... ।

श्री कृष्ण दास जी

प्यारी राधा दधि लै निकरी कन्हैया नैं रोकी आनि हो ॥
श्री वृषभानु लड़ैती दान दै हो ॥
लाला सवई सयाने साथ के और तुमहुँ सयाने लाल हो ।
मोय लिख्यौ बतावौ साँवरे कब दान लियौ पछिपाल हो ॥
नंदराय लला घर जान दै ॥
प्यारी बहुत दिना बचि जाति ही मेरौ दाव बन्यौ है आजु हौ ।
दान दिये बिन जाउंगी हो तो समझि लेउ सब काज हो ॥
कब कब के दानी भये और कब तुम लीनौं दान हो ।
मेरौ मारग छोड़ौ साँवरे मोहि जान देउ घनश्याम हो ॥
लाला देस हमारे बाप कौ जाकी बांह बसत नंदराय हो ।
हम घास रखाई साँवरे तेरी सब सुख चरती गाय हो ॥
तुम सब संकल्प्यौ जा दिना जा दिन पियरे किये तेरे हाथ हो ।
प्यारी देस तिहारे बाप कौ सब सोवे में दीनौ साथ हो ।

तुम सब संकल्पयौ जा दिना जा दिन पियरे किये तेरे हाथ हो।
प्यारी हम दानी बहु भांति के तुम काऊ विधि क्यौ न देउ हो।
तुम जैसी विधि सौं देउगी हौं तौ तैसी विधि सौं लैंउ हो॥
लाला तबई तन कारे भये तुम लै लै ऐसौ दान हो।
तुम कैसें छुटौगे भार ते कोऊ तीरथ ह्व नहिं न्हाउ हो॥
प्यारी गऊ रज गंगा में न्हात हौं हम जपत गऊअन के नाम हो।
हम परम पुनीत सदा रहैं नहिं दान लेत सकुचात हो॥
लाला जसुदा बांधे दामरी अरु दामोदर गोपाल हो।
तुम हा हा करि पाँवन परे तब हमई छुड़ाये लाल हो॥
तुम गरव करौ मति बावरी औरु बैठी जमुना न्हाव हो।
चीर चोर तरु पर चढयौ तुम सब मिलि हा हा खाह हो॥
लाल दान लै दान लै कछु गाय बजाय रिझाय हो।
हम दान न दैं हैं लाड़िले सब बरसाने की नारि हो॥
प्यारी नट है नाच्यौ साँवरौ जैसे विरद बखानत भाट हो।
महुवरि में मुरली बजी सो तो मेंटि कुंवरि मेरी नाट हो।
मिसई मिस झगरौ भयौ और या वृन्दावन माँझ हो।
रसिक मिलन दोऊ भये कृष्णदास बलि बलि जाय हो॥
नंदराय लला घर जान दै हो।
वृषभानु लड़ैती दान दै हो॥

श्री नागरीदास जी

छांड़ि दै रे अंचल चंचल छैला।
इती करत लँगराई लला क्यों रोकि मही कौ गैला।
जान न देत दान मांगत हठि ठाढ़ौ है आड़ौ अरेला।
सीखे कहाँ अनोखे नागर ऐ जोवन के फैला॥

श्री नन्ददास जी

कहो जू कैसो दान माँगो।
हम तो देव गोवरधन पूजन आई कौउ दह्यौ कोऊ मह्यौ, कोऊ माखन।
जोरि-२ आछौ-अछँतौ ही लाई तुम कों कैसे दीजें कान्हा जू।
तुम तो सब विधी करत बरियाई 'नन्ददास' प्रभु बालकपन में।
निडर भए ऐसे जो कछु न चलाई॥

श्री आसकरन जी

ठाड़ी रहि री ग्वालिनी तू दैजा मेरौ दान ।
ढिंग भई आवत निकसि जात हौ फोरुं तेरी मटुकिया तान ॥
यह मारग हम हीं नित आवैं कबहुं न दीनौं दधि कौ दान ।
काहे कौं हो रारि बढ़ावति मोहन लाज न आवत मांगत दान ॥
लाज करौं या ब्रज कौ बसिबौ निपट अनौखे प्रगटे कान्ह ।
आनि कानि काहू की न मानत बरबस मोसों झगरो ठान ॥
काहे कौं तुम हाथ नचावति काहे कौं येतौ करत गुमान ।
दान काज हौं ब्रज में आयौ छांड़ि दियौ बैकुण्ठ सौ धाम ॥
घर-घर डोलत माखन चोरत सांकर खेलत पाये सुजान ।
पीछें ते जब ही गहि लीने तब तुम लागे हा हा खान ॥
हा हा खात दया मोहि आई तब लाग्यो मघवा वरषान ॥
डिगत देखि गिरिवर कर धारयौ हौं तौ करत गुमान ।
सोई गिरिवर डिगन लग्यौ तब टेक लगाई गिरतौ जान ॥

श्री माधवदास जी

हमारे गोरस दान न होय मोहन लाड़िले हो ।
महा मद फिरत गुवाल लाल दृढ छाड़ि दै हो ॥
कब के तुम दानी भये कब हम दीनो दान ।
गाय चरावो नन्द की तुम सुने अनोखे कान्ह ॥
हम दानी तिहुँ लोक के तुम चारयौं जुग की ग्वार ।
दान न छाँड़ों आपनो तेरौ राखों गहने हार ॥
ये गैया तिहुँ लोक तारनी चारयौ जुग परमान ।
दूध देंहि तिहुँ लोक कूँ तेरौ हार लेहुँ दशदान ॥
काहे को बाद करत हौ काहे करत अति सोर ।
जैसी बाजै तेरी बाँसुरी मेरे नेवर की घनघोर ॥
या वंशी की फूँक पै मैं पर्वत लियो उठाय ।
ढीठ बहुत ये ग्वालिनी इनकी मटुकी लेहु छिड़ाय ॥

श्री कुंभनदास जी

काहू तुम चलन न देत हो इहि बटियाँ ।
रोकत आइ स्याम घनसुन्दर निकसत हीं गिरि घटियाँ ॥
तोरत हार, कंचुकी फारत माँग निहारत पटियाँ ।

पकरत बाँह मरोरि नंद सुत गहि फोरत दधि चटियाँ ॥
'कुम्भनदास' प्रभु कब दानु लीनों नई बात सब ठटियाँ ।
गिरधर पांइ पूजिये तुम्हारे जानत हो सब गटियाँ ॥

श्री नारायण स्वामी जी

हमरौ दान देहु ब्रज नारी ।
मदमाती गज गामिनि डोलै तू दधि बेचन हारी ॥
रूप तोहि विधना ने दीयौ ज्यौं चंदा उजियारी ।
मटुकी सीस कटीले नयना मोतिन माँग संवारी ॥
हार हमेल गले में राजै अलकैं घूंघर वारी ।
या ब्रज में जेती सुन्दरि हैं सब हम देखी भारी ।
'नारायण' तेरी या छवि पर नंद नंदन बलिहारी ॥

सच पूछो तो भानु-नृप-दुहिता सहित ये शत-सहस्र ब्रज पुरवासिनी गोप सुन्दरियाँ आती ही इस नोक झोंक के लिए हैं। दधि विक्रय तो एक ब्याज मात्र है। व्रजेन्द्र तनय के कर-सरोरुह का, अरुण ओष्ठों का स्पर्श पाकर इनका प्रेमोदधि उच्छलित हो उठता है।

तभी तो बार-बार ये श्रुति स्वरूपा श्यामाभिलाषिनी ब्रज रमणियाँ जाति भी उच्च नहीं चाहती, ब्रज सीमांत पर भी रहना नहीं चाहती, उनका तो एक ही अभीष्ट है –

अहो विधिना तोपै अँचरा पसारि मागौं
जनमु-जनमु दीजै याही ब्रज बसिबौ ।
अहीर की जाति, समीप नंद घर
घरी घरी स्याम हेर हेर हसिवौ ॥
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिन में
झकझोरनि अंग-अंग को परसिवौ ।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल सरद
रैनि रस रास कौ बिलसबौ ॥

जान-अजान वृक्ष

प्रथम कथा

कृष्ण दास जी के कुँए में गिरने के पश्चात् सर्वत्र यह बात फैल गयी कि कृष्णदास जी भूत बन गए हैं। वृन्दावन के रसिकों को महान विस्मय हुआ कि यह कैसी विडम्बना है,

कृष्णदास जी जैसे परम अधिकारी का इस निकृष्ट योनि में कैसे प्रवेश हुआ? समस्त रसज्ञ गणों ने चकित-थकित होकर यतिपुरा की ओर प्रस्थान किया कि नाथ जी से ही यह जिज्ञासा व्यक्त करेंगे। श्री वृन्दावन से जब चले एक रात्रि राधा कुण्ड, गोवर्द्धन निवास किया अतएव राधा कुण्ड पर श्री स्वामी हरिदास जी महाराज, स्वामी श्री हित हरिवंश जी महाराज की बैठक है, अन्यथा वहाँ उनकी बैठक का कोई प्रसंग नहीं है। एक रात्रि राधा कुण्ड में विश्राम करके दूसरे दिन जतिपुरा की ओर गमन किया। उस समय गुसाँई श्री विट्ठलनाथजी महाराज, नाथ जी की श्रृंगार सेवा कर रहे थे, तब तक नाथ जी ने स्वयं ही आदेश किया – "वृन्दावन के महान रसिकजन पधार रहे हैं, आप जाकर उनका अभिनन्दन करें।" तत्क्षण आदेशानुसार श्रृंगार सेवा छोड़कर श्री गुसाँई जी महाराज उनके स्वागत हेतु चल पड़े। इधर से गुसाँई जी का आगमन हुआ उधर से रसिकों का आगमन हुआ। "जान-अजान" स्थान पर समस्त रसिक समाज गुसाँई जी द्वारा सम्मानित हुआ। तदुपरान्त सभी मन्दिर में गए और नाथ जी का दर्शन किया, जिज्ञासा सम्मुख रखें, इससे पूर्व ही एक ग्वारिया आया और विस्मयान्वित होकर बोला – "गुसाँई जी, जै जै ! अभी-अभी श्याम ढाक में कृष्ण दास अधिकारी जी को मैंने देखा, वे झारी लेकर सेवा में जा रहे थे, उन्होंने कहा – "कुँआ के पार पर कुछ द्रव्य रखा हुआ है, उसे गुसाँई जी सेवा में लगा दें।" कृष्ण दास जी भूत नहीं बने, वे तो नित्य सेवा में अवस्थित हैं, ये बात सुनकर सभी महापुरुषों की शंका का स्वतःसमाधान हो गया और वे सब सन्तुष्ट होकर लौट गए।

द्वितीय कथा

गोपीभियौ पृष्टौ कृष्ण ज्ञातो च अज्ञातः ।
वृक्षौ तन्नाम्नाख्यातौ चाख्याय तौ दृष्टौ ॥

(श्री वल्लभ दिग्विजय)

रास में श्रीकृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर ब्रज कामिनियाँ वृक्षों से श्री कृष्ण का मार्ग पूछने लगीं –

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवःप्रणामं किं वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥

(भा.१०/३०/१२)

"हे पादपो ! निश्चित ही तुम्हें कृष्ण मार्ग का ज्ञान है, थोड़ा उपकार करते हुए हमें श्रीकृष्ण का मार्ग बताओ ।

"रसाल हे तमाल हे निवास तीर्थथान में"

तुम तीर्थ निवासी हो, अतः कृष्ण मार्ग बताकर हमारे ऊपर थोड़ा उपकार करो।" जानते हुए भी ये वृक्ष अनजान बन गए, अतः 'जान-अजान' नाम हुआ।

कृष्णान्वेषण में विरहाविष्ट चित्त से गोपियाँ कह रही हैं –

सखी री हौं जान अजान भई ।
सम्मुख प्रगट भये मनमोहन मो मति मोह लई ।
देखत हूँ जू भई अनदेखनी वैरिन है रसना जू गई ।
का विधि मिले प्रानप्यारो वह कर कछु जुगत नई ।

गुलाल कुण्ड

नाम से ज्ञात होता है कि यहाँ श्रीकृष्ण ने होली लीला की –

बसंती रंग बरसैगो, आई-आई रे बसंत बहार ॥
लौहरी सौत चलै मत इकली चूनर ओढ़ बसंती ।
ये ब्रज है रसियन को अखारो तू है नई लजवंती ।
श्याम रस पावैगो आई-आई रे .. ।

(रसिया रासेश्वरी)

वार्ता जी के अनुसार अष्टछाप के महाकवि श्री चतुर्भुजदास जी के सुपुत्र श्री राघव दास जी को किशोर-किशोरी की होरी क्रीड़ा का यहाँ साक्षात्कार हुआ। उस लीला का वर्णन करते हुए उन्होंने इस धमार का गायन किया –

"ए जाय जहाँ हरि खेले गोपिन संगा"

(श्रृं.र.सा.होरी धमार-३२)

इसका गान करते-करते उनका देहावसान हो गया तब धमार उनकी पुत्री ने पूरी की।

बिल्छू कुण्ड

'बिल्छू कुण्ड' श्री राधा-माधव की एक प्राचीन रासस्थली है। यहीं विराजमान हैं एक प्राचीन मन्दिर में "श्री बिछुआ बिहारी।" बिल्छू कुण्ड युगल सरकार की 'खेलन भूमि' है। एक समय लुका-छिपी खेल में श्रीजी का बिछुआ यहाँ गिर गया, बहुत प्रयास पर भी प्राप्त न हुआ, तब श्यामसुन्दर ने निकटस्थ कुण्ड से श्रीजी का बिछुआ लाकर दिया। अतः यह कुण्ड बिछुआ कुण्ड (बिल्छू कुण्ड) नाम से ख्यात हो गया। विलक्षण लीलाओं का परिवेषण होने से प्राचीन पुस्तकों में इस वनप्रांत को "विलक्षण वन" की संज्ञा भी दी गयी है। विलक्षण वन का प्राचीन स्वरुप बहुत सघन था। सम्प्रति इसका वह प्राचीन स्वरुप स्थिर नहीं है। अन्यमतान्तर में युगल सरकार की विलास स्थली होने से विलास सदन भी कहते हैं। परम

भागवत श्री केशवाचार्य जी को ब्रज के प्रमुख चार देवों में परिगणित श्री हरिदेव जी का विग्रह इसी स्थान से प्राप्त हुआ था।

सघन वृक्षावली एवं लता-गुल्मों से परिपूरित रही विलक्षण वन (बिल्छू कुण्ड) की यह भूमि श्री नाथ जी के मन्दिर-अधिकारी अष्टछाप के सुकवि श्रीकृष्ण दास जी की निवास स्थली भी रही है। एक बार कृष्ण दास जी पूंछरी ग्राम के समीप निर्माणाधीन कुँए का निरीक्षण करते हुए, सहसा अपनी छड़ी के फिसल जाने से कुँए में गिर गए और वहाँ उनका शरीरांत हो गया। यह कुआँ आज भी गोवर्धन परिक्रमा में पूँछरी स्थान के समीप 'कृष्ण दास का कुआँ' नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्री कृष्णदास जी

कृष्ण दास जी का जन्म सं.१५५४ वि. के लगभग गुजरात प्रान्त में अहमदाबाद के समीपवर्ती चिलोत्तरा नामक ग्राम में कुनवी कुल में हुआ था। इनके पिता न्यायाधीश थे किन्तु असद्वृत्तियों से लिप्त होने के कारण चोरों, डकैतों का सहयोग करते थे। एक दिन ग्राम के समीप कुछ बंजारे रुके हुए थे, इनके पिताजी ने चोरों को प्रेरित करके उन्हें लुटवा दिया, चोरों द्वारा लूटे धन से १२ हजार तो उन्होंने स्वयं रख लिए तथा २ हजार रूपये चोरों को दे दिये। जब बंजारे न्याय हेतु इनके पास पहुँचे तो इन्होंने अनुचित रूप से बंजारों को ही फटकार लगायी। श्रीकृष्ण दास जी को अपने पिता के इस न्याय विपरीत व्यवहार से अत्यधिक ठेस पहुँची, अतः उन्होंने बंजारों से स्पष्टतया कह दिया कि मेरे पिता ने ही चोरों द्वारा आपका धन हरण करवाया है, आप लोग बादशाह के पास जाकर अपना दुःख निवेदित करो, मैं गवाही देने को तैयार हूँ। बंजारों ने बादशाह से शिकायत की, उसने पिता-पुत्र दोनों को गिरफ्तार कराकर अपने सन्मुख उपस्थित करने की आज्ञा दी। श्रीकृष्ण दास जी ने अपने पिता के विरुद्ध सत्य ब्यान देकर बंजारों का धन उन्हें वापस दिलाया। इस घटना के बाद उनके हृदय में तीव्र वैराग्य का उदय हुआ। फलस्वरूप बाल्यावस्था में ही गृह त्याग कर तीर्थ यात्रा करते हुए मथुरा में इनका आगमन हुआ। यहाँ विश्राम घाट पर इनकी भेंट वल्लभाचार्य जी से हुई। आचार्य महाप्रभु कृष्ण दास जी को देखते ही समझ गए कि ये तो दिव्य जगत के दैवी जीव हैं अतः उन पर अपनी अहैतुकी कृपा वर्षा करते हुए पुष्टिमार्गीय वैष्णव दीक्षा देकर ब्रह्म सम्बन्ध कराया। आगे चलकर आपकी दिव्य प्रतिभा शक्ति ने आपको ठाकुर श्रीनाथ जी की सेवा का कार्यभार दिला दिया।

आपके नेतृत्व में श्रीनाथ जी की सेवा-पूजा की चहुँमुखी प्रगति हुई। आपका यशोगान गुसाँई नाभा जी ने सुप्रसिद्ध कृति भक्तमाल में इस प्रकार किया है –

गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माँझ साझौ दियौ ॥
श्री वल्लभ गुरुदत्त भजन सागर गुन आगर।
कवित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर॥
वानी वन्दित विदुष सुजस गोपाल अलंकृत।
ब्रजरज अति आराध्य वहै धारी सर्वसु चित॥
सान्निध्य सदा हरिदासवर्य गौरश्याम दृढ़ व्रत लियौ।
गिरिधरन रीझि 'कृष्णदास' कौं नाम माँझ साझौ दियौ॥

श्री गोवर्धन नाथ गिरिधारी लाल जी ने सप्रसन्न श्रीकृष्ण दास जी को अपने नाम में हिस्सेदारी दी। ये गुरुदेव श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रदत्त भजन मार्ग के सागर एवं दिव्य गुणों की निधि थे।

आपके द्वारा रचित काव्य अद्भुत विशेषतायुक्त एवं सर्वथा दोष रहित है। श्रीनाथ जी की परिचर्या में आप पूर्णतया दक्ष थे। श्री गोवर्धनधारी गोपाल जी के त्रिभुवन मंगल सुयश से अलंकृत आपकी वाणी की विद्वत जन भी सराहना किया करते हैं। कृष्णदास जी ब्रजरज को ही अपना सारसर्वस्व, अपना सर्वोच्च आराध्य मानते हुए मनसा, वाचा, कर्मणा उसी को धारण करते थे। आप सदा श्रेष्ठ भक्तों की संगति में हरिदासवर्य गिरिराज जी की तलहटी में निवास करते थे। युगल श्रीराधामाधव की आराधना का आपने दृढ़ व्रत अंगीकार कर रखा था।

भक्तमाल टीकाकार प्रियादास जी के मतानुसार –

एक बार कृष्णदास जी आगरा से नृत्य-गान-कला प्रवीन एक वेश्या पर अनुग्रह करके उसे अपने साथ गोवर्धन लाये। समस्त वैष्णवोचित संस्कारों के द्वारा उसकी आत्यंतिकशुद्धि करके उसे एक स्वरचित पद का सम्यक प्रकार से अध्ययन कराकर उस पद को श्रीनाथ जी के सम्मुख गायन करने के लिए प्रस्तुत किया –

मो मन गिरिधर छबि पर अटक्यो।
ललित त्रिभंगी अंगनि पर चलि गयो तहाँ ही ठटक्यो॥
सजल स्यामघन वरन लीन ह्वै फिरि चित अनत न भटक्यो।
'कृष्णदास' कियो प्रान निछावर यह तन जग सर पटक्यो॥

पद की अंतिम पंक्ति “कृष्णदास कियो प्रान निछावर यह तन जग सर पटक्यो॥” को गाते-गाते वेश्या ने यथार्थवत अपने प्राणों को श्री ठाकुर जी के चरणों में न्योछावर कर दिया और दिव्य देह से उनकी नित्यलीला में प्रस्थान कर गयी। तदनन्तर इस पद की शेष पंक्ति को कृष्णदास जी ने पूर्ण किया।

इसी तरह से श्रीनाथजी के कार्यवश एक बार कृष्णदास जी दिल्ली गए हुए थे, वहाँ बाजार में किसी दूकान पर कढ़ाई में तली जा रही जलेबियों को देखकर उन्हें श्रीनाथजी के

आस्वादन करने योग्य जानकर वहीं दिल्ली से ही श्रीनाथ जी को जलेबियों का थाल भोग (मानसिक भोग) लगाया और भक्तभावग्राही गिरधरलाल ने गिरिराज जी से ही हाथ बढ़ाकर तत्क्षण उनके द्वारा अर्पित जलेबियों को स्वीकार कर लिया।

श्री हरिदेव जी

श्री गिरिराज जी के अधिष्ठातृदेव गिरिगोवर्द्धनोधरण, सप्त वर्षीय श्री हरिदेव जी ही हैं। आपने ही सप्त दिवस गोवर्द्धन धारण किया। प्रभु प्रपौत्र श्री वज्रनाभ जी द्वारा ब्रज में ४ सेव्य विग्रह संस्थापित हुए। उनमें ही एक श्री हरिदेव जी हैं।

नमो नमो ब्रज देव जु चारि ।
श्री विग्रह कमनीय महाई वज्रनाभ के सेव्य विचारि ॥
श्री गोविन्द देव पुनि केसो हरिदेव जु श्री बलदेव निहारि ॥
'वृन्दावन' हित रूप अभय पद दायक इनहिं मजौदर डारि ॥

समय-समय पर चारों विग्रह लुप्त हुए। श्री हरिदेव जी के भूगर्भस्थ होने पर, श्री केशवाचार्य जी ने इस सेव्य विग्रह का प्रकटीकरण किया। श्रीकृष्ण प्रपौत्र वज्रनाभ जी द्वारा स्थापित श्री हरिदेव प्रभु के मन्दिर का जीर्णोद्धार आमेर नरेश भगवान् दास द्वारा सं.१६३७ वि. में सम्पन्न हुआ। सं.१७३६ में औरंगजेब द्वारा यह नष्ट हुआ। विग्रह को छिपाकर कानपुर जिले के गाँव रजधानी बुधौली में ले जाया गया। हरिदेव जी के साथ अष्टधातु की श्रीजी की भी प्रतिमा थी, जो मथुरा के प्रयाग घाट पर मन्दिर में स्थापित की गई, खेदजनक बात कुछ समय पूर्व यह मूर्ति वहाँ से चोरी हो गई।

ग्वालियर निकटस्थ एक ग्राम के निवासी श्री मोहन मिश्र व श्री भागवती देवी परम भक्त सनाढ्य ब्राह्मण दम्पत्ति थे। आयु की आधी अवधि पूर्ण हो चुकी थी। ५५ वर्ष की आयु में दम्पत्ति को एक दिन वंशधर (पुत्र) की अभिलाषा हुई।

इष्ट आराधन से ही समस्त अभीष्टों की सिद्धि होती है। अतः माता अदिति के अनुसार आपने भी सविधि 'व्रतं केशवतोषणम्' केशवतोषक पयोव्रत किया जिसके फलस्वरूप परम भागवती देवी अन्तर्वत्नी हुई और यथासमय शुभ संस्कार युक्त बालक को जन्म दिया। बालक को माता-पिता केशव नाम से ही पुकारने लगे। विद्वत पिता मोहन मिश्र से शैशव से ही केशव जी ने समस्त वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास का अध्ययन कर लिया, किन्तु इष्टवत् प्रीति श्रीमद्भागवत् जी में ही थी। बालक में जग से सहज वैराग्य वृत्ति, कृष्ण चरणों में दृढ़ प्रीति देखकर पिता का मन पूर्णतः चिन्तात्यक्त था। एक दिन परीक्षा दृष्टि से स्वभाव विपरीत प्रश्न पिता ने कर दिया।

पिता – "पुत्र ! यह अवस्था, वैराग्य की तो नहीं है और फिर देव ऋण, पितृ ऋण, ऋषि ऋण से मुक्त हुए बिना तुम क्या सिद्धि पाओगे? "

पुत्र –"पिता जी ! आपके द्वारा पाठित शिक्षाप्रद प्रह्लाद चरित्र मुझे भली-भाँति अविस्मृत है।"

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

(भा. ७/६/१)

कौमार अवस्था ही वैष्णव धर्मों के आचरण के लिए है। भा.११/५/४७ योगेश्वर करभाजन जी के कथानुसार – "जो जीव सर्वात्म भाव से भगवान् के शरणागत हो गया है ; वह सब ऋणों से सर्वदा उन्मुक्त है और पिताजी ! आपने ही मुझमें इन संस्कारों का वपन किया है।" ऐसा परिपक्व प्रेम देखकर परम भागवत माता-पिता ने पुत्र केशव को भगवद् प्राप्ति का आशीष प्रदान किया। तत्क्षण केशव जी ने माता-पिता को प्रणाम करके वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में विचार करते जा रहे थे, यह भक्तिमार्ग मुझ जैसे साधनहीन के लिए तो दुष्प्रवेश्य है। अतः भगवद् प्राप्ति मुझ अनाथ के लिए अशक्य-सदृश है। संदेहात्मक सवाल केशव जी के उत्कण्ठित मन को संकुचित कर रहे थे तब तक साथ चल रहे यात्री ने दूसरे यात्री से पीछे मुड़कर पुकारा : "जल्दी आओ, तुम्हें तुम्हारा मित्र बुला रहा है" भगवद् प्रेरित इस वाक्य ने मानो केशव जी के अन्तस् को पूर्णरूपेण झकझोर दिया, "केशव ! क्या तुम्हे मेरे ऊपर विश्वास नहीं है? शीघ्र आओ, मैं तुम्हारे लिए प्रतीक्षित हूँ।"

सारा अंतर्देश, बस इस एक ही ध्वनि को पकड़े बैठा था, केशव जी अविराम दौड़ते हुए वृन्दावन आये। अब तो पलान्तर युगांतरवत् प्रतीत होने लगा। विरह में अन्न जल भी छोड़ दिया।

कैसा देह-दौर्बल्य।

केवल दर्शन की आस, जाते हुए प्राणों को पकड़कर बैठी है !

प्रतिक्षण मूर्च्छा।

भक्तवत्सल को भी, केशव जी की वियुक्ति असह्य हो चली तब प्रभु प्रेरित गह्वरवन निवासी सिद्ध महत् पुरुष श्री ज्ञानदेव जी ने आकर अचेत पड़े केशव जी को सचेत किया और मन्त्रदीक्षा देकर श्री निभृत निकुञ्ज बिहारी लाड़ली-लाल का साक्षात्कार कराया।

श्री गोवर्द्धन की तलहटी में निवास व भजन की आज्ञा की। नागरीदास जी के शब्दों में –

तरहटी गोवर्धन की रहियै ।
ब्रजबासिन के टूक-जूठ लै गोविन्द कुण्ड नित नहियै ॥
तन पुलकित मन मत्त मधुप ह्वै ब्रज-सुबास कौं लहियै ॥
श्रवन सुनत हरिकथा प्रेम-रस तृषावन्त ह्वै जहियै ॥
स्यामा-स्याम सलौनी सूरत नैनन माहिं बसहियै ॥

महाराज ज्ञानदेव जी ने अवश्यम्भावी घोषणा भी कर दी – अर्चावतार श्री हरिदेव जी को प्रकट करने का सुयश, गौरव तुमको ही प्राप्त होगा। इस महान जगत् में आराध्य-आराधक आप दोनों का ही सम्यक समादर होगा। श्री गुरुदेव की आज्ञा व कृपा से श्री गिरिराज में आपका अद्भुत अनुराग हो गया। स्वरचित गोवर्धनशतक में आपने कहा –

"गोवर्द्धनात्किञ्चिदहं न जाने"

निष्ठा की यह पराकाष्ठा थी तभी तो श्यामसुंदर सदा साक्षात् आपके साथ खेलते, लीला दर्शन कराते, रसमयविनोदवार्ता करते।

एक दिन अद्भुत आज्ञा की, केशव जी को।

श्री कृष्ण – "केशव ! मेरा एक सेव्य विग्रह बिछुवा कुण्ड के निकटस्थ खेत की मेंड़ में है। उसे प्रकट करो।"

(करबद्ध) केशव – "सर्वज्ञ, निखिल-दिव्यगुणों के धाम ! आपके उस श्री विग्रह के साथ स्वामिनी नहीं हैं, मैं युगल उपासक निष्किञ्चन विप्र हूँ।

ब्रजवासियों के घर से मुट्ठी भर चून लेकर प्राणवृत्ति से रहता हूँ।

हे कृपार्णव ! ऐसी कृपा करें, मेरे हृदय के भाव सुरक्षित रहें।

१. मेरा निष्किञ्चन व्रत खण्डित न हो।
२. युगलोपासना का व्रत खण्डित न हो, कोई अपराध न हो।

बिना श्रीजी के एकाकी कृष्णोपासना पाप है अतः अकरणीय है।"

श्री शिव कथन –

गौर तेजो विना यस्तु श्यामं तेजः समर्चयेत् ।
जपेत् वा ध्यायते वाऽपि स भवेत् पातकी शिवे ॥

(सम्मोहन तन्त्र)

श्रीकृष्ण – "केशव ! आज मैं तुम्हारे समक्ष एक गोपनीय रहस्योद्घाटित कर रहा हूँ, जिसे आज तक कोई नहीं जानता ! एक बार श्रीजी के दर्शनार्थ मैं बरसाना गया किन्तु यह मुझे सुलभ न हुआ तब नीलाम्बर गौरांगी के दर्शन हेतु ही मैंने इन्द्रयाग भंग करा कर,

श्री गोवर्धन पूजा कराई, जिससे क्रुद्ध इन्द्र ने प्रलयंकर वर्षा कर दी, तब ब्रज रक्षार्थ मैंने गोवर्धन धारण किया। समस्त ब्रज, गिरि के तर आ गया। उन्हीं में अमित सौन्दर्य सर्वाकर्षिका प्राणाधिका श्रीराधा भी आईं, इसी (हरिदेव) विग्रह से अनवरत सप्तदिवस मैं उनके दर्शन करता रहा और शुभेक्षण बल से ही गोवर्धन धारण किये रहा।" यह बात स्वरचित 'गोवर्धन महिमामृत' ग्रन्थमें स्वयं केशवाचार्य जी ने उद्धृत की है।

"अतः मेरे इस हरिदेव विग्रह को श्रीजी से रहित न मानकर, **द्वय मिलित एक प्रिया प्रेम प्रतिमा** (प्रिया के प्रेम की प्रतिमा) **'श्रीजी संयुक्त श्री विग्रह'** ही समझो और प्रकट कर, उसकी सेवा करो। इस प्रकार तुम्हारे दोनों व्रत सुरक्षित रहेंगे। तुम्हारा निष्किंचन व्रत भी खण्डित न होगा, मेरे निमित्त तुम कदापि याचना मत करना और मेरी प्रेरणा से स्वतः प्राप्त भोग का तिरस्कार भी न करना, अर्थात् उसे स्वीकार कर लेना।"

केशवाचार्य जी ने, प्रभु का यह आदेश सब ब्रजवासियों को बताया और साथ ही बिछुवा कुण्ड पर वह निश्चित स्थान भी बताया, जहाँ से श्री हरिदेव जी का प्राकट्य होना था। बहुत तीव्रता से खनन कार्य प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही एक में द्वयमिलित मूर्ति चारों ओर एक दिव्य आकर्षण प्रसारित करते हुए प्रकटी। उसका दर्शन करते ही लोगों के हृदय में लालच आ गया। हर व्यक्ति मूर्ति का स्वामी बनना चाह रहा था।

एक – "यह विग्रह मैं अपने घर ले जाऊँगा।"

दूसरा – "वाह ! तुम कैसे ले जाओगे, मेरे खेत की मेड़ में निकला विग्रह ! "

तीसरा – "हटो-हटो, तुम कोई नहीं, मैं यहाँ का जमींदार हूँ, अतः मूर्ति पर मेरा स्वतन्त्राधिकार है।"

परस्पर वाद-विवाद देखकर, केश्वाचार्य जी पीछे हो लिये, तब तक, एक कोई विवेकी – "देखो भाई, उचित तो यह है कि जिसने इस विग्रह का भेद बताया ..... वही इसका सही अधिकारी है। उससे पूछकर ही विग्रह सम्बन्धी कोई कार्य करो। अन्यथा परिणाम अच्छा नहीं होगा।" यह सुनते ही, पीछे से ४-५ ध्वनियाँ एक मत में आयीं – "तुम्हें यहाँ पंच या पंडित किसने बनाया, जो तू हमारा अच्छा-बुरा परिणाम देख रहा है। यहाँ खड़ा होना चाहता है, तो मुँह बन्द रख।"

बेचारा चुप हो गया !

तब तक व्योमवाणी हुई –

"जो, एकाकी इस श्री विग्रह को अंक में भरकर ले जाएगा, वही इसका सेवाधिकारी होगा।"

सबने अतिशय प्रयास किया उठाने का किन्तु यह तो हिली तक नहीं !

अब सबने केशावाचार्य जी से प्रार्थना की। पूज्य आचार्य जी जैसे ही विग्रह के समक्षस्थ हुए, और अपने दोनों कर अग्रसर किये, थोड़ा स्पर्श पाते ही,

ये क्या !

श्री हरिदेव जी स्वयं केशवाचार्य जी के वक्ष से आ चिपटे।

जन समुदाय (चारों ओर से) – "श्री हरिदेव जी महाराज की ऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ जय ! ! "

यह तो स्पष्ट हो ही गया था कि हरिदेव जी का प्राकट्य आचार्य जी के लिए ही हुआ है।

हरिदेव जी को अंक में भरकर पूज्य आचार्य जी अपनी छोटी कुटी में ले आये। सेवारम्भ हो गयी।

ये ठाकुर चट्टू भी है और पेटू भी। एक दिन बोले – "केशव जी !

आज तो पायस (खीर) पाऊँगा।" आपकी इस जिद्द के पीछे आपका एक स्वार्थ था – "अपने भक्त का यश प्रसारित करना।"

केशव – "मैं ठहरा एक भिक्षाजीवी विप्र। भला, मैं कहाँ से पायस लाऊँगा? "

उसी रात्रि हरिदेव जी ने आमेर के राजा भगवान् दास जी को स्वप्नादेश किया। प्रातः होते-होते तो राजा केशवाचार्य जी के पास आ गया, भक्त, भगवान् का दर्शन पाकर अत्यन्त प्रभावित हुआ और श्री हरिदेव जी के लिए सं० १६३७ वि० में लाल पत्थर के भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। भोग-राग की सम्यक् व्यवस्था की। गाँव के गाँव स्वामी जी को सेवार्थ सौंप दिए।

अब तो आचार्य श्री का प्रभाव और दिन-दूना बढ़ने लगा। यवनों के आक्रमणकाल में म्लेच्छ औरंगजेब की क्रूर दृष्टि से यह मन्दिर भी अस्पृष्ट न रहा। फलतः यह भी उस बर्बरता का शिकार हुआ। श्री हरिदेव जी के विग्रह को ब्रज से बाहर ले जाया गया। यह देव प्रतिमा आजकल कानपुर जिले के गाँव राजधान, बुछौली में विराजमान है। भरतपुर राजा की ओर से इस देव विग्रह की सेवा-व्यवस्था के लिए भगौसा और लोधीपुरा गाँव अनुदान में दिए हुए हैं। साथ ही एक अच्छी धनराशि बन्धान के रूप में भी यहाँ दी जाती है।

अपनी ब्रजयात्रा के अवसर पर महाप्रभु – चैतन्यदेव ने श्री हरिदेव जी का दर्शन कर प्रेमावेश में नृत्य किया था –

प्रेम मत्त आये जु चलि श्री गोवर्धन ग्राम ॥
श्री हरिदेवहिं देखि कैं करै तिन्हैं परनाम ॥
है जु मधुपुरी पद्म के पच्छिम दल जिहिबास ॥
नारायण हरिदेवजू हैं सो आदि प्रकास ॥
प्रेममत्त है कैं जु प्रभु नाचैं आगैं ताहि ॥
आये देखन लोग सब सुनि कै अचिरज आहि ॥

प्रभु कौ प्रेम स्वरुप लखि जन अचरज विस्तार ॥
किय हरिदेव जु पूजकनि प्रभु कौ सत्कार ॥

श्रीपाद रूप गुसाँई विरचित "दानकेलिकौमुदि" के अनुसार श्री राधा रानी अपनी सखी-सहचरियों के साथ श्री हरिदेव जी के दर्शनार्थ यहाँ आया करती थीं। होली के पश्चात् चैत्र कृष्ण द्वितीया को इनके प्राकट्योत्सव के रूप में गोवर्धन स्थित मन्दिर से इनका फूलडोला यहाँ लाया जाता है और होलिकोत्सव सम्पन्न होता है।

ब्रह्म कुण्ड

यही ब्रह्म कुण्ड है, जहाँ, गौ, गोवत्स एवं ग्वाल-बालों के अपहरण के अपराध से मुक्त होने के लिए भगवान् को प्रसन्न देखकर ब्रह्मा जी आये और वेदमंत्रों के द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक किया ।अभिषेक के उस पवित्र जल से ही ब्रह्म कुण्ड का प्राकट्य हुआ।

मनसा देवी

स्वयं योगमाया ही मनसा देवी के रूप में मानसी गंगा के दक्षिणी तट पर विराजमान हुई हैं।

श्री चक्रेश्वर

श्री मानसी गंगा के उत्तर में श्री चक्रतीर्थ की स्थिति है, जहाँ श्री राधा-माधव की दोल-विश्राम-स्थली है। सतत् सात दिन हुई प्रलयंकर वर्षा से ब्रजवासियों को सुरक्षित करने हेतु गोविन्द ने गिरिराज धारण किया और वर्षा का जल शोषण करने की आज्ञा की, सुदर्शन चक्र को। ७ दिन पर्यन्त गिरिराज शिखर पर विराजकर, भगवदायुध चक्र ने एक बिंदु जल भी गिरि के तर नहीं गिरने दिया। वृष्टि बंद होने के बाद जब गिरिराज जी को पूर्ववत् प्रभु ने रख दिया, तो सुदर्शन चक्र को प्रभु ने यहीं प्रस्थापित किया, अतः यह चक्र चिन्हित 'चक्रतीर्थ' कहलाया –

चक्रतीर्थं नमस्तुभ्यं कृष्णचक्रेण लाञ्छितम् ।
सर्वपापच्छिदे तस्मै कृष्णनिर्मलनिर्मितम् ॥

(वायु पुराण)

यहाँ विराजमान हैं – चक्रेश्वर महादेव। ब्रज में वज्रनाभ जी द्वारा स्थापित महादेव जी के चार स्वरूप हैं, जो बड़े प्रख्यात हैं। वृन्दावन में गोपेश्वर महादेव, कामां में कामेश्वर महादेव,

मथुरा में भूतेश्वर महादेव और श्री गोवर्धन में आप चक्रेश्वर महादेव नाम से विराजते हैं। चक्रेश्वर का नामांतर ही चकलेश्वर है। चकलेश्वर महादेव के सामने ही श्रील सनातन गुसाँई पाद की भजन कुटी है। कुछ समय इस स्थल पर भी आपने भजन किया। यहाँ प्रवास काल में आपका प्रतिदिन गिरिराज परिक्रमा का नियम था। जराग्रसित होने पर भी आपने यह नियम नहीं छोड़ा। शनैः शनैः लड़खड़ाते हुए, उक्त नियम पूरा करते ही थे। भक्तवत्सल को आपका यह कष्ट असह्य था, अतः बाल वेष में आकर कृष्ण चरण चिन्ह व लकुट चिन्ह युक्त एक गिरिराज शिला देते हुए कहा – "बाबा ! इस वृद्धावस्था में आप सप्त कोसीय परिक्रमा न लगाकर, इस गिरिशिला-खण्ड की परिक्रमा कर लिया करें। आपको सम्पूर्ण गिरिराज परिक्रमा का फल प्राप्त होगा।" सनातन जी ने युगल कर आगे बढ़ाकर, उस शिला खण्ड को लिया और भाल से लगाया। अनुक्षण बालक वहीं अन्तर्हित हो गया।

कौन हो सकता था, वह बालक ....? स्वयं गिरधर थे। बालक जब तक दृष्टि पथ पर रहा सनातन जी उसे देखते ही रहे, देखते ही रहे। मध्य में कुछ भी बोलना विघ्न समझा और जब वह अदृश्य हो गया तो उनका अतृप्त चित्त व्यथित हो गया –

शिला समर्पिया कृष्ण हैला अदर्शन ।
बालक न देखि व्यग्र हैला सनातन ॥
सनातन व्याकुल देखिया अदृश्येते ।
निज परिचय दिला विह्वल स्नेहेते ॥

(भ.र)

उसके बाद से गो. पाद ने शिला खण्ड की प्रदक्षिणा प्रारम्भ कर दी। सम्प्रति यह पावन शिला श्री धाम वृन्दावन के राधा दामोदर मन्दिर में दर्शनीय है।

चकलेश्वर के सामने ही स्थित है – श्री गौर नित्यानन्द प्रभु का मन्दिर। श्रीमन् चैतन्य देव जी और श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु ने श्री गिरिराज जी की परिक्रमा करते समय श्री चक्रेश्वर महादेव का दर्शन करके व मानसी गंगा, पारंग घाट के दर्शन करके यहाँ विश्राम किया था। ऐसी अनुश्रुति है कि एक बार, आपने (सनातन गो.) यहाँ मशकों (मच्छरों) से पीड़ित होकर स्थानान्तरण करने का विचार किया, तब स्वयं भगवान् चक्रेश्वर ने आपको आश्वासन दिया कि आज के बाद इस स्थान पर मशकों का कोई उत्पात नहीं होगा, अतः फिर गमन प्रस्ताव आपने छोड़ दिया।

गुसाँई पाद की भजन कुटी के निकट है – श्री कृष्णदास बाबा की भजन स्थली। श्रीकृष्णदास बाबा बड़े सिद्ध महापुरुष हुए हैं। उड़ीसा में आपका जन्म हुआ। १६ वर्ष की अल्हड़ आयु में ही उत्कट वैराग्य ने गृह त्याग करा दिया। वृन्दावन आये, वृन्दावन से रूप गुसाँई पाद द्वारा प्रकट श्री राधा गोविन्द देव का सान्निध्य पाने को जयपुर चले गये। वहाँ ८-१० वर्ष निवास किया, अनन्तर काम्यवन में सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबा से भजन पद्धति की शिक्षा ग्रहण कर, नन्दगाँव निकटस्थ दोमिल वन में आपका प्रवास रहा। कठोर वैराग्य,

आहार-निद्रा विस्मृत कर दिन-रात भजनस्थ ही रहते। अयुक्त आहार-विहार से आपकी नेत्र ज्योति मंद हो गयी। श्रीजी की कृपा हुई, श्रीजी ने ललिता जी को प्रेषित किया, ललिता जी एक सरल बालिका का रूप बनाकर स्वर्णथाल में भोजन लेकर गयीं, उस दिव्य भोजन से एक असामान्य पुष्टि की अनुभूति हुई, साथ ही दिव्य अञ्जन दिया, जिससे आपकी दृष्टि का पुनरागमन हुआ। इन सब दिव्य अनुभूतियों से बाबा को अनुभव हो गया कि वह कोई ग्रामीण बालिका नहीं थी, निश्चित ही अप्राकृत शक्ति थी। फिर तो बाबा को उसके पुनः दर्शन की तीव्र इच्छा हुई। तीन रात्रि व्यतीत हो गयीं उसकी प्रतीक्षा, अन्वेषण में, तब स्वयं श्रीजी स्वप्न में आईं, सान्त्वना दी, आदेश दिया – "कृष्णदास ! अब तुम श्री गोवर्धन चले जाओ, शेष जीवन वहीं व्यतीत करते हुए लोगों के लिए मेरी प्राप्ति का सहज मार्ग प्रशस्त करो।" श्रीजी की आज्ञानुसार आप यहाँ सनातन गुसाँई जी की भजन कुटी के निकट ही भजनरत हो गये। दिन-रात लीलानुभूति में अभिभूत रहते। श्रीजी की कृपा से आपको स्वतः ही दिव्य ज्ञान हो गया। अनेकों वैष्णव ग्रन्थों का प्रणयन आपके द्वारा हुआ, जिनमें मुख्य है – प्रार्थनामृत तरंगिनी, साधनामृत चन्द्रिका, भावनासार संग्रह आदि, आपका जीवन मानव मनके लिए ज्ञान-विज्ञान प्रद एवं प्रेरणाप्रद है।

मुखारबिंद

मानसी गंगा के उत्तरी तट पर मुखारबिंद है, जो श्री गिरिराज जी के विग्रह के मुख रूप में स्थित है। गोवर्धन जी का आकार बैठी हुई गाय के सदृश है। गाय अपनी गर्दन घुमाकर पेट के निकट अपने मुख को कर लेती है, वैसे ही यहाँ गिरिराज जी के मुख की मान्यता है। वर्तमान में यहाँ भव्य मन्दिर बना हुआ है

इन्द्र ध्वजवेदी

यहीं इन्द्र पूजा का ध्वज गढ़ता था। इसी पूजा को बन्द कराकर, श्री कृष्ण ने गिरिराज पूजा करायी थी। यह स्थान गोवर्धन के पूर्व में स्थित है।

आन्यौर गाँव

परिक्रमान्तर्गत दानघाटी मन्दिर से ३ कि.मी. की दूरी पर आन्यौर गाँव स्थित है। इन्द्र पूजा के विपरीत गिरिराज पूजा यहीं पर की गयी थी और बहुत सारे व्यंजनों से गिरिराज जी को ब्रजवासियों ने भोग लगाया था। यहीं पर्वत के ऊपर साक्षात् प्रगट होकर एक रूप से

समस्त द्रव्यों को ग्रहण किया था और बार-बार **"और आन और आन"** कहा अर्थात् और लाओ और लाओ। इसी से यह गाँव आन्यौर कहलाया। श्री कृष्ण ने फिर सभी से पूछा कि कभी किसी देव ने प्रत्यक्ष प्रगट होकर दर्शन दिया था .....? देखो, गिरिराज बाबा बड़े दयालु हैं वे तुम्हारी समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। ब्रजवासी भी गोवर्धन पूजा कर अपने को धन्य समझने लगे। वही गिरिराज पूजा की परम्परा आज भी सारे राष्ट्र में प्रचलित है। अन्नकूट स्थल पर प्राकृतिक रूप से कटोरे आदि के चिन्ह हैं। पास में ही बजनी शिला है जिसमें उँगली से आघात करने पर सुन्दर स्वर निकलता है। पास में ही गिरिराज तलहटी में श्री नाथ जी का प्राकट्य स्थल है।

श्री नाथ जी का प्राकट्य स्थल

श्री नाथ जी के दर्शन बिना चारों नाथों का दर्शन सफल नहीं माना जाता और एकाकी श्रीनाथ जी का दर्शन चारों नाथों के दर्शन फल की प्राप्ति कराने वाला है, अतः 'श्रीगोवर्द्धन नाथ जी' नाथों के भी नाथ है। ब्रह्मा जी का मद मर्दन करने से आप देवदमन, इन्द्र का मद् मर्दन करने से इन्द्र दमन, कालिया नाग का मर्दन करने से आप ही नाग दमन हुए। वल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता है कि –

आपका आविर्भाव सद्दू पाण्डेय द्वारा हुआ।

आन्योर ग्राम के निवासी सद्दू पाण्डे लीला राज्य में वृषभानु जी के भाई चन्द्रभान गोप हैं और आपकी कन्या नरो, भार्या भवानी, ये रामदे, श्यामदे यशोदा जी की ननद हैं, संवत् १५२९ फागुन सुदी ११ गुरूवार के दिन श्री गोवर्द्धन नाथ जी ने दक्षिण झारखण्ड में आचार्य चरण श्री बल्लभ प्रभु को साक्षात् रूप से प्रकट हो आदेश दिया कि गोवर्द्धन पर्वत में ३ दमन हैं | वाम भाग में नाग दमन, दक्षिण में इन्द्र दमन, मध्य में देवदमन हैं। आप शीघ्र आकर इनकी सेवा प्रकट करो। गोवर्द्धन नाथ की आज्ञानुसार आचार्य चरण संवत् १५४९ श्रावण सुदी ११ गुरूवार प्रथम श्री गोकुल पधारे, अनन्तर श्री गोवर्द्धन आये, जहाँ प्रतिदिन एक गाय वहाँ अपना सारा दूध स्रवित कर देती थी। आचार्य चरण जब सद्दू पाण्डेय के यहाँ आये, तब सद्दू पाण्डेय, नरो व ब्रजवासियों आदि की सहायता से उन्होंने इस श्रृंगार मण्डल से भूप्रविष्ट सप्तवर्षीय देवदमन का प्रकटीकरण किया।

श्री गौड़ेश्वर सम्प्रदाय मतानुसार श्री माधवेन्द्र पुरी द्वारा आपका प्रादुर्भाव हुआ।

उदार श्रद्धालुओं के लिए सभी आचार्य भगवद् स्वरूप हैं, अतः यह विवादात्मक विषय नहीं है, ऐसी ही श्री हरि की आज्ञा है –

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

(भा. ११/१७/२७)

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥

(गीता. १३/८)

भक्ति रत्नाकर के अनुसार रघुनाथ दास गुसाँई, तत्कालीन वृन्दावन के प्रमुख जन और सम्भवतः जीव गुसाँई पाद से परामर्श करके गौड़ीय सेवाधिकारियों ने स्वयं श्रीनाथ जी की सेवा का अधिकार गुसाँई श्री विट्ठल नाथ जी को सौंप दिया –

श्रीदास गुसाँई आदि परामर्श करि ।
श्री विट्ठलेश्वर कैल सेवा अधिकारी ।

चरितामृतानुसार – श्री विट्ठल जी को श्री गोपाल जी (श्रीनाथ जी) की सेवा सौंपने का कारण श्री वल्लभाचार्य जी और श्री चैतन्य देव में परस्पर अतिशय प्रेम था। अतः गौड़ीय भक्तोंने स्वयं सप्रेम गुसाँई श्री विट्ठल नाथ जी को गोपाल जी (श्रीनाथ जी) की सेवा सौंप दी। वर्तमान में भी वल्लभ सम्प्रदाय के गुसाँई बालक ही श्री नाथ द्वारे में विराजित श्री नाथ जी के सेवायत हैं।

गौड़ीय आचार्यों ने स्वयं गुसाँई जी की सेवा-पद्धति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है –

विविध-भजन-पुष्पैरिष्टनामानि गृह्णन् पुलकित-तनुरिह श्री विट्ठलस्योरुसख्यैः ।
प्रणयमणिसरं स्वं हन्त तस्मै ददानः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥

(श्री रघुनाथदास गुसाँई विरचित 'गोपालराज-स्तोत्र' – १४)

श्री जीव गुसाँई पाद ने भी "वैष्णव वन्दना" में श्री वल्लभाचार्य जी की वन्दना की है।

श्री कविकर्णपूर जी ने पूर्व-लीला में आचार्य चरण को 'श्री शुकदेव' कहा है। अतः वास्तविक वेद्य बात तो यही है कि स्वेच्छा से उद्भूत श्री नाथ जी किसी व्यक्ति विशेष, सम्प्रदाय विशेष के नहीं, प्रत्युत सबके, सर्वस्व हैं।

संकीर्ण विचार-विहीन औदार्य धाम भावुकों के लिए दोनों ही मत सत्य हैं, प्रामाणिक हैं। असंदिग्ध चित्त, अतर्क्य मति से ही निखिल-नियन्ता की ललित-लीलाओं का रसास्वादन करना चाहिए। एक शाश्वत् दिव्य सत्ता के विषय में तर्क का अवलम्बन व्यर्थ एवं भ्रामक ही है।

अविद्या लिप्त मति ही इन विवादात्मक प्रपंचों में पड़ती है, विवेकी प्राणी नहीं और फिर हमारा यह इष्ट बड़ा चपल है। कभी तो अपना नाट्य प्रकट कर देता है और कभी लुप्त। भूप्रविष्ट हो जाने पर इस नटखट को प्राकट्य कर्ता चाहिए, फिर जिसे यह अधिकारी

समझता है, उसी के अंक में चढ़ता है। अतः बहुत सावधान होकर, प्रपंचातीत होकर ही इन सरस कथाओं का आस्वादन करें क्योंकि सूरदास जी का कथन है –

ब्रज लीला कोउ पार न पाये ।
ब्रह्मा शेष महेश नारायण मति ही भुलाये ॥
वेद स्मृति सुनि हरि ही मिलन बहु मारग बतायो ।
गोपीजन निज मारग 'सूर' न्यारो दिखरायो ॥

बाबा श्री का एक निष्पक्ष मत

वार्ता जी में उल्लेख मिलता है, देवदमन ने स्वयं श्री वल्लभ प्रभु को कहा कि आप मुझे प्रकट करो और भक्तानुग्रहकारक रूप से उन्हें दर्शन भी दिए, अतः ठाकुरजी स्वयं प्रकट हुए हैं, किसने प्रकट किया, इस विवाद को छोड़कर यह सोचा जाय कि प्रभु स्वेच्छा से स्वयं प्रकट हुए हैं, यह सर्वोत्तम विचार है।

इसके समीप ही श्री कृष्ण के द्वापर लीला के पाँचों उँगलियों के चिन्ह हैं। वहाँ लाल ने दूध, दही आरोग कर श्री गिरिराज जी पर अपना कर पोंछ दिया था। श्री गिरि-गोवर्धन नवनीतवत् हो गए और ये चिन्ह यथावत अंकित हो गये। आगे सिंदूरी शिला है, जिसमें आज भी उँगली रगड़ने से सिंदूर निकलता है। भगवान् ने इसी शिला पर अपनी उँगली रगड़कर श्री राधा रानी की माँग भरी थी। इस प्रकार श्री गिरिराज जी के ऊपर द्वापरकालीन लीलाओं के अनेक चिन्ह अंकित हैं।

दण्डोती शिला

पर्वत के नीचे यह शिला दर्शनीय है। नाथ जी के दर्शन हेतु गिरि पर चढ़ने से पूर्व इस शिला को प्रणाम करने का विधान है। इस शिला को प्रणाम करने से गिरि पर पद रखने का अपराध नहीं लगता है। इसके निकट ही सिन्दूरी शिला दर्शनीय है।

श्रृंगार मण्डल

गर्ग संहितानुसार 'रास काल'

नील-कल्लोलनी श्री यमुना में कोटि-कोटि सखी सहचरियों सहित किशोर-किशोरी ने जल केलि की। परस्पर अञ्जली भर-भर के जल फेंकने में युगल-चपल-लोचनों के ऊपर काले-घुँघराले अलक पर वारि-बिंदु बैठ गये और नील-गौर मुख मयंक पर आसीन होने से ये वारि-बिंदु कुन्दनवत दमकने लगे। जलक्रीड़ा करके युगल किशोर अपनी प्राणोपम सहचरियों सहित श्री गिरि गोवर्धन पर गए –

अथ कृष्णो हरिर्वारिलीलां कृत्वा मनोहरः ।
सर्वैर्गोपीगणैः सार्द्धं गिरिं गोवर्द्धनं ययौ ॥

(ग.सं.वृं.ख-२०/१)

इस रत्नमयी-धरा पर आकर रासेश-रासेश्वरी ने रासनृत्य किया।

अनन्तर सुमनास्तरण से आच्छादित एक प्रस्तर-खण्ड (श्रृंगार मण्डल) पर युगल सरकार आसीन हुए। ऐसा लगा मानो किसी गिरि पर श्याम घन और विद्युत्-सुन्दरी एक साथ शोभायमान हो रहे हैं।

"तडिद्घनाविव गिरौ राधाकृष्णौ विरेजतुः"

(ग.सं.वृं.ख.२०/३)

श्रृंगार कुशला इन ब्रजललनाओं ने सर्वाभीप्सिता किशोरी का श्रृंगार करना आरम्भ किया। गौर-वर्ण में नीला अंगराग लगाया, पादतल में रक्त आलक्तक की चित्रकारी की, आकर्ण विलम्बित मीनाकार नयनों में काजल लगाया, आपाद लहराती काली-स्निग्ध वेणी में रंग-बिरंगे वन्य सुमनों के गुच्छे सज्जित किये, सर्वांग पर इत्र-अरगजा, केशर-कस्तूरी की नन्ही फुहारें फेंकीं।

स्वयं तपन-तनया (यमुना) ने अरुण-चरणों में नूपुर धारण कराया, जह्नुनन्दिनी गंगा ने मंजीर धारण कराया, श्री रमा ने गौर-कृश-कटि प्रांत में मणिमय किंकणी धारण कराई, प्रिय ललिता ने मणिमण्डित कंचुकी, विशाखा ने कण्ठाभूषण, चन्द्रानना ने मुद्रिकायें, शतचन्द्रानना ने बाजूबंद, मधुमती ने दो अंगद, बंदी ने दो ताटंक, सुखदायिनी ने श्रुति-मण्डनकारी कुण्डल, आनन्दी ने भालतोरण, सती पद्मावती ने नासारंध्र में श्वेत मोती की बुलाक धारण कराई, जो ग्रीवा के तनिक भी इधर-उधर होने पर हिलने लगती। पद्मा ने

बेंदी, चन्द्रकांता ने शीशफूल, सुन्दरी ने चूड़ामणि, प्रहर्षिणी ने रत्नमयी वेणी, वृन्दावनाधीश्वरी ने विद्युत् समान विद्योतमान चन्द्र-सूर्य नामक दो आभूषण दिये।

इस तरह सखियों से सज्जित हो जब श्रीजी का नित्य नवनवायमान, चित्ताकर्षक अप्रतिम सौन्दर्य चतुर्दिक् प्रसरित हुआ तो मदन के नयन भी लज्जावनत हो गये।

यत्र वै राधया रासे श्रृंगारोऽकारि मैथिल ॥
तत्र गोवर्द्धने जातं स्थलं श्रृंगारमण्डलम् ॥

(ग.सं.वृं.खं.२०/१५,१६ एवं ग.सं.गि.खं.७/२७)

रास के मध्य यहाँ श्रीजी अपनी सखी सहचरियों से सज्जित हुईं। अतः श्री गोवर्द्धन पर यह स्थान, श्रृंगार-मण्डल के नाम से विख्यात हो गया।

राधा-माधव के द्वापरकालीन मधुरिमामय मंगलायतन चरितों के कारण तो यह स्थान (श्रृंगार मण्डल) प्रणम्य है ही, इसके अतिरिक्त इसी महामहिमामण्डित मणि-मुक्ता-माणिक्यमयी मही से ही श्री गोवर्धन नाथ (श्रीनाथ जी) का प्राकट्य हुआ। जिसके प्रमाण '८४ वैष्णव वार्ता', 'गर्गसंहिता' आदि कई ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

कलियुग के ४ हजार ८ सौ वर्ष व्यतीत होने पर श्रृंगार मण्डल से श्री हरि का स्वतः सिद्ध स्वरूप प्रकट होगा।

श्रीनाथं देवदमनं तं वदिष्यन्ति सज्जनाः ।
गोवर्द्धने गिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः॥

(ग.सं.गि.ख.७/३१)

देवों के मद का दमन करने हेतु इस श्री विग्रह को लोगों की उद्दीप भावनायें "श्रीनाथ जी" कहेगीं। कलिकाल में जो जीव इनका दर्शन करेगें, वे कृत्कृत्य हो जायेगें। आर्य ऋषियों की तपोभूमि, श्रेष्ठ भगवदीयों की भजनभूमि, विश्वमनीषा की आदि उद्गम-स्थली, इस भारतभूमि में चार नाथ हैं। पूर्व में जगन्नाथ जी, दक्षिण में रंगनाथ जी, पश्चिम में द्वारिकानाथ जी, उत्तर में बद्रीनाथ जी और भारत के मध्यस्थ हैं "श्री गोवर्द्धन नाथ जी (श्रीनाथ जी), आप पाँचों नाथ देवों के भी देव हैं –

श्रीनाथं देवदमनं पश्येद्गोवर्द्धने गिरौ ।
चतुर्णां भुवि नाथानां यात्रायाः फलमाप्नुयात् ॥

(ग.सं.गि.खं-७/३७)

गोविन्द कुण्ड

अपना वारि वर्षण विफल विलोककर इन्द्र चौंक गया। "अवश्य ही ये कोई शक्तिशाली सत्ता है।"

इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ।
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥

(भा.१०/२७/२३)

देवमाताओं ने पुरन्दर को प्रेरित किया – "पुत्र ! सुरभि गौ को लेकर जाओ, वे गोपाल हैं। गौदर्शन से उनका हृदय गद्गद हो जायेगा। सुरभि सर्वेश को और सर्वेश को सुरभि अत्यन्त प्रिय है।" सुरभि ने तो कह भी दिया – "सर्वेश्वरेश्वर ! हमारे स्वामी, हमारे इन्द्र तो आप ही हैं। हम आपके अतिरिक्त अन्य को नहीं जानती।"

कृष्ण कृष्ण महायोगिन विश्वात्मन् विश्वसम्भव ।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥

(भा.१०/२७/१९)

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥
इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ।
अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥

(भा.१०/२७/२०,२१)

एकाकी जाने का साहस न था, अतः सुरपति, सुरभि व सुरर्षियों सहित आया। दूर से देखा, प्राणेश पाषाण-शिला पर बैठे हैं। ऐरावत से कूदकर कनक, किरीट कृष्णाङ्घ्रि में रख दिया और स्तवन करके सविधि अभिषेक किया। सुरभि गौ-दुग्ध से ही, यह गोविन्द कुण्ड बना और आकाश गंगा के जल से जो अभिषेक हुआ, उससे मानसी गंगा बनी।

सुरभि सुरपति संग लिये निरखि कृष्ण मुख इन्दु ।
कियो राज अभिषेक तहँ भयौ कुण्ड गोविन्द ॥

(जगदानन्द जी)

सुरभि की दुग्ध धाराओं से गोविन्द ने जो स्नान किया, उससे इस पर्वत पर 'गोविन्द कुण्ड' प्रकट हो गया। जो बड़े-बड़े पापों को हर लेने वाला परम पावन तीर्थ है। गोविन्द कुण्ड गिरिराज के अधर हैं। यहाँ इन्द्र ने श्री कृष्ण का अभिषेक किया था।

यह सुरम्य स्थल अनेकों सरस लीलाओं को संजोये है।

प्रथम कथा

एक दिन गोविन्द स्वामी, श्री नाथ जी के साथ गिल्ली-डंडा खेल रहे थे।

राम और श्याम वृन्दावन की नदी, पर्वत, घाटी, कुञ्ज-वन और सरोवरों में वे सभी खेल खेलते थे, जो साधारण बच्चे संसार में खेला करते हैं।

पहले श्री नाथ जी गिल्ली पर चोट चला रहे थे, गोविन्द स्वामी दौड़-दौड़ कर गिल्ली लेकर आते थे। एक बार गोविन्द स्वामी ने गिल्ली पकड़ ली, तो श्री नाथ जी पर दाँव आया। गोविन्द स्वामी बोले – "चलो गोपाल ! अब हमारा दाँव दो।" हाथ में डंडा लेकर, गोविन्द स्वामी ने बड़ी जोर से गिल्ली मारी। गिल्ली बहुत दूर गयी। श्री नाथ जी सोचने लगे यदि मैं दिनभर खेलूँ, तो भी इनका दाँव नहीं चुका सकता। अतः श्री नाथ जी दाँव दिये बिना ही मन्दिर भाग आये। गोविन्द स्वामी भी उनके पीछे भागे। श्री नाथ जी को मन्दिर में विराजमान देखकर गोविन्द स्वामी ने क्रुद्ध होकर श्री नाथ जी को ही गिल्ली मारी। पुजारी जी ने देखा, उसने इनका अपराध समझकर इन्हें धक्का देकर मन्दिर से बाहर कर दिया। भला पुजारी, इनके प्रेम को जान ही कैसे सकता था? बाहर जाने के बाद, गोविन्द स्वामी, कुण्ड (इसी गोविन्द कुण्ड) के किनारे जाकर बैठ गये और सोचने लगे कि आखिर वह श्री नाथ इसी मार्ग से तो निकलकर खेलने के लिए वन को जायेगा। लंगवार लगाकर हमें धक्का देकर बाहर निकलवा दिया, पर मैं उसे इसका फल अवश्य चखाऊँगा –

पोत लैके आयो भाजि गँवार।
खोलि किबार धस्यो घर भीतर सिखे दिये लगवार॥
कबहुँ तो निकसैगौ बाहर ऐसी दुऊंगो मार।
'गोविन्द' प्रभु सौ बैर अब करिकै सुखी न सोवै यार॥

अब तो श्री नाथ जी के हृदय में सोच हुआ कि दिन कैसे बीतेगा? मुझे तो खेले बिना रहा जायेगा ही नहीं और ये गोविन्द मार्ग में ही डटा बैठा है। अब इसे कैसे संतुष्ट किया जाए, कैसे इसका दाँव चुकाया जाए? इतने में गुसाँई श्री विट्ठल नाथ ने श्री ठाकुर जी के सामने भोग रखा, परन्तु वह भोग ही नहीं आरोग रहे थे। गुसाँई जी ने श्रीनाथ जी से पूछा – "जै जै ! आज आप भोग आरोगते क्यों नहीं हैं? " श्री नाथ जी ने गुसाँई जी से कहा – "मुझको ये कोई पदार्थ अच्छे ही नहीं लग रहे है, यदि आप मुझे खिलाना चाहें तो पहले गोविन्द सखा को प्रसन्न करो। उसका मुझपर दाँव था परन्तु मैं दाँव दिये बिना भाग आया इसलिए उसने मुझे गिल्ली मारी। उनके भाव को पुजारी जी ने तो जाना नहीं, उल्टे उसका अपराध मानकर उसे धक्का देकर बाहर निकाल दिया। अब वह मुझको तमाम उल्टी-सीधी बातें सुना रहा है। आप उस ब्राह्मण को शीघ्र मनाकर मेरे पास ले आइये तब ही मैं भोग आरोगूँगा। वह क्रोध में है। यदि मैं बाहर निकलूँगा तो वो बहुत मार लगाएगा मुझे।" गुसाँई जी गोविन्द सखा को मनाने चले, तो इधर वह उन्हें अपनी ओर आते देखकर उठके वहाँ से भागने लगे। गुसाँई जी बोले – "अरे गोविन्द ! भागो मत, मारेंगे नहीं भाई।" गोविन्द बोले – "पहले ही हमें धक्का देकर निकाल दिया है।" गुसाँई जी बोले – "नहीं नहीं गोविन्द, अब तुम्हें कोई नहीं मारेगा। देख, नाथ जी तेरे बिना भोजन ही नहीं कर रहे हैं। तेरे सखा ने कहा है कि हम दोनों पहले परस्पर गले लगेंगे, फिर ही एक साथ बैठकर, मिलकर खायेंगे।" गुसाँई जी ने गोविन्द सखा को बहुत समझाया; समझ भी गये।

मन्दिर की ओर आते समय गोविन्द स्वामी मन में सोचने लगे कि मुझे देखकर श्री नाथ जी सिर नीचा कर लेंगे तब तो माफ कर दूँगा और तनिक भी सिर उठाया तो बिना मारे नहीं छोड़ूँगा, चाहे कुछ भी हो जाये। गोविन्द सखा की बात नाथ ने रख दी। गोविन्द को देखते ही श्री नाथ जी ने मस्तक नत कर दिया, बस यह देखते ही – गोविन्द का क्रोध शांत हुआ और दोनों ने संग भोग पाया।

द्वितीय कथा

एक दिन श्री नाथ जी और गोविन्द सखा, कान्हा भंगी के साथ खेल रहे थे। खेल में कान्हा भंगी हार गये, तो पहले की शर्तानुसार नाथ जी ने उसे घोड़ा बनाया और उसकी पीठ पर चढ़ गये। जब खेल खत्म हो गया और श्री नाथ जी मन्दिर में जाने लगे तो गोविन्द सखा ने कहा – "जै जै ! श्री गुसाँई जी तो मन्दिर में बड़ा आचार – विचार करते हैं और आप अब भंगी को छूकर मन्दिर में प्रवेश करेंगे, राजभोग आरोगेंगे, इस प्रकार आप मन्दिर मर्यादा मिटाकर भ्रष्टाचार फैलाएँगे, यह उचित नहीं है। मुझसे तो यह अनीति सही नहीं जा सकती। मैं तो श्री गुसाँई जी को अवश्य शिकायत करूँगा।" नाथ जी ने कहा – "भैया देख, मैं तेरा सखा हूँ न ! ऐसा नहीं करना। मुझे जी भर कर अपने सखाओं के साथ खेलने दो। मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ।" परन्तु गोविन्द सखा ने एक नहीं मानी। इनका कहना था कि आप पहले सभी वस्त्र सहित कुण्ड (इसी गोविन्द कुण्ड) में स्नान करके मन्दिर में प्रवेश करें।

गोविन्द ने कहा – "अच्छा ! स्नान नहीं करना चाहते तो कम से कम कुण्ड पर चल कर मंत्र पढ़कर दो-चार छीटें तो इस नील वपु पर डाल लो।" नाथ जी ने गोविन्द सखा का यह प्रस्ताव सहज स्वीकार कर लिया। कुण्ड तट पर बैठ कर जब जल लेने हेतु हाथ बढ़ाया, तभी विनोदी गोविन्द ने धक्का देकर नाथ जी को कुण्ड में गिरा दिया और स्वयं भी कूद पड़े। नाथ जी गोता खाने लगे तो गोविन्द सखा ने बाँह पकड़ कर निकाल दिया और फिर गोविन्द ताली बजाते हुए अपने घर को भाग गये। श्री नाथ जी मन्दिर में आकर विराजे। गुसाँई जी सेवा में गये और नाथ जी के आर्द्र वस्त्र देखे तो पूछे – "जै जै ! यह सब वस्त्र कैसे भीगे हैं? " श्री नाथ जी ने मुँह भिचका कर कहा – "गोविन्द ने धक्का दे कर गिरा दिया, अतः मेरे सभी वस्त्र भीग गये।" गुसाँई जी ने तुरंत गोविन्द सखा को बुलाया और बड़ी फटकार लगाई। गुसाँई जी – "गोविन्द यह भी कोई खेल है? जिससे प्राण हथेली पर आ जायें।" गोविन्द सखा ने हँस कर कहा – "गुसाँई जी, आपके लाल ने भंगी के बेटा को घोड़ा बनाकर उस पर सवारी की थी। मैंने कहा कि स्नान करके मन्दिर में चलो, परन्तु ये नहीं माने तब मैं जैसे-तैसे इन्हें स्नान कराकर मन्दिर ले आया। यदि मैं ऐसा नहीं करता तो आपका आचार-विचार समाप्त हो जाता।" यह सुनकर गुसाँई जी का हृदय भर आया और

कहने लगे कि धन्य गोविन्द सखा ! जिनके साथ खेले बिना श्री नाथ जी का मन नहीं मानता।

रसखान जी भी जब उन नीलोज्ज्वल कांति युक्त, सौन्दर्य सिंधु श्याम की छवि पर आकृष्ट हो उसका दर्शन करने आये, तो इस पठान देह को किसी ने अन्दर न जाने दिया, धक्का देकर मन्दिर से बाहर कर दिया। देह ने भीतर जाने का प्रयास छोड़ दिया, पर मन मनभावन के अंजन रंजित, निर्मल दीर्घ दृगों को देखने के लिए अड़ा था। रसखान ने सुन रखा था कि गोविन्द कुण्ड उनका क्रीड़ा-स्थल है। वह नित्य यहाँ अपने यारों के साथ खेलने आता है, सो गोविन्द सर पर आकर बैठ गये। तीन दिवस हो चले, अन्न-जल को तिलांजलि दिये। प्राण विकल हो रहे थे किन्तु निकल भी नहीं रहे, पड़े-पड़े हृदय-बीन बज रहा था –

देस बिदेस के देखे नरेसन रीझि की कोउ न बूझ करैगौ ।
तातें तिन्हें तजि जान गिरयौ गुन सौं गुन औगुन गाँढि परैगौ ॥
बाँसुरी वारौ बड़ौ रिझवार है स्याम जो नेकु सुढार ढरैगौ ।
लाड़लौ छैल वही तो अहीर कौ पीर हमारे हिये की हरैगौ ॥

चौथे दिन गुसाँई जी श्रीनाथ जी को साथ लेकर आये –

मोहन छवि 'रसखान' लखि अब दृग अपने नाहिं ।
खैंचत आवत धनुष से छूटत शर से जाहिं ॥

इसके बाद गोविन्द कुण्ड में स्नान कर रसखान जी वल्लभकुल में दीक्षित हुए।

रसखान जी की ब्रज रति

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर कौ तजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवौं निधि कौ सुख नंद की गाय चराय बिसारौं ॥
'रसखान' सदा इन नयनन्हिं सौं ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिन हू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं ॥

मानुस हौं तो वही 'रसखान' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरौ चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि कौ जो धरयौ कर छत्र पुरंदर धारन ।
जो खग हौं तो बसेरौ करौं नित कालिंदी कूल कदम्ब की डारन ॥

रहीम जी की आपबीती भी यही है। आप भी सुन्दरता के सागर श्यामसुन्दर का सौन्दर्य सुनकर यतीपुरा (गोवर्धन) आये, दर्शनार्थ। पठान देह देखकर द्वारपालों ने बाहर

ढकेल दिया, झुंझलाकर मन बोला – "ऐसी साहिबी ऐसी बेवकूफी" अर्थात् दर्शन का व्यसन दिया, तो ये म्लेच्छ तन क्यों दिया?

और म्लेच्छ तन ही देना था तो फिर दर्शन का व्यसन क्यों दिया?

हरि 'रहीम' ऐसी करी ज्यों कमान सर पूर ।
खैंचि अपनी ओर को छांड दियो अति दूर ॥

सर्वत्याग कर, झलक देखने आया, तो निकट भी नहीं फटकने देते अब मैं नहीं तुम स्वयं आओगे, कहकर आ गये और गोविन्द कुण्ड की छतरी पर बैठ गये। गुसाँई विट्ठलनाथ जी को जब ज्ञात हुआ तो प्रसाद भेजा किन्तु वह अस्वीकार कर दिया रहीम बोले –

खैंचि चढ़नि ढीली ढरनि कहौ कौन यह रीति ।
आज काल्हि मोहन गही वंश दिया की रीति ॥

कहकर रहीम जी ने नाथ जी की ओर से मुँह फेर लिया। नाथ जी थाल रखकर अन्तर्धान हो गये। एक बार देखने के बाद अधिक समय तक भला कोई कैसे अपने नेत्र निग्रह कर सकता है? नेत्रों ने पुनः वह दर्शन चाहा पीछे घूमे, किन्तु तब तक नाथ जी अन्तर्धान हो गये थे। अब तो विरह ने व्याकुल कर दिया भुवन मन-मदन मोहन की मञ्जुल मूर्ति देखने को।

कमलदल नैंननि की उनमानि ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मन्द-मन्द मुस्कानि ॥
यह दसननि दुति चपलाहूँ ते महाचपल चमकानि ।
वसुधा की बस करी मधुरता सुधा पगी बतरानि ॥
चढ़ी रहै चित उर विशाल की मुकुतमाल थहरानि ।
नृत्य समय पीताम्बर हू की फहरि-फहरि फहरानि ॥
अनुदिन श्रीवृन्दावन ब्रज तें आवन आवन जानि ।
वे 'रहीम' चित ते न टरति हैं सकल स्याम की बानि ॥

मोहन छबि नैंननि बसी पर छबि कहाँ समाय ।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय ॥

अन्तर दाब लगी रहै धुवाँ न प्रगटै कोय ।
कै जिय जानै आपनौ कै जा सिर बीती होय ॥

ऐसा लगा मानो ये देह, वियोग-वह्नि में दग्ध हो जाएगा। पलक ऊपर उठती है किन्तु कमलनयन को न देखकर फिर झप जाती है। इस व्याकुलता ने वात्सल्य धाम को फिर से बुला लिया, रहीम जी दर्शन करके मगन हो गये।

पूंछरी

श्री गिरिराज जी की सीमा का यह गाँव राजस्थान प्रांत में आता है, परिक्रमा यहाँ से पश्चिम में घूमती है। रास के मध्य से जब रास बिहारी अन्तर्हित हो गए तो विरह व्याकुल गोपाङ्गनायें अचर-सचर से पूछने के लिए परस्पर बोलीं –

"अरी पूछ री"

"वीर, पूछ री"

अतः इस स्थान का नाम 'पूंछरी' ही हो गया। समीपस्थ हैं – अप्सरा कुण्ड, नवल कुण्ड।

गर्गसंहितानुसार

गिरिराज जी के सभी तीर्थों में उनके अंगों की भावना की गई है, उसी क्रम में "पूच्छ कुंडे तथा पुच्छं" इस स्थान पर पूँछ की भावना की गई है। नवल कुण्ड का पौराणिक नाम ही पुच्छ कुण्ड है। इसलिए भी यह स्थान पूंछरी नाम से विख्यात है।

(ग.सं.गि.ख.८/११)

ब्रजवासियों के अपने मत में –

मयूराकार गिरिराज जी (कतिपय की भावनानुसार गौ-आकार गिरिराज जी) की पूँछ के रूप में इसे मानते हैं। इसी कारण गाँव का नाम पूँछरी है। गिरिराज जी के दक्षिण छोर पर पूँछरी के लौठा का मन्दिर है, इसमें उनका लम्बा चौड़ा सिंदूर चर्चित विग्रह दर्शनीय है। श्री कृष्ण जब द्वारिका जाने लगे तो उन्होंने अपने प्रिय मित्र लौठा से भी चलने को कहा। लौठा ने कहा – "मैं ब्रज तज अन्यत्र नहीं जाऊँगा किन्तु तुम्हारे बिना मैं अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करूँगा" तो श्री कृष्ण बोले – "मैं लौटकर न आ जाऊँ, तब तक तुम बिना अन्न-जल के भी प्राण त्याग नहीं कर सकते, तभी से वे यहाँ तपस्यारत हैं, बिना खाए-पिए ही पुष्ट हैं।

अन्न खाय नहिं पानी पीवै तोऊ तू परयौ सिलौटा।
दूध न छोड़ै दधि न छोड़ै अरे तू तो पी गयो छाछ कठौता॥
धनि धनि पूंछरी के लौठा।

कहकर ब्रजवासी जन इनको बड़ा सम्मान देते हैं। गिरिराज महाराज की 'जय ध्वनि' के साथ आपका जयघोष ब्रजवासी अवश्य करते हैं। बोलो –

"श्री गिरिराज महाराज की ऽ ऽ ऽ ऽ जय !"

"पूंछरी के लौठा की ऽ ऽ ऽ ऽ जय !"

ब्रजवासियों की वाणी में आपका परिचय

गिरिवर की बगल में रहत आन्यौर जतिपुर,
यहाँ के लोग बड़े मस्त जु सुलौठा है।
मानसी गंगा भरी रहै दूध ते नहामै
ब्रजवासी काछ-काछ लंगोटा है॥
गैयन के संग संग आवत है सखा वृन्द
उन्ही में चलत एक नन्द जू को ढोटा है।
हाथ धरैं सोटा दूध पीवै अधोटा
गिरिवर की बगल में बैठ्यो पूंछरी को लौठा है॥

अप्सरा कुण्ड एवं नवल कुण्ड

तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः।
जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः॥

(भा.१०/२७/२४)

परम सुन्दरी रमणीय अप्सराओं ने यहाँ नृत्य किया, जिससे इस सरोवर का नाम 'अप्सरा कुण्ड' पड़ा तथा इसी के समीप जिसे पूर्व में पूछरी के निकट होने से 'पूँछ कुण्ड' जाना जाता था परन्तु भरतपुर की महारानी नवल के द्वारा इसे 'नवल कुण्ड' की संज्ञा दी गई। वैसे नित्य नवल नन्दनन्दन का कुण्ड होने से यह नवल कुण्ड है। दोनों सरोवरों के पास सघन कुञ्जों व कदम्ब वृक्षों से आच्छादित रासस्थली है। इन्हीं सरोवरों के निकट अप्सराविहारी मन्दिर, कुण्डेश्वर महादेव मन्दिर तथा राघवपंडित की गुफा है, जिसमें वे भजनाविष्ट हुये थे और उनके पश्चात् सिद्ध संत पंडित रामकृष्ण दास बाबा ने भी यहीं भजन किया था।

सुरभि कुण्ड

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः।
जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः॥
इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः।
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात्॥

(भा.१०/२७/२२,२३)

पूंछरी से परिक्रमा मार्ग में चलते-चलते दाऊ जी मन्दिर के उत्तर की ओर 'सुरभि कुण्ड' के दर्शन हैं, जहाँ सुरभि गाय ने अपने दूध से श्रीकृष्णाभिषेक किया, उस अभिषेक के दुग्ध से ही यह कुण्ड बना। यहीं अष्टछाप के महाकवि श्री परमानन्द दास जी ने विग्रह संवरण किया।

श्री परमानन्द दास जी

श्री परमानन्द स्वामी तोक सखा के अवतार थे। द्वापरांत में तो श्री कृष्ण मात्र एकादश वर्ष ही अपने प्राणोपम सखाओं को सख्य का सौख्य दे सके थे, अतः उन अतृप्तात्माओं ने कलियुग में पुनः अवतार लेकर उनके संग क्रीड़ा कर आत्म तृप्ति की। जिस प्रकार द्वापर में ब्रज गोपियाँ प्रेम की उन्नत ध्वजा हुईं, उसी प्रकार कलियुग में श्री परमानन्द दास जी प्रेम की ध्वजा हुए। श्री परमानन्द स्वामी जी का आविर्भाव कन्नौज में कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में वि.सं. १५५० मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को हुआ था। गान कला में परम प्रवीण होने पर पिता के बारम्बार आग्रह किये जाने पर भी इन्होंने कभी जीवन में धनोपार्जन नहीं किया। जहाँ भी जाते तो कर्णप्रिय कीर्तन समाज करते। एक बार प्रयाग में आये हुए थे। अड़ैल ग्राम में आचार्य पाद का दर्शनानन्द प्राप्त हुआ। आचार्य जी ने स्वयं कृपा करते हुए इन्हें भगवल्लीला गाने का निर्देश किया। परमानन्द जी ने विरह का पद गाया। आचार्य जी ने बाल लीला गाने को कहा तो परमानन्द जी ने अनभिज्ञता व्यक्त की तब आचार्य जी की कृपा वर्षा से इनका सर्वत्र प्रवेश हो गया। आचार्य पाद श्रीमद्वल्लभ प्रभु से शिष्यत्त्व स्वीकार करने पर इन्हें नित्य लीला राज्य का अनुभव होने लगा।

एकबार जन्मभूमि कन्नौज में परमानन्द दास जी के मुख से "हरि तेरी लीला की सुध आवै" यह विरह गान सुनकर आचार्य पाद तीन दिन पर्यन्त अचेतावस्था में रहे –

हरि तेरी लीला की सुधि आवति ।
कमल नयन मन मोहन मूरति मन मन चित्र बनावति ।
एक बार जाइ मिलत मया करि सो कैसे बिसराति ।
मृदु मुस्कानि बंक अवलोकनी चालि मनोहर भावति ।
कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगति कबहुँक पिक-स्वर गावति ।
कबहुँक संभ्रम क्वासि-क्वासि करि संग ही उठि-उठि धावति ।
कबहुँक नैन मूँदि अंतरगति बनमाला पहिरावति ।
'परमानन्द' प्रभु श्याम ध्यान् करि ऐसें ही विरह गंवावति ।

उसके बाद आचार्य चरण के साथ ही परमानन्द दास जी गोकुल आये। बहुत दिन नवनीत प्रिया जी की कीर्तन सेवा की, तदुपरान्त नाथ जी ने मन आकृष्ट किया तो आचार्य

पाद ने नाथ जी की कीर्तन सेवा सौंप दी जिसे आजीवन इन्होंने पूर्ण निष्ठा से सम्भाला। एकबार श्री सूरदास जी, श्रीरामदास जी, श्री कुम्भनदास जी आदि भगवदीय श्री परमानन्द दास जी के प्रवास पर आये। वैष्णव दर्शन के अतिशय सुख में परमानन्द दास जी ने गाया –

आप मेरे नन्दनन्दन के प्यारे।
माला तिलक मनोहर बानौ त्रिभुवन के उजियारे॥

अनन्तर –

"जन संग छिनक जो होई "

इस पद का गान किया।

वैष्णवों ने जिज्ञासा रखी – "परमानन्द दास जी ! सर्वोत्कृष्ट प्रेम किसका है? " परमानन्द जी ने झट परिगणन करके निर्णय दे दिया –

गोपी प्रेम की धुजा ब्रजजन सम धर पर कोउ नाहीं।

ऐहिक लीला-संवरण काल में सुरभि कुण्ड पर श्री गुसाँईजी के अंक-पर्यंक में श्री परमानन्द दास जी ने कई पदों का गान किया, "परमानंद दास जी ! इस समय आपकी चित्त वृत्ति कहाँ है? " गुसाँईजी के इस प्रकार पूछे जाने पर परमानन्द दास जी ने **"राधा बैठी तिलक संवारति"** उक्त पद का गान किया। **"कहा करौं बैकुण्ठहि जाय"** कथित पंक्ति का आजीवन निर्वहन किया। इस प्रकार सं.१६४१ भाद्रपद, कृष्ण पक्ष, ९ तिथि को मध्याह्न काल में पार्थिव से पृथक होकर युगल सरकार की नित्य लीला का अनुसन्धान करते हुए उसमें प्रविष्ट हो गए।

दाऊ जी मन्दिर

सुरभि कुण्ड के निकट ही गिरिराज पर्वत पर दाऊ जी मन्दिर है। मन्दिर में श्रृंगार शिला दर्शनीय है।

ऐरावत कुण्ड

सुन्दर कदम्ब वृक्षों के मध्य ऐरावत कुण्ड है, जहाँ इंद्र के आदेश से ऐरावत हाथी अपनी सूँड़ में आकाश गंगा का जल श्रीकृष्ण के अभिषेक के लिए लाया था। पास ही में पर्वत पर हाथी के पाँव का चिन्ह भी है।

रूद्र कुण्ड

प्रथम लीला

८ योजन लंबे, ५ योजन चौड़े, २ योजन ऊंचे इस बृहद् गिरि गोवर्धन की पूजा का समाचार बिना प्रचार के प्रसारित हो गया। चार-चार बिलांद के ये नन्हे कृष्ण सखा कछनी पकड़कर दौड़े जा रहे हैं, मार्ग में जो भी मिलता है, उसके सामने खड़े होकर बड़े गर्व से कहते हैं –

'हमारे कान्हा की आज्ञा है, आज 'गोरधन' पूजन होगा।'

चलो लौटो घर; नये नये पट-अलंकार पहनकर आओ। फिर गोष्ठ में जाकर, अपनी गौ वत्सों को भी अवगत कराया, इस नूतन-पूजन से। उनके श्रृंगों पर रंग-बिरंगे फूलों की माला लटका दी, गले में मोती माला, मस्तक पर लाल तिलक, ककुद पर श्वेत, रक्त, पीत, नील जड़ाऊ वस्त्र और स्वयं अपनी यष्टि में सुन्दर झालरदार माला लटकाकर, मस्तक पर जड़ाऊ पाग और उस पर रंग-बिरंगी कलंगी लगाये, जब हजारों ग्वाल निकले गिरिराज की ओर, तो ऐसा प्रतीत हुआ: ब्रज के सब ग्वाल दूल्हा बनकर विवाहने जा रहे हैं।

दूसरी ओर से, गोपियों का यूथ देखकर लग रहा था कि सारा ब्रज आदिशक्ति-महाशक्तियों से आलोड़ित है। पार्वती कान्त तो ब्रज के एक भी उत्सव से वंचित नहीं रहते। सो आज भी अंगों में विभूति लेपन किया, बाघम्बर का दुपट्टा धारण किया, शीघ्रता में जटाजूट बाँधना भूल गए और चल दिए त्रिशूल उठाकार ।

हिमाद्रि- तनया बड़ी विस्मित थीं।

न कभी गमन प्रयोजन बताते हैं .... ! '

न कभी साथ चलने को कहते हैं .... ।'

साहस करके पास गयीं और पूछ ही लिया।

शिवा – "नाथ ! कहाँ उत्सव-रस प्रदान करने जा रहे हैं? "

शिव – "देवि ! भला, रसराज के समीप, मैं रस प्रदान करने जाऊँगा? "

शिवा – "हे वामदेव ! आखिर आप, कहना क्या चाहते हैं? "

शिव – "सुनो, कैलाश के अतिरिक्त मेरा विश्राम-सदन वहीं है जहाँ मेरे स्वामी हैं। कैलाश छोड़कर, उनका सामीप्य पाने ही तो मैं जाता हूँ । इस समय उनकी रसमयी

लीलायें ब्रज धरा के कण-कण को अभिषिञ्चित कर रहीं हैं। मेरा सौभाग्य, जो मुझे प्रारम्भ से उनका दर्शन अवसर मिला। वहीं आज गिरि-गौ पूजन की नवीन लीला प्रादुर्भूत हो रही है, उसके लिए ब्रज में तैयारियाँ जारी हैं।

आज की यह लीला उनके अनेक कार्य एक साथ निष्पन्न करेगी: इन्द्र का मान-मर्दन, ब्रजवासियों की गिरि-गौ में अपूर्व भक्ति, नन्द बाबा के बढ़ते हुए धन का व्यय, उनका अपना स्वत्व – श्री राधा दर्शन। इस अवसर पर मेरी अनुपस्थिति मेरे लिए हानिकारक होगी।

इन्द्र द्वारा हो रही अतिवृष्टि के मध्य गोवर्द्धनोद्धरण का दर्शन अतिशय मनोहर होगा ....

अच्छा, मैं तो चला .... ।"

शिवा – "गंगाधर ! आप कहते हैं, वहाँ प्रलयकालीन अतिवृष्टि होगी और आप जटाजूट आबद्ध किये ही चल दिये। एक तो वहाँ पहले ही बहुत जल होगा, फिर आप और जाकर वहाँ अपनी गंगा बहायेंगे।"

शिव – "गिरिजे ! यह अच्छा किया तुमने, जो स्मरण करा दिया"।

झट, जटायें बाँध लीं।

गर्गसंहितानुसार

श्रुत्वोत्सवं शैलवरस्य मन्मुखाद्गङ्गाधरो बद्धकपर्दमण्डलः ।
कपालभृन्नस्थिजभस्मरूषितः सर्पालिमालावलयैर्विभूषितः ॥
धत्तूरभङ्गाविषपानविह्वलो हिमाद्रिपुत्रीसहितो गणावृतः ।
आरुह्य नन्दीश्वरमादिवाहनं समाययौ श्रीगिरिराजमण्डलम् ॥

(ग.सं.गि.खं.२/१३,१४)

गिरिराजोत्सव सुनकर शिवजी ने अपना श्रृंगार आरम्भ किया, कपाल में जो राख थी, सब अंगों में लपेटी, गले में रुंड- मुंड निर्मित माला, सर्पों के बाजूबन्द, सर्पों के कुण्डल: अद्भुत श्रृंगार है !

उत्सव में मस्ती आवश्यक है।

धत्तूरभृङ्गाविषपान .....

मस्ती के लिए घुटी हुई भांग मँगायी।

भांग (नशीला पदार्थ), धतूरा (नशीला विष) और उसमें भी ऊपर से विष मिश्रित भांग का पान किया, तब कुछ मादकता आई; मस्ती में झूमने लगे शशांक शेखर –

पार्वतीजी ने भी चलने की इच्छा प्रकट की।

शिव – "अवश्य ! अवश्य ! आओ तुम भी मेरे साथ वृषभारूढ़ हो जाओ।"

(शिवगण भी चलने को आतुर थे, साहस कर बोले)

शिव सदस्य – "महाराज ! हम ....? "

शिव – "हाँ ! हाँ ! तुम लोग भी चलो, आनन्द करो, ब्रजेश के गिरिराजोत्सव में।"

अब तो कबन्ध, विकृतानन, कुण्ड, कुण्डक, पिष्टम्भ, काकपादोदर, चतुर्वक्त्र, षण्मुख, भृंगी-रिटि, चैत्र, मधुपंगि, केकराक्ष, विकृत, दुन्दुभ एवं पर्वतक ......

चौपाई –

कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू । बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना । रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना ॥

(रा.बा.कां.९३)

कोई वक्रमुखी है, कोई अत्यन्त कुरूप है, कोई बहुत विकराल है, किसी का सारा मुख ही दाढ़ी-मूँछ से भरा हुआ है, किसी का मुख पेट में है, किसी के मुख ही नहीं है, एक का मुख पीठ की ओर है, एक मस्तक हीन है, एक नेत्र हीन है, एक के नेत्र ही नेत्र हैं चारों तरफ, एक के कान ही नहीं हैं, तो एक के असंख्य कान हैं, किसी के हाथ उल्टे लगे हुए हैं।

सब-का-सब गण समुदाय आशुतोष के साथ चलने की आज्ञा पाते ही खुशी से उछल पड़ा। कोई सींगी बजाने लगा, कोई गोमुख, तो कोई डमरू, कोई अपने वाहन पर उल्टा बैठ गया, कि भाई पता नहीं कहाँ से गिरिराज लीला आरम्भ होने लग जाय ... ! यदि पीछे से हुई, तो कम से कम सब को सूचित तो कर दूँगा। भगवान् शिव – उमा गणों से समावृत होकर यहीं "श्री रूद्रकुण्ड" स्थल पर आकर बैठ गये –

"यह अच्छा स्थान है, यहाँ से दर्शन स्पष्ट होगा।

अतः यहीं से गिरिराज लीला का दर्शन-आनन्द लेंगे"... शशिधर बोले । यहाँ से जब शंभु ने गिरिधर की गिरिराज लीला का दर्शन किया, तो ध्यान में एकदम मग्न हो गये, नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी, अतः इसे "रुदन कुण्ड' भी लोग कहते हैं।

समीपस्थ लीला स्थलियाँ है – कृष्ण की कन्दुक क्रीड़ा का चौगान स्थल, श्रीजी की बैठक, जान-अजान वृक्ष, पूजनी शिला आदि।

द्वितीय लीला

महारास में जब श्रीजी ने रासेश्वर से कहा –

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः॥

(भा.१०/३०/३८)

श्रीकृष्ण ने प्रिया जी से कहा, आप मुझ पर स्कन्धारोहण करो –

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥

(भा.१०/३०/३९)

उनके अन्तर्धान होने पर यहाँ प्रिया जी को वधू शब्द कहा गया है उनके लिए तीन बार वधू शब्द का प्रयोग हुआ है –

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ।
वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥

(भा.१०/३०/२६)

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥

(भा.१०/३०/३२)

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥

(भा.१०/३०/३९)

क्योंकि वह अत्यन्त प्रिय थीं जिसके पीछे समस्त गोपीवृन्दों को श्रीकृष्ण ने छोड़ दिया उनके अन्तर्धान होते ही वह वधू रुदन करने लग गयी –

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥

(भा.१०/३०/४०)

श्रीजी ने यहाँ कृष्ण विरह में रुदन किया इस लिए भी इसका नाम रूद्र कुण्ड पड़ गया, वह स्थल यही है।

श्री गिरिराज लीला

नमामि गोवर्द्धनपादपल्लवं, स्मरामि गोवर्द्धनरूपमुज्ज्वलम् ।
वदामि गोवर्द्धन नाथ मंगलं गोवर्द्धनात्किंचिदहं न जाने ॥

(केशवाचार्य कृत गोवर्धन शतक)

छांडि देहु सुरपति की पूजा ।
कान्ह कह्यो गिरि गोवर्धन ते और देव नहिं दूजा ॥
गोपनि सत्य मानि यह लीनी बड़े देव गिरि राजा ।
मोहिं छांडि पर्वत पूजत हैं गर्व कियो सुर राजा ॥
पर्वत सहित धोइ ब्रज डारौं देउँ समुद्र बहाई ।

मेरी बलि औरहि लै पर्वत इनकी करौं सजाई ॥
राखौं नहीं इन्हैं भूतल में गोकुल देउँ बुड़ाई ।
'सूरदास' प्रभु जाके रक्षक सँगहि रहाई ॥

(सूरसागर)

इन्द्रापकर्ष करके कन्हैया ने इन्द्रयाग से तो सबका मन हटा ही दिया था, अब तो चारों ओर जय गिरिराज, जय गिरिराज ही हो रही है –

ब्रज घर घर अति होत कोलाहल ।
ग्वाल फिरत उमँगे जहँ तहँ सब अति आनंद भरे जु उमाहल ॥
मिलत परस्पर अंकम दै दै शकटनि भोजन साजत ।
दधि लवनी मधु माट धरत लै राम श्याम संग राजत ॥
मन्दिर ते लै धरत अजिर पर षटरस की जिवनार ।
डालन भरि अरु कलश नए भरि जोरतहैं परकार ॥
सहस शकट मिष्टान्न अन्न बहु नंदमहर घरही को ।
'सूर' चले सब लै घर घर ते संग सुवन नंदजी को ॥

घर-घर से डला भर-भरकर मनों भर सामग्री लेकर गोप-गोपी सज-धज कर संगीत छेड़ते हुए निकल रहे हैं।

भागवतकार कहते हैं –- ब्रज की उपासना रसमयी उपासना है –

स्वलङ्कृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः।
प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान्॥

(भा.१०/२४/२९)

श्रीकृष्ण कहते हैं – "हे ब्रज सीमन्तनी गणों ! विविध आभूषणों से भूषित होकर, चन्दनादि से लिप्त होकर, इत्रादि से सुवासित सुन्दर वस्त्रों से मण्डित होकर श्री गिरिराज जी की रसमयी परिक्रमा करो।"

२० योजन पर्यन्त पंक्तिखण्डित नहीं दिखती –

बहुत जुरे ब्रजवासी लोग ।
सुरपति पूजा मेटि गोवर्धन कीनो यह संयोग ॥
योजन बीस एक अरु अगरो डेरा इहि अनुमान ।
ब्रजवासी नर नारि अंत नहिं मानो सिंधु समान ॥
इक आवत ब्रजते इतहि को इक इतते ब्रज जात ।
नंद लिए तब ग्वाल 'सूर' प्रभु आइ गए तहां प्राप्त ॥

(सूरसागर)

छोटे बालक वृक्ष-टहनी कन्धों पर रखकर चल रहे हैं। आगे-आगे पुरोहित महर्षि शाण्डिल्य अपने शिष्य-समाज के साथ स्वस्ति पाठ करते हुए चल रहे हैं, फिर वंश के बड़े-

बूढ़े गोप एक हाथ में नई-नई छड़ी लिए हुए, दूसरा हाथ लम्बी मूंछ पर घुमाते हुए, कभी आगे देखते हैं, तो कभी पीछे ; मानो आज के 'गोवर्द्धन-याग' के ये ही सब कर्ता-धर्ता-निर्माता हैं। कभी नन्हें बालकों को आगे जाने से निषेध करते हैं। कभी कभी उन्हें डाँट भी देते हैं, पर बेचारे उतावले बालक फिर आगे जाने का प्रयास करते हैं, बूढ़े गोप डाँट-डपट कर उन्हें फिर पीछे कर देते हैं, तो गोपियों के हाथ में लगे व्यंजन पूरित थालों की ओर देखते हैं, फिर एक बार अपने उदर की ओर देखकर, उस पर कर घुमाते हैं; मानो उसे सांत्वना दे रहे हैं।

(मन ही मन, अपने आप से)

न जाने कब गोवर्धन आएगा .... !

कब भोग लगेगा .... !

कब ये उत्तम प्रसाद वितरित होगा .... !

और कब .... ये हमारी जिह्वा पर रखते ही, पेट की ओर फिसल जायेगा .... ! !

बालकों को अपनी चिंता;

गोप-गोपियों के अपने मनोरथ...

शीघ्र ही महर्षि शांडिल्य ने गोवर्धन में प्रवेश किया, समस्त ब्रजवासी समुदाय सहित।

प्रथम तो

समुत्थितोऽसौ हरिवक्षसो गिरिर्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट् ।
समागतो ह्यत्र पुलस्त्यतेजसा यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥

(ग.सं.गि.खं.१/११)

सानन्द कृष्ण-वक्ष से समुद्भूत गिरि-गोवर्धन का दर्शन किया, ब्रजवासियों ने। जिनके दर्शन के बाद इस भवाटवी में कभी पुनरागमन नहीं होता है। तदनन्तर गौ-विप्रों का यजन किया। ज्येष्ठ गोपों की आज्ञा पाते ही छकड़ों से उतार कर सारा अन्नकूट नन्हें बालकों ने सज्जित करके गिरि के चारों ओर गोलाकार में रख दिया। दूसरी ओर नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं ने महर्षि के सम्मुख पञ्चगव्य, धूप-दीप, कुंकुम-अक्षत, पुष्प-पुष्पमाल्य, फल-दूर्वादल ..... अर्चन सामग्री सज्जित कर रख दी।

बालक ऐसे कार्यों में सहज समुत्सुक रहते हैं।

विधिवत् पुरोहित महर्षि शाण्डिल्य के संरक्षण में बृहद् पूजा संपन्न हुई।

गोपन को सागर गिरि भयो मंदरचाल ।
रत्न भईं सब गोपिका श्याम बिलोवनहार ॥
ब्रज चौरासी कोश परे गोपन के डेरा ।
लावैं चौवन कोश आजु ब्रजवासिन घेरा ॥

५४ क्रोश भूमि में ब्रजवासियों के डेरे लगे। बाबा नन्द ने, अपने दोनों रंगीले-छबीले लाल कान्हा-बलराम से मस्तक झुकवाकर प्रणाम कराया और गिरिराज जी से प्रार्थना की – "महाराज ! आप इन पर कृपा बनाए रखिये ....मुझसे भूल हुई जो आपकी पूजा छोड़, मैं अन्यत्र भटकता रहा।"

भोले-भाले ब्रजवासियों की भोली भक्ति से यन्त्रित होकर श्री गिरिराज जी उनके मध्य प्रकट हो गये और बुभुक्षु बनकर उनके कर से निर्मित हजारों मन अन्नकूट कुछ ही क्षणों में आरोग लिया।

महाराज वृषभानु की दधि बिलोवनहार बदरौला

गिरिवर श्याम की अनुहारि ।
करत भोजन अति अधिकई भुजा सहस पसारि ॥
नंद को कर गहे ठाढ़े यहै गिरि को रूप ।
सखी ललिता राधिका सों कहति देखि स्वरूप ॥
यहै कुंडल यहै माला यहै पीत पिछौरि ।
शिखर शोभा श्याम की छबि श्याम छबि गिरि जोरि ॥
नारि बदरौला रही वृषभानु घर रखवारि ।
तहां ते उहि भोग अर्पेउ लियो भुजा पसारि ॥
राधिका छबि देखि भूलि श्याम निरखी ताहि ।
'सूर' प्रभुवश भई प्यारी कोर लोचन चाहि ॥

वृषभानु जी की दधि बिलोवनहार बदरौला ऐसी अनन्य निष्ठ थी कि सब ब्रजवासीगण इन्द्र वर्षा से रक्षित होने के लिए श्री गिरिराज जी चले गए पर ये बरसाना छोड़कर नहीं गई। ब्रजवासीजनों ने जब गिरिराज जी को भोग लगाया तो बदरौला ने भी बरसाने से भोग लगाया, उसकी निष्ठा से प्रसन्न होकर गिरिराज जी ने सात कोस दूर से ही कर बढ़ा कर उसका भोग आरोगा। आज भी यह बदरौला टीला ऊँचे गाँव में दर्शनीय है।

पूजा समाप्त होते ही ब्रजवासीजन प्रसाद लेते हुए नृत्य-गान के साथ, मध्य मध्य में जयघोष करते हुए गिरिराज जी की प्रदक्षिणा करने लगे।

श्री गिरिराज महाराज की – ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ जय !

सात कोस वारे की – ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ जय ! !

गिरिराज-महोत्सव में सबने अपूर्वानन्द का अनुभव किया।

देवर्षि ने स्वर्ग जाकर देवराज-शक्र को, गिरि-पूजारम्भ व इन्द्र-पूजा बन्द; ये असह्य समाचार दे दिया। भा.१०/२५/६ क्रोधान्ध इन्द्र ने अविलम्ब प्रलयकालीन मेघमालाओं को बन्धनोन्मुक्त कर कठोर आदेश दिया – "समग्र ब्रज सगोधन नष्ट कर दो ! "

बेगि जाहु जहँ नन्द कौ गोकुल ।
दूरि करौ तहँ तें सबकौ कुल ॥

(नंददास जी)

इन्द्र ने गोधन नष्ट करने की आज्ञा देकर अपनी मदान्धता का परिचय दिया। इसलिए भगवान् ने इन्द्र से कहा –

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्ड पाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥

(भा.१०/२७/१६)

देवताओं को ऐसी मदान्धता ठीक नहीं है –

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ।
स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः ॥

(भा.१०/२७/१७)

क्योंकि इन्द्रपूजन बन्द कराया कृष्ण ने और उसने क्रोध किया गोधन पर क्योंकि क्रोध अंधा कर देता है।

इधर, गिरिराज महोत्सव की चर्चा भी अभी आर्द्र बनी हुई थी, ब्रज में ! कृष्णाश्रित ब्रजवासी साङ्गोपाङ्ग पूर्ण हुई पूजा को सराह रहे थे। दिवस के तृतीय प्रहरान्त में, प्रलयकारी बादलों ने नन्द ब्रज को ढक दिया –

सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आए ।
जलवर्त वरिवर्त पवनवर्त ब्रजवर्त आगिवर्तक जलद संग ल्याए ॥
घहरात तरतरात गररात हहरात झहरात पररात माथ नाए ।
कौन ऐसो काज बोले हम सुरराज प्रलय के साज हमको बुलाए ॥
बरषदिन संयोग देत मोको भोग क्षुद्र मति ब्रज लोग गर्व कीनो ।
मोहिं गए बिसराइ पूज्यो गिरिवर जाइ ब्रज पर धाइ आयसु ये दीनो ॥
कितक ब्रज के लोग रिस करत किहिं योग गिरि लियो भोग फल तुरत पैहैं ।
'सूर' सुरपति सुन्यो बयो जैसो लुन्यो प्रभु कहा गुन्यो गिरिसहित बैहैं ॥

विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ।
तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥
स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ।
जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥
अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ।
गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥

(भा.१०/२५/९,१०,११)

बादल परस्पर टकराते, कड़कते, भीषण गड़गड़ाहट करते हुए स्तंभ-सदृश स्थूल अजस्र धाराएँ गिराने लगे –

कारी घटा डरावनी आई। पापिनी साँपिनि सी थरि छाई ॥
बिजुरी लपकि लपकि यो आवै। मानौ उरगन जीभ चलावै ॥
फन फुंकार पवन अति ताते। हरि न होय तौ सब जरि जाते ॥
गरजनि तरजति अनु अनु भाँति। फूटैं काँन अरु फाटै छाती ॥
परन लगी नान्हीं बूँद बारी। माटै थंभन हूँ तैं भारी ॥

चारों ओर से बर्फीली हवा की मार देह को एकदम झकझोर देती, अनवरत उल्कापात, उपलपात हो रहा था। ब्रज की भूमि तो, अदृश्य हो गयी, बस चारों ओर समुद्र सदृश असीमित जल दर्शन हो रहा था। मार्ग ही नहीं सूझ रहा था –

धिड़ धिड़ धान धित किट धिति धान धान
तत्तड़ान तत्तड़ान करत पुकारे हैं।
कहै नवनीत चोव चपल चमकन की
अर र र र र क्या क्यां गरज हंकारे हैं।
धूँ धूँ किट धूँ धूँ किट धमकत घाम
धसकत प्राण निर-हीन के बिचारे हैं।
ग्रीष्म गनीभ ताको दखल उड़ाय आज
बाजत ये इंद्र महीप के नगारे हैं।

शीत से आर्त, कम्पित-गात्र, सब गोपी-ग्वाल अपने बालकों को अंक में छिपाये उपलवृष्टि से रक्षा के लिए मस्तक पर कढ़ाई आदि कठोर वस्तु रखकर गायों सहित "गोविन्दं शरणं ययुः" अपने एकमात्र संरक्षक गोविन्द की शरण में गये। सार्त स्वर प्रार्थना की ; राख लेहु ....

या

शरण राखि ....

हे गोपाल ! .... हे माधव ! .... हे मुकुन्द ! .... हे मोहन ! ....

"चाहे कैसी भी विषम, मरणासन्न स्थिति क्यों न आ जाय, ब्रजनाथ तो आप ही रहोगे। इन्द्र शरण हमारे लिए सर्वथा अग्राह्य है।"

अत्यंत आर्त स्वीयजनों को देखकर झट, भक्तवत्सल को अपना प्रण स्मृत हो आया –

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः॥

(भा.१०/२५/१८)

"इन अपने आश्रितजनों की रक्षा करने का व्रत, मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

(वा.रा.युद्ध कां.१८/३३)

मेरा व्रत है : जो एकबार भी मेरी शरण में आकर कह देता है ; "मैं तुम्हारा ही हूँ" उसे मैं पूर्णतः सर्वभयोन्मुक्त कर, अभय बना देता हूँ।"

बादर घुमडि-उमडि आए ब्रज पर
वर्षत कारे धूमरे घटा अति ही जल ।
चपला अति चमचमाति ब्रज जन सब डर
डरात टेरत शिशु पिता मात ब्रज गज बल ।
गर्जत ध्वनि प्रलय काल गोकुल भयो अन्धकार
चकृत भए ग्वाल बाल घहरत नभ करत चहल ।
पूजामेटि गोपाल इंद्र करत इहै हाल
'सूर श्याम' राखहु अब गिरिवर बल ॥

नन्दभवन से निकलकर ब्रजराज कुमार ने कर से संकेत किया, "सब ग्रहस्थोपयोगी सामग्री छकड़ों में रखकर, गोधन सहित मेरे पीछे आ जाओ।" सब ब्रजवासी समुदाय नीलघनसुन्दर के अनुगत हो गया। कृष्ण सहित सब गिरिराज तलहटी में आ गये। गिरि-शिखर को सर्ववन्दित विभु ने करबद्ध कर, नत मस्तक हो प्रणाम किया।

तब तक दोनों कर उठाये, सब जन समुदाय के मुख से एक गेय पंक्ति निकली –

गिरिराज धरण हम तेरी शरण !
हम तेरी शरण गिरिराज धरण !!

गिरिराज भी तो हमारे ये ब्रजराज ही हैं।

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥

(भा.१०/२५/१९)

चलि आए ब्रजराज कुँवर बर ।
झट दै उचकि लियौ गिरि कर पर ॥
नहिंन कछु स्रम सहजहिं ऐसैं ।
साप बेसना कौं सिसु जैसैं ॥

सो वाम कर की कनिष्ठिका के नखाग्र पर, त्रिभुवन रक्षक ने गिरि गोवर्धन ऐसे धारण किया, जैसे बालक खेल खेल में कुकुरमुत्ता (बरसाती छत्ते का पुष्प) उखाड़कर धारण कर लेते हैं।

कान्ह कुँवर के कर पल्लव पैं मानों गोवर्धन नृत्य करैं ।
ज्यों ज्यों तान उठत मुरली की त्यों-त्यों लालन अधर धरैं ।
मेघ मृदंगी मृदंग बजावत दामिनी दमक मानौ दीप जरैं ।
ग्वाल ताल दै नीके गावत गायन के सुत सुर जु भरैं ।
देत असीस सकल गोपीजन बरखा कौ जल अमित झरैं ।
अति अद्भुत अवसर गिरिधर कौ 'नन्ददास' के दुःख जु हरैं ।

अविलम्ब साथी ग्वाल-बालों ने पर्वत पर अपनी बड़ी-बड़ी बाँस यष्टियाँ लगा दी।

वाम कर पर गिरि क्यों उठाया? –-

वाम कर ही ते पूतना के प्राण सोखे
वाम कर ही ते तृणावर्त मारयो है ।
वाम कर ही ते केशी के दशन झारे
भूपदल जीतवें कूँ वाम कर बल है ।
दाहिने हाथ गिरराज क्यों न धारयो नाथ
जानत हौं जी परसवो फल है ।
वाम अंग श्री वृषभानु नन्दिनी जू को धाम
याही के प्रताप ते वाम कर बल है ।

सात वर्ष की अल्पावस्था में सुकुमार साँवरे ने सात दिन-सात रात लगातार ब्रजवासियों के प्राण-परित्राण हेतु विशाल गिरि को धारण किए रखा –

जे वंशी के भार सों झुके जात सुकुँवार ।
तिन प्रिय ब्रजजन के लिए कर पर धरयो पहार ॥

भक्तवत्सल ने दक्षिण हस्त में मुरलिका लेकर जब उसे अपना अधर-सुधारस दिया, तो सब ब्रजवासी गिरि-तर नृत्य करने लगे। गिरि के नीचे ही सात दिन नृत्य-गान उत्सव चला। ब्रजवासियों के नेत्र-प्राण श्रीकृष्ण में लगे हुए थे।

गिरिवर धार लियो अँगुरी पै सात बरस कौ रसिया ॥
इन्दर ने जब जुलम गुजारे भेजे बादर परलय वारे
बरसे ब्रज में मूसर धारे पानी पानी अम्बर में बह उमगी नदिया ।
बोल्यो लाला नन्द महर कौ कछु काम ना नेक डरन कौ
धारूँ गिरिवर दुःख हरन कौ गिरि को लियो उखाड़ छत्र तान्यो ब्रजबसिया ।
गिरिवर नीचे सब ब्रजवासी गाय गोप गोपी सुखरासी
सींग दिखाय करै सब हाँसी नाचैं गावैं ढोल बजावैं बाजै बंसिया ।
इन्दर हार परयो चरनन में लै सुरभि आयो शरनन में गोविन्द नाम भयो लोकन में दै
परिकम्मा पूजैं गिरिवर सब दुःख नसिया ॥

(रसिया रासेश्वरी)

इह लीला सब करत कन्हाई ।
उत जेंवत गिरि गोवर्धन संग इत राधा सों प्रीति लगाई ॥
इतगोपन सों कहत जिमावहु उत आपुहि जेंवत मन लाई ।
आगे धरे छवौं रस व्यंजन बदरौला को लियो मँगाई ॥
अमर बिमान चढ़े सुख देखत जय ध्वनि करि सुमननि बरषाई ।
'सूर श्याम' सबके सुखदाता भक्तहेतु अवतार सदाई ॥

(सूरसागर)

गुणाग्रगण्या लीलोल्लासवर्धना श्रीराधा रानी की ओर उनका नत मयूर किरीट, पवन से तनिक भी वनमाला कृष्ण के वक्ष से हटती तो साक्षात् राधा रानी के वक्ष का स्पर्श कर शांत होती, मीन सदृश नयन राधा रूपी वारि में प्रवेश करने को त्वरित थे, उनका पीत वस्त्र मानो श्रीजी के कंचन वर्ण का उद्-घोष कर रहा था, ललित त्रिभंगी-गति से खड़े मनमोहन के अरुण-चरण ही सब ब्रजवासियों के आश्रयभूत थे।

प्राण रक्षा की तो कोई चिंता थी ही नहीं उन कृष्णाश्रित जनों को, अतः निश्चिन्त हो उत्सव मना रहे थे। आराध्य का सानिध्य ही उनका सर्वस्व बन चुका था। दिवसगमन, रात्र्यागमन का भी पता न चला, उन भोले-भालों को। इसका आभास तो तब हुआ जब सांवर्तकादि मेघ वारि-रहित होकर इन्द्र समक्ष प्रस्तुत हुए।

इन्द्र – "क्या ब्रज भूमिसात् हो गया? "

मुरझाए मेघ – "कोई अच्छा कर्म सामने आ गया..... जो श्री कृष्ण के सहस्रार से हम भूमिसात् न हुए....... ! "

इन्द्र – "स्पष्ट शब्द में कहो, क्या कहना चाहते हो? "

मुरझाए मेघ –"हम वारि-विहीन हो गए, देवेश ! "

कहकर मेघों के मस्तक नत हो गए।

सुनकर इन्द्र चौंका ! अक्षम्य अपराध, के पश्चात्ताप की अग्नि ; उसे दग्ध कर रही थी। तब तक, उधर लड्डू-लाडला मधुमंगल उदर पर कर फिराते हुए चिल्लाया – "कन्हैया ! जल वृष्टि बंद हो गयी है, बुभुक्षाग्नि बढ़ गयी है, अतः घरों को चला जाय।अभी तो घर में गिरिराजोत्सव के माल-पूए भी समाप्त नहीं हुए हैं, थोड़ा उनको ठिकाने लगाया जाय !" सुनते ही सब हँस पड़े।

बरसै प्रलय के पानी जात न काहू पै बखानी
ब्रज हू पै अति भारी टूटत है तरु-तर ।
ता पर के खग मृग चातक चकोर मोर
बूँद न काहू के लागी भयौ है कौतुक भर ॥
प्रभु जू की प्रभुताई इन्द्र हू की जड़ताई

मुनि हँसे हेरि-हेरि हरि हँसे हर-हर ।

(नन्ददास जी)

सुदर्शन चक्र ऊपर से जल – शोषण करता रहा और शेष जी नीचे कुण्डली मार कर बैठ गए, फिर भला बिंदु भर जल भी कहाँ आना था ब्रजवासियों पर.... !

वारि-वर्षण बन्द होने पर श्री कृष्ण बोले – "अब सब सगोधन गिरि के बाहर हो जाओ।"

ग्वाल-बाल बोले – "न कन्हैया, तू छोटा है पहले तू निकल ; गिरिराज की चिंता मत कर वो तो हमारी लाठियों पर टिका हुआ है। यदि हम पहले निकल गए तो तू इसीमें दब कर मर जाएगा।"

कृष्ण बोले – "अच्छा भैया, जैसी तुम्हारी आज्ञा।"

फिर जैसे ही थोड़ा-सा हाथ हिलाया थोड़ा-सा भार पड़ते ही सब लुढ़क पड़े,

उन सबने सोचा था गिरिराज हमारी ही यष्टि-लकुटों पर टिका हुआ है।

फिर घुटने पर हाथ रखते हुए उठे और बोले –"भैया भाग चलो, ये नन्द का बड़ा करामाती है, कहीं हाथ हटा लिया इसने, तो बीनने पर भी हमारी अस्थि नहीं मिलेगी।"

सब सगोधन बाहर निकल गए।

श्री कृष्ण ने भी श्री गिरिराज को पूर्ववत् ब्रज-धरा पर स्थिर कर दिया और एक विशाल-पाषाण पर बैठ गए। उन्हें एकाकी देख, अपना देवराजत्व विस्मृत कर शक्र, चर्तुदंत ऐरावत व श्रेष्ठ सुरभि सहित वहाँ पहुँचे।

कुछ कहने का साहस कहाँ था ! बिना कुछ कहे अपना उत्तमांग किरीट सहित उनके पादपद्मों में रख दिया। अत्यन्त भयभीत शक्र पर करूणार्णव की अकारण अतिशय कृपा बरसी ; जो उन्होंने उस अक्षम्य अपराधी की ओर स्मित-शोभित मुख से देखा और तभी बद्धाञ्जलि, सविनय देवराज ने अपराध के लिए क्षमायाचना की। उतावला ऐरावत अपनी ओठों (सूँड़ों) में आकाश गंगा का जल लिए खड़ा था, तब तक चतुरा सुरभि ने अवसर पाते ही ऐरावत के अग्र आकर, प्रभु को अपने दुग्ध से अभिषिक्त किया। तदनन्तर ऐरावत ने भी आकाशगंगा के निर्मल जल से प्रभु को स्नान कराया। देवराज इंद्र ने आज के दिवस प्रभु को एक नवीन नाम से संबोधित किया – "गोविन्द"

"गाः विन्दति इति गोविन्द"

वस्तुतः गायों का संरक्षक ही गोविन्द है। बहुत समझकर संबोधित किया शक्र ने। कृष्ण बोले – "पुरन्दर ! अब अपने अधिकार में ही रहना, अधिकार से आगे बढ़ने का दुष्प्रयास न करना।"

"हरि अनंत हरि कथा अनन्ता"

तभी तो "**मुह्यन्ति यत्सूरयः, मुनीनां च मतिभ्रमः**" इत्यादि ग्रंथोक्तियाँ विख्यात है। इन अनन्त कथाओं की दुष्पारता, दुरधिगमता मात्र कृष्ण कृपयैकगम्य है। भिन्न-भिन्न ग्रंथों में, भिन्न-भिन्न ग्रंथकारों ने इस गिरिराज लीला का भावोत्पादक विचित्र-चित्रण किया।

ब्रह्मवैवर्तानुसार

दीपावली का पर्व आया, प्रतिवर्ष की भाँति वृषभानुपुर और नंदग्राम के ठीक मध्य नन्द बाबा की आज्ञानुसार बहुत बड़ा बांस गाड़ दिया, जिसे हर वर्ष 'इंद्रध्वज' की संज्ञा दी जाती। स्नानादि नित्य कर्मों से निवृत्त हो, ध्वज के समक्ष स्वर्ण पीढ़ा पर आसीन हुए, बाबा नन्द।

ध्वज के चारों ओर खीर-पूआ, लड्डू-मोहनथार, रसगुल्ला-गुलाबजामुन, गुजिया-चमचम के पर्वत खड़े कर दिए। ५४ कोस भूमि में तो ब्रजवासियों के तम्बू ही तम्बू खड़े थे।

जैमिनी, गर्ग, वेदव्यास ऋषि समाज का आगमन हुआ ; बाबा नंद जी ने उठकर उन सबका, भूमि को जल देकर, पुष्प माल्य से सत्कार किया। उसी समय मस्तक पर एक ओर झुका हुआ मुकुट, कानों में रत्नमय कुण्डलों की झिलमिलाहट, चन्दन-चर्चित श्री अंग पर तडित्द्युतिपीताम्बर धारे हुए, फेंट में मुरली, हाथ में वेणु, ग्वाल-बालों से समावृत हो आ पहुँचे दोनों कुमार : राम-श्याम। सर्वज्ञ होते हुए भी अज्ञ बनकर सुमधुर स्वर में पूछा – "बाबा ! आज हमारे गाँव में कौन सा मेला है? "

(ब्र.वै.कृ.ज.ख.१९)

नन्द – "पुत्र ! ये मेला नहीं है ......"

कृष्ण – "तो फिर, इतने लोग क्यों एकत्रित हैं? "

नन्द – "पुत्र ! आज इन्द्रयाग है।"

कृष्ण – "सो क्यों? "

नन्द – "उनको प्रसन्न करने हेतु। देखो कृष्ण ! भगवान् इन्द्र वर्षा न करें, तो हमारा सब गोधन नष्ट हो जाए।"

कृष्ण – "बाबा ! किसने बहका दिया आपको ....?

श्रीभगवानुवाच
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते॥

(भा.१०/२४/१३)

कर्मानुसार हर आदमी फल पाता है – फिर उसमें देवताओं का क्या हस्तक्षेप?

वस्तुतः पूज्य कोई देव नहीं, हमारा शुभ कर्म ही पूज्य है।

जहँ पर गिर गोवरधन सौहे । इन्द्र बराक या आगे को है ॥

(नंददास जी)

अतः आप

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः॥

(भा.१०/२४/२५)

गाय, ब्राह्मण, गिरिराज इन तीनों का पूजन करें।"

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.२१)

"जिसने भक्त ब्राह्मण की सेवा कर ली; उसने सब देवों का पूजन कर लिया। देवार्चन भले ही न किया जाय, हरि भक्त विप्र का अर्चन कर लिया, तो स्वतः सब देव पूजित हो गए और देव पूजन प्रधान करके भक्त पूजन को गौण कर दिया, तो वह देव पूजन विफल है। भक्त विप्रों का मिलना संसार में सर्वाधिक दुर्लभ है। भक्त चरण से अवनि पावन हो जाती है। भक्त ब्राह्मण ही सच्चे श्रेष्ठ तीर्थ हैं और बाबा ! हमारे ये गिरिराज जी तो भक्तों में भी आर्य भक्त हैं।" यही सम्मति, यही कथन, गोपियों का भी है – (१०/२१/१८) गोधन का वर्धन ही इनके गोवर्धन नाम होने का मुख्यभूत हेतु है।

कृष्ण – "दिनभर हमारी गायें इन पर चरती हैं।

तीर्थस्थानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने ।
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च ॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने ।
भुवः पर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत् ॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः ।
तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च ॥

(ब्र.वै.कृ.ज.खं २१/८९,९०,९१)

कोई सम्पूर्ण भूमि की प्रदक्षिणा कर ले, सारे वेदों का अध्ययन कर ले, समस्त तीर्थ स्नान कर ले, ब्राह्मणों को भोजन करा ले, महादान कर ले, सब यज्ञ कर ले और कहाँ तक कहें, भगवान् की आराधना कर ले। इन सबका समष्टि फल, केवल गाय को घास देने से प्राप्त हो जाता है।" क्योंकि –

सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च ।
तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः ॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः ।
तीर्थस्नातो भवेत्सद्यो जयस्तस्य पदे पदे ॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम् ।

प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥
ब्राह्मणानां गवामङ्गं यो हन्ति मानवाधमः ।
ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य न संशयः ॥

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.२१/९३,९४,९५,९६)

(श्री कृष्ण, बाबा नन्द से)

कृष्ण – "बाबा ! गौ अंग में सब देवों का निवास, गौ खुर में सब तीर्थों का निवास ; गौगुह्यअंग (गोबर) में स्वयं श्री लक्ष्मी जी का नित्य निवास है। तभी गौरज का तिलक कर लेने पर तत्काल सब तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता है और गौरज धारी पग-पग पर विजयी होता है। गौ खिरक में प्राण त्याग से निःसंशय मुक्ति हो जाती है।

जो अनार्य पुरुष गौ, ब्राह्मण के शरीर पर आघात करता है, निश्चित ही उसे ब्रह्महत्या सदृश पाप लगता है।"

नन्द – "किन्तु बेटा ! इन्द्र पूजन से, हमारी आगामी आपदाओं का नाश हो जाता है। इन्द्रयाग तो पारम्परिक पूजन है, हम अहीरों का।"

कृष्ण – "बाबा ! इन्द्र कौन वस्तु है? अरे ! श्री हरि के एक निमेष में १०८ ब्रह्मा बदल जाते हैं, उनके समक्ष इन्द्र सर्वथा सत्ताहीन है। अतः गोपजाति के लिए गिरि-पूजन ही सर्वोत्कृष्ट है।"

श्री कृष्ण के इस ओजस्वी, प्रभावशाली भाषण को सुनकर सब ब्रजवासियों के मन-मष्तिक में अद्भुत गौ-विप्र-गिरि पूजन की आस्था जगी। अब तो विप्रवर्ग को आगे कर सब ब्रजवासी कान्हा-बलराम के साथ गिरि –गोवर्द्धन की ओर नृत्य-गान की उमंग के साथ चल दिये।

मैं तो गोवर्द्धन कू जाऊँ मेरी बीर नांये मानै ....

पहिलैं गोधन पूजा कीनीं । तब बलि लै गोबरधन दीनीं ।
पूजा करि पाँई परि बिगसे । सैल रूप धरि तब हरि निकसे ।

(नंददास जी)

षोडशोपचार से गिरि पूजन हुआ।

चारों ओर अन्न का कूट (पर्वत) दिखाई दे रहा था। तभी से गिरिराज पूजन के दिन ये अन्न कूट की परम्परा चली। साक्षात् रूपसे गिरिराज जी ने भोग लगाया और

अहम् हि प्रथमो देव –

"मैं ही प्रथम देव हूँ, तुम सबका कल्याण करूँगा" कहकर ब्रजवासियों की आस्था-विश्वास को और ठोस कर दिया। गिरि पूजनोपरान्त, इन्द्र कोप की कथा का भाव अधिकांशतः सर्वत्र समान ही है, किन्तु एक बड़ा विचारणीय बिंदु है –

सात वर्ष की अल्पायु में सात दिन पर्यंत ही क्यों गिरिगोवर्द्धन धारण किया, गिरधर ने? जलशोषक सहस्रार ने समर्थ होते हुए भी एक दिन में जल क्यों नहीं पी लिया ....?

समाधान (ब्रह्मवैवर्ते) –

बाबा में सात प्रकार का अन्याश्रय था, अन्याश्रय का दौर्बल्य जब तक न गया, वृष्टि होती रही। पांचाली ने पांडवों की ओर जब तक आशापूर्ण दृष्टि से देखा, गोविन्द नहीं आये; अम्बरावतार नहीं हुआ और जब दांत से पकड़ी साड़ी भी चिबुक तक सरक गयी, तो चित्त कृष्णाश्रित हो गया और प्रभु आ गए। भगवान् के अतिरिक्त किसी की ओर आशा से देखना भी अन्याश्रय है, पाप है।

नन्दबाबा का भी सात प्रकार का अन्याश्रय था, जिसका निरसन करना ही सात दिन गिरि-धारण का मुख्य कारण था।

प्रथम तो देवाश्रय –

जब घनघोर वृष्टि आरम्भ हुई, तो नन्दबाबा ने सोचा, अज्ञबालक की बातों में आकर हमने भी आँख बंद करके गिरि-पूजा की मूर्खता की। अब इन्द्र देवता रुष्ट हो गए हैं, मनाने हेतु उनकी शरण लेनी चाहिए।

पहले रोहिणी, यशोदा को बुलाकर कहा – "देखो, तुम लोग राम-कृष्ण को लेकर ब्रज से बाहर चले जाओ। हम मर भी जाएँ, तो कोई बात नहीं; किन्तु राम-कृष्ण को कुछ नहीं होना चाहिए और भी जो गोप गोपी यहाँ से भाग सकें, भाग निकलें क्योंकि देवराज का ये प्रचंड कोप है। जो बलवान गोप मौत की टक्कर ले सकें, वो ही मेरे पास ठहरें।"

इस तरह से नन्दबाबा भयाक्रान्त होकर –

"इन्द्रः सुरपतिः शक्रो दितिजः पवनाग्रजः"

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.२१/१५१)

इन्द्र के इन ४६ नामों का पाठ करते हुए, रक्षा की प्रार्थना करने लगे।

यह देख श्री कृष्ण क्रुद्ध हो गए। "हम तो सबको अनन्याश्रित बना रहे हैं, कि सब एकमात्र मेरी ही शरण में आयें और बाबा ने अपना वही देवी-देवों वाला धंधा आरम्भ कर दिया।"

कृष्ण – "बाबा ! उस क्रूर शक्र की आप उपासना कर रहे हैं, जिसने एक बार पूजा न होने पर अतिवृष्टि द्वारा ब्रज नाश का संकल्प कर लिया।"

प्रथम दिवस

इस प्रकार प्रथम दिवस श्री कृष्ण ने देवाश्रय से मुक्त किया, नन्द जी को।

देव-देवी, ग्रह-नक्षत्र का आश्रय अन्याश्रय है।

द्वितीय दिवस

नन्द जी बड़े बड़े ऋषि- मुनि वृन्दों का स्मरण करने लगे। कन्हैया सत्य ही कहता है, देव तो बड़े नृशंस हैं। अतः ऋषि-मुनि वृन्द ही रक्षा करेंगे। जब ऋषि स्मरण से कार्य सिद्ध न हुआ, तो द्वितीय दिवस उनका वह आश्रय भी दूर हुआ।

तृतीय दिवस

वंश के बड़े बूढ़ों के आशीष से कार्य सिद्ध होने की कामना भी जब निष्फल हुई तो इस आश्रय से भी मुक्त हुए।

चतुर्थ दिवस

अपने छोटे कान्हा के ऊपर सारे गिरि का भार देख, ब्रजवासी-गोप ग्वालों से बोले – अरे भाई ! "तुम भी जरा जोर लगाओ, सहायता दो।" अन्य मानव-आश्रय भी चतुर्थ दिवस जाता रहा।

पंचम दिवस

पितृगणों से रक्षा की प्रार्थना कर रहे थे, उससे भी निराश हो गए।

षष्ठ दिवस

लोक-निंदा के प्रपंच : "लोग क्या कहेंगे? अपने बालक की बात को इतना महत्व देकर हमारे प्राण संकटस्थ कर दिए।" इस आश्रय से भी मुक्त हुए।

सप्तम दिवस

स्वशरीर का भी आश्रय छूट गया।

सात प्रकार से जीव भगवान् से विलग हो जाता है। अन्याश्रय के छूटते ही नन्द जी ने जब एकाश्रय पकड़ा, "कन्हैया ! कोई काम नहीं आया : सिवाय तेरे। तूने सात दिन गिरिधारण किया, जिससे हमारे ऊपर अतिवृष्टि का एक बिन्दु भी न आया।"

अनुक्षण सब प्रलयंकर मेघ अमरावती को प्रस्थान कर गए।

बोलो श्री इन्द्र दमन की ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ जय ! !

श्री गोवर्द्धननाथ की ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ जय ! !

श्री गिरिराज महामहोत्सव की ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ जय ! !

इस प्रकार गो-गोप व समस्त ब्रजवासियों की रक्षा करने वाले श्री गिरिराज की बड़ी अद्भुत लीलाएँ हैं। गिरिराज जी के दर्शन, प्रदक्षिणा मात्र से जीव सहज ही भवाटवी से पार हो जाता है। गोवर्द्धन गमन से सहज, सर्वेश का साक्षात्कार हो जाता है।

इसी भाव से गोवर्द्धन में प्रवेश करना चाहिए। स्वामी परमानन्द जी कहते हैं –

डगर चल गोवर्द्धन की बाट।
खेलत तहाँ मिलेंगे मोहन जहाँ गोधन के ठाट।
चल री सखी! तोहि लै जु दिखाऊँ सुन्दर बदन सरोज।
कमल नयन के एक रोम पर वारों कोटि मनोज।
पाहुनी एक अनूपम आई आन गाँव की ग्वारि।
'परमानन्द' स्वामी के ऊपर सरबसु दीजै वारि।

ब्रज-ग्रामटिका में एक नयी पाहुनी आई, उसे एक सखी ने कहा –

"बहिन ! चल, हम दोनों गिरिराज चलें।"

पाहुनी – "गिरिराज जी .... क्यों? "

सखी – "गिरिराज में गोपाल मिलेंगे।"

पाहुनी – "गोपाल .... गोपाल ...."

(कुछ सोचती है)

"वो कैसे होंगे? जिनका नाम ही अतिशय मधुर है ! "

सखी – "अब तू चल भी ! "

पाहुनी – "एक बार; कह दे .... वो गोपाल कैसा है? "

सखी – "उनका श्री अंग अवनि में, अम्बर में अविरल रस संचार करता रहता है। उनके कमल-सदृश युगल नयन हैं .... और ज्यादा मत पूछ ! उसके एक रोम पर कोटि कोटि कामदेवों का निर्मन्छन भी न्यून है .... !

आगे देख, संभल कर चल ! कहीं कठोर ठोकर तेरे पाद तल को कष्ट न पहुँचा दे।"

(गिरिराज में प्रवेश पाते ही : कृष्ण दर्शन)

सखी – "पाहुनी ! ये हैं गिरिराज : और ये हैं गोपाल ...."

दोनों ने उस सौन्दर्य-सारातिसार रसिक शेखर के स्वरुप को देखा और अपलक देखते ही रह गयीं –

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥

(भा.१०/२३/२२)

काले-सांवले वपु पर पीत वस्त्र का झिलमिलाता, लहराता छोर, गले में वनमाला, मस्तक पर मयूर किरीट, सर्वांग में रंग बिरंगी धातुकी चित्रकारी, नूतन कोपलों के छोटे- छोटे गुच्छे इधर उधर फँसाये, नट वेष बना रखा है, एक भुजा गोप स्कन्ध पर, दूसरी से सरोज कुसुम घुमा रहे हैं, कर्ण में भी कमल कुंडल है। लाल कपोल काली-घुंघराली-अलकों से आवृत्त है। मुखकमल मधुर-मंद मुस्कान से सरस उल्लसित है। इस सौन्दर्योदधि में पाहुनी ऐसी डूबी कि सर्वस्व दे बैठी उस छलिया को।

इस गोवर्द्धन लीला का साक्षात्कार पाया, परमानन्द स्वामी ने और मुखरित करने को बाध्य हो गए।

सूरज कुण्ड

जतीपुरा के पूर्वोत्तर दिशा में सूरज कुण्ड है। इंद्र द्वारा वर्षा किये जाने से जब सूर्य दर्शन नहीं हो रहा था तो सूर्यदेव ने अपने तेज से वर्षा के जल को सोख लिया था और तब सूर्य दर्शन हुआ था।

सखीथरा

मानसी गंगाके बाँई ओर सखीथरा गाँव है। यह गाँव चंद्रावली सखी का है। यहाँ पर सखी कुण्ड और सखी वन दोनों ही बड़े मनोरम हैं। इसके समीप ही चूतरटेका स्थान है, जहाँ पर बैठने का विशेष महत्व है। श्रीमन् महाप्रभु जी ने श्री निवासादि पार्षदों को इस स्थान से अवगत कराया।

अहे श्रीनिवास! एई सखी स्थली ग्राम ।
चन्द्रावली स्थिति एथे सखी धरा नाम ॥

ब्रज भक्ति विलासानुसार

ततो सखा वन (सखीतरा) प्रार्थना मन्त्र (ब्रह्मयामले) :-

गोपालसखिभिरम्यैः चेष्टित कृष्णशोभिने ।
नानाक्रीड़ामनोज्ञाय सखावन नमोऽस्तु ते ॥

गोपाल के सखाओं से रमणीक, उनकी चेष्टाओं से युक्त, कृष्ण की शोभा वाला, नाना प्रकार की क्रीड़ाओं से मनोहर सखा वन ! तुमको नमस्कार है।

श्रीकृष्ण के १८ सखाओं के नाम –

ततो अष्टादशसखिनामनि मन्त्र (विष्णुयामले) :-

मधुमंगलः श्रीकृष्णः सुबलः पद्ममोदकः ।
बलरामः सुभद्रश्च वल्लभो कमलाकरः ॥
मेघश्यामः कलाकान्तः पद्माक्षकृष्णवल्लभः ।
मनोरमो जगद्रामः शुभगो लोकपालकः ॥
कादर्य्यो विश्वभोगी च नवनीतप्रियवल्लभः ।
इत्यष्टादशसंख्यानां सखानां नामलांच्छितं ॥

ततो लीलावती कुण्ड स्नान प्रार्थना मन्त्र :-

कृष्णलीलासमुत्पन्न लीलावतीकृताय ते ।
नमस्ते तीर्थराजाय सखीहेलोद्भवाय च ॥

कृष्ण की लीलाओं से उत्पन्न लीलावती से निर्मित सखियों के हेला से उत्पन्न तीर्थराज ! आपको नमस्कार है।

श्री कुसुम सरोवर

कुसुम का अर्थ होता है – फूल। कुसुम सरोवर का दूसरा नाम पुष्पवन भी मिलता है। दिव्य रत्नाभारणों की सज्जा त्याग यहाँ प्रियतम ने प्रिया जी को पुष्पों से सज्जित किया।

यूँ तो श्रीकृष्ण सतत् राधिकोपासना करते ही रहते हैं। पलार्ध को भी सेवा से विलग नहीं होते। इतना ही नहीं एकाकार से तृप्ति नहीं होती है तो एक ही मुहूर्त में बहु रूप धारण कर सेवा करते हैं –

जहाँ-जहाँ चरण परत प्यारी जू तेरे ।
तहाँ तहाँ मन मेरौ करत फिरत परछाँही ।

(केलिमाल)

एकान्तिक साधना

रास पंचाध्यायी में वर्णन आता है –

अभी-अभी तो श्री कृष्ण कोटि-कोटि किशोरियों के मध्य बैठकर किसी के केश में मल्लिका-माला सजा रहे थे, किसी के चरणों में मखतूल गुहे घुँघरू पहना रहे थे, किसी की पदांगुलि में छला-छिगुनी धारण करा रहे थे, किसी का नीवी वस्त्र कस रहे थे। 'कृष्ण' से सेवित हो, उन किशोरियों में सौभाग्य का सूक्ष्म मद सहज ही आ गया, जिसे देखते ही मधुसूदन एकान्त राधाराधन करने चले आये। प्रथम तो लज्जाशीला श्रीराधा के साथ उन्होंने विनोद युक्त केलिविलास किया।

अनन्तर उनकी भाँति-भाँति से सेवा परिचर्या की –

अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ।
अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।
प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥

(भा. १०/३०/३३)

प्रिया-प्रियतम के पदांको को पाकर उन्हीं से इन विदग्धा गोपियों ने श्रीकृष्ण की राधाराधना का अनुमान लगा लिया।

१. सखी – "देख, अभी तक तो हमारी समूह स्वामिनी स्कन्धारूढ थी, अब उसे प्राणेश्वर ने नीचे उतार दिया"
२. सखी – "कहीं उसके सुकुमार पाद-तल में कठोर कुश न चुभ जाए ..... हाय ! "
३. सखी – "न...न... आगे तो देख ! ये उनके पदाग्र (पंजे) के चिन्ह हैं। जरूर प्राणेश्वरी के लिए यहाँ उन्होंने कुसुम चयन किया है।"

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥

(भा. १०/३०/३४)

सखी – "श्रृंगार रस के नायक ने देखो तो, यहाँ कैसे केश सँवारे हैं।" इस लीला का साक्षात्कार कर गायन किया स्वामी श्री हरिदास जी महाराज ने **"बेंनी गूँथि कहा कोऊ जानें"**।

नायक कृष्ण – "हे राधे ! आज अपनी सघन-सुकोमल-घुंघराली-काली-अलकावली को सज्जित करने का सौभाग्य दान दो। मेरे समान वेणी गूंथना कोई नहीं जानता।"

मेरी सी तेरी सौं ।

नायक कृष्ण – "आपकी सौगन्ध ! आज मैं ऐसी वेणी गूथूँगा, जो आपकी उन चतुर बालाओं को भी नहीं आती होगी।"

नायिका राधा – "भला, तुम क्या जानो ! दिन भर तो गाय चराते हो, जंगलों में घूमते हो।"

नायक कृष्ण – "एक अवसर तो देकर देखो।"

(जैसे दुकानदार कहता है ग्राहक से एक बार सेवा का मौक़ा दो, फिर देखो, वही कला यहाँ श्री कृष्ण अपना रहे हैं।)

बिच-बिच फूल सेत पीत राते को करि सकै एरी सौं ।

(केलिमाल. ७०)

नीलाम्बरी के कज्जल केशों में जैसे ही श्वेत कुसुम लगाए तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो – कज्जल बादल में तारामंडल की अचिन्त्य शोभा।

श्वेत में भी फिर पीत कुसुम। क्यों?

क्योंकि वे स्वयं भी पिंगल-दुकूल धारी हैं।

मानो अपने काले वर्ण (काले केश) को पीताम्बर (पीत कुसुम) धारण करा दिया है।

बैठे रसिक सँवारत बारन कोमल कर ककहीं सौं ।

कंघी लेकर नहीं कोमल कर की अँगुलियों से केश संवारने लगे और बड़ी सुन्दर वेणी बना दी, फिर श्रृंगार कला में एक और चतुराई दिखाई।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा (नख-सिख लौं बनाई) दै काजर नख ही सौं

खंजन नयनों में अन्जन की ऐसी नुकीली कोर बनाई नखाग्र से, जो सुरमा से भी न बन सके। यह लीला यहीं कुसुम सरोवर पर हुई है।

कुसुम सरोवर ब्रज के प्रधान सरोवरों में से है। यह स्थल युगल सरकार की श्रृंगार रस लीला का है।

भागवत जी के उत्तर माहात्म्य (स्कन्द पुराण) में कुसुम सरोवर की एक और कथा प्राप्त होती है –

गोलोकाधिपति के धामगमनोपरान्त एक समय द्वारिका में उनकी सहस्त्र सहस्त्र महीषियाँ विरह-वेदना से व्याकुल थीं किन्तु कालिन्दी द्वारिकानाथ के धामगमन के बाद भी सदा सानन्द रहती थीं।

एक दिन अन्य महीषियों ने पूछ ही लिया –

"भगिनी कालिन्दी ! क्या कारण है? ये असह्य वियोग तुम्हें कभी छू नहीं पाता और तुम कभी हमारी तरह दयनीय नहीं होती।

कालिन्दी – "क्योंकि मेरी मति इस भ्रान्ति में नहीं है कि मैं श्रीकृष्ण से वियुक्त हूँ।

देखो –

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत् ॥

(भा.उ.मा.२/११)

हमारे नाथ आत्माराम हैं, समस्त जगत की आत्मा हैं वे; किन्तु उनकी भी आत्मा हैं – श्रीराधारानी।

जिनके सेवा-प्रभाव से मैं सदा-सर्वदा विरह-विमुक्त रहती हूँ।

तस्या एवांशविस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः ।
नित्यसम्भोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्ययोगतः ॥

(भा.उ.मा.२/१२)

देखो, हम सब तो उन वृषभानु नन्दिनी की अंशभूता सेविकाएँ हैं। उनके कृपाप्रसाद से हम प्राणवल्लभ श्री कृष्ण चन्द्र का दिव्य नित्यसंग प्राप्त कर सकती हैं किन्तु इस अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रेमज्ञानी उद्धव जी का सत्संग प्राप्त होना आवश्यक है।"

कृष्ण महीषियाँ – "किन्तु वे कृष्णाकार उद्धव मिलेगें कहाँ? "

कालिन्दी – "पार्थिव वपु से वे द्वारिकाधीश की आज्ञा से बद्रिकाश्रम चले गये, किन्तु उनकी एक बड़ी तीव्र वासना थी –

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥
वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(भा.१०/४७/६१,६३)

बार बार इस रज-कणिका की उन्होंने याचना की।"

नंददास जी के शब्दों में –

कैसे है रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं ।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं ॥
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौ उपाय ।
मोहन होहिं प्रसन्न जो यह वर माँगो जाय ॥
कृपा करि देहु जो ॥

कालिन्दी – "अतः भाव-वपु से गोपिका चरण-रेणु-कणिकाकांक्षी उद्धव श्री गिरिराज जी में कुसुम सरोवर पर रहते हैं। वहाँ आप लोग भावमय-कृष्णसंकीर्तन आरम्भ करो, जिसे सुनते ही वे तुम्हारे समक्ष प्रत्यक्ष हो जायेगें।"

गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजः कामः ।
तत्रत्यांकुरवल्लीरूपेणास्ते स उद्धवो नूनम् ॥
आत्मोत्सवरूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम् ।
तस्मात्तत्र स्थित्वा कुसुमसरः परिसरे सवज्राभिः ॥

(भा.उ.मा.२/२४,२५)

कलिन्द-नन्दिनी-यमानुजा की आज्ञानुरूप वे सब कृष्ण-महीषियाँ परीक्षित एवं वज्रनाभ सहित निर्दिष्ट-स्थान सघन पत्र-पुष्प-पाषाण से आच्छन्न श्री कुसुम सरोवर पर पहुँच गई।

गोवर्द्धनाद्दूरेण वृन्दारण्ये सखीस्थले ।
प्रवृतः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसंकीर्तनोत्सवः ॥

(भा.उ.मा.२/३०)

और यहाँ सखी विहार-स्थल श्री कुसुम सरोवर पर आकर उन्होनें वाद्यों के साथ ऐसा कृष्ण कीर्तन किया कि वहाँ की हरित धरा और नभ वाद्य-ध्वनि से गूँज उठा। तभी अचानक एक सघन-कुञ्ज से प्रेमज्ञानी उद्धव दृष्टिगोचर हुए। महीषियों के मध्य विराजकर दिव्य ज्ञानोपदेश कर उन्हें इसी स्थान पर विरहोन्मुक्त किया एवं प्रभु की नित्य लीला प्रकट कर उसका साक्षात्कार कराया।

श्री उद्धव कुण्ड

विरह व्यथित महीषियों को उद्धव जी ने यहाँ कृष्ण कथा सुनाई, जिससे उनका विरह शांत हुआ। कुसुम सरोवर तक का स्थल उद्धव जी का स्थल कहा जाता है। कुसुम सरोवर के इस पार और उस पार दोनों ओर उद्धव जी का मन्दिर है। समीप ही है – उद्धव कुण्ड, उद्धव जी एक दिन को ब्रज में आए थे कि गोपियों को उद्बोधित कर लौट जायेंगे किन्तु यह ब्रज कितना रसमय है !

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् ।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम्॥

(भा.१०/४७/५६)

ब्रज का वनस्थल, स्वर्ग के नन्दन कानन को भी लज्जावनत कर रहा है, कुसुमित उपवन की सुषमा चतुर्दिक् प्रसरित हो रही है, यहाँ के तरु, लता-वल्लरियाँ सब सजीव एवं अकृत्रिम हैं।

नित्य नवीन-नवीनतर होने वाली ब्रज की वैभव-राशि की अभिव्यक्ति भला शब्दों से कहाँ संभव है? उद्धव जी ने यहाँ की कृष्ण प्रेम में पगी हुई वेगवती सरिताओं को देखा, गिरिराज की सुख सम्वर्धना कन्दराओं को, घाटियों को देखा, "**कृष्ण संस्मारयन्**" कृष्ण स्मृति कराने वाली रंग-बिरंगे सुमन के भार से झुकी लताओं को देखा।

१ दिन का अतिथि षड् मास तक रह गया, जाने का नाम भी कभी नहीं लेता।

आचार्यों ने टीका में स्पष्ट किया है, इन प्रेम से अवगुंठित लीलाओं को।

गोपियों से उद्धव जी पूछते हैं – "यह किस लीला से गर्वित स्थल है?

इस घाटी में क्या किया, ब्रज मयंक ने?

इस तमाल तरु के तर भी कभी खड़े हुए थे क्या ....? "

यहाँ का अचर भी सचर की भाँति मानो मुझे कह रहा है "उद्धव ! क्यों पूछते हो? यहाँ का तो कण-कण ब्रजेन्द्र नन्दन की लीला से सिक्त है।"

उद्धव जी को ब्रजपुर रमणियाँ कर पकड़कर दिखातीं और साश्रुकंठ कहतीं –

"एक दिन सौंज समीप एहि मारग बेचन जात दही री"

"मैं एकाकिनी थी उस दिन और इसी निर्जन वन से निकल रही थी।

"केलि के मिस दान हित मोहन मेरी बांह गही री ।"

और ....और....उस महामरकत-श्यामल सुकुमार ने मेरी बांह पकड़ ली; यह वही स्थल है .... वही स्थल है ...."

जिय की साधन जिय ही रही री ।

"कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम्"

(भा.१०/४७/५६)

ब्रजकुल चन्द्र की याद दिलाते हुए बृहस्पति के ये शिष्य तो ब्रज-वसुन्धरा में बौरे से घूमने लगे। ज्ञान का दिव्य अम्बर फटकर गूदड़ी बन गया।

(वृन्दावन में ज्ञान-गूदड़ी विख्यात है।)

ब्रज का कुश-कण्टक भी प्रेम से पूरित है।

उलझकर वस्त्र से कांटे, लगे ऊधो को समझाने ।
तुम्हारा ज्ञान पर्दा फाड़ देंगे प्रेम दीवाने॥

अब तो उद्धव जी ब्रज लीला में रमण करने लग गये। भागवतकार कहते हैं कि उस समय वहाँ श्री कृष्ण तो प्रत्यक्ष नहीं थे किन्तु उनकी लीला-रस से सिंचित-अंकित भूमि अब भी वही छटा, वही सौन्दर्य-सुषमा प्रसारित कर रही थी।

इतस्ततो विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ।
गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निः स्वनेन च ॥

(भा.१०/४६/१०)

उद्धव जी ने देखा –

स्थान-स्थान पर वंशिका का मधुस्यन्दी स्वर सुनाई पड़ रहा है।

चतुर्दिक् लघु-लघु श्वेत-वत्स उछल-कूद कर रहे हैं।

कितना रस है यहाँ !

उनके जाने के बाद भी –

यहाँ के शुक-पिक-कपोत और ये मदमाते मयूर भी अपनी भाषा में उन्हीं की चर्चा कर रहे हैं।

गोपिकाओं के हृत्प्राङ्गण में तो ये सदा ही क्रीड़ारत रहते हैं।

इन लघु वत्सों की दृग-पुतलियों को देखो, तो लगता है एक-एक के पास दो-दो गोपाल हैं।

और अब न जाने क्या सूझा – अविराम, द्रुत गति से दौड़े जा रहे हैं, कृष्ण स्पृष्ट पुच्छ को पृष्ठ पर घुमाते हैं और निर्निमेष विस्फारित नेत्रों से चहुँ ओर देखते हैं।

"पुनः पुनः.... श्री निकेतै....शक्नुमः" भा.१०/४७/५० उद्धव जी ने देखा – सारा ब्रज कृष्ण चरणों से मण्डित ऐसी शोभा को पा रहा है जैसे किसी नवोढा-नायिका की साड़ी पर छापेदार कढ़ाई कर दी हो।

बस, इसी में कब ६ मास व्यतीत हो गये, उद्धव जी को पता ही न चला।

'हरिदासौ व्रजौकसाम्'

उद्धव जी कृष्ण दास हैं, हरि के दास हैं किन्तु जब सर्वरससमन्वित ब्रज भूमि में आये तो भूल गये श्री कृष्ण को भी।

"गर्गसंहिता" और "ब्रह्मवैवर्तपुराण" में विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।

एक दिन स्वयं श्रीजी ने याद दिलाया –

"उद्धव ! तुम्हारे सखा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, तुम्हें गमन भी करना है ......"

श्रीजी ने आशीष दिया है, उद्धव जी को।

श्रीजी की कृपा प्राप्त करके कलेजा थामकर उद्धव जी जा रहे हैं। सोचा .... एक बार और इन कृष्णप्रेयसी ब्रज-रामाओं के दर्शन कर लूँ। एक उच्च टीले पर चढ़ गये और वहाँ से देखा – उन कृष्णचर्चा संलग्ना ब्रज-वामाओं को कि ये ही हैं वे प्रेम प्रतिमा, जिनका संग पाकर मैं कृष्ण को भी भूल गया।

जिस ब्रजधरा और ब्रजगोपाङ्गनाओं का संग पाकर उद्धव श्रीकृष्ण को भी भूल गए वह श्रीकृष्ण से भी अधिक रस-युक्त हैं, ऐसा कहना कोई अत्योक्ति नहीं है।

श्री परमानन्ददासजी जी कहते हैं –

गोपी प्रेम की ध्वजा ।
जिन्ह गुपाल किए अपने बस, उर धरि स्याम भुजा ॥
सुक-मुनि-व्यास प्रसंसा कीन्ही, ऊधौ संत सराहीं।
भूरि भाग गोकुल की बनिता अति पुनीत भव माहीं ॥
कहा भयौ विप्रकुल जनमै जो हरि सेवा नाहीं ॥
सोइ कुलीन दास 'परमानन्द, जे हरि सनमुख जाहीं ॥

जो रास-रस विधि-हरि-हर, उमा-रमा-शारदा को भी प्राप्त नहीं हुआ वह उन गोपिकाओं को सहज प्राप्त था। वे महाभागा ललनायें तो –

"ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावै"

इस गौरवपूर्ण प्रेम महिमा-मण्डित व्यक्तित्व को जब उद्धव जी ने टीले पर चढ़कर देखा तो उससे बिछुड़ने का असह्य दुःख हुआ। जाना भी है क्योंकि नित्य-नव-निकुंजेश्वरी का आदेश है। उस समय उद्धव जी के मन ने एक विशिष्ट कामना की –

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनां ॥

(भा.१०/४७/६१)

मुझमें कृष्ण सखा होने से आदर बुद्धि रखती हैं ये –

किन्तु इनकी चरण-रेणु को पाना भी आवश्यक है –

इन प्रेमिकाओं की चरण-रेणु के बिना प्रेम प्राप्ति नहीं होगी –

ज्ञान, वैराग्य, तप, ध्यान की क्या बिसात है?

इन साधनों से थोड़े ही प्रेम मिलेगा

प्रेम तो इनकी चरण रज में स्नान करने पर ही मिलेगा।

तरु यदि बनूँ तो वह उच्च बहुत होता है इसलिए वह चरण-रेणु से वंचित रह जाता है।

यदि मैं कोई लघु लता-गुल्म, घास-फूस, कंकड़-पत्थर बन जाऊँ तब तो सहज ही ये योगी दुर्लभ चरण-रेणु प्राप्त हो जायेगी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का भाव –

ब्रज की लता पता मोहि कीजै ।
गोपी पद पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै ॥

मेरे देह का एक-एक अवयव गोपियों की चरण रज से सन जाये।

आवत जात कुञ्ज की गलियन रूप सुधा नित पीजै ।

यहाँ की लता बनने में बहुत लाभ है, स्वतः इन ब्रज पुरवासिनी – गोप-सुंदरियों का दर्शन भी मिल जायेगा।

ऐसा क्या वैशिष्ट्य था इन ब्रज ललनाओं में जो वृष्णिवंशी परमज्ञानी स्वयं उद्धव जी ने इनकी चरण रेणु की स्पृहा की।

इनका वैशिष्ट्य –

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वाभेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(भा.१०/४७/६१)

श्री राधा राधा मुख यह वर 'हरिश्चन्द्र' को दीजै ॥

'युगल गीत' में लिखा है –

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र नीरजांकुशविचित्रललामैः ।
व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥
व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।
कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥

(भा.१०/३५/१६,१७)

प्रेम की मस्ती देखो – श्रीकृष्ण के नेत्रों को देखते ही इनके वस्त्र सरकने लग गए हैं। जाड्य भाव को प्राप्त हो गई हैं, केशपाश खुल गए हैं, नीवी बंधन खुल गए, फरिया गिर गई, हाथ वश में नहीं है। कौन संभाले? प्रेम को कोई नीरस क्या समझेगा? वह तो यही कहेगा, ये अतिशयोक्ति है।

उद्धव पर जो प्रभाव पड़ा था वो गोपियों की स्थिति देखकर पड़ा था। समझ गए कि हमारा ज्ञान तो दो कौड़ी का भी नहीं है। क्यों? क्योंकि ज्ञानी कहता है कि चित्तवृति ब्रह्माकार होनी चाहिए। बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी देखे हैं परन्तु ऐसा नहीं देखा कि जहाँ न अपने तन का होश है, न किसी क्रिया का होश है। इस स्थिति को देखकर उद्धव शांत हो गए और सोचने लगे कि कैसा अद्भुत है ये रस? कैसी विचित्र है, ये अवस्था।

पीर-दग्धा गोपियों की प्रेम-युत बौद्धिक शक्ति से पराभूत हो गए उद्धव।

ज्ञान की गठरी उठाई और कलिन्दजा में प्रवाहित कर दी। गोपियों के गुण गाते हुए उनकी चरणधूल को नमन करके मथुरा की ओर मुड़ गए।

मथुरा पहुँचकर बड़ा आक्रोश किया श्री कृष्ण पर –

करुणामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी।
जबहि लौं कहौं लखौ तबहिं लौं बाँधी मूँठी॥
मैं जान्यो ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप।
जे तुमको अवलम्बही तिनकौं मेलौ कूप॥

"हे अखिलेश ! या तो नाम परिवर्तित कर लो या फिर नाम को चरितार्थ करो। करूणानिधि की झूठी डिग्री लिये मत घूमो।"

पुनि-पुनि कहैं अहो स्याम जाय वृन्दावन रहियै।
परम प्रेम को पुंज जहाँ गोपी संग लहियै॥
और संग सब छाँड़िं कै उन लोगन सुख देहु।
नातरू टूटयो जात है अबहीं नेह सनेहु॥

(ब्रज कोकिल श्री नन्ददास जी)

यही भाव परमानन्द दास जी के शब्दों में –

उद्धव जी कहते हैं –

ऐसी मैं देखी ब्रज की बात।
तुम बिन कान्ह कमल दल लोचन जैसे दुलह बिन जात बरात॥
वेई मोर कोकिल वेई वेई पपीहा है वन बोलत।
वेई ग्वाल गोपिका वेई वेई गोधन कानन डोलत॥
यह सब सम्पत्ति नन्द गोप की तुम्हारे प्रसाद रमा के नाथ !।
'परमानन्द' प्रभु एकबार मिलहु यह पतियाँ लिखिदीनी मेरे हाथ॥

श्री राधा कुण्ड

जिस राधा कुण्ड के धराधाम पर अवतरण के पश्चात गिरिराज जी की महिमा अलौकिक हो गयी। वस्तुतः श्रीराधाकुण्ड और श्रीराधा में कोई भेद नहीं है।

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥

(प.पु.कार्तिक माहात्म्य)

अर्थात् – श्रीकृष्ण को जितनी प्रिय श्रीराधा हैं उतना ही राधा कुण्ड है क्योंकि दोनों अभिन्न हैं।

वृष का वेष धारण किये अरिष्ट नामक असुर यहाँ रहता था इसलिए पहले इस क्षेत्र का नाम अरिष्ट वन था। जिस समय श्रीमन्महाप्रभु जी यहाँ आये तब तक भी ये स्थान आरिट ग्राम के नाम से जाना जाता था –

अरिष्टासुरनामासौ यत्रैव वसते सदा ।
यदरिष्टं वनं नाम बहु वानर सकुलं ॥

(आ.वा.पु)

अरिष्ट वन के नाम से कई स्थानों पर स्कन्द पुराण व आदिवाराह पुराण में इसको प्रणाम करने के मंत्र भी प्राप्त होते हैं।

एक बार अरिष्टासुर के आतंक से जब ब्रजवासीगण भयभीत हुए, तो उनको भयमुक्त करने के लिए उस वृष रूप अरिष्टासुर का श्रीकृष्ण ने प्राणान्त कर डाला, किन्तु इस संहार से ब्रजवासी प्रसन्न नहीं हुए। कारण कि वह असुर गौवंश की आकृति में था। सांड़ के रूप में था। अतः गौभक्त गौ निष्ठ ब्रजवासियों ने श्री कृष्ण का परित्याग कर दिया –

ततस्तु राधिकात्यक्तो ललितामोहनस्तदा ।
अस्माकं नैव संसर्गो विमोचनं वृषहत्यासमन्वितः ॥

"हे कृष्ण ! हे वृषवधक ! अब तुम हमें न छूना, तुमने एक वृष की हत्या की है। गौवंश पर आघात किया है।" श्री कृष्ण बोले – "किन्तु बालाओ ! वह एक भयावह असुर था। वध के योग्य था।" गोपियाँ बोलीं – "वह असुर था कि आसुरी स्वभाव का था ये सब हम सुनना नहीं चाहतीं। वह एक नर गाय था। इस गौहत्या रूप पाप से मुक्त होने के लिए तुम्हें प्रायश्चित करना चाहिए। जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर नामक ब्राह्मण की हत्या करने के उपरान्त किया था।" श्री कृष्ण ने पूछा – "इसका क्या प्रायश्चित है? " गोपियाँ बोलीं – "तुम सभी तीर्थस्थानों में स्नान करो। इसीमें पवित्रीकरण संभव है।" श्री कृष्ण बोले – "यदि मैं सब तीर्थों में स्नान कर भी आऊँ और फिर भी तुम विश्वास न करो, तो? अच्छा है कि मैं यहीं सभी तीर्थों का आह्वान कर दूँ और तुम्हारे समक्ष ही उनमें स्नान कर लूँ।" उसी समय श्री ठाकुर जी ने भूमि पर अपनी पार्ष्णि (एड़ी) से प्रहार किया और समस्त तीर्थों को आहूत किया कि हे समस्त तीर्थो ! कृपया आप यहाँ पधारिये ! तब सभी तीर्थ मूर्तिमान वहाँ उपस्थित हो गये। श्री कृष्ण बोले (गोपियों से) – "देखो ! अब तुम सब तीर्थों के दर्शन कर लो, कहीं फिर मुझे झूठा बना दो कि तुमने कहाँ और कब तीर्थ बुलाये, उनमें स्नान किये।" किन्तु गोपियाँ तो गोपियाँ हैं, बोलीं –"हमें तो कोई तीर्थ नहीं दिखाई दे रहा है।" ठाकुर जी सोचने लगे कि ये कितनी चतुर हैं। सामने तीर्थ साक्षात् खड़े हैं और कहती हैं कि हमें तो कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है तो वे सब तीर्थ स्थल करबद्ध होकर अपना अपना परिचय देने लगे।

प्रोचु:कृताञ्जलिपुटा लवणाब्धिरस्मि क्षीराब्धिरस्मि श्रृणुतामरदीर्घिकास्मि । शोणोऽपि सिन्धुरहमस्मि भवामि ताम्रपर्णी च पुष्करमहञ्च सरस्वती च गोदावरी रविसुता सरयू: प्रयागोरेवास्मि पश्यत जलं कुरुत प्रतीतिम्

(विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद कृत टीका भा.१०/३६/१५)

"मैं लवणसागर हूँ, मैं क्षीरसागर हूँ, मैं सोन नदी हूँ, मैं ताम्रपर्णी नदी हूँ, मैं पुष्कर तीर्थ हूँ, मैं सरस्वती नदी हूँ, मैं गोदावरी हूँ, मैं यमुना हूँ, मैं अयोध्या से सरयू हूँ, मैं प्रयाग की संगम स्थली हूँ, मैं रेवा नदी हूँ।

जरा हमारे निर्मल जल की ओर देखो और हमारे ऊपर विश्वास करो।"

तब गोपियों ने कहा – "ठीक है अब हमें तीर्थ दीख गये हैं, तुम इनमें स्नान करो।" तब उन सभी तीर्थों के एकत्रित जल में श्री कृष्ण ने स्नान किया और बोले – "देखो अब तो मैं पवित्र हो गया हूँ" फिर गर्वान्वित होकर बोले – "देखो, मैंने ऐसे सरोवर का निर्माण किया, जिसमें समस्त तीर्थ मैंने प्रविष्ट कराये। मैंने असुर को मारा उससे गोहत्यारा तुमने कहा किन्तु वो तो असुर वंश का था। असुर का पक्ष लेने से तुम्हें भी पाप लगा है। तुम भी प्रायश्चित करो" तब गोपियों ने श्रीजी से प्रार्थना की कि लाल जी ऐसा कह रहे हैं तब दो घड़ी में ही श्री जी ने गोपियों की सहायता से वहाँ एक दिव्य कुण्ड का निर्माण कर दिया।

जिसे गोपियों ने मानसी गंगा के जल से परिपूर्ण कर दिया –

दिव्यं सर: प्रकटितं घटिकाद्वयेन
ताभिर्विलोक्य सरसं स्मरते स्म कृष्ण:

(विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद कृत टीका भा.१०/३६/१५)

जिसे देखकर श्री कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए, बोले – "हे कमलनयनी ! तुम चाहो तो तुम्हारी सखियाँ इस कुण्ड को मेरे कुण्ड के जल से भर सकती हैं।" तो श्रीजी ने मना कर दिया, बोलीं –

राधा तदा नन्ननेति जगाद् यस्मात्त्वत्कुण्डनीरमुरु गौवधपातकाक्तम् ।

(विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद कृत टीका भा.१०/३६/१५)

"नहीं-नहीं-नहीं कभी नहीं। तुमने अपने इस कुण्ड में नहाकर गौहत्या का पाप धोया है। उस पाप से तुम्हारा कुण्ड दूषित है। मैं अपने कुण्ड को दूषित नहीं होने दूँगी। मैं अपने इस कुण्ड को मानसी गंगा के पवित्र जल से परिपूर्ण करके इसकी कीर्ति को अद्वितीय बना दूँगी।" यह सुनकर और श्रीकृष्ण का संकेत पाकर उनके कुण्ड से सब तीर्थस्थल प्रकटे और श्रीजी को करबद्ध नतमस्तक होकर प्रणाम किया। अश्रुपूर्ण हो झर झर आँसुओं की धारा बह रही है। बोले – "हे महाशक्ति ! सब शास्त्रों के ज्ञाता होने पर भी जो आपकी महिमा नहीं जानते, न ब्रह्मा, न शिव, न लक्ष्मी, आपको यथार्थ जानने वाले तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं। वे भी आपके स्वेद बिन्दुओं को पोंछकर अपने को धन्य समझते हैं। उन्हीके पार्ष्णिप्रहार से उत्पन्न इस कुण्ड में हमने शरण ग्रहण की। किन्तु यदि हमें भी आपकी कृपादृष्टि प्राप्त हो

जाए तो हमारी आशा की कलियाँ खिल जायेंगी। यदि आप हमें अपने कुण्ड में प्रविष्ट होने की आज्ञा दें तो हमारा जीवन सफल हो जाएगा। आपके इसी वरदान के हम इच्छुक हैं।" श्रीजी तो दयामयी हैं ही, दया से परिपूर्ण होकर बोलीं –

"आगच्छतेति, कृपया पधारिये।" श्रीजी का अनुग्रह प्राप्त करके उन सभी तीर्थों ने उस सरोवर को अपने-अपने जल से भर दिया तो श्याम सुन्दर बोले ! "हे राधे ! मेरे कुण्ड में तो स्नान कर मैने गोहत्या रूप पाप का प्रायश्चित किया है। इस लिए इसमें तो आपके कुण्ड के आगे कोई भी स्नान नहीं करेगा और यह उपेक्षित हो जायेगा पर श्रीजी करुणामयी हैं, बोलीं – "चिंता मत करो मैं ऐसा नहीं होने दूँगी" और कहकर अपने कर कंकण की एक चोट से दोनो कुण्डों को एक कर दिया तो ये लीला है राधा और श्याम कुण्ड की।

"हे प्रियतमे ! तुम्हारा यह कुण्ड इस संसार में मेरे कुण्ड से भी अधिक महामहिमामय हो।" यह वही राधाकुण्ड है जो गिरिराज जी की कीर्ति बनाने में सहायक हुआ।

"यथा तवमसि तद्वदिदं सरो में"

(विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद कृत टीका भा.१०/३६/१५)

"जैसे तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, वैसे ही यह सरोवर भी मुझे सदा सर्वदा प्रिय रहेगा। मेरे लिए तुममें और तुम्हारे इस सरोवर में कोई भेद नहीं है। मैं यहाँ रोज जल केलि व स्नान हेतु आया करूँगा।"

श्री राधा बोलीं – "मैं भी सदैव अपनी सखियों के साथ आपके सरोवर में स्नान करने आऊँगी।"

श्री चैतन्य महाप्रभु जी जब यहाँ आये उस समय ये दोनों सरोवर लुप्त प्राय हो गये थे। बड़ी उपेक्षित स्थिति को प्राप्त थे। तब उस समय महाप्रभु जी ने इसको पुनः धान के खेतों में से प्रकट किया।

एइमत महाप्रभु नाचिते-नाचिते ।
आरिटग्राम आसि बाह्य हैल आचम्बिते ॥
आरिटे राधाकुण्ड-वार्ता पुछे लोकस्थाने ।
केहो नाहि कहे, संगेर ब्राह्मण ना जाने ॥
तीर्थ लुप्त जानि प्रभु सर्वग्य भगवान् ।
दुई धान्यक्षेत्र अल्पजले कैल स्नान ॥
देखि सब ग्राम्यलोकर विस्मय हैल मन ।
प्रेमें प्रभु करे राधाकुण्डेर स्तवन ॥
सब गोपी हैते राधा कृष्णेर प्रेयसी ।
तैछे राधाकुण्ड प्रिय प्रियार-सरसि ॥

(भ.र)

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु जी नृत्य करते करते आरिट गाँव में आये और उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ। आरिट गाँव में श्रीमहाप्रभु ने लोगों से श्रीराधाकुण्ड के सम्बन्ध में पूछा कि श्रीराधाकुण्ड कहाँ है? प्रभु के वचन सुनकर कोई भी श्रीराधाकुण्ड के सम्बन्ध में कुछ बता न सका। कोई जानता भी नहीं था। प्रभु के साथ जो माथुर ब्राह्मण थे वह भी कुछ नहीं बता सके। श्रीमहाप्रभु समझ गये कि श्रीराधाकुण्ड तीर्थ लुप्त हो चुका है। किन्तु वे सर्वज्ञ भगवान् हैं। वे जान गये कि वहाँ जो दो धान के खेत हैं, उसी स्थान पर श्रीराधाकुण्ड और श्रीश्यामकुण्ड हैं। अतः प्रभु ने उस धान के खेतों में पड़े हुए थोड़े-थोड़े जल से स्नान किया। प्रभु की इस लीला को देखकर गाँव वासियों को आश्चर्य हुआ किन्तु श्रीमहाप्रभु वहाँ प्रेमपूर्वक श्रीराधाकुण्ड की स्तुति करने लगे। सब गोपियों में श्रीराधाजी जैसे श्रीश्याम सुन्दर को अति प्यारी हैं, उसी प्रकार श्रीराधाजी का श्रीकुण्ड भी उन्हें अति प्यारा है।

श्री श्री चैतन्य महाप्रभु की बैठक –

श्रीकृष्ण चैतन्य वन भ्रमण करिया।
एई तमालेर तले वसिल आसिया॥

(भ.र.)

यहाँ पास ही परिक्रमा की दायीं ओर तमाल वृक्ष है। ब्रज भ्रमण हेतु आये श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु जी यहाँ आकर विराजे तथा विश्राम किया।

इसके बाद श्री रघुनाथ दास गुसाँई पाद द्वारा इन दोनों कुंडों का जीर्णोद्धार हुआ।

विमलौ सर्वपापघ्नौ ब्रह्महत्याविघातकौ।
आदौ स्नानं तु राधाया: कुंडे सर्वार्थदायकं॥

यह राधा कुण्ड, ब्रह्म हत्या जैसे जघन्य पापों को नष्ट कर देने में भी सर्वसमर्थ है।

ग्राम मुखराई

श्री राधा रानी की मातामहीं मुखरा जी का गाँव राधा कुण्ड के दक्षिण में है। यशोदा जी को भी इन्होंने बाल्यावस्था में दुग्धपान कराया था।

पितृश्वरों की मानसोद्भूत ३ अयोनिजा कन्या कलावती, रत्नमाला और मेनका एक बार सनकादिक को भूलवश प्रणाम न कर सकीं। तब रुष्ट मुनीश्वरों से शप्त होकर वे तीनों भूतल पर आईं। यह शाप नहीं प्रत्युत वर था। जिससे उन्हें महाशक्तियों की जननी बनने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। जनक जी का वरण करके रत्नमाला (सुनैना) सीता जी की जननी बनी। पर्वतराज हिमालय का वरण करके मेनका (मैना) पार्वती जी की जननी बनी। कलावती जी ने मनु वंशी राजा सुचन्द्र का वरण किया। राजा सुचन्द्र एवं कलावती दोनों ने विन्ध्य तीर्थ में उत्कट तप किया, ब्रह्मा जी ने वर माँगने को कहा तो राजा सुचन्द्र ने मोक्ष

माँगा। कलावती ने कहा – “ब्रह्मा जी ! यदि आप इन्हें मोक्ष दे देंगे तो मैं किसके आश्रय से रहूँगी, अतः यदि आपने इन्हें मोक्ष दिया तो मैं आपको शाप दे दूँगी।” शाप के भयवश ब्रह्मा जी ने मध्य मार्ग ढूँढ लिया बोले – “ठीक है, कुछ समय तुम दोनों स्वर्ग में रहो तत्पश्चात् भारत वर्ष में तुम्हारा जन्म होगा और महाशक्ति श्री राधा रानी के माता-पिता बनने का तुम्हें सौभाग्य प्राप्त होगा।” वरदान के अनुसार राजा सुचन्द्र ने गोकुल में सुरभानु (महीभानु) एवं पद्मावती के यहाँ वृषभानु गोप के रूप में जन्म ग्रहण किया एवं कलावती (कीर्ति) का जन्म कान्यकुब्ज देश में। राजा भनन्दन ने तप्त-कांचन को तिरस्कृत करने वाली शिवांगी को अपनी रानी मुखरा (मालावती) की गोद में दिया। मुखरा ने बड़े स्नेह से कलावती का लालन पालन किया। एक दिन नन्द जी ने इस षोडश वर्षीया गजगामिनी को देखा तो मन ही मन अपने प्रिय मित्र वृषभानु के साथ उसका सम्बन्ध कराने की ठान ली। यह शुभ संकल्प भी अतिशीघ्र सम्पन्न हुआ। मुखरा, कन्या के स्नेहवश कान्यकुब्ज छोड़कर यहीं गिरिराज जी के समीप ग्राम में निवास करने लगीं। मुखरा नानी के नाम से ही ग्राम का नाम मुखराई प्रसिद्ध हुआ।आज भी यहाँ मन्दिर में लाली, मैया एवं नानी तीनों के दर्शन हैं साथ ही उस बाजनी शिला का भी दर्शन है जिससे नानी लाली राधा को प्रसन्न रखती थीं।

(शिव पुराण पार्वती खण्ड अध्याय २)

रत्नसिंहासन

कुसुमसरोवर के दक्षिण में एक भव्यस्थल है। यहाँ एक बार शिव चतुर्दशी के उपरान्त पूर्णिमा को राम-कृष्ण ब्रजगोपियों के साथ पारस्परिक होली खेल रहे थे तो श्रीराधा रानी पास ही में रत्न सिंहासन पर आकर विराजमान हो गईं, ये वही स्थल है।

सूरसागर में भी यह लीला वर्णित है –

गोवर्द्धन गिरि रत्न सिंहासन दम्पत्ति रस सुखमान ।
निबिड़ कुञ्ज जहँ कोउ न आवत रस बिलसत सुखखान ॥

(सूरसागर)

यह लीला स्थल दिव्य-दम्पत्ति की एकान्तिक लीलाओं से सिक्त है।

श्याम कुटी

यह स्थान रत्नसिंहासन के समीप ही है। श्यामरंग की कस्तूरी का अपने अंगों में लेपन कर श्री श्यामसुन्दर ने श्यामवर्ण के ही वस्त्रधारण किए तथा अलंकार भी श्यामरंग के पहने, जिससे गोपी भी उन्हें नहीं पहचान सकी थी। उसके पास ही मधुरनाद करने वाली बाजनी शिला भी थी।

श्री ग्वाल पोखरा

गोपकुमारों के साथ आद्य पौगण्डावस्था में हुई बाल कृष्ण की सख्यरस की सरस लीलाओं को संजोये, नील-मयंक की नीली ज्योत्सना से नित्य-पूरित रहती है यह सघन-वनस्थली।

यहाँ का अपूर्व सौरभ दसों दिशाओं को सुरभित किए रहता है, कहाँ तक कहें –

स्वयं शेष-शारदा भी इस भूमि के भाग्य का स्वल्प सा चित्रण-वर्णन करने में सर्वथा अक्षम है, तभी तो ऋष्यमूक, सुमेरु आदि बड़े-बड़े पर्वतों ने स्वयं तिलक कर दिया गोवर्धन का और साथ ही घोषित भी कर दिया –

"तुम ही सब पर्वतों के राजा-गिरिराज हो" क्योंकि तुम्हारा सौभाग्य

"शेष सहस मुख सकहिं न गाई ।"

गिरिराज को कर पर धारण किया, ये तो मात्र सात दिन की बात थी, किन्तु इसका उज्ज्वल भाग्य तो देखो व्रजेन्द्र-तनय ने इसे अपना वन-क्रीड़ा स्थल बना लिया। सम्पूर्ण मध्याह्न यहीं रहते हैं मुकुन्द, अपनी गायों और ग्वालों के साथ नाना प्रकार से मैत्री-वैचित्री की चारुता सम्पादन करते रहते हैं।

सुधीजनों द्वारा कथित समस्त रसों में उत्कर्षमय विश्रम्भ प्रधान 'सख्य रस' यहाँ खूब बहता है।

जाके गुण गण अमित अति निगम न पावत छोर ।
सो प्रभु खेलत ग्वाल संग बंधे प्रेम की डोर ॥

(ब्रज विलास)

रस-आनन्दोदधि के अतल-तल में ले जाने वाली इन ललित-लीलाओं के कथन-पठन, श्रवण-स्मरण, मनन-चिन्तन से कभी मनस्तोष ही नहीं होता। अतः भागवतकार ने तो बार-बार गाया इन्हें अपनी शाश्वत् संहिता श्रीमद्भागवत में और तो और पौगण्ड में प्रवेश से पूर्व ही गाना आरम्भ कर दिया, चञ्चल की चपलता को।

साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरित्प्रस्रवसम्प्लुताः ।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥

(भा.१०/१२/१०)

देखो तो, ये नन्हे-मुन्ने गोपकुमार छोटे-छोटे पावस के जल पूरित गर्तों को, वारि की पतली धारा को कैसे पार कर रहे हैं। पहले अपने पटुके को कटि में कसते हैं, बाजूबंदों को ऊपर खिसका देते हैं मानो किसी दुर्गम घाटी को पार करने जा रहे हैं और फिर उंची

छलांग लगाकर जब पार हो जाते हैं मण्डूकों के साथ, तो सस्मित मुख ताली बजा कर कूदने लगते हैं ए ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ .....

इन नन्हे-मुन्हों ने जल में अपना प्रतिबिम्ब देख लिया तो यही इनके लिए परिहास का विषय बन गया।

कृष्ण – "मधुमंगल ! देख तो, तेरा मुख नाक के नीचे है।"

सुबल – "तभी तो लड्डू की सुगंध कोसों दूर से आ जाती है।"

अपना परिहास सहन नहीं होता मधुमंगल को।

झट से बोला – "कान्हा ! तू अपनी लटकती, लहराती नाक संभाल, कहीं जल में ही न गिर जाय। तेरा विवाह मुझे ही कराना है।

मैं ब्राह्मण हूँ। यदि तू नकटा हो गया तो मैं नकटी कहाँ से लाउँगा ...."

(सब गोप मण्डली हँस पड़ी)

नासमझ इतने हैं ये नन्हे-मुन्हे कि अपनी ही प्रतिध्वनि को सुनकर गाली देने लगते हैं।

"तू कौन है ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ"

और उच्च स्वर से – "अरे ! तू कौन बोल रहा है? "

प्रतिध्वनि – "अरे ! तू कौन बोल रहा है ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ"

रे रे कस्त्वं ब्रूषे इति स्वप्रतिध्वनिं श्रुत्वा कुपिताः किमरे मामेव रेरेकारेणाक्षिपसि तत्त्वमद्यैव शीघ्रं म्रियस्वेति पुनःपुनरनवस्थया आक्रोशन्तः ॥

(विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद कृत टीका भा.१०/१२/१०)

"तू मुझे 'रे-रे' कहकर बोलता है। तू जल्दी मरना चाहता है क्या?"

ऐसा पुनः-पुनः आक्षेप करते हैं।

बाल-क्रीड़ारत ब्रजवासी बालक इतने मुग्ध हो जाते हैं कि अपनी ही प्रतिध्वनि को नहीं जान पाते हैं।

भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।
चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥

(भा.१०/१८/१२)

कभी एक-दूसरे को हाथ पकड़कर घुमाने लगते हैं, कभी परस्पर आक्षेप वाक्यों का प्रयोग करते हैं।

एक-दूसरे को ललकारते हैं –

"मैया का दूध पिया हो तो आ जा"

"गैया का पिया हो तो आ जा"

किसका पत्थर दूर जायेगा, प्रतिस्पर्धा हो रही है।

कभी ये छोटे-छोटे पहलवान करतल से अपनी भुजाओं को ठोकते हैं। कभी दो दल बनाकर एक-दूसरे को खींचते हुए अपना बल प्रदर्शन करते हैं।

दीर्घ-सघन-वक्र-केशराशि सुशोभित हो रही है, अगणित प्रस्वेद-कणावलि छोटे से मुखाम्बुज पर साम्राज्य कर लेती है।

प्रकृति से परे किसी अभिनव-उपादान से निर्मित सौंदर्य का यह आगार जब विथकित हो जाता है तो उन नन्हें बालकों में से कोई कमल पत्र से व्यजन करने लगता है। कोई उसका वस्त्रालंकार ठीक करता है, कोई अपने कोमल कर से उसका स्वेद-मार्जन करता है।

यही तो है – "सरस सख्य रस"

परमानन्द स्वामी की वाणी में सख्य रस –

गोपाल माई खेलत हैं चौगान
ब्रजकुमार बालक संग लीने वृन्दावन मैदान।

(वृन्दावन से तात्पर्य-पञ्च योजन वृन्दावन)

चौगान क्रीड़ा आरम्भ हुई –

चौगान में जिसके पास गेंद जाती है, वही उसे मारता है। शत-सहस्र सखाओं का समूह राम-श्याम सहित खेल रहा है यह खेल।

चंचल बाजि नचावत आवत होड़ लगावत यान।

यह बड़ा विचित्र चौगान का खेल है। चंचल घोड़े पर बैठकर दौड़ते हुए गेंद पर चोट कर रहे हैं। कन्दुक-क्रीड़ा में चतुर यशोदा-नन्दन तब तक चंचल घोड़े पर बैठकर आये और सबके देखते-देखते मध्य से कन्दुक लेकर भाग गये।

अब तो सारे सखामण्डल में हल्ला मच गया। सबके सब कंठ पर कर रखकर अपने-अपने बाबा की सौगन्ध खाने लग गये।

बोले – "बाबा की सौगन्ध ! कृष्ण से मैं कन्दुक लूंगा।"

दूसरा – "तू कैसे लेगा, मेरा अश्व अधिक तेज चलता है। बाबा की सौगन्ध ! मैं कन्दुक लूँगा।"

सबहि हस्त लै गेंद चलावत करत बबा की आन।

सारा समूह पहुँच गया कृष्ण के समीप और छीना-झपटी होने लगी। जो हाथ में आता उसी में खेंचा-खेंची होने लगती।

करत न शंक निशंक महावल, हरत नृपति कुल मान ।

सहसा, बालकों के मन में आया कि कहीं इस छीना-झपटी से हमारे कन्हैया को चोट न लग जाये, वो बेचारा आहत न हो जाये। इस सोच ने सबको एकदम रोक दिया छीना-झपटी से।

'परमानन्द दास' को ठाकुर गुण आनन्द निधान ।

ये नन्हे-नन्हे आद्य-पौगण्डावस्था के बालक खेलते भी हैं तो यह ध्यान में रखकर कि कन्हैया को कुछ न हो जाये। कन्हैया ही तो इनके लिए सबसे बड़ा खेल है।

विमुक्तसम्भ्रमा या स्याद् विश्रम्भात्मा रतिर्द्वयोः ।
प्रायः समानयोरत्र सा सख्यं स्थायिशब्दभाक् ॥

(भ.र.सि.पश्चिम विभाग.३ लहरी श्लोक.१०५)

भय शून्य, विश्वासयुक्त समवयस्कों की जो रति है, वही सख्य भाव है। नाना क्रीड़ाएँ करते हुए जब श्रांत हो गये बालक तो सबसे पहले लड्डू-लाड़ला मधुमंगल बोला – "कन्हैया! मोदक की याद आ रही है। उदर धैर्य त्यागकर ऊधम मचा रहा है, कुछ कर भैया ....."

अंशु – "हाँ दादा! मैं भी बहुत भूखा हूँ।"

भद्रसेन – 'भैया कन्हैया! यदि थोड़ी देर छाक और नहीं आई तो मधुमंगल निश्चेष्ट-बेसुध होकर गिर पड़ेगा।"

(भद्रसेन के कहते ही नाटकिया मधुमंगल को गिरने में देर न लगी)

उदर पर कर रखकर गिर पड़ा पेटू मधुमंगल।

तब तक वात्सल्यमयी मैया यशोदा ने एक ग्वालिन के हाथ छाक भेज दी।

आई छाक बुलाये श्याम ।
यह सुन सखा सबे जुर आये सुबल सुबाहु श्रीदाम ॥

सुबल, सुबाहू, श्री दाम.... आदि सब ग्वाल आ गये।

अरे! ये क्या, मूर्च्छित मधुमंगल तो स्वयमेव उठ खड़ा हुआ।

"छाक की सुवास के सहारे खड़ा हो पाया हूँ मैं", मधुमंगल बोला।

(सब हँस पड़े)

कमल पत्र दोना पलास के सबके आगे धार परोसत जात ।

वन्यपात्र तो यही होते हैं।

शतपत्र कमल के दल को सम्मुख बिछा लिया, किसी ने कदली-पत्र को, किसी ने गिरिराज के स्निग्ध पत्थर ही पात्र बना लिये, किसी ने नारिकेल फल को ही पेय पदार्थ का पात्र बना लिया।

भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय सब प्रकार का भोजन है। पात्र भर जाते हैं, पेट भी भर जाता है किन्तु पदार्थ तो हर बार नये मालूम पड़ते हैं। पदार्थों का क्रम ही नहीं आता, इतने पदार्थ हैं।

ग्वाल मण्डली मध्य श्यामघन सब मिल रूचि कर खात ॥

कटि वस्त्र में वंशिका दबा ली, श्रृंग और वेत्र को कक्ष में दबा लिया, वाम कर-कमल के तल-देश एक कवल (ग्रास) रख लिया, उँगली के संधि-स्थान में द्राक्षा, अमरूद, नींबू नाना प्रकार के अचार रखे हुए, दक्षिण हस्त दूसरे का उच्छिष्ट लूटने के लिए रिक्त था। उस समय ये नन्दकुल चन्द्र नीलकांतमणि की भाँति उस सख्य समुदाय के मध्य सुशोभित हो रहा था।

ऐसी भूख मांझ यह भोजन पठाय दिये कर यशोदा मात ।
'सूरस्याम' अब लों नहि जेंवत ग्वालिन कर ते लै लै खात ॥

समीप सब कुछ है, पर ये गोपाल जब तक सखाओं का अवशिष्ट, उच्छिष्ट न मिल जाए तो भोजन ही आरम्भ नहीं करता।

यह स्थान बाल-कृष्ण की ऐसी अनेकों सख्य रस की वन-क्रीड़ाओं का सहायक है।

वन्य-भोजनोपरान्त यहाँ श्री कृष्ण ने गौ-वत्सों को पानी पिलाया, अतः यह स्थल 'ग्वाल पोखरा' के नाम से प्रख्यात हो गया।

श्री प्रिया शरण जी – समाधि स्थल

ग्वाल पोखरा से कुछ दूर परम पूज्य बाबा श्री प्रिया शरण जी महाराज का समाधि स्थल।

भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक ।
इनके पग वन्दन किये नाशै विघ्न अनेक ॥

प्रपूज्य श्री रमेश बाबा महाराज के भुक्ति-मुक्ति-त्याग से पूरित जीवन, ब्रजरज के अनन्य उपासी, गूढतम रसिक वाणियों के सर्वज्ञाता, परमाति परम प्रणम्य सद् गुरुदेव श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज। सर्वगुणसिन्धु-समन्वित आपका दिव्यातिदिव्य आत्म परिचय वाणी और लेखनी से सर्वथा अशक्य है। भला सीमित से असीम का वर्णन सम्भव है ....? फिर भी लेखनी पावन बनाने हेतु, जो भी यहाँ लिखा जा रहा है, वह एक पिपीलिका प्रयास

ही है। ब्रज के प्रति आपकी अनन्त प्रीति व अविचल निष्ठा थी। आजन्म ब्रजभूमि को ही अपना एकाश्रय बनाकर यहाँ की रज में अपनी शतायु पूर्ण की। सर्वथा संकीर्णता-विहीन, आप गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के महान सूर्य पं.बाबा श्री श्री राम कृष्ण दास जी महाराज के प्रधान साधकों में थे। तीस वर्ष तक आपको उनका संग प्राप्त हुआ। जिनकी सद् प्रेरणा से सन् १९२९ में आकर गाँधीजी और लौह पुरुष बल्लभ भाई पटेल भी अनुप्राणित हुए थे। जिस समय ये देशभक्त महापुरुष पं. बाबा के पास आये थे, उस समय पूज्य श्री प्रिया शरण जी महाराज भी उनके समीप ही आसीन थे। आप सदैव पं. बाबा की अभीष्ट सेवा संपादन के लिये उनके निकट ही रहते। गाँधीजी का प्रश्न था, (पं.बाबा से) "१८५७ के पूर्व से प्रारम्भ भारत स्वतंत्रता का आंदोलन चल रहा है, अभी तक अनवरत प्रयास के बाद भी सफलता की ओर क्यों नहीं दिखाई देता? "

पं. बाबा का उत्तर –

"बिना नाम संकीर्तन के सिद्धि सम्भव नहीं है।"

नाम संकीर्तन सब साधनों का पूरक है।

महाप्रभु जी का कथन भी यही है –

"नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय"

नवधा भक्ति की पूर्णता भी नाम से है।

महद् मुख से निःसृत कथन आत्मस्थ हो गया गाँधीजी को। ब्रज से प्रत्यागमन करते ही "रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम" कीर्तनारम्भ किया और १९४७ में स्वतंत्रता आन्दोलन की सफलता सर्वसमक्ष हो गयी।

यह चमत्कार प्रत्यक्ष गोचर हुआ, आप श्री को और फिर आपने ही यह घटनाक्रम पूज्य श्री रमेश बाबा जी महाराज को बताया। युग्म युगल रसतत्व का विस्तृत विवेचन करने वाला, अगोचर, असमोर्ध्व रसमय ग्रन्थ है – 'श्री महावाणी'। जिसका प्रसार आपने ही किया।

आपकी वाङ्गमय प्रतिभा इतनी असाधारण थी कि जब आप गहनतम रसयुत विषयों पर बोलने लगते, तो बड़े-बड़े एकांत साधनरत विद्वज्जन अपनी कुटिया को त्यागकर कर्णों को श्रवणानन्द देने को बाध्य हो जाते। आपने-अपनी भक्तिमयी ज्योत्स्ना से अगणितों को आलोकित किया, आपकी धाम के प्रति आस्था ने असंख्यों को आस्थावान् बना दिया। विश्व-मानव के परमार्थ को उन्नत बनाने के लिए ही आपका प्रत्येक क्रिया-कलाप था। आपके प्रेरणाप्रद व लोक हितनिरत दिव्य जीवन ने ब्रज में अनेकों स्तुत्य कार्य किये।

कतिपय यहाँ द्रष्टव्य है –

सेठ हरगूलाल को अध्यात्म पथ अपावृत किया और उनके द्वारा आपने ही श्रीजी मन्दिर (बरसाना) बनवाया, सेवा प्रारम्भ कराई। प्रियाकुण्ड (बरसाना) व मानसी गंगा (गोवर्धन) का जीर्णोद्धार भी १९६० ई. में आप के द्वारा ही सम्पन्न हुआ। ब्रज सेवा समिति का संस्थापन, जिसमें संत-महात्माओं के लिए कम्बल, वस्त्रादि वितरित होता रहा। त्याग, सेवा अपरिमित ज्ञान, एकान्तिक साधना . इन सब ईश्वरीय गुणों का आपके जीवन में अपूर्व संयोग था।

आपका सबसे बड़ा धन –

'अपरिग्रह', आपका सबसे बड़ा धन था। आप कहते थे – "लाला ! मैं मरुँगा तो मेरे पास चार आना भी नहीं मिलेगा" उक्त व्रतों का पूर्णतः निर्वहन आपने किया। एक करुआ पानी, रोटी के २-४ टूक गोवर्धन से लेकर रात को लौटते, बस यही आपका आहार था, जिसके आधार पर १६ घंटे एक आसन पर आसीन होकर भजन करते। आवासार्थ कभी भी आपने एक कुटी तक नहीं बनाई, वृद्धावस्था में भी कभी किसी धर्मशाला में रुक गये, कभी कहीं ठहर गये, आपका सम्पूर्ण जीवन असंग्रह का असमोर्ध्व आदर्श था।

विग्रह संवरण के पूर्व आपने कहा था –

"मेरा शरीरांत होने पर, समाधि मत बनवाना" किन्तु कुछ भक्तगणों ने समाधि-स्थल बनवा दिया। प्रति वर्ष 'राधारानी ब्रजयात्रा' के मध्य से पूज्य बाबा महाराज यहाँ इस समाधि स्थल पर नमन करने गमन करते हैं। आपके (श्री प्रियाशरण बाबा महाराज के) परम कृपा भाजक रहे श्री बाबा महाराज। जिन्हें आपने आजीवन अखण्ड ब्रजवास का आशीष प्रदान किया। एक दिव्य सत्ता का परिचय आंशिक रूप से ही यहाँ हुआ है क्योंकि एक असीम सत्ता का विषय लेखनीबद्ध तो हो नहीं सकता। अतः जितना संभव हुआ, वही हमारे लिए परमध्येय है।

पापमोचन कुण्ड, ऋणमोचन कुण्ड

पापमोचन कुण्ड गोवर्द्धन-भरतपुर मार्ग पर गोवर्द्धन के निकट ही स्थित है। वर्तमान में अब यह नाममात्र का रह गया है। इसमें स्नान करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। इसी तरह परिक्रमा मार्ग में ऋणमोचन कुण्ड भी अब अतिक्रमण के कारण अस्तित्व विहीन होने जा रहा है। इसमें स्नान करने से समस्त ऋणों से जीव मुक्त हो जाता है।

पैंठा ग्राम

प्रविष्टपुरी का अपभ्रंश ही पैंठा है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि श्री कृष्ण ने इसी स्थान से गिरिराज धारण के समय प्रवेश किया था। यह पारसौली गाँव से २ कि.मी. दक्षिण दिशा में स्थित है।

भुजाचतुष्टयं क्वापि नर्मणा दर्शयन्नपि।
वृन्दावनेश्वरीप्रेम्णा द्विभुजः क्रियते हरिः॥

(उज्ज्वलनीलमणि नायिकाभेद प्रकरण १/६)

रासारम्भविधौ निलीय वसता कुञ्जे मृगाक्षीगणै-
र्दृष्टं गोपयितुं समुद्धरधिया या सुष्ठु संदर्शिता।
राधायाः प्रणयस्य हन्त महिमा यस्य श्रिया रक्षितुं
सा शक्या प्रभविष्णुनापि हरिणा नासीच्चतुर्बाहुता॥

(उज्ज्वलनीलमणि नायिकाभेद प्रकरण १/७)

श्रीकृष्ण 'वासन्तीरास' में राधा रानी को संकेत कर अन्तर्धान हो गये और निभृत-निकुञ्ज में उनकी प्रतीक्षा करने लग गये। श्रीकृष्ण को न देखकर ब्रज गोपिकाएँ कृष्णान्वेषण करती हुई वहाँ पहुँच गयीं, श्रीकृष्ण अन्यत्र न जा सके और वहीं चतुर्भुज रूप धारण कर बैठ गए, उन्हें देखकर गोपियाँ बोलीं – "ये तो कृष्ण नहीं नारायण हैं" और नारायण की स्तुति कर श्रीकृष्ण मिलन माँगा। थोड़ी देर में श्रीराधा रानी वहाँ आ गईं, श्रीकृष्ण परिहास करने के लिए उस चतुर्भुज रूप में वहीं अवस्थित रहे किन्तु श्रीराधा रानी के सामने आते ही दो भुजाएँ विलुप्त हो गयीं। यह श्रीजी के शुद्ध माधुर्य भाव का अचिन्त्य प्रभाव है, जो श्रीकृष्ण को द्विभुज कर देता है, यह इनका स्वरूपसिद्ध रूप है।

एक अन्य लीला

जब इन्द्र का प्रकोप ब्रज पर हो रहा था तो श्रीकृष्ण ने गोपकुमारों के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि मैं गिरिराज पर्वत को धारण कर लेता हूँ और उसके नीचे आने से सब ब्रजवासी, गौ व गौवत्सों की रक्षा हो जायेगी। यद्यपि ग्वाल-बाल श्रीकृष्ण के अनेक पराक्रमी कौतुकों से परिचित थे। तथापि बाल वात्सल्य की प्रबल शंकाओं के रहते सबने कहा कि कन्हैया यदि इस बड़े से कदम्ब वृक्ष को तुम ऐंठ दो तो मान लेंगे कि तुम गिरिराज पर्वत को उखाड़ सकते हो और यह कार्य बाल-कृष्ण ने कर दिखाया। अलौकिक पराक्रम का यहाँ प्रदर्शन हुआ था इसी से इस गाँव का नाम पैंठा हुआ। जिस कदम्ब वृक्ष को श्रीकृष्ण ने ऐंठा था, पूज्य श्रीबाबा महाराज की प्रेरणा से आज भी मन्दिर में शीशे के बक्से में सुरक्षित एवं दर्शनीय है।

नारद वन

ब्रज के १२ उपवनों में परिगणित श्री नारद वन (श्री नारद कुण्ड), सुरभित सुमनों से आच्छादित बड़ा ही रमणीय वन-प्रान्त है।

यत्रैव मुनिशार्दूलो नारदस्तु तपश्चरेत्।
कृष्णसंदर्शनार्थाय योगविद्यां च प्रार्थयन् ॥
यतो नारदमाख्यातं बनं नाम भुवि स्थितं।

(ब्र.भ.वि.आ.पु)

यहाँ देवर्षि नारद एवं शार्दूल मुनि ने श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए तपस्या की है।

यत्र ब्रह्मा समागत्य पुत्राध्ययन हेतवे।
सर्वं विद्यास्थलं जातं सिद्धपीठं वरप्रदं ॥

(वृहन्नारदीये)

ब्रह्मा जी ने स्वयं आकर अपने कमण्डलु से निकालकर नारद जी को यहाँ समस्त योगमयी विद्या का अध्ययन कराया एवं विद्या की सिद्धि के लिए यहाँ वीणाधारिणी, वाग्वादिनी, हंसवाहिनी, सिद्धि विद्यास्वरूप भगवती सरस्वती के विग्रह की स्थापना की और उनके आगे बैठकर नारदजी ने योगविद्या का अध्ययन किया, अतः यह स्थान देवर्षि, मनुष्यों, मुनियों के भी परम सिद्धि का कारण है।

श्री वृन्दावन लीलामृतानुसार – एक समय देवर्षि नारद आशुतोष भगवान् शम्भु के समीप गए और युगल सरकार की अष्टयाम लीला सुनने की इच्छा व्यक्त की।

शम्भु ने स्वयं को इस विषय से अनभिज्ञ बताकर कहा – "तुम वृन्दावनाधीश्वरी श्री वृंदा देवी के पास चले जाओ, उन्हें इसका सम्यक् ज्ञान है।"

रूद्र से अनुप्राणित (प्रेरणा) हो नारद जी श्री वृंदा देवी के पास गए। उनसे सविनय स्वेच्छा को व्यक्त किये, तब श्री वृन्दादेवी ने देवर्षि नारद जी को इसका सविस्तृत श्रवण कराया, तदनन्तर नारद जी इसी पावन स्थान (नारद कुण्ड) पर आये और युगल सरकार के दर्शन की अदम्य लालसा लिये, उनकी अष्टकालीन लीला का स्मरण करने लगे। तभी सखीगणों से समलङ्कृत नीला-पीला प्रकाश पुञ्ज उपस्थित हुआ। एक ओर सखीगणों से सेवित महामरकत श्यामल सुकुमार, दूसरी ओर वाम पार्श्व में खड़ी है निस्सीम अनुग्रह वर्षिका साक्षान्मन्मथ मन्मथ मानस मन्थिनी – श्रीराधा।

नील-गौर दम्पत्ति के यौवन का लास्य चतुर्दिक् पीयूष-वर्षण कर रहा है।

देवर्षि तो इस अप्रतिम सौन्दर्य का निर्निमेष नयनों से पान करते रह गए। देवर्षि के भजन-प्रभाव ने ही इस स्थान को 'नारद कुण्ड' संज्ञा दी।

बृहद्नारदीय पुराणानुसार

एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ॥
वृन्दारण्यं समासाद्यः तस्थौ पुष्पसरतटे ।
पश्चिमोत्तरतो देवि माथुरे मण्डले स्थितम् ॥
वृन्दारण्यं तुरीयांशं गोपिकेशरहःस्थलम् ।
गोवर्धनो यत्र गिरिः सखिस्थलसमीपतः ॥

(बृह.ना.पु. उ.खं. वृन्दावन महात्म्य अध्याय ८०/५,६,७)

एक बार श्रीकृष्ण लीला का रहस्य जानने के लिए देवर्षि, वृन्दादेवी की तपोभूमि कुसुम सरोवर क्षेत्र आये।

ययौ वृन्दान्तिकं भद्रे संविधाय तदीप्सितम् ॥
अथासौ नारदस्तत्र सन्निमज्योद्गतस्तदा ।
ददर्श निजमात्मानं वनितारूपमद्भुतम् ॥
ततस्तु परितो वीक्ष्य नारदी सा शुचिस्मिता ॥

(बृह.ना.पु. उ.खं. वृन्दावन महात्म्य अध्याय ८०/२५, २६)

नारद जी के अभीष्ट सम्पादन हेतु वृन्दादेवी की आज्ञा से उनकी सखी माधवी ने उन्हें युगल रसराज का दर्शन कराया। अचिन्त्यानन्त त्रिभुवन-मोहन रूप का दर्शन करके देवर्षि दिव्य-आनन्दाम्बुधि अतल-तल में चले गए। अभीष्ट पूर्ति के उपरान्त कुसुम सरोवर के दक्षिण-पश्चिम कुण्ड में पुनः स्नान करके पुरुष रूप को प्राप्त हो गए। पद्मपुराण, पाताल खण्ड, वृन्दावन माहात्म्य में भी इस पावन स्थान की चर्चा है।

ततो नारदकुण्डस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र (वृहन्नारदीय) :-

ब्रह्मलोकप्रदायैव वैकुण्ठपददायिने ।
नमः नारदकुण्डाय तुभ्यं पापप्रशान्तये ॥

हे वैकुण्ठ पद प्रदायक नारद कुण्ड ! आप सकल पातकों की निवृति करने वाले हैं आपको प्रणाम।

ततो नारदबन प्रार्थना मन्त्र (आदिपुराण) :-

गोवर्धनमुखास्थाय नारदाख्यवनाय च ।
तपसां राशये तुभ्यं नमः कैवल्यरूपिणे ॥

अर्थ :- हे कैवल्य स्वरूप नारद वन ! आप गिरिराज गोवर्धन के मुखस्थल में स्थित हैं, तपस्या की राशि हैं, आपको प्रणाम।

यत्रैव नारदो नित्यं स्नानं कृत्वा तपश्चरन् ।
यतो नारदकुंडाख्यं सर्वेष्टफलदायकं ॥

नारद कुण्ड में स्नान करके नारद जी तपश्चर्या करते थे, अतः इसका नाम नारद कुण्ड है।

श्री चन्द्र सरोवर

लीलाबिहारी की श्रृंगार लीला और सख्य लीला दोनों लीला रस से सिक्त चन्द्रसरोवर 'गर्गसंहितानुसार' **"नासा चन्द्रसरोवरः"** गोवर्धन के श्री अंगों में नासा-स्वरूप है। सारस्वत कल्प में पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु ने यहाँ रासलीला की। अतः इस स्थल को 'आदि वृन्दावन' माना गया है। कहीं-कहीं वृन्दावन का हृदय होने की भी मान्यता है।

चन्द्र सरोवर नाम होने के कई कारण हैं –

प्राचीन वैष्णव ग्रन्थों में चन्द्र सरोवर का नाम 'परम रास स्थली' (महारास-स्थली) है। यह रासेश के वासन्ती-रास की पावन-स्थली है। यहाँ रास मण्डल है, जिसे 'रास चौंतरा' कहते हैं। निकट ही कदम्ब-तरु है, जिसे वंशीवट कहते हैं।

निज वार्ता प्रसंग ३२ में लिखा है कि संवत् १५४८ फाल्गुन सुदी ५, रविवार को आचार्य चरण श्रीमद् वल्लभ प्रभु आदि वृन्दावन (चन्द्र सरोवर-परासौली) में पधारे और चन्द्र कूप में स्नान करके सब वैष्णवों को यहाँ रास लीला का साक्षात्कार कराया। स्वरचित भगवत्-टीका श्री सुबोधिनी जी में इस रासलीला को आचार्य चरण ने 'फल प्रकरण' नाम से सम्बोधित किया है।

इस रास काल में रासेश ने रति-पति-मार के मद को तो मारा ही साथ ही यहाँ विष-बन्धु (चन्द्र) की गति भी विथकित कर दी। चन्द्र को बड़ा गर्व था अपनी शुभ्र-उज्ज्वल-धवल कांति का। बेचारे को क्या पता, नीलोदधि-नन्द कुल चन्द्र के चपल लोचन-युगलों की बंकिम चितवन पर मुझ जैसे कोटिशः राका-चन्द्रों का निर्मन्छन भी न्यून है।

रासेश ने जब रासोत्सव आरम्भ किया तो गगन में देव-विमानों की भीड़ लग गई। सब देव सपत्नीक रासोत्सव के चिर-वाञ्छित दर्शन की उत्कट लालसा से चतुर्दिक् खड़े हो गए। मन वश में न था उनका।

बारम्बार एक ही प्रश्न उत्थित होता –

"श्याम सुन्दर अपने जपा-पुष्प-सदृश अरुणिम अधर पर वंशिका को सुलाकर षड्ज-ऋषभादि सप्त स्वरों से परे न जाने कौन सा सुष्ठु-स्वर भरेंगे ....?"

और जब सांवरे की बाँसुरी का स्वर प्रसारित हुआ चहुँ ओर, तो उस उन्मद-नाद से मेघसमूह तक रुद्ध हो गये।

मनमोहन की वंशी बाजी चन्द्र सरोवर के रास में।
ब्रह्मलोक में ब्रह्मा नाचे शिव नाचे कैलाश में।
मनमोहन की वंशी बाजी चन्द्र सरोवर के रास में।
लिए विमान देवता ठाढ़े फूल गिरे आकाश में।

रास के समय सब देवगणों ने यहाँ नगाड़ा बजाया। स्वर्ग की दिव्य दुन्दुभियाँ अपने आप बज उठीं। स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा होने लगी। गन्धर्व गण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ भगवान् के निर्मल यश का गान करने लगे। पाषाण निर्मित नगाड़े अभी भी यहाँ हैं, इनमें आघात करने से नगाड़ों की ध्वनि निकलती है। स्थानीय निवासी इन्हें इन्द्र के नगाड़े कहते हैं, जो देवेन्द्र ने महारास के समय बजाये थे।

रूप गर्वोन्मत्त शशांक ने जब वह सौन्दर्य-सिन्धु-सार-स्वरूप देखा तो लज्जा से दृष्टि स्वयमेव नमित हो गयी। रासेश्वर ने यह सिद्ध कर दिया कि 'रसो वै सः' रस स्वरूप तो मैं ही हूँ।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥

(गीता. १५/१३)

मैं कृष्ण ही रस स्वरूप अर्थात् अमृतमय चंद्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियों को अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ, इस प्रकार चन्द्रदेव का मद जाता रहा।

नारायण स्वामी ने यहाँ की यही लीला गायी अपने पद में –

देखु सखी नव छैल छबीलौ प्रात समय इततें को आवै।
कमल समान बड़े दृग जाके श्याम सलौनो मृदु मुसुकावै॥
जाकी सुन्दरता जग बरनत मुख सोभा लखि चन्द्र लजावै।
'नारायण' यह किधौं वही है जो जसुमति कौ कुँवर कहावै॥

गर्ग संहितानुसार

यहाँ चन्द्रमा ने श्रीजी-ठाकुर जी को चन्द्रकान्तमणि और दो-सहस्रदल कमल भेंट किये।

वृत्तान्त इस प्रकार है –

श्रृंगार मण्डल पर देवी-स्वरूपा सरिताओं एवं चतुर गोपाङ्गनाओं द्वारा श्रीजी अनेक विध सज्जिता-सेविता होकर व्रजराज-किशोर के साथ परासोली के नैऋत्यकोण में स्थित चन्द्र सरोवर पर आयीं और जल केलि की।

अथ कृष्णः स्वप्रियाभिर्ययौ चन्द्रसरोवरम् ।

(ग.सं.वृं खं-२०/१६)

अनन्तर कदम्ब, वट, आम्र, अश्वत्थ, बिम्ब, पलाश ....आदि उच्च-२ तरुओं से घिरे चन्द्र सरोवर के निर्मल जल में ब्रजाङ्गनाओं के साथ मदोन्मत्त गजराज की भांति श्री कृष्ण ने जल-विहार किया –

चकार तज्जले क्रीडां गजीभिर्गजराडिव ।
तत्र चन्द्रः समागत्य चन्द्रकान्तौ मणी शुभौ ॥
सहस्रदलपद्मे द्वे स्वामिन्यै हरये ददौ ।

(ग.सं.वृं.खं-२०/१७,१८)

तब स्वयं राका-चन्द्र ने झुककर अनिन्द्य-सुन्दरी-श्रीराधारानी एवं मुनि-मन-मोहन-श्रीकृष्ण को शुभ्र ज्योत्सना फैलाने वाली चन्द्रकान्तमणि एवं दो-सहस्र कमल भेंट किये।

तो रात्रि-काल में विकसित सरोज कहाँ से आया? गोपियों ने स्वयं बताया –

भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ।

(भा.१०/२१/९)

जब श्रीकृष्ण वेणुनाद करते तो कमल, भुवन-भास्कर के गमनागमन का काल नहीं देखते, बस, विकसित हो जाते। रास पंचाध्यायी में भी वर्णन आता है कि रात्रि-काल में भी कमल खिले हुए थे।

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥

(भा.१०/३०/१२)

रात्रि में भी रास विहारी के कर में प्रस्फुटित कमल था।

चन्द्र सरोवर का वर्तमान रूप अष्टदलकमलाकार है, जो अत्यन्त चित्ताकर्षक है। चन्द्र सरोवर नाम होने का एक विशिष्ट कारण इसका चन्द्राकार भी है। इस कुण्ड का निर्माण भरतपुर नरेश सूरजमल के सुपुत्र जवाहरसिंह के द्वारा हुआ। सन् १८५४ के लगभग इस सर का जीर्णोद्धार भरतपुर की महारानी हंसिया द्वारा सम्पन्न हुआ।

चन्द्र सरोवर के नैऋत्यकोण श्रृंगार मन्दिर एवं अग्निकोण में रास-चबूतरा है।

भावुकों की भावनानुसार यह स्थल श्री चंद्रावली जी की निकुञ्ज भी माना जाता है इसलिए श्री चन्द्रविहारी जी के मन्दिर में यहाँ श्रीकृष्ण-बलराम और चन्द्रावली सखी के दिव्य विग्रह प्रतिष्ठित थे, सम्प्रति यहाँ श्रीदाऊ जी ही विराजमान है। समीपस्थ है – श्रीसंकर्षण कुण्ड।

विद्वानों का कथन है कि –

पल्ली का अर्थ है – पट्टी या गाँव।

यहाँ पहले पलाश के वृक्षों का बाहुल्य था, जिससे पलाश-पल्ली इसे कहते थे। पलाश-पल्ली का अपभ्रंश ही परासौली हो गया।

दूसरा कारण – पराशर ऋषि की तपोभूमि होने से भी यह परासौली नाम से प्रख्यात है। इस ग्राम की सीमायें पश्चिम में गोवर्धन, उत्तर में जमनावतो, दक्षिण में पैंठा, पूर्व दक्षिण में भरतपुर और पश्चिम-दक्षिण में आन्यौर से लगी हुई है। १२०० बीघा का यह विशाल स्थान न केवल कृष्ण लीला की पावन स्मृति प्रत्युत महापुरुषों की स्मरणीय स्मृति भी संजोये है। यहाँ सर के निकट ही आचार्य चरण श्रीमद्वल्ल्भ प्रभु की बैठक, श्री गुसाँई जी की बैठक, गुसाँई हरिराय जी एवं श्री गोकुलनाथ जी की गादी-सेवा और एक कूप है जिसे चन्द्रकूप या श्रीनाथजी का जलघरा कहा जाता है। यहाँ का सुस्वादु जल, नित्य श्रीनाथ जी के पान के लिए जाता था।

एक समय – आचार्य चरण के वासनाशून्य हृदय में पंढरीनाथ के दर्शन कर पुत्र प्राप्ति की इच्छा हुई। एक दिन प्रभु ने ही आदेश कर दिया – "आप विवाह कर लो।"

"यदि आप पुत्र बनें, तो मैं विवाह करूँ" – आचार्य पाद ने कहा।

वाञ्छाकल्पतरु ने झट हाँ कर दिया और फिर विट्ठलेश के रूप में अवतीर्ण हुए, वे पंढरीनाथ।

आचार्य पाद के २ पुत्र रत्न थे।

१. श्रीगोपीनाथ जी
२. श्री विट्ठलनाथजी।

आचार्य पाद के धामगमनोपरान्त गादी का अधिकार ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजी को प्राप्त हुआ किन्तु वे भी जल्दी ही लीला प्रविष्ट हो गए। गोपीनाथजी के पुत्र श्री पुरुषोतम जी उस समय अल्पवयस्क थे, अतः सर्वगुणसमन्वित विट्ठलेश प्रभु ने ही सुचारू रूप से सब कार्य सम्भाला, सेवा का विस्तार किया। मन्दिर के अधिकारी कृष्णदास जी गोपीनाथ जी की पत्नी का पक्ष लेकर उनको गादी अधिकार दिलवाना चाहते थे। अतः सेवा में त्रुटि बताकर कि गुसाँई जी वीणा वादन में अधिक रूचि रखते हैं, आरती में विलम्ब से आते हैं,

इस कारण से कृष्णदास अधिकारी ने भगवद् रूप विट्ठलेश जी से अधिकार ले लिया और नाथ जी के दर्शन की ढ्योढ़ी बन्द करा दी।

गुसाँई जी को भला अधिकार के लिए तो क्या कष्ट होता, किन्तु दर्शन की अप्राप्ति, नाथ जी की वियुक्ति का असह्य कष्ट अवश्य हुआ। आप परासोली चन्द्र सरोवर पर वियोग की वह्नि से विक्षिप्त स्थिति को भी भगवद् इच्छा समझकर ६ मास तक यहाँ रहे।

नित्य प्रति मन्दिर की ध्वजा को वहीं से साष्टांग भूमिष्ट हो प्रणाम कर लेते। ध्वजा पर दृष्टि अपलक-केन्द्रित रहती, अनवरत-अश्रुप्रवाह होता रहता।

गुसाँई जी के शिष्य बीरबल को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने अकबर को अवगत कराया। फलतः कृष्णदास अधिकारी जी को कारागार में डाल दिया गया।

आचार्य शिरोमणि गुसाँई जी को जब ज्ञात हुआ तो उन्होंने प्रतीकार भावगन्ध शून्य एक विचित्र प्रतिज्ञा की –

“जब तक अधिकारी जी वापस नहीं आ जायेंगे, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा”।

अविलम्ब कृष्णदास जी को कारागार से मुक्त किया गया, तब अपराध स्वीकार करते हुए, अधिकारी जी ने आपका सविनय स्तवन किया।

परम कृपालु श्री वल्लभनन्दन करत कृपा निज हाथ दे माथे ।

विरह के वो षड्मास गुसाँई जी ने इसी सर पर व्यतीत किये।

उस समय जब श्री नाथ जी गोवर्धन पर विराजते थे, तो फूलघर भी यहीं था, इसीलिए गिरिराज जी से माला की जोर से आवाज लगानी पड़ती थी। उसी परम्परानुसार आज भी पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में राजभोग के पश्चात् माला बोली जाती है।

गुसाँई जी के परमस्नेही श्री रामदास भीतरिया प्रतिदिवस ठाकुर जी का बीड़ा-प्रसाद लेकर गुसाँई जी के दर्शनार्थ चन्द्रसर पर अवश्य आते थे, तब गुसाँई जी एक यष्टि (डलिया) में फूलों की माला और माला के बीच में अपने विप्रलम्भ के उद्गार (श्लोक रूप में) एक पर्णपत्र में लिखकर भेज देते।

नाथ जी प्रतिदिन वह श्लोक पढ़ते और रामदासजी के हाथ ही सांत्वनात्मक संदेश भेजते। एक दिन नाथ जी ने संदेश में कहा –

‘मेघ तो समय पर ही बरसेगा’

अर्थात् “समय आने दीजिए, सब पुनः ठीक हो जायेगा।”

इसके प्रत्युत्तर में गुसाँई जी का कथन था –

“मेघ समय पर ही बरसता है किन्तु चातक भी अपनी रटन कहाँ छोड़ता है?” प्रेम का गोपन तो देखो, गुसाँई जी के द्वारा प्रेषित इन पत्रों को नाथजी पढ़कर पान कर जाते थे जैसे

कोई प्रेमिका अपने प्रेमी के पास गुप्त पत्र भेजे तो प्रेमी उसे पढ़कर दूसरे की दृष्टि से बचाता है।

तथैव नाथ जी भी प्रेम के कारण सभी पत्रों का पान कर जाते। उनमें से १९ पत्र किसी तरह से रह गये, जिन्हें संजोया गया और वही 'नव विज्ञप्ति' नामक ग्रन्थ बना।

नव-विज्ञप्ति के कतिपय रत्न –

यद्दैन्यंत्वत्कृपा हेतुर्न तदस्ति ममाण्वपि।
तां कृपां कुरु राधेश यया तद्दैन्यमाप्नुयाम् ॥

(विज्ञप्ति ३/१)

"हे राधापति ! जो दैन्य आपकी कृपा का हेतु है, वह तो मुझमें अणुमात्र भी नहीं है। अतः अब तो आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे वह दैन्य प्राप्त हो"।

सर्व साधनशून्योऽहं सर्वसामर्थ्यवान् भवान्।
श्री गोकुलप्राणनाथ न त्याज्योऽहं कदापि वै ॥

(विज्ञप्ति १/१२)

"हे गोकुल के स्वामी ! मैं सर्वथा सर्वसाधन हीन हूँ परन्तु आप सर्वसामर्थ्यवान हैं अतः मैं किसी हालत में आपके द्वारा त्याज्य नहीं हूँ।"

यदि तुष्टोऽसि रुष्टो वा त्वमेव शरणं मम।
मारणे धारणे वापि दीनानां नः प्रभुर्गतिः॥

(विज्ञप्ति २/१)

"हे प्रभो ! आप चाहें मुझ पर सन्तुष्ट हों अथवा अप्रसन्न हों, मेरे लिए तो एकमात्र आप ही अवलम्ब हैं। हम दीनों को मारने अथवा जिलाने में एकमात्र आप ही प्रभु हैं और मुझे आप ही का सहारा है।"

सूरदास जी

आचार्य पाद की बैठक के समक्ष ही 'सूर-कुटी' एवं 'सूर-समाधि' है। १०५ वर्ष की दीर्घायु में अंतिम ७० वर्ष कविकुल-भूषण श्री सूरदास जी ने यहाँ व्यतीत किये थे।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के शब्दों में ये 'भक्ति के सागर' और गुसाँई श्री विट्ठलनाथजी के शब्दों में 'पुष्टिमार्ग के जहाज' थे। इनके सवा लाख गेय पदों का दिव्य संग्रह 'सूर सागर' जिसमें साहित्य के ९ रस, भक्ति जगत के शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, श्रृंगार इन पाँचों रसों का अभूतपूर्व समावेश है।

हृदय में प्रेम का प्रस्फुटन होने पर ही गान का प्रादुर्भाव होता है।

प्रेम के अनन्त गुणों का गान ही वाणी कहलाता है। इनकी वह वाणी 'सूरसागर' केवल पद-प्राचुर्य से ही नहीं अपितु अपने अर्थानन्त्य से भी वस्तुतः सागर ही है, जिसने मानव जगत को अभिनव-रस-सुधा का वितरण किया है।

अष्टमहाछाप के सुकवियों में सर्वाधिक पद-प्रणयन आपने किया।

सत्य तो यह है कि सूरदास जी सामान्य मानव थे ही नहीं, लोकोपकारार्थ स्वयं श्री उद्धव जी ही सूरदास जी बने और मर्त्यधरा पर आने के लिए श्री ललिता जी से शापित हुए।

सूरदास जी जग विदित श्री उद्धव अवतार ।
कथा पुराणांतर कथित वर्णन करो उदार ॥

वि.सं.१५३५ में वैशाख शुक्ल पञ्चमी मंगलवार सारस्वत कल्प में दिल्ली के समीप सीही ग्राम में सूरदास जी का अवतरण हुआ। इनके जन्मान्ध होने से और अलौकिक प्रतिभा से अनभिज्ञ होने के कारण माता-पिता स्वयं को दुर्दैवग्रसित कहने लगे।

जब सूरदास जी ६ वर्ष के हुए तो किसी धनवान यजमान ने इनके पिता को दो स्वर्ण मोहर दी, जिन्हें पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें एक ओर सुरक्षित रख दिया। चूहे उन्हें अपने बिल में ले गये। पिता को मोहर मिलने की प्रसन्नता से अधिक खोने का दुःख हुआ। अल्पवयस्क सूरदास जी ने समझाया –

"पिताजी ! मोहरों के पीछे इतना दुःख क्यों कर रहे हो?" पिता चूहों का क्रोध बालक पर ही निकाल बैठे।

पिताजी – "अंधे ! तेरे आने से हमारे घर का सर्वनाश हो गया।"

सूरदासजी – "पिताजी ! आप अकारण क्रोध न करें, मैं आपकी मोहर बता तो दूँगा, परन्तु एक शर्त है?"

पिताजी – "शीघ्र बोल, क्या शर्त है? "

सूरदासजी – "आप मेरा कर पकड़कर स्वयं घर से बाहर मुझे कर देंगे और कदापि मुझे नहीं बुलायेंगे।"

स्वर्ण मोहरों के मोह ने पिता से 'हाँ' भी करा दिया। मोहरें भी मिल गईं। शर्तानुसार सूरदास जी जब गृहत्याग कर वनगमन करने लगे तो पिता ने रोकने का प्रयास किया। (यह देख, सूर बोले)

सूरदास जी – "पिताजी ! यदि आपने मुझे रोकने का प्रयास किया तो ये मोहर फिर खो जायेंगी और यदि अब खो गई तो मिलेंगी भी नहीं।" माता-पिता ने पुनः प्रयास नहीं किया रोकने का।

गृह-त्याग कर सूरदास जी वहाँ से ४ कोस दूरी पर रहने लगे और द्वादश वर्ष (१२ वर्ष) पर्यन्त वहीं रहे। धीरे-धीरे आपका प्रभुत्व वहाँ बहुत बढ़ गया, जो भगवद् भजन में बाधा

उपस्थित करने लगा, अतः १८ वर्ष की आयु में आपने वह स्थान भी छोड़ दिया। मथुरा आये, फिर वहाँ से रुनकता ग्राम के निकट गऊ घाट पर आपका प्रवास रहा। यहाँ भी आपसे प्रभावित होकर बहुत लोगों ने आपका शिष्यत्व स्वीकार किया। चारों ओर आप 'स्वामी जी' नाम से ख्यात हो गये।

एक समय पुष्टि सम्प्रदाय के आद्याचार्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी महाराज १५६० वि. में ब्रजयात्रा के लिए निकले, उत्तर भारत के जन-जन के मानस पटल में आपका गहन-गम्भीर वैदुष्य विशाल स्थान बना चुका था। यात्रा काल में आपका एक पड़ाव गऊ घाट पर भी पड़ा। सुकवि सूरस्वामी ने जब सुना तो दर्शनेच्छा हुई। लोग सूरस्वामी को ले गये आचार्य पाद से मिलन कराने के लिए। आचार्य जी से मिलकर सूरस्वामी को महान सुखानुभूति हुई।

आचार्य पाद – "सूर ! कुछ भगवद् यश सुनाओ।"

सूरस्वामी जी ने गाया –

'हरि हौं सब पतितन को नायक'
'हरि हौं सब पतितन को टीको'

आचार्य पाद – "अरे, सूर होकर घिघियाते हो .... भगवल्लीला गाओ।"

सूरस्वामी – "आचार्य चरण ! इस जन्मान्ध को कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं, भगवल्लीला कहाँ से गाएं?"

आचार्यपाद – "तुम हमारे साथ ब्रज चलो, हम तुम्हें लीला दर्शन करायेंगे।" वहीं आचार्यपाद से दीक्षित होकर, सूरस्वामी उनके साथ ब्रज में आ गये। सूरस्वामी से सूरदास हो गये। सर्वप्रथम गोकुल में आकर श्री नवनीतप्रिया के दर्शन किये और लीला के सरस-पदों का गान किया।

सूरदास जी गोवर्धन में आकर नित्य श्रीनाथ जी को पद सुनाने लगे। आचार्य चरण ने इनको नाथजी की कीर्तन सेवा में प्रधान कीर्तनकार के रूप में नियुक्त किया। गोवर्धन आने पर सूरदास जी ने स्थायी निवास चन्द्र सरोवर-परासोली में किया।

यहाँ से प्रतिदिन नाथजी का दर्शन करने जाते और नूतन पद गान करते। आचार्य पाद के लीला प्रवेश के पश्चात् गुसाँई विट्ठल जी ने अष्टछाप की स्थापना करके उसे बहुत सुन्दर रूप दिया।

सं.१६१३ में नाथ जी मथुरा में विराज रहे थे, अतः सूरदास जी भी वहीं उनकी कीर्तन सेवा में थे। दिल्लीश्वर अकबर सूरदास जी की बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित था। किसी आवश्यक कार्यवश मथुरागमन हुआ और सूरदास जी का समागम प्राप्त हुआ।

निष्ठा-परीक्षार्थ बादशाह ने स्वयश गान करने के लिए कहा, तो सूरदास जी ने बादशाह का यश गाने से इनकार करते हुए कहा –

नाहिन रहयौ हिय महँ ठौर ।
नन्दनन्दन अछत कैसे आनिए उर और ॥

यह सुनकर अकबर मूक हो गया।

एक समय गोकुल में श्री गोविन्द राम जी, श्री बालकृष्ण जी आदि गुसाँई बालकों ने सूरदास जी की परीक्षा लेने के लिए ठाकुर जी को न वस्त्र धारण कराये और न आभूषण। कमल पुष्प से नवनीत प्रिया को सज्जित किया। सूरदास जी बाह्य चक्षु से ही तो हीन थे, उनके अन्तर्चक्षु तो सदैव ठाकुर जी का साक्षात्कार करते। गुसाँई बालक जिज्ञासु थे कि देखें आज सूरदास पद में क्या गाते हैं?

पट-मोचन होने पर सूरदास जी ने मन्द-मुस्कान सहित गान आरम्भ किया –

देखेरी हरि नंगम नंगा ।
जलसुत भूषण अंग विराजत वसन हीन छवि उठत तरंगा ॥
अंग-अंग प्रति अमित माधुरी निरखत लज्जित कोटि अनंगा ।
किलकत दधि सुत मुख लै मन भरि 'सूर' हँसत ब्रज युवतिन संगा ॥

सुनकर सब गुसाँई बालक विस्मयान्वित हो गये। सूरदास जी के साक्षात्कार पर विश्वस्त हो गये।

सूरदास जी का सवा लाख पदों का जो संकल्प था वह पूर्ण होने ही वाला था। एक लाख पदों का सृजन वे कर चुके थे, उधर गोवर्धननाथ नित्य लीला में आह्वान कर रहे थे सूरदास जी का, अब संकल्प कैसे पूर्ण हो, सूरदास जी चिन्तित थे, तब नाथ जी ने स्वयं आप से कहा –" सूरदासजी ! आपके पदों की संख्या सवा लाख हो चुकी है।"

सूरदास जी – "सो कैसे प्रभो? "

नाथजी – "२५ हजार पदों का मैंने सृजन कर योग कर दिया है। विश्वास न हो तो गणना करा लीजिए। मेरे पदों में सूर-श्याम की छाप है।" गणना की गई तो सचमुच पदों की संख्या सवा लाख निकली।

सूरदास जी की विग्रह-संवरण लीला

गुसाँई जी, नाथ जी के श्रृंगार में संलग्न थे, सहसा सूरदास जी का स्मरण हुआ कि आज श्रृंगार का पद गान क्यों नहीं हो रहा है? सूरदास जी कहाँ हैं? नाथजी की ओर देखा तो नाथ जी के सजल-युगल नयन नत थे।

गुसाँई जी समझ गए, लगता है सूरदास जी नित्य-लीला में प्रवेश करना चाहते हैं। सूरदास जी सभी वैष्णवों की ओर मुख करके ब्रजधरा को वक्ष से लगाकर लेट गये। लोग पहुँचे सोचा सूरदास जी को कष्ट है, इन्हें सीधा कर दें। सीधा करने लगे तो सूरदास जी ने मना कर दिया कि जिस ब्रजभूमि को सदा उत्तमांग दिया। उसे गमन काल में पृष्ठ (पीठ) कैसे दे सकता हूँ ... यह वही धरा है, जहाँ स्वयं पूर्णपुरुषोत्तम भी क्रीड़ारत है। यह रज वैष्णव भक्तों को प्राणों से अधिक प्यारी है। यहाँ के काँटे, यहाँ की मिट्टी, यहाँ के कष्ट सब प्यारे लगते हैं। वो अभागे हैं, नीच पुरुष हैं, जो यहाँ के कष्टों से घबड़ाते हैं, चीखते हैं, चिल्लाते हैं, जरा से कष्ट में, वो ब्रज भाव को नहीं जान सकते हैं। ब्रज का जो अनुरागी होता है वो तो कहता है –

कोटि मुक्ति सुख होत गोखुरू जबे लगत गड़ि पाँयन ।

ब्रज का काँटा जब लगता है, वह करोड़ों मुक्ति के समान सुख देता है, उसको ब्रज का भक्त कहते हैं। रसखान जी ने लिखा है –

कोटिक ही कलधौत के धाम, करील की कुंजन ऊपर वारौं ।

तब तक स्वयं गुसाँई जी भी कुम्भनदास जी आदि को साथ लेकर वहाँ पहुँच गये। गुसाँई जी ने अपनी गोद में सूरदास जी का सिर रखा। सभी भगवदीयों ने अपनी-अपनी जिज्ञासा प्रकट की। एक वैष्णव ने पूछा –

“भगवान् का स्वभाव कैसा है?” तो सूरदास जी ने उत्तर दिया –

प्रीति की रीति गोपालहि जानत

गोपाल न ज्ञान देखता है, न कर्मकाण्ड, न धन, न रूप, न यौवन। एकमात्र प्रेम देखता है, तुम चतुर बनते हो। ईश्वर प्रेम भी चाहते हो और संसार का भोग-ऐश्वर्य भी। ये सब ठग विद्या प्रभु जानते हैं कि इसको अपने सम्मान से, भोगों से और द्रव्य से प्रेम है, यह मेरा दीवाना नहीं हैं, मेरा प्रेमी नहीं है, ढोंगी है।

सर्वस देत भोराई ही सों

जो सीधा-सादा, भोला-भाला है, सब कुछ इस रज में चढ़ा देता है, इस रज में अपने को मिला देता है, उसको तो प्रभु सब कुछ दे देते हैं, यहाँ तक कि अपने आप को भी दे देते हैं।

चतुरन सों चतुराई ठानत

और जो चतुर बनते हैं वो अपने आप को धोखा दे रहे हैं। वे सोचते हैं कि हम श्रीकृष्ण को ठग लेंगे लेकिन चतुरों से बड़ा चतुर है कन्हैया तभी तो तीन जगह से टेढ़ा है।

चतुर्भुज दास जी ने प्रश्न किया – “आपने भगवद् यश के तो लक्षावधि पदों का सृजन किया, किन्तु आचार्य यश क्यों नहीं गाया? ”

सूरदास जी – "आचार्य पाद और भगवान् में यदि भिन्नता का दर्शन होता तो उनके लिए अवश्य अलग से पद सृजन करता किन्तु इन दोनों में भेदाभाव है, फिर भी तुम्हारी इच्छा है तो सुनो" –

भरोसो दृढ इन चरननि केरौ ।
श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माहिं अन्धेरौ ॥
साधन और नहीं या कलि में जासों होत निबेरौ ।
'सूर' कहा कहै द्विविध आंधरौ बिना मोलको चेरौ ॥

गुसाँई जी ने पूछा – "सूरदास जी ! इस समय आपके मन का चलन कहाँ है? " तब सूरदास जी ने एक गोपन रहस्य का गान किया –

बलि-बलि हौं कुंवरि राधिका नन्द सुवन जासों रति मानी ।
वे अति चतुर तुम चतुर शिरोमणि प्रीति करी कैसे होत है छानी ॥
वे जू धरत तन कनक पीतपट सो तो सब तेरी गति ठानी ।
ते पुनि श्याम सहज वे शोभा अम्बरमिस अपने उर आनी ॥
पुलकित अंग अबहि है आयो निरखि देखि निज देह सयानी ।
'सूर' सुजान सखी के बूझे प्रेम प्रकाश भयो विहंसानी ॥

गुसाँई जी ने पुनः पूछा – "सूरदास जी ! आपकी नेत्रवृत्ति कहाँ है? " तो सूरदास जी ने गाया –

खंजन नैन रूप रसमाते ।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ॥
चलि-चलि जात निकट श्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फंदाते ।
'सूरदास' अंजनगुन अटके न तरु अबहिं उड़ि जाते ॥

इस प्रकार श्री राधारानी का गुणगान करते हुए सूरदास जी पार्थिव से पृथक होकर नित्यधाम में प्रवेश कर गये। यह क्षेत्र नाथजी और अष्टछाप के सखाओं का क्रीड़ास्थल है। यहाँ सख्य रस का एक बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है – चौगान पट्टी।

चौगान पट्टी

यहाँ श्रीनाथ जी, गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी, परमानन्द दास जी आदि के साथ गिल्ली-डण्डा खेलते थे।

परमानन्द स्वामी जी ने अपने पदों में गाया भी है –

अरी छकिहारी चार-पाँच आवत मध्य ब्रजराज ललाकी ।
बहु प्रकार व्यंजन परिपूरण पठवन बड़े डलाकी ॥
ठठक-ठठक टेरत श्रीगोपालैं चहुँधा दृष्टि करे ।
बाजत वेणु ध्वनि सुन चली चपलगति परासौली के परे ॥
'परमानंद' प्रभु प्रेममुदित मन टेर लई कर ऊँची बाँह ।
हँस-हँस कस-कस फेंटा कटिनसों बाँटत छाक वन ढांकन माँह ॥

श्री छीत स्वामी

श्री छीत स्वामी (छीतू चौबे) सुबल सखा के अवतार थे। इनका जन्म मथुरा के चतुर्वेदी कुल में लगभग १५७२ वि.सं. में हुआ। छीतू चौबे ही सब कहते थे। वीर प्रकृति थी, किसी से कभी दबना तो सीखा ही नहीं। ४ साथी थे, जिनके ये सरदार थे। इस गिरोह को सब गुण्डा पंडा नाम से ही जानते थे। एक बार गुसाँई श्री विट्ठलनाथ जी से ही जा भिड़े। उनकी परीक्षा लेने के लिए सूखा नारियल एवं खोटा रुपया लेकर चल पड़े। “मैं देखता हूँ, इसमें क्या जादू है? जो आता है वही शिष्य बनकर लौटता है” किन्तु यह क्या? गुसाँई जी के नेत्र से जब नेत्र मिले तो छीतू चौबे की तो प्रकृति ही बदल गयी। शरणापन्न हो कर गिर पड़े चरणों में, परम कृपालु गुसाँई जी ने अपना लिया छीतू चौबे जी को और छीतू चौबे ने गान आरम्भ किया –

भई अब गिरिधर सों पहचान
कपट रूप धरि छलन गयो हौं पुरुषोतम नहिं जान ।
छोटौ-बड़ौ कछू नहिं जानत छयौ तिमिर अज्ञान ।
'छीत स्वामी' देखत अपनायौ श्रीविट्ठल कृपा निधान ।

“वह नारियल कहाँ है, जो तुम हमारे लिए भेंट स्वरूप लाये थे,” गुसाँई जी ने पूछा। “वह तो कुटिलता वश परीक्षार्थ लाया था” नतमस्तक छीतू चौबे ने कहा। गुसाँई जी ने उस नारियल को मँगाया और नवनीत-प्रिय को भोग लगाया। वस्तुतः कोई वस्तु अथवा जीव गुरु गोविन्द के योग्य नहीं है, भगवदार्पित होकर ही वह वस्तु योग्य होती है। श्री विट्ठल नाथ जी एवं श्रीनाथ जी को आप स्वयं अभिन्न मानते थे। एकबार अपने यजमान बीरबल के पास दिल्ली गए हुए थे, “जय श्री वल्लभ राजकुमार” इस पद का गान किया, अंतिम पंक्ति जब गाई –

"छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल प्रगट कृष्ण अवतार॥"

यह सुनकर संदिग्ध चित्त बीरबल ने कहा –

"आप श्री गो. जी को साक्षात् श्री कृष्ण बता रहे हैं, बादशाह म्लेच्छ है, यह सुनकर वह अवश्य बखेड़ा खड़ा करेगा तो आप क्या उत्तर देंगे?" झुंझलाकर छीत स्वामी ने कहा – "मेरा मन तो कहता है तू अधिक म्लेच्छ है क्योंकि तुझे इस बात पर अविश्वास है अतः जा मैं तेरा त्याग करता हूँ।" बिना कोई भेंट स्वीकार किये दिल्ली से आ गए और पुनः कभी नहीं गए।

अकबर को जब यह पता चला तो अकबर ने कहा – "बीरबल ! भूल गए तुम, एक बार हम और तुम नाव में बैठ कर आगरा जा रहे थे, गोकुल आने पर ठकुरानी घाट पर मैंने भी गुसाँई जी को एक बहुमूल्य मणि भेंट की। गुसाँई जी ने तीन बार पूछा – यह मेरी है, मैंने भी कहा – हाँ, आपकी ही है तब उन्होंने उस मणि को यमुना जी में डाल दिया। तब मुझे दुःखी देखकर उन्होंने यमुना जी से अञ्जलि भरकर मणियाँ निकाल कर दिखाईं और कहा कि तुम इसमें अपनी मणि पहचान लो। तो बीरबल ! यदि उनके शिष्य ने उन्हें कृष्णावतार कहा, तो कोई अनुचित नहीं कहा।"

एक बार जन्माष्टमी के अवसर पर श्री गुसाँई जी श्री ठाकुर जी को पालने में झुला रहे थे, तब छीत स्वामी को बड़े अद्भुत दर्शन हुए, कभी श्री गुसाँई जी श्री ठाकुर जी को झूला झुलाते हैं तो कभी श्री ठाकुर जी श्री गुसाँई जी को –

प्रिय नवनीत पालने झूलैं, विट्ठल नाथ झुलावैं हो।
कबहुँक आप संग मिलि झूलैं कबहुंक उतरि झुलावैं हो॥

आपके काव्य वैभव से प्रसन्न होकर गो.जी महाराज ने अष्टछाप में आपकी नियुक्ति करके श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा सौंप दी। गोवर्धन रहकर नाथजी की निष्ठा से यह सेवा सम्भालते। इनके लगभग २०० पद प्राप्त होते हैं, कुछ अप्रकाशित हैं। गुरुदेव श्री विट्ठल नाथ जी के लीला प्रवेश के उपरान्त उनके वियोग में – **"विहरत सातों रूप धरे"** इस पद का गान करते हुए अपने निवास स्थान पूछरी पर ही आपने वि.सं.१६४२ में शरीर छोड़कर नित्य लीला में प्रवेश किया।
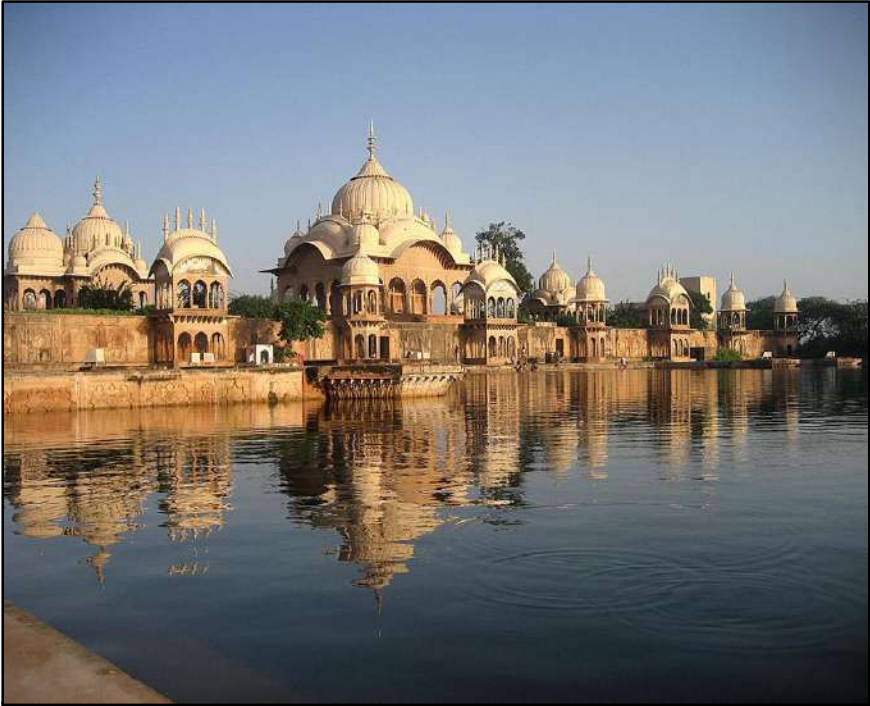
कुसुम सरोवर एवं आन्योर गोविन्द कुण्ड

आन्योर – श्री कुम्भनदास जी की समाधि एवं संकर्षण कुण्ड

पूँछरी – अप्सरा कुण्ड एवं नवल कुण्ड

श्री पूँछरी का लौठा एवं श्री छीत स्वामी जी की समाधि

जतीपुरा – इन्द्र पूजा मान भंग

जतीपुरा – लुक-लुक दाऊ जी एवं ऐरावत पाँव चिन्ह

जतीपुरा – सुरभि कुण्ड एवं श्री परमानन्द दास जी की समाधि

जतीपुरा – ऐरावत कुण्ड एवं हरजी कुण्ड

चरण शिला एवं १४ छड़ी शिला (गर्गसंहिता प्रमाण)

मुकुट शिला एवं श्री मुखारविन्द

जतीपुरा – दण्डवति शिला एवं श्रीनाथ जी मंदिर

जतीपुरा – श्रीनाथ जी मंदिर एवं महाप्रभु जी की बैठक

बिल्छू कुण्ड एवं श्री चक्रेश्वर महादेव

मानसी गंगा एवं श्री सनातन गोस्वामी भजन कुटी

श्री उद्धव कुण्ड एवं श्री राधा कुण्ड

श्री श्याम कुण्ड एवं ललिता कुण्ड

श्री राधा कुण्ड – श्री रघुनाथ दास गोस्वामी भजन कुटी
एवं श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती भजन कुटी

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी भजन कुटी एवं श्री चैतन्य महाप्रभु जी की बैठक

श्याम कुटी, श्री प्रियाशरण दास बाबा जी समाधि एवं पारसोली – सूरदास जी बैठक

नारद कुण्ड एवं ग्वाल पोखरा

रत्न कुण्ड एवं श्री गोवर्धन पर्वत

पारसोली – श्री चन्द्र सरोवर, महाप्रभु जी, गिरिराज जी एवं गुसांई जी की बैठक

पैंठा – नारायण सरोवर, ऐंठा कदम्ब एवं पारसोली – सूरदास जी की समाधि

मुखराई – मुखरा सरोवर एवं बाजनी शिला

मुखराई – राधा, कीर्ति एवं चरखुला नृत्य

अध्याय – ६५

श्यामढाक

पूंछरी के निकट अति सघन ढाक एवं कदम्ब वृक्षों से आच्छादित वन है जहाँ ढाक के पत्तों के दोनो में – "**श्यामढाक के दोना दधि खाय लै श्याम सलोना**"। आज भी यहाँ के कदम्ब वृक्षों के पत्ते दोने के आकार के होते हैं। श्रीकृष्ण लीला काल में अनेक धाराओं से यहाँ श्रीयमुना जी बहती थीं। यहाँ श्यामढाक में छाक लीला हुई है –

श्याम ढाकतर छाक अरोगत लेकर थारी ठाड़ी ललिता।
भोजन व्यंजन केले के पातन में चहुँधा चपला सी ब्रजबनिता॥
निरखत अम्बुज मोहन को मुख लोचन भये मानो मृग के से चकिता।
'श्रीविट्ठल' गिरिधरन अरोगत निकट बहत कालिंदी सरिता॥

यहाँ के सारे ढाक वृक्ष श्याम वर्ण के पत्तों से सुशोभित हैं। यहाँ विट्ठल नाथ जी की बैठक भी है। गोपसाम, गोप तलैया आदि भी दर्शनीय है। इसी के पास बरोली चौथ एवं नगला दादू गाँव है।

श्याम ढाक – श्याम कुण्ड, श्री वल्लभाचार्य बैठक एवं श्री नाथजी बैठक

अध्याय – ६६

सौंकराई

श्री कृष्ण ने जहाँ बार-बार शपथ ली थी कि मैं राधा जू के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता हूँ। शपथ लेने के कारण इस गाँव का नाम 'सौंकराई' पड़ा। यह गोवर्धन से पश्चिम दिशा में २ मील की दूरी पर स्थित है।

सामई खेरा

इस क्षेत्र को 'सूर्य पतन वन' कहते हैं, यहीं सूर्य देव ने श्रीकृष्णाराधना की थी इसीलिए यहाँ सूर्यकुण्ड है। इसके अतिरिक्त कृष्ण ने श्यामा सखी के रूप में मानिनी श्री राधा का मानभंग भी किया था। त्रेता में यहाँ रावण के भय से सूर्य के गिरने का प्रसंग आता है।

अथ सूर्यपतनबनोत्पत्ति माहात्म्यनिरूपणं (आदित्यपुराणे) –

रावणस्य भयं लब्ध्वा श्री रामशरणागतः ।
यतो सूर्य्यप्रपाताख्यं बनं यत्र प्रजायते ॥

अर्थ – त्रेता युग में रावण से भयभीत सूर्यदेव यहाँ श्रीराम जी के चरणों में प्रणिपात किये, अतः यह सूर्य पतन वन प्रकट हुआ।

ततो सूर्यपतनवन प्रार्थना मन्त्र :-

भास्कराय नमस्तुभ्यं भुवस्तलसमागतः ।
नमः प्रत्यक्षदेवाय तिमिरान्धविनाशिने ॥

भूतल पर समागत, घनान्धकार विनाशक हे सूर्य नारायण ! आप प्रत्यक्ष देव हैं, आपको नमस्कार है।

डीग

स्कन्द पुराणानुसार

जब वज्रनाभ जी ब्रज में आकर ब्रज को बसाने चलते हैं तो चार स्थानों के नाम आते हैं –

गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने ।
नन्दिग्रामे बृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया ॥

(स्कं.पु.वै.खं.भा.मा.२/१/३८)

गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), बृहत्सानु (बरसाना) और महावन। इन चारों का उल्लेख स्कन्दपुराण के भागवत् माहात्म्य में आता है। जैसा कि नाम से पता पड़ता है दीर्घपुर (डीग) बड़ा पुर था, उसका अपभ्रंश डीग हो गया। इसके अतिरिक्त लठावन भी लोग कहने लग गए क्योंकि यहाँ चारों ओर से पर्वतमालाओं का प्रारम्भ हो जाता है, यही पर्वतमालाएँ काम्य वन तक विस्तृत हैं।

शाण्डिल्य ऋषि ने वज्रनाभ जी को ये आदेश दिया कि तुम अपने राज्य की स्थिति पहले इन स्थानों पर जाकर जमाओ क्योंकि ठाकुर जी के जाते ही सारा ब्रज उजड़ गया था। उसे पुन: स्थापित करने के लिए शाण्डिल्य जी ने कहा कि तुम नन्दिग्राम माने नन्द गाँव, बृहत्सानु यानी बरसाना, मथुरा, महावन, गोवर्धन और दीर्घपुर माने डीग इन स्थानों पर जाकर अपना राज्य जमाओ। तब ठाकुर जी के प्रपौत्र श्री वज्रनाभ जी ने ब्रज को पुन: बसाया। शाण्डिल्य ऋषि बताते गए कि यहाँ गोवर्धन है, यहाँ दीर्घपुर यानि डीग है, यहाँ मथुरा है, यहाँ महावन है, यहाँ बरसाना है और वज्रनाभ जी ब्रज को बसाते गये अर्थात् ब्रज के महत्वपूर्ण स्थलों में यह डीग (दीर्घपुर) है। इसके अलावा राजस्थान के मुख्य ऐतिहासिक स्थलों में भी डीग आता है। भरतपुर के राजाओं के डीग में भवन भी हैं। डीग राजधानी भी थी लेकिन ये सब तो बहुत बाद की बातें हैं। इससे पहले दीर्घपुर की क्या स्थिति थी इसको जानने के लिए शास्त्र ही एकमात्र आधार है। 'श्रीमद्भागवत' तो एक बहुत संक्षिप्त ग्रन्थ है। ब्रज की लीलाओं का विस्तृत उल्लेख तो 'गर्गसंहिता' और 'ब्रह्मवैवर्त' में ही मिलता है।

गर्गसंहितानुसार यहाँ का पर्वतीय क्षेत्र पुलिन्द कन्याओं का निवास स्थल था। पुलिन्द कन्याओं का वर्णन विस्तार से "ब्रजाङ्गनाओं के विभिन्न यूथ" नामक अध्याय में वर्णित है।

नयन सरोवर

प्यारे पल न बिसार मोहि यह वर मांगे देहु ।
प्रीति प्रगट रस जात है नैन सरोवर सेहु ॥

बड़ी विलक्षण लीला है यहाँ की –

गोविन्द गोपबालकों के साथ गैया चरा रहे थे तभी श्रीजी का आकस्मिक आगमन हुआ जिससे श्याम सुन्दर का धीरज खो गया। आचार्यों का कथन है कि यह लीला काम्यवन "आदि वृन्दावन" की है। युगलगीत में इसका वर्णन मिलता है –

सहबलःस्रगवतंसविलास सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥

(भा.१०/३५/१२)

श्रीजी के दर्शन से श्रीकृष्ण गौचारण भूल गये, ग्वाल-बालों ने सावधान किया –

संकेतकुञ्जमनुकुञ्जरमन्दगामिन्यादाय दिव्यमृदुचन्दनगन्धमाल्यम् ।
त्वां कामकेलिरभसेन कदा चलन्तीं राधेऽनुयामि पदवीमुपदर्शयन्ती॥

(रा.सु.नि.२२)

कन्हैया ! देख गैया कहाँ चली गई ...

सखा १ – "लाला ! तेरी ऐसी दशा कैसे है गई ! चल, अब उठ !"

सखा २ – "मैया राह देख रही होगी।"

सखा ३ – "यदि मैया यहाँ होती तो वह तोकू अवश्य सम्भाल लेती।"

सखा ४ – "अरे कन्हैया ! तेरे तो नेत्रन में ये आँसू कैसे?"

सखा ५ – "तेरे कोई पीर हो तो बता, तू या प्रकार सौं जमीन पे लोट-पोट क्यों है रह्यो है। देख, तेरे बिना हम मृत से है गये हैं।"

सखा ६ – "यह कैसी प्रेम दशा है?"

भोः श्रीदामन् ! सुबलवृषभस्तोककृष्णार्जुनाद्याः !
किं वो दृष्टं मम नु चकिता दृग्गता नैव कुञ्जे ।
काचिद्देवी सकल भुवनाप्लाविलावण्यपूरा
दूरादेवाखिलमहरत् प्रेयसो वस्तु सख्युः ॥

(रा.सु.नि.२२७)

कृष्ण बोले – "अरे सुबल, श्रीदामा, वृषभ, स्तोककृष्ण, अर्जुन भैया ! नयन सरोवर तीर मैंने एक गौर वर्ण देवी देखी, वाको अनुपम लावण्य हो, विलक्षण कान्ति ही। वाने दूर ते ही

मेरो सर्वस्व हर लियो। आज तो चोर की भी चोरी है गई। अब तक तो ब्रज को मैं ही प्रसिद्ध चोर हो, आज तो चोर के चित्त की भी चोरी है गई। मो भुवन मोहन कू या भुवनमोहनमोहिनी ने मोह लियो। नयन सर के या पार पे तिरछी चितवन ते ऐसो जादू टोना कियो कि मेरे हाथ ते नित्यसंगिनी वंशी भी गिर गई।

वेणुःकरान्निपतितः स्खलितं शिखण्डं
भ्रष्टं च पीतवसनं ब्रजराजसूनोः।
यस्याः कटाक्षशरपातविमूर्च्छितस्य
तां राधिका परिचरामि कदा रसेन॥

(रा.सु.नि.३८)

यही है नयन सर की रसीली लीला। यहाँ रसीली छबीली किशोरी जू ने सचमुच अपने नयन सर से श्रीकृष्ण का चित्त चुरा लिया।

नयन सरोवर

अध्याय – ६७

गांठोली

होली खेलने के बाद दोनों राधा-माधव सिंहासन पर बैठे थे कि तभी एक सखी ने छिपकर दोनों के वस्त्रों में गाँठ बाँध दी। जब युगल किशोर सिंहासन से उठे तो उनको यह गाँठ दिखाई पड़ी, सखियाँ सब हँस पड़ी और दोनों राधा-माधव शरमा गये, फगुआ लेकर एक सखी ने गाँठ खोल दी। इसी लिए यह स्थल गांठोली के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एथा होलि खेलि दौंहे वैसे सिंहासने ।सखी दुहुं वस्त्रे गांठिदिला संगोपने ॥
सिंहासन हैते दोंहे उठिला जखन ।देखये वसने गाँठि हांसे सखीगण ॥
हइल कौतुक अति दोंहे लज्जा पाइला ।फागुया लइया केह गाँठि खुलि दिला ॥
ए हेतु गांठोली ए गुलाल कुण्ड जले ।एबे फाग देखे लोक वसन्तेर काले ॥

(भ.र.)

जन्हु वन (जनूथर)

ततो जन्हु वन प्रार्थना मन्त्र :-

जन्हर्षिनिर्म्मितवास रमणीकायभूमये ।
जान्हवीपावनार्थाय वनाय च नमोऽस्तु ते ॥

जन्हु ऋषि से निर्मित रमणीय आवास स्थल आप गंगा के समान पवित्र हैं, ऐसे वन रूप आपको प्रणाम है।

ततो वामन कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

वामनकृततीर्थाय जन्हुपूज्यवरप्रद ।
सदा पावनरुपाय तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥

वामन द्वारा रचित हे वर देने वाले, जन्हु से पूज्य तीर्थ ! आपको नमस्कार है। यह स्थल डीग के दक्षिण में जनूथर नाम से जाना जाता है। डीग (दीर्घवन) से पान्योहरी होते हुए लगभग १५ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

गांठोली – गुलाल कुण्ड एवं गुलाल लीला

अध्याय – ६८

टोड़ को घनो

एक बार यवन शासक के उपद्रव से उत्पीड़ित होकर श्री कुम्भनदास जी, श्रीरामदास जी भीतरिया एवं सद्दू पाण्डे आदि ने श्री नाथ जी को निर्जन स्थान में ले जाने का विचार किया, तब तक नाथ जी स्वयं बोल उठे कि "टोड़ को घनो" अति निर्जन स्थान है, तब वे सब नाथ जी को सद्दू पाण्डे के भैंसे पर विराजमान करके ले चले। कंटकाकीर्ण उस वन प्रदेश में थोड़ा खिसिया कर कुम्भन दास जी ने एक पद का गान किया –

भावै तोय टोड़ को घनो ॥
कांटे बहुत गोखुरू लागे फाटत है सब तनो ।
आवत जावत बेलि निवारै बैठत है जहाँ एक जनो ।
सिंहै कहा लोखरी को डरु तै छांड़ि दियौ भौन अपनो ।
तब बूड़त तें राखि लिये हैं सुरपति तो तृनहूँ न गन्यौ ।
'कुम्भनदास' प्रभु गोवर्धन धर वह कौन ढेढिनी रांड़ को जन्यो ॥

वृक्ष-लताओं से आवृत इस स्थल में श्रीनाथ जी ने विश्राम किया था। यह सघन कानन नाथ जी को अतिशय प्रिय है, यहाँ श्रीनाथ जी की बैठक भी है।

परमदरा (परमानन्द वन)

अथ बनयात्राप्रसंगे परमानन्दबनप्रार्थनामन्त्र (आदिवाराह)

देवर्षिमुनिगन्धर्वलोकाह्लादस्वरूपिणे ।
नमस्ते परमानन्दबनसंज्ञाय ते नमः ॥

देवर्षि, मुनि, गन्धर्व, लोक समुदाय के लिए आह्लादस्वरूप परमानंद संज्ञक वन ! आपको नमस्कार है।

जैसा कि इसका नाम है 'परमानंद वन' यह बड़े आनन्द का स्थल है। 'आदिवाराह' पुराण में इसका वर्णन आता है कि यह सुदामा सखा का स्थल है। ये ब्रज लीला के

सुदामा जी हैं। परमानन्द वन नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि भागवत के अनुसार भीलनियों को राधा रानी की कृपा प्राप्त हुई –

"श्रीकुंकुमेनदयितास्तनमण्डितेन"

का मतलब है कि युगल राधा-कृष्ण प्रेम के समय जो कुमकुम श्रीकृष्ण के चरणों में पहुँचा, वह यहाँ की घास पर लग गया अर्थात् युगल सरकार की कोई अद्भुत परमानंद लीला यहाँ पर हुई, जिससे वो कुमकुम यहाँ की रज में, यहाँ की घास में लग गया और उसको प्राप्त कर भीलनियाँ कृतार्थ हो गईं। धन्य गोपियाँ हैं, धन्य भीलनियाँ हैं, धन्य राधा रानी और श्रीकृष्ण हैं, जिन्होंने ऐसा रस यहाँ पर बहाया।

धन्य कान्ह धन्य राधा गोरी।
धनि वह भाग सुहाग धन्य वह।
धन्य नवल नवला नव जोरी।

वो कुमकुम जो श्रीजी के वक्षस्थल पर था वो यहाँ की भूमि पर कैसे पहुँचा? अष्टाचार्यों ने अपनी टीका में लिखा है – किसी मिलन की रति विशेष मुद्रा में श्रीजी के वक्षस्थल पर लगा हुआ कुंकुम श्रीकृष्ण के चरणों पर पहुँचा, ऐसी कोई मिलन की अवस्था थी वह।

मिलन के समय दोनों इस प्रकार बैठे कि वह कुमकुम श्रीकृष्ण के चरणों पर लगा और फिर पहुँचा परमानंद वन (परमदरा) की भूमि में और भीलनियों ने उसे उठा लिया। वह बैठना धन्य, वह मिलन धन्य।

धनि वह मिलन धन्य वह बैठनि।
धनि अनुराग नहीं रुचि थोरी प्यारी अंग-२ अवलोकनि।
नागरि छवि पर रीझत श्याम कबहुँक वारत हैं पीताम्बर।
कबहुँक वारत हैं कर मुरली कबहुँक वारत मोहन नाम।
निरखि रूप मुख अंत लहत नहीं तन मन वारत पूरन काम।
बारम्बार सिहात 'सूर' प्रभु देखि-देखि राधा सी वाम।
इनको पलक ओट नहीं करिहों मन यही कहत वास रहूँ याम।

श्यामसुन्दर संकोच में श्रीजी के दिव्य अंगों को देख रहे हैं, संकोच क्यों! कोई अपने से बढ़कर रूप राशि को देखता है तो संकोच में हो जाता है।

श्याम निरखि प्यारी अंग अंग।
सकुचि रहत मुख तन नहिं चितवत, जेहि बस रहत अनंग अनंत।
चपल नयन दीरघ अनियारे लोचन नहिं ठहरात श्याम के।
उठे उठत बैठे बैठत हैं चले चलत सुधि नाहिं।
'सूरदास' बड़भागिनी राधा मनहि मनहि मुस्कावहि।

श्यामसुन्दर राधारानी के आभूषणों को माँगने लगे और उसी माँगने में वो कुमकुम भी माँग लिया जो उनके वक्षस्थल का था। वह कुमकुम अपने सारे शरीर में लेप कर लिया और वह भीलनियों के पास पहुँच गया।

निरखि श्याम प्यारी अंग शोभा मन अभिलाष बढ़ावत है।
प्रिया आभूषण माँगत पुनि पुनि अपने अंग बनावत है।
कुण्डलतट तखिन लै साजत नासा बेसरि धारत है।
बेंदी भाल मांग शिर पारत बेनी गूँथि सँवारत है।
प्यारी नैनन को अंजन लै अपने लोचन अंजत है।
पीताम्बर ओढ़नी शीश दै राधा को मनरंजत है।
कंचुकि भुजनि भरत उर धारत कण्ठ हमेल भ्रजावत है।
'सूरश्याम' लालच तियतनु पर करि श्रृंगार सुख पावत है।

जड़खोर की गुफाएँ (सेऊ)

जड़खोर की इन विशाल कंदराओं की चर्चा श्रीमद्भागवत जी में है –

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ।
जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः॥

(भा.१०/२०/२७)

श्याम सुन्दर जब वन में जाते हैं तो पुलिन्दनियों का पुलकित होना तो स्वाभाविक ही है। तरु से मधुधारा स्रवित होती रहती है, गिरि से झरने झरते हैं। इन्हीं गिरि-गोद में अनेकानेक विशाल गुहायें हैं। जिनमें वर्षाकाल में श्यामसुन्दर अपने समस्त गोधन के साथ खड़े हो जाते हैं।

इनकी मधुर चंचलता कन्दरा में भी बन्द नहीं होती है। वहाँ भी दैनिक कार्यक्रम जारी ही रहता है।

क्वचिद् वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ।
निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥

(भा.१०/२०/२८)

कन्दरा में ही कन्द-मूल-फल खाते हैं, ग्वाल-बालों के साथ खेलते हैं। ये गिरि-कन्दरा न जाने अपने को इतना विस्तृत कैसे कर लेती हैं। सर्वेश का सानिध्य ही इनका विस्तार कर देता है। कलि के दुष्प्रभाव से यद्यपि आज ये दिव्य कंदराएं अत्यन्त उपेक्षित हैं पुनादपि अद्यावधि दर्शनीय तो हैं ही।

इन गुफाओं के अन्वेषण के लिए पूज्य श्रीबाबा महाराज ने ब्रज में बहुत भ्रमण किया, जतीपुरा में श्रीनाथ जी मन्दिर के नीचे गुफा में प्रवेश भी किया लेकिन कोई सफलता नहीं

मिली फिर जीव गोस्वामीजी के ग्रन्थ को पढ़कर जड़खोर के जंगलों में ये गुफाएँ प्राप्त हुईं। इन गुफाओं में वर्षाकाल में २०-२५ व्यक्ति आराम से बैठ सकते हैं।

अध्याय – ६९

सौगंधिनी शिला

यहाँ श्रीकृष्ण ने सौगंध ली थी कि मैं ब्रज को छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊँगा –

ब्रजवासी वल्लभ सदा मेरे जीवन प्राण ।
ब्रज तजि अनत न जाइहौं मोहे नंदबाबा कि आन ।
भूतल भार उतारिहों धरि धरि रूप अनेक ।

यह वही शिला है जहाँ पर श्रीकृष्ण कहते हैं – "मैं अनेक रूप धारण कर पृथ्वी का भार उतारूँगा।" नन्दनन्दन ब्रज के बाहर नहीं गए, उन्हीं के अंश देवकीनन्दन गए मथुरा, द्वारका और वहाँ लीला करते रहे। नयन सरोवर से आगे यह पर्वतों का गढ़ है। जहाँ की उपमा दी गई है –

भृकुटि पंक गढ़ मध्य में नयन कोठरी बन्द ।
राधाकृपा कटाक्ष बिन मिले न गोकुल चंद ॥

श्री कृष्ण ने इस शिला पर बैठकर ब्रज न छोड़ने की जो सौगंध खाई थी उसे याद करके मथुरा, द्वारिका में विलाप करते थे और कहते थे –

सकल सखा अरु नन्द जशोदा वे चित ते न टराहीं ।
रुक्मिणी मोहे ब्रज बिसरत नाहिं ॥

ये वही द्रोणियाँ हैं, पर्वत की ये वही शिलाएँ हैं जिनमें हम खेला करते थे –

श्री वृन्दावन भूमौ नन्दीश्वराष्टकूटवरसानुधवलगिरि
सुगन्धिकादयोबहवोऽद्रयो वर्त्तन्ते ।

(श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णव तोषिनी टीका भा.१०/२४/२५)

श्री वृन्दावन भूमि में नन्दीश्वर पर्वत, अष्टकूट पर्वत (अष्टमहासखियों के पर्वत), सखिगिरि पर्वत ऊँचे गाँव में, रंकु पर्वत रांकोली इन्दुलेखा जी का, सुवर्णगिरि पर्वत (सुनहरा गाँव) सुदेवी जी का, इन्द्रगिरि इन्द्रोली गाँव, धवलगिरि घाटा में, **'सौगन्धिक पर्वत'** जहाँ सौगन्ध खाई थी श्री कृष्ण ने एवं अन्य बहुत से पर्वत रोहिताचल, कनकाचल, गन्धमादन, विन्ध्याचल, त्रिकूट, मैनाक आदि।

गुहाना (गोदृष्टिवन)

शास्त्रानुसार इस वन का नाम गोदृष्टि वन है, यहाँ से श्री कृष्ण गायों पर दृष्टि रखा करते थे, यह श्रीकृष्ण की गोचारण भूमि है ।

अथ वनयात्राप्रसंगेगोदृष्टिबनप्रार्थनामन्त्र (वामन पुराण) :-

गोकृष्णेक्षणसंभूत गोदृष्टयाख्यवनाय ते ।
गोपाल वचनारम्य मोक्षरूपाय ते नमः ॥

श्रीकृष्ण की दृष्टि से उत्पन्न, हे गोदृष्टि नामक वन ! गोपाल के वचन से रमणीक मोक्ष रूप आपको नमस्कार है।

ततो गोपालकुण्डस्नानाचमनप्रार्थनामन्त्र :-

गोपालश्रमनाशाय गोपालवरदायिने ।
चिरायुर्वर्द्धनार्थाय तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥

हे तीर्थराज ! आप गोपाल के श्रम को नष्ट करने वाले हैं और कृष्ण को भी वर देने वाले हैं, आयु वर्द्धन के लिए आपको नमस्कार है।

खोह

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥

(भा.१०/२९/४८)

गोपीनां शतयूथानां मानं वीक्ष्य व्रजेश्वरः ।
भगवान् राधया साकं तत्रैवांतरधीयत ॥

(ग.सं.म.खं.२०/३६)

अथ गोवर्द्धनाद्दूरे सुन्दरं योजनत्रयम् ।
श्रीखण्डगन्धसंयुक्तं स ययौ रोहिताचलम् ॥

(ग.सं.म.खं.२०/३७)

जब श्रीकृष्ण मथुरा चले गए थे तो भागवत् में तो केवल संकेत दिया गया है कि बाद में भी श्रीकृष्ण आये हैं। द्वारिका की प्रजा जब उनका अभिनन्दन करती हुई कहती है, "हे कृष्ण ! तुम कभी-कभी चले जाते हो मधुपुरी आदि, तब उस समय हमारा विरह असह्य हो जाता है।" इसलिए वहाँ तो केवल संकेत ही है किन्तु 'गर्गसंहिता' में स्पष्ट लिखा है कि उद्धव

प्रतिज्ञा कर गए थे कि हम श्रीकृष्ण को साथ लायेंगे और वो फिर से श्रीकृष्ण को मथुरा से यहाँ लाते हैं। मथुरा से यहाँ आने पर फिर से उनका रास होता है, रास होने के बाद ब्रज के सारे वनों-उपवनों में श्रीकृष्ण घूमते हैं। यह लीला भागवत् में भी मिलती है कि श्रीकृष्ण एक वन से दूसरे वन में घूमते रहे। कहाँ-कहाँ घूमते रहे वह? यह प्रसंग "गर्गसंहिता, मथुरा खण्ड अध्याय २०" में विस्तार से वर्णित है। श्रीकृष्ण अनेक वनों में गए हैं जैसे गिरिराज जी से आदिबद्री की दूरी ३ योजन (१२ कोस) की है, दोनों युगल सरकार मानवती गोपियों को खोह में छोड़कर रोहिताचल की ओर चले जाते हैं।

गोपियाँ राधा-माधव को न देखकर कहती हैं .... कहाँ गए ! ! ! ! ! कहाँ गए ! ! ! ! ! खो गए ! ! ! ! ! खो गए। तभी से इस स्थल का नाम 'खो' पड़ा।
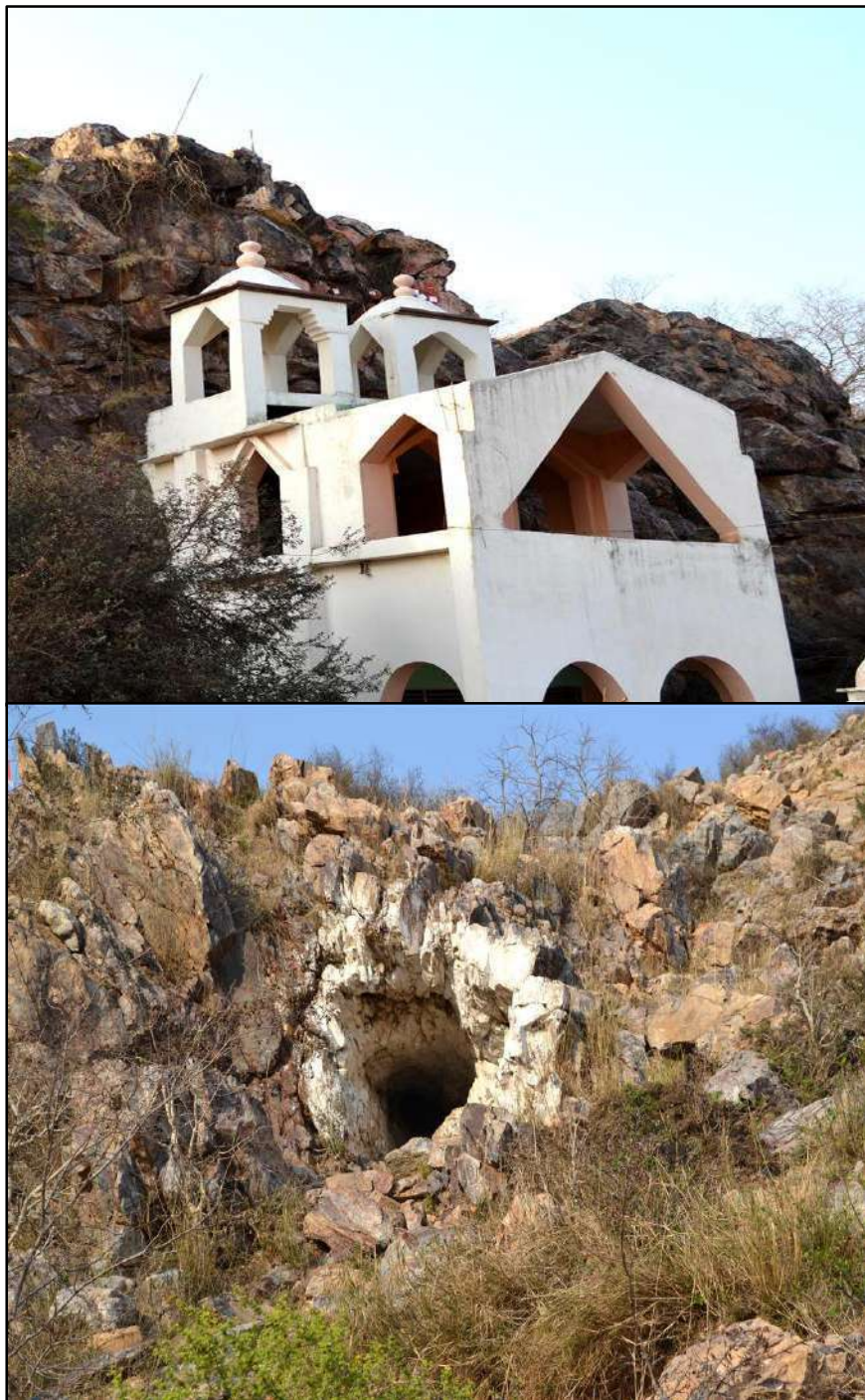
सेऊ – सौगंधिनी शिला व जड़खोर की गुफाएँ

अध्याय – ७०

बूढ़े बद्री

बूढ़े बद्री और आदि बद्री में अन्तर है। बूढ़े बद्री तो गोपाल जी ने ब्रजवासियों के लिये प्रकट किये और आदि बद्री को भगवान् नारायण और लक्ष्मी जी ने, राधा-कृष्ण की सेवा के लिये उस पर्वत और सरोवर को सजाया ।

नन्दबाबा ने सब ब्रजवासियों से बद्रीनाथ के दर्शन की इच्छा प्रकट की, सब ब्रजवासी तैयार हो गये, तब श्रीकृष्ण ने उनको रोका और कहा – "पृथ्वी के सब तीर्थ ब्रज भूमि के लिये तरसते हैं, यहीं बद्रीनाथ आ जायेंगे।" गोपाल जी ने इसी स्थल पर बद्रीनाथ जी के दर्शन, नन्द बाबा, यशोदा मैया और सब ब्रजवासियों को कराये और यहीं पर अलकनंदा के भी दर्शन हुये, इसलिए इसे बूढ़े बद्री कहा जाता है।

ततो आनन्दसरोवरस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

आनन्दरुपिणे तुभ्यं सदानंदप्रदायिने ।
सर्वदुःखहरस्तीर्थ ह्यानंदसरसे नमः ॥

(ब्र.भ.वि.)

अर्थ – हे आनन्द रूप आनन्द सरोवर ! आप हमेशा आनन्द प्रदानकर्ता एवं समस्त दुःखहर्ता हैं, हे तीर्थराज ! आपको नमस्कार है।

आदिबद्री

श्री कृष्ण के धाम जाते ही कलि का कवल बनने लगी धरा। कलि के ३० वर्ष पश्चात् भाद्रपद, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि को श्री शुकदेव मुनि ने राजर्षि परीक्षित् को श्रीमद्भागवत जी का श्रवण कराया।

उसके २०० वर्ष पश्चात् गोकर्ण जी के द्वारा कथा कथन हुआ है एवं इसके ३० वर्ष पश्चात् देवर्षि नारद जी ने जब भक्ति-ज्ञान-वैराग्य को जर्जर अवस्था में देखा तो भक्ति महारानी को समझाया।

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥

(भागवत माहात्म्य २/१)

कृष्ण स्मरण करो देवि ! ये मूल्यवान अश्रु केवल प्रभु प्रेम में ही गिरने चाहिए, इसी में इनका सौभाग्य है। अतः शोक त्याग कर हरि स्मरण करो।

पद्मपुराणोक्त माहात्म्यानुसार

जब नारद जी वेद ध्वनि, गीता पाठ से भी ज्ञान-वैराग्य की अचेतावस्था को दूर न कर सके तो यहाँ बदरीवन में आये हैं।

ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ।
तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥

(भागवत माहात्म्य २/४३)

मैं यहाँ तप करूँगा, अतः यहाँ तपोवन भी है। तप का निश्चय करते ही, देखा –

तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ।
कोतिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥

(भागवत माहात्म्य २/४४)

पुरतः – सामने गन्धमादन पर्वत पर सनकादिक मुनिसत्तमों का दर्शन प्राप्त हुआ और सनकादिक व देवर्षि नारद जी का परस्पर जो संवाद हुआ है वह यहीं हुआ है। यहीं सनकादिक के द्वारा पुराण तिलक श्रीमद्भागवत जी की महिमा प्रकट हुई है। पद्मपुराणोक्त भागवत माहात्म्य दूसरे अध्याय में यह संवाद दृष्टव्य है। भागवत भाष्य श्री गर्ग संहिता में लिखा है –

अथ गोवर्द्धनाद्दूरे सुन्दरं योजनत्रयम् ।
श्रीखण्डगंधसंयुक्तं स ययौ रोहिताचलम् ॥

(ग.सं.मथु.खं.२०/३७)

श्री गोवर्धन से ३ योजन दूर है – आदिबद्री धाम अर्थात् १२ कोस की दूरी पर है, तो गिरिराज जी से १२ कोस की दूरी पर यही मूल आदिबद्री धाम है, उत्तरांचल वाला बद्री धाम नहीं क्योंकि यहाँ बद्रीधाम की एक निश्चित दूरी रखी गयी है और वह बद्रीनाथ तो बहुत दूर हो गया। ब्रज के बद्री को आदिबद्री इसीलिये कहा गया है। ब्रज भूमि नित्य होने से यहाँ की प्रत्येक लीला स्थली आदि-अनादि है, अतः इसे आदिबद्री कहा गया। आज भी ये लीला स्थल जाग्रत् है।

सन् १९९४ में देवसरोवर से निकलती दुग्ध धार का दर्शन पूज्य बाबा महाराज ने किया था। साथ में पं. श्री रामजी लाल शास्त्री व अनेकों महात्मा थे।

श्रीभगवान् लोकहित हेतु स्वेच्छा से अवतार ग्रहण करते हैं। अवतार में शापादि तो ब्याज मात्र है। शाप सत्य नहीं है, भगवद्-इच्छा सत्य है। सर्वसमर्थ प्रभु शाप का प्रशमन करने में सक्षम होते हुए भी स्वेच्छा से शाप शमन नहीं करते हैं।

"ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ।"

(भा.३/१६/२९)

शाप से बहुत आगे की वस्तु है – 'भगवदिच्छा'

और ये शाप भगवदिच्छा में बाधक नहीं सहायक है।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला ।
मम इच्छा कह दीनदयाला ॥

(रा.बा.का.१३८)

प्रथम तो विश्व मोहिनी से विवाह न होने पर देवर्षि नारद ने प्रभु को शाप दे डाला किन्तु फिर कहते हैं – "प्रभो ! मेरा ये शाप अनृत हो जाये।"

तब प्रभु ने स्वयं कहा – "देवर्षे ! मेरी ही इच्छा से तुमने मुझे शाप दिया है।"

भगवान् स्वेच्छा से शाप स्वीकार करते हैं।

और उनकी इच्छा क्या है?

"अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः"

(भा.१०/३३/३७)

अथवा

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥

(रा.बा.का.१२२)

प्रभु की अनन्त-अपरिसीम कृपा, करुणा ही उन्हें अवतार लेने को विवश करती है। जिस समय गोलोक में श्रीदामा (सुदामा) ने श्रीजी को शाप दिया कि तुम यहाँ से मर्त्यलोक में जाओ और वहाँ तुम्हें सखी-समूह सहित श्रीकृष्ण से १०० वर्ष तक वियोग प्राप्त होगा।

श्रीजी ने भी शाप दिया – "तुम भी मर्त्यलोक में जाकर असुर बन जाओ।" श्रीजी से शप्त होकर श्रीदामा (सुदामा) मर्त्यधरा पर जब आने लगे तो श्रीजी के नेत्र अश्रुपूरित हो गए, तब श्रीकृष्ण ने सांत्वना दी – "चिंता न करो, श्रीदामा शीघ्र ही लौट आयेगा।" तो श्रीजी के उस रुदन का कारण क्या था?

मात्र करुणा, कृपा, दया। (ब्र.वै.प्र.खं.अध्याय-४९)

रामावतार देखो तो प्रभु श्रीराम ने पूर्व ही कह दिया –

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौ लगि करौं निसाचर नासा ॥

(रा.अर.कां-२४)

“हे प्राणप्रिये ! हे पातिव्रत धर्मपरायणा सुशीले ! अब हम ऐसी नर-लीला करेंगे, जिसमें तुम्हें हमारा वियोग प्राप्त होगा, असुरगढ़ में आवास प्राप्त होगा। अतः तब तक तुम पावक (अग्नि) में निवास करो।” बाद में तो छाया विग्रह का हरण हुआ है। अर्थात् प्रभु श्रीराम की इच्छा से ही सीताहरण, वियोग, विरह सब कुछ हुआ। वाल्मीकि रामायण में भी आता है – अशोक वाटिका में जिस समय दशानन श्रीजानकी जी को भय दिखाने गया तो श्रीसीता जी बोलीं –

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥

(बा.रा.सुं.कां- २२/२०)

“हे दशानन ! मेरा तेज ही तुझे भस्मसात् करने के लिए पर्याप्त है। यदि चाहूँ तो तुझे इसी समय भस्म कर दूँ किन्तु मुझे मेरे स्वामी श्रीराम की आज्ञा नहीं है। वे वियोग लीला, युद्ध लीला चाहते हैं। बस, इसी कारण तेरे प्राण तेरे गात्र में है। पतिव्रता पति के प्रतिकूल नहीं चलती।”

प्रभु की इच्छा से श्रीसीता जी ने अभिन्न होते हुए भी विप्रलम्भ स्वीकार किया। इसी प्रकार यहाँ श्रीराधा और श्रीकृष्ण में अविनाभाव सम्बन्ध है। सदा दोनों अच्छेद्य है, किन्तु श्रीकृष्ण की इच्छा से श्रीजी ने विरह स्वीकार किया। विरहलीला की इच्छा क्यों हुई श्रीकृष्ण को? क्योंकि ब्रह्मा जी ने प्रार्थना की थी –

स्मर सुदामशापं च शतवर्षनिबन्धनम् ॥
भक्त शापानुरोधेन् शतवर्ष पियां त्यज ॥
तेन सार्धं मधुपुरीं महावन् गच्छ सांप्रतम् ॥
निर्माणं द्वारकायाश्च भारावतरणं भुवः ॥

(ब्र.वै.कृ.ज.खं-६९/३१, ३२,३४,३५)

“प्रभो ! सुदामा के शाप का स्मरण करके १०० वर्ष की वियोग लीला प्रकट करें। इसकी भूमिका भी बन चुकी है। अक्रूर जी आए हुए हैं, आप उनके साथ जाकर मथुरा, द्वारिका लीला सम्पन्न करिए।” तब देवों की प्रार्थना पर यह लीला हुई। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण की इच्छा तो थी ही प्रकट लीला में विरह दिखाने की। भागवतकार ने भी इस बात को माना है। श्रीकृष्ण के मथुरा, द्वारिका चले जाने पर गोपियों को असह्य विरह हुआ।

श्रीभगवान् ने स्वयं कहा –

ईशो यद्यपि शक्तोऽहं निषेकं खण्डितुं प्रिये ।
तथाऽपि न क्षमो रत्ने नियतेर्न करोम्यहम् ॥

(ब्र.वै.कृ.ज.खं-६९/८३)

"ईशता मेरे कर में है। मैं चाहूँ तो अभी सुदामा का शाप नष्ट कर दूँ किन्तु मैं स्वयं नहीं चाहता हूँ क्योंकि इस समय विरह लीला करने की मेरी कामना है।" यहाँ भी भगवान् ने एक बहुत बड़ी मर्यादा स्थापित की। सर्वसमर्थ होते हुए भी शाप को नष्ट नहीं किया। इसके लिए उन्होंने विरह लीला भी की और ब्रज से बाहर भी कभी नहीं गए। प्रभु स्वयं कहते हैं –

"संश्लेषः संततं स्वप्ने मद्वरेण भविष्यति"

(ब्र.वै.कृ.ज.खं-६९/८६)

"वियोग तो केवल जाग्रत में रहेगा। सुषुप्ति में तो मेरा सतत् संयोग रहेगा।" भला श्रीकृष्ण ब्रज से बाहर कभी जा सकते हैं? जड़खोर के जंगलों में सौगंधिनी शिला है, जहाँ श्रीकृष्ण ने कहा था –

"ब्रज तजि अनत न जैहों मोहि नन्द बाबा की आन"

विरह भी और नित्य संग भी, यह कैसे सम्भव है?

इसका समन्वय यह है कि –

"मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले न"

जाग्रत में तो वियोग की अनुभूति होती और निद्रा में नित्य संग की अनुभूति।

प्रकट लीला में भी उन्होंने मथुरा, द्वारिका गमन दिखाया तो बार-बार ब्रज आगमन भी दिखाया। भागवतकार ने वर्णन किया इस बात का। जिस समय प्रभु हस्तिनापुर से द्वारिका आये तो स्वयं द्वारिकावासी बोले –

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून् मधुन् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद् रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥

(भा.१/११/९)

"हमारा एक-एक क्षण करोड़ों-करोड़ों वर्षों की भाँति व्यतीत होता है किन्तु कब? जब आप ब्रज को चले जाते हो।" अर्थात् प्रभु मथुरा और द्वारिका से बार-बार ब्रज में आये हैं।

"भागवतभाष्य श्रीगर्गसंहिता जी" में तो मथुरा, द्वारिका से ४ बार आगमन और ३ बार महारास करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

एक बार "गर्गसंहिता" के 'वृन्दावन खण्ड' में, दूसरी बार 'मथुरा खण्ड' में उद्धव जी सहित ब्रज में आये हैं, तीसरी बार 'अश्वमेध खण्ड' में प्रभासमिलन के समय और चतुर्थ बार इसी खण्ड के अनिरुद्ध-दिग्विजय के अनन्तर लौटते समय, इस प्रकार कई बार सविस्तृत

रासलीला का वर्णन किया है। ब्रह्मवैवर्त में भी यह चर्चा है कि मथुरानाथ तथा द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण ने बार-बार ब्रज में आकर रासेश्वरी श्रीराधारानी के साथ महारास लीला की है और इसीलिए ब्रज में महारास लीला के अनेकों स्थल हैं। महारास के विशाल क्षेत्र में यह "श्री आदिब्रदी धाम" भी आता है। 'आदि' शब्द बताता है कि जो हिमालय में 'बद्रीनाथ धाम' है, उससे भी प्राचीन है यह "श्री आदिबद्री धाम" क्योंकि इसका सम्बन्ध राधा-माधव की लीला से है, जो अनादि काल से चली आ रही है।

गर्गसंहितानुसार – बद्रिकाश्रम का जो साध्य है – वैकुण्ठ धाम, वहाँ के ईश भगवान् लक्ष्मी-नारायण 'राधा-माधव' के लिए विहार स्थली सजाने के लिए सीधे वैकुण्ठ से यहाँ आये थे, इसलिए इसे "आदिबद्री" कहा गया। एक बार श्रीकृष्ण ने ऐसी वंशी बजाई कि उसका सारे ब्रह्माण्ड पर प्रभाव पड़ा। ब्रह्माण्ड को चीरकर वंशी वैकुण्ठ में चली गई।

रुन्धन्नंम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन्मुहुस्त्वंबरं ।
ध्यानाद्धंतनयन्सनन्दनमुखान्विस्मेरयन्वेधसम्
औत्सुक्याद्बलिभिर्बलिं चटुलयन्भोगेन्द्रमाघूर्णयन्भिंद-
न्नंडकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वन्शीध्वनिः ।

(गर्ग.सं.अ.ख.४२/३)

वंशी का बहाव ब्रह्माण्ड के बाहर भी गया। वंशी की ध्वनि जब चली तो बादल रुक गए। गन्धर्व मोहित हुए, सनकादिक का ध्यान टूट गया। "विस्मेरयन्वेधसम्" ब्रह्मा जी उसे सुनकर चकित हो गए। महाराज बलि भी आश्चर्य में हो गये। "भोगेन्द्रमाघूर्णयन्" शेष जी भी उसे सुनकर झूमने लग गए। "भिन्दन अण्डकटाह भित्तिं" ब्रह्माण्ड को फोड़कर वंशी आगे नित्यधामों में चली गई। इसी लीला को सूरदास जी ने अपने पद में कहा –

"हरषित वेणु बजायो छैल ।"

श्रीमद्भागवत में भी लिखा है –

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ।
कामार्दिताःशशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥

(भा.१०/३३/१९)

शशांक माने चन्द्रमा, तारागण सब स्तब्ध हो गए। उस ध्वनि से सारा ब्रह्माण्ड प्रभावित हुआ। "खेचरस्त्रियः" देवांगनाएँ भी मोहित हो गयीं, इसी को सूरदास जी कहते हैं –

"चन्दहिं बिसरी नभ की गैल"

चन्द्रमा आकाश में रास्ता भूल गए। ऐसा क्यों हुआ? तो कहते हैं –

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥

(भा.१०/३३/३९)

एक कल्प की रात बन गई थी, इसलिए सारा ब्रह्माण्ड स्तब्ध हो गया। सबकी गति स्तब्ध हो गयी।

"तारागण मन में लज्यो"

सारे तारों की, नक्षत्रों की गति रुक गई। तभी तो १ कल्प की रात बनी। ये सब भगवान् की योगमाया शक्ति से होता है, इसीलिए रास पंचाध्यायी में सबसे पहले प्रभु ने योगमाया का आश्रय लिया है।

'योगमायामुपाश्रिताः' योगमाया अघटित घटनापटीयसी है। आदिबद्री में मन्दिर के पूर्व ही बाँई ओर 'मालतीवन' है जिसमें भगवती योगमाया का मंदिर भी है।

'मुरली धुनि वैकुण्ठ गई' यह आदिबद्री का मूल मन्त्र है। वैकुण्ठ में लक्ष्मी-नारायण भगवान् आपस में बात कर रहे हैं कि चलो ब्रज में चलें, राधा-माधव की सेवा करेंगे। यहाँ के आराध्य राधा-माधव हैं, जो बद्रीनाथ जी विराज रहे हैं मन्दिर में, वे आराध्य नहीं हैं, वे तो युगल सरकार की सेवा करने के लिए यहाँ आये हैं।

"मुरली धुनि वैकुण्ठ गई ।
नारायण कमला सुनि मोहे अति रूचि हृदय भई ॥ "

"हरषित वेणु बजायो छैल ।"

भगवान् वैकुण्ठ नाथ बोले लक्ष्मी जी से – "हे देवि ! ये वंशी सुनो –

कहत वचन कमला जू सुनौं

देखो, भगवान् कुञ्ज विहारी राधा-माधव रास कर रहे हैं।

श्री कुंजबिहारी विहरत देखि,
जीवन जनम सफल करि लेखि ।

यह सुख यहाँ वैकुण्ठ में नहीं है, यह तो केवल वृन्दावन की रज में, ब्रज की धूल में ही है।

चलो हम भी वहाँ चलते हैं।

"एहि सुख तिहुं पुर है कहाँ"

यह सुख न उर्ध्वलोकों में है, न माया के लोकों में है। सारी त्रिलोकी में कहीं भी नहीं है।"

"श्री वृन्दावन हमते दूर"

ये रस केवल ब्रजरज में मिल सकता है। इसलिए ब्रजरज को लक्ष्मी जी भी तरसती हैं।

"श्रयत इन्दिरा शश्वदत्रहि"

उद्धव जी ने कहा है –

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥

(भा.१०/४७/६०)

"लक्ष्मी भी इस ब्रजरज के लिए लालायित रहती हैं। भगवान् के वक्षस्थल पर नित्य निवास होने पर भी उन्हें ब्रजरज नहीं मिली तो स्वर्ग की देवियों को क्या मिलेगी?" किन्तु वह रज, ब्रज की गँवार गोपियों को मिल गयी। 'पद्मपुराण' में एक कथा आती है – एक बार नारद जी ने देखा कि ऋषि तपस्या कर रहे हैं और उनके बगल में उनकी अस्थियों के पहाड़ लगे हैं। नारद जी वैकुण्ठ गए, भगवान् से पूछा – "प्रभो ! आज तो बड़ी विचित्र चीज हमनें देखी", पूछा क्या? तो बोले – "सात ऋषि तपस्या कर रहे हैं और उनके बगल में उनकी अस्थियों के पहाड़ लगे हुए हैं, ये कैसे? "

भगवान् बोले – "उन्हें तपस्या करते-करते इतने युग बीत गए हैं कि उस तप के प्रभाव से उनकी हड्डियाँ भी अमोघ हो गई हैं।" नारदजी ने पूछा – "तो उनका लक्ष्य क्या है? "

भगवान् बोले – "ब्रजरज प्राप्ति।"

नारद जी बोले – "तो आप दे क्यों नहीं देते हो? "

ठाकुर जी बोले – "ये सामर्थ्य हमारे अन्दर नहीं है, ये तो केवल वृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानी ही दे सकती हैं।" इसलिए नारायण भगवान् ने कहा –

"एहि सुख तिहुं पुर है कहाँ, श्रीवृन्दावन हमते दूर"

"ये ब्रजरस तो केवल ब्रज की रज में युगल सरकार की उपासना करने से ही मिल सकता है।"

"कैसे धौं उड़ि लागै धूर"

किसी भी तरह से यहाँ की मिट्टी शरीर में लग जाए। इस रज की महिमा ब्रह्मा भी नहीं जान पाए।

रास रसिक गुण गाइहौं, हरषित वेणु बजायो छैल ।
जो सुख श्याम करत वृन्दावन सो सुख तिहुं पुर न्याई हो ।

भगवान् नारायण कह रहे हैं –

"हमको कहाँ मिलत रज उनकी, यह कहकै अकुलाइहौं"

भगवान् नारायण और लक्ष्मी जी कह रहे हैं – "हमें उनकी रज कहाँ से मिल सकती है?"

अर्थात् श्री लक्ष्मी-नारायण भी ब्रज रज प्राप्ति के लिए लालायित रहते हैं, इस बात में शंका नहीं करनी चाहिए। कृष्ण विरहणी ब्रजाङ्गनाएँ कहती हैं –

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥

(भा.१०/३०/२९)

“श्री राधा-माधव की चरण रज धन्य है। साक्षात् ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी आदि भी जिसे अपने पापों की निवृत्ति के लिए अर्थात् ब्रज रस की प्राप्ति में प्रतिबंधक तत्व (ऐश्वर्य, अधिकारादि) के निवारण के लिए सादर अपने शीश पर धारण करते हैं।”

"सुनहुँ प्रिया श्री सत्य कहत हौं, मोते और न कोई हौं"

भगवान् नारायण बोले – “लक्ष्मी ! देखो ऐश्वर्य की दृष्टि से मुझसे बड़ा कोई नहीं है, लेकिन रासरस हमारे पास भी नहीं है।

"नंदकुमार रासरस मुख बिन वृन्दावन नहिं होइहौं"

यह तो केवल वृन्दावन में ही मिल सकता है। वैसे मैं अनन्त ब्रह्माण्ड बनाता हूँ, मैं ही महाविष्णु हूँ।

"कर्ता को प्रभु मैं ही"

सारी सृष्टि को मैं ही बनाता हूँ, बिगाड़ता हूँ।

लेकिन **यह सुख मोते न्यारो है**।

ये जो मधुर रस है, ये हमसे अलग है, वहाँ हमारा अधिकार नहीं है।”

"'सूर' धन्य राधावर गिरिधर धनि सुख नन्द दुलारे हो"

‘गर्गसंहिता’ में लिखा है कि लक्ष्मी-नारायण भगवान् ने यह सारा रोहिताचल पर्वत सजाया कि श्रीराधारानी यहाँ पर विहार करेंगी।

“तत्र देवसरोरम्यं बद्रीनाथेन निर्मितं” स्वयं बद्रीनाथ भगवान् ने युगल सरकार के लिए देव सरोवर बनाया। ‘खोह’ में “ठाकुर-श्रीजी” अन्तर्धान हुए थे और गोपियों को छोड़कर यहाँ रोहिताचल पर्वत पर आए। जिससे खो ग्राम नाम पड़ा। यह गोवर्धन से ३ योजन दूर है। यह रोहिताचल पर्वत, बद्रीनाथ भगवान् लक्ष्मी-नारायण ने श्रीजी ठाकुर जी के लिए सजाया था। इसमें बड़ी सुन्दर-सुन्दर कुञ्जें थीं। सुनहली लताएँ थी, ‘काञ्चिनी’ माने राधारानी के रंग की सुनहली लतायें थीं, अतः उसे कनकाचल पर्वत कहते हैं। जो पीला प्रकाश कर रही थीं। उस देवसरोवर में अनेकों सुन्दर-सुन्दर मछलियाँ, कछुए एवं अन्य जलचर भी थे।

सहस्रदलपद्मैश्च मण्डितं तदितस्ततः ।
भ्रमरध्वनिसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतव्रतम् ॥

(ग.सं.म.खं.२०/४०)

सहस्र-सहस्र पंखुड़ियों वाले उसमें कमल थे। चारों ओर असंख्य भौंरे गूंज रहे थे। बारह मास वहाँ कोयलें बोलती थीं, कमल की सुगन्ध से सरोवर भरा रहता था। उसके किनारे पर मीठी-मीठी हवा बह रही थी।

विकसत्पद्मगन्धाढयं तत्तीरं मन्दमारुतम् ।
रमया राधया सार्द्धं माधवो निषसाद ह ॥

(ग.सं.म.खं.२०/४१)

उस सरोवर के किनारे दोनों राधा-माधव बैठ गए। वैकुण्ठ से भी सुन्दर सरोवर था। आखिर तो बद्रीनाथ जी ने श्रीजी-ठाकुर जी के लिए बनाया था। वहाँ श्रीजी के साथ ठाकुर जी रमण करते हुए बैठ गए। उसके बाद जब वे आगे बढ़े तो वहाँ 'रिभु' नामक एक ऋषि तप कर रहे थे।

तत्तीरं प्रतपस्यंतं ऋभुं नाम महामुनिम् ।
पदैकेन स्थितं शश्वच्छ्रीकृष्णध्यानतत्परम् ॥

(ग.सं.म.खं.२०/४२)

एक पाँव से खड़े भगवान् का ध्यान कर रहे थे।

भगवान् के ध्यान में उनको –

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
निरन्नं निर्जलं शान्तं श्रीकृष्णस्तं ददर्श ह ॥

(ग.सं.म.खं.२०/४३)

६० हजार ६० सौ वर्ष एक पैर पर खड़े होकर तपस्या करते हुए निकल गए, खाना तो दूर रहा पानी तक भी नहीं पिया। कृष्णचरणध्यान की शक्ति से इतने समय तक एक पैर से खड़े रहे। जब ठाकुर-श्रीजी ने देखा तो श्रीजी ने पूछा – "ये कौन है? ये तो बड़े भक्त मालूम पड़ते हैं। अपने इस भक्त का माहात्म्य बताओ।" श्रीजी बहुत कृपारुपिणी है। ठाकुर जी बोले – "हे राधे ! ये ऋभु ऋषि हैं।" ठाकुर जी ने ऋभु ऋषि से कहा – "हे ऋभो !" लेकिन समाधि की चरम अवस्था में पहुँचने के कारण वे भगवद् वाणी को सुन नहीं पाये, तब भगवान् ने जिसके ध्यान की शक्ति पर वे खड़े थे, अपनी उस मनोहर छवि को खींच लिया। ऋभु ऋषि ने घबड़ाकर अपनी आँखें खोल दीं और सामने राधा-माधव का दर्शन पाकर ऐसा लगा मानो श्रीकृष्ण तो बादल हैं और उनमें श्रीजी की कान्ति विद्युतवत् दप-दप कर रही है। उठकर दोनों की प्रदक्षिणा की और प्रणाम करके चरणों में गिर पड़े, फिर दोनों की स्तुति की –

नमः कृष्णाय कृष्णायै राधायै माधवाय च ।
परिपूर्णतमायै च परिपूर्णतमाय च ॥

(ग.सं.म.खं.२०/४९)

"अर्थात् राधा-माधव ही परिपूर्ण तत्व हैं।"

घनश्यामाय देवाय श्यामायै सततं नमः ।
रासेश्वराय सततं रासेश्वर्यै नमो नमः ॥
गोलोकातीतलीलाय लीलावत्यै नमो नमः ।
असंख्याण्डाधिदेव्यै चासंख्याण्डनिधये नमः ॥

(ग.सं.म.खं.२०/५०,५१)

"अनन्त ब्रह्माण्डों के श्रीकृष्ण ही ईश्वर हैं और राधारानी अनन्त ब्रह्माण्डों की ईश्वरी हैं।" इसके बाद ऋभु ऋषि ने दोनों को प्रणाम करते हुए अपने प्राण त्याग दिए। उनके शरीर से एक ज्योति निकली और श्री कृष्ण के चरणों में विलीन हो गई। अब ठाकुर जी ऋभु ऋषि के विरह में रोने लगे। रिभो-रिभो कहकर चिल्लाने लगे। ठाकुरजी के चरणों से ऋभु ऋषि निकले। दिव्य उनका वपु था, ठाकुर जी की तरह करोड़ों कन्दर्पों से भी सुन्दर थे। प्रभु की आज्ञा से विमान आया और विमान पर बैठकर ऋभु ऋषि चले गये। इसके बाद राधारानी ने कहा – "रोते क्यों हो?"

श्रीकृष्ण बोले – "मेरा भक्तों से बहुत प्रेम होता है।

श्रीजी बोलीं – **"अस्य देह क्रियांकर्तुं योग्योऽसि वृजिनार्दन"** "जब इतना ही प्रेम है तो तुम इनके शरीर का दाह-संस्कार करो।" उतने में उनका शरीर एक पवित्र नदी बन गया, वह पापनाशिनी गंगा थी।

श्रीजी ने पूछा – "ये जलरूप कैसे हो गये?"

ठाकुरजी बोले – "एक बार मेरा भी शरीर द्रवित हुआ था, ये सब प्रेम की स्थितियाँ होती हैं।"

राधारानी ने पूछा – "आपका शरीर कैसे जल बन गया?"

ठाकुर जी ने बताया – "हे राधे ! एक बार जब नारद उत्पन्न हुए थे तो मेरा नामकीर्तन करते हुए घूमते थे।" एक दिन ब्रह्मा जी ने कहा – "ए नारद ! खाली कीर्तन करता हुआ घूमता रहता है, अरे विवाह कर और सृष्टि बढ़ा।" नारद जी बोले – "पिताजी ! विवाह करके सृष्टि बढ़ाने में कुछ नहीं रखा, ये सब व्यर्थ का चक्कर है। आप भी एक झांझ ले लो और कीर्तन करो।" यह सुनकर ब्रह्माजी क्रोध में आ गये, बोले – "अच्छा ! मुझे ही शिक्षा देता है।" गुस्से में होंठ फड़कने लग गये, बोले – "हर समय गाता रहता है, जा गन्धर्व बन जा। तू कहता है ये शरीर भोग के लिए नहीं है तो जा अब तू कामी बनकर ५० स्त्रियों के साथ भोग भोगेगा, रमण करेगा।"

नारद जी बोले – "आप शाप से भले ही कुछ भी बना दो, किन्तु मैं अपनी इच्छा से तो कभी भी विवाह नहीं करूँगा।" गन्धर्व बने और ५० पत्नियों के साथ रहने लग गए।

एक दिन नारद जी अपनी पचासों पत्नियों को लेकर कभी किसी के कंधे पर हाथ रखे, कभी किसी से गलबैयां डालें और लौकिक गीत गाते हुए ब्रह्मलोक चले गए। ब्रह्माजी ने देखा तो रुष्ट हुए, "अरे ! ये तो यहीं आकर ऐसी धृष्टता कर रहा है। ब्रह्मलोक की मर्यादा को नहीं समझता है। जा, शूद्र बन जा।" शूद्र बन गये, दासी पुत्र बन गये लेकिन उन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा। दासी पुत्र जब बने तो संतो की सेवा का अवसर मिला, सत्संग मिला। १ हजार चतुर्युगी बाद फिर वे ब्रह्मपुत्र बने किन्तु फिर दुबारा ब्रह्माजी ने नारद जी से विवाह के लिए नहीं कहा। एक बार नारदजी भगवद् यश गाते गाते इलाव्रत खण्ड गये। वहाँ वेदनगर था। वहाँ बड़े सुन्दर-सुन्दर स्त्री पुरुष थे परन्तु सब अपंग थे। किसी का हाथ नहीं था, किसी की नाक नहीं थी, किसी का दाँत नहीं था। नारदजी ने उनसे इसका कारण पूछा। सब बोले – "हम राग-रागिनी हैं। एक नारद नामक कोई ऋषि है वह बेसिर पैर की राग-रागिनी गाता है, उसे स्वर-ताल का ज्ञान नहीं है। सुबह का राग रात में गाता है, रात का दोपहर में। इसलिए हम बिना हाथ-पाँव के हो गये हैं, अगर नारद सही ढंग से गाये तो हम ठीक हो जायेंगे।" नारद जी सोचने लगे – "बात तो सही है, हमनें तो कभी इन बातों पर ध्यान ही नहीं दिया।" राग-रागिनी बोले – "यदि वो नारद सरस्वती जी के पास जाकर संगीत की क्रमबद्ध शिक्षा ले तो ठीक गा सकता है और हम सब भी सही हो जायेंगे।" नारद जी ने सोचा – "अब यहाँ से जल्दी चले जाना चाहिए।" उसके बाद नारद जी श्वेत शुभ्रगिरि पर गये और वहाँ उन्होंने १०० दिव्य वर्षों तक अन्न, जल छोड़कर तप किया। उनके वहाँ तप करने से उस पर्वत का नाम नारद पर्वत हो गया तब वहाँ सरस्वती जी आईं, नारद जी को वीणा दी और एक क्षण में ५६ कोटि ग्राम की शिक्षा दी। उस दिव्य संगीत की शिक्षा को लेकर नारद जी गन्धर्व लोक गये और वहाँ स्वर्ग गायक तुम्बुरु गन्धर्व को अपना शिष्य बनाया, फिर तुम्बुरु को सारा वृतान्त सुनाया कि हम सरस्वती जी से संगीत की शिक्षा लेकर आये हैं किन्तु यह संगीत किसे सुनायें? सबसे पहले नारद जी स्वर्ग गये, वहाँ देखा इन्द्र भोग में लगे हुए हैं अप्सराओं के साथ, तो वे सोचने लगे कि संगीत विषयी को नहीं सुनाना चाहिए क्योंकि भोगी व्यक्ति संगीत को विष बना देता है। उसके बाद सूर्यदेव के पास गये तो देखा वे अपने रथ पर जा रहे थे, सोचा ये तो हर समय चलते ही रहते हैं, संगीत की शिक्षा बैठकर लेनी चाहिए। इसके बाद कैलाश गये तो देखा शिव ध्यानस्थ बैठे हैं। सोचने लगे कि ये भी अधिकारी नहीं है। उसके बाद ब्रह्मलोक गये देखा-ब्रह्मा अपनी सृष्टि के व्यापार में लगे हुए हैं। सोचने लगे इन्हें अपने भक्तों से ही अवकाश नहीं है। प्रकृति से परे विरजा नदी को पार करके गोलोक में पहुँचे, जहाँ दिव्य वृन्दावन है। वहाँ द्वार पर ही सखियों ने रोक लिया – "तुम कौन हो? "

नारद जी बोले – "हम नारद हैं, अपना संगीत सुनाने आये हैं।"

सखियों ने जाकर राधारानी से कहा – "नारद जी अपना संगीत सुनाने आये हैं। उन्हें अपने संगीत का योग्य श्रोता नहीं मिला है।" राधारानी बोलीं – "बुला लाओ।" सखियाँ बुलाकर लायीं। निकुञ्ज के भीतर गये। युगल सरकार को प्रणाम किया और अपना संगीत सुनाना प्रारम्भ किया। संगीत को सुनकर ठाकुरजी ने कहा – "हे राधे ! मैं द्रवित हो गया, मेरे दिव्य शरीर से जल प्रकट हुआ और मैं जल रूप हो गया। जिसको 'ब्रह्मद्रव' कहते हैं, जिसमें अनन्त ब्रह्माण्ड लुढ़कते रहते हैं, इस ब्रह्माण्ड का नाम पृश्निगर्भ है। वामन भगवान् के चरण से इसका भेदन हो गया था, उस छिद्र में से ब्रह्मद्रव जब आया तो वह गंगा बन गया। उस गंगा की ३ धाराएँ हुई। एक तो पाताल, दूसरी स्वर्ग और तीसरी पृथ्वी लोक में। उसका स्वर्ग लोक में मन्दाकिनी नाम हुआ। पृथ्वी में उसका नाम भागीरथी हुआ और नीचे पाताल में उसी का नाम भोगवती हुआ, इसलिए हे राधे ! तुम्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिए, विरजा भी जल रूप बन गयी थी। विरजा के सातों पुत्र जलरूप हो गये थे, जो ७ समुद्र हुए। भगवान् विष्णु भी कृष्णा नदी बन गए थे। शंकर भी वेणी नामक नदी बन गए थे। ब्रह्मा भी ककुद्मिनी गंगा बन चुके हैं, इसी तरह से ऋभु ऋषि भी पापनाशिनी गंगा बन गये।" ऐसा श्रीजी के लिए भी कहा गया है –

प्रेयःसंगसुधासदानुभवनी भूयो भवद्द्राविनी ।
कारुण्यद्रवभाविनी कटितटे काञ्चीकलाराविणी ॥

(रा.सु.नि.१८१)

श्रीजी इतनी करुणामयी हैं कि करुणा में श्रीजी द्रवरूप बन जाती हैं। यह आदिबद्री धाम उस बद्रिकाश्रम का भी मूल है क्योंकि वहाँ तो रास हो ही नहीं सकता है और यहाँ राधा-माधव का विहार हुआ है। यहाँ अनेकों दर्शनीय तीर्थ स्थान है। ब्रज में बड़े-बड़े तीर्थ स्थान, बड़े-बड़े पर्वत सभी निवास चाहते थे, अतः प्रभु ने यहाँ सबको वास दिया। रोहिताचल पर्वत पर स्वयं श्री राधा-माधव ने आकर केलि-विलास किया। उस समय यह पर्वत खण्ड सुमन लदी लता एवं वृक्षों से ऐसा सज्जित था कि इस कुसुमित गिरि की शोभा-सुषमा अनिर्वचनीय थी। यहाँ स्वयं बद्रीनाथ भगवान् ने श्रीजी और ठाकुर जी के विहार के लिए "देवसरोवर"का निर्माण किया। जिसमें सहस्र दल वाले कमल प्रस्फुटित थे, दिव्य कोकिलायें कूजती रहती थीं। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर प्रवाहमान रहती थी। दीर्घकाल से गुप्त इस सरोवर का श्री राधारानी ब्रज यात्रा द्वारा पुनरुद्धार हुआ। यहाँ ५ वन हैं। देवसरोवर से ऊपर की ओर चन्दनवन, मन्दिर के सामने रोड पर मालती वन है, नाना वनों में कृष्णान्वेषण करती हुई गोपियाँ जब मालती वन में आईं तो यहाँ उन्हें श्री कृष्ण मिल गये। मंदिर के ऊपर की ओर बद्रीवन, जहाँ देवसरोवर है, शान्तिवन, रोहिताचल पर्वत के दाहिनी ओर तपोवन और बाँई ओर हिरन खोई है। हिरन खोई की कथा भागवत में गाई गयी है। यहाँ पहले बहुत हिरण रहते थे। रास में श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने पर गोपाङ्गनाओं ने हिरन और हिरनियों से उनका मार्ग पूछा –

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥

(भा.१०/३०/११)

"हिरनियों ! क्या तुमने हमारे प्राण-प्यारे को देखा है? तुम्हारे नेत्र तो बता रहे हैं कि तुमने श्रीकृष्ण को देखा है। अवश्य श्रीकृष्ण इधर से ही गए हैं क्योंकि कृष्ण के वक्षःस्थल पर झूलने वाली कुंदमाल की सुगन्ध आ रही है और उसमें श्रीराधा के वक्षःस्थल का कुमकुम है, वह अपनी दिव्य विद्युच्छटा छलका रहा है।" हिरन खोइ के दाहिनी ओर नर पर्वत है, जहाँ देव द्वार है, जिसका निर्माण यहाँ के महन्त श्री गोपीदास जी ने करवाया था। देवद्वार से कुछ आगे कृष्णकालीन कदम्ब तरु हैं, जिनकी रक्षा हेतु "श्री मान मन्दिर" द्वारा चार दीवारी व चबूतरों का निर्माण हुआ। बायीं ओर नारायण पर्वत है, नारायण पर्वत से कुछ आगे त्रिकूट पर्वत है, इसके तीन शिखरें हैं। नर पर्वत के पास नील घाटी है, ब्रज के पर्वतों में दो नील घाटियाँ हैं, एक आदिबद्री में और दूसरी नागाजी की कदमखंडी में है। नील घाटी मतलब यहाँ की शिलाएँ नीली हैं, जहाँ चलने पर पाँवों की कान्ति नीली हो जाती है। हिरन खोइ के बाँयी ओर गंधमादन पर्वत है। गन्धमादन पर्वत के पीछे एक पर्वतमाला है, वह विन्ध्याचल पर्वत है। विन्ध्याचल पर्वत वहाँ है, जहाँ चित्रकूट के कामद आदि तीर्थ रहते हैं, उन सबको प्रभु ने यहाँ निवास दिया। विन्ध्याचल पर्वत के पश्चिम में कनकाचल पर्वत है, जहाँ चन्दन वन है। कनकाचल पर्वत से दूर मैनाक पर्वत है और पश्चिमोत्तर में द्रोणगिरि है, धवलगिरि है –

श्री वृन्दावन भूमौ नन्दीश्वराष्टकूटवरसानुधवलगिरि
सुगन्धिकादयोबहवोऽद्रयो वर्त्तन्ते ।

(श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णव तोषिनी टीका.भा.१०/२४/२५)

पापनाशिनी गंगासे आगे बढ़ो तो लक्ष्मण झूला है, इसकी चढ़ाई थोड़ी कठिन है। लक्ष्मण झूला के दाहिनी ओर गंगोत्री और यमुनोत्री है। यहाँ ३ धाराएँ हैं। गंगोत्री, यमुनोत्री और पापनाशिनी गंगा (ऋभु ऋषि के शरीर से समुद्भूत) से आगे बढ़ने पर गज-ग्राह शिला है। भगवान् ने ब्रजवासियों के आग्रह पर गजग्राह उद्धार की लीला का यहाँ दर्शन कराया था। इसके आगे हरिद्वार है, यहाँ हरकी पौढ़ी की सीढियाँ भी बनी हुई हैं। ये सब बड़े दुर्गम तीर्थस्थान हैं। प्रभु ने कृपा परवश इन सबको यहाँ निवास दिया।

'राधोपनिषत्' में २४ वनों के वर्णन में गन्धमादन वन का भी वर्णन आया है।

अथानन्तरं भद्रलोहभाण्डीरमहातालखदिरवकुलकुमुदकाम्यमधुवृन्दावनानि द्वादशवनानि कालिन्द्याः पश्चिमे सप्तवनानि पूर्वस्मिन् पञ्चवनानि उत्तरस्मिन् गुह्यानि सन्ति। मथुरावनमधुवनमहावनखदिरवन भाण्डीरवननन्दीश्वरवननन्दवनानन्दवनखाण्डवनपलाशवनशोकवनकेतक वनद्रुमवनगन्धमादनवनशेषशायीवनश्यामायुवनभुज्युवनदधिवनवृषभानु वनसंकेतवनदीपवनरासवनक्रीडावनोत्सुकवनान्येतानिचतुर्विंशतिवनानिनि त्यस्थलानिनानालीलयाधिष्ठाय कृष्णः क्रीडति।

(राधोपनिषत् तृतीयः प्रपाठकः)

तप्त कुण्ड

एक समय अग्निदेव ने महर्षि सभा में जाकर पूछा – "ऋषियो ! कृपा करके सर्वभक्षक पाप से निवृत्त होने का मुझे आप कोई उपाय बताएँ।" ऋषि श्रेष्ठ श्री व्यास जी महाराज ने कहा – "अग्निदेव ! इसका तो एक ही उपाय है, आप बद्रीयात्रा कर लें। भगवान् का यह पावन निवास स्थान है।" तत्काल अग्निदेव बद्रिकाश्रम में गन्धमादन गिरि पर गए और वहाँ उत्तराभिमुख होकर भगवद्ध्यान करने लगे। प्रभु ने प्रसन्न होकर अपना साक्षात्कार कराया और कहा – "हे अग्नि देव ! मेरे इस क्षेत्र का दर्शन ही पाप निवृत्त्यर्थ पर्याप्त है। आपने यहीं आकर मेरा स्मरण किया, इससे आप पूर्णतः पापमुक्त हो चुके हो, तब से अग्नि देव पूतात्मा होकर बद्रीनाथ में तप्त जल के रूप में अवस्थित हैं। इस पावन तीर्थ 'श्री तप्त कुण्ड' को भी श्री ठाकुर जी ने ब्रजवास दिया। तप्त कुण्ड में स्नान मात्र से अनादिकाल की संचित अघराशि विनष्ट हो जाती है।

बूढ़े बद्री एवं अलकनंदा कुण्ड

आदि बद्री मंदिर एवं तप्त कुण्ड

नर व नारायण पर्वत एवं मैनाक, द्रोणाचल व कनकाचल पर्वत

त्रिकूट पर्वत एवं विन्ध्याचल पर्वत

आदि बद्री – गंधमादन पर्वत एवं धवलगिरी पर्वत

पाप नाशिनी गंगा, गंगोत्री व यमुनोत्री एवं मालती वन

मालती वन – योगमाया मंदिर एवं हरिद्वार हर की पौड़ी

देव सरोवर एवं गज ग्राह शिला

अध्याय – ७१

श्री केदारनाथ

भगवान् नारायण ने स्वयं यह कथा नारद जी को सुनाई है। सत्ययुग में परम पराक्रमी धर्मात्मा राजा केदार हुए हैं। उन्होंने फलेच्छा रहित सविधि १०० यज्ञ किए। परम निर्वासनिक हृदय (कामनाशून्य हृदय) राजा ने इन्द्र पद भी त्याग दिया था। प्रत्येक कार्य भगवद् प्रीत्यर्थ करते थे। एक समय जैगीषव्य मुनि से परमार्थ तत्व का बोध प्राप्त करके भगवद्प्राप्ति की तीव्राकांक्षा से वन में तप करने चले गए। श्री हरि के अनन्य भक्त थे। अतः सदा सुदर्शन चक्र इनके रक्षार्थ निकट ही रहता था। उत्कट तप प्रभाव से राजा केदार को नित्य धाम गोलोक की प्राप्ति हुई। जहाँ इन्होने तप किया था, वह स्थान ही केदारक्षेत्र हुआ।

यहाँ प्राणान्त होने से जीव को मोक्ष प्राप्ति होती है।

यह केदार क्षेत्र श्री भगवान् को बड़ा प्रिय है, इसीलिए केदार क्षेत्र को प्रभु ने कामवन के समीप ब्रज में वास दिया।

कामवन को 'आदिवृन्दावन' कहा जाता है। जीव गोस्वामी जी ने अपनी टीका में कामवन को वृन्दावन के अन्तर्गत माना है।

श्री वृन्दावने काननेषु तदन्तर्गतेषु
काम्यकवनादिषु तत्र तयोर्विहारो वेषविशेषश्चोक्तः

(श्री मज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णवतोषिणी१०/१८/१६)

यहाँ की स्निग्ध श्वेत-शिलाएँ दिखाती हैं कि यही केदारनाथ का कैलाश है। ब्रह्मवैवर्त-प्रकृति खण्ड, अध्याय-२ में लिखा है –

"ये महेश विश्वेश के वामपार्श्व से प्रकट हुए हैं। जब प्रकट हुए तो स्फटिक मणि की कान्ति से युक्त एक अरब सूर्य की भाँति चमक रहे थे।"

पंचमुखी त्रिलोचन के कर कमल में त्रिशूल था। प्रकट होकर वे अपने मूलअंशी श्रीकृष्ण के सन्मुख बद्धाञ्जलि स्तुति करने लगे –

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम् ।
प्रवरं जयदानां च वंदे तमपराजितम् ॥
विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम् ।

विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम् ॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम् ।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम् ॥
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम् ।

(ब्र.वै.ब्रह्म.खं.३/२४,२५,२६,२७)

नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहे थे और दृष्टि इष्ट के मुखाम्बुज पर अपलक केन्द्रित थी। तदनन्तर श्री हरि के वाम पार्श्व से ब्रह्मा, महाविष्णु प्रकट हुए। मति से ईश्वरी दुर्गा एवं मन से रमा प्रकट हुई। प्रभु ने सभी देवों को शक्तियाँ प्रदान की। विधि को सावित्री, धर्म को मूर्ति, कामदेव को रति और महादेव को महाशक्ति दुर्गा दीं तो महादेव बोले – "प्रभो ! भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि, ब्रह्मपद, रुद्रपद, यहाँ तक कि परमपद की भी मुझे कोई कामना नहीं है क्योंकि ये सब भगवद् सेवा के १६वें अंश की बराबरी भी नहीं कर सकते हैं । मैं तो मात्र आपकी सेवा का इच्छुक हूँ।"

यह सुनकर प्रभु बोले – "हे शशांकशेखर ! तुम १०० करोड़ कल्प पर्यन्त मेरी सेवा करके मृत्यु को जीतकर मृत्युञ्जय हो जाओगे, फिर शिवा को ग्रहण करोगे। जैसे एक माँ शिशु का पालन करती है तदनुसार सती स्त्री भोग से ऊपर उठकर अपने पति का पालन करती है। अतएव हे शिव ! तुम शिवा का तिरस्कार न करना, यह वैष्णवी है, यह तुम्हारा पालन एवं तेज का वर्धन करेंगी।"

तदनन्तर दुर्गतिनाशिनी दुर्गा से बोले – "हे दुर्गे ! तुम मेरे साथ गोलोक चलो। समय आने पर शिव को पति रूप में प्राप्त कर लोगी।" कालान्तर में भगवद् आज्ञा से महादेव ने भगवती का वरण किया और त्रैमासिक व्रत के द्वारा राधा-माधव युगल सरकार की उपासना कराई।

यह व्रत सविधि सबसे पहले भगवान् नारायण ने देवर्षि नारद जी को सुनाया था। इसी व्रत के फलस्वरूप भगवती ने गणेश, कार्तिकेय जैसे दिव्य पुत्र रत्नों को प्राप्त किया।

भगवान् रूद्र के उपदेश से देवी भगवती ने सविधि इस व्रत को किया।

भगवान् रूद्र ने कहा – "देवि ! वैशाख मास में यह व्रत आरम्भ करना चाहिए। फिर यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा में वर्णित श्रीजी के रूप का ध्यान करना चाहिए।

ध्यायेत् तदा राधिकां च ध्यानं माध्यन्दिने रितं ।
राधां रासेश्वरीं रम्यां रासोल्लासरसोत्सुकाम् ॥

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.१६/८५)

रासमण्डल पर आसीन रासेश्वरी, रासोत्सवोल्लासिनी श्रीराधारानी रास की अधिष्ठात्री हैं। इनकी कृपा के बिना रास में प्रवेश वर्जित है।

हे देवी ! मुझे (शिव) भी इन्ही श्रीराधारानी की कृपा से रास में प्रवेश प्राप्त हुआ।

रसिकप्रवरां रम्यां रमां च रमणोत्सुकाम् ।
शरद्राजीवराजीनां प्रभामोचनलोचनाम् ॥

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.१६/८७)

विकसित विशाल कमलदल की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले इनके आकर्ण विलम्बित, अत्यन्त चित्ताकर्षक अञ्जन-रञ्जित-युग्म नयन; मदन के शर-सन्धान को भी हेय बना देने वाला बङ्किम भ्रू-विलास, शरत्पूर्णिमा के राशि की भाँति मधुर-स्मित-विभूषित-मुख और नवीन दर्पण का गर्व चूर्ण करने वाले गोल कपोलों पर पत्रावली की अपूर्व शोभा है। चरणकमलों में शब्दायमान नूपुर कमल-कोष में उड़ते हुए भ्रमर-पंक्ति के समान नाद कर रहे हैं। रत्नेन्द्रसार रचित जगमगाते हुए हार से युगल-वक्षोज उद्भासित हो रहा है।

"ब्रह्मादिभिश्च सेव्येन श्रीकृष्णेनैव सेविताम्"

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.१६/९२)

ब्रह्मादि से सेवित श्रीकृष्ण स्वयं सेवक बनकर उन सर्वेश्वरी की पाद-संवाहन सेवा करते हैं।

हे दुर्गे ! ऐसी कृष्ण-कर्षिणी, करुणा वर्षिणी श्रीजी की मैं आराधना करता हूँ। अतः तुम भी इस त्रैमासिक व्रत के द्वारा श्रीजी की उपासना करो।

षोडशोपचार से श्रीजी की पूजा करो।

१०८ दिव्य कमल नित्य श्रीजी को चढ़ाओ। "कृष्णाय-स्वाहा" इस मन्त्रोच्चारण के साथ उनको आहूति दो। प्रतिदिन १०८ ब्राह्मणों को भोजन कराओ और सतत् श्रीकृष्ण संकीर्तन करो। जिस दिन व्रत की प्रतिष्ठा (उद्यापन) हो तो १० हजार कमलों की आहुति देना। ९हजार ब्राह्मणों को भोजन कराना।

फिर ९० फलों का दान करना। इस व्रत के प्रभाव से १०० जन्मों तक नारी विधवा नहीं होती और अखण्ड पुत्रवती बनी रहती है। तुम प्रत्येक जन्म में मुझे प्राप्त करना चाहती हो, सुन्दर पुत्र चाहती हो तो इस त्रैमासिक व्रत द्वारा श्रीजी की उपासना करो।" यह सुनकर पार्वती जी बोली – "यज्ञ करना, दान करना, वेदाध्ययन करना, तीर्थ सेवन करना, सारी पृथ्वी की परिक्रमा करना – ये सब भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना का १६ वां अंश भी नहीं है। भगवान् की आराधना सबसे बड़ा तप, सबसे बड़ा जप है, जिसके अन्दर भगवान् की भक्ति है उसके दर्शन से ही जीव मुक्त हो जाता है।

हे नाथ ! हे शम्भो ! ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, शेषनाग, आपमें और गणेश में जो तेज है, ये सब उन्हीं राधा-माधव के चिन्तन का प्रभाव है। कृष्ण कृपा से ही मुझे आप जैसे पति और गणेश-कार्तिकेय जैसे पुत्र मिले।" पार्वती जी की बात सुनकर महादेव जी बड़े प्रसन्न हुए। और बोले – "हे दुर्गे ! तुम तो महालक्ष्मीरूपा हो। तुम्हारे लिए कोई भी वस्तु असाध्य

नहीं है। तुम तो सर्वसम्पत्स्वरूपा अनन्त शक्तिरूपिणी हो। मैं, ब्रह्मा, विष्णु तुम्हारे अन्दर भाव रखने के कारण ही सृष्टि निर्माण, पालन और संहार में समर्थ हुए। हम सब तुम्हारी सहायता से ही कार्य करते हैं। तुम आद्या शक्ति हो। तुम श्री राधारानी की उपासना करो। इस व्रत में सनत्कुमार तुम्हारे पुरोहित होंगे। यज्ञ में जितने भी साधन लगेंगें, कमल, द्रव्यादि मैं उसका प्रबन्ध करूँगा। तुम्हारे इस व्रत में दानाध्यक्ष मैं स्वयं रहूँगा। भगवती लक्ष्मी धन की व्यवस्था करेंगी। अग्निदेव स्वयं वेदपाठ करेंगे। अग्नि का नाम है हव्यवाट। सारा यज्ञ का भोजन देवताओं के पास वे ही पहुँचाते हैं। वे अग्निदेव तुम्हारे व्रत में वेदपाठ करेंगे। वरुण देवता आकर जल का प्रबन्ध करेंगे। सभी देवता राधारानी की उपासना में सहयोग देंगे। यक्ष लोग सामग्री ढोयेंगे। स्कन्द स्वामी कार्तिकेय उस सामग्री के अध्यक्ष रहेंगे। इस व्रत में बुहारी लगाने का कार्य वायुदेवता करेंगे, क्योंकि ये श्रीजी की उपासना है। परिवेषण कार्य (परोसने का कार्य) इन्द्र करेंगे। चन्द्रमा इस व्रत के अधिष्ठापक होगें। सूर्यदेव दान का निर्वचन करेंगे असंख्य ब्राह्मणों को तुम भोजन कराओ।" भगवान् शंकर ने इस प्रकार से पार्वती जी से त्रैमासिक व्रत का अनुष्ठान कराया जिसके कारण उनको गणेश, कार्तिकेय आदि की प्राप्ति हुई। भगवान् शिव की ऐसी भक्ति है राधा माधव युगल सरकार में। श्रीजी ने पूछा ठाकुर जी से – "भगवान् शंकर अस्थिमाल क्यों धारण करते हैं? जहर, आक, धतूरा क्यों खाते हैं? "

तब भगवान् कृष्ण बोले – "हे राधे ! एक बार महादेव जी ने ६० हजार युगों तक मेरा भजन किया, उसके बाद मैं प्रकट हुआ। मेरे उस रूप को देखकर उनकी आँखें तृप्त नहीं हुई, उन्होंने सोचा दो ही नेत्रों से इस स्वरूप को क्या देखूँ? एक ही मुख से इनकी क्या स्तुति करूँ? ये बात ४ बार शिवजी ने कही तो उनके ४ मुख और प्रकट हो गये। एक तो पहले से था ही, इस तरह से उनके पाँच मुख हो गये, पाँचों मुखों के दर्शन चक्रेश्वर (गोवर्धन) में है। एक एक मुख में ३-३ नेत्र हो गये, इस प्रकार १५ नेत्र हो गये, कृष्ण रूप देखने के लिए। हे राधे ! सती जी के अस्थि समूह को ये अपने हृदय में धारण करते हैं। उन्हीं की राख को शरीर पर लगाते हैं। जहाँ जहाँ सती जी के अंग गिरे थे वह सिद्ध पीठ बन गई। अवशिष्ट शरीर को लेकर शिवजी मूर्छित हो गये थे। हे राधे ! तब मैं स्वयं महादेव के पास गया और गोद में लेकर मैंने शिवको उपदेश दिया। तब शिवजी ने काल के द्वारा अपनी प्रिया को प्राप्त किया। उनके सिर पर जो जटायें हैं वो तपस्या काल की है, जब उन्होंने ६० हजार युग तक तप किया था, तब ये जटायें बन गयी थी। उनका चन्दन में और कीचड़ में समान भाव है।" "वे सर्प क्यों धारण करते हैं? " श्रीजी ने पूछा, श्रीहरि बोले –

"एक बार गरुड़ के भय से सर्प उनकी शरण में गये तो उनकी रक्षा हेतु उनको अपने शरीर में धारण किया और वृषभ पर वे इसलिए बैठते है क्योंकि उनके भार का वहन दूसरा कोई कर ही नहीं सकता है। मैं ही वृष रूप से उनके बोझ को सँभालता हूँ।" "आक-धतूरा क्यों खाते हैं? " राधा रानी ने पूछा। ठाकुर जी बोले – "जब पार्वती जी से उन्होंने त्रैमासिक

व्रत द्वारा आपकी आराधना कराई थी तो पारिजात पुष्प, चन्दन, अच्छे अच्छे सब सुगन्धित पदार्थ उन्होंने हमको समर्पित कर दिए थे। समर्पित वस्तु को वे स्वीकार नहीं करते हैं, इसलिए शिवजी धतूरा, गन्धहीन पुष्प धारण करते हैं।

मुझे सब अर्पण करने के कारण वे स्वयं कोई भी अच्छी वस्तु ग्रहण नहीं करते हैं।" भगवान् श्रीकृष्ण और राधा रानी का यह गुप्त संवाद 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में वर्णित है।

जय महादेव – जय महादेव जय महादेव – जय महादेव ।
श्री राधा ने पूछा हरि से शिव मुण्ड भस्म क्यों रमाते ।
हरि बोले शिव प्रेमी हैं अपना प्रेम निभाते ।
शिव हित काया भस्म किया था ।
सती पिता के यज्ञ कुण्ड में ।
प्रिया शीश माला को धरकर उसी भस्म को धरते तन में ।
पूछा श्यामा ने क्यों शंकर आक धतूरा खाया करते ।
हरि बोले सब मधुर मुझे दे आक धतूरा खाया करते ।
पंच वदन क्यों मम दर्शन हित साठ हजार वर्ष हर तप कर ।
ब्रह्मवैवर्त रास मान में श्रीजी से यह बोले गिरिधर ।
जय महादेव – जय महादेव ।

भगवान् शिव की प्रीति युगल सरकार में

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में आता है कि गर्गाचार्य जी, जो महादेव जी के शिष्य है, उन्होंने कहा था कि मैंने शिव से ही राधा-नाम की महिमा सीखी है। भगवान् शिव ने हमको एक दिव्य ज्ञान दिया था।

"रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्"

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.१३/१०६)

राधा कहने से र कार जो है, उससे तो करोड़ों जन्मों के पाप जल जाते हैं। ये भगवान् केदारेश्वर के उपदेश की अमृतलहरी है। वे ही श्रीजी के नाम की महिमा जानते हैं। उन्होंने गर्गाचार्य जी को यही सिखाया था और ये गर्गाचार्य जी के ही श्लोक है किन्तु 'गर्ग संहिता' में नहीं है, 'ब्रह्मवैवर्त' में है।

"आकारो गर्भवासं च, मृत्युं च रोगमुत्सृजेत् "

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.१३/१०७)

र में जो बड़ा 'आ' है, जिससे रा बना है, उस आकार से गर्भवास और मृत्यु भी टल जाती है। केवल 'रा' कहने वाले को कभी भी दुबारा माता के गर्भ में नहीं आना पड़ता है।

आधो नाम तारिहैं श्री राधा ।
धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम् ।

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.१३/१०७)

"श्रवणस्मरणोक्तिभ्यःप्रणश्यति न संशयः"

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.१३/१०८)

'ध' कहने से हमारी जो रोज आयु नष्ट होती है, वह रुक जाती है। 'ध' माने धारण करना। ध में जो आ है वह भवरोग को हटाता है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में यहाँ तक लिखा है –

"रोगशोकमृत्युयमा वेपन्ते नात्र संशयः"

(ब्र.वै.कृ.ज.खं.१३/१११)

जब कोई राधा नाम लेता है तो रोग, शोक, मृत्यु और यमराज काँपने लग जाते हैं और उन्होंने यह भी कहा है कि यह नहीं समझना चाहिए कि श्रीकृष्ण ब्रज से चले गए। भगवान् ब्रज से कहीं नहीं जाते हैं तब प्रश्न है कि मथुरा, द्वारिका की लीला फिर कैसे हुई? तो उत्तर दे रहे हैं कि भगवान् कृष्ण के अवतार के समय उन्हीं में नारायण, विष्णु, महाविष्णु सब लीन हो गए थे। नारायणअंश वाले कृष्ण को भगवान् द्वारिका भेज देते हैं, स्वयं नहीं जाते हैं। जो राधिका नाथ श्रीकृष्ण हैं, वे ब्रज से बाहर नहीं जाते हैं किन्तु इस रहस्य को बहुत कम लोग जानते हैं। राधारानी को साथ लेकर गोलोक जाते हैं, इसलिए ब्रजवासियों ने कहा था – "हमारो मुरली वारो श्याम"

हमारा तो बंशी वाला श्रीकृष्ण ही एकमात्र सब कुछ है द्वारिका, मथुरा वाले कृष्ण को हम नहीं जानते हैं।

राधा नाम के बारे में तो यहाँ तक कहा है –

चक्रं चक्री शूलमादाय शूलीपाशं पाशी वज्रमादाय वज्री ।
धावन्त्यग्रे पृष्ठतो बाह्यतश्च राधा राधा वादिनो रक्षणाय ॥

जो राधा-राधा कहता है, उसकी रक्षा के लिए विष्णु भगवान् चक्र लेकर, इन्द्र वज्र लेकर, महादेव त्रिशूल लेकर, ये सब राधा नाम लेने वाले के आगे-पीछे उसकी रक्षा के लिए घूमते हैं।

महादेव जी ने 'गोपाल सहस्रनाम' में और विस्तार से बताया है, इसके अतिरिक्त 'राधाकृपाकटाक्ष' स्तोत्र जो है यह "ऊर्ध्वाम्नाय तंत्र शिवगौरीसंवादे" में महादेव जी ने भगवती दुर्गा को सिखाया था, यह साधारण नहीं है, ये भी महादेव जी द्वारा गाया गया है। उसमें कहा गया है –

"अनन्त-कोटि-विष्णुलोक-नम्रपद्म जार्चिते"

अनन्त कोटि विष्णु धाम हैं, कोई महावैकुण्ठ है, कोई श्वेत वैकुण्ठ है, कोई श्वेत द्वीप है, कोई रमा वैकुण्ठ है। इनमें जितनी भी पद्मजा लक्ष्मियाँ हैं, वो सब राधा रानी की उपासना करती हैं।

"हिमाद्रिजा-पुलोमजा-विरंचिजावरप्रदे"

हिमाद्रिजा माने अनन्त पार्वतियाँ, पुलोमजा माने अनन्त इन्द्राणियाँ, विरंचिजा माने अनन्त सरस्वतियाँ श्री राधा रानी की उपासना करती हैं।

राधारानी के चरणों में अनन्त समृद्धियाँ हैं –

अपार सिद्धिवृद्धिदिग्ध सत्पदाङ्गुलीनखे।
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥

श्रीजी की उपासना के बारे में यह महादेव जी का दृष्टिकोण था।

इसके अतिरिक्त महादेवजी ने पुण्यक व्रत द्वारा श्रीजी की महिमा को और स्पष्ट किया। देवी पार्वती ने प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त्यर्थ पुण्यक व्रत किया, इस व्रत में स्वयं सनकादिक ब्राह्मण बने और दक्षिणा रूप में महादेव जी को माँगा। पार्वती जी ने मना कर दिया। तब समस्त देवी-देवगणों ने आकर पार्वती जी को समझाया और वे महादेव जी को दक्षिणा रूप में देने को उद्यत हो गईं। दिए जाने पर यह हुआ कि महादेव जी के बराबर गौदान करने पर महादेव जी को पुनःप्राप्त कर सकती हैं किन्तु सनकादिक अस्वीकार करते हुए बोले – "हम ऐसा विनिमय नहीं करेंगे, हम तो दिगम्बर के साथ अतीत अटन करेंगे।" यह सुनकर पार्वती जी शरीरान्त को तैयार हो गईं। तत्क्षण एक तेजपुञ्ज प्रकट हुआ, पार्वती जी ने स्तवन किया तदोपरान्त श्रीकृष्ण ने पार्वती जी को अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया पार्वती जी ने उस स्वरूप को देखकर उन्हीं के समान पुत्र की इच्छा प्रकट की और तत्क्षण उन्हें ऐसा वरदान प्राप्त हो गया। तेजःस्वरूप श्रीकृष्ण वहाँ आये हुये देवताओं की भी अभिलाषा पूर्ण करके वहीं अन्तर्धान हो गये तदन्तर उन्हीं कृपालु देवों ने सनत् कुमार को समझा-बुझाकर पार्वती को शिव लौटा दिये अनन्तर गणेश जी के रूप में श्री कृष्ण ने ही अवतार लिया।

रूद्र वन

अथ ब्रजयात्राप्रसंगेरूद्रबनप्रार्थनामन्त्र (भविष्योत्तरे) :-
तपः समाधिसम्भूत रुद्रसिद्धिप्रदायिने । **नमो रूद्रबनाख्याय परिपूर्णकलात्मने ॥**

अर्थ – "तपस्या और समाधि से उत्पन्न हुए ! हे रूद्र सिद्धि दाता ! सम्पूर्ण कलाओं के परिपूर्ण रूप हे रुद्रबन ! आपको नमस्कार है। रुद्र बन ही केदारनाथ है।

वैशाख कृष्णा द्वादशी में महारूद्रवन को जावे।

ततो गदाधरकुण्डस्नानाचमनप्रार्थनामन्त्र :-
गदाधर विभुसाक्षाद्रद्रार्थवरदायिने । **तीर्थराज नमस्तुभ्यं गदाधरसमाह्वय ॥**

व्यापक साक्षात रूद्र जी को वर देने वाले गदाधर तीर्थराज ! तुम्हें नमस्कार है।

श्री केदारनाथ, शेषनाग एवं गरुड़ शिला
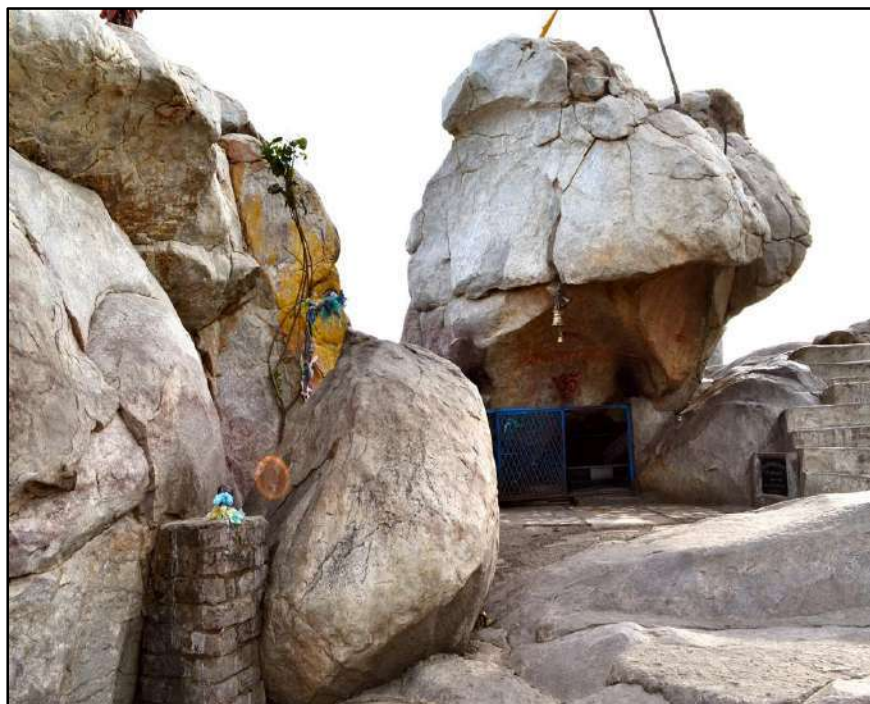
केदारनाथ की गुफा एवं नंदी जी
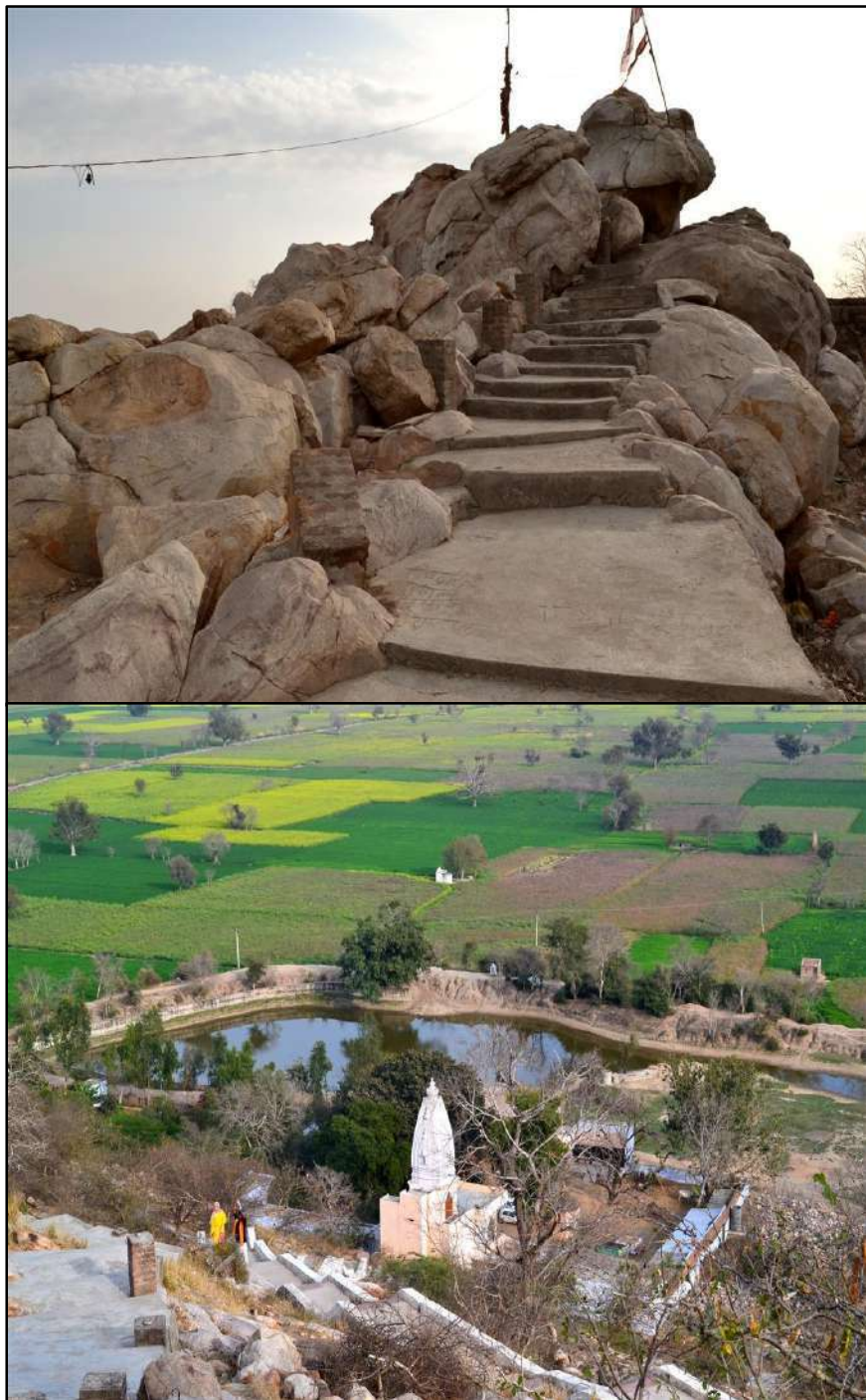
केदार नाथ मंदिर का रास्ता एवं गौरी कुण्ड

केदारनाथ – ब्रज लीला चित्रण एवं शेषनाग मुख

अध्याय – ७२

काम्य वन (कामां)

श्री राधामाधव की परम पावनी लीलास्थलियों को अपनी सीमाओं में संजोये तथा आज भी वन, सरोवर, वापी, तड़ाग व विविध गिरिशिखरों एवं उनकी सुरम्य कन्दराओं से आच्छादित काम्यवन (कामां) ब्रज की पश्चिम दिशा में स्थित है। ब्रज के बारह वनों में चतुर्थ वन कामवन है, जिसके विषय में कहावत है कि "कामवन जाये ते काम बन जात है"। काम अर्थात् समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाला यह कामवन है, जो श्रीकृष्ण की दिव्य कामना को भी पूरा करता है। यहीं श्रीराधाकृष्ण के अप्राकृत प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है।

चतुर्थं काम्यकवनं वनानाम् वनमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा नरो देवि मम लोके महीयते ॥

(आ.व.पु.१५३/३७)

काम्यवन की महत्ता इसी से स्वतः प्रतिपादित हो जाती है कि भगवान श्रीकृष्ण ने अपने माता-पिता के तीर्थाटन की कामना को इसी काम्यवन में भारत के समस्त प्रमुख तीर्थों को निवास देकर पूरा किया, तभी तो काम्यवन में आदिबद्री, केदारनाथ, प्रयाग, गया, लंका, सेतुबंधरामेश्वर, काशी आदि अनेक तीर्थ आज भक्तों की आस्था के केंद्र बने हुए हैं। काम्यवन की परिक्रमा २१ किलोमीटर के अन्तर्गत है। विष्णु पुराण के अनुसार यहाँ चौरासी कुण्ड, चौरासीतीर्थ, चौरासी मंदिर एवं चौरासी खम्बे हैं। ब्रज के प्रसिद्ध ठाकुर श्री राधागोविंद, राधागोपीनाथ, श्रीराधामदनमोहन, श्री राधादामोदर, श्री राधामाधव एवं श्री गोविन्द देव जी ने भी औरंगजेब के अत्याचार के समय जयपुर जाते समय कुछ दिनों तक विश्राम किया था। वृन्दादेवी तो काम्यवन आकर वहाँ से गयी ही नहीं। इसके अतिरिक्त महाभारत काल में पाण्डवों के अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने काम्यवन में भी बहुत दिनों तक निवास किया था। आज भी उनके नाम से धर्मकुण्ड, भीमकुण्ड, पञ्चतीर्थ (पाँचों पाण्डवों के पाँच कुण्ड), यज्ञ कुण्ड, धर्मराज सिंहासन आदि अनेक स्थान हैं। भीमपत्नी हिडिम्बा का भी स्थान ग्राम अंगरावली में पर्वत किनारे बना हुआ है।

ब्रज में महाभारत के अनेक पात्रों का आना सिद्ध हो जाता है जैसे रंकु वन में सुभद्रा कुण्ड। कृष्ण की बहन या अर्जुन की पत्नी सुभद्रा जी आई हैं और उनके नाम का वहाँ कुण्ड भी है। श्री 'गर्ग संहिता' वृन्दावन खंड में भीष्म ने महाराज पाण्डु से ब्रज की महिमा का वर्णन किया था।

कोकिला वन और बठैन के बीच पाण्डव गंगा है। होडल में भी पाण्डु वन है और पात्र वन में कर्ण आये हैं, वहाँ उनके नाम का कुण्ड भी है। ब्रज की पतित पावनी रमणीय भूमि के प्रति न केवल पाण्डवों की ही भक्ति थी अपितु पाण्डव पत्नी ने भी चीर हरण के समय किन्ही लक्ष्मी नारायण को याद नहीं किया बल्कि गोपीजन प्रिय, ब्रजनाथार्तिनाशन व गोविन्द शब्द से उनका आह्वान किया था।

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ।
हे नाथ हे रमानाथ ब्रजनाथार्तिनाशन ।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥

(महा.सभा(द्यूत)पर्व.६८/४१,४२,४३)

इस तरह ब्रज भूमि पाण्डवों की प्रिय रही।

अनेक यूथों की गोपियाँ जिनकी भगवद् मिलन की कामना रामावतार में पूरी नहीं हुयी, वे भी इसी क्षेत्र में आकर रास में श्रीकृष्ण से मिलीं। आदि वृन्दावन के नाम से ख्याति प्राप्त काम्यवन यद्यपि अपने प्राकृतिक सौन्दर्य को अभी भी कुछ सीमा तक संजोये हुए है, फिर भी भीषण विनाश से गुजरा, भौतिक जगत की भोगवादी दृष्टि व कलिकाल के प्रकोप से सांस्कृतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति अनास्था के कारण यह क्षेत्र मूलस्वरूप को खो रहा था परन्तु जगन्मंगल की भावना ही जिनके अवतार का कारण है, ऐसे परमविरक्त संत श्रीरमेशबाबा महाराज के प्रयास से पुनः नवजीवन को प्राप्त हुआ है, यहाँ के अनेक सरोवरों, वनों एवं दिव्य पर्वतों की रक्षा महाराज श्री ने किया। खनन कर्ताओं ने इन्द्रसेन आदि अनेक पर्वतों को तो नष्ट ही कर दिया था, परन्तु फिर भी इसका ५,२३२ हेक्टेयर भूभाग माफियाओं से कड़े संघर्ष के पश्चात आरक्षित कराकर बचा लिया गया। इसके अतिरिक्त गाँव-गाँव में हरि नाम प्रभात फेरियों के माध्यम से हरिनाम संकीर्तन व धाम महिमा की चेतना जागृत हुयी और जो लुप्त होने जा रहा था, उसी ब्रज के आज भक्तों को इस समग्र पावन क्षेत्र के दर्शन हो रहे हैं। बरसाना से पहाड़ी तक फैले विस्तृत भूभाग में भगवान की अनेक लीलाएँ हुई हैं। कहीं रास-महारास तो कहीं छाक लीला और कहीं लुका-छिपी का खेल, ऐसी पावन भूमि की महिमा कोई क्या वर्णन कर सकता है फिर भी कुछ स्थलों के बारे में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

ततो विमल कुण्ड स्नानाचमनमन्त्र (वृहद्गौतमीये) :-

वैमल्यरुपिणे तुभ्यं नमस्ते जलशायिने ।
केशवाय नमस्तुभ्यं तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥

विमलता के रूप वाले, जल में शयन करने वाले केशव आपको नमस्कार है, हे तीर्थराज आपको भी नमस्कार है।

समस्त तीर्थों में अग्रणी विमल कुण्ड के विषय में जन श्रुति के अनुसार यह कथन सर्वज्ञात है कि एकबार जगत के सारे तीर्थ ब्रज में पधारे, परन्तु तीर्थराज पुष्कर वहाँ नहीं आये। चूँकि श्रीकृष्ण को काम्यवन का यह लीला क्षेत्र अत्यन्त प्रिय था और तीर्थराज पुष्कर की उपेक्षा दृष्टि उन्हें अच्छी नहीं लगी, अतः उन्होंने योगमाया का स्मरण किया और उसी क्षण पृथ्वी तल से एक जलप्रवाह उद्भूत हुआ तथा उसी निर्मल जल से एक परम सुन्दरी का प्राकट्य हुआ, जिसके साथ श्रीकृष्ण ने उसी जलप्रवाह में जलविहार विविध प्रकार से किया। उस अद्भुत किशोरी ने भी अपनी निर्मल प्रेममयी भावनाओं से श्रीकृष्ण को संतृप्त किया।

ततो विमल कुण्ड प्रार्थना मन्त्र :-

विमलस्य च कुंडे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
यस्तत्र मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥

(आ.वा.पु.१५३/३८)

श्रीकृष्ण ने उस नवयौवना से प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि यह सरोवर विमल कुण्ड तुम्हारे विमला नाम से प्रख्यात होगा और इसमें स्नान करने का फल, पुष्कर राज में स्नान करने से सात गुना अधिक होगा। इसी सरोवर के किनारे बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों ने श्री कृष्ण प्राप्ति हेतु निवास किया।

इसके अतिरिक्त माधुर्य खण्ड (गर्ग संहिता) के अनुसार अध्याय ५-६ में भी विमल कुण्ड का वर्णन आता है। श्रीकृष्णावतार के पूर्व सिन्धु देश जहाँ आज पाकिस्तान है, वहाँ बहुत महान वैष्णव हुए हैं परन्तु कलियुग के प्रभाव से आज वहाँ वह रसिकता नहीं रही। पहले वहाँ चम्पक नाम की नगरी थी, जहाँ विमल नाम के राजा राज्य करते थे, जो प्रहलाद जी के सदृश बड़े धर्मात्मा एवं प्रतापी राजा थे। उनके ६००० रानियाँ थीं परन्तु सन्तान हीनता के कारण वे बहुत दुःखी रहते थे। याज्ञवल्क्य ऋषि ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि तुम्हारे भाग्य में पुत्र नहीं है परन्तु कन्याएँ बहुत हैं, जिन्हें तुम श्रीकृष्ण को समर्पित करोगे और यह भी बताया कि ११५ वर्ष पश्चात् श्रीकृष्णावतार मथुरा में होगा। जिनके वक्षःस्थल पर श्री वत्स का चिन्ह होगा। उन्हीं परम परमेश्वर को अपनी समस्त कन्याओं को भेंट करने से समस्त ऋणों से मुक्त होकर भगवद्धाम प्राप्त कर लोगे। राजा विमल ने मथुरा आकर पूछा तो कंस के भय से उन्हें कोई कुछ बता नहीं सका तो वृन्दावन में नील वर्ण उस श्याम के

दर्शन किये और दिग्विजय पर निकले भीष्मजी ने राजा को गोकुल में रह रहे श्रीकृष्णावतार की सम्पूर्ण कथा सुनाई। गोकुल दूत भेजकर प्रार्थना करवाया कि वे राजा विमल की लाखों कन्याओं को स्वीकार करें, श्रीकृष्ण वहाँ गये और समस्त कन्याएँ भगवान के अलौकिक रूप पर बिक गई। कन्याओं को श्रीकृष्णार्पित करके राजा विमल ने दहेज में अपना सारा राज्य भी दे दिया। स्वयं देह त्याग कर सारूप्य प्राप्त करके धाम चले गये। उन सभी कन्याओं को प्रभु आकाश मार्ग से कामवन क्षेत्र में लाये और रास विलास किया, उनकी आँखों से जो अश्रुपात हुआ उसी से यह विमल सरोवर बना। विमल की ये कन्याएँ पूर्व जन्म में अयोध्या की नारियाँ थीं परन्तु चाहते हुए भी श्रीराम रूप से आकर्षिता वे उनका वरण नहीं कर सकी थीं, उन्हें ही कृष्ण रूप से भगवान् ने ग्रहण किया था।

चरण पहाड़ी

ततो विष्णुपादचिन्हस्थल प्रार्थना मन्त्र :-

विष्णुपादतलोत्कीर्ण चिन्हरम्यांगभूमये ।
नमस्ते विश्वरूपाय कलाकांत नमोस्तुते ॥

(विष्णुपुराण)

विष्णु चरण तल से उत्पन्न चिन्ह हे रम्यांग भूमि वाले ! आपको नमस्कार है। आप विश्व रूप हैं और कलाओं से मनोहर हैं।

ब्रज में कई चरण पहाड़ियाँ हैं। श्रीकृष्ण जब लुकलुक कुण्ड में छिपकर बहुत समय तक नहीं निकले फिर पश्चिम की निकटस्थ पहाड़ी पर पहुँचकर ऐसी मनमोहिनी वंशी बजाई, जिससे न केवल ब्रजवासियों का हृदय पिघला, अपितु पर्वत शिलाएँ भी द्रव रूप होने लगीं और श्रीकृष्ण के चरण वहाँ अंकित हो गये, वहीं पहुँच कर गोपियों ने उन्हें पा लिया। कामवन के रास में वंशी ऐसी बजी थी कि ब्रज गोपियाँ मूर्च्छित हो गयीं, प्रेम में देवाङ्गनाओं के विमान में नीवीबंधन खुल गये। जड़-चेतन सब वंशी के प्रभाव में आ गये। नदियों का पानी बहना बंद हो गया। पर्वत पिघलने लगे, ऐसे पावन लीलास्थल को भी तोड़ा जा रहा था परन्तु 'मान मंदिर सेवा संस्थान' के लंबे संघर्ष व आंदोलनों के कारण इन सबकी रक्षा हुई।

इसी पर्वत पर खड़े राधा-माधव की अद्भुत छवि का वृन्दावन दास जी ने उल्लेख किया है।

ठाड़े री मोहन चरण पहाड़ी ॥
पीताम्बर फहरात पवन बस मुकुट लटक छवि न्यारी ॥
पुनि कीरति की लली भली छवि ता ग्रीवा भुज डारी ।
जाके रूप रंग बस है वन वन नचत विहारी ॥

उन्मद मदन रहत निशिवासर संग ललित ललनारी।
वृन्दावन हित विमलकुण्ड तट केलि विमल विस्तारी॥

सेतुबंध

ब्रजवासी एवं ग्वालबालों के पारस्परिक आमोद-प्रमोद व हास्य के मध्य तीर्थ दर्शनेच्छा में सेतुबंध लंका देखने की जिज्ञासा हुयी तो श्रीकृष्ण कृपा से इस समग्र लीला का वहीं साक्षात्कार हुआ। वही स्थल सेतुबंध नाम से विख्यात है। आज भी वहाँ का मनोहारी दृश्य वर्षाकाल में वैसा ही प्रतीत होता है।

ततो समुद्रसेतुबंधकुण्डस्नानाचमनप्रार्थनामन्त्र :-

देवानां सिद्धिरुपाय सेतुबंध नमोऽस्तु ते।
नमस्ते सकलेष्टाय तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥

(ब्र.भ.वि)

हे सेतु बंध देवताओं के सिद्धि रूप! आपको नमस्कार है। सब इष्ट पदार्थों को देने वाले तीर्थराज! आपको नमस्कार है।

जब सेतु पार करके भगवान् राम लंका गए हैं, उसी लंका द्वीप की भी यहाँ स्थिति है, जिसके बीच में लंका दहन का भी चिन्ह है। जब वर्षा काल में चारों और जल भर जाता है, तब चारों ओर जल होने से समुद्रावेष्टित लंका दिखाई पड़ती है।

विह्वल कुण्ड

श्रीकृष्ण के वंशी निनाद ने जैसे ब्रजबालाओं को आमंत्रित किया हो! तो फिर किसी पारिवारिक बन्धन में उनका रुकना कैसे सम्भव था? वे प्रियतम के मिलन के लिए आतुर हो उठती हैं। विह्वलता में वंशी स्वर का अनुमान करती हुई कुञ्ज-निकुंजो से होती हुई छटपटाने लगीं, उनकी विह्वलता भला श्याम से कैसे छुपती और वे भी उनके समीप आ गये। वही मिलन स्थल विह्वल कुण्ड है। इसी विह्वल कुण्ड के पास ही ललिता कुण्ड, विशाखा कुण्ड, श्याम कुण्ड, बलभद्र कुण्ड, मान कुण्ड एवं मोहिनी कुण्ड भी है।

कामसरोवर

श्रीकृष्णार्पिता ब्रजरमणियाँ जिनका दिव्य प्रेम भौतिक काम से परे है जिसमें स्वसुखाभिलाषा का लेषमात्र भी नहीं है। सदा श्रीकृष्ण सुख की ही उनकी जिज्ञासा बनी रहती है। गोपियों का प्रत्येक कार्य श्रीकृष्ण के लिए था, न वहाँ शारीरिक सुख था न कोई गृहासक्ति। स्वयं नन्दनन्दन गोपियों के इस निर्मल प्रेम के ऋणी होकर रह जाते हैं। कृष्ण व ब्रजरमणियों के विशुद्ध कामस्थल जो काम सरोवर नाम से स्थित है। उस सरोवर में स्नान करने से समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं –

तत्र कामसरो राजन्! गोपिकारमणं सरः।
तत्र तीर्थसहस्राणि सरांसि च पृथक्-पृथक्॥

(स्क.पु.म.खं)

वृन्दादेवी

वृन्दादेवी जी, वृन्दावन में लुप्त थीं। इनका फिर से प्रागट्य श्री रूप गोस्वामी जी ने किया। ब्रह्म कुण्ड से प्रगट करके इन्हें गोविन्द देव जी के वाम भाग में स्थापित किया। जब गोविन्द देव जी को ब्रज से बाहर ले जाने लगे तो कामवन तक वृंदा देवी भी साथ आयीं और स्वप्न में कहा कि मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी, अतः वृन्दादेवी काम्यवन में ही रह गयीं। गोविन्द देव जी जयपुर चले गये।

ततो वृन्दान्वितगोविंदालोक प्रार्थना मन्त्र (विष्णुयामले) :-

वृन्दादेवीसमेताय गोविन्दाय नमो नमः।
मुक्तिरुपाय कृष्णाय वासुदेवाय केलिने॥

वृन्दादेवी सहित गोविन्द को नमस्कार है। मुक्ति रूप कृष्ण वासुदेव केलि रूप आपको नमस्कार है।

श्री कुण्ड

श्री कुण्ड पर ही भगवान् कामेश्वर ने महाशक्ति दुर्गा को राधा तत्व का श्रवण कराकर उनके अभीष्ट की पूर्ति की एवं पुण्यक व्रत द्वारा श्रीजी की उपासना करने को कहा। विप्र सुतपा द्वारा प्राप्त राधा मन्त्र द्वारा सृष्टि में प्रथम राधा उपासना सम्राट सुयज्ञ ने की है। प्रथम आवरण में श्रीकृष्ण ने श्रीराधा का पूजन किया व महोत्सव मनाया। राधा कवच अपने कंठ

व दाहिनी भुजा में धारण किया। द्वितीय आवरण में धर्म, ब्रह्मा, शिव, वासुकि, सूर्य, चन्द्र आदि ने राधाराधना की। तृतीय आवरण में सप्तदीप के सम्राट सुयज्ञ ने, भारत वर्ष में ये प्रथम राधाराधक हुए हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तानुसार राजा सुयज्ञ की राधाराधना

शिव – देवी ! चौदह मनुओं में प्रथम स्वायम्भुव हैं। स्वायम्भुव के उत्तानपाद उनके ध्रुव, ध्रुव के उत्कल हुए। एक समय नारायण भक्त उत्कल ने पुष्कर में १००० राजसूय यज्ञों का अनुष्ठान किया, बहुत सा दान दिया। 'सुन्दर यज्ञ' होने के कारण देव सभा में ब्रह्मा ने उत्कल का नाम सुयज्ञ रख दिया। ये प्रतिदिन १०-१२ लाख गोदान करते। १ लाख रसोइयों को भोजन देते थे। यज्ञ में ३६ लाख करोड़ ब्राह्मणों ने भोजन किया। यज्ञ की समाप्ति पर सभा लगी हुई थी, राजा सुयज्ञ बैठे हुए थे। सभा में वसु, चन्द्र, इन्द्र, नारद सब बैठे थे, तब तक कश्यप वंशज विरूप पुत्र शिव शिष्य सुतपा नामक ब्राह्मण सभा में पहुँचे। राजा ने प्रणाम किया पर अपने स्थान से उठे नहीं। क्रुद्ध हो विप्र सुतपा ने श्राप दे दिया। "पामर ! तू गलित कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो जा।" ऐसा कहकर जब वे चले गए तो राजा सभीत उनके पीछे-२ दौड़ने लगे। राजा के पीछे-२ विश्वामित्र, कश्यप, कपिल, कर्दम, दक्ष, बालखिल्य, जैगीषव्य, जमदग्नि, गर्ग, देवल, आसुरि, शाकल्य, अत्रि, अगस्त्य, च्यवन, भरद्वाज, वाल्मीकि, च्यवन, ओर्व, पराशर, नर-नारायण, सनकादिक, पाणिनि, जाजलि, कणाद, कण्व, मार्कण्डेय, लोमश, दुर्वासा, गौतम, बृहस्पति, वशिष्ठ, मरीचि, अङ्गिरा, भृगु, पुलह, पुलस्त्य, कौत्सादि मुनिगण, अग्नि आदि देवगण सभी पीछे-पीछे चल पड़े एवं उचित नीति की बातें कहकर ब्राह्मण को समझाया। राजा सुयज्ञ ने चरणों में गिरकर क्षमा याचना की। अनन्तर प्रसन्न हो सुतपा ने राजा सुयज्ञ को गलित कुष्ठ से उन्मुक्त होने के लिए एक सहस्त्र वर्ष पर्यन्त भक्त विप्र का चरणोदक सेवन एवं महाविष्णु की जननी श्री राधा रानी की उपासना करने को कहा। इससे शीघ्र गोलोक की प्राप्ति हो जायेगी। भक्त विप्र सुतपा के कथनानुसार राजा सुयज्ञ ने पुष्कर में जाकर दुष्कर तप आरम्भ कर दिया। सौ दिव्य वर्ष पर्यन्त षड् अक्षर वाले "ऊँ राधायै स्वाहा" इस राधा मन्त्र द्वारा श्रीजी की उपासना की। फलतः उन्हें व्योम में विमान पर विराजमान कृपाकटाक्ष सुवर्षिणी श्रीजी का दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ, जिससे उनके समस्त पाप-ताप क्षीण हो गए। कृपा करके श्री राधिका रानी मणि-मण्डित विमान द्वारा राजा सुयज्ञ को अपने साथ गोलोक ले गईं और वहाँ अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्ण के दर्शन कराये। पार्वती जी ने प्रश्न किया – "शम्भो ! राजा सुयज्ञ ने कृष्णोपासना न करके राधोपासना क्यों की? " रूद्र ने कहा – "देवी ! राजा सुयज्ञ ने विप्र सुतपा से पूछा था कि मैं किसकी आराधना से शीघ्र गोलोक प्राप्त करूँगा? " तब सुतपा ने बताया कि कृष्णोपासना से गोलोक प्राप्ति में विलम्ब होगा किन्तु कृष्ण प्राणाधिष्ठातृदेवी, हरि स्तुता श्रीराधा की उपासना से अविलम्ब गोलोक प्राप्ति हो जाएगी अर्थात् श्री कृष्णोपासना से कहीं अधिक है श्रीजी की उपासना। अतः राजा सुयज्ञ ने पूर्व काल में श्रीकृष्ण द्वारा की गई

राधाराधना के अनुसार ही सामवेदोक्त उनके दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुए राधा मन्त्र का जाप करते हुए राधोपासना की। श्रीजी की उपासना से राजा सुयज्ञ का शुभ्र सुयश कृष्ण भक्त ध्रुव से भी अधिक उन्नत हुआ। इनके यज्ञ में बड़े-बड़े वेदज्ञ-शास्त्रज्ञ, योगीन्द्र-मुनीन्द्र, ऋषि-महर्षि पधारे जो कि पराशर, मार्कंडेय, बृहस्पति आदि ध्रुव के यहाँ कभी नहीं आये, यहाँ तक कि स्वयं नर-नारायण भगवान् आये। इन सभी के मंगलागमन का मूल कारण एकमात्र सुतपा द्वारा श्रीजी की उपासना थी। यह स्थान (श्री कुण्ड) श्रीजी की अमित महिमा को संजोये अपने आप में अद्वितीय है। यहाँ आचार्य पाद श्रीमद् वल्लभ महाप्रभु की बैठक है। समस्त वल्लभ कुलीय वैष्णव यहाँ की रज निज मस्तक पर अवश्य लगाते हैं क्योंकि यह स्थान अष्टमहाछाप के महाकवियों के लीला प्रवेश काल में उनके मानस-ध्यान का विषय रहा। जिस समय परम भगवदीय श्री कुम्भनदास जी महाराज धाम-गमन कर रहे थे तो गोसाँई जी ने पूछा – "आपकी चित्त वृत्ति कहाँ है", कुम्भनदास जी ने उत्तर दिया था –

रसिकनी रस में रहत गढ़ी।
कनक बेलि वृषभानु नन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी।
विहरत लाल संग राधा के कौने भांति गढ़ी।
'कुम्भनदास' लाल गिरधर संग रति-रस केलि बढ़ी॥

धाम गमन काल में गो.जी के पूछने पर महान भगवदीय श्री सूरदास जी की चित्त वृत्ति –

बलि-बलि हौं कुंवरि राधिका नन्द सुवन जासों रति मानी।
वे अति चतुर तुम चतुर शिरोमणि, प्रीति करी कैसे रहत है छानी।
वे जू धरत तन कनक पीत-पट सो तो सब तेरी गति ठानी।
ते पुनि श्याम सहज वे शोभा अम्बरमिस अपने उर आनी।
पुलकित अंग अबहिं है आयो निरखि रूप निज देह सयानी।
सूर सुजान सखी के बूझे प्रेम प्रकाश भयो विहँसानी॥

धाम गमन काल में श्री परमानंद दास जी की चित्त वृत्ति –

राधे बैठीं तिलक सँवारति।
मृगनैनी कुसुमायुध के डरु सुभग नंद सुत रूप विचारति॥
दरपन हाथ सिंगार बनावति बासर-जाम जुगुतियों डारति।
अन्तर प्रीति स्यामसुन्दर सौं प्रथम समागम-केलि संभारति॥
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवरधनधारी।
'परमानंद' स्वामी के संगम रति-रस-मगन मुदित ब्रजनारि॥

लुकलुक कुण्ड

नाम से ही प्रथम विज्ञप्ति हो जाती है कि यह स्थान लुका-छिपी का है।

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ॥

(भा.१०/२/७)

ब्रज की सम्पूर्ण वसुंधरा गोप एवं गोपी अर्थात् सख्य एवं माधुर्यमयी लीलाओं से पूरित है। लुकलुक कुण्ड श्रीकृष्ण की नव कैशोरावस्था का क्रीड़ा स्थल है। गोपाल लाल के पास सखाओं की तो कोई कमी है ही नहीं। सेवाभावी "कनिष्ठ सखा" – विशाल, वृषभ, देवप्रस्थ, वरुथप....आदि। "पीठमर्द" – श्रीदामा, सुदामा, तोक-कृष्ण, भद्रसेन ....आदि। "प्रिय नर्म सखा" – सुबल, अर्जुन, वसंत, उज्जवल .... आदि। "विदूषक सखा" – मधुमंगल, हंस, पुष्पांक .... आदि। इनका बड़ा परिहास का स्वभाव है। "विट सखा" – भारती, कडार.... आदि। ये वाक् चातुर्य में बड़े निपुण हैं।

क्वचिद् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः ।
अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥

(भा.१०/१८/१४)

कभी तो किसी के ऊपर बिल्व फल फेंकते हैं तो कभी निशाना बाँध के जायफल, आँवला आदि फल फेंकते हैं फिर प्रिय खेल लुकाछिपी तो सम्पूर्ण दिन चलता ही रहता है। इस खेल में तो ये इतने निपुण हैं कि यदि किसी निर्जन स्थान में छिप जाएँ तो कोई देवता भी न ढूँढ पाए, किन्तु ये ही क्रीड़ा कुशल कृष्ण श्रीजी के साथ तो यह खेल खेलते ही नहीं हैं, यदि खेलते भी हैं तो खेल से पूर्व ही पराजय स्वीकार कर लेते हैं।

कारण – श्रीजी के आकर्ण विलम्बित नयन कर तल से बंद ही नहीं होते हैं, नयनों की कोर से श्रीजी सब कुछ देख लेती हैं –

कानन लौं अँखियाँ है तिहारी, हथेरी हमारी कहाँ तक फैलि हैं ।
मूँदहूँ तैं तुम देखति हौ यह कोर तिहारी कहाँ तक सकेलि हैं ॥
कान्हर हूँ कहँ ख्याल इहै तिनकौं हम हाथन हो पर झेलि हैं ।
राधे जू! मानौं भलौ कै बुरौ आंख मूदनौं संग तिहारे न खेलि हैं ॥

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ।
कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥

(भा.१०/१८/१५)

कभी लुकलुक कुण्ड में मेंढक-फुद्दी खेलते हैं, कभी एक-दूसरे की हँसी उड़ाते हैं।

"देख, तेरे मुँह के ऊपर नाक है....."

"और तेरी?"

इस प्रकार का परिहास करते हुए कभी कल्प-पादपों की टहनियों पर लटक कर झूलने लगते हैं।

झूलने को तो ये उन्नत सखाओं की भुजाओं पर लटक कर भी झूल लेते हैं।

कभी राजा बनकर दान लेने खड़े हो जाते हैं।

यद्यपि आज लुक-लुक कुण्ड ही क्या कामवन के सारे कुंडों की भूमि कुछ भ्रष्ट अधिकारियों की मिलीभगत से खातेदारी में चढ़ गयी है। इस कुण्ड को बचाने के लिए भी प्रयास 'श्री मान मंदिर सेवा संस्थान' कर रहा है। कई तीर्थो की भूमि लोगों से खरीदी गई है, ऐसा ही प्रयत्न इसके लिए भी हो रहा है ताकि इसे फिर से भगवान् की लुका छुपी की लीला का द्योतक बनाया जा सके।

स्खलिनी शिला

ततो स्खिलिनीशिलाप्रार्थनामन्त्र (पुराणसमुच्चय):-

कृष्णगोपालरुपाय ललिताबल्लभाय च।
नमो गोपीभीरम्याय शिलातीर्थस्खलाय च॥

कृष्ण गोपाल रूप, ललिता जी के प्रिय, गोपियों के रमणीक स्थल ! खिसलनी शिला आपको नमस्कार है।

स्खलिनीशिला पर श्रीकृष्ण सखाओं के साथ फिसलते थे, ग्वाल क्रीडा करते थे, कभी हारते थे, कभी जीतते थे, जब हार जाते थे तब घोड़ा भी बनना पड़ता था।

उवाह कृष्णो भगवान्श्रीदामानं पराजितः।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम्॥

(भा.१०/१८/२४)

सर्व शक्तिमान हो करके यहाँ ग्वाल बालों से हार जाते हैं, ऐसा केवल ब्रज लीला में हुआ है, और किसी अवतार में अथवा वैकुण्ठादि में ऐसी विचित्र लीला नहीं हुई।

ऐसो चटक मटक को ठाकुर तीनो लोकनहूँ में नाय॥
तीन ठौर ते टेढ़ौ दीखे।
नट की सी चलगत ये सीखे।
टेढ़ी सैन चलावै तीखे।
सब देवन को देव तऊ ये ब्रज में घेरे गाय॥

ब्रह्मा मोह कियो पछतायो ।
गर्व इंद्र को दूर भगायो ।
दर्शन को शिव ब्रज में आयो ।
ऐसो वैभव वारो तो भी ब्रज में गारी खाय ॥
बड़े बड़े असुरन को मारयो ।
नाग कालिया पटक पछारयो ।
सात दिना तक गिरिवर धारयो ।
ऐसो बली तऊ ग्वालन पै खेलत में पिट जाए ॥
रूप छबीलो है ब्रज सुन्दर ।
बिना बुलाये डोले घर घर ।
प्रेमी ब्रज गोपिन को चाकर ।
ऐसो प्रेम बंध्यो माखन की चोरी करवे जाये ॥

(रसिया रासेश्वरी)

भोजन थाली

रमत वन दुलहिन नवल बिहारी
ललिता विविध पाक रुचि लाई जेवत भोजनथाली
धोय शिला पर परसत रुचिसौं ग्रास लेत पिय प्यारी
बिच बिच चोज बढ़ावत वचनन तुंगविद्या हितकारी
लाल प्रेम सौं प्रियहि कौर लै देत करत मनुहारी
बहुत स्वाद सौं आपुन पावत जो मुख धारयो सुकुमारी
सरवर नीर आचमन लै के मुदित होत अति भारी
'वृन्दावन' हित रूप जाउं बलि विपुल केलि विस्तारी

केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ।
शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥

(भा.१०/१३/९)

भोजन थाली पर केवल सखाओं के साथ ही छाक लीला नहीं हुई है, राधा रानी और श्रीकृष्ण ने भी भोजन किया है, उस पत्थर की शिला को धोया, तुंगविद्या जी बीच बीच में परिहास कर रही हैं। श्री कृष्ण राधा रानी के मुख में कौर दे रहे हैं, बड़ी सकुचीली हैं स्वयं नहीं खा रही हैं, राधा रानी का स्वभाव लिखा है रसिको ने – “**मेरी सुहागिन लाडली बोलत हु अलसाय ।**”

संकोच में बहुत थोड़ा बोलती हैं, वही यहाँ भी है। एक एक कौर खिलाने में बड़ा मनुहार करना पड़ता है, "हे लाड़ली जी ! थोड़ी सी खीर तो खा लो, थोड़ा सा ये तो ले लो।" श्रीजी को भोजन कराते समय उनके मुख के कौर को लेकर ठाकुर जी पा जाते हैं। निर्मल जल का सरोवर वहाँ बह रहा है, इस तरह यह भी भोजन थाली की लीला है। इस स्थल पर पत्थर के बर्तन श्रीकृष्ण भोजन लीला को आज भी दर्शा रहे हैं।

ततो भोजनस्थल प्रार्थनामन्त्र (विष्णुधर्म्मोत्तरे) :-

अष्टवर्षस्वरूपाढय कृष्णपाणितलांकित ।
नमोऽस्तु भोजनस्थल सर्वदा भोगवर्द्धन ॥

अष्ट वर्षीय कृष्ण के हस्त तल से चिन्हित भोग को बढ़ाने वाले भोजन स्थल ! आपको नमस्कार है।

कामेश्वर महादेव

आखिर कामेश्वर नाम क्यों पड़ा? उनके अनेक नाम हैं – नीलकंठ, चंद्रमौलि, गंगाधर, शम्भो, शंकर किन्तु कामेश्वर होने का एक विशेष कारण है – चूंकि यहाँ पार्वती जी ने भगवान् शंकर से दुर्लभ कामनाएँ प्राप्त की थीं, वे आज तक अपूर्ण थीं, कामवन में ही पूरी होने से नाम कामेश्वर पड़ा। वह दुर्लभ कामना थी – कृष्णप्राप्ति। लक्ष्मी जी ने कहा है –

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम्।
स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम्॥

(भा. ५/१८/२०)

"जो कर्म, काल के आधीन है वह पति नहीं है क्योंकि वह दूसरे की रक्षा नहीं कर सकता है। सर्प के मुँह में पड़ा मेंढ़क भला दूसरे की क्या रक्षा कर सकता है?"

ब्रह्मवैवर्तानुसार

पार्वती जी ने भगवान् शंकर जी से राधा तत्व के विषय में जिज्ञासा की, यह कथा भगवान् नारायण ने नारद जी को सुनाई थी। भगवान् शंकर सनत्कुमार को रास का प्रसंग सुना रहे थे। सनत्कुमार व पार्वती जी दोनों प्रेम से सुन रहे थे। सभीत पार्वती जी ने जिज्ञासा की कि कुछ राधा तत्व बताएँ, पहले जब पूछा तो शंकर जी ने नहीं बताया, अतः अब डरते हुए पूछ रही हैं। "श्रुतियों में कण्वशाखा में युगल सरकार की प्रशंसा है, जिसे व्यास जी ने गाया है, वह आप हमें बताएँ।" कामेश्वर ने यह प्रश्न सुनकर मस्तक नत कर लिया और ध्यानस्थ हो प्रभु से प्रार्थना की – "प्रभो ! बड़ी गूढ़ जिज्ञासा कर बैठी हैं पार्वती। एक बार आपने यह कहने से हमें मना कर दिया, अब कहें या न? " सप्रेम प्रभु ने आज्ञा

कर दी – "शम्भो ! जब ये सती थीं, मैं जानता था ये देह त्याग करेंगी। अब पार्वती बनीं हैं, अब कोई भय नहीं है अतः सुना दो।" शंकर जी ने पार्वती जी से कहा – "वह तत्व मैं, शेष, ब्रह्मा, सनत्कुमार ही जानते हैं अन्य कोई नहीं। हे दुर्गे ! सावधानतया सुनो – राधा रानी को राधा क्यों कहते हैं 'रा' 'धा' रा माने रास, धा माने दौड़ना श्रीकृष्ण की ओर दौड़ीं अतः धावन गति के कारण नाम राधा पड़ा। **"रासे सम्भूये गोलोक"** कृष्ण प्राणाधिष्ठात्री देवी होने से भी इन्हें राधा कहा जाता है। राधारानी के बिना संसिद्धि कहीं सम्भव नहीं है 'रा' शब्द के उच्चारण से निश्चित मुक्ति मिलती है। 'धा' शब्द के उच्चारण से निश्चित कृष्ण प्राप्ति हो जाती है। 'रा' का अर्थ पाना, 'धा' का निर्वाण। राधा-कृष्ण में परस्पर आराध्य-आराधक भाव सम्बन्ध है। महालक्ष्मी जिनका आश्रय लेती हैं।

"जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि"

(भा. १०/३१/१)

लक्ष्मी को यह रस अप्राप्त रहा। महाविष्णु की जननी है ये श्रीराधा।

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥

(भा.१०/३०/२९)

श्रीजी की चरण रज को लक्ष्मी अपने पाप नाश हेतु मस्तक पर धारण करती हैं। वे राधावल्लभ ही परतत्व हैं, तुम उनकी उपासना करो, अतः वे कामेश्वर बोले गये। यह तो प्रथम कामना की पूर्ति थी। द्वितीय कामना थी पुत्र प्राप्ति की। विवाहोपरान्त प्रथम पुत्र कार्तिकेय हुए। एक समय शम्भु-दुर्गा का विहार चल रहा था, किसी कारण वश देवों ने वह रोकने की प्रार्थना की, तब महादेव का शुक्र पृथ्वी पर गिरा, पृथ्वी ने सह न पाने के कारण अग्नि में दे दिया, अग्नि भी न सह पाये, उसने सरकण्डे में फेंक दिया तब कृत्तिकाओं द्वारा पालित होने से बालक का नाम कार्तिकेय हुआ किन्तु पार्वती जी को इससे संतुष्टि नहीं हुई अतः प्रार्थना की – "आप मुझे ऐसा पुत्र दीजिए जो संसार में आज तक किसी को भी प्राप्त न हुआ हो", तब कामेश्वर ने कहा – "तुम पुण्यक व्रत करो, इसी से मनु को प्रियव्रत, उत्तानपाद जैसे पुत्र और इनके वंश में ध्रुव हुए। देवहूति को कपिल, अदिति को वामन, कुबेर को नलकूबर, सूर्य ने मनु, अत्रि ने चन्द्रमा, अंगिरा ने बृहस्पति को प्राप्त किया, शिव यह बताकर चले गये। यह व्रत करने को पार्वती जी उद्यत हो गईं। सनकादिक को पुरोहित बनाया, एक वर्ष पर्यन्त व्रत चला। बड़े-२ देव मूर्तिमान यज्ञ में आये। भगवान् विष्णु ने कहा – "शम्भो ! यह पुण्यक व्रत हजारों राजसूय यज्ञों से श्रेष्ठ है। इससे स्वयं श्रीकृष्ण तुम्हारे यहाँ गणेश के रूप में जन्म लेंगे।" यज्ञ में एक लाख लोगों को पार्वती जी ने भोजन कराया। धर्म में बड़ी शक्ति है। यज्ञान्त स्नान होने पर सनकादिक ने दक्षिणा रूप में शिव को माँगा, वे मूर्च्छित हो गईं फिर बोलीं कि एक लक्ष गाय ले लो, बोले – "न, मैं इसके साथ त्रिलोकी में घूमूँगा।" दुर्गा शरीर को छोड़ने को तैयार हो गईं। उसी समय श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। सनकादिक ने शिव को लौटा दिया। उसी समय श्रीकृष्ण शिशु का रूप बनाकर पार्वती जी की शैया पर लेट

गये। करोड़ों चन्द्रमाओं को तिरस्कृत करने वाला वह रूप था अतएव प्रथम देव गणेश हुए क्योंकि ये श्रीकृष्ण ही हैं। अतएव उनकी अग्रपूजा होती है। यहाँ कामना पूरी होने के कारण कामां में प्रभु कामेश्वर हुए क्योंकि सबकी इच्छा पूरी करने वाली आदि शक्ति की दो अद्भुत कामनाएँ उन्होंने पूर्ण की थीं ।

ततो कामेश्वरमहादेव प्रार्थनामन्त्र (लिंग पुराण):-

कामेश्वराय देवाय कामनार्थ प्रदायिने ।
महादेवाय ते तुभ्यं नमस्ते मुक्तिदो भव ॥

हे कामेश्वर ! कामनाओं और अर्थ को देने वाले महादेव आपको नमस्कार है। हे मुक्ति दान देने वाले महादेव ! आपको नमस्कार है।

ततो गयाकुण्डस्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र (भविष्य पुराण):-

तारणे दिव्यतोयाढय देवदेवांगसंभव ।
नमस्ते तीर्थराजाय फल्गुतीर्थसमाह्वय ॥

उद्धार करने में दिव्य जल से पूर्ण देवतागणों से उत्पन्न फल्गु नाम से विख्यात तीर्थराज ! आपको नमस्कार है।

यज्ञान्ते पाण्डवाः श्रेष्ठाः स्नानं चक्रर्विधानतः ।
युधिष्ठिरादिपश्चानां पंचतीर्थसरांसि च ॥

महाभारते (मात्स्ये)

यज्ञ के अंत में श्रेष्ठ पांडवो ने विधि पूर्वक स्नान किया और युधिष्ठिर आदि पाँचों पांडवों के नाम से पाँच तीर्थ उत्पन्न हुए।

ततो पंचसरस्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र :-

धर्मरूप नमस्तुभ्यं वायुपुत्र नमोस्तु ते ।
शक्रात्मज नमस्तुभ्यमश्विन्यास्तनयौ नमः ॥

हे धर्म रूप ! आपको नमस्कार है, वायु पुत्र ! आपको नमस्कार है, इंद्र पुत्र ! आपको नमस्कार है, अश्विनीकुमार के दोनों पुत्र ! आपको नमस्कार है।

ततो गोमासुरगुफा प्रार्थनामन्त्र(महाभारते) :-

कृष्णकृतार्थरुपाय सखिरुपाय ते नमः ।
मुक्ति गोमासुरस्थान घोरकल्मशनाशन ॥

कृष्ण द्वारा कृतार्थ हुए कृष्ण-सखा रूप ! आपको नमस्कार है, आप भयानक कल्मष के नाशक है।

ततो सीताकुण्डस्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र(वायुपुराण) :-

**सीतास्नपनरम्याय विश्वकर्म्मविधायिने ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं सर्वदा पुण्यवर्द्धन ॥**

सीता जी के स्नान करने से रमणीक विश्वकर्मा रचित तीर्थराज ! आपको नमस्कार है। पुण्य बढ़ाने वाले तीर्थराज ! आपको नमस्कार है।

ततो द्रोपदीसंहितानां पंचपांडवानामालोक प्रार्थनामन्त्र(वायुपुराण) :-

**धर्मपुत्रादिरुपेभ्यो पांडवेभ्यो नमोऽस्तुते ते ।
द्रोपदीसहितेभ्यस्तु तपः सिद्धिस्वरूपिणः ॥**

धर्म पुत्र (युधिष्ठिर) आदि पाण्डवों को नमस्कार है। द्रौपदी के सहित तपस्या और सिद्धि रूप वाले आपको नमस्कार है।

ततो राधावल्लभालोक प्रार्थनामन्त्र(ब्राह्मे) :-

**राधावल्लभरूपाय विष्णवे ब्रजकेलिने ।
नमः प्रगल्भकान्ताय सर्वार्थसुखदायिने ॥**

राधा वल्लभ स्वरूप विष्णु मूर्ति, हे ब्रज केलि परायण प्रगल्भता से मनोहर सभी अर्थों और सुखों को देने वाले ! आपको नमस्कार है।

ततो गोपीनाथावलोकप्रार्थना मन्त्र (मात्स्ये) :-

**सदा रासोत्सवक्रीडाविमलाय कृतार्थिने ।
गोपीनाथाय देवाय नमस्ते ब्रजकेलिने ॥**

रासोत्सव में विमल क्रीड़ा वाले, कृतार्थ रूप गोपीनाथ देव ! ब्रज के परायण ! आपको नमस्कार है।

ततो यशोदा कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र(धौम्य संहितायां) :-

**कामसेनिसुते तुभ्यं नमामि विमलात्मके ।
तीर्थरुपे नमस्तुभ्यं सर्वदा पुत्रवत्सले ॥**

कामसेनी पुत्री यशोदा जी (जो यहाँ नित्य स्नान करती थी) विमलात्मा स्वरुप आपको नमस्कार है। हे तीर्थ रूपा पुत्र वत्सला ! आपको नमस्कार है।

ततो परमोक्ष कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र(शौनकीय) :-

मोक्षाय मुक्तिरुपाय मुक्तितीर्थ नमोस्तु ते ।
नमः कैवल्यनाथाय सर्वदा मोक्षदायिने ॥

यत्रैव मुक्तिमाप्नोति नन्दगोपादयो मताः ।
कुण्डं मोक्षाभिधं जातं कामसेनिविनिर्मितं ॥

जहाँ नन्दादि गोप मुक्ति को प्राप्त हुए, मोक्ष नामक कुण्ड यशोदा जी से निर्मित है।

मोक्ष के लिये मुक्ति रूप वाले मुक्ति तीर्थ ! आपको नमस्कार है। आप कैवल्य के नाथ हैं, सदा मोक्ष देने वाले हैं।

ततो मणिकर्णिका कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र(वामन पुराण) :-

नमस्त्रिभुवनेशाय व्यापिने परमात्मने ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं मनिकर्णि नमोस्तु ते ॥

हे त्रिभुवन के ईश, हे व्यापक परमात्मा मणिकर्णिका नामक तीर्थराज ! आपको नमस्कार है।

सहस्त्र तीर्थ सरोवर

पृथ्वी के समस्त तीर्थों की इच्छा भगवान् ने काम्य वन में पूर्ण की ।

ततो सहस्र सरोवर तीर्थ स्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र(ब्रह्माण्डे) :-

सहस्रगुणपुण्याय पावनाय महात्मने ।
नमो सहस्रतीर्थाय नैर्मल्यवररूपिणे ॥

सहस्त्र गुण पुण्य रूप हे पावन स्वरुप महात्मा ! सहस्र तीर्थ सरोवर आपको नमस्कार है। आप निर्मल वर देने वाले हैं।

ब्रज में सनातन ऋषि भी आये हैं –

मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।
मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥

(भा. १/१९/१०)

भारद्वाज जी

प्रसिद्ध मुनि भारद्वाज जिनके संवाद से रामायण प्रगट हुई –

भारद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस सम दम दया निधाना ।परमारथ पथ परम सुजाना ॥

(रा.बा.का.४४)

जागबलिक मुनि परम बिबेकी । भारद्वाज राखे पद टेकी ॥

(रा.बा.का.४५)

सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं ।
आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥

(रा.अयो.का.२१३)

ततो भारद्वाज कूप स्नानाचमन प्रार्थनामन्त्र (भारद्वाज संहिता) :-

तपसां सिद्धिरूपाय सदा दुग्धमयाय च ।
भारद्वाजकृतस्नानकूपतीर्थ नमोस्तु ते ॥

तपस्या की सिद्धि रूप दुग्ध मय भारद्वाज कूप तीर्थ ! आपको नमस्कार है, भारद्वाज के स्नान से निर्मित तीर्थ ! आपको नमस्कार है।

ततो पिप्पलादाश्रम प्रार्थनामन्त्र (भारद्वाज संहिता) :-

सर्वदा मुक्तिरूपाय सर्वक्लेशापहारिणे ।
संकटमोचनार्थाय पिप्पलादर्षये नमः ॥

सदा मुक्ति रूप क्लेशों का हरण करने वाले, संकटों से मुक्ति के लिए पिप्लाद ऋषि को नमस्कार है।

दधीचि के पुत्र पिप्लाद, जिनको उनकी माँ सुवर्चा ने सती होने के लिए गर्भ से ही विदीर्ण कर, शिव के मना करने पर भी सती हो गई, उस सती सुवर्चा के पुत्र पिप्लाद जिनका पालन पीपल वृक्षों ने किया था।

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभङ्गुरैः ।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥

(भा.६/१०/१०)

अपने पिता के आदेशानुसार ६ ऋषियों (भारद्वाज पुत्र सुकेशा, शिवि कुमार सत्यकाम, गर्ग गौत्रज सौर्यायिणी, कौशलदेशी आश्वलायन, विदर्भ निवासी भार्गव, कत्य ऋषि के परपौत्र कबंधी) की जिज्ञासा रूप कष्ट को दूर किया।

कामेश्वर महादेव एवं श्री विमल कुण्ड

इन्द्र की आँखे, क्षीर सागर कुण्ड एवं श्री कुण्ड

श्री लंका एवं सेतु बन्ध

अशोक वाटिका एवं चरण पहाड़ी (कृष्ण पद चिन्ह)

भोजन थाली, दही का कटोरा एवं दूध का कटोरा

चौरासी खम्बा एवं फिसलनी शिला
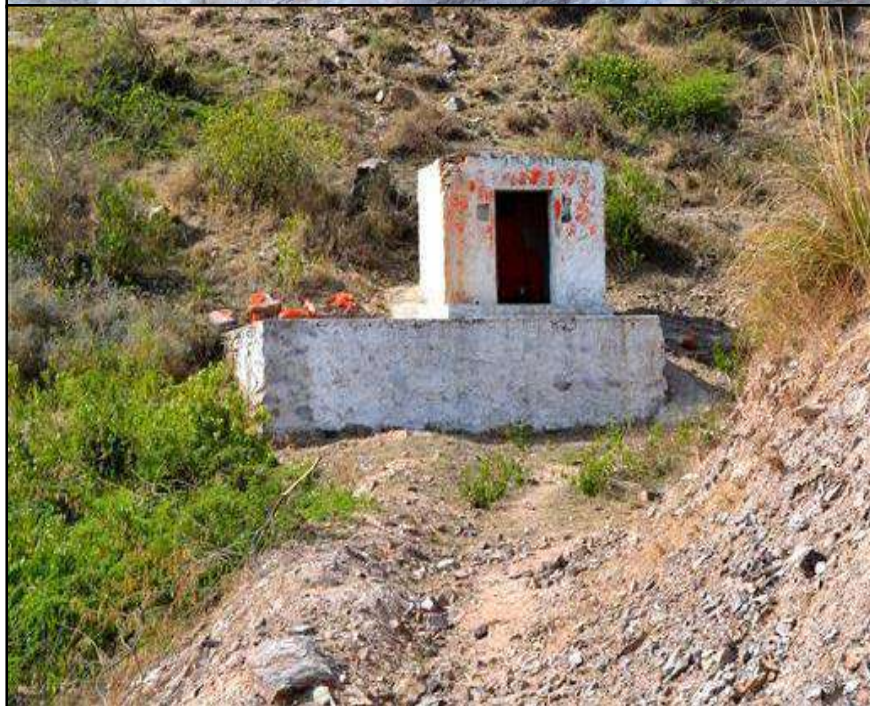
व्योमासुर की गुफा एवं हिडिम्बा व भीम का मंदिर

गया कुण्ड एवं लुक-लुक कुण्ड

अध्याय – ७३

मुक्ति वन

ततो मुक्तिवन प्रार्थना मन्त्र (आदि पुराण):-

मुक्तये मुक्तिरूपाय मुक्तिसंगवनाय ते ।
देवगन्धर्वलोकानां मुक्तिदायनमो नमः ॥

हे मुक्ति स्वरूप ! मुक्ति वन (ईसा पुर) आपको नमस्कार है, देवता और गन्धर्व लोकों को मुक्ति देने वाले हैं।

ततो मधुमंगल कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र:-

मधुमंगलकुण्डाय कृष्णकेलिविधायिने ।
गोपीश्रमविनिर्धौत पीतांभाय नमोऽस्तु ते ॥

कृष्ण की लीला विधान करने वाले, गोपियों के श्रम को दूर करने वाले, पीले जल से भरे हुए, हे मधुमंगल कुण्ड ! आपको नमस्कार है।

तिलक वन

ततो तिलक वन (तिरवारो) प्रार्थना मन्त्र(वामन पुराणे):-

मृगावत्याप्सरा यत्र श्रृंगारतिलकं करोत् ।
गोपीनां सुकुमारीणां कृष्णवेषाभिधायिनां ॥

मृगावती अप्सरा ने जहाँ कृष्ण वेषधारी सुकुमारी गोपियों का श्रृंगार तिलक किया था।

बहुतिलकवृक्षाणां रोपणं रमणं करोत् ।
तिलकाख्यं वनं जातं सर्व सौभाग्यवर्धनं ॥

बहुत से तिलक वृक्षों का रोपण और रमण किया, इसलिए तिलक वन सौभाग्य बढ़ाने वाला है।

ततो तिलक वन (तिरवारो) प्रार्थना मन्त्र(वृहद्गौतमीये):-

श्रृंगारतिलकाभ्यस्तु गोपिकाभ्यो नमो नमः ।
वनाय तिलकाख्याय वनराज नमोस्तु ते ॥
मृगावतीकृतं स्नानं गोपिकाभिः समन्विता ।
यतो मृगावतीकुण्डं विख्यातं पृथिवीतले ॥

श्रृंगार तिलक वाली गोपियों को नमस्कार है, तिलक वन वनराज ! आपको नमस्कार है।

जहाँ मृगावती ने गोपियों के साथ स्नान किया था, वह पृथ्वी तल पर मृगावती कुण्ड विख्यात हुआ।

ततो मृगावती कुण्ड स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र:-

मृगावतीकृतार्थाय तीर्थराज नमोस्तु ते ।
ताम्रवर्णपयोद्भूत ब्रह्महत्यादिघातक ॥

मृगावती से उत्पन्न तीर्थ, ताम्र वर्ण के जल से पूर्ण, ब्रह्म हत्या का नाश करने वाले ऐसे तीर्थराज को नमस्कार है।

नन्देरो

कामां सतवास मार्ग से ४ कि.मी.की दूरी पर है नन्देरो गाँव।

ततो नन्दकूपवन प्रार्थना मन्त्र (विष्णु पुराण):-

नन्दकूपवनायैव गोपानां वरदायिने ।
तापार्त्तिहरये तुभ्यं नमस्त्वाल्हादवर्द्धिने ॥

गोपों को वर देने वाले, हे नन्द कूप वन ! तापों के हरण करने वाले, आह्लाद देने वाले आपको नमस्कार है।

ततो दीर्घनन्दकूप स्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

अतिविस्तृतकूपाय नन्दादिरचिताय च ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं सर्वदा तृट्-प्रशान्तये ॥

नन्द आदि से निर्मित अत्यन्त विस्तृत कूप ! जो तृष्णा की शान्ति करने वाले हैं, आपको नमस्कार है।

ततो गो गोपाल प्रार्थना मन्त्र :-

गोगोपाल समेताय कृष्णाय वरदायिने ।
नानासुखोपवेष्टाय नमः केलिस्वरुपिणे ॥

गाय और ग्वाल बाल सहित वर देने वाले कृष्ण, आप आह्लाद स्वरूप, केलि स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है।

इन्द्रोली

ततो इन्द्र वन प्रार्थना मन्त्र :-

देवगन्धर्वरम्याय नमः शक्रवनाय ते ।
त्रैलोक्यमोहरुपाय सर्वकामार्थदायिने ॥

देवताओं और गन्धर्वों से रमणीक त्रिलोकी को मोहित करने वाले सभी पदार्थों के दाता, हे इन्द्र वन ! आपको नमस्कार है।

ततो देवता कुण्ड प्रार्थना मन्त्र :-

इन्द्रादिदेवतास्नानसंभवाय नमोऽस्तु ते ।
देवताकुण्ड तीर्थाय चिरायुः सौख्यदायिने ॥

समस्त देवताओं के स्नान से उत्पन्न, हे देवता कुण्ड नाम के तीर्थ, आपको नमस्कार है।

कनवारा

ततो कर्णबन प्रार्थना मन्त्र (स्कान्दे) :-

कर्णावासाय रम्याय यशः कीर्तिस्वरूपिणे ।
नमः कर्णबनायैव पुण्याख्याय वरप्रद ॥

कर्ण के आवास से रमणीक यश और कीर्ति रूप वाले पुण्य रूप वर देने वाले कनवारा (कर्ण वन) को नमस्कार है।

‘कण्व ऋषि’ का भी निवास होने से इसको कण्व वन कहा गया। ब्रजवासियों के गाथानुसार कन्हैया का “कर्ण-छेदन-संस्कार” यहीं हुआ था।

ततो दानकुण्डस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र :-

दशभारसुवर्णाढ्य कृतदानस्वरूपिणे ।
नमस्ते दानतीर्थाय कर्णदान समाप्नुयात् ॥

अर्थ – दस भार सुवर्ण से सम्पन्न, हे दान रूपी दान तीर्थ ! आपको नमस्कार है।

कर्ण महादानी था। महाभारत में यह बात प्रसिद्ध है भगवान सूर्य के मना करने पर कर्ण ने माता कुंती को कवच कुण्डल दान दिया था जबकि कवच कुण्डल में ही उसके जीवन की सुरक्षा थी। श्री मद्भागवत में भी कर्ण के दान की प्रशंसा है –

गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ।
परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥

(भा. १०/७५/५)

कर्ण को दान में महामना कहा गया। यहाँ भी इस कर्ण वन का नाम कर्ण के ही कारण रखा गया है और उसी के गुणों के आधार पर दान कुण्ड का निर्माण हुआ और यहाँ दान की महिमा भी है।

कदम्बखण्डी

सुनहरा गाँव के पास ही एक विशाल कदम्बखण्डी है। कदम्बखण्डी में नागा जी की भजन स्थली है। ये इतने पराक्रमी महात्मा थे कि ८४ कोस की ब्रज परिक्रमा एक ही दिन में कर लेते थे। मंगला 'गोविन्द देव जी' की करते थे और श्रृंगार आरती 'केशवदेव जी' की मथुरा में करते थे। वहाँ से चलते चलते राज भोग 'बरसाने' में करते थे। नन्दगाँव से होते हुए, वापिस राधा कुण्ड होते हुए चले जाते थे।

किसी से माँगते नहीं थे। बिना माँगे, अगर दूध मिल जाता था, तो पी लेते थे। एक बार तीन दिन तक नागा जी को जब कुछ नहीं मिला तो, तीसरे दिन स्वयं श्रीकृष्ण एक बालक के रूप में दूध लेकर पहुँच गये और अपने हाथों से दूध पिलाया। इन्होंने उनसे पानी माँगा तो नहीं दिया। स्वप्न में ठाकुर जी ने कहा कि मैं केवल दूध ही देता हूँ। पानी नहीं देता अर्थात् लौकिक रस नहीं, केवल दिव्य रस देता हूँ।

जब नागा जी की जटा झाड़ी में उलझ गयी थी, तो तीन दिन तक बिना भोजन किये और बिना पानी पिये खड़े रहे कि जिसने जटा उलझाई है, वो ही सुलझायेगा। श्रीकृष्ण आये एक बालक के रूप में कि मैं सुलझाऊँ –

तो नागा जी बोले, "नहीं, जिसने उलझाई है वो ही सुलझायेगा।"

तो श्रीकृष्ण बोले, "किसने उलझाई है? "

नागा जी बोले, "श्रीकृष्ण ने।"

तो श्रीकृष्ण बोले, "कृष्ण तो मैं ही हूँ।"

नागा जी ने जैसे-जैसे कहा कि "नहीं, तुम कैसे कृष्ण हो सकते हो? तुम्हारे पास न मयूर मुकुट है, न कुण्डल है, न बंशी है।" वैसे-वैसे श्रीकृष्ण ने मयूर मुकुट, कुण्डल और बंशी प्रकट किये।

श्रीकृष्ण जब जटा सुलझाने चले तो नागा जी ने फिर मना कर दिया और कहा कि जब तक श्रीराधा रानी आकर नहीं कहेंगी कि ये ही हमारे कान्त हैं, तब तक तुम हमें हाथ नहीं लगा सकते तब उसी समय राधा रानी ने प्रकट होकर गवाही दी, हाँ यही हमारे कान्त हैं, फिर दोनों राधा-माधव ने मिलकर जटा सुलझाई और इनका नाम पड़ा 'चतुर नागा जी'। श्याम सुन्दर ने नागा जी को हृदय से लगा लिया कि धन्य है तुम्हारी प्रीति, "राधा रानी" में तुम्हारा अनन्य प्रेम है।

यात्रा समापन

यह वही ब्रज रज है जिसके बारे में स्वयं श्री नारायण ने लक्ष्मी जी से कहा था – हे प्रिये ! यह रज हम लोगों के लिए भी दुर्लभ है –

मुरली धुनि वैकुंठ गई ।
नारायण कमला सुनि दंपति अति रुचि हृदय भई ॥
सुनहु प्रिया यह वाणी अद्भुत वृन्दावन हरि देख्यो ।
धन्य-धन्य श्रीपति मुख कहि-कहि जीवन ब्रज को लेख्यो ॥
रास विलास करत नन्द नंदन सो हम ते अति दूर ।
धनि वन धाम धन्य वन धरनी उड़ि लागे ज्यों धूर ॥
यह सुख तिहूँ भुवन में नाही जो हरि संग पल एक ।
'सूर' निरखि नारायण इकटक भूले नैन निमेक ॥

वह रज राधा रानी की कृपा से हम सबको प्राप्त हुई –

यद् राधापदकिङ्करीकृतहृदा सम्यग्भवेद् गोचरं
ध्येयं नैव कदापि यद् धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः।
यत् प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि
तत् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु॥

(रा.सु.नि. २६५)

अतः उनकी कृपा की अनुभूति पूर्वक हम सब यात्रा समाप्त करके जा रहे हैं इस अग्रिम कृपा की आशा और विश्वास के साथ अनवरत ब्रज भूमि का स्मरण बना रहे। हम ब्रज को न भूलें और ब्रज हमें न भूले और हम बाबा को न भूलें और बाबा हमें न भूले।

कदम्ब खंडी एवं श्री नागा जी की समाधि

श्री नागा जी की झाड़ी एवं पाछोल कुण्ड

अध्याय – ७४

पारस्परिक संकीर्णता से धाम पर आघात

वृन्दावन केवल पाँच कोस का ही है, इसे व्यर्थ बकवाद के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है जबकि सभी रसिकाचार्यों ने व्यापक वृन्दावन को पञ्च योजनात्मक ही उद्घोषित किया है । क्या धाम को संकुचित करना ही श्रीवृन्दावन रसोपासना निष्ठा पद्धति है? रसोपासना की मूल भित्ति का भेदन कर कोई रसिक कहाँ से बन पायेगा? संकीर्ण लोगों की भ्रांत मति मात्र अन्यान्य सम्प्रदायाचार्यों के विषय में ही उपद्रव मचा रही है ऐसा नहीं है प्रत्युत अपने सम्प्रदाय के भी स्वरूप को वे लोग अत्यन्त आश्चर्यजनक व अशास्त्रीय रूप में उपस्थित कर रहे हैं, ऐसे लोगों को अनन्य नहीं माना जा सकता, वे केवल व्यक्तिगत प्रतिष्ठा सम्बन्धी निकृष्ट धारणाओं पर ही आधारित दिखाई पड़ते हैं । आज आवश्यकता है शुद्ध चर्चा, वास्तविकता परिवेषण तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता रहित वैष्णव धर्मों का प्रचार-प्रसार । इनके अनुपालन से ही वैष्णवाचार्यों की प्रतिष्ठा, आत्मकल्याण, समाज एवं राष्ट्र का कल्याण शक्य है अन्यथा कदापि नहीं ।

वृन्दावन का वास्तविक स्वरुप

पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम् ।
कालिन्दीयं सुषुम्णाख्या परमामृतवाहिनी ॥

(बृ.गौ.तं)

भगवद् वाक्य है यह ! श्री भगवान् कह रहे हैं – यह पञ्चयोजनात्मक वन मेरा देह है, जिसमें कालिन्दी का स्थान सुषुम्णा नाड़ीवत् अत्यन्त महत्वपूर्ण है । आज संकीर्ण विचार धाराओं ने धाम को संकुचित कर दिया, शास्त्रीय वचन व भगवद्वाक्यों का ही खण्डन कर दिया । जो श्री वृन्दावन पञ्चयोजनात्मक है, उसे संकुचित करते करते केवल शहर रूप में स्वीकार कर लिया जबकि पञ्चयोजन अर्थात् २० कोस (६० कि.मी) है –

श्रीमद्भागवत में भी कहा है –

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरःसु च ॥

(भा.१०/१८/१६)

वृन्दावन एक वह वन है जिसके अन्तर्गत अनेकों वन हैं, पर्वत हैं, सर हैं, नदियाँ हैं। देखिये श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णव तोषिणी में –

"श्री वृन्दावने काननेषु तदन्तर्गतेषु काम्यकवनादिषु ... "

श्री वृन्दावन में काम्यक वन (कामा) आदि अनेकों वन आते हैं।

श्री वृन्दावन भूमौ
नन्दीश्वराष्टकूटवरसानुधवलगिरि सुगन्धिकादयोबहवोऽद्रयो वर्त्तन्ते ।

(श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णव तोषिनी टीका.भा.१०/२४/२५)

श्री वृन्दावन भूमि में नन्दीश्वर पर्वत, अष्टकूट पर्वत (अष्टमहासखियों के पर्वत), सखिगिरि पर्वत ऊँचे गाँव में, सुवर्णगिरि पर्वत (सुनहरा गाँव) सुदेवी जी का, रंकु गिरि रांकोली इन्दुलेखा जी का, इन्द्रगिरि इन्द्रोली गाँव, धवलगिरी घाटा में, सौगन्धिक पर्वत जहाँ सौगन्ध खाई थी श्री कृष्ण ने एवं अन्य बहुत से पर्वत रोहिताचल, कनकाचल, गन्धमादन, विन्ध्याचल, त्रिकूट, मैनाक आदि ऐसे बहुत से गिरि आते हैं, तभी तो वृन्दावन का स्वरूप ६० कि.मी. में है। बहुत से अज्ञ जन गिरिराज जी को वृन्दावन में न मानकर बहुत बड़ी भूल करते हैं, ऐसी नवीन कल्पित मान्यताओं को त्यागकर उन्हें कुछ शास्त्र वचन पर भी ध्यान देना चाहिए –

"अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनो गिरि"

(स्कन्द पुराण)

धन्य है यह रमणीय वृन्दावन, जहाँ श्री गिरिराज गोवर्धन हैं, श्री हरिवंश पुराण में भी यही भगवद् वाक्य है।

श्रूयते हि वनं रम्यं पर्याप्ततृणसंस्तरम् ।
नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् ॥
तत्र गोवर्द्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान् ।
भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दन्स्येव मन्दरः ॥
तत्र गोवर्द्धनं चैव भण्डीरं च वनस्पतिम् ।
कालिन्दीं च नदीं रम्यां द्रक्ष्यावश्चरतः सुखम् ॥

(हरिवंश पुराण विष्णु पर्व.८/२२,२५,२८)

भागवत जी में ठाकुर जी के वत्स पाल से गोपाल बनकर वृन्दावन में प्रवेश का वर्णन मिलता है –

"वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः"

गोपाल लाल ने वृन्दावन में प्रवेश किया, कैसा था? वह उपासनामय था। यहाँ का कण-कण राम-श्याम की उपासना करता है गोपाल जी बोले – "दाऊ दादा ! देखो तो यहाँ की लताएँ, हिरनियाँ, वृक्ष सब कितने स्वागतोत्सुक हैं ।

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥

(भा.१०/१५/८)

आपकी दृष्टि मात्र से वृन्दावन की नदी, अद्रि माने पर्वत, पशु, पक्षी सब कृतार्थ हो रहे हैं। शुकदेव जी ने तो संकीर्ण विचारों के लिए कोई स्थान ही नहीं छोड़ा। नदी, वन, गिरि, सर का वर्णन करने के उपरान्त यह भी कह दिया कि उक्त वर्णन किसी इतर स्थान का नहीं प्रत्युत वृन्दावन का व वृन्दावनान्तर्गत श्री गिरिराज जी का ही है।

एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ।
रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥

(भा.१०/१५/९)

इस प्रकार परम रमणीक वृन्दावन को देखकर श्याम सुन्दर अतिशय आनन्दित हुए। सखा समूह सहित श्री गिरिराज जी की तलहटी में गौचारण करते हुए नाना क्रीड़ाएँ करने लगे। वृन्दावन वर्णन में यदि सरिता शब्द आये तो मन स्वयमेव सिद्ध कर लेता है कि वे श्री यमुना जी हैं। इसी प्रकार गिरि, द्रोणि अथवा सानुषु शब्द श्री गिरिराज जी का उद्घोष करता है। स्पष्टतया वृन्दावन में गिरिराज जी का नाम लिया। पुनादपि संकीर्ण लोगों ने आचार्य वाणी को काटकर वृन्दावन को केवल शहर रूप में स्वीकार कर लिया, उनकी दृष्टि में श्री गिरिराज जी, श्री बरसाना, श्रीनन्द गाँव, श्री काम्यक वन ....आदि वृन्दावन में नहीं हैं तो क्या श्री मज्जीव गोस्वामी जी की वाणी असत्य है?

अथवा

यह कहा जाए कि भगवान् की सृष्टि में कुछ ऐसे भी प्राणी हैं जिन्हें दोपहर के प्रचण्ड सूर्य के अतिशय ज्वलन्त आलोक में भी अंधेरा ही अंधेरा दिखाई पड़ता है, आप सब जानते हैं कि वह कौन सा प्राणी होता है बताने की आवश्यकता नहीं।

शुकदेव जी ने स्थान-स्थान पर सावधान किया है हठवादियों को कि श्रीवृन्दावन में गिरि (गिरिराज जी), (नन्दीश्वर), (ब्रह्माचल घाटी) हैं। श्रीवृन्दावन में नदी (यमुना) हैं, श्रीवृन्दावन में वन (काम्यक वन) आदि हैं, श्रीवृन्दावन में कुञ्जें हैं (गहवर वनादि) –

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥

(भा.१०/१८/१६)

इस प्रकार राम-कृष्ण श्रीवृन्दावन की नदी, पर्वत, घाटी, कुञ्ज, वन व जलाशयों में सामान्य बालकों की सभी क्रीड़ा करते हुए विचरण करने लगे।

श्रीमद्भागवत के युगल गीत में भी वर्णन है –

सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥

(भा.१०/३५/१२)

हे ब्रज देवियो ! कन्हैया कुसुमित कुण्डल धारण कर दाऊ जी के साथ (सानुषु का अर्थ यहाँ आचार्यों ने अनेकों पर्वतों से लिया है) गिरिराज जी की शिखरों पर चढ़कर बाँसुरी बजाता है। यदि रसिक बनकर संकीर्ण बनते हो तो देखो पूर्व रसिकाचार्यों के ग्रन्थ व मत –

"राधा सुधा निधिकार" क्या कहते हैं –

अहो तेमी कुंजास्तदनुपमरासस्थलमिदं
गिरिद्रोणी सैव स्फूरति रतिरंगे प्रणयिनी ।
न वीक्षे श्रीराधां हरहर कुतोपीति शतधा
विदीर्येन्त प्राणेश्वरि मम कदा हंत हृदयम् ॥

(रा.सु.नि.२०९)

इहैवाभूत्कुंजे नवरतिकलामोहनतनो
रहो अत्रैवानृत्यदद्यितसहिता सा रसनिधिः ।
इति स्मारंस्मारं तव चरितपीयूषलहरीं
कदा स्यां श्रीराधे चकित इह वृन्दावनभुवि ॥

(रा.सु.नि.२१०)

श्रीगोवर्द्धन एक एव भवता पाणौ प्रयत्नाद्धृतः
श्रीराधातनुहेमशैलयुगले दृष्टेऽपि ते स्याद्भयम् ।
तद्गोपेन्द्रकुमार ! मा कुरु वृथा गर्वं परीहासतः
कर्ह्ये वं वृषभानुनन्दिनि ! तव प्रेयांसमा भाषये ॥

(रा.सु.नि.२२३)

ये वे ही कुञ्जें हैं, वही दिव्य रास-मण्डल है, राधा-माधव के रति रंग से प्रेम करने वाली वही श्री गोवर्द्धन पर्वत की कन्दरायें हैं (गोवर्धन वृन्दावन में ही है) जिसमें युगल ने रास विलास किया। ब्रज वृन्दावन का एक-एक पर्वत युगल सरकार की रति रंग लीला से सिक्त है और उसे वृन्दावन से पृथक् मानना महदपराध है। आचार्यों ने कहा कि वृन्दावन के इन पर्वतों पर बलराम जी के साथ सख्य रस की एवं श्रीजी के साथ श्रृंगार रस क्रीड़ाएँ सम्पन्न हुई हैं।

आचार्य श्रीमिश्र रामकृष्ण कृत प्रेम मञ्जरी टीका में देखें –

"श्रीवृन्दावन क्रीडा द्विविधा"

वृन्दावन की लीला दो प्रकार की हैं –

"एका रहोविहारात्मिका द्वितीया गोपाललीलात्मिका"

श्रीजी के साथ रतिरंग लीला ही '**रहोविहारात्मिका**' (श्रृंगार रस की लीला) है।

श्रीदाऊ जी के साथ सख्य रस की लीला ही '**गोपाललीलात्मिका**' (सख्य रस की लीला) है। कृष्णयामल ग्रन्थ में भी उल्लिखित है –

एकेन वपुषा गोपप्रेमबद्धो रसाम्बुधिः ।
अन्येन वपुषा वृन्दावने क्रीडति राधया ॥
गोपवेषधरो गोपैर्गोपीभीरसविग्रहः ।
श्रृङ्गारोचितवेषाद्यःश्रीमान् गोपालनारतः ॥
एवं प्रकाशद्वैविध्ये स्थिते नित्यविहारिणाम् ॥

(कृष्ण यामल ग्रन्थ)

श्री कृष्ण के साथ श्रीराधा रानी वृन्दावन के एक-एक वन, एक-एक गिरि, एक-एक कुञ्ज-निकुञ्ज, निभृत निकुञ्ज में अन्तरंग रास विलास करके लौटती थीं। वेणु गीत के **अक्षण्वतां फलमिदं** (भा.१०/२१/७)

तृतीय चरण **वक्त्रं व्रजेशसुतयो**ः का आचार्यों ने कृष्ण-बलराम अर्थ नहीं किया है –

"व्रजेशो नन्दः व्रजेशो वृषभानु व्रजेशश्च व्रजेशावित्येकशेषः पुनः सुतश्च सुता च सुतौ पुनः षष्ठीतत्पुरुषः यथासंख्यतया व्रजेशसुतयोरति कृष्णराधयोर्वक्र"

(श्रीमज्जीव गोस्वामी कृत वृहत्क्रमसंदर्भ टीका)

ब्रजेश श्री नन्द बाबा भी हैं और श्री वृषभानु जी भी हैं तो व्रजेश नन्द जी का सुत (कृष्ण) एवं व्रजेश वृषभानु जी की सुता (श्रीराधा) **व्रजेश सुतयो**ः – द्विवचन है तो एक तो श्याम सुन्दर और दूसरा अर्थ यहाँ जीव गोस्वामी जी ने श्रीराधारानी किया है । वक्त्रं एक वचन इसलिए कहा क्योंकि विशाखादिक सखियों को युगल में भी '**श्रीराधावक्त्रविशेषणम्**' केवल अपनी लाड़िली किशोरी ही दिखाई दे रही हैं तो ब्रज का प्रत्येक गिरि, वन, सर प्रतिदिन युगल सरकार की आंतरिक लीला का दर्शनानंद प्राप्त करता है। इस अन्तरंग लीला भूमि को छोड़कर वृन्दावन को केवल शहर रूप में ही संकुचित करना क्या नास्तिकता नहीं है? इस संकीर्णता से धाम के स्वरूप का ह्रास हुआ, समाज का ह्रास हुआ, धाम की उपासना का ह्रास हुआ। ऐसे संकीर्णवादी लोग धामोपासक नहीं निश्चित ही धाम नाशक हैं।

संकीर्णता से हुआ वृन्दावन के पर्वतों का नाश

बहुत से पर्वतों के तो नाम से भी लोग अनभिज्ञ हैं। पूज्य गुरुदेव ६० वर्ष पूर्व जब ब्रज में आये थे तो खेलन वन (शेरगढ़) में यमुना किनारे बज्रकील पर्वत था, यहाँ व्योमासुर का प्रवास

था, संकीर्णता ने खा लिया उस पर्वत के नाम-रूप-आकार को। परिणाम अब उस पर्वत का दर्शन ही नहीं है।

कुश वन (कोसी) में रैवतक पर्वत था, यह भी संकीर्णता का ग्रास बन गया, आज उस पर्वत के स्थान पर केवल आलीशान इमारतों का ही दर्शन है। लैहसर से चरण पहाड़ी के मध्य स्थित सम्पूर्ण पर्वत को ही भू-माफियाओं ने समाप्त-सा ही कर दिया है। इसी प्रकार सुवर्णांचल पर्वत का भी अधिकाँश भाग नष्ट कर दिया, नीलगिरि, सखिगिरि – ऐसे कितने ही पर्वतों का अधिकाँश भाग समाप्त कर दिया, जो अवशिष्ट है वह भी "श्री मान बिहारी" लाल की कृपा से। आचार्यों की वाणी के अनुसार ये सभी पर्वत वृन्दावन में हैं, वृन्दावन के ही हैं। आचार्यों के कथन का पालन न कर वृन्दावन से इनको पृथक् मानने के कारण ही इनकी सुरक्षा को गहरा आघात पहुँचा। "श्री मानमन्दिर सेवा संस्थान" जोकि प्रपूज्य गुरुदेव श्रीश्रीरमेशबाबा जी महाराज के संरक्षण में चल रहा है, उनके निर्देश से संस्था ने जान जोखिम में डालकर पर्वतों की सुरक्षा का कदम उठाया। पचास वर्षों तक संघर्ष करने के बाद आखिर में विजय हो गई। वृन्दावन केवल पञ्च कोस ही है इस संकीर्ण कथन ने शहर रूप वृन्दावन को छोड़कर वृन्दावन के अन्य स्थानों को अत्यन्त उपेक्षित कर दिया।

श्री व्यास जी की वाणी में वृन्दावन

श्रीवृन्दावन में मंजुल मरिवौ ।
जीवन्मुक्त सबै ब्रजवासी पद रज सौं हित करिवौ ॥
जहाँ श्याम बछरा है गायन चौंखि तृणनि कौ चरिवौ ।
हरि बालक गोपिन पय पीवत हरि आंको भरि चलिवौ ॥
सात रात दिन इन्द्र रिसानों गोवर्द्धन कर धरिवौ ।
प्रलयमेघ मघवाहि विमद करि कहि सबसों नहि डरिवौ ॥
अघ बक बकी विनाशि रास रचि सुख सागर में तरिवौ ।
कुंजभवन रति पुंज चयन करि राधा के वश परिवौ ॥
ऐसे प्रभुहि पीठ दै लोभरति माया जीवन जरिवौ ।
श्री गुरु सुकल प्रताप व्यास रस प्रेमसिन्धु उर भरिवौ ॥

श्रीवृन्दावन में ही गिरिराज लीला हुई है, ब्रह्म मोह लीला हुई है, पूतना, वत्स, बक, अघ आदि का उद्धार हुआ है, 'गर्ग संहिता' का भी यही कथन है। यह ब्रजमहिमा सर्वप्रथम भीष्म ने पांडु को सुनाई, उस समय संनन्द ने भी वहाँ बैठकर उसका श्रवण किया –

सखी हौं वृन्दावन बसिये ।
तीन लोक ते न्यारी मथुरा और न दूजी दिसिये ।
केशवराय गोवर्धन गोकुल पल-पल माँहि परसिये ।
नन्दकुमार महावन विहरत कोटि रसायन रसिये ।
'व्यासदास' प्रभु युगल किशोरी कोटि कसौटी कसिये ॥

अर्थात् – व्यास जी के मत में भी श्री गोवर्धन गिरिराज, श्रीमथुरा जी, श्री गोकुल सब वृन्दावन के अन्तर्गत ही हैं –

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥

(भा.१०/११/३६)

नमो वृन्दावनांकाय तुभ्यं गोलोकमौलिने ।
पूर्णब्रह्मातपत्राय नमो गोवर्द्धनाय च ॥

(गर्ग.सं.वृ.ख.२/१५)

संनन्द जी कह रहे हैं – "नन्द जी ! ये गिरिराज जी वृन्दावन की गोद में रहते हैं। वृन्दावन के चिन्ह स्वरूप हैं, गोलोक का मुकुट, ब्रह्म के छत्र अथवा ब्रह्म जिसके छत्रवत रक्षक हैं।" श्रीजी ने भी कहा था – "**मैं ऐसी भूमि पर नहीं जाऊँगी जहाँ वृन्दावन नहीं है**।" कौन सा वृन्दावन?

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ॥

(ग .सं.गो.खं.३/३२)

जिसमें गिरिराज जी नहीं है, यमुना जी नहीं है तो गिरिराज जी से ही वृन्दावन की पहिचान है। वृन्दावन बहुत व्यापक है जिसके अंक-पर्यंक में नाना वन, गिरि, सर, कुञ्ज, नदी आदि हैं। भागवत में देखें –

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥

(भा.१०/११/३६)

जिस समय ब्रजवासियों सहित राम-श्याम ने वृन्दावन प्रवेश किया तो मन ने अग्रिम चिन्मय लीलाओं के लिए इसी स्थान को सम्यक् समझा और आते ही आते अघ वध भी कर दिया।

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ।
व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥

(भा.१०/१२/३६)

तभी तो व्यास जी ने भी कहा –

"अघ बक बकी विनाशि रास रचि सुख सागर में तरिबो"

(व्यास वाणी)

जहाँ गिरिराज जी हैं वहीं वृन्दावन हैं 'गर्ग संहिता' में वर्णन है कि रास के मध्य श्रीकृष्ण अन्तर्धान हुए। गोवर्द्धन से ३ योजन (१२ कोस) दूर है आदिबद्री, खो ... आदि क्षेत्र अतः ये सब वृन्दावनान्तर्गत ही हैं।

भागवत जी में जगह-जगह वर्णित है श्रीकृष्ण की सख्य रस लीला, जैसे छिपा-छिपी का खेल खेल रहे हैं –

क्वचिद् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः ।
अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥

(भा.१०/१८/१४)

छिपा-छिपी का खेल हुआ है लुकलुक कुण्ड 'काम्य वन' में, तो यह भी वृन्दावन के अन्तर्गत हुआ। कभी सेतुबन्ध की लीला खेल रहे हैं। सेतुबन्ध स्थान भी काम्य वन में है। यह त्रेता कालीन सेतु तो है ही इसके अतिरिक्त द्वापर में भी यहाँ सेतुबन्ध लीला हुई है, भागवत भी कहती है –

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥

(भा.१०/१४/६१)

द्वापर में भी यहाँ काम्य वन में श्रीकृष्ण ने सेतुबन्ध क्रीड़ा की है। ये सब वृन्दावन के अन्तर्गत वनों (काम्य वनादि) की ही लीला है –

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥

(भा.१०/३०/४)

वृन्दावन में हो रहे रास के मध्य से जब श्रीकृष्ण अन्तर्धान हुए तो वहाँ एक वन में गोपियों ने ढूँढ़ा, ऐसा शुकदेव जी ने नहीं कहा 'वनाद्वनम्' अर्थात् वन-वनान्तर में गोपाङ्गनाओं ने अन्वेषण किया –

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥

(भा.१०/११/२८)

वृन्दावन में अनेकों छोटे-छोटे वन हैं। वहाँ की घास, वहाँ के पर्वत एवं नई-नई हरी भरी वनस्पतियाँ गौधन के लिए बहुत हितकारी हैं, गोप-गोपी और गायों के लिए वह बड़ा अनुकूल स्थान है। कौन से वन हैं वे?

श्रीधर स्वामी जी की वाणी में वृन्दावन

श्रीधर स्वामी जी महाराज ने भी कहा 'भावार्थ दीपिका' में –

"नवानि काननान्यवान्तराणि विद्यन्ते यस्मिंस्तत्" ।

वृन्दावन वह समष्टि है जिसमें अनेकों व्यष्टि वन हैं।

कच्चित्कुरबकाशोक नागपुन्नागचम्पकाः ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥

(भा.१०/३०/६)

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥

(भा.१०/३०/७)

यहाँ जो पुष्पों के नाम दिये हैं वे एक-एक वन के द्योतक हैं।

श्री प्रबोधानंद जी की वाणी में वृन्दावन

श्री प्रबोधानंद सरस्वती जी महाराज ने 'वृन्दावन शतक' ग्रन्थ में कहा –

जाति-काननयूथिका-वन-नवप्रोत्फुल्लमल्लीवनै
र्वासन्ती-नवकेतकीवन-नवश्रीमालतीकाननैः ।
जीवन्तीवनझिण्टिका-नव-लसच्छेफालिका काननैः
रुन्मीलन्नवमालिका-नववनैः सुस्वर्णयूथीवनैः ॥

(शतक ३/१०१)

वृन्दावन महिमामृतकार ने तो अपने सत्रह शतकों में से लगभग प्रत्येक शतक में वृन्दावन की पहचान पर्वतों, सरो, नदियों, कुञ्जों, पुष्करिणियों, वापियों, पुष्प वाटिकाओं से बताई है –

श्रीमद्वृन्दावनेऽस्मिन् कति कति नु सरः सिन्धु वापी तड़ागा
राधाकृष्णांगरागाञ्चितमधुरजला दिव्यदिव्या न सन्ति ।
आश्चर्याः केलिसाराः कति कति न मणिस्वर्णभूभृत्किशोराः
प्रोज्जृम्भन्ते न भासः क्षितिषु कति महामोद-मेदस्विनीषु ॥

(शतक ३/७५)

महामधुर गुल्मकद्रुमलता-महामाधुरी
धुरीण-धरणीतलं सुमधुरालि पित्सम्मृगम् ।
महामधुरता धुरोब्धुरसवः सरिद्भूधरं
महामधुरभावदं मधुरिमैव वृन्दावनम् ॥

(शतक ५/३४)

प्रेमानन्दरसातिविह्वलतमे नानाचमत्कारभृद्
दिव्यानेकमणिस्थले बहुलसद्वल्ली द्रु गुल्मादिके ।
दिव्यै पक्षिमृगैः सरोवरसरिच्छैलादिभिश्चाद्भुते
श्रीवृन्दाविपिने कदानु ललितैकात्मयं किशोरं भजे ॥

(शतक ६/१०)

चिज्ज्योतिर्मयभूमि चिन्मयलतावल्लिद्रुमं चिद्घन
स्फुर्जत्पक्षिमृगं चिदेकरसवार्यापूर्णफुल्लत्सरः ।
चिद्रू पाद्रि-नदि तड़ाग-मणि-धात्वम्भोधरन्तुस्फुर
न्नाना-मञ्जु-निकुंज पुंजमिह चिद्धामैव वृन्दावनम् ॥

(शतक ६/२६)

दिव्यश्रीपारिजाताद्यतिरुचिरवनैः शोभमानामनन्तै
रश्रान्तस्त्वं लु सञ्चिन्तय हरिचरणैकांतभावं वहद्भिः ।
श्रीमद्वृन्दाटवीं तां सकलसुरगणैर्वन्दितामिन्दुकोटि
ज्योत्स्नैकाम्भोधि – मग्नामुरुभिरुपनिषद्वृन्द वृत्ताप्यगम्याम् ॥

(शतक ६/९४)

नीरन्ध्रं तृणगुल्मपादप – लताद्यानन्दसच्चिद्घनैः
श्रीराधारतिकेलिकुंजनिकरैरानन्दपुञ्जैर्वृतम् ।
दिव्यानेकसरःसरिद्गिरिवरं दिव्यैर्विहंगैर्मृगै
श्चित्रं मंजुलगुञ्जभृंगपटलं पश्यामि वृन्दावनम् ॥

(शतक ८/९३)

नानावर्णमणिच्छटाम्बुधिघनं वल्लिद्रुमैः शोभितं
शाखापल्लवपत्रगुच्छमुकुलैः पुष्पैः फलैश्चाद्भुतैः ।
नानारत्नमयैः खगैर्मृगकुलैः कीरैर्मयूरः पिकै
र्गुञ्जद्भृंगगणैः सरोवर – सरिच्छैलादिभिश्चाद्भुतम् ॥

(शतक ९/४९)

सन्तानकल्पद्रुमपारिजात मन्दारकानां हरिचन्दनस्य ।
दिव्यै वनैश्चिन्तय चारु वृन्दावनं महाचिद्रसचन्द्रिकौघम् ॥

(शतक १४/११)

जयति जयति वृन्दारण्यमानन्द सिन्धो
रनुपममिव सारं शारदाकोट्यकथ्यैः ।
खग मृग तरुवल्लीकुञ्ज वापीतड़ाग
स्थलगिरि ह्रदिनीनामद्भुतैः सौभगाद्यैः ॥

(शतक १७/६)

शाखीन्द्रैः कोटिकल्पल्पद्रुम परममहावैभवैः सात्वत
श्रुत्युद् गानोन्मत्त कीर प्रमुख खगकुलैः कृष्णरंगैः कुरंगैः ।
दिव्यैर्वापी तड़ागैरमृतमय सरः सत्सरिद्रत्नशैलैः
कुञ्जैरानन्दपुञ्जैरिव कलय महामञ्जु वृन्दावनं भोः ॥

(शतक १/४५)

प्रोद्यञ्चत् पिकपञ्चमं प्रविलसद् वंशीसुसंगीरकं
शाखाखण्ड शिखण्डि ताण्डवकलं प्रोल्लासिवल्लीद्रुमम् ।
भ्राजन्मञ्जु निकुञ्जकं खगकुलैश्चित्रं विचित्रं मृगै
र्नानादिव्यसरः सरिद् गिरिवरं ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

(शतक १/७)

वापीकूपतड़ाग कोटिभिरहो दिव्यामृताभिर्युतं
दिव्योद्यत्फल-पुष्पवाटिकमनन्ताश्चर्यवल्लीद्रुमम् ।
दिव्यानन्तपतन् मृगं वनभुवां शोभाभिरत्यद्भुतं
दिव्यानेक निकुञ्जमञ्जुलतरं ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

(शतक १/१८)

प्रथम शतक का यह १८वां श्लोक बड़ा विलक्षण है, जिसमें ग्रन्थकार कहते हैं कि श्रीवृन्दावन कोटि-कोटि सरोवरों, कूपों, तड़ागों व पुष्प वाटिकाओं का ही समूह है। वृन्दावन शहर मात्र की स्वीकृति पर इतने सरोवर कहाँ दिखाओगे? इतने वन कहाँ दिखाओगे। श्रीजी के कर से निर्मित गहवर आदि वाटिका –

"नित्यकेलि विलासेन निर्मितं राधया स्वयम्"

जो स्वयं श्रीजी ने ही अपने हाथों से बनाई, इन सबको यदि स्वीकार नहीं किया जाए तो वृन्दावन का स्वरूप क्या केवल इमारतों, आलीशान कोठियों में ही माना जायेगा?

इतने पर्वत, इतने सर, इतनी कुञ्जें केवल पाँच कोस की संकुचित भूमि में भला सम्भव कैसे है? अतएव इन सबका समायोजन शास्त्रीय मत पञ्च योजनात्मक वृन्दावन ही करेगा संकीर्ण विचार नहीं। यही रसिकाचार्यों की मान्यता है, भागवत जी का व अन्य शास्त्रों का भी मत है और यही समीचीन है। शेष सब कपोल कल्पना व हठवादिता है।

कैसी विडम्बना है! संकीर्ण मति आचार्य वाणी पर आक्षेप करने लगी है।

प्राचीन रसिकों में परस्पर कितना प्रेम था, इससे ज्ञात होता है जैसे श्रीव्यास जी महाराज ने श्री प्रबोधानंद जी के विषय में स्वयं गाया –

"श्री प्रबोधानंद से कवि थोरे"

श्री प्रबोधानंद जी ने राधा वल्लभ लाल का यश गाया।

"जिन राधावल्लभ की लीला रस में सब रस घोरे"

एक ही सिद्धांत, एक ही भजन परिपाटी इस मतैक्य से ही प्रेम प्रकटा, प्रसारित हुआ किन्तु नासमझों ने भगवद्विग्रहों में ही भेद कर दिया, आचार्य वाणियों में भेद पैदा कर दिया, कैसी विडम्बना है।

श्री हिताचार्य जी की वाणी में वृन्दावन

"देख सखी राधा पिय केलि।
ये दोउ खोर खिरक गिरि गहवर विहरत कुमर कंठ भुज मेलि ॥"

श्री हरिदास जी की वाणी में वृन्दावन

"हमारो दान मारयो इन ।
रात बिरात काहू की बेटी ॥"

(केलिमाल.६२)

दिव्यातिदिव्य श्री वृन्दावन

तदनन्तर ब्रह्ममोह भी वृन्दावन में हुआ।

सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोऽपश्यत् पुरःस्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥

(भा.१०/१३/५९)

विधि के व्यामोह को भंग करने के लिए दिव्य वृन्दावन का दर्शन कराया जिसमें ऐश्वर्य तिरोहित कर क्रीड़ा कर रहे थे हरि। जैसे ही ऐश्वर्य प्रकट हुआ –

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति
चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥

(भा.१०/१३/५७)

विधि तो मृतप्राय हो गये

ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ।
कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥

(भा.१०/१३/५८)

बड़ी कठिनाई से जीवित हुए, नेत्र खोल सके फिर दिव्यातिदिव्य श्री वृन्दावन का दर्शन हुआ। कैसा है यह?

श्रीशुक उवाच
एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ।
रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥

(भा.१०/१५/९)

इस वृन्दावन में लीला विहारी की ललित लीलाओं का प्रकाश हो रहा है।

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥

(भा.१०/१५/८)

इस दिव्य वृन्दावन में अद्रयः(बहुवचन का प्रयोग है) अनेकानेक पर्वत हैं। संकीर्ण मतावलम्बियो! तुम एक सीमित स्थान में बहुत से पर्वत कहाँ से सिद्ध करोगे? सिद्धि के लिए जीव गोस्वामी जी आदि का मत मानना ही होगा। वृन्दावन को व्यापक मानना ही होगा।

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः।
यत्रास्ते भगवान् साक्षाद् रामेण सह केशवः॥

(भा.१०/१८/३)

शुकदेव जी कहते हैं – "इस वृन्दावन (नन्द गाँव, गोकुल) में श्रीकृष्ण रहे, समस्त गोप क्रीड़ाएँ कीं अब देखो न, श्रीकृष्ण यहाँ नृत्य कर रहे हैं"।

गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥

(भा.१०/१८/११)

कृष्ण कृपालब्ध अधिकारी सुरगण ग्वाल-वेष में आते हैं, राम-श्याम का पूजन करते हैं।

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितःप्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेंद्रलीलः ॥

(भा.१०/३३/२४)

रास लीला काल में भी यह देववृन्द आया है एवं अनवरत पुष्प वृष्टि की है।

देवागमन का तो स्थान-स्थान पर वर्णन मिलता है।

व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥

(भा.१०/३५/३)

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥

(भा.१०/३५/१५)

युगलगीत में भी चर्चा मिलती है, देवों के तीन टोल आये हैं।

आचार्य वाणी –

शक्रपुरोगस्तत्सहितलोकपालादयो देवजातयः शर्वपुरोगस्तत्सहित-देवीस्कन्दगणेशादयस्तद्गणाः
परमेष्ठिपुरोगास्तत्सहितचतुःसननारदसप्तर्षिप्रजापतिगणादयः ।

परमेष्ठीटोल – सनकादिक, नारद जी, सप्तर्षि, प्रजापतिगणादि।

शक्रटोल – अन्य देव व लोकपाल आदि।

शर्वटोल – पार्वती जी, कार्तिकेय जी, गणेश व अन्य गणादि।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥

(भा.१०/२१/१०)

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविविक्तगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥

(भा.१०/२१/१२)

वेणु गीत में भी चर्चा है –

इसी वृन्दावन में कृष्ण ने आँख-मिचौनी खेल खेला जिसमें काम्यवनान्तर्गत लुकलुक कुण्ड का ग्रहण किया गया है। कभी नृपानुकरण क्रीड़ा कर रहे हैं, कहीं झूलन लीला तो ये समस्त लीलाएँ कहाँ हुई हैं?

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥

(भा.१०/१८/६)

कुञ्जों में, काननों में, नदियों के तट पर, गिरि की शिखरों पर। यदि वृन्दावन से विस्तृत ब्रज का ग्रहण नहीं करोगे तो कहाँ दिखाओगे इन लीला स्थलियों को? श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा –

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥

(भा.१०/२४/२४)

बाबा ! हमारे पास न ग्राम है न जनपद ही। हम तो वन व पर्वतों के निवासी हैं। सीमित वृन्दावन में कहाँ हैं पर्वत? कहाँ हैं अनेकों वन जिनमें सख्य, श्रृंगारादि की लीलाएँ हुईं।

सुदृढ भव में फँसी संकीर्ण बुद्धि

आज सुदृढ़ भव में फँसी संकीर्ण बुद्धि ने रसिक महापुरुषों की वाणी पर ध्यान देना छोड़ दिया।

पूज्य बाबा महाराज प्रारम्भ में जब ब्रज में नए-नए आये थे तो उनके पूज्य गुरुदेव बाबा श्रीश्री प्रियाशरण जी महाराज ने कहा –

"तीन प्रकार के भव होते हैं" –

१. **भव** – गृह त्याग करके साधु बन गए तो भव से मुक्त हो गए।
२. **दृढ़ भव** – देहाभिमान का छूटना, कामादि विकारों का छूटना दृढ़ भव से मुक्ति है।
३. **सुदृढ़ भव** – राग-द्वेष व साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त होना ही सुदृढ़ भव से निर्मुक्त होना है।

मुक्त होना तो दूर रहा यह विवाद इतना बढ़ जाता है कि संकीर्ण बुद्धि आचार्यों पर भी आक्षेप करने लग जाती है। आज अनन्यता की आड़ में मात्र आलोचना-प्रत्यालोचना, पारस्परिक साम्प्रदायिक द्वेष का ही नर्तन-दर्शन हो रहा है। इसलिए प्राचीन महापुरुषों ने खीझ कर अपशब्द (गाली) का भी प्रयोग संकीर्ण बुद्धि के प्रति किया है –

जगत में पैसन ही की मांड़ ।
पैसन बिना गुरु को चेला खसमैं छाँड़ै राँड ॥
- - - - - - - - - - - - - - -
धीरज धर्म विवेक सौचता दई पंडितन छाँड ॥
संत महंत गाम के आमिल करत प्रजा को दाँड ।
'भगवत रसिक' संग बिन सबकी कीन्हीं कलिजुग भाँड ॥

(भगवत रसिक जी)

कलियुग का प्रभाव

कलियुग के प्रभाव से आज धाम का स्वरूप विकृत दिखाई पड़ रहा है जैसा कि महापुरुषों ने कहा –

जेते हरि के धाम काम क्रोध क्रीड़ा करें ।
भगवत या कलिकाल में कहो जीव कैसे तरें ॥

भागवत माहात्म्य में भी यही कहा –

अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥

(भा.मा. १/७२)

तीर्थों में ऐसे अत्युग्र भूरि कर्माओं का निवास है जिनको देखना अथवा जिनसे बोलना भी भयकारक है –

सद्योगीन्द्रसुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्तयः
सर्वेप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने संगता ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्यदृश्याश्च ये
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(रा.सु.नि.२६४)

धन-धन वृन्दावन के बामन ।
'अभयराम' ये हू बड़भागी बामन है कि रावन ॥

प्राचीन संतों का ऐसा कथन है कि ब्रज में ब्रजवासी, ब्रज हाँसी, ब्रजनाशी, एवं ब्रज फाँसी ये चार प्रकार के ब्रजौकस पहले भी थे और अब भी हैं। द्वापर में ब्रज हाँसी, ब्रजनाशी, ब्रज फाँसी तो कंस, पूतना, अघ, बक, वत्स, प्रलम्ब, धेनुकादिक असुर थे और वर्तमान में जो इनके अनुगामी हैं वे ब्रजनाशी, ब्रज हाँसी व ब्रज फाँसी हैं। सच्चे ब्रजवासी तो कुछ ही हैं।

ऐसी स्थिति में धामोपासक धाम में रहकर अपनी साधना किस प्रकार से चलावे जबकि वर्तमान काल में ही नहीं प्रह्लाद जी के समय में भी धर्म अपने सभी अंगों के साथ व्यापार बन गया था –

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणांवार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥

(भा.७/९/४६)

वर्तमान में भी सर्वत्र अर्थ की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है अतः व्यास जी ने कहा इस प्रकार से वृन्दावन में रहने से क्या लाभ –

कहा भयो वृन्दावनहि बसै ।
जौलगि व्यापतमाया तौ लगि कह घरतें निकसै ॥
धन मेवा कौ मन्दिर सेवत करत कोठरी विषै रसै ।
कोटि कोटि दंडवत करै कह भूमि लिलाट घसै ॥
मुँह मीठे, मन सीठे कपटी वचन रचन नैननि विहसै ।
मन्त्र ठगोरी कबहुँ न तन्त्र गद मानत विषय डसै ॥
कञ्चन हाथ न छुवत कमण्डल मै मिलाय विलसै ।
'व्यास' लोभ रति हरि हरिदासनि परमारथहि खसै ॥

धन का धर्म पर प्रभाव

भागवत का प्रथम सिद्धांत है –

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥

(भा.१।२।९)

धर्म का लक्ष्य धन नहीं है, धन को ही लक्ष्य करके चलने वाला न वक्ता है, न श्रोता है। भागवत कथन व श्रवण की शर्त है –

कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः ।
यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्धते ॥

(स्क.पु. भा.मा.४/३९)

वक्ता भी कृष्णार्थी हो और श्रोता भी कृष्णार्थी हो तब भागवत रस प्रवाहित होगा। आज रस के स्थान पर साम्प्रदायिक संकीर्णता विशेषतः अशेष-विशेष रस निधि में विष का सम्मिश्रण कर रही है। इस विषम गति से प्रतिस्पर्धा, द्वंद्व व अपने को श्रेष्ठ रसिक सिद्ध करने की सभी कुरीतियों को अपनाया जा रहा है और स्थिति यह हो गई है –

व्यास जी का पद है –

कहत सुनत बहुतै दिन बीते भगति न मन में आई ।
श्याम कृपा बिनु साधु संग बिनु कहि कौने रति पाई ॥
अपने-अपने मत मद भूले करत आपनी भाई ।
कह्यौ हमारौ बहुत करत हैं बहुतन मे प्रभुताई ॥
मैं समझी सब काहू न समझी मैं सब हित समझाई ।
भोरे भगत हते सब तबके हमरे बहु चतुराई ॥
हमही अति परिपक्व भये औरनि के सबै कचाई ।
कहनि सुहेली रहनि दुहेलि बातनि बहुत बड़ाई ॥
हरि मन्दिर माला धरि गुरु करि जीवन के सुखदाई ।

दया दीनता दास भाव बिनु मिलैं न 'व्यास' कन्हाई ॥

यही दुर्दशा सर्वत्र देखने को मिल रही है –

श्री सूरदास जी ने भी यही कहा –

"किते दिन हरि-सुमिरन बिन खोए ।
तिलक लगाय चले स्वामी है विषयिनि के मुख जोए ॥"

गोस्वामी श्रीतुलसी दास जी महाराज ने भी कहा –

"तुलसी देख सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर"

(रा.बा.का.१६१ख)

स्वामी श्री हरिदास जी ने सावधान करते हुए कहा –

लोग तौं भूलैं भलें भूलैं तुम जिनि भूलौ मालाधारी ।
अपनों पति छाँड़ि औरनि सों रति ज्यौं दारनि में दारी ॥
स्याम कहत ते जीव मोते बिमुख भये सोऊ कौन जिन दूसरी करि डारी ।
कहि (श्री) 'हरिदास' जग्य देवता पितरनि कों स्त्रद्धा भारी ॥

श्री कबीर दास जी महाराज ने तो अपने प्रत्येक पद में "**कहत कबीर सुनो भई साधो**" साधो ही सम्बोधन रखा।

कलिकाल के आधुनिक रसिक

श्रेष्ठ रसिक बनने की होड़ मच गई है वृन्दावन में इसीलिए व्यास जी ने लिखा –

"भोरे रसिक हुते पहले के, हमरे अधिक चतुराई।" पूर्व रसिकाचार्यों को तो भोरा बताते हैं और स्वयं को चतुर और इसकी सिद्धि में ब्रज लीला, निकुञ्ज लीला में जो जितनी बड़ी दीवार खींचता है वह उतना ही बड़ा रसिक माना जाता है। बड़ा विस्मय है कि रसिकों की वाणी में ही आक्षेप करने लग गए।

मत्कंठे किं नखरशिखया दैत्यराजोस्मि नाहं
मैवं पीडां कुरू कुचतटे पूतना नाहमस्मि ।
इत्थं कीरैरनुकृतवचः प्रेयसा संगतायाः
प्रातः श्रोष्ये तव सखि कदा केलिकुंजे मृजंती ॥

(रा.सु.नि.१६३)

यहाँ ग्रन्थकार ने पूतना लीला, तृणावर्त लीला को माना है और श्रीजी कह भी रही हैं तथापि लोगों की हठवादिता बनी हुई है।

स्वामी श्रीहरिदास जी ने स्पष्ट साँकरी खोर, गहवर वन, बरसाना की लीला गाई है –

हमारो दान मारयो इन अथवा **प्यारी जू आगे चल गह्वरवन भीतर जहाँ बोले कोइल री**

श्री हिताचार्य जी ने भी गाया – **"चलो वृषभानु गोप के द्वार" "ये दोउ खोर खिरक गिरि गहवर विहरत कुँवरि कंठ भुज मेलि"**

हम श्रेष्ठ रसिक हैं इसके लिए इन आचार्यों के कथन का कोई महत्त्व नहीं रहा।

श्रीगोवर्द्धन एक एव भवता पाणौ प्रयत्नाद्धृतः
राधावर्ष्मणि हेमशैलयुगले दृष्टेऽपि ते स्याद्भयम् ।
तद्गोपेन्द्रकुमार मा कुरू वृथा गर्वं परीहासतः
कर्ह्येवं वृषभानुनन्दिनि तव प्रेयांसमाभाषये ॥

(रा.सु.नि.२२३)

हिताचार्य जी ने गिरिराज लीला गाई, स्फुट वाणी में भी प्राप्त होता है –

"लाल की छवि देख सखी .... "

संकीर्ण लोगों ने धाम भगवान् का कर-पद काट दिया, धाम भगवान् का स्वरूप ही बिगाड़ दिया। धाम भगवान् के एक-एक अंग संस्थान का वर्णन है 'ब्रज भक्ति विलास' में, उसे न मानना छिन्न-भिन्न करना ही है। आज इसी उपेक्षा से ब्रज के कितने ही पर्वत नष्ट हो गए –

बरसाना वृन्दावन से अलग नहीं

बरसाना अलग है, वृन्दावन अलग है, यह 'निकुंज लीला' वालों का है, यह 'भवन द्वार लीला' वालों का है। "**निगम कल्पतरोर्गलितं**" रसमय फल श्रीमद्भागवत में वर्णित भागवत धर्मों के विपरीत जिनकी सोच है, उनके पक्ष में विभिन्न निष्ठान्तर्गत वैचित्रीमय रस का स्वरूप या रसोपासना तो अति दूर की वस्तु है, रस का शाब्दिक ज्ञान भी उन्हें नहीं है, वे तो कूप मंडूकवत अपनी निराधार धारणाओं में सिमिट कर उपासना के किसी एक अंश रूपी चावल के टुकड़े को लेकर अपने को पंसारी भी मान सकते हैं, वस्तुतः जिनका रस में लेश भी प्रवेश नहीं है, उनकी मति में संकीर्ण विचारों का उपद्रव मचना नैसर्गिक ही है।

सभी ब्रज प्रेमियों से विनय है कि सावधान रहें ऐसे वधिकों से जो धाम भगवान् को ही खण्डित करने में लगे हुए हैं, इनके पास न उपासना का कोई आधार है, न इनका शास्त्र सम्मत कोई सिद्धांत है, न शास्त्र वचनों का अनुपालन है, एक कार्य अवश्य करते हैं जो इनकी जीविका है – अनन्यता की ओट में हर प्रकार का दाँव-पेच लड़ाकर धाम स्वरूप का खण्डन करना, अपने जैसे लोगों की भीड़ बढ़ाना, सीधी- सादी जनता को भ्रांत करना बस यही इनका कार्य विशेष है।

साधुता का वास्तविक स्वरुप

प्रश्न है कि वर्तमान की इस स्थिति को देखकर धाम में रहकर उपासना कैसे हो और साधुता का वास्तविक स्वरुप क्या है?

सुधा निधिकार व रसकुल्याकार ने इसका बड़ा उत्तम उत्तर दिया है ।

ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्यदृश्याश्च ये ।
सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(रा.सु. नि.२६४)

जो अत्यन्त क्रूर हैं, पापी हैं, असम्भाष्य हैं, असंदृश्य हैं (देखने व बात करने योग्य भी नहीं है) **ऐसे लोगों में भी परम स्वाराध्य बुद्धि रखकर ब्रज में उपासना करनी होगी** । ब्रज का कण-कण राधा-कृष्णमय, हमारा इष्ट है । रसकुल्याकार का कथन है कि 'स्थापना बल' की श्रद्धा रखनी पड़ेगी । धैर्य से ब्रजोपासना होगी, श्रीमद् गीता जी में भी भगवान् ने यही कहा –

धीर कौन है?

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

(गीता २/१५)

सभी स्थितियों में जो समान है वही धीर है, कालिदास जी का भी यही कथन है –

"विकार हेतौ सति विक्रियन्ते । येषां न चेतांसि तयेव धीरः"

विकार का हेतु हो सामने और फिर भी विकारोत्पन्न न हो, वही सच्चा धीर है बस इसी धैर्य से धामोपासना एवं अंतिम लक्ष्य 'कृष्ण' को प्राप्त किया जा सकता है ।

अध्याय – ७५

ब्रजरक्षा व गौ रक्षा से होगी देश व विश्व की रक्षा

गौ खिरक को ही ब्रज कहा गया। ब्रज का एक नाम गोकुल भी है इस गोकुल ने ही कन्हैया को गोपाल बनाया, गोविन्द बनाया। गौ चर्चा ही ब्रज चर्चा का पूरक है अतएव इसकी अतिशयावश्यक चर्चा यहाँ की जा रही है।

"यत्र गावो भूरिश्रृंगाः अयासः"

(ऋग्वेद.१/१५)

जहाँ गाय हैं वहीं ब्रज है।

"व्रजन्ति गावो यस्मिन् स व्रजः ।"

भूमि के सप्त आधार स्तम्भों में से प्रथम स्तम्भ है – गौ माता।

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ॥

(स्क.पु.४/२/९०)

इस भूमि की आधार है – श्री गौ माता।

जानते हो, इस आधार पर प्रथम प्रहार किया था कलियुग ने। उस कलियुग का दमन तो कर दिया श्री परीक्षित जी ने किन्तु अब कलियुग के अनेकों बाप-दादा आ गए हैं। जो इस आधार स्तम्भ को विदीर्ण करने के लिए निर्ममता से अघ्न्या(अवध्या) गौ का वंदन के स्थान पर हनन कर रहे हैं।

श्री कृष्ण अवतार से न केवल भारत की प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व की रक्षा हुई थी। गोपियाँ कहती हैं –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥

(भा.१०/३१/१८)

कृष्ण ! तुम्हारे आने से विश्व मंगल हुआ। कैसे? तुमने गौ सेवा की। गोपालक ही गोपाल का बालक है। सम्पूर्ण संसार जानता है कि गवामृत से शुद्ध-बुद्धि, पवित्र-चरित्र का निर्माण होता है। बुद्धि यदि शुद्ध है तो राग-द्वेष, कलह-विषाद स्वतः संसार से नष्ट हो जाए, प्रेम का

संचार हो जाए। यदि आज अनाद्या अवध्या गौ का वध बंद हो जाए तो भारतवर्ष सशक्त व स्वराट् बन जाए। गो-गोपाल के सेवक का कदापि कोई अभद्र नहीं हो सकता है।

किसने नहीं की गौ सेवा?

विधि-हरि-हर ने स्वयं गौ-स्तवन किया। महदपराध होने पर ऋषियों से शप्त होकर शिवजी ने गोलोक जाकर सुरभि का स्तवन किया। सुरभि ने स्नेह पूर्वक शिवजी को गर्भस्थ कर लिया। देवगणों ने ढूँढ़ते हुए गोलोक में स्थित सुरभि से प्रार्थना की, तब सुरभि ने एक वत्स को जन्म दिया जो नीलवृषभ बोले गए। यही पंचानन थे। श्रीराम जी के जन्म के पूर्व महाराज दशरथ जी ने दस लाख गायों का दान किया।

"गवां शत सहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृप"

(वा.रा.१/१४/५०)

इस गौदान से अग्निदेव यज्ञ में प्रसाद लेकर प्रकट हुए। राम जन्मावतार के बाद पुन: महाराज दशरथ जी ने बहुसंख्यक गौदान किया।

"हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह"

(रा. बा.का.१९३)

पुन: विवाहावसर पर चार लाख गायों का दान किया।

"गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभ:"

(वा. रा.१/७२/२३)

चारि लच्छ बर धेनु मगाईं ।
काम सुरभि सम सील सुहाईं ॥

(रा.बा.३३१)

फिर वनयात्रा काल में भी गौदान किया।

"बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार"

(रा.बा.का.१९२)

गौ रक्षक राम भक्त है, गौ नाशक रावण का वंशज है क्योंकि रावण का आदेश था –

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं ।
नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥

(रा.बा.का.१८३)

राज्याभिषेक के अवसर पर राम जी ने एक लाख पयस्विनी गायों का दान किया। मानस जी में मिलता है राम जी ने करोड़ों अश्वमेघ यज्ञ किए।

"कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे"

(रा.उ.का.२४)

वे यज्ञ बिना गवामृत के नहीं होते थे। गौ यज्ञ का मूल है। अत: श्री राम जी की राजकीय गौशालाओं में असंख्य गायों की सेवा होती थी और तब वे मनोवांछित दुग्ध देती थीं।

"मनभावतो धेनु पय स्रवहीं"

(रा.उ.का.२३)

यह तो राम जी की गौभक्ति थी और गोपाल की गौभक्ति तो वाणी का विषय ही नहीं बन पाती। जब चलना सीखा तो सर्वप्रथम वत्स आश्रय ही लिया –

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥

(भा.१०/८/२४)

वत्स पुच्छ पकड़कर इस बालक ने खड़ा होना सीखा। गोबर का उबटन लगाते एवं गौमूत्र से स्नान करते। शेष इच्छा गौचारण में पूरी हो जाती, जिस समय सघन केशराशि गौधूलि से भर जाती। गोपियों ने कहा है –

उत्सवं श्रमरुचापि दृशीनामुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक् ।
दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥

(भा.१०/३५/२३)

अभी दूध के दाँत भी नहीं गिरे और वत्सचारण की हठ कर बैठे। नन्ददम्पत्ति ने विचार किया –

यदि गोपसङ्गावस्थानं बिना न स्थातुं पारय तस्तर्हि व्रजसदेशदेशे वत्सानेव तावत्सञ्चारयतामिति ।

(गोपाल चम्पू १०/११)

बड़े चंचल हैं ये दोनों। गौ दर्शन के बिना रह नहीं सकते।

आगे गाय पाछे गाय इत गाय उत गाय ।
गोविन्द को गायन में बसवो ही भावे ॥

(छीत स्वामी)

चलो वत्स चारण का तिलक तो कर ही दें। पाँचवा वर्ष पूरा होते-होते तो ये गौचारण के लिए मचल बैठे।

श्रीशुक उवाच
ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥

(भा.१०/१५/१)

कार्तिक शुक्ल अष्टमी को यह स्वीकृति भी मिल गई मैया-बाबा से फिर एक दिन गौदोहन की हठ भी कर बैठे।

गोपालानं स्वधर्म्मो नस्तास्तु निश्छत्र-पादुकाः ।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्म्मः सुनिर्म्मलः ॥
धर्म्मादायुर्यशोवृद्धिर्धर्म्मो रक्षति रक्षितः ।
स कथं त्यज्यते मातर्भीषुधर्म्मः सुनिर्म्मलः ॥

(गोविन्द लीलामृत.५/२८,२९)

उपरोक्त में उल्लिखित है कि गौचारण काल में कभी पन्हैया भी नहीं पहनी।

कैसी विचित्र है गोपाल की गौ भक्ति?

श्री सूरदास जी के शब्दों में –

दे मैया री दोहिनी दुहि लाऊँ गैया ।
माखन खाय बल भयो तोहि नन्द दुहैया ॥
सेंदुर काजर धुमरी धौर मेरी गैया ।
दुहि लाऊँ तुरतहि तब मोहि कर दै घैया ॥
ग्वालन के संग दुहत हों बूझो बल भैया ।
'सूर' निरख जननी हँसी तब लेत बलैया ॥

ऐसे एक नहीं सैंकड़ों पद प्राप्त हैं – गौचारण लीला, गौदोहन लीला सम्बन्धी गौभक्ति के।

दान लीला में मिलता है –

ब्रजाङ्गना ने कहा – "लाला कैसे छुटोगे पाप ते काहू तीर्थ हू नहिं न्हात हौं"

श्री कृष्ण ने कहा – "प्यारी गौरज गंगा नहात हौं और जपत गऊन के नाम हौं। वृषभान लड़ैती दान दै ॥"

ब्रजाङ्गना बोली – "नंदराय लला घर जान दै।"

गोपालाङ्गण कर्दमे विहरसे विप्राध्वरे लज्जसे ।
ब्रूषे गोसुत हुंकृतैः स्तुतिपदैर्मौनं विधत्से सतां ॥

(कृष्ण कर्णामृत)

बड़े-बड़े योगीन्द्रों-मुनीन्द्रों के मन्त्रों द्वारा आहूत करने पर भी बोलते नहीं हैं और यहाँ

वत्सों से पूछते हैं – "धौरी के तेरी मैया ने दूध पिवायौ कि नहीं? "

वत्स – "हूँ ऽऽऽऽऽऽ ! "

राम-कृष्ण ने जिनकी वंदना की उस गौ माता की सेवा ही सच्ची राष्ट्र सेवा व सच्ची भगवदाराधना है।

यह भगवद् संपदा (गौ) पृथ्वी के लिए वर व भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। ऐहिक हो अथवा आमुष्मिक, श्रेय सिद्धि कारक है गौसेवा।

श्री वशिष्ठ जी की गौसेवा बड़ी ख्यात है, इनको गौ तत्ववेत्ताओं का आद्याचार्य कहा। महाभारत में राजा सौदास को आपने गौसेवा धर्म का उपदेश दिया---

गौओं का नाम कीर्तन किए बिना न सोए और उनका स्मरण करके ही प्रातः उठे।

नाकीर्तयित्वा गाः सुप्यात् तासां संस्मृत्य चोत्पतेत् ।
सायंप्रातर्नमस्येच्च गास्ततः पुष्टिमाप्नुयात् ॥

(महा.भा.अनु.७८/१६)

गाश्च संकीर्तयेन्नित्यं नावमन्यते तास्तथा ।
अनिष्टं स्वप्नमालक्ष्य गां नरः सम्प्रकीर्तयेत् ॥

(महा.भा.अनु.७८/१८)

जिन श्री वेदव्यास जी का उच्छिष्ट है सम्पूर्ण वैदिक साहित्य "**व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्**" आपने भी अपने समग्र साहित्य में गौसेवा को ही प्रमुख माना, चाहे वह स्कन्द पुराण हो, भविष्य पुराण हो, पद्म पुराण हो, अग्नि पुराण अथवा महाभारत हो सर्वत्र गौ-गरिमा का ही वर्णन है। च्यवन ऋषि ने तो राजा द्वारा एक गाय दिए जाने पर कहा – "**महाराज ! आपने मुझे खरीद लिया**।"

महाराज ऋतम्भर ने अपूर्व गौसेवा की, जाबाल पुत्र सत्यकाम को गौसेवा से ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई, महाराज दिलीप ने गौभक्ति से रघु जैसे परम यशस्वी पुत्र को प्राप्त किया, जिससे वंश का नाम ही रघु वंश हो गया, नामदेव ने मृत गाय को जीवित किया। कैसा विलक्षण था उनका गौ-प्रेम। कलिकाल में भी वीर बालक शिवाजी तो शैशव से ही गौभक्त थे। गौ पर होने वाले अत्याचार को नहीं देख सकते थे। गौप्राणरक्षणार्थ अनेकों बार अकेले कसाईयों से भिड़ गए। गौवधिकों का वध भी कर डाला।

समस्त समस्याओं का निदान - गौ सेवा से

आर्थिक समृद्धि का मुख्य स्रोत है – गाय। देश की लगभग ८०% जनता कृषि जीवी है, वह कृषि पूर्णरूपेण गौ पर अवलंबित है। गोमय से बढ़ती है पृथ्वी की उर्वरा शक्ति। गोबर की खाद से उत्पन्न अन्न से न केवल शरीर अपितु मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ भी शुद्ध, स्वच्छ व शक्तिसंपन्न होती हैं।

"अन्नशुद्धौ सत्वशुद्धि, सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृति.... "

आज भी गौवंश की उपेक्षा न करके उसी से कृषि कार्य सम्पादित हो तो न गौवध हो, न जनवध। आज की मँहगाई ने जनवध कर दिया। डीजल, पेट्रोल की आए दिन मँहगाई वृद्धिरत है, क्या आवश्यकता है डीजल, पेट्रोल की? गोबर गैस से सब कार्य क्यों न किये जायें? गोबर

गैस से चलित वाहन आज तेजी से हो रहे वायु प्रदूषण पर भी रोक लगायेगा किन्तु देशद्रोहियों को बताने पर भी न अपना लाभ दिखाई देता है न देश का !

हमारी भूमि का अधिकांश भाग बंजर दिख रहा है। उससे शनैः-शनैः ऐसी स्थिति आ जाएगी कि प्रजा अन्न-दाने के लिए तरस जाएगी। चारों और दुर्भिक्ष ही दुर्भिक्ष होगा।

कलि बारहिं बार दुकाल परै । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

(रा.उ.का.१०१)

एक तो अन्न दर्शन भी बन्द, ऊपर से लुटेरे शासकों का बढ़ता कर।

भागवत में देखिये यह भविष्यवाणी –

नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिता ।
निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥

(भा.१२/३/३९)

वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ।
हीनाः पिशाचसन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः॥

(भा.१२/३/४०)

यह समय आ ही गया है। आज प्रजा को सोने तक के लिए जगह नहीं है।

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः ।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥

(भा.१२/३/३८)

कलिकाल में आज लोग मात्र अपने स्वार्थ में व धनोपार्जन में लगे हुए हैं। प्रजा के सुख-दुःख से भला उन्हें क्या प्रयोजन?

जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥

(रा.उ.का.९८ख)

अथवा

बहु दाम सँवारहिं धाम जती ।
विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ॥

(रा.उ.का. छं-१०१)

साधु वेष में भी ऐसे लोगों का प्रवेश हो गया जिनके घर में कुछ नहीं है तो चलो साधू ही बन जाएँ।

नारि मुई गृह संपति नासी ।
मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी ॥

(रा.उ.का.१००)

न प्रजा भक्षक राजा देश का कल्याण कर सकता है, न ही शिष्य भक्षक गुरु।

"स्वशान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम्"

जो राजा प्रजा का रक्त पीकर तुष्ट-पुष्ट होना चाहता है वह क्या प्रजा रंजन करेगा?

पहले राक्षस नरभक्षी थे, आज का राजा एक-दो नर की कौन कहे पूरी प्रजा का भक्षी बन बैठा। ये राजा नहीं, लुटेरे हैं।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥

(गीता.१६/९)

ये मंदबुद्धि हैं, अपकारी हैं। ऐसे क्रूरकर्मा क्या शासक कहलायेंगे? ये मात्र जगत् के हत्यारे हैं।

एक तरफ सामान्य जगत् के राजा (शासक) दूसरी तरफ अध्यात्म जगत् में ऐसे लोगों का प्रवेश जिन्होंने धर्म व देश दोनों को खोखला कर दिया।

उपदेसनि कौं गुरु गुसांई आचरनैं अधमाई ।

अथवा

जाके मन बसै काम-कामिनी धन ।
ताकैं स्वप्नै हूं नहिं सम्भव आनंदकंद स्यामघन ॥

अथवा

मत्सर बाढ़यौ भट्ट गुसांइन स्वामी व्यास कह्यो ।

(व्यास वाणी)

जो स्वयं मात्सर्य को न छोड़ पाया वह कैसा धर्मज्ञ?

गोस्वामी जी के शब्दों में –

दम दान दया नहिं जानपनी ।
जड़ता परबंचनताति घनी ॥

(रा.उ.का.१०२क)

न इन्द्रियविजय है, न दान की प्रवृत्ति, न ही दया का स्वभाव है और विवेक तो फिर बहुत दूर की बात। निरी मूर्खता व धूर्तता से दूसरों को ठगना (मोटी चिड़िया फँसाना) ही रह गया है।

धूर्तों का यह पाखण्ड भोली जनता को कृष्णोन्मुख तो नहीं किन्तु कृष्णविमुख अवश्य बना रहा है।

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः ।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥

(भा.१२/३/३८)

लोग पाखण्ड के प्रचारक हो गए हैं। अतएव धर्म निस्सार हुआ एवं देश भी निस्सार हो गया।

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ।
विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥

(भा.११/२६/२१)

श्रीभगवान् कह रहे हैं – "जो केवल विषयों का अनन्य रसिक है वह मात्र और मात्र विष्ठा-मूत्र का कीट, बैक्टीरिया (चनूना) है।"

देह गेह सम्पति सुत दारा ।
अधर गण्ड भग उरज उपासी ॥

(व्यास वाणी)

जिसके अन्दर कामादि विषयों का द्वन्द्व चल रहा है वह रसिक कहाँ, भक्त भी नहीं है।

व्यास रसिक वासों कहैं काटें माया फंद ।
हरिजन सौं हिल मिल रहैं कबहूँ व्यापै न द्वन्द ॥

(व्यास जी)

अर्थ व विषय का लोलुप वक्ता अथवा गुरु शाब्दिक ज्ञान तो दे देता है किन्तु परिणाम में इनकी स्वयं की नारकीय गति ही होती है।

हरइ सिष्य धन शोक न हरई ।
सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥

(रा.उ.का.९९)

गुरुवः बहवः सन्ति शिष्य वित्ताप हारकाः ।
तदेकं दुर्लभं मन्ये शिष्य चित्तापहारकाः ॥

शिष्य के वित्तहर्ता गुरु तो बहुसंख्यक मिल जायेंगे किन्तु चित्त तापहर्ता कोई एकाध ही सम्भव है।

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥

(भा.११/२३/१५)

धन संग्रही को कभी गुरु नहीं मिल सकता है। जीवितावस्था में धन की रक्षा-चिंता में ग्रस्त रहेगा। मृत्योपरांत तो नरक निश्चित है ही। मरने के बाद कहाँ जायेगा जब अपना ठिकाना ही निश्चित नहीं तो शिष्य का क्या करेगा? सत्यव्रत मनु ने कहा – अच्छा है कि ऐसी स्थिति में भगवान् को ही गुरु मान लिया जाए।

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥

(भा.८/२४/५१)

कम से कम गाढ़ान्धकार में प्रवेश करने से बच तो जाओगे। मानस जी में स्वयं भगवान् ने कहा –

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥

(रा.अर.का.१६)

भगवान् कह रहे हैं – मुझे ही गुरु मान लेना ऐसी स्थिति में।

महादेव जी का भी मत है –

उमा राम सम हित जग माहीं । गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥

(रा.कि.का.१२)

जीव गोस्वामी जी का मत –

"वैष्णव द्वेषी गुरुरपि त्याज्यः"

वैष्णव विद्वेष सिखाने वाले गुरु का परित्याग कर दो, जिससे समाज में द्वेष का दुष्प्रचार न हो। ऐसे गुरुजनों का परित्याग ही अच्छा है।

विषय रसास्वादी, भगवद् रसास्वादी भला कैसे हो सकता है –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

(गीता.१६/२१)

काम, क्रोध, लोभ को प्रभु ने नरक द्वार कहा, इनसे आज तक किसी को सुख नहीं मिला।

विहारिन दास सुख विषय को विमुख हृदय घर बात ।
लोहू अपने गाल को चाट श्वान इतरात ॥

अतः विषइयों से बचो, विषयी संगियो से बचो अन्यथा तमोद्वार में डाल देंगे ये विषयी पुरुष।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

(भा.५/५/२)

ऋषभ देव जी ने कहा – विषइयों का संग कभी न करना।

"विषइन को संग भूल न करिये"

जिनकी स्थिति

"बन में रहत गहत कामिनि कुच सेवत पीन उतङ्ग"

अथवा

"तन पोषत कामिनि मुख जोवत लागि काम की साट"

विषइयों को गुरु बनाकर विषय न सीख जाना।

माला तिलक स्वांग धरि हरि कौ ।
नाम बेचि धन लावत ॥
श्यामहि छाँड़त काम विवश ह्वै कामिनिहि लगी धावत ।

(व्यास वाणी)

विशुद्ध भाव से हमें गौसेवा करनी चाहिए। इसके निमित्त प्राप्त धन का दुरूपयोग हमें नारकीयता में ले जायेगा। गाय जब अपने दूध से अपना स्वार्थ नहीं रखती तो हम गौ सेवा के धन से अपनी स्वार्थ पूर्ति करें यह उचित नहीं।

"**गावो विश्वस्य मातरः**" गाय किसी व्यक्ति विशेष की नहीं सम्पूर्ण विश्व की माँ है अतः सम्पूर्ण राष्ट्र का परम धर्म है गौ वध निवारण व गौ सेवा। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के २/२६ में गौरक्षा पर राजा को पूर्ण रूपेण ध्यान देने का निर्देश किया है। अशोक के शिला लेखों में गौहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध द्रष्टव्य है।

बदाउनी ने लिखा है कि हिन्दुओं तथा जैनियों के प्रभाव से अकबर के राज्य में कोई भी गौ वध नहीं कर सकता था। बी.ए. स्मिथ ने अपने इतिहास प्र.-१०१ पर जहाँगीर के विषय में यहाँ तक लिखा है कि वह जान या अनजान में भी गौहत्यारों को फांसी पर लटकाने में नहीं हिचकता था। महात्मा गाँधी, स्वामी करपात्री जी, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, हनुमान प्रसाद पोद्दार जी (भाई जी) ने भी प्रयास किया भारत में पूर्णतः गौवध बन्द कराने का किन्तु यह देश का दुर्भाग्य है जो अंधे शासक अपने लाभ को न देख पाने के कारण विनाश की ओर बढ़ रहे हैं गौरक्षक के नाम पर गौभक्षक बन रहे हैं। ऐसी स्थति में पवित्राचार, श्री, ऐश्वर्य एवं शांति स्थापन देश में कदापि सम्भव नहीं है। जब तक भारत में गाय का आदर था, दूध-दही की नदियाँ बहती थीं, देश में शांति थी, देवता भी यहाँ जन्म लेने को लालायित रहते थे। स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी तो केवल घृत पान करने के लिए पुरुरवा के साथ भारत में बहुत दिनों तक

रही। राजा मरुत के यज्ञ में देवगण स्वयं परिवेषण कार्य करते थे, विश्वेदेव सदा सभासद बनकर रहते। गौ सेवक गोविन्द का सर्वाधिक प्रिय बन जाता है यह तो निश्चित है ही।

१०वीं शताब्दी तक भारत वर्ष गौवंश के लिए स्वर्ग की भाँति था। महमूद गजनवी के आक्रमण से (९९ से १०३० ई.) पूर्व मुसलमान सूफी संत भारत में आकर साधन करने लगे थे। गाय को बड़ा आदर देते थे। बाबर (१५२६ से १५३०) की दूरदर्शिता ने बहुसंख्यक समाज की इस बद्धमूल भावना को परखा। इस्लाम भी इस धर्म के विरुद्ध नहीं अतः भारत में गौहत्या बन्द कराई।

अकबर (१५४२-१६०५) ने भी गौवध बन्द करा दिया। १८वी शताब्दी से कानून कुछ बदलने लग गए। १९वी शताब्दी में माँस भक्षण को स्थायित्व दे दिया विज्ञान ने। इसके लिए गौवध उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगा। १९०५ में गौरक्षा का प्रश्न उठा तो यही कहा गया कि अंग्रेज मांसभक्षी हैं, इन्हें जल्द से जल्द देश से निष्कासित किया जाए। उस समय गाँधी जी ने यहाँ तक कहा – हम स्वतंत्रता के लिए कुछ समय प्रतीक्षा भी कर सकते हैं किन्तु गौहत्या होना हमें एक दिन भी सहन नहीं होगा। आज भारत स्वतन्त्र हो गया किन्तु गौवध बन्द न हुआ। जब भारतीय ही गौवध करेंगे तो इस पर रोकथाम लगाने के लिए इटैलियन या अमरीकी नहीं आयेंगे। भारत सोने की चिड़िया था एवं पुनः पूर्ववत हो सकता है क्योंकि भारत जैसी सोना उगलने वाली भूमि अन्यत्र नहीं है।

"गावो विश्वस्य मातरः" वेदों में गाय को सारे संसार की माता कहा गया। ऐसा क्यों कहा गया? क्योंकि हर व्यक्ति की माँ अलग-अलग होती है सभी की जन्मदात्री सभी योनियों में अलग-अलग होती है और वह अपने दूध से अपने शिशु का पोषण करती है। जन्मदात्री को जननी कहा गया वह जननी जन्मदात्री होते हुए भी केवल थोड़े दिन ही अपने दूध से शिशु का पोषण करती है कुछ दिन बाद उसका दूध सूख जाता है और प्राणी मात्र के पोषण के लिए गौ माता का आश्रय करना पड़ता है। जिसका दूध कभी नहीं सूखता है। मनुष्य जीवन की अंतिम श्वास तक गौ माता के दूध से पोषण होता है। जन्म देने वाली माँ सदा पोषण नहीं कर सकती है केवल अपने से उत्पन्न शिशु का पालन थोड़े दिन कर सकती है किन्तु गौ माता संसार के सभी प्राणियों का पोषण करती है। अपनी माता बच्चे से सेवा का भी स्वार्थ रखती है जबकि गौमाता निःस्वार्थ भाव से दूध दान करती है। ऐसी संसार की जननी गौ माता को मारना अपनी सैकड़ों जननियों से ज्यादा घृणित है मातृभक्ति की दृष्टि से ही नहीं कृतज्ञता की दृष्टि से भी गौ हत्या करना पाप है। अपनी माँ (जन्मदात्री) का मल-मूत्र कभी पूज्य नहीं हो सकता और वह मल रोग कारक और विषाक्त होता है। उसमें घातक रोगाणुओं की भरमार रहती है किन्तु गौमाता का गोबर मल नहीं वरन श्रेष्ठ है निर्दूषज है रोग नाशक है किसी को खुजली हुई हो गोबर में गोमूत्र मिलाकर लेप कर धूप में बैठ जाओ, सभी खुजली रोग के बैक्टीरिया नष्ट हो जायेंगे| अनुपान के साथ सेवन किया जाए तो विश्व के सभी रोगों पर गौबर-गौमूत्र से उपचार हो सकता है। गोबर से बनी खाद से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि प्राचीन

भारत को सोने की चिड़िया इसलिए कहा जाता था। भारत सोने की चिड़िया था एवं पुनः पूर्ववत् हो सकता है क्योंकि भारत जैसी सोना उगलने वाली अवनि अन्यत्र नहीं हैं।

भारत वर्ष में आज भी इतनी शक्ति है कि अकेला भारत वर्ष समग्र विश्व को शुद्ध अन्न दे सकता है। उसकी निम्न सारणी है –

देश	कुलभूमि (हेक्टेयर में)	उपजाऊ भूमि (हेक्टेयर में) (% में भी)	बेकार भूमि (हेक्टेयर में) (% में भी)
रूस	१ अरब ७० करोड़ ८० लाख	१२ करोड़ ६० लाख (७.३८%)	१ अरब ५८ करोड़ २० लाख (९२.६२%)
अमेरिका	९३ करोड़ ६० लाख	१ करोड़ ७० लाख (१.८२%)	९१ करोड़ ९० लाख (९८.१८%)
ब्राज़ील	८५ करोड़ १० लाख	५ करोड़ ३० लाख (६.२३%)	७९ करोड़ ८० लाख (९३.७७%)
चीन	९६ करोड़	१२ करोड़ ४ लाख (१२.९२%)	८३ करोड़ ६ लाख (८७.०८%)
भारत	३२ करोड़ ८० लाख	१९ करोड़ (५७.९३%)	१३ करोड़ ८० लाख (४२.०७)

विश्व की जनसंख्या ६०० करोड़ है।

१ वर्ष के लिए सारे विश्व को अनाज = ६०० करोड़ कुन्तल।

भारत में, १ हेक्टेयर भूमि में ६० कुन्तल अनाज पैदा होता है।

भारत की १९ करोड़ हेक्टेयर भूमि में ११४० करोड़ कुन्तल अनाज पैदा हो सकता है।

सारे विश्व को ६०० करोड़ कुन्तल अनाज खिला देने के बाद भी भारत के पास ५४० करोड़ कुन्तल शेष बच जाता है।

ब्रिटिश साम्राज्य की कूटनीति

अंग्रेज जिन्होंने भारत पर साम्राज्य किया था उनकी आश्चर्यजनक दो बातें ये हैं।

१. भारतीय गुरुकुल व्यवस्था २. भारतीय कृषि व्यवस्था।

ब्रिटिश राज्यपाल 'रॉबर्ट क्लाइव' ने भारत की कृषि व्यवस्था पर विस्तृत खोज की थी, इस खोज एवं ब्रिटिश नीतियों से जो परिणाम हुए वो नीचे दिए हैं –

१. भारत की कृषि में गाय की प्रथम प्रधानता है और गाय की मदद के बिना भारतीय कृषि का सम्पादन नहीं होता है।
२. भारतीय कृषि का मूल आधार है गाय उसका विलोपन करना आवश्यक है।
३. भारत में सबसे पहला कसाई खाना १७६० में आरम्भ हुआ था, जहाँ पर ३०,००० गायों को मारा जाता और लगभग एक करोड़ गाय १ वर्ष के अन्दर नष्ट हुई।
४. उसने यह अंदाज लगाया था कि बंगाल में गाय की संख्या इंसान की संख्या से अधिक है और इसी तरह की स्थिति भारत के अन्य भागों में थी।
५. भारत देश में अस्थिरता लाने के विचार से कसाई खाने का आरम्भ करने की बहुत बड़ी साजिश की गयी थी।
६. एक बार जब गाय को नष्ट किया जायेगा तब वहाँ पर गोबर से बनी खाद नहीं रहेगी और किसी तरह के रोग विनाश के लिए गौमूत्र भी नहीं रहेगा। देश को छोड़ने से पहले रॉबर्ट क्लाइव ने भारत में अनगिनत कसाई खाने खुलवा दिये थे।

कसाई खाने के बिना भारतीय कृषि की स्थिति की अद्भुत कल्पना को समझना।

१. १७४० में तमिलनाडू के आकोट जिले में ५४ कुंतल चावल की उपज एक एकड़ भूमि में हुई जहाँ पर साधारण खाद और रसायन जैसे गाय का मूत्र और गोबर का उपयोग ही किया था।
२. १९९० तक परिणाम में ३५० कसाई खाने दिन रात इस कार्य में थे, भारत में गाय लगभग नष्ट हो गयी थी और भारत को इंग्लैंड के दरवाजे खटखटाने पड़े।
३. आजादी मिलने के बाद हरित क्रांति (खाने के लिए आत्मनिर्भरता के नाम पर) भारत में रासायनिक खाद का अत्यधिक उपयोग हुआ।
४. अंग्रेजों के भारत छोड़ने से पहले एक दैनिक समाचार पत्र के संपादक ने महात्मा गाँधी का साक्षात्कार किया। एक प्रश्न के उत्तर में महात्मा गाँधी ने कहा था कि जिस दिन भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होगी उसी दिन से सभी कसाई खाने बन्द करवा दिए जाएँगे।
५. १९२९ में एक जन सभा में नेहरू जी ने कहा था कि अगर वो भारत के प्रधान मंत्री बन जाते हैं तो सबसे पहला कार्य कसाई खाने बन्द करवाना होगा।

६. लेकिन १९४७ की घटना के बाद से कसाई खाने ३५० से बढ़कर ३६,००० हो गए।
७. आज कसाई खाने का व्यापार आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के अल-कबीर और देवनार में एक समय में १०,००० मात्रा में गाय काटी जाती हैं। अब तो ये क़त्लखाने बढ़कर न जाने कितने हो गए हैं वर्तमान के आंकड़े नहीं लिखे गये किन्तु ये दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं यह तो निश्चित है ही।

इस अवसर पर भारत को जाग्रत करने के लिए ये सांकेतिक चेतावनी है। यहाँ किसी की आलोचना का दृष्टिकोण लेखक का नहीं है। भारत वर्ष में गौ भक्त व भगवद् भक्त हैं ही नहीं, ऐसा नहीं है। भारतीय सनातन संस्कृति में महापुरुष सदा रहे हैं तभी धर्म की ध्वजा आज तक फहरा रही है। पृथ्वी धरातल पर स्थित है फिर भी समग्र राष्ट्र को गौ भक्ति व भगवद् भक्ति में संलग्न न देखकर हृदय दुःख से द्रवित होता है।

पुनः, इस लेख में गौभक्ति, समाज–संसार के कल्याण की भावना रखी गयी है। विवेकियों द्वारा ही यह सम्मानित होगा, परन्तु इसके विपरीत भावना वालों के लिए तो कबीर दास जी ने कह ही दिया है –

"हाथी अपनी गैल चलत है कुकर भुसत वाको भुसवा दे"

माताजी गौशाला

२२ हजार गायों का मातृवत् पोषण कर रहे पूज्य गुरुदेव श्री बाबा महाराज का कथन है कि वस्तुतः गाय का पोषण हम नहीं कर रहे वरन् हम स्वयं गाय द्वारा पोषित हो रहे हैं। गौमाता के उपकारों को देखा जाय तो सच में वे अनन्त हैं। गौमाता व गौमूत्र का महत्त्व जान लिया जाय तो केवल गाय ही नहीं बछड़े-बैल जो उपेक्षित हैं, सम्पूर्ण गौवंश इस उपेक्षा से बच जाय। बैल से चलित जनरेटर से विद्युत् शक्ति का घर-घर में उपयोग होगा। उपेक्षा से बचेगा गौवंश। इस उपयोग से विद्युत् शक्ति तो बचेगी ही देश की आर्थिक व्यवस्था में भी डीजल का भार कम हो जाएगा। गौवंश का आधा भाग जिसका उपयोग कुछ नहीं है उसे लोग कटने भेज देते हैं। बछड़े के जन्म से हिन्दू दुःखी हो जाता है। आज 'श्री मान मंदिर' की माताजी गौशाला में लूली-लंगड़ी, असहाय गौवंश का न केवल पोषण प्रत्युत अखण्ड हरि नाम संकीर्तन द्वारा पूजन भी हो रहा है।

सौभाग्य से श्रीमाताजी गौशाला उसी स्थान पर है जहाँ वृषभानु जी की गायें बँधती थीं।

अथ दोहनी कुण्ड मन्त्र :-

रक्तनीलसिताधूम्रापीतागोदोहनप्रद ।
वृषभानुकृतस्तीर्थ नमस्तुभ्यं प्रसीद में ॥

यह दोहनी कुण्ड, महाराज वृषभानु की लाखों गायों के रहने का स्थान है, यहाँ गोदोहन सम्पन्न होता था; अर्थात् वृषभानु बाबा ने लाल, श्वेत, कजरारी व पीली गौओं को दुहकर, इस स्थल को तीर्थ बना दिया। दोहनी कुण्ड को नमस्कार है। आप मुझ पर प्रसन्न हो कृपा करें।

यहाँ गौदोहन के लिए श्रीकृष्ण आते थे।

इस स्थल के लिए तरसती रहीं इंदिरा।

कमला हू तरसत रही हम न भईं ब्रजगाय ।
राधा लेती दोहनी मोहन दुहते गाय ॥

हरिसो धेनु दुहावत प्यारी ।
करति मनोरथ पूरण मन वृषभानु महर की बारी ॥
दूधधार मुख पर छबि लागति सो उपमा अतिभारी ॥
मानो चंद कलंकहि धोवत जहँ तहँ बूँद सुधारी ॥
हावभाव रस मगन है दोऊ छवि निरखति ललिता री ॥
गौदोहन सुख करत 'सूर' प्रभु तीनिहुँ भुवन कहा री ॥

श्रीकृष्ण यहाँ श्रीजी की गैया दुहते इसलिए इसका नाम दोहिनी कुण्ड है।

उत्तिष्ठ भारत

कुम्भकरणी अवस्था में स्थित हिन्दू जाग – गौ और वृक्षों की रक्षा कर। उस दुर्लभ वृन्दावन को बनाने में सहयोग कर जिसका दर्शन विधि को भी दुर्लभ रहा। ऐश्वर्य दर्शन कराने के बाद श्री हरि ने विधि को मधुर वृन्दावन का दर्शन कराया।

सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरःस्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्य द्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥

(भा.१०/१३/५९)

जहाँ नाना निविड़ निकुञ्ज हैं वही है वृन्दाकानन। इसी प्रयास में 'श्रीमानमन्दिर' से सवा लाख वृक्षारोपण का अभियान ब्रज में आरम्भ किया गया जो जारी है | अग्रिम अभियान है देशव्यापी सवा करोड़ वृक्षारोपण का। देशव्यापी होने के बाद यह निश्चित ही विश्वव्यापी भी बनेगा। आज आवश्यकता है विश्वव्यापी योजनाओं के आरम्भ होने का और यह ब्रज में आरम्भ किया जा चुका है | ब्रज जगद्गुरु है, सम्पूर्ण विश्व को शिक्षा देता है। ब्रज गोपियों ने कृष्णावतार का यही तो रहस्य समझाया है –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥

(भा.१०/३१/१८)

इस मधुर वृन्दावन में राग-द्वेष नहीं है।

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥

(भा.१०/१३/६०)

नैसर्गिक-दुर्वैर प्राणी जैसे – सिंह-हिरण, सर्प-नेवला, बाज-कबूतर आदि वन्य पशु-पक्षी एवं मनुष्य जिनका परस्पर नैसर्गिक बैर है यह उस दिव्य वृन्दावन में नहीं है क्योंकि प्रभु के नित्य धाम में "**अजितावास द्रुतरूट्**" रूट् माने क्रोध, तर्षा माने प्यास (राग) नहीं है। जहाँ राग-द्वेष नहीं है वही है वास्तविक वृन्दावन। अतः युगल से प्रार्थना करते हैं कि हम लोगों को शक्ति दें, जिससे हम वृन्दावन को वृन्दावन बनायें, इसकी सुन्दरता, मधुरता का पारस्परिक राग-द्वेष से नाश न करें।

श्रीजी हम सबको द्वन्द्वरहित बनायें, यही याचना है।

अध्याय – ७६

महत् समर्हण

महत् समर्हण में हम सम्यक् सक्षम हो सकें यही रसीली ब्रज यात्रा के पठन-सेवन का पूर्णफल है।

महत् समर्हण है क्या?

निज इष्ट की उत्कृष्ट इज्या (सबसे बड़ी पूजा ही) महत् समर्हण है। यह पंक्ति वैष्णव समाज के लिए वेद्य-वस्तु (जानने योग्य-सिद्धान्त) है। आज वैष्णव समाज में यह न केवल मति ग्रहीत हो अपितु यह सिद्धान्त यदि क्रियात्मक रूप से अवतरित हो जाय तो संदेह नहीं कि वैष्णव जगत् व सम्पूर्ण भारत अद्भुत बल से सम्पन्न हो जाय। वह बल भी ऐसा है जिसके सामने त्रिलोक विजयी हिरण्यकशिपु भी निस्सार व मृत हो गया फिर इष्टाज्ञा भी तो यही है – **"समत्वं योग उच्यते"**

समभाव ही महत् समर्हण (अपने इष्ट की पूजा) है।

एवं

विषमता ही आसुरीभाव है।

प्रह्लाद की त्रिलोक विजयी के प्रति समत्व की शिक्षा

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात् तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥

(भा.७/८/१०)

आसुरी भाव छोड़िये पिताजी ! विषम मन ही असुर है, जिसके केलि-कलह ने आपको भी असुर बना दिया है। वस्तुतः मन को समत्व में समाहित कर देना ही इष्ट की श्रेष्ठ पूजा है।

मनु की ध्रुव के प्रति समत्व की शिक्षा

पुत्र ! सम दर्शन सीख जा फिर कुछ भी तो शेष नहीं है।

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥

(भा.४/११/१३)

प्रिय बन जाओगे प्रभु के, ज्येष्ठों के प्रति सहिष्णु, दीनों पर दया, समवयस्कों के साथ समान एवं अखिल जीवों के साथ समता के व्यवहार से।

श्री कपिल देव की समत्व की शिक्षा

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥

(भा.३/२५/२१)

तितिक्षा (सहनशीलता) है, करूणा है, प्रत्युपकारेच्छा रहित सौहार्द है सभी प्राणियों के प्रति जिनमें, वैर से भी जो वैर न करने वाले अजातशत्रु हैं, ऐसे शान्त-चित्त सन्त ही वास्तव में सन्त समाज की शोभा हैं, भागवत भूषण हैं। ऐसे भागवत भूषण थे पृथु जी –

पृथु के प्रति प्रभु के वचन

वरं च मत्कञ्चन मानवेन्द्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ।
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभि र्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥

(भा.४/२०/१६)

राजन्! इच्छित वर माँग लो मुझसे क्योंकि तुम्हारे भेद-विहीन गुण-भावों ने मुझे वशीभूत कर लिया है। विषमता-विहीन हृदय मेरा नित्य-निज-निकेतन है, मैं उसमें सदैव स्थित रहता हूँ।

यज्ञ, तप व योगादि द्वारा मेरी प्राप्ति कहीं तक असम्भव ही है, मैं समचित्तवर्ती जो ठहरा।

वैषम्य दोष के कारण सनकादिक से शप्त होकर जय-विजय धरा पर आ गिरे थे।

जय-विजय के प्रति सनकादिक के वचन

को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चै स्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ।
तस्मिन् प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहे वां को वाऽऽत्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः ॥

न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षा वात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ।
पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥

तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥

(भा.३/१५/३२,३३,३४)

श्री भगवान् की महती सेवा के फलस्वरूप जो जन इस वैकुण्ठ में निवास प्राप्त करते हैं उनका स्वभाव निश्चित भगवान् की तरह समदर्शिता का होता है फिर जब भगवान् का किसी से विरोध नहीं है, वैषम्य नहीं है तो तुम्हारे अन्दर यह कपट कैसे आया? कपट क्या है? भेद-भाव, विषमता, संकीर्ण विचार यही तो कपट है। प्रत्येक भेद-प्रचारक कपटी है, संसार का विनाशक है, हत्यारा है।

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥

(भा.८/२४/५१)

यह कपट दुरत्यय तम है, आसुरी भाव है।

चाहे वह व्यक्तिगत कल्याण की भावना वाला हो अथवा सामाजिक कल्याण की भावना वाला हो।

अथवा सार्वभौम कल्याण की भावना रखने वाला हो, कपट का नाटक जब तक दूर न करोगे तब तक रस या रसेश की प्राप्ति तो होगी नहीं, आसुरी भाव को प्राप्त होकर असुर अवश्य बन जाओगे। भगवान् के उदर में सभी जीव एक साथ स्थित हैं, उन सबका उद्गम स्थान, लय स्थान, निमित्तोपादन (ईश्वर) सब कुछ समान होने पर फिर परस्पर विषमता के दुराग्रह का स्थान भला कहाँ रह जाता है?

सनकादिक बोले –

वैकुण्ठ नाथ के पार्षदत्व को पाकर भी तुम्हारी यह मंद मति वैषम्य दोष से आक्रान्त है अतः जाओ उन योनियों में जहाँ काम, क्रोध, लोभ का प्रचण्ड-ताण्डव हो रहा है। अर्थात् भेद-भाव, विषम-मति इनका एकान्तिक परिणाम है – नारकीय गति।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

(गीता १६/२१)

काम, क्रोध, लोभ नरक के तीन द्वार हैं, कल्याणकामी को निश्चित ही इन तीनों को त्याग देना चाहिये।

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यानधाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥

(रा.अर.का.३८क)

आज वैष्णव समाज में काम, क्रोध, लोभ का जो नग्न-नृत्य चक्षु गोचर हो रहा है उसका एकमात्र कारण है – भेद-बुद्धि, विषम मति जो आज भक्तापराध, महदापराध का रूप ले रही है।

गोस्वामी जी के शब्दों में –

"जे अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥"

(रा.अयो.का.२१८)

सूरदास जी के शब्दों में –

श्री पति दुखित भक्त अपराधे ।
मम भक्तन सौं बैर करत है सकल सिद्धि मोहि सों साधे ॥
संतन द्वेष दोहिता करके आरत सहित मोहि आराधे ।
सुनो सकल वैकुण्ठ निवासी साँची कहौं जिन मानो खेद ॥
तिन पर कृपा करौं कैसी विधि पूजत पांय कंठ को छेद ।
जन सौं बैर प्रीति मोसों कर मेरो नाम निरन्तर लैहैं ।
'सूरदास' भगवंत वदत हैं मोहे भजे पै जमपुर जैहैं ॥

रसिकों का भी यही मत है –

एक सामान्य भक्त के अपराध से भी डरो –

"भक्त साधारन के अपराधहि काँपत डरनि हियौ"

इन्हीं विषमताओं में आज समस्त समाज निमज्जित है, जिसने न केवल धर्म को ही अपितु देश व समग्र संसार को भी दुर्बल कर दिया।

सुदृढ़ बनाओ, सशक्त बनाओ स्वधर्म को, समाज को, संस्कृति को, देश को, विश्व को। विषमताओं का विष न पियो न पिलाओ।

सन्देह सम्भव नहीं भागवत वाक्य में –

यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥

(भा.४/९/४७)

जल स्वभाव से अधः प्रवाही होता है, आपने देखा भी होगा नदी नीचे की ओर बहती है। उसी प्रकार मैत्री (समभाव) आदि महत्तम गुणों के कारण प्रभु जिस पर प्रसन्न हो गये उसके आगे सर्वभूतों का नत होना नैसर्गिक ही है।

विधि के वचन

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै राराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।
यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥

सर्वभूतशालिनी दया व श्रद्धा से ही प्रभु प्रसन्न होते हैं। विपुल सामग्री (५६ भोग (कुनवाडा), १०८ भोग), फूल बंगला, षोडशोपचार पूजा इत्यादि से नहीं, यदि विपुल सामग्री से ही हर्षित होते तो अधिकांशतः धनवानों को ही भगवत् दर्शन होता एवं अब तक सभी धनाढ्य भगवत् प्राप्ति कर गए होते। सर्वेश के समीप होने का सच्चा रास्ता तो यही है कि सभी पर दया की जाए, समदर्शन की भावना स्थापित की जाए।

राजर्षि चित्रकेतु द्वारा शेष-स्तवन में समत्व की शिक्षा

विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।
विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥

(भा.६/१६/४१)

जहाँ मैं-मेरा, तू-तेरा का वैषम्य दोषारोपण हो गया वह धर्म ही नहीं रहा। वह धर्म अधर्मबहुल अशुचि व क्षयिष्णु (नाशवान्) अवश्य हो जाता है। आज धर्म के मूल में ही भेद

भित्ति को खींचकर हमने संसार को मात्र अधर्म, नाशवान् धर्म व अशुद्ध धर्म की ही तो शिक्षा दी है। चूँकि भागवत धर्म तो इतना विशुद्ध है कि वहाँ तो विषम बुद्धि (मेरा-तेरा) के आग्रहों का कोई स्थान ही नहीं है।

कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ।
स्वद्रोहात् तव कोपः परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥

(भा.६/१६/४२)

ऐसा भेदोत्पादक धर्म स्वयं के लिए भी दुःखद है एवं दूसरे के लिए भी।

इससे हितसिद्धि तो सम्भव ही नहीं। ऐसे अधर्म युक्त धर्म से धर्मी का चित्त पीड़ित होता है एवं हे प्रभो ! आप रुष्ट हो जाते हैं। हमारे ऐसे धर्मों से यदि दूसरा भी दुःखी हो तो वह धर्म ही कहाँ रहा? पूर्ण अधर्म है।

बहुत सूक्ष्म है यह विषय !

कठिन है इसे समझना ! [1]

कहीं हम धर्म की धुरी से कूदकर अधर्म सरसी में तो नहीं तैर रहे !

वैष्णव समाज से अधर्म का प्रचार अनजान में भी न हो इसके लिए पूर्वाचार्यों ने पुनः-पुनः सावधान किया।

श्री हित द्वारा समत्व की शिक्षा

सेवक वाणी में काचे धर्म्मी प्रकरण, पाके धर्म्मी प्रकरण

प्रणयन श्रम का प्रयोजन इतना ही है कि धर्म-अधर्म को सम्यक् रूप से हम समझ सकें।

"निरभिमान निर्वैर निरुपम निष्कलंक जु सर्वदा ।"

(सेवक वाणी)

ऐसे महापुरुष की रस-रीति, भजन-पद्धति एवं शिक्षा तो यह है –

श्री हरिवंश जू कही श्याम श्यामा पद कमल संगी शिर नायौ – जो भी युगल का संगी है उसके आगे नमित हो जाओ और हमारी स्थिति यह है –

---

[1] श्री बाबा महाराज प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदाय के गूढ़ भक्ति सिद्धान्तों का निरूपण सरल भाषा में प्रमाण के साथ देते है। हम सब के जीवन में समत्व आ जाए यही ब्रज यात्रा का फल है।

"ते न वचन मानत गुरुद्रोही निशदिन करत आपनौ भायौ ॥"

रस में ही अशेष संक्लेश पैदा कर देते हैं।

ग्रन्थ प्रमान कै जो समुझाइये ।
तौ तब क्रोध-रारि फिर मांड़त ॥

(सेवक वाणी)

तच्छिन केश गहत मुष्टि हनि साकत शुद्ध बचावत डोलत ।
तच्छिन बोलै तू प्रेत तू राक्षस फेरि परस्पर जाति प्रमानत ॥

(सेवक वाणी)

क्रोधाधिक्य में प्रेम-रस रीति तो विलुप्त ही हो जाती है। प्रेम के स्थान पर प्रेत एवं रस के स्थान पर राक्षस आ जाते हैं।

श्री हित शिक्षा का सार

सबसौं हित निष्काम मत वृन्दावन विश्राम ।
राधावल्लभ लाल को हृदय ध्यान मुख नाम ॥

अथवा

"जो पै धरम्मी मरम्मी हौ तौ धरम्मिन सों कट अन्तर पारत ।"

यह अन्तर के अन्तरा का जब तक अंत न होगा आत्यंतिक धर्म तब तक सिद्ध न होगा।

जिन श्री हित जी ने कलि कालुष्य को नष्ट किया –

हरी सब कलिकाल की भय ।
कृपा रूप जू वपु धर्‌यो ॥

आज हम भेद पैदा करके कलहादि करके कलि-कालुष्य को बढ़ाते हैं तो यह तो आचार्यों का अनुगमन नहीं है। क्लेश-क्रोध के ही रूप में तो कलि है।

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥

(भा.११/२१/२०)

अतः एकान्तिक मन, सद्-असद् विवेचनी सात्विक बुद्धि के निर्णीत सिद्धान्त पर ही चलें।

श्री स्वामी जी (हरिदास) द्वारा समत्व की शिक्षा

स्वामी हरिदास सम्प्रदायाचार्य श्री विहारिन देव जी की वाणी –

अब हौं का सौं बैर करौं ।
ऐसे कहत पुकारैं श्री मुख घट-घट हौं बिहरों ॥
तौ कहियत अपराधी जन जो अग्याँ पग न धरों ।
दूसरी करैं बहुत बिगूचे होहूं नर्क परों ॥
प्रानी सब समान अवलौकौं भक्तनि अधिक डरों ।
'श्रीबिहारीदास' हरिदास कृपा तें नित निरभै बिचरों ॥

इस विषम मति को हटाओ अन्यथा भक्तापराध करोगे।

"भक्त साधारन के अपराधहि काँपत डरनि हियौ"

एक सामान्य से सामान्य भक्त का अपराध भी महा-अनिष्टकारी हो सकता है।

ब्रज लीला एवं निकुञ्ज लीला में भेद – महापराध

यह विषम मति लीला में भी विषमता का विष वितरण करती है कि ब्रज लीला भिन्न है व निकुञ्ज लीला भिन्न है।

पुज्याचार्यों का मत

श्रीविहारिन देव जी की वाणी में ब्रज वर्णन –

ब्रज रज काज किये रज राखी ।
उद्धव आदि ब्रह्मादिक दुर्लभ परी प्रवान जुही शुक भाखी ।
जाकौ सुजस बखाँनत श्री मुख श्यामा श्याम सहज मुख साखी ॥
'श्रीबिहारीदास' बिस्वास तिहौं बल उमंड़ि मैंड मरजादा नासी ।
रहूयो न मन भै भ्रम क्रम श्रम कछु ब्रज रज काज कियो रज राखी ॥

श्री विहारिन देव जी के द्वारा निकुञ्ज लीला वर्णन –

बिहरत दोऊ अतिरंग भारे ।
अंसनि पर भुज दियें बिलोकत बदन
जोति रति होत परस्पर निरखि कोटि मदन-मन हारे ॥
अति अनुराग सुहाग भये बस रहि न सकत निमुष न न्यारे ।
'श्रीबिहारीदास' दंपति राजत मंदिर निकुंज नित सुंदर सुघर सुकुंवारे ॥

फिर भी भेद दर्शन हो तो स्थिति यह है –

बातें कहत विहार की गरे पर्‌यो जंजाल ।
महल टहल तैं जानियै कहा बजायै गाल ॥

भेद-बुद्धि का तो आचार्यों ने सर्वत्र खण्डन किया है –

अच्युत गोत बखाँनियै भगतु भगति की जाति ।
पूछनहारे नारकी जे भक्तहिं पूछै जाति ॥

भेद रहित धर्म ही विशुद्ध है !

यही सच्चा महत् समर्हण अर्थात् इष्ट की इज्या है !

हमारा सर्वत्र समभाव हो जाय यही सच्ची श्री बांके बिहारी लाल की आराधना है ।

यही श्री राधावल्लभ लाल की अर्चना है ।

यही बाल कृष्ण प्रभु (वल्लभ कुल) की पूजा है ।

एवं यही राधा रमण लाल (गौड़ेश्वर) की भी सच्ची सेवा-पूजा है ।

इस सत्य को सम्यक् रूपेण समझें तो आपका स्वत्व !

अन्यों को समझायें तो आपके द्वारा जीव-जगत् का कल्याण !

न भी समझें तो आगे समझ जायें ऐसी युगल से विनय !

आज धार्मिकों के समाज में दैन्य को किनारे कर यश और मान की लिप्सा उत्तरोतर बढ़ ही रही है । प्रत्येक व्यक्ति जगत् गुरु बनना चाहता है जबकि स्वयं विधि भी घबराते हैं इन उपाधियों से ।

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥

(भा.२/५/१२)

कैसी विडम्बना है ! जगत तो एक है और उसमें जगत गुरुओं की बटैलियन बन गई, कैसे निस्तार होगा जगत का?

अनायका विनश्यन्ति विनश्यन्ति बहुनायकाः ।
कुनायका विनश्यन्ति तरिष्यन्ति सुनायकाः ॥

(श्री जी)

उपसंहार

लेखिका, निर्देशक व समस्त मान मन्दिर के आराधकों का उपसंहृति लक्ष्य –

यद्गोविंदकथासुधारसहृदे चेतो मया जृम्भितं
यद्वा तद्गुणकीर्तनार्चनविभूषाद्यैर्दिनं प्रापितम् ।
यद्यत्प्रीतिरकारि तत्प्रियजनेष्वात्यंतिकी तेन में
गोपेंद्रात्मजजीवनप्रणयिनी श्रीराधिका तुष्यतु ॥

(रा.सु.नि.११४)

यत् किञ्चित् गोविन्द कथामृत रस में पुस्तक लेखन द्वारा जो चित्त स्नात् हुआ है अथवा कृष्ण गुण-कीर्तन, चरणार्चन व श्रृंगारादि में दिन यापित हुए हैं अथवा श्रीहरि के प्रियजनों व समस्त आचार्यों में आत्यन्तिकी निष्पक्ष व असंकीर्ण प्रीति जो हुई है, उन सबके परिपाक् स्वरूप कृष्ण जीवनी श्रीराधिका महारानी लाड़ली जी अति प्रसन्न हों।

परिशिष्ट

सांकेतिक नाम

इस ग्रन्थ (रसीली ब्रज यात्रा) में लीला स्थलियों के प्रमाण, शास्त्रानुसार, आचार्यों, महापुरुषों एवं संतों की वाणियों से लिए गए हैं। अतिशय प्रयास किया गया है कि प्रत्येक श्लोक संख्या या महापुरुषों के पदों को लिखने में त्रुटि न हो। इस परिशिष्ट में उन शास्त्रों एवं ग्रंथों का उल्लेख है जिनसे सन्दर्भ लिये गए हैं |

संक्षिप्त नाम	पूर्ण नाम
आ. पु.	आदि पुराण
आ. वा. पु.	आदि वाराह पुराण
ईशा उप.	ईशोपनिषद्
कश्चिद् रसिक	कश्चिद् रसिक
कूर्म पुराण	कूर्म पुराण
कौमर्य	कूर्म पुराण
ग. सं. गि.ख.	गर्ग संहिता गिरिराज खण्ड
ग. सं. गो. ख.	गर्ग संहिता गोलोक खण्ड
ग. सं. म. ख.	गर्ग संहिता मथुरा खण्ड
ग. सं. मा. ख.	गर्ग संहिता माधुर्य खण्ड
ग.सं. अ. ख.	गर्ग संहिता अश्वमेध खण्ड
ग.सं. वृ. ख.	गर्ग संहिता वृन्दावन खण्ड
ग.सं.वृ.ख.	गर्ग संहिता वृन्दावन खण्ड
गीता.	श्रीमद्भगवद्गीता
गो.ता.उप.	गोपाल तापनी उपनिषद्
गोपाल चम्पू (उत्तर) पूर्ण	गोपाल चम्पू (उत्तर) पूर्ण
चै.चरि.म.ली.	चैतन्य चरितामृत मध्य लीला
छा.उप.	छान्दोग्य उपनिषद्
तैत्ती.उप.	तैत्तीरीय उपनिषद्
प.पु.पा.ख.	पद्म पुराण पातल खण्ड
प.पु	पद्म पुराण
बृह.ना.पु.उ.ख.	बृहन्नारदीय पुराण उत्तर खण्ड

संक्षिप्त नाम	पूर्ण नाम
बृह.उप	बृहदारण्य उपनिषद
ब्र.भ.वि.	ब्रज भक्ति विलास
ब्र.भा.मा.	ब्रज भाव मालिका
ब्र.वि.	ब्रज विलास
ब्र.वै.पु.	ब्रह्मवैवर्त पुराण
ब्र.वै.प्र.ख.	ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्ड
ब्र.वै.ब्रह्म ख.	ब्रह्मवैवर्त ब्रह्म खण्ड
ब्र.वै.कृ.ज.ख.	ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्म खण्ड
ब्र.सं.	ब्रह्म संहिता
ब्र.प्रे.सा	ब्रज प्रेमानन्द सागर
ब्र.वै.कृ.ज.खं.	ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्म खण्ड
ब्र.वै.ग.ख.	ब्रह्मवैवर्त गणपति खण्ड
भ.र.	भक्ति रत्नाकर
भ.र.सि.	भक्ति रसामृत सिन्धु
भविष्योत्तर पुराण	भविष्योत्तर पुराण
भा.	श्रीमद्भागवतम पुराण
भा.मा. भा.उ .मा. भा.स्क.पु.मा.	भागवत माहात्म्य भागवत उत्तर माहात्म्य भागवत स्कन्द पुराण माहात्म्य
महा.भा.अनु.पर्व	महाभारत अनुशासन पर्व
महा.भा.सभा.पर्व	महाभारत सभा पर्व
र.घु.	रघुवंश
रसिया रसेश्वरी	रसिया रसेश्वरी
रा.अयो.का.	रामायण अयोध्याकाण्ड
रा.अर.का.	रामायण अरण्यकाण्ड
रा.उ.कां	रामायण उत्तर काण्ड
रा.कि.का.	रामायण किष्किन्धाकाण्ड
रा.बा.का.	रामायण बाल काण्ड
रा.सु.का	रामायण सुंदर काण्ड
रा.सु.नि.	राधा सुधा निधि
राधोपनिषद	राधोपनिषद
वा.पु.	वायु पुराण
वा.रा.अयो.का	वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड
वा.रा.सु.का.	वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड
वा.पु.	वामन पुराण

संक्षिप्त नाम	पूर्ण नाम
वि.पु.	विष्णु पुराण
वृ.गौ.तं.	वृहद् गौतमीय तंत्र
वृ.पु.श.	वृषभानुपुर शतक
व्या.वा.	व्यास वाणी (हरिराम व्यास जी)
व्या.वा.वृ.महि.	व्यास वाणी वृन्दावन महिमा
श्रृं.र.सा.	श्रृंगार रस सागर
श्री वल्लभदिग्विजय	श्री वल्लभदिग्विजय
श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद	श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद
श्री हित चतुरासी	श्री हित चतुरासी
श्रृं.र.सा.	श्रृंगार रस सागर
स.कु.सं.	सनत कुमार संहिता
सुबालोपनिषद	सुबालोपनिषद
सू.वि.प.	सूर विनय पत्रिका
सू.सा.	सूरसागर
सौपर्ण संहितायाम्	सौपर्ण संहितायाम्
स्क.पु.	स्कन्द पुराण
स्क.पु.म.ख.	स्कन्द पुराण मथुरा खण्ड
स्क.पु.वै.ख.	स्कन्द पुराण वैष्णव खण्ड

अनुक्रमणिका

Raseeli Braj Yatra Book Launch Festival

रसीली ब्रज यात्रा

"…. सूरदास जी नित्य-लीला में प्रवेश करना चाहते हैं। सूरदास जी सभी वैष्णवों की ओर मुख करके ब्रजधरा को वक्ष से लगाकर लेट गये। लोग पहुँचे तो सोचा कि सूरदास जी को कष्ट है, इन्हें सीधा कर दें। सीधा करने लगे तो सूरदास जी ने मना कर दिया और कहा कि जिस ब्रजभूमि को सदा उत्तमांग दिया, उसे गमन काल में पृष्ठ (पीठ) कैसे दे सकता हूँ। यह वही धरा है, जहाँ स्वयं पूर्णपुरुषोत्तम भी क्रीड़ारत है। यह रज वैष्णव भक्तों को प्राणों से अधिक प्यारी है। यहाँ के काँटे, यहाँ की मिट्टी, यहाँ के कष्ट सब प्यारे हैं। वो अभागे हैं जो यहाँ के कष्टों से घबड़ाते हैं – वो ब्रज भाव को जान ही नहीं सकते।

ब्रज का जो अनुरागी होता है वो तो कहता है –

कोटि मुक्ति सुख होत गोखुरू
जबे लगत गड़ि पाँयन ।

ब्रज का काँटा जब लगता है, वह करोड़ों मुक्ति के समान सुख देता है, उसको ब्रज का भक्त कहते हैं। रसखान जी ने भी लिखा है –

कोटिक ही कलधौत के धाम,
करील की कुंजन ऊपर वारौं ।

करोड़ों सोने के महल भी इन करील की कटीली कुञ्जों पर न्यौछावर हैं। …"

http://www.maanmandir.org

आज से ७० वर्ष पूर्व यात्राओं में ३०-३० हजार यात्रीगण चलते थे, जिससे कूप जल विहीन हो जाते थे। उस समय जो ब्रज यात्राओं की बहुलता थी, रसमयता थी, वह आज नहीं रही। पद यात्राएँ हट करके कार यात्राएँ रह गयीं। इसका कारण शारीरिक दुर्बलता ही नहीं है, अपितु भावनाओं की क्षीणता भी है । **श्रीराधारानी ब्रजयात्रा** मात्र २४ वर्ष पुरानी है किन्तु रसालता के साथ-साथ सर्वप्रवृद्ध हो गई चूंकि यहाँ यात्रियों को भगवन्नाम से जोड़े रखा जाता है। निष्काम कर्म से सकाम कर्म निश्चित ही अत्यंत नीच है। फलाकांक्षी कृपण मनुष्यों का मुख दर्शन भी महापाप है। कामना त्याग वाला जीव ही स्थितप्रज्ञ है। कामना मन को चंचल करती है। कामना त्याग से कर्म, शक्ति संपन्न हो जाता है लेकिन कामना का प्रवेश होने से, पारस्परिक वैष्णव समाज के विघटन व राजस बढ़ने से वह बात अब नहीं रही। रजोगुण से ब्रज रज का रस चला जाता है।

रज छाँड़े रज पाइये
रज राखें रज जाइ ।
रज सों रजहि पिछोन लै
रज सों रसिक कहाइ ॥

श्रीराधारानी ब्रजयात्रा पूर्णतया निःशुल्क, साम्प्रदायिक भेदभाव रहित एवं सतत् भगवन्नाम की सासंगता होने से यह लोकोत्तर स्तर तक पहुँच गयी है। ब्रह्मज्ञानी मोक्षार्थियों का कार्य फलाकांक्षा त्याग कर भगवन्नाम से आरम्भ होता है जो आप को 'रसीली ब्रज यात्रा' में प्राप्त होगा।